బాడ్మి రవిచంద్ర

బాడ్మి ప్రణీత్

కాటన్ కమీషన్ ఏజెంట్స్

ఆలూరు రోడ్, ఆదోని-518301. కర్నూలు జిల్లా.

సెల్: 9...
9...

15-2

...న శాలివాహన శకం 1935
సంవత్సరం పాల్గుణ మాసం
మొదలు అమావాస్య వరకు

కలియుగ సం॥ 5115 శ్రీ విజయ నామ సంవత్సరం

ఉత్తరాయణం **ఫాల్గుణ మాసం** వసంత ఋతువు

2014 మార్చి 2 నుండి మార్చి 30 వరకు

తిథి
శు.పాడ్యమి
పూర్ణిమ
బ.పాడ్యమి
అమావాస్య

...ఆది)	శు.పాడ్యమి 2 మార్చి	అష్టమి 9	పూర్ణిమ 16	సప్తమి 23	అమావాస్య...
...00 ...30	ప. 12-26 పూ.భా. రా.7-03 వ.తె.4-16ల 5-48	ఉ. 9-56 మృగశిర రా. 10-07 వర్జ్యం లేదు.	రా. 10-31 పుబ్బ 12-23 వ.రా. 8-04ల 9-46కు	సా. 6-08 జ్యేష్ఠ ప. 1-32 వ.రా. 9-05ల 10-35కు	రా. 12-36 ఉ.భా. రా. 1-57 ప.వ. 12-06ల 1-3...
...సోమ)	విదియ 3	నవమి 10	బ.పాడ్యమి 17	అష్టమి 24	

(माध्यमिक शिक्षा परिषद्, उ० प्र० द्वारा निर्धारित नवीन पाठ्यक्रमानुसार इण्टरमीडिएट के परीक्षार्थियों के लिए प्रथम एवं द्वितीय प्रश्न-पत्र हेतु सम्पूर्ण पाठ्यक्रम को सँजोए हुए विगत वर्षों के परीक्षा प्रश्न-पत्रों पर आधारित प्रश्नोत्तर रूप में सर्वश्रेष्ठ सहायक पुस्तक।)

लेखक एवं सम्पादक :

प्रो० एस० के० मित्तल

वीरेन्द्र कुमार वर्मा
एम०ए० [इतिहास (गोल्ड मेडलिस्ट)], एम०फिल०
के० वी० इण्टर कॉलेज, माछरा (मेरठ)

डॉ० सुभाष कुमार कुलश्रेष्ठ
एम०ए० (इतिहास एवं राजनीति विज्ञान), पी-एच०डी०
दामोदर इण्टर कॉलेज, होलीपुरा (आगरा)

नवीन संशोधित एवं परिमार्जित संस्करण

प्रकाशक :
चित्रा प्रकाशन
312, वैस्टर्न कचहरी रोड, मेरठ

नवीन, संशोधित एवं परिमार्जित संस्करण

वैधानिक चेतावनी

- इस पुस्तक में समाहित सम्पूर्ण पाठ्य-सामग्री (रेखा व छाया चित्रों सहित) के सर्वाधिकार प्रकाशक के पास सुरक्षित हैं। अतः कोई भी सज्जन इस पुस्तक का नाम, टाइटिल डिजाइन तथा पाठ्य-सामग्री आदि को आंशिक या पूर्ण रूप से तोड़-मरोड़ कर प्रकाशित करने का प्रयास न करें अन्यथा कानूनी तौर पर हर्जे-खर्चे व हानि के जिम्मेदार होंगे।
- इस पुस्तक को यथासम्भव शुद्ध एवं त्रुटि रहित प्रस्तुत करने का भरसक प्रयास किया गया है। फिर भी इसमें कोई कमी अथवा त्रुटि अनिच्छाकृत ढंग से रह गई हो तो उससे कारित क्षति अथवा संताप के लिए लेखक, प्रकाशक एवं मुद्रक का कोई दायित्व नहीं होगा। इस पुस्तक में रह गई तथ्यात्मक त्रुटियाँ तथा अन्य किसी कमी के लिए विद्वत पाठकगण से भूल-सुधार/सुझाव आमंत्रित हैं। प्राप्त सुझावों अथवा त्रुटियों का समायोजन आगामी संस्करण में कर दिया जाएगा।
- इस पुस्तक का सही मूल्य प्रथम पृष्ठ पर मुद्रित है। रबड़ की मुहर, स्टिकर अथवा अन्य विधि द्वारा अंकित कोई भी संशोधित मूल्य गलत है तथा मान्य नहीं है।
- इलाहाबाद उच्च न्यायालय में योजित याचिका संख्या 43203/97 के निर्णय में माननीय न्यायमूर्ति ने गाइड बुक्स/गैस पेपर्स/प्रश्न बैंक इत्यादि के प्रकाशन एवं बिक्री को वैध माना है। अतः शासन/प्रशासन द्वारा इन पुस्तकों की बिक्री को रोकना अवैधानिक होगा। ऐसा करने पर सम्बन्धित अधिकारी न्यायालय की अवमानना के दोषी होंगे।

प्रस्तावना

माध्यमिक शिक्षा परिषद्, उत्तर प्रदेश के इण्टरमीडिएट के परीक्षार्थियों के लाभार्थ **चित्रा इण्टरमीडिएट इतिहास** का नवीन संशोधित एवं परिमार्जित संस्करण प्रस्तुत करते हुए हमें अपार हर्ष हो रहा है।

इतिहास केवल अतीत की घटनाओं का अध्ययन ही नहीं है, अपितु वर्तमान के परिप्रेक्ष्य में भविष्य की मानव आवश्यकताओं से सम्बन्धित भी है। इतिहास एक ओर वर्तमान को अतीत से जोड़ता है, तो दूसरे छोर पर उसे भविष्य निर्माण के उपादान के रूप में प्रस्तुत करता है। यह मानव जाति की भावनाओं तथा कृत्यों का, क्रमागत एवं वैज्ञानिक अध्ययन है। यह हमें नैतिक बल प्रदान करने के साथ ही, त्यागशीलता, साम्प्रदायिक सद्भाव, राष्ट्रीय एकीकरण एवं विश्वबन्धुत्व आदि आदर्शों की ओर अग्रसर होने के लिए प्रेरणा भी प्रदान करता है।

इस पुस्तक की रचना इण्टरमीडिएट के विद्यार्थियों की आवश्यकताओं के अनुरूप की गई है। इस संस्करण में शिक्षकों तथा शिक्षार्थियों से प्राप्त सुझावों के आधार पर पाठ्य-सामग्री में मूलभूत परिवर्तन करके पुस्तक को और भी अधिक उपयोगी तथा सरल बनाने का प्रयास किया गया है। पुस्तक की प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

- **प्रथम एवं द्वितीय प्रश्न-पत्र की सम्पूर्ण पाठ्य-सामग्री निर्धारित पाठ्यक्रम के अनुरूप है।**
- **प्रत्येक अध्याय की पाठ्य-सामग्री को दीर्घ उत्तरीय, लघु उत्तरीय तथा अति लघु उत्तरीय प्रश्नोत्तरों के माध्यम से सरलतम भाषा में प्रस्तुत किया गया है।**
- **प्रत्येक अध्याय में प्रत्येक प्रश्न के स्मरणीय बिन्दु *(Headings)* एक दृष्टि में समझने के उद्देश्य से Box में दिए गए हैं।**
- **विगत वर्षों की परीक्षाओं में पूछे गए सभी प्रश्नों का समावेश यथा स्थान किया गया है।**
- **प्रत्येक अध्याय में ऐतिहासिक तिथियों पर तथा ऐतिहासिक स्थलों व व्यक्तियों पर आधारित प्रश्न प्रचुर मात्रा में दिए गए हैं।**
- **पुस्तक की भाषा को सरल, सुबोध एवं प्रवाहमयी रखा गया है।**

पुस्तक को पूर्णतया छात्रोपयोगी बनाने का प्रयास किया गया है। इस प्रयास में हम कहाँ तक सफल हुए हैं, इसका अनुमान आपके प्यार और स्वीकार से ही लगाया जा सकता है। वस्तुतः पुस्तक की पाठ्य-सामग्री के संशोधन एवं परिवर्तन-परिवर्द्धन की आवश्यकता सदैव बनी रहती है। इस दृष्टि से शिक्षकों, विषय-विशेषज्ञों, इतिहास में रुचि रखने वाले विद्वानों तथा विद्यार्थियों के सुझावों का हार्दिक स्वागत है।

—*लेखकगण*

नवीन पाठ्यक्रम

पाठ्यक्रम के उद्देश्य

भारतीय इतिहास को विश्व इतिहास के परिप्रेक्ष्य में देखा जाए। प्रमुख धाराओं का ज्ञान अपेक्षित है। छात्रों को ऐतिहासिक शोध के नवीन निष्कर्षों को ग्रहण करने के लिए प्रेरित किया जाए। वर्ष में कम से कम एक बार निकट के किसी ऐतिहासिक स्थान का भ्रमण कराया जाए। उस पर प्रश्न इस प्रकार पूछा जाए कि भ्रमण अनिवार्य हो जाए और छात्रों की मौलिकता की परख भी हो जाए।

(1) इतिहास का अध्ययन सम्पूर्ण देश के अतीत पर आधारित हो। वे अपने पूर्वजों की संस्कृति की जानकारी प्राप्त कर सकें। उनकी उपलब्धियों को समझें; उनसे प्रेरणा प्राप्त करें तथा भूलों को दोहराने से बचें।

(2) उन तथ्यों को समझें जिन्होंने राष्ट्रीयता की भावना को विकसित करने में सहायता प्रदान की तथा उन्हें आगे बढ़ाने का प्रयास करें। अपनी दुर्बलता को समझने और उन्हें पुनः न दोहराने का संकल्प करें। जिनसे राष्ट्र को हानि पहुँचती हो उनसे बचें और उसका विरोध करें।

(3) विश्व-बन्धुत्व की भावना उत्पन्न हो। मानवतावादी एवं यथार्थवादी दृष्टिकोण विकसित हो।

(4) अतीत की भाँति वर्तमान का निर्माण करने का साहस पैदा हो। अन्तर्राष्ट्रीय घटनाक्रम को समझें और इनसे प्रभावित होने वाली देश की स्थितियों को समझें।

(5) इतिहास को अधिक बोधगम्य बनाने के लिए उत्तर के साथ भारतीय उपमहाद्वीप के मानचित्र तथा अन्य सम्बन्धित आवश्यक रेखाचित्र भी प्रस्तुत करने पर बल दिया जाए।

सम्पूर्ण पाठ्यक्रम के दो प्रश्न-पत्र होंगे। प्रत्येक 50 अंक का होगा। समय तीन घण्टे का रहेगा। कम से कम 10 प्रश्न करने होंगे। प्रश्न-पत्र का अंक-विभाजन इस प्रकार होगा—

(1) विचार प्रधान (Thought Provoking) निबन्ध प्रकार (Essay Type)
3 प्रश्न, प्रत्येक 6 अंक

(2) कथनों का विवेचन (Comments based on quotation)
2 प्रश्न; प्रत्येक 6 अंक

(3) लघु उत्तरीय प्रश्न — 4 प्रश्न; प्रत्येक 2 अंक

(4) प्रमुख ऐतिहासिक तिथियाँ (संक्षिप्त घटना सहित) — 10 तिथियाँ प्रत्येक 1/2 अंक

(5) ऐतिहासिक स्थान (भवन निर्माण, कला तथा अन्य महत्त्वपूर्ण तथ्य) — 3 अंक

(6) ऐतिहासिक व्यक्तियों पर टिप्पणी (केवल दो) — 4 अंक
(प्राचीनकाल, मध्यकाल तथा आधुनिककाल), प्रत्येक से 1 अनिवार्य है।

(7) मानचित्र भौगोलिक भारत का होना चाहिए जिसमें उप महाद्वीप चित्रित हो।

पाठ्यक्रम

प्रथम प्रश्न-पत्र

(आदिकाल से 1526 ई० तक)

1. भारतीय इतिहास जानने के साधन ।

2. भारतीय एकता के आधारभूत सिद्धान्त, समय-समय पर किए गए प्रयास । आधुनिक समय में उसकी आवश्यकता ।

3. सिन्धु, सरस्वती एवं आर्य सभ्यता—तुलनात्मक अध्ययन, राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक (कला, साहित्य) जीवन ।

4. धार्मिक क्रान्ति का युग—कारण, परिणाम, जैन धर्म और बौद्ध धर्म, तुलनात्मक अध्ययन, प्रगति एवं ह्रास के कारण, विश्व की देन ।

5. पश्चिमी जगत से भारत का सम्पर्क, सिकन्दर का आक्रमण । भारतीय इतिहास पर प्रभाव—राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक (कला, साहित्य) ।

6. राजनीतिक एकता की प्रक्रिया—चन्द्रगुप्त मौर्य, अशोक का शासन-प्रबन्ध, अशोक का धम्म, लोक-कल्याणकारी कार्य, वर्तमान व्यवस्था से समता । भारतीय सीमा के बाहर भारत का प्रभाव । साम्राज्य का अन्तःकरण ।

7. कुषाण वंश—कनिष्क : विजय एवं बौद्ध धर्म का प्रसार । कला एवं साहित्य ।

8. केन्द्रीय शक्ति का पुनरुत्थान ।

चन्द्रगुप्त प्रथम, समुद्रगुप्त व चन्द्रगुप्त द्वितीय । भारत का एकीकरण । प्राचीन भारत का स्वर्णयुग । शासन धर्म सहिष्णुता, सामाजिक जीवन, कला एवं साहित्य, विदेशों से सम्पर्क । आर्थिक सम्पन्नता । फाह्यान का वर्णन । केन्द्रीय शक्ति का ह्रास, एकता की क्षति ।

9. हर्ष की विजय एवं प्रशासन, बौद्ध धर्म, धार्मिक सहिष्णुता, कला एवं साहित्य ।

10. स्थानीय शक्तियों का उदय । राजपूत युग (प्रमुख राजपूत वंश), विदेशी आक्रमण, पराजय के कारण । सामाजिक एवं आर्थिक जीवन । राजनीतिक एकता का ह्रास । स्वार्थ की पूर्ति, संकीर्णता, राष्ट्र की हानि । अलबरूनी का कथन ।

11. इस्लाम धर्म का जन्म, मूलभूत सिद्धान्त, धर्म का राजनीतिक स्वरूप, गजनवी और गोरी का आक्रमण ।

12. दिल्ली सल्तनत—विस्तार, ऐबक, इल्तुतमिश, बलबन, अलाउद्दीन खिलजी, मुहम्मद तुगलक, फिरोज तुगलक : शासन-प्रबन्ध, सैनिक-प्रबन्ध, उत्तर-पश्चिम सीमा समस्या । राजनीति का आधार धर्म । धर्म सापेक्ष राज्य (वर्तमान समय के धर्म सापेक्ष राज्यों का घटनाचक्र छात्रों को समझाया जाए ।)

13. दिल्ली सल्तनत का विघटन—कारण ।

14. दक्षिण भारत के राज्य ।

15. धार्मिक सहिष्णुता का जन्म । सूफी सम्प्रदाय, सभी धर्मों के प्रमुख सन्त । भारतीयता के लिए पृष्ठभूमि तैयार करना । साहित्य और कला के क्षेत्र में इसका प्रभाव । हिन्दी साहित्य में भक्तिकाल का जन्म ।

द्वितीय प्रश्न-पत्र

(1526 ई० से वर्तमान समय तक)

1. मुगल साम्राज्य की स्थापना—बाबर, हुमायूँ।

2. मध्यान्तर—सूर साम्राज्य, शेरशाह सूरी। चरित्र, शासन-प्रबन्ध, धार्मिक सहिष्णुता।

3. मुगल साम्राज्य का द्वितीय चरण—साम्राज्य का विस्तार : अकबर से औरंगजेब तक। राष्ट्रीयता का के नए आयाम, अकबर के कार्य। सामाजिक एवं धार्मिक सुधार; धार्मिक नीति। निर्माण का युग—ऐतिहासिक भवन—अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ की देन। औरंगजेब—राष्ट्रीय एकता पर आघात, साम्राज्य का पतन।

4. मुगलकालीन शासन-व्यवस्था, समाज, कला एवं साहित्य।

5. शिवाजी—शासन-प्रबन्ध, चरित्र एवं मूल्यांकन।

6. यूरोपीय शक्तियों का भारत में प्रवेश—सत्ता के लिए संघर्ष, भारतवासियों में एकता का अभाव, अंग्रेजों का व्यापार से राजनीति में प्रवेश।

7. अंग्रेजी कम्पनी का विस्तार—साम्राज्यवादी नीति 1740-1856 ई०। (संक्षेप में क्लाइव से डलहौजी तक का घटनाक्रम)

8. कम्पनी की शासन-नीति एवं वैधानिक विकास 1773-1857 ई० तक।

9. सामाजिक चेतना, राजा राममोहन राय, स्वामी दयानन्द, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द, ऐनी बेसेन्ट, जस्टिस रानाडे। राष्ट्रीयता की भावना का विकास। नव-निर्माण—रेल, तार एवं डाक आदि।

10. स्वतन्त्रता के लिए 1857 ई० का संघर्ष—कारण, स्वरूप एवं परिणाम।

11. कांग्रेस की स्थापना—शोषण के प्रति जन जागरण, शिक्षा का विस्तार।

12. राष्ट्रीय आन्दोलन (1885-1919 ई०)। कांग्रेस की नीति में परिवर्तन, तिलक, गोखले।

13. राजनीति में अहिंसा का प्रयोग (1919-1957 ई०)।

गांधी जी के सिद्धान्त और कार्य—असहयोग आन्दोलन (सभी क्षेत्रों में गांधीजी की देन), संक्षेप में उन सभी शहीदों का उल्लेख अवश्य किया जाए, जिनके जीवन से छात्रों को प्रेरणा मिले।

14. 1949 ई० तथा 1935 ई० का भारत एक्ट (संक्षिप्त)।

15. एक महान् भूल—देश-विभाजन, अंग्रेजी नीति का परिणाम। हमारी असहिष्णुता—प्राचीन परम्पराओं को छोड़ना।

16. स्वतन्त्र भारत 1947 ई०—समस्याएँ, निराकरण, राजनीतिक एकीकरण, संविधान 1950 : उसकी विशेषताएँ (अब तक के संशोधन), लोक-कल्याणकारी कार्य, पंचवर्षीय-योजना, शिक्षा प्रसार, औद्योगिक विकास।

17. विदेश नीति, गुट निरपेक्षता—पंचशील।

18. वर्तमान की समस्याएँ, उनका निदान, चारित्रिक विकास, नैतिक मूल्यों का महत्त्व, राष्ट्रीयता की भावना।

●●

विषय-सूची

प्रथम प्रश्न-पत्र
(आदिकाल से 1526 ई० तक)

अध्याय संख्या		पृष्ठ संख्या

द्वितीय प्रश्न-पत्र
(1526 ई० से अब तक)

● ●

इण्टरमीडिएट

भारतीय इतिहास

(आदिकाल से 1526 ई० तक)

प्रथम प्रश्न-पत्र
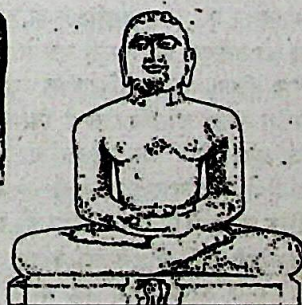
1 प्राचीन भारतीय इतिहास जानने के साधन

[साहित्य, प्राचीन स्मारक, अभिलेख, मुद्राएँ तथा विदेशी यात्रियों व लेखकों के विवरण]

"प्राचीन भारत की सामाजिक, दार्शनिक, नैतिक, साहित्यिक, धार्मिक एवं कला-विषयक पद्धतियाँ, व्यवस्थाएँ तथा परम्पराएँ तो युगों तक जीवित रहीं और आज भी हैं, परन्तु उनके कर्णधारों एवं जन्मदाताओं का इतिहास तथा क्रमबद्धता विस्मृति के आवरण में लुप्त हो गई है।" —डॉ० आर० सी० मजूमदार

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—"हमारे लेखकों के सामने प्राचीनकाल के ऐतिहासिक स्रोतों के अभाव की सबसे बड़ी कठिनाई रहती है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।

उत्तर— भारतीय इतिहास के स्रोतों के अभाव की समस्या

इतिहास किसी भी देश की भूतकालीन सभ्यता एवं संस्कृति का दर्पण है। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक, सांस्कृतिक आदि क्षेत्रों में किस देश ने किस समय क्या प्रगति की अथवा उसकी किस क्षेत्र में कितनी अवनति हुई आदि विभिन्न तथ्यों की जानकारी उस देश के इतिहास का अध्ययन करके प्राप्त की जा सकती है। यही कारण है कि सुप्रसिद्ध इतिहासकार वी० डी० घाटे ने इतिहास को "हमारे समस्त भूतकाल का आलेख (Record)" कहा है।

इसमें सन्देह नहीं है कि भारत का प्राचीन इतिहास भारतीयों की वह अमूल्य धरोहर है जिसने सम्पूर्ण विश्व में भारत का एक महत्त्वपूर्ण स्थान बनाया है। विभिन्न गौरवशाली घटनाक्रमों पर आधारित इस इतिहास का सुसंगठित, पर्याप्त एवं प्रामाणिक संकलन ही भारत के अतीतकालीन गौरव की सही झाँकी प्रस्तुत कर सकता है; परन्तु यह आश्चर्यजनक है कि प्राचीन भारतीय इतिहास की प्रामाणिक जानकारी प्रदान करने वाले ऐतिहासिक स्रोतों का, हमारे देश में अभाव रहा है। यही कारण है कि पश्चिमी देशों के अनेक इतिहासकारों ने तो भारत के प्राचीन युग को 'अन्धकार युग' तक की संज्ञा दी है। एलफिन्स्टन ने लिखा है कि, "भारतीय इतिहास की सिकन्दर के आक्रमण के पूर्व तक की किसी महत्त्वपूर्ण घटना की तिथि निश्चित नहीं की जा सकती है।" इसी प्रकार लावेल के शब्दों में, "हिन्दू काल में हम उस समय तक के इतिहास की घटनाओं का विस्तारपूर्वक तथा निर्णयात्मक वर्णन नहीं कर सकते जब तक कि भारत, अन्य देशों के सम्पर्क में नहीं आया था।" फ्लीट जैसे इतिहासकारों ने तो इतिहास लेखन की मानसिक योग्यता से ही भारतीयों को वंचित पाया। फ्लीट के ही शब्दों में, "यह एक सन्देहास्पद प्रश्न है कि प्राचीन हिन्दुओं में सच्चे इतिहास को तर्कपूर्ण एवं विस्तृत रूप से लिखने की ऐतिहासिक प्रवृत्ति थी भी अथवा नहीं। वे संक्षिप्त, सारगर्भित, किन्तु सीमित ऐतिहासिक रचनाएँ कर सकते थे, परन्तु कोई ऐसा प्रामाणिक, यथार्थ तथा विश्वसनीय साक्ष्य उपलब्ध नहीं है जिससे यह सिद्ध हो सके कि उनमें वास्तविक इतिहास लिखने की मानसिक क्षमता थी।" ग्यारहवीं शताब्दी में अलबरूनी नामक एक विद्वान भारत आया था। उसके अनुसार भी, भारतीयों में इतिहास लेखन की योग्यता का पूर्ण अभाव था। अलबरूनी के शब्दों में, "हिन्दू लोग ऐतिहासिक घटनाओं के प्रति उदासीन हैं। तिथिक्रम के सम्बन्ध में वे अत्यन्त लापरवाह हैं। जब उनसे कोई ऐसी बात पूछी जाती है जिसका वे उत्तर नहीं दे पाते तब वे कहानियाँ गढ़ने लगते हैं।"

वस्तुतः काफी समय तक भारत में कोई ऐसा इतिहासकार नहीं था जो यूनानी इतिहासकार हैरोडोट्स के समान, प्राचीन भारतीय इतिहास को क्रमबद्ध रूप में लिपिबद्ध करता। इसके अनेक कारण भी थे। ये कारण अग्रलिखित हैं—

(i) प्राचीन साहित्य के रचयिता ब्राह्मण थे। उनका दृष्टिकोण आध्यात्मिक था। अतः उनकी रुचि धर्म व दर्शन में अधिक थी। उन्होंने राज्यों के उत्थान और पतन से सम्बन्धित घटनाओं को लिपिबद्ध करने की ओर ध्यान ही नहीं दिया।

(ii) राजतरंगिणी के रचयिता कल्हण के शब्दों में, "उस समय तक बहुत से अमूल्य ऐतिहासिक ग्रन्थ कीड़ों के द्वारा नष्ट कर दिए गए थे और उनको पुनः लिखने का प्रयत्न नहीं किया गया था।"

(iii) आर० सी० मजूमदार के अनुसार एक तीसरा कारण यह था कि, "तुर्कों ने अपने आक्रमणों में भारतीय इतिहास और साहित्य की असंख्य पुस्तकों को जलाकर राख कर दिया था।"

उपर्युक्त कारणों के फलस्वरूप भारत में तिथिवद्ध इतिहास का लेखन सम्भव नहीं हो सका और जो इतिहास लिखा गया उसका अधिकांश भाग नष्ट होता चला गया। फिर भी यह कहना पूर्णतया असंगत है कि भारतीयों में इतिहास-लेखन की योग्यता का अभाव था तथा उन्होंने इस दिशा में कोई प्रयास नहीं किया। सत्य तो यह है कि उनमें इतिहास-लेखन की पूर्ण क्षमता तथा योग्यता थी। कल्हण की राजतरंगिणी, कौटिल्यकृत अर्थशास्त्र, वाक्पतिराज द्वारा रचित गौडवहो इस दृष्टि से उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं। तत्कालीन राजाओं के शिलालेखों, ताम्रपत्रों आदि से भी भारतीय इतिहास के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है।

अतः सी० एन० अय्यर ने उचित ही कहा है कि, "आज भारत विश्व की दृष्टि में गिरा हुआ है। इसका कारण यह नहीं है कि भारत के लोगों ने गौरवपूर्ण कार्य किए ही नहीं, वरन् इसका प्रमुख कारण यह है कि विश्व के लोग, उन गौरवपूर्ण कार्यों से पूर्णतया अनभिज्ञ हैं।"

प्रश्न 2—प्राचीन भारत का इतिहास जानने के साहित्यिक साधनों का विवरण दीजिए। *(1990, 92)*

अथवा प्राचीन भारतीय इतिहास जानने के मूल स्रोतों का उल्लेख कीजिए। *(1990)*

अथवा "भारतीय इतिहास जानने के लिए मुख्यतः हमें साहित्यिक साधनों पर निर्भर करना पड़ता है।" इस कथन पर सोदाहरण प्रकाश डालिए।

अथवा "भारतीय इतिहास के ज्ञान हेतु साहित्यिक सामग्री प्रमुख स्रोत है।" प्रकाश डालिए। *(1990, 94)*

अथवा "पुरातत्व सम्बन्धी सामग्री प्राचीन भारत के इतिहास के निर्माण में बड़ी सहायक सिद्ध हुई है।" व्याख्या कीजिए।

अथवा "प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोतों के रूप में पुरातात्त्विक एवं साहित्यिक साक्ष्य एक-दूसरे के पूरक हैं।" इस कथन की विवेचना कीजिए। *(1993)*

अथवा भारतीय इतिहास-लेखन में विदेशी वृत्तान्तों के महत्त्व पर प्रकाश डालिए। *(1992)*

अथवा प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत के रूप में विदेशी विवरणों की महत्ता पर प्रकाश डालिए। *(1997)*

अथवा "प्राचीन भारतीय इतिहास के ज्ञान हेतु पुरातात्त्विक साक्ष्य महत्त्वपूर्ण स्रोत हैं।" विवेचना कीजिए। *(1994)*

अथवा "भारतीय इतिहास की संरचना में पुरातात्त्विक साक्ष्य की विशेष भूमिका है।" समीक्षा कीजिए। *(1994)*

अथवा भारतीय इतिहास के प्रमुख स्रोत के रूप में पुरातत्त्व का महत्त्व समझाइए। *(1995)*

अथवा भारतीय इतिहास के प्रमुख स्रोत के रूप में अभिलेखों का महत्त्व समझाइए। *(1996)*

अथवा "पुरातत्त्व भारतीय इतिहास जानने का एक महत्त्वपूर्ण साधन है।" विवेचना कीजिए। *(1991)*

अथवा "प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत के रूप में पुरातत्त्व अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है" विवेचना कीजिए। *(1994)*

अथवा "प्राचीन भारतीय इतिहास की जानकारी हेतु प्रमुख साहित्यिक ग्रन्थ महत्त्वपूर्ण साधन हैं।" विवेचना कीजिए। *(1996)*

अथवा प्राचीन भारतीय इतिहास के प्रमुख स्रोतों का संक्षिप्त विवेचन प्रस्तुत कीजिए। *(1997)*

अथवा भारतीय इतिहास के प्रमुख स्रोत के रूप में मुद्राशास्त्र के महत्त्व पर प्रकाश डालिए। *(1997)*
अथवा प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोत के रूप में साहित्यिक एवं विदेशी विवरणों की महत्ता पर प्रकाश डालिए। *(1999)*

उत्तर—

भारतीय इतिहास के ज्ञान के स्रोत

पुरातत्त्व विभाग के सतत् प्रयासों के परिणामस्वरूप प्राचीन भारतीय इतिहास से सम्बन्धित अनेक ऐसे स्रोतों की खोज की जा चुकी है जिनके आधार पर प्राचीन भारत के इतिहास की पर्याप्त जानकारी प्राप्त की जा सकती है। इन स्रोतों को मुख्यतः तीन भागों में वर्गीकृत किया जा सकता है—(i) साहित्य, (ii) प्राचीन स्मारक, अभिलेख व मुद्राएँ तथा (iii) विदेशी यात्रियों व अन्य लेखकों के विवरण। इन समस्त स्रोतों के अन्तर्गत प्राचीन साहित्य के आधार पर ही प्राचीन भारतीय इतिहास की सर्वाधिक जानकारी प्राप्त हो सकी है। इसी कारण प्रायः यह कहा जाता है कि, "भारतीय इतिहास जानने के लिए हमें मुख्यतः साहित्यिक साधनों पर निर्भर रहना पड़ता है।" भारत के प्राचीन विद्वानों, इतिहासकारों द्वारा रचित विपुल धार्मिक एवं ऐतिहासिक साहित्य भी, इस तथ्य के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इस धार्मिक एवं ऐतिहासिक साहित्य तथा अन्य ऐतिहासिक स्रोतों का संक्षिप्त परिचय निम्नवत् है—

(क) साहित्यिक स्रोत

(1) धार्मिक साहित्य—धार्मिक साहित्य के अन्तर्गत वैदिक, बौद्ध तथा जैन साहित्य को सम्मिलित किया गया है। इनका संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

(अ) वैदिक साहित्य : (i) वेद—प्राचीन वैदिक साहित्यों में वेदों को सर्वाधिक महत्त्व प्राप्त है। ये आर्यों के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। इनमें ऋग्वेद सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। अन्य तीन वेद—यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद हैं। वेदों से हमें आर्यों के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक जीवन के सम्बन्ध में विस्तृत रूप से ज्ञान प्राप्त होता है।

> **(क) साहित्यिक स्रोत**
> (1) धार्मिक साहित्य
> (अ) वैदिक साहित्य :
> (i) वेद
> (ii) पुराण
> (iii) वेदांग, उपनिषद् एवं ब्राह्मण
> (iv) रामायण तथा महाभारत
> (v) सूत्र साहित्य तथा स्मृतियाँ
> (ब) बौद्ध साहित्य :
> (i) त्रिपिटक
> (ii) जातक कथाएँ
> (iii) अन्य बौद्ध ग्रन्थ
> (स) जैन साहित्य
> (2) ऐतिहासिक साहित्य।

(ii) पुराण—वैदिक ग्रन्थों में पुराण विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पुराणों की संख्या 18 है, जिनमें विष्णु पुराण, वायु पुराण, ब्रह्म पुराण, अग्नि पुराण तथा गरुड़ पुराण प्रमुख हैं। डॉ० स्मिथ के अनुसार, "इन पुराणों में मौर्य, आन्ध्र, शिशुनाग और गुप्त आदि राजवंशों का विस्तृत विवरण मिलता है।"

(iii) वेदांग, उपनिषद् एवं ब्राह्मण—वेदांग (शिक्षा, कल्प, व्याकरण, निरुक्त, छन्द और ज्योतिष), उपनिषद् (छान्दोग्य, वृहदारण्यक आदि), स्मृति (मनु, विष्णु, नारद, बृहस्पति, पराशर, याज्ञवल्क्य), सूत्र ग्रन्थ, आरण्यक एवं ब्राह्मण (तैत्तरीय, शतपथ, ऐतरेय, पंचविंश) भी विभिन्न कालों के प्राचीन सांस्कृतिक और राजनीतिक इतिहास की जानकारी प्रदान करने के महत्त्वपूर्ण साधन हैं।

(iv) रामायण तथा महाभारत—ये दोनों महाकाव्य भी ऐतिहासिक महत्त्व के ग्रन्थ हैं। इनमें उत्तर वैदिक काल के बाद के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक जीवन का विस्तृत वर्णन संकलित है।

(v) सूत्र साहित्य तथा स्मृतियाँ—सूत्र साहित्य को तीन भागों में विभक्त किया गया है—(i) कल्प सूत्र, (ii) गृह सूत्र तथा (iii) धर्म सूत्र। इनके अन्तर्गत यज्ञ सम्बन्धी विधि-विधानों, गृह कर्मकाण्डों, राजनीति, विधि तथा व्यवहार के विभिन्न पक्षों से सम्बन्धित जानकारी प्रदान की गई है। स्मृतियों में राजा मनु द्वारा रचित मनुस्मृति का विशिष्ट स्थान है। इसके अतिरिक्त नारद स्मृति, विष्णु स्मृति एवं याज्ञवल्क्य स्मृति के नाम भी उल्लेखनीय हैं।

(ब) बौद्ध साहित्य—बौद्ध साहित्य में मुख्य रूप से निम्नलिखित ग्रन्थ आते हैं—

(i) त्रिपिटक—त्रिपिटक तीन हैं—विनय-पिटक, सूत्त-पिटक तथा अभिधम्म-पिटक। विनय-पिटक में बौद्ध संगठन के नियमों का उल्लेख किया गया है तथा सूत्त-पिटक में महात्मा बुद्ध के उपदेशों का सार है। अभिधम्म-पिटक 7 भागों में विभक्त है, जिनमें बौद्ध धर्म से सम्बन्धित तथ्यों का तार्किक विवेचन प्राप्त होता है।

(ii) जातक कथाएँ—जातकों की संख्या 547 अथवा 549 बताई जाती है। इनमें बुद्ध के पूर्वजन्मों की कहानियों का विवरण है। इनसे बुद्धकालीन और महात्मा बुद्ध के बाद के समय की सांस्कृतिक एवं सामाजिक दशा की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। डॉ० विण्टरनिट्ज के कथनानुसार, "जातक कथाओं का महत्त्व अमूल्य है। वह केवल इसलिए नहीं है कि वे साहित्य और कला के अंश हैं अपितु उनका महत्त्व तीसरी शताब्दी ई० पू० की भारतीय सभ्यता का दिग्दर्शन कराने में है।"

(iii) अन्य बौद्ध ग्रन्थ—बौद्ध ग्रन्थों में दीपवंश और महावंश महाकाव्य का भी अपना विशिष्ट महत्त्व है। इनमें अनेक शासकों के शासन से सम्बन्धित घटनाओं का विवरण है। एक अन्य ग्रन्थ मिलिन्दपन्हौ, राजा मिनाण्डर तथा बौद्ध भिक्षु नागसेन के वार्तालाप पर प्रकाश डालता है। इनके अतिरिक्त दिव्यावदान, ललित-विस्तर, मंजुश्रीमूलकल्प, बुद्ध-चरित, लंकावतार आदि बौद्ध ग्रन्थ भी भारतीय इतिहास की जानकारी प्रदान करने से सम्बन्धित स्रोतों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं।

(स) जैन साहित्य—जैन ग्रन्थों से भी अनेक शासकों के काल से सम्बन्धित ऐतिहासिक और सामाजिक घटनाओं पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। जैन साहित्य में आगम सूत्र-ग्रन्थ, जैन पुराण, पुण्याश्रव कथा कोष, भद्रबाहु-चरित, परिशिष्ट पर्वन (हेमचन्द्र रचित) आदि ग्रन्थ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। जैन परिशिष्ट पर्वन और भद्रबाहु चरित में चन्द्रगुप्त मौर्य के विषय में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण जानकारी प्राप्त हुई है।

(2) ऐतिहासिक साहित्य—प्राचीन काल में अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थों की रचना की गई है। इन ग्रन्थों से तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक दशाओं का विशद ज्ञान प्राप्त होता है।

इनमें सर्वप्रथम महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में कौटिल्य द्वारा रचित अर्थशास्त्र है, जो राजनीतिशास्त्र की सर्वोत्तम कृति है। दूसरा महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ पाणिनी कृत अष्टाध्यायी है। पतंजलि ने अपने महाभाष्य में मौर्य वंश के काल की दशाओं का वर्णन किया है। गार्गी संहिता में भारत पर यवनों के आक्रमण का विवरण मिलता है। इसी प्रकार, महाकवि कालिदास ने अपने ग्रन्थों अभिज्ञानशाकुन्तलम् तथा मालविकाग्निमित्रम् में गुप्तकालीन संस्कृति और पुष्यमित्र शुंग व यवनों के मध्य हुए युद्ध पर प्रकाश डाला है। भास ने स्वप्नवासवदत्ता की रचना की, जिसमें गुप्तकाल की घटनाओं का विवरण है।

गुप्तकाल में विशाखदत्त ने मुद्राराक्षस तथा देवीचन्द्रगुप्तम् नामक नाटकों की रचना की। इनमें क्रमशः मौर्य वंश की स्थापना, नन्द वंश का पतन तथा रामगुप्त व उसकी पत्नी ध्रुवदेवी के जीवन का वर्णन है। सातवीं शताब्दी में राजा हर्ष ने नागानन्द, रत्नावली तथा प्रियदर्शिका नामक ग्रन्थों की रचना की। इसी काल में महाकवि बाणभट्ट ने हर्षचरित लिखा। इन ग्रन्थों से राजा हर्ष के शासन काल की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है।

विल्हण द्वारा रचित विक्रमांक देव चरित में चालुक्य वंश के इतिहास पर प्रकाश डाला गया है। गौड़बहो में जिसकी रचना वाक्पतिराज ने की थी, कन्नौज के राजा यशोवर्मन की विजयों का वर्णन है। नवसाहसांक चरित की रचना परिमल गुप्त ने की थी। इस ग्रन्थ में परमार वंश की घटनाओं का पर्याप्त उल्लेख किया गया है। 12वीं शताब्दी में कल्हण ने राजतरंगिणी नामक ग्रन्थ लिखा, जिसमें कश्मीर के शासकों का वर्णन है। इसी युग में चन्दवरदाई कृत पृथ्वीराज रासो; कुमारपाल चरित, जगनिक कृत परमाल रासो आदि महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों की रचना भी की गई है जिनसे राजपूत काल की अनेक ऐतिहासिक घटनाओं की जानकारी उपलब्ध होती है।

(ख) प्राचीन स्मारक, अभिलेख तथा मुद्राएँ (पुरातात्त्विक स्रोत)

प्राचीन काल में अनेक शासकों ने दुर्ग, भवन, मन्दिर, स्तूप एवं शिलालेख आदि का निर्माण कराया जो ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। इनके अन्तर्गत विशेषतः अभिलेखों के ऐतिहासिक महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए फ्लीट ने लिखा है कि, **"अभिलेखों से हमें बिना किसी कठिनाई के तिथियों को निश्चित करने तथा भारत के इतिहास को एकरूपता प्रदान करने में सहायता मिलती है।"** प्राचीन शिलालेखों, स्तम्भ-लेखों, ताम्रपत्रों, सिक्कों आदि पर जिन तिथियों, शासकों के नामों, कार्यों आदि का उल्लेख किया गया है उन तिथियों, नामों आदि का उल्लेख प्राचीन साहित्य में भी किया गया है। तथ्यों के सम्बन्ध में साहित्यिक स्रोतों व पुरातात्त्विक साक्ष्यों की यह साम्यता, विभिन्न घटनाओं से सम्बन्धित तथ्यों के प्रमाणीकरण में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई है। इसी कारण यह कहा जाता है कि, **"प्राचीन भारतीय इतिहास के स्रोतों के रूप में पुरातात्त्विक एवं साहित्यिक साक्ष्य एक-दूसरे के पूरक हैं।"** वस्तुतः पुरातत्त्व सम्बन्धी सामग्री प्राचीन भारत के इतिहास के निर्माण में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई है। पुरातत्त्व सम्बन्धी स्रोतों का विवरण निम्नवत् है—

(ख) पुरातात्त्विक स्रोत
(1) अभिलेख
(2) मठ, मन्दिर तथा स्तूप
(3) मुद्राएँ
(4) अन्य पुरातत्त्व सामग्री।

(1) अभिलेख—मौर्य युग के प्रतापी और धर्मनिष्ठ सम्राट अशोक के द्वारा निर्मित अभिलेखों का ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्त्व है। अशोक के अभिलेखों से उसके साम्राज्य-विस्तार, धर्म-प्रचार तथा शासन-प्रबन्ध का विस्तृत ज्ञान प्राप्त होता है। अशोक के 14 शिलालेख, 2 लघु शिलालेख तथा 3 गुहालेख मौर्य युग के सम्बन्ध में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण जानकारी प्रदान करते हैं। अशोक के वाद के अभिलेखों में इलाहाबाद का स्तम्भ अभिलेख, एहोल की प्रशस्ति, खारवेल का हाथी गुम्फा शिलालेख, कुमारगुप्त प्रथम का कर्मदण्डा अभिलेख, रुद्रदामन का ज़ूनागढ़ शिलालेख, चन्द्र का महरौली लौहस्तम्भ लेख तथा स्कन्दगुप्त का भिटारी या भीतरी स्तम्भ अभिलेख ऐतिहासिक दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। इनसे तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक दशाओं का ज्ञान प्राप्त होता है।

विदेशी अभिलेखों के अन्तर्गत एशिया माइनर स्थित **'बोगजकोई'** के अभिलेख में वैदिक देवताओं का उल्लेख मिलता है। इसी प्रकार, पर्सीपोलस तथा नक्शे रुस्तम (ईरान) के अभिलेखों से प्राचीन भारत व ईरान के सम्बन्धों पर व्यापक प्रकाश पड़ता है।

(2) मठ, मन्दिर तथा स्तूप—इनका सांस्कृतिक दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व है। सारनाथ, साँची के स्तूप, अजन्ता-एलोरा गुफाओं की चित्रकारी, बौद्ध मूर्तियाँ, गुप्तकाल के मन्दिर तथा खजुराहो के मन्दिर से प्राचीन काल की सांस्कृतिक और धार्मिक स्थिति की जानकारी मिलती है।

(3) मुद्राएँ—मुद्राओं के अन्तर्गत गुप्तकालीन और कुषाणकालीन मुद्राएँ सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं। इनसे तत्कालीन शासकों के धर्म, भारत तथा विदेशों के मध्य व्यापारिक सम्बन्धों आदि पर व्यापक प्रकाश पड़ता है।

(4) अन्य पुरातत्त्व सामग्री—फर्ग्यूसन तथा कनिंघम आदि ने अनेक स्थानों की खुदाई कराकर अमूल्य ऐतिहासिक सामग्री प्राप्त की है। मोहनजोदड़ो, हड़प्पा, मथुरा, पाटलिपुत्र, नालन्दा, राजगिरी, भरहूत, कोसम, लक्ष्मणेश्वर, अगदी, वनवासी, तक्षशिला, साँची, सारनाथ आदि के उत्खनन में प्राप्त ये वस्तुएँ भारत के सांस्कृतिक इतिहास पर विस्तृत प्रकाश डालती हैं।

(ग) विदेशी यात्रियों तथा अन्य लेखकों के विवरण

भारत के इतिहास की महत्त्वपूर्ण घटनाओं की जानकारी प्रदान करने में विदेशी यात्रियों तथा लेखकों का सर्वाधिक योगदान रहा है। मौर्यकाल, शुंग वंश, कुषाण, गुप्त राजाओं और वर्धन वंश के इतिहास की महत्त्वपूर्ण जानकारी विदेशी यात्रियों के विवरण के आधार पर ही प्राप्त हुई है। चीनी यात्रियों का तो इस क्षेत्र में विशेष योगदान रहा है।

प्राचीन काल में अनेक विदेशी यात्री और विद्वान् भारत आए तथा उन्होंने अपने यात्रा सम्बन्धी विवरणों को लिपिबद्ध किया। उनके यात्रा विवरणों से तत्कालीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक दशा का विस्तृत ज्ञान प्राप्त होता है।

वस्तुतः भारतीय इतिहास के लेखन में इन विदेशी वृत्तान्तों का बहुत महत्त्व है। विदेशी विवरणों के महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी ने लिखा है कि, **"इनसे भारतीय तिथि के अशान्त सागर में समसामयिकता स्थापित करने में सहायता मिलती है।"** भारतीय इतिहास की जानकारी प्रदान करने में विदेशी यात्रियों के विवरण का विशेष महत्त्व है। विदेशी यात्रियों के विवरण इस प्रकार हैं—

(1) ईरानी विवरण—सिकन्दर के आक्रमण के पूर्व आए **स्काईलैक्स (Skylex)** नामक ईरानी यात्री ने भारतवर्ष के विषय में अत्यन्त रोचक विवरण दिया है। इसके बाद **हैकेटियस, हैरोडोट्स, मिलेटस** तथा **टेशियस** आदि ईरानी लेखकों के विवरण भी ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं।

(2) यूनानी विवरण—सिकन्दर के समकालीन तथा बाद के लेखकों में **एरिस्टोबुलस, एरियन, जस्टिन, स्ट्रेबो, प्लूटार्क, टालेमी, कर्टियस, प्लिनी, निआर्कस, ओनोसिक्रिटस** तथा **यूनेनीज** आदि यूनानी यात्रियों के विवरण अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं।

(ग) विदेशी यात्रियों तथा अन्य लेखकों के विवरण

(1) ईरानी विवरण
(2) यूनानी विवरण
(3) चीनी विवरण
(4) तिब्बती विवरण
(5) मुस्लिम विवरण।

यूनानी राजदूत मेगस्थनीज की 'इण्डिका' यूनानी ग्रन्थों के अन्तर्गत एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक ग्रन्थ है। इसमें चन्द्रगुप्त मौर्य की शासन व्यवस्था का विस्तृत विवरण उपलब्ध होता है।

(3) चीनी विवरण—चीनी विवरणों में **सुमाशीन, फाह्यान, ह्वेनसांग** तथा **इत्सिंग** के विवरण विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन विवरणों से भारत की तत्कालीन राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक दशा पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है।

(4) तिब्बती विवरण—तिब्बती लेखकों में **बौद्ध लामा तारानाथ** का विवरण ऐतिहासिक महत्त्व रखता है। इन्होंने अपनी पुस्तकों 'कंग्युर' तथा 'तंग्युर' में मौर्यकाल तथा उसके पश्चात् की घटनाओं का वर्णन किया है।

(5) मुस्लिम विवरण—मुस्लिम इतिहासकार **अलबरूनी** ने अपनी पुस्तक **तहकीक-ए-हिन्द** में 11वीं शताब्दी के भारत की दशा पर विस्तृत प्रकाश डाला है। इसके बाद **अलबिलादुरी, सुलेमान, अलमसूदी, अल उतबी, मिनहाज-उस-सिराज, हसन निजामी, जियाउद्दीन बरनी, शम्सेसिराज अफीफ, निजामुद्दीन अहमद** आदि के विवरण भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं। मध्यकाल में **अब्दुल रज्जाक** और **निकोलोकोन्टी** ने अपने यात्रा संस्मरणों में विजयनगर साम्राज्य का बहुत ही सुन्दर वर्णन किया है। **इब्नेबतूता** का विवरण भी ऐतिहासिक दृष्टि से कम महत्त्वपूर्ण नहीं है।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन भारतीय इतिहास जानने के लिए ऐतिहासिक स्रोतों का अभाव नहीं है। विभिन्न साहित्यिक तथा पुरातात्त्विक साधनों से प्राचीन भारतीय इतिहास पर व्यापक प्रकाश पड़ता है। आज भी पुरातत्त्व विभाग के द्वारा ऐतिहासिक सामग्रियों के उत्खनन भी जारी हैं। उत्खनन (खुदाई कार्य) में प्राप्त ये सामग्रियाँ प्राचीन भारत का स्पष्ट चित्र प्रस्तुत करने में सहायक हो रही हैं।

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—ऋग्वेद पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर : ऋग्वेद—सभी वेदों में ऋग्वेद सबसे प्राचीन और महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। मैक्समूलर के अनुसार ऋग्वेद की रचना 4000 ईसा पूर्व के लगभग हुई थी। ऋग्वेद में 10 मण्डल और 1028 सूक्त या सूत्र हैं।

यह ग्रन्थ राजा सुदास और 10 अन्य राजाओं के मध्य हुए युद्ध पर प्रकाश डालता है। इस ग्रन्थ से पूर्व-वैदिककालीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक दशा पर व्यापक प्रकाश पड़ता है।

प्रश्न 2—उपनिषद् क्या हैं?

उत्तर : उपनिषद्—उपनिषद् ग्रन्थ भारतीय दर्शन के सर्वप्रमुख ग्रन्थ हैं। इनमें सृष्टि और जीवन से सम्बन्धित अनेक तथ्यों की विस्तृत व्याख्या की गई है और आत्मा व परमात्मा के विषय में जानकारी कराते हुए कर्म, मोक्ष और माया आदि के सिद्धान्तों पर प्रकाश डाला गया है। उपनिषदों की संख्या लगभग 100 है। उपनिषद् साहित्य के आधार पर प्राचीन भारतीयों के धार्मिक और दार्शनिक जीवन का विशेष ज्ञान प्राप्त होता है। मैक्डोनल के अनुसार, **"उपनिषदों में राजा परीक्षित से लेकर बिम्बसार के शासन काल तक की घटनाओं का विवरण भी मिलता है।"**

प्रश्न 3—निम्नलिखित ग्रन्थों में से किन्हीं दो के बारे में संक्षिप्त विवरण दीजिए—

(1) अर्थशास्त्र, (2) हर्षचरित, (3) राजतरंगिणी, (4) मालविकाग्निमित्रम्।

उत्तर : (1) अर्थशास्त्र—इस ग्रन्थ की रचना ईसा पूर्व चौथी शताब्दी में चन्द्रगुप्त मौर्य के गुरु व प्रधानमन्त्री **चाणक्य (कौटिल्य)** ने की थी। राजनीति, कूटनीति और शासन-प्रबन्ध पर यह एक प्रामाणिक व उत्कृष्ट ग्रन्थ है। चन्द्रगुप्त मौर्य की सम्पूर्ण शासन व्यवस्था की जानकारी इसी ग्रन्थ के आधार पर प्राप्त हो सकी है। इस ग्रन्थ को राजनीति की आधारशिला के रूप में स्वीकार किया जाता है।

(2) हर्षचरित—इस ग्रन्थ की रचना सातवीं शताब्दी में **बाणभट्ट** ने की थी। इस ग्रन्थ में हर्षवर्धन के शासनकाल की प्रमुख घटनाओं का वर्णन किया गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से यह एक अमूल्य ग्रन्थ है।

(3) राजतरंगिणी—इस ऐतिहासिक ग्रन्थ की रचना **कल्हण** ने की थी। इस ग्रन्थ में कश्मीर के इतिहास का क्रमबद्ध विवरण दिया गया है। यह प्राचीन काल की पुस्तकों में लिखी गई ऐसी सर्वप्रथम पुस्तक है जिसमें कालक्रम के अनुसार (तिथिबद्ध) घटनाओं का विवरण दिया गया है। बारहवीं शताब्दी में रचित इस पुस्तक में कनिष्क काल की भी पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है।

(4) मालविकाग्निमित्रम्—यह गुप्तकालीन विद्वान् **कालिदास** की सुप्रसिद्ध कृति है। इस ग्रन्थ में गुप्तकाल के अन्तिम दिनों की घटनाओं का वर्णन है। यह ग्रन्थ पुष्यमित्र शुंग तथा यवनों के मध्य हुए युद्ध पर भी विस्तृत प्रकाश डालता है।

प्रश्न 4—प्राचीन भारत के दो साहित्यकारों और उनकी कृतियों का परिचय दीजिए। *(1997)*

उत्तर—प्राचीन भारत के दो साहित्यकारों एवं उनकी कृतियों का संक्षिप्त परिचय निम्नवत् है—

(1) कालिदास—ये चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के राज्यकाल के प्रसिद्ध कवि, नाटककार और दरबारी कवि थे। इनकी गणना संस्कृत के महान साहित्यकारों एवं कवियों में होती है। 'अभिज्ञानशाकुन्तलम', 'मालविकाग्निमित्रम्', 'विक्रमोवर्शीयम्', 'रघुवंशम्', 'ऋतु संहार', 'कुमारसम्भवम्' और 'मेघदूत' हैं।

(2) कल्हण—यह ग्यारहवीं शताब्दी में शासन करने वाले कश्मीर के राजा हर्ष के एक मन्त्री के पुत्र थे। इनकी गणना प्राचीनकाल के महान इतिहासकार के रूप में होती है। इन्होंने काव्यात्मक शैली पर आधारित संस्कृत भाषा में 'राजतरंगिणी' नामक पुस्तक की रचना की। इस पुस्तक में कश्मीर के प्राचीन इतिहास पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है।

प्रश्न 5—भारतीय इतिहास-लेखन में बौद्ध साहित्य से क्या जानकारी मिलती है? *(1999)*

उत्तर—भारतीय इतिहास लेखन में बौद्ध साहित्य से विपुल जानकारी मिलती है। त्रिपिटक ग्रन्थों (विनय पिटक, सूत्त पिटक तथा अभिधम्म पिटक) से महात्मा बुद्ध के उपदेशों तथा बौद्ध धर्म के संगठन व सिद्धान्तों का पता चलता है। जातक कथाओं से छठी शताब्दी ईसा पूर्व की राजनीतिक और आर्थिक दशा का ज्ञान प्राप्त होता है। अन्य ग्रन्थ तत्कालीन राजनीतिक दशा तथा बौद्ध धर्म के विस्तार पर प्रकाश डालते हैं।

प्रश्न 6—सल्तनतकालीन इतिहास के किन्हीं दो स्रोत ग्रन्थों का मूल्यांकन कीजिए।

उत्तर—सल्तनतकालीन इतिहास के दो प्रमुख स्रोत ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—

(1) तारीखे फिरोजशाही—इस ग्रन्थ की रचना जियाउद्दीन बरनी ने की थी। इस ग्रन्थ से बलबन के शासनकाल से लेकर फिरोज तुलगक के शासनकाल के 6वें वर्ष तक के इतिहास का पता चलता है।

(2) तारीखे दाउदी—इस ग्रन्थ का लेखक अब्दुल्ला था। इस ग्रन्थ में अफगानों के शासनकाल (वहलोल लोदी, सिकन्दर लोदी, इब्राहीम लोदी) का वृत्तान्त दिया गया है।

प्रश्न 7—हर्षकालीन इतिहास के दो स्रोत ग्रन्थों और उनके रचयिताओं के नामोल्लेख कीजिए। *(1999)*

उत्तर—हर्षकालीन इतिहास के दो स्रोत ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—

(1) हर्षचरित—इस ग्रन्थ का रचयिता सम्राट हर्ष का दरबारी कवि बाणभट्ट था। इस ग्रन्थ में हर्षकालीन युग की प्रमुख घटनाओं का वर्णन है।

(2) सी-यू-की—यह चीनी यात्री ह्वेनसांग का यात्रा विवरण है। ह्वेनसांग ने तत्कालीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक दशा का सजीव चित्रण किया है।

ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों एवं व्यक्तियों पर आधारित प्रश्न

प्रश्न 1—निम्नांकित तिथियों की ऐतिहासिक महत्ता को स्पष्ट कीजिए।

उत्तर : **(1) 302 ई० पू०**—इस तिथि को मेगस्थनीज, यूनानी राजदूत के रूप में चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में आया था। वह 298 ई० पू० तक भारत में रहा। उसने अपना विवरण **'इण्डिका'** नामक पुस्तक में लिपिबद्ध किया था।

(2) 629 ई० *(1994, 95)*—इस तिथि को चीनी यात्री ह्वेनसांग भारत आया था। वह 13 वर्ष तक भारत में रहा। उसने अपने यात्रा विवरण का उल्लेख सी-यू-की नामक पुस्तक में किया है।

(3) 1030 ई० *(1993)*—इस तिथि को मुस्लिम इतिहासकार अलबरूनी ने अपनी पुस्तक तहकीके-हिन्द पूर्ण की थी। इसी वर्ष 30 अप्रैल, 1030 ई० को ही महमूद गजनवी की मृत्यु हुई थी।

प्रश्न 2—निम्नांकित ऐतिहासिक स्थलों का संक्षिप्त परिचय दीजिए—

उत्तर—**(1) कुरुक्षेत्र**—दिल्ली के उत्तर में स्थित यह एक प्राचीन ऐतिहासिक नगर है। महाभारत ग्रन्थ के अनुसार इसी स्थान पर कौरवों और पाण्डवों के मध्य युद्ध हुआ था और यहीं पर श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश दिया था। कुरुक्षेत्र में ज्यातिसर नामक एक विशाल तालाब है, कुम्भ के अवसर पर देशभर से लाखों श्रद्धालु इस तालाब में आकर स्नान करते हैं। वर्तमान में कुरुक्षेत्र में अनेक मन्दिर व स्मारक दर्शनीय हैं।

(2) कुण्डग्राम—यह प्राचीन वैशाली नगर का एक उपनगर है जो बिहार राज्य में स्थित है। ग्रह स्थल जैन धर्म के प्रवर्तक एवं 24वें तीर्थंकर महावीर स्वामी की जन्मभूमि है। यहाँ का विशाल व भव्य जैन मन्दिर दर्शनीय है। जैन धर्म के अनुयायी इस स्थान की वर्षभर धार्मिक यात्रा करते हैं।

(3) तक्षशिला *(1999)*—यह स्थान पाकिस्तान के प्रमुख नगर रावलपिण्डी से 19 किमी दूर स्थित है। प्राचीन काल में यह भारत का ऐतिहासिक नगर था। किंवदन्तियों के अनुसार, श्री रामचन्द्र के छोटे भाई भरत के पुत्र तक्ष ने इस नगर की स्थापना की थी। प्राचीन भारत के इतिहास में लगभग 1100 वर्षों तक (500 ईसा पू० से 600 ई०) यह नगर सभ्यता एवं संस्कृति का प्रमुख केन्द्र बना रहा।

प्रश्न 3—हैरोडोट्स पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर—**हैरोडोट्स**—हैरोडोट्स यूनान का एक महान् इतिहासकार था। उसे **'इतिहास का पिता'** तथा **'इतिहास का जन्मदाता'** माना जाता है। वह न केवल यूनान वरन् विश्व का प्रथम इतिहासकार भी था। उसके द्वारा लिखित पुस्तक **'हिस्ट्रीज'** (Histories) विश्व के दुर्लभ ग्रन्थों में से एक है। उसने 500 ई० पू० विश्व में घटित तत्कालीन घटनाओं को अपनी पुस्तक में क्रमबद्ध रूप में प्रस्तुत किया। हैरोडोट्स ने इन घटनाओं का प्रस्तुतीकरण कथाओं के माध्यम से किया।

2 भारतीय इतिहास पर भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव

"भौगोलिक पृथकत्व के होते हुए भी भारतीय समाज का अंग विलक्षण रूप से कई प्रकार की मिलावट से या पृथक् तत्त्वों से बना है, जो निश्चय ही बाहरी जगत के साथ भारतवर्ष के सम्पर्क और देशान्तरों से लोगों के यहाँ आकर बसने और आक्रमणों का परिणाम है।"
—डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—"भारत की भौगोलिक परिस्थितियों का उसके राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा है।" विवेचना कीजिए। *(1999)*

अथवा **"भौगोलिक वातावरण के मंच पर ही मानव इतिहास रूपी नाटक का अभिनय होता है।" भारतीय इतिहास तथा उसके भौगोलिक वातावरण के सन्दर्भ में इस कथन की पुष्टि कीजिए।**

उत्तर—

भूगोल तथा इतिहास का पारस्परिक सम्बन्ध

बर्कले ने लिखा है कि, "मानवीय क्रियाकलापों पर जितनी गहरी छाप उस देश की भौगोलिक दशा की पड़ती है उतनी गहरी छाप स्वयं उसके अपने विचारों एवं चिन्तन की भी नहीं पड़ती है।" इस विषय पर जब हम भारतीय इतिहास व सभ्यता की भौगोलिक पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में विचार करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि भारत की भौगोलिक विभिन्नताओं ने इस देश को अनेकानेक विशिष्टताएँ प्रदान की हैं। अतः भारतीय संस्कृति एवं इतिहास पर भौगोलिक अवस्थाओं का प्रभाव निम्न रूप में देखा जा सकता है—

(1) मनुष्य परिस्थिति की उपज—मनुष्य एवं प्रकृति में अभिन्न सम्बन्ध है। मनुष्य का जन्म परिस्थितियों की गोद में हुआ और उसका विकास भी यहीं हुआ। संक्षेप में कहा जा सकता है कि उसके आचार-विचार, साहित्य, कला आदि का निर्धारण भौगोलिक परिस्थितियों के माध्यम से होता है। यही कारण है कि मानव व प्रकृति के सहयोग एवं विरोध से किसी देश या क्षेत्र की संस्कृति व सभ्यता का उत्थान एवं पतन होता है।

भूगोल तथा इतिहास का पारस्परिक सम्बन्ध

(1) मनुष्य परिस्थिति की उपज
(2) मनुष्य प्रकृति का दास नहीं
(3) इतिहास पर वाह्य प्रभाव
(4) भूगोल का इतिहास पर प्रभाव।

(2) मनुष्य प्रकृति का दास नहीं—यह निर्विवाद सत्य है कि प्रकृति के अभाव में मानव जीवन की कल्पना नहीं की जा सकती। किन्तु यह भी सत्य है कि मनुष्य पूर्ण रूप से प्रकृति का दास नहीं है क्योंकि वह अपने परिश्रम एवं बुद्धि के बल पर परिस्थितियों में परिवर्तन कर सकता है। उदाहरणार्थ, यह मनुष्य की बुद्धि का ही प्रतिफल है कि मनुष्य ने साइबेरिया के बर्फीले प्रदेशों में परिवर्तन करके उन्हें हरे-भरे खेतों में परिवर्तित कर दिया है। अतः मनुष्य पूर्ण रूप से प्रकृति का दास नहीं है।

(3) इतिहास पर वाह्य प्रभाव—इतना अवश्य है कि किसी देश के इतिहास को उस देश के, भौगोलिक तत्त्व अथवा आन्तरिक भौगोलिक परिस्थितियाँ प्रभावित करती हैं। किन्तु इनके साथ-साथ यह भी आवश्यक है कि कुछ बाह्य प्रभाव भी इतिहास को प्रभावित करते हैं। जैसे—प्राचीन युग में भारत में अपने विकास की ओर गतिमान था किन्तु विदेशी आक्रमणों ने उसकी गति को रोक दिया था तथा भारतीय जीवन में कुछ ऐसे विदेशी तत्त्वों का आदान-प्रदान हुआ जिन्हें आज तक आत्मसात नहीं किया जा सका है।

(4) भूगोल का इतिहास पर प्रभाव—यद्यपि यह सत्य है कि भूगोल किसी देश के इतिहास को प्रभावित करता है किन्तु यह प्रभाव सीमित होता है, क्योंकि जैसे-जैसे मनुष्य अपनी बुद्धि से नवीन

आविष्कारों की खोज करता है वैसे-वैसे ही भौगोलिक परिस्थितियों का इतिहास पर से प्रभाव कम होता जाता है।

भारत की भौगोलिक परिस्थितियाँ

भारत एक विशाल देश है जिसकी भौगोलिक परिस्थितियाँ निम्नवत् हैं—

(1) भारत एक महाद्वीप के समान—विश्व के मानचित्र में भारत एक विशाल भू-भाग के रूप में है। क्षेत्रफल की दृष्टि से यह इतना विस्तृत है जितना कि रूस को छोड़कर समस्त यूरोप। भारत के उत्तर में हिमालय की विशाल चोटियाँ हैं तथा दक्षिण में तीन ओर से भारत विशाल समुद्र से घिरा हुआ है जिसके कारण यह एक अलग महाद्वीप-सा बन गया है।

(2) भारत के विभिन्न प्रदेश—भारतवर्ष का दक्षिणी भाग अनुपजाऊ व पथरीला पठार है, किन्तु इसके दोनों ओर समुद्रतटीय मैदान है। भारत के उत्तर-पश्चिम तथा उत्तर में फारस, अफगानिस्तान, चीन, तिब्बत आदि देश हैं। भारत की इन भौगोलिक परिस्थितियों ने इस देश के राजनीतिक और सांस्कृतिक जीवन पर गहरा प्रभाव डाला है।

भारत की भौगोलिक परिस्थितियाँ
(1) भारत एक महाद्वीप के समान
(2) भारत के विभिन्न प्रदेश
(3) उत्तरी व दक्षिणी भागों की पृथकता।

(3) उत्तरी व दक्षिणी भागों की पृथकता—हिमालय के उत्तरी-पश्चिमी भाग में कुछ ऐसे भी पर्वतीय भाग हैं जिनको पार करना अत्यन्त कठिन है। हिमालय के दक्षिण में सिन्धु, गंगा; ब्रह्मपुत्र नदियों से सिंचित उपजाऊ मैदान है। इस मैदान के दक्षिण-पश्चिम में राजस्थान का रेगिस्तान है, दक्षिण में विन्ध्य पर्वतमाला, सतपुड़ा पर्वत, नर्मदा, ताप्ती नदियाँ हैं तथा घने वन हैं जिन्होंने उत्तर भारत को दक्षिण से अलग कर दिया है।

भारतीय इतिहास पर भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव

I. हिमालय के पर्वतीय भाग का प्रभाव—भारतीय जीवन के सांस्कृतिक एवं राजनीतिक पक्ष पर इस भाग का निम्नलिखित प्रभाव पड़ा है—

(1) कृषि की प्रधानता—भारतवर्ष के उत्तर में हिमालय पर्वत की श्रेणियाँ स्थित हैं जिनमें से अनेक नदियाँ निकलती हैं। इन नदियों के कारण ही उत्तरी क्षेत्र उपजाऊ तथा वर्षभर हरा-भरा रहता है। इसी कारण भारत एक कृषि-प्रधान देश है।

(2) वर्षा की अधिकता—भारत के उत्तर में हिमालय की विशाल शृंखलाएँ होने के कारण उत्तरी भारत में वर्षा की व्यापकता रहती है जिसके कारण यह क्षेत्र उपजाऊ है और यहाँ के निवासियों का जीवन सरल है।

(3) आध्यात्मिक विकास—भारत में आध्यात्मिक विकास का मूल कारण भी हिमालय को ही माना जा सकता है, क्योंकि इस पर्वत श्रेणी में ऐसे-ऐसे प्राकृतिक-रमणीय स्थान हैं जो कि संन्यासियों, मनीषियों व आध्यात्म-प्रेमियों को आकर्षित करते रहे हैं। इन कन्दराओं ने अनेक महान आत्माओं को एकान्त में चिन्तन का सुअवसर प्रदान करके भारत को विश्व में उच्च स्थान दिलाया है। भारत की सांस्कृतिक एकता में हिमालय ने निश्चय ही महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

(4) खनिज पदार्थों की अधिकता—हिमालय की पर्वत श्रेणियों में विशाल वन हैं जिनमें जड़ी-बूटियों के विशाल भण्डार हैं। इनके साथ-साथ इमारती लकड़ी, ईंधन व अनेक खनिज पदार्थ प्रचुर मात्रा में मिलते हैं। भारत के अनेक उद्योग हिमालय से प्राप्त इन खनिजों पर निर्भर हैं।

(5) सीमान्त प्रदेशों की असुरक्षा—हिमालय की उत्तरी-पश्चिमी श्रेणियों में कुछ ऐसे दर्रे भी हैं जिन्हें सरलता से पार किया जा सकता है। यही कारण था कि प्राचीन काल से शक, यूनानी, हूण, ईरानी, तुर्क, पठान, मुगल आदि विदेशी आक्रमणी इन्हीं रास्तों से आए थे जिनके कारण भारत को अनेक विकट समस्याओं का सामना करना पड़ा। सल्तनतयुगीन शासकों के लिए तो इस क्षेत्र से निरन्तर होने वाले मंगोल आक्रमण एक बहुत बड़ी समस्या बने रहे जिनके निराकरण के लिए उन्हें बहुत प्रयास करने पड़े।

(6) पर्वतीय प्रदेशों की संकीर्णता—हिमालय के पर्वतीय प्रदेशों पर भारत के अन्य भागों की सभ्यता एवं संस्कृति का प्रभाव विशेष नहीं पड़ा, जिसके कारण इन प्रदेशों के निवासियों का सम्पूर्ण देश के जीवन से कभी भी गहरा सम्बन्ध नहीं जुड़ सका। अतः इस क्षेत्र के निवासियों पर ऐतिहासिक घटनाओं तथा परिवर्तनों का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा।

II. सिन्धु-गंगा-ब्रह्मपुत्र के मैदान का प्रभाव—भारतीय इतिहास में सिन्धु, गंगा और ब्रह्मपुत्र तथा इसकी सहायक नदियों से बना उत्तर भारत का विशाल मैदान राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिकोण से महत्त्वपूर्ण है। इस महत्त्व को निम्न प्रकार समझा जा सकता है—

(1) व्यावसायिक केन्द्रों की स्थापना—इस मैदान में स्थित नदियों में वर्षभर पानी की प्रचुर मात्रा रहती थी। इसीलिए प्राचीन समय में जब यातायात के साधनों का अभाव था तब व्यापार इन्हीं जलमार्गों से किया जाता था। यही कारण है कि आधुनिक काल में सभ्यता का विकास भी इन्हीं नदियों की घाटी में हुआ तथा बड़े-बड़े नगरों व धार्मिक केन्द्रों की स्थापना भी इन्हीं नदियों के तटों पर ही सम्भव हुई।

भारतीय इतिहास पर भौगोलिक परिस्थितियों का प्रभाव

I. हिमालय के पर्वतीय भाग का प्रभाव :
(1) कृषि की प्रधानता
(2) वर्षा की अधिकता
(3) आध्यात्मिक विकास
(4) खनिज पदार्थों की अधिकता
(5) सीमान्त प्रदेशों की असुरक्षा
(6) पर्वतीय प्रदेशों की संकीर्णता

II. सिन्धु-गंगा-ब्रह्मपुत्र के मैदान का प्रभाव :
(1) व्यावसायिक केन्द्रों की स्थापना
(2) जाति-प्रथा या वर्गों के जन्म का आधार
(3) विभिन्न कलाओं को प्रोत्साहन
(4) खान-पान की शुद्धता
(5) आध्यात्मिक उन्नति
(6) साम्राज्य विस्तार में सरलता
(7) पश्चिमी प्रदेशों में वीरता

III. दक्षिणी पठार का प्रभाव :
(1) हिन्दू संस्कृति की रक्षा
(2) वीरों की जन्म-स्थली
(3) मूल्यवान खनिजों की प्राप्ति
(4) दक्षिण विजय में कठिनाई

IV. राजस्थान के रेगिस्तान का प्रभाव
V. विभिन्न प्रकार की जलवायु का प्रभाव
VI. वाहरी प्रभाव
VII. समुद्र तट का प्रभाव।

(2) जाति-प्रथा या वर्गों के जन्म का आधार—जाति-प्रथा की उत्पत्ति का जन्म-स्थल भी यही मैदान रहा है। इसका मूल कारण यह था कि सभी व्यक्तियों को उत्पादन कार्य में हाथ बँटाने की कोई आवश्यकता नहीं थी। अतः समाज में ऐसे दो वर्गों—ब्राह्मण व क्षत्रिय का जन्म हुआ। इन वर्गों ने अपनी तन-मन की शक्ति सैनिक एवं बौद्धिक कार्यों में लगाई किन्तु बाद में ये वर्ग अनेक शाखाओं में बँट गए।

(3) विभिन्न कलाओं को प्रोत्साहन—इस मैदान की प्रमुख विशेषता यह रही है कि यहाँ पर थोड़े-से ही परिश्रम से जीवन-निर्वाह करना सरल है। इसी कारण से यहाँ के व्यक्ति शान्त प्रकृति के होते हैं तथा अपना काफी समय दार्शनिक चिन्तन, विभिन्न कलाओं के विकास एवं सामाजिक कार्यों में लगाते हैं।

(4) खान-पान की शुद्धता—इस मैदान में खान-पान की शुद्धता पर अधिक ध्यान दिया जाता है।

(5) आध्यात्मिक उन्नति—इतिहास इस बात का साक्षी है कि जितने भी धार्मिक एवं सामाजिक आन्दोलन भारत में आरम्भ हुए उन सबका श्रीगणेश इसी मैदान से हुआ। वास्तव में सभी धर्मशास्त्रों की रचना का जन्म-स्थल भी यही मैदान रहा है। यह क्षेत्र विभिन्न आध्यात्मिक धाराओं की संगमस्थली रहा है।

(6) साम्राज्य विस्तार में सरलता—भारत में बड़े-बड़े साम्राज्यों का उत्थान व पतन इसी मैदानी क्षेत्र में हुआ। इसी के साथ ही अनेक महत्त्वपूर्ण युद्ध भी इसी मैदान में लड़े गए। अंतः साम्राज्य विस्तार के क्षेत्र में यह मैदान सदैव से ही उपयोगी रहा है।

(7) पश्चिमी प्रदेशों में वीरता—इस मैदान के पश्चिमी भाग अर्थात् पंजाब के निवासी अत्यन्त अध्यवसायी, वीर, साहसी व परिश्रमी होते हैं। इसी कारण उत्तर-पश्चिमी मार्गों से जितने भी आक्रमणकारी भारत आए उन्हें पंजाबवासियों से कड़ा संघर्ष करना पड़ा।

III. दक्षिणी पठार का प्रभाव—भारत में स्थित सतपुड़ा एवं विन्ध्याचल पर्वतों के दक्षिण में दक्षिण का पठार स्थित है। यह पठार पथरीला व कृषि के अयोग्य है तथा उत्तरी भाग से पूर्णतया पृथक् है। दक्षिण के इस पठार की प्राकृतिक स्थिति का सांस्कृतिक जीवन पर निम्न प्रकार प्रभाव पड़ा है—

(1) हिन्दू संस्कृति की रक्षा—दक्षिण भारत सदैव से ही विदेशी आक्रमणों से सुरक्षित रहा है, जिसका परिणाम यह रहा कि दक्षिण भारत में ही हिन्दू संस्कृति सुरक्षित रह सकी। शक, हूण आदि दक्षिण तक नहीं पहुँच सके। अतः दक्षिण भारत में भारतीय संस्कृति व सभ्यता की जो सुरक्षा होती रही उसी ने अवसर पाकर उत्तरी भारत पर पुनः हिन्दू संस्कृति का प्रभाव जमा दिया।

(2) वीरों की जन्म-स्थली—दक्षिण पठार अनुपजाऊ है, जिसके कारण यहाँ के निवासियों को आजीविका अर्जित करने के लिए कठोर परिश्रम करना पड़ता है। अतः यहाँ के लोग अध्यवसायी व वीर हैं जिसके कारण उन्होंने सदैव ही उत्तर से आने वाले आक्रमणकारियों का डटकर मुकाबला किया। यहाँ पर विशेष प्रकार की छापामार युद्ध-नीति का जन्म हुआ, जिसके फलस्वरूप यहाँ के निवासियों ने उत्तर के सम्राटों के सम्मुख कभी घुटने नहीं टेके।

(3) मूल्यवान खनिजों की प्राप्ति—इस प्रदेश में कपास अधिक मात्रा में पैदा होता है जिसके कारण यहाँ कपड़ा उद्योग अधिक विकसित हो सका है। प्राचीन काल से ही भारत की सूंती कपड़े की अधिकांश मिलें इसी क्षेत्र में स्थित हैं। मूल्यवान खनिज पदार्थों की भी इसी प्रदेश में अधिकता होने से अनेक उद्योगों को प्रोत्साहन मिला है।

(4) दक्षिण विजय में कठिनाई—दक्षिण में सतपुड़ा व विन्ध्याचल की पहाड़ियों के कारण प्राचीनकाल से मध्यकाल तक कोई भी उत्तर भारत का सम्राट इस प्रदेश पर विजय नहीं प्राप्त कर सका और यदि किसी सम्राट ने इस ओर प्रयत्न भी किया तो वह अपनी विजय को चिरस्थायी नहीं रख सका। दिग्विजयी सम्राट समुद्रगुप्त ने भी दक्षिण के 12 राजाओं को परास्त करके उन्हें नतमस्तक किया। उनसे अपनी अधीनता स्वीकार कराई, अतुल धनराशि प्राप्त की, परन्तु उनके राज्यों को अपने साम्राज्य में नहीं मिलाया। इसी प्रकार अलाउद्दीन खिलजी ने भी दक्षिण के चारों राज्यों को बार-बार परास्त करके उनसे अतुलनीय धन-सम्पदा तो प्राप्त की लेकिन उनके राज्यों पर अधिकार करने की इच्छा स्वप्न में भी नहीं की।

IV. राजस्थान के रेगिस्तान का प्रभाव—कुछ समय पूर्व तक राजस्थान का प्रदेश अनुपजाऊ तथा रेतीला था। पानी का पूर्णतया अभाव था। इस कारण यहाँ के लोगों में शूरवीरता और आत्म-सम्मान की भावना पनपी। इतिहास इस बात का साक्षी है कि इस प्रदेश पर दिल्ली के अनेक महान सम्राटों ने समय-समय पर आक्रमण किया किन्तु कोई भी सम्राट इस प्रदेश के निवासियों के आत्मसम्मान को कुचल नहीं सका।

V. विभिन्न प्रकार की जलवायु का प्रभाव—भारत का क्षेत्रफल लम्बाई में 3,200 किलोमीटर के लगभग लद्दाख से कन्याकुमारी तक फैला हुआ है। इस विशाल भू-भाग में भिन्न-भिन्न प्रकार की जलवायु व वनस्पति पाई जाती है तथा भिन्न-भिन्न भागों में रहने वाले निवासियों का खान-पान, रहन-सहन, वेश-भूषा एवं आचार-विचार आदि में विभिन्नता के दर्शन होते हैं। इस विभिन्नता के कारण ही भारत में राजनीतिक एकता का सदैव अभाव रहा है। अतः यहाँ की जनता के मन में राज्य व शासक के प्रति कोई विशेष प्रेम भी उत्पन्न न हो सका।

VI. बाहरी प्रभाव—भारत के उत्तर-पश्चिम का भाग खेती की दृष्टि से अनुपयोगी रहा है जिसके कारण यहाँ पर निवास करने वाले व्यक्ति सदैव से लड़ाकू प्रवृत्ति के रहे हैं। इन प्रदेशों से भारत पर सदैव आक्रमण होते रहे हैं जिसके कारण भारत विभिन्न जातियों का एक अजायबघर बन गया। भारत के उत्तर में तिब्बत व चीन हैं। प्राचीनकाल में इन देशों के लोगों का भारत में आगमन हिमालय के दुर्गम रास्तों के कारण कठिन था।

VII. समुद्र तट का प्रभाव—प्राचीनकाल से ही समुद्र तट पर रहने वाले व्यक्तियों ने नाविक कला में काफी उन्नति कर ली थी। अतः व्यापार के लिए दूसरे देशों के लिए इनका जाना भी शुरू हो गया था। इसीलिए मलाया, स्याम, वर्मा, सुमात्रा, जावा, लंका आदि देशों से भारत का व्यापार उन्नत था। इस व्यापार के साथ ही इन देशों में भारतीय संस्कृति का काफी प्रसार हुआ।

उपर्युक्त विवरण से इस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सकता है कि किसी भी देश की भौगोलिक स्थितियाँ उस देश की सांस्कृतिक व राजनीतिक जीवन पर गहरा प्रभाव डालती हैं। यह प्रभाव सकारात्मक के साथ-साथ नकारात्मक भी होता है। यह बात भारत के सन्दर्भ में पूर्णतया सत्य है। यथा—भारतवर्ष की जलवायु की अनिश्चितता ने भारतीयों के मन में ईश्वर में प्रति निर्भर रहने की भावना भर दी जिससे वे कर्मठ और प्रयत्नशील न रहकर भाग्यवादी और कुछ सीमा तक अन्धविश्वासी भी बन गए। दूसरी ओर उत्तर में हिमालय ने जहाँ भारत को सुरक्षा प्रदान की वहाँ विश्व में होने वाली घटनाओं से अनभिज्ञ एवं अपरिचित भी रखा।

3 भारतीय एकता के आधारभूत सिद्धान्त

[भारत की विभिन्नता में एकता के आधार (सिद्धान्त), वर्तमान में राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता, भारत में राष्ट्रीय एकता के लिए किए गए प्रयत्न]

"वंश, वर्ण, जाति, धर्म, भाषा, रीति-रिवाज, वेशभूषा एवं अन्य विभिन्नताओं के बावजूद भी भारतीय इतिहास में एक अखण्ड सार्वभौमिक एकता निरन्तर प्रवाहित होती रही है।" —हरबर्ट रिजले

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—"भारतवर्ष में वंश, वर्ण, भाषा, वेशभूषा व रीति-रिवाज सम्बन्धी अनेक विभिन्नताओं में भी एक अखण्ड आधारभूत एकता है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए। *(Imp.)*

अथवा "प्राचीन काल से ही भारत में 'अनेकता में एकता' पाई जाती है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए। *(1991)*

अथवा भारत की मौलिक एकता का विवेचन कीजिए। *(1991)*

अथवा "अनेकता में एकता ही भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता है।" समीक्षा कीजिए। *(1992, 94)*

अथवा "भारत की मौलिक एकता इसके सांस्कृतिक समन्वय में है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए। *(1992)*

अथवा भारत की मौलिक एकता के स्वरूप का विश्लेषण कीजिए। *(1992)*

अथवा भारतीय सांस्कृतिक एकता के विभिन्न पहलुओं की विवेचना कीजिए। *(1993)*

अथवा "मौलिक एकता भारतीय संस्कृति का मूल तत्त्व है।" इस कथन की विवेचना कीजिए। *(1993)*

अथवा "अनेकता में एकता ही भारतीय संस्कृति का मूल तत्त्व है।" विवेचना कीजिए। *(1993)*

अथवा "भारत की विभिन्नता में एकता निहित है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए। *(1995, 96)*

अथवा "अनेकता में एकता भारतीय संस्कृति की आत्मा है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए। *(1996)*

अथवा प्राचीन भारत की मौलिक एकता को स्पष्ट करने वाले साधनों का विवरण दीजिए। *(1996)*

अथवा "निःसन्देह भारत में एक गहरी मौलिक एकता विद्यमान है।" समीक्षा कीजिए। *(1991)*

अथवा "भारत की विभिन्नता में ही भारत की मौलिक एकता है।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं? *(1998)*

उत्तर—

भारत की विभिन्नता में एकता

भारत क्षेत्रफल एवं जनसंख्या की दृष्टि से एक विशाल देश है। इसे एक उपमहाद्वीप के रूप में भी स्वीकार किया जा सकता है। यहाँ विभिन्न प्रकार की भूमि, जलवायु, भिन्न-भिन्न जातियाँ, विभिन्न

रीति-रिवाज, भिन्न-भिन्न भाषाएँ तथा अनेक धर्म पाए जाते हैं। इस प्रकार एक ओर तो यह अनेक प्रकार की विभिन्नताओं वाला देश है; दूसरी ओर इसमें एक आधारभूत मौलिक एकता भी निहित है। पं० जवाहरलाल नेहरू के अनुसार, "जब से सभ्यता का सूर्य उदित हुआ है तभी से भारत के मस्तिष्क पर एकता की भावना ने अधिकार कर लिया है। यह मौलिक एकता किसी प्रकार बाहर से थोपी गई वस्तु नहीं है, बल्कि यह आन्तरिक एकता है और यह भारत की आत्मा में समाप्त हुई है।"

वस्तुतः डॉ० वी० ए० स्मिथ का यह कथन कि भारत की विभिन्नताओं में एकता निहित है, पूर्णतया सत्य है। इस कथन की सत्यता को निम्न आधारों पर स्पष्ट किया जा सकता है—

(1) भौगोलिक विभिन्नता में एकता—भारत की भौगोलिक बनावट में अनेक विभिन्नताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। एक ओर हिमालय के ऊँचे-ऊँचे पर्वत शिखर हैं, तो दूसरी ओर समतल मैदान और दक्षिण का पठारी भाग भी है। देश के इन विभिन्न भागों में भिन्न-भिन्न प्रकार की जलवायु पाई जाती है। यदि मेघालय में चेरापूँजी नामक स्थान पर 1000 सेमी तक वर्षा होती है, तो दूसरी ओर राजस्थान की भूमि प्रायः वर्षपर्यन्त सूखी पड़ी रहती है। इसी प्रकार मरुस्थली प्रदेशों में उपज नाममात्र की होती है, जबकि सिन्धु और गंगा के मैदानी भागों में बहुत अच्छी कृषि होती है। इन विभिन्नताओं के होते हुए भी भारत में एक मौलिक और आधारभूत भौगोलिक एकता है, क्योंकि सम्पूर्ण देश एक ही भौगोलिक इकाई है। डॉ० राजबली पाण्डेय ने इस सम्बन्ध में लिखा है कि, "प्रकृति ने भारत की भौगोलिक इकाई को इतना सुदृढ़ बनाया है कि यह देश के आन्तरिक विभाजनों को अच्छी तरह ढक लेती है।"

भारत की विभिन्नता में एकता

(1) भौगोलिक विभिन्नता में एकता.
(2) राजनीतिक विभिन्नता में एकता
(3) आर्थिक विभिन्नता में एकता
(4) धार्मिक विभिम्नता में एकता
(5) सांस्कृतिक विभिन्नता में एकता।

(2) राजनीतिक विभिन्नता में एकता—भारत में प्रारम्भ से ही राजनीतिक विभिन्नता विद्यमान रही है। मेगस्थनीज के अनुसार, चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में भारत 118 राज्यों में विभक्त था। सम्राट अशोक के समय में भी दक्षिण के राज्य पूर्णतया स्वतन्त्र थे। हर्ष की मृत्यु के पश्चात् उत्तरी भारत की राजनीतिक एकता पुनः समाप्द हो गई थी। मुस्लिम सुल्तानों के समय में भी दक्षिण के राज्य दिल्ली सल्तनत से पृथक् रहे। इसी प्रकार मुगलकाल में अकबर और औरंगजेब के अतिरिक्त अन्य मुगल सम्राट भी सम्पूर्ण भारत पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में विफल रहे। ब्रिटिश काल की प्रथम शताब्दी तक भी भारत में राजनीतिक विभाजन की यही स्थिति बनी रही।

परन्तु यथार्थ में इन राजनीतिक विभिन्नताओं के होते हुए भी भारत में राजनीतिक एकता विद्यमान रही है। प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक सभी शासकों का उद्देश्य भारत को राजनीतिक एकता के सूत्र में बाँधना रहा है। प्राचीन काल में सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य और समुद्रगुप्त आदि सम्राटों ने चक्रवर्ती सम्राट बनने का प्रयत्न करके समस्त शासकों को अपने अधीन रखकर देश में राजनीतिक एकता स्थापित की। इसी प्रकार, मध्यकाल में अलाउद्दीन खिलजी और अकबर जैसे शासकों ने सम्पूर्ण भारत को एकता के सूत्र में बाँधने का सफल प्रयास किया और इसके पश्चात् अंग्रेजों ने भारत को एक इकाई के रूप में संगठित करने में पूर्ण सफलता प्राप्त की।

(3) आर्थिक विभिन्नता में एकता—भारत में अनेक प्रकार की आर्थिक विषमताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। यहाँ कुछ व्यक्ति अत्यधिक धनी हैं, तो कुछ व्यक्ति अत्यन्त निर्धन हैं। व्यवसाय, व्यापार, वाणिज्य, उद्योग आदि की दृष्टि से भी यहाँ अनेक प्रकार की विविधताएँ दृष्टिगोचर होती हैं। परन्तु फिर भी सूक्ष्म दृष्टि से अवलोकन करने पर यह विदित होता है कि इस आर्थिक विभिन्नता में भी एकता निहित है। भारत एक कृषि प्रधान देश है। यहाँ की 70% जनता कृषि करती है। अतः अधिकांश जनता की आर्थिक समस्याएँ एक समान हैं और उनके आर्थिक जीवन स्तर में भी समानता मिलती है।

(4) धार्मिक विभिन्नता में एकता—भारत विभिन्न धर्मों का संग्रहालय कहा जाता है। भारत में हिन्दू, जैन, इस्लाम, पारसी, सिक्ख आदि धर्म विद्यमान हैं। प्रत्येक धर्म की अनेक शाखाएँ और सम्प्रदाय

भी हैं, लेकिन इसके उपरान्त भी भारत में धार्मिक एवं मौलिक एकता विद्यमान रही है। इसके प्रमुख कारण हैं—

(i) समस्त धर्मों के मूल सिद्धान्त लगभग एक समान हैं। देश के समस्त धर्म पवित्र आचरण पर विशेष बल देते हैं।

(ii) विभिन्न धर्मों की प्रचलित प्रथाओं में भी काफी समानता पाई जाती है।

(iii) समस्त धर्मों में आन्तरिक समन्वय की भावना भी पाई जाती है।

(iv) समस्त धर्म मानव-कल्याण को महत्त्व देते हुए मनुष्यों को समान समझने का उपदेश भी देते हैं।

(5) सांस्कृतिक विभिन्नता में एकता—भारत में अनेक सांस्कृतिक विभिन्नताएँ भी दिखाई देती हैं। यहाँ अनेक भाषाएँ—हिन्दी, उर्दू, बंगाली, पंजाबी, तेलगू, मराठी आदि बोली जाती हैं। इन समस्त भाषाओं की लिपियाँ भी भिन्न-भिन्न हैं। भारत में विभिन्न कालों में भिन्न-भिन्न प्रकार की कलाएँ भी विकसित होती रही हैं, जिनमें बौद्ध कला, राजपूत कला, गान्धार कला, मथुरा कला तथा मुगल कला आदि प्रमुख हैं। यही नहीं, भारतीयों की वेशभूषा तथा खान-पान में भी बहुत अधिक भिन्नता है। यहाँ विभिन्न जातियों के व्यक्ति रहते हैं, जिनके सामाजिक रीति-रिवाज एवं परम्पराएँ भी भिन्न-भिन्न हैं।

इन विभिन्नताओं के होते हुए भी भारत में एक अटूट सांस्कृतिक एकता पाई जाती है, क्योंकि—

(i) इस देश की सभी भाषाएँ संस्कृत, द्रविड़ आदि प्राचीन भाषाओं से ही बनी हैं।

(ii) भारत में उदित हुई सभी कलाओं पर आध्यात्मिकता की छाप है।

(iii) यहाँ की वेशभूषा और खान-पान आदि में भी एक विचित्र प्रकार की एकता दृष्टिगोचर होती है।

(iv) समाज का निर्माण इतने उच्च आदर्शों को लेकर हुआ है कि समाज में आपसी सम्बन्ध परिवार के सदस्यों की भाँति सहयोग व स्नेह की भावना पर आधारित हैं। भारतीय समाज की यह विविधता में एकता विश्व का एक अनोखा उदाहरण है।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि भारत की विभिन्नताओं में एक आधारभूत मौलिक एकता निहित है जो अनेक प्रकार की विभिन्नताओं के होते हुए भी कभी समाप्त नहीं हो सकी है। प्राचीन काल से ही भारत में इस प्रकार की 'अनेकता में एकता' पाई जाती है। इसलिए यह कहना कि **"भारतवर्ष में वंश, वर्ण, भाषा, वेशभूषा व रीति-रिवाज सम्बन्धी अनेक विभिन्नताओं में भी एक अखण्ड आधारभूत एकता है।"** अथवा **"भारत इन्द्रधनुष की भाँति अपने भीतर कई रंगों को समेटे हुए एक संस्कृति वाला राष्ट्र है।"** पूर्णतया उपयुक्त है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि, **"भारत की यह मौलिक एकता इसके सांस्कृतिक समन्वय में है।"** वस्तुतः **"अनेकता में यह एकता ही भारतीय संस्कृति की प्रमुख विशेषता है।"** भारतीय संस्कृति की इस प्रमुख विशेषता के महत्त्व को ध्यान में रखते हुए ही एक विद्वान् ने कहा है कि, **"अनेकता में एकता भारतीय संस्कृति की आत्मा है।"** इसमें सन्देह नहीं कि जिस प्रकार किसी व्यक्ति का मूल तत्त्व उसमें निहित आत्मा है, उसी प्रकार राष्ट्रीय एकता के अभाव में किसी भी राष्ट्र का अस्तित्व सम्भव नहीं है।

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—भारतीय एकता के आधारभूत सिद्धान्त क्या हैं?

उत्तर—भारतीय एकता के आधारभूत सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

(i) राजनीतिक एकता—सम्पूर्ण देश राजनीतिक दृष्टि से एक अखण्ड इकाई है तथा देश के सभी प्रान्त या राज्य एक ही सम्प्रभुता को स्वीकार करते हैं।

(ii) सामाजिक एकता—समाज में किसी वर्ग विशेष या जाति विशेष को महत्त्व प्राप्त नहीं है। सभी जातियों व वर्गों के व्यक्ति एक समान हैं।

(iii) धार्मिक एकता—देश के सभी धर्मों को समान महत्त्व प्रदान किया गया है। भारतीय संविधान में किसी धर्म विशेष को अनावश्यक महत्त्व नहीं दिया गया है।

(iv) सांस्कृतिक एकता—संविधान में भाषा, लिंग, सम्प्रदाय आदि के आधार पर लोगों के साथ किसी प्रकार का भेदभाव नहीं किया गया है। राष्ट्रभाषा हिन्दी के साथ ही सभी प्रान्तीय भाषाओं को भी समान रूप से महत्त्व दिया गया है।

प्रश्न 2—आधुनिक समय में भारत में राष्ट्रीय एकता की क्या आवश्यकता है?

उत्तर—आधुनिक समय में भारत में अनेक विघटनकारी शक्तियाँ देश की राष्ट्रीय एकता को खण्डित करने में निरन्तर संलग्न हैं। इन शक्तियों में जातिवाद, सम्प्रदायवाद, क्षेत्रवाद, भाषावाद, आतंकवाद आदि प्रमुख हैं। देश के विकास के लिए इन राष्ट्रद्रोही शक्तियों को नष्ट करना अत्यन्त आवश्यक है। इन विघटनकारी शक्तियों को नष्ट करके ही सम्पूर्ण भारत की अखण्डता को सुरक्षित रखा जा सकता है। विघटनकारी, अराजकतावादी तथा असामाजिक तत्त्वों से छुटकारा पाने के लिए राष्ट्रीय एकता की महती आवश्यकता है।

प्रश्न 3—भारत में राष्ट्रीय एकता के लिए किए गए प्रयत्नों की विवेचना कीजिए।

उत्तर—भारत की राष्ट्रीय एकता स्थापित करने के लिए प्राचीन काल से अब तक अनेक प्रयत्न किए गए हैं। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(1) मौर्य वंश के संस्थापक सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य ने सर्वप्रथम भारत में राजनीतिक एकता की भावना विकसित की और तभी से भारतीयों में राष्ट्रीय एकता की भावना का उदय हुआ।

(2) मुगल सम्राट अकबर ने हिन्दू-मुस्लिम एकता की स्थापना करके एक राष्ट्रीय शासक के रूप में भारतीय इतिहास में गौरवशाली स्थान प्राप्त किया है।

(3) कबीर, गुरु नानक और सूफी-सन्तों ने राष्ट्रीय एकता की दिशा में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

(4) राष्ट्रीय एकता की स्थापना के प्रयत्नों से सम्बन्धित एक अपूर्व उदाहरण 1857 ई० के प्रथम स्वाधीनता संग्राम से भी मिलता है।

(5) राजा राममोहन राय, दयानन्द सरस्वती, स्वामी विवेकानन्द, अरविन्द घोष, बंकिमचंन्द्र चटर्जी आदि महापुरुषों ने राष्ट्रीय एकता की स्थापना के लिए अनेक सराहनीय प्रयत्न किए।

(6) राष्ट्रीय एकता की स्थापना की दृष्टि से राष्ट्रपिता महात्मा गांधी का योगदान चिरस्मरणीय है।

(7) स्वतन्त्र भारत के संविधान में भी राष्ट्रीय एकता की स्थापना के लिए एक संविधान, एक राष्ट्रीय झण्डा और एक राष्ट्रीय चिह्न सुनिश्चित किए गए हैं।

ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों एवं व्यक्तियों पर आधारित प्रश्न

प्रश्न 1—निम्नांकित तिथियों के ऐतिहासिक महत्त्व को स्पष्ट कीजिए—

उत्तर—(1) 362 ई०—इस तिथि को गुप्त वंश के सम्राट समुद्रगुप्त ने अश्वमेध यज्ञ करके अपने को सम्पूर्ण भारत का शासक घोषित किया था।

(2) 1469 ई० *(1994)*—इस तिथि को राष्ट्रीय एकता के प्रबल समर्थक और सिक्ख धर्म के संस्थापक गुरु नानक का जन्म हुआ था।

(3) 1579 ई०—इस तिथि को मुगल सम्राट अकबर ने मुस्लिम मुल्लाओं की धार्मिक कट्टरता को समाप्त करने हेतु एक घोषणा-पत्र जारी किया था और 'इमाम-ए-आदिल' की उपाधि ग्रहण की थी।

(4) 1857 ई० *(1992)*—इस तिथि को हिन्दू और मुसलमानों ने एकजुट होकर अंग्रेजों के विरुद्ध भारत की स्वाधीनता के लिए पहला स्वतन्त्रता संग्राम लड़ा था।

(5) 1950 ई०—इस तिथि को स्वतन्त्र भारत का संविधान देशभर में लागू किया गया था।

प्रश्न 2—निम्नांकित ऐतिहासिक स्थलों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) बैरकपुर—यह बंगाल राज्य में स्थित छावनी का प्रमुख केन्द्र है। ब्रिटिश काल में इसी छावनी के देशभक्त सैनिक मंगल पाण्डे ने चर्बी के कारतूस के विरोध में तीन अंग्रेज अधिकारियों को गोली से उड़ा दिया था।

(2) लाहौर *(1992)*—यह नगर वर्तमान समय में पाकिस्तान में स्थित है। भारत के इतिहास में इसका अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। लाहौर नगर रावी नदी के तट पर बसा हुआ है। दिसम्बर, 1929 ई० में यहीं पर राष्ट्रीय कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध पूर्ण स्वराज्य का प्रस्ताव पारित किया था।

प्रश्न 3—निम्नांकित ऐतिहासिक व्यक्तियों का संक्षिप्त परिचय दीजिए—

उत्तर—(1) कबीर *(1992, 93, 94, 96)*—कबीर एक महान् समाज-सुधारक और भक्ति आन्दोलन का सूत्रपात करने वाले प्रमुख सन्त थे। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता का प्रबल समर्थन करके राष्ट्रीय एकता का मार्ग प्रशस्त किया।

(2) बंकिमचन्द्र चटर्जी—बंकिमचन्द्र चटर्जी एक बंगला साहित्यकार थे। इन्होंने राष्ट्रीय गीत की रचना की थी।

(3) डॉ० भीमराव अम्बेडकर *(1999)*—अम्बेडकर एक स्वतन्त्रता सेनानी थे। वे स्वाधीनता के बाद संविधान-निर्मात्री सभा की प्रारूप समिति के अध्यक्ष नियुक्त हुए। उन्होंने देश के लिए एक धर्मनिरपेक्ष और समाजवादी समाज पर आधारित संविधान का निर्माण करने में उल्लेखनीय योगदान दिया। राष्ट्रीय एकता की स्थापना में भी उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा।

4 सिन्धु एवं आर्य सभ्यता

[सिन्धु घाटी की सभ्यता : सिन्धु सभ्यता के केन्द्र, काल एवं विस्तार, विशेषताएँ, सिन्धु सभ्यता और वैदिक सभ्यता की तुलना; आर्य अथवा वैदिक सभ्यता : आर्यों के मूल निवास के सन्दर्भ में विभिन्न सिद्धान्त, पूर्व वैदिक (ऋग्वैदिक) सभ्यता की विशेषताएँ, उत्तर वैदिककालीन सभ्यता की विशेषताएँ]

"सिन्धु सभ्यता का न तो सुमेरियन सभ्यता से निकट सम्बन्ध है और न उससे इसने कुछ ग्रहण ही किया है। अब तो इस मत की पुष्टि होती जा रही है कि सिन्धु घाटी की सभ्यता संसार की सर्वप्राचीन सभ्यता है।"

—डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी

"सिन्धु घाटी की सभ्यता मिस्र, मेसोपोटामिया आदि की सभ्यताओं के समान विकसित एवं प्राचीन थी तथा कुछ क्षेत्रों में तो उनसे भी अधिक विशिष्ट थी।"

— डॉ० मार्शल

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—सिन्धु घाटी सभ्यता के प्रमुख केन्द्र कौन-कौन-से थे? इस सभ्यता का काल व विस्तार बताइए। ***(V. Imp.)***

अथवा **सिन्धु घाटी सभ्यता कैसे प्रकाश में आई? इस सभ्यता के प्रमुख तत्त्वों की विवेचना कीजिए।** ***(1991)***

उत्तर—

सिन्धु घाटी की सभ्यता

सिन्धु घाटी की सभ्यता विश्व की प्राचीनतम सभ्यताओं में से एक है। सिन्धु नदी की घाटी में खुदाई से प्राप्त अवशेषों के आधार पर यह विदित होता है कि आज से हजारों वर्ष पूर्व हमारे देश में एक

ऐसी सभ्यता विकसित हो चुकी थी, जिसके सामने यूनान, रोम, मेसोपोटामिया तथा मिस्र आदि की सभ्यताएँ नगण्य थीं। डॉ० मार्शल (Dr. Marshall) के अनुसार, "यह सभ्यता मिस्र, मेसोपोटामिया आदि की सभ्यताओं के समान विकसित एवं प्राचीन थी तथा कुछ क्षेत्रों में तो उनसे भी अधिक विशिष्ट थी।"

सिन्धु सभ्यता के केन्द्र

सिन्धु घाटी से जब एक सभ्यता के चिन्ह प्राप्त होने लगे, तब पुरातत्त्व विभाग ने अनेक स्थानों पर खुदाई कराकर सिन्धु सभ्यता के असंख्य अवशेष प्राप्त किए। जिन स्थानों पर ये अवशेष प्राप्त हुए, उनमें से सिन्धु सभ्यता के कुछ प्रमुख केन्द्र इस प्रकार हैं—

(1) हड़प्पा—यह स्थान माण्टगोमरी जिले (वर्तमान पाकिस्तान) में स्थित है। इसकी खुदाई 1921 ई० में दयाराम साहनी तथा माधोराम वत्स ने कराई थी। इस स्थान से सिन्धु सभ्यता से सम्बन्धित पर्याप्त सामग्री प्राप्त हुई है।

सिन्धु सभ्यता के केन्द्र
(1) हड़प्पा
(2) मोहनजोदड़ो
(3) अन्य स्थान।

(2) मोहनजोदड़ो—यह स्थान वर्तमान पाकिस्तान के लरकाना जिले में स्थित है। पुरातत्व विभाग के अध्यक्ष सर जॉन मार्शल की अध्यक्षता में राखालदास बनर्जी ने 1922 ई० में इस स्थान पर खुदाई करवाई, जिसमें इस नगर की सात तहें प्राप्त हुई। इससे यह अनुमान लगया गया कि यह नगर सात बार उजड़ा और बसाया गया होगा। इतिहासकारों का अनुमान है कि इस नगर की सबसे ऊपरी सतह लगभग 2750 ई० पू० में और सबसे निचली सतह 3250 ई० पू० में बनी होगी।

(3) अन्य स्थान—मोहनजोदड़ो और हड़प्पा के अतिरिक्त बलूचिस्तान, सोत्काकोह, डाबरकोट, कोटबीजी, अलीमुरीद, चन्हुदड़ो, रोपड़, बाड़ा, संघोल, बणावली मीताथल, कालीबंगा, आलमगीरपुर, कौशाम्बी, रंगपुर, लोथल आदि स्थानों की खुदाई में भी सिन्धु सभ्यता से सम्बन्धित सामग्री पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हुई है।

सिन्धु सभ्यता का काल एवं विस्तार

सिंन्धु घाटी की सभ्यता के काल और विस्तार के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। कुछ विद्वानों का मत है कि सिन्धु सभ्यता भारत की ही नहीं, वरन् विश्व की प्राचीनतम सभ्यता है। डॉ० मार्शल के अनुसार, सिन्धु सभ्यता 3250–2750 ईसा पूर्व, प्राचीन सभ्यता है। अर्नेस्ट मैके इसे 2800–2500 ईसा पूर्व, माधोराम वत्स 3500–2700 ईसा पूर्व, राजबली पाण्डेय 4000 ईसा पूर्व, अलब्राइट 1750 ईसा पूर्व, फेयर सर्विस 2000–1500 ईसा पूर्व, धर्मपाल अग्रवाल 2300–1740 ईसा पूर्व तथा आल्विन 2150–1750 ईसा पूर्व पुरानी सभ्यता बताते हैं। इन सभी मतों का विश्लेषण करके ह्वीलर ने सिन्धु सभ्यता का काल 2500–1500 ईसा पूर्व निर्धारित किया। डॉ० संकालिया ने भी ह्वीलर के मत की पुष्टि की है। सिन्धु सभ्यता के काल पर विवाद न करते हुए डॉ० आर० के० मुखर्जी ने लिखा है, "सिन्धु घाटी की सभ्यता विश्व की प्राचीनतम सभ्यता है।" ("Indus Valley Civilization was earliest civilization in the world.")

सिन्धु सभ्यता के विस्तार के विषय में डॉ० दीक्षित ने लिखा है कि, "यह सभ्यता केवल एक-दो नगरों तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि यह राजपूताना, काठियावाड़, पंजाब तथा उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त तक विस्तृत थी।" प्रो० चाइल्ड के अनुसार, "सिन्धु सभ्यता का विस्तार प्राचीन मेसोपोटामिया, मिस्र एवं फारस की सभ्यताओं के क्षेत्रों से बहुत अधिक विस्तृत था।" उत्तर में मांडा (जम्मू-कश्मीर) से लेकर दक्षिण में दाइमाबाद (उत्तरी महाराष्ट्र) तथा पश्चिम में बलूचिस्तान से लेकर पूर्व में मेरठ (उत्तर प्रदेश) के आलमगीरपुर तक इस सभ्यता का विस्तार था। विश्व की कोई भी प्राचीन सभ्यता, इतने विस्तृत क्षेत्र में फैली हुई नहीं थी।

(नोट—सिन्धु सभ्यता के प्रमुख तत्त्वों के लिए प्रश्न संख्या 2 का उत्तर देखिए।)

प्रश्न 2—सिन्धु घाटी के निवासियों के सामाजिक और आर्थिक जीवन की प्रमुख विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए। *(1999)*

अथवा सिन्धु घाटी के लोगों के सामाजिक और धार्मिक जीवन के विषय में आप क्या जानते हैं ? *(1995)*

अथवा "सिन्धु घाटी सभ्यता एक विकसित नगरीय सभ्यता थी।" इस कथन का विवेचन कीजिए। *(1990, 92, 94)*

अथवा सिन्धु घाटी सभ्यता की नगर व्यवस्था एवं सामाजिक जीवन पर प्रकाश डालिए।

अथवा सिन्धु घाटी की सभ्यता के भवन निर्माण एवं नगर नियोजन का वर्णन कीजिए। *(1990)*

अथवा सिन्धु सभ्यता के धार्मिक स्वरूप का विवेचन कीजिए। *(1991, 92)*

अथवा सिन्धु घाटी की सभ्यता के लोगों की सामाजिक-आर्थिक दशा का उल्लेख कीजिए। *(1993)*

अथवा सैन्धव सभ्यता के धर्म और कला पर एक निबन्ध लिखिए। *(1993)*

अथवा सिन्धु घाटी की सभ्यता के समय की आर्थिक एवं धार्मिक दशा पर प्रकाश डालिए। *(1995)*

अथवा सिन्धु सभ्यता की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। *(1991, 95)*

अथवा सिन्धु घाटी सभ्यता के समय लोगों की सामाजिक एवं धार्मिक दशा का वर्णन कीजिए। *(1996)*

अथवा सैन्धव सभ्यता के धर्म का विवेचन कीजिए। *(1992)*

उत्तर—

सिन्धु सभ्यता की विशेषताएँ

सिन्धु घाटी के प्रदेशों की खुदाई में मिले अवशेषों व अन्य वस्तुओं के आधार पर यहाँ के लोगों की सभ्यता और संस्कृति की अनेक उल्लेखनीय विशेषताओं का ज्ञान होता है, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

सिन्धु सभ्यता की नगर योजना तथा वास्तुकला

(1) नगर और भवन-निर्माण—मोहनजोदड़ो और हड़प्पा आदि नगरों के अवशेषों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि इस सभ्यता के निर्माता नगर और भवन-निर्माण कला में बहुत कुशल थे। नगर एक सुनिश्चित योजना के अनुसार बसाए गए थे। नगर में बहुत-सी छोटी-बड़ी सड़कें बनी हुई थीं, जो एक-दूसरे को समकोण पर काटती थीं। सड़कें 9 फीट से लेकर 33 फीट तक चौड़ी थीं। सड़कों के दोनों किनारों पर सुन्दर भवन बने मिले हैं। नगर में अनेक छोटी-छोटी वीथियाँ थीं। भवनों में वायु, प्रकाश तथा स्वच्छता आदि का समुचित प्रबन्ध किया गया था।

सिन्धु सभ्यता की नगर योजना तथा वास्तुकला

(1) नगर और भवन-निर्माण
(2) सार्वजनिक भवन
(3) विशाल स्नानागार।

(2) सार्वजनिक भवन—सिन्धु घाटी की सभ्यता के भवनों को चार वर्गों में विभक्त किया जा सकता है—(i) नागरिकों के आवास भवन, (ii) सार्वजनिक भवन, (iii) सार्वजनिक स्नान कुण्ड तथा (iv) पूजागृह एवं मन्दिर। नागरिक भवनों में आवश्यक कमरे और बरामदे बने होते थे। मकान पक्की ईंटों के बने होते थे। सामान्यतया पक्की ईंटों की माप 38·57 सेमी से 29·84 × 13·33 सेमी से 15·87 × 6·98 सेमी तक होती थी। प्रत्येक मकान में एक स्नानागार, एक कुआँ, कूड़ा रखने के लिए कूड़ादान तथा पानी निकालने के लिए आवश्यक नालियाँ होती थीं।

हड़प्पा की खुदाई में एक विशाल हाल भी मिला है। इसका क्षेत्रफल 71 × 71 मीटर है। इसमें एक विशाल कमरा है, जिसकी छत 20 स्तम्भों पर टिकी हुई है, फर्श पर अनेक स्थानों पर बेंचें और चौकियाँ पड़ी हुई हैं। विद्वानों का अनुमान है कि वह पूजागृह रहा होगा। प्रसिद्ध विद्वान् मैके का विचार है कि इस भवन में बाजार लगता होगा।

(3) विशाल स्नानागार—मोहनजोदड़ो की खुदाई में एक विशाल स्नानागार के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं। यह बड़े चौकोर दालान में स्थित है। इसकी लम्बाई, चौड़ाई और गहराई क्रमशः 39 फीट, 33 फीट और 8 फीट है। इस महत्त्वपूर्ण विशाल स्नानागार के चारों ओर कमरे तथा बरामदे भी बने हुए हैं। इसमें प्रवेश के लिए सीढ़ियाँ भी बनी हुई हैं। इसमें पानी भरने और निकालने की समुचित व्यवस्था है। स्नानागार के निकट एक कुआँ और एक हम्माम भी बना है, जिसमें गर्म जल की व्यवस्था होती होगी। विद्वानों का अनुमान है कि धार्मिक उत्सवों के अवसर पर इस विशाल स्नानागार का उपयोग किया जाता होगा।

सामाजिक जीवन

(1) सामाजिक संगठन—सिन्धु सभ्यता के अवशेषों के आधार पर यह पता चलता है कि सिन्धु समाज वर्गों तथा वर्णों में विभाजित नहीं था, किन्तु इस सभ्यता में परिवार प्रथा अवश्य प्रचलित थी। विद्वानों का अनुमान है कि सिन्धु समाज व्यवसाय के आधार पर चार भागों में विभाजित था—

(i) **विद्वान्**—ज्योतिषी, वैद्य तथा पुरोहित आदि।

(ii) **प्रशासनिक अधिकारी**—योद्धा, राजकीय कर्मचारी आदि।

(iii) **व्यवसायी**—व्यापारी व उद्योगपति।

(iv) **श्रमजीवी**—मजदूर, किसान व मछुआरे आदि।

उत्खनन (खुदाई) से मिली मूर्तियाँ यह स्पष्ट करती हैं कि सिन्धु सभ्यता का समाज मातृ सत्तात्मक रहा होगा।

(2) भोजन—खुदाई से प्राप्त सामग्री के आधार पर यह पता चलता है कि सिन्धु घाटी के निवासियों का मुख्य भोजन गेहूँ और जौ था। खजूर का प्रयोग भी वहुत होता था। व्यक्ति दूध, दही, मछली, मांस तथा अण्डों का उपयोग करते थे। फलों और सब्जियों के अनेक चित्र भी मिले हैं। भोजन के उपकरणों में सिन्धुवासी घड़ों, कलशों, थाली, गिलास, चम्मच, कुल्हड़, चाकू, छुरी आदि का प्रयोग करते थे। मिट्टी के बने बर्तनों का बहुतायत से प्रयोग होता था, लेकिन खुदाई से सोने, चाँदी तथा ताँबे के वर्तनों के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं।

> **सामाजिक जीवन**
> (1) सामाजिक संगठन :
> (i) विद्वान्
> (ii) प्रशासनिक अधिकारी
> (iii) व्यवसायी
> (iv) श्रमजीवी
> (2) भोजन
> (3) वस्त्र
> (4) आभूषण
> (5) शृंगार
> (6) मनोरंजन के साधन
> (7) औषधियाँ
> (8) शव-विसर्जन।

(3) वस्त्र—प्राप्त अवशेषों में सूती और रेशमी कपड़ों के टुकड़ों से यह स्पष्ट होता है कि उस समय व्यक्ति सूती, रेशमी, ऊनी सभी प्रकार के वस्त्र धारण करते थे। यहाँ कताई, बुनाई के औजार, सुइयाँ, चर्खे, ताँवे के बटन आदि विशाल मात्रा में प्राप्त हुए हैं, जिससे यह स्पष्ट होता है कि सिन्धु घाटी सभ्यता के लोग बुने हुए वस्त्र पहनते थे। विद्वानों का अनुमान है कि उस समय स्त्री और पुरुषों की वेशभूषा लगभग समान थी; परन्तु स्त्रियाँ रंगीन, आकर्षक वस्त्रों का प्रयोग वहुतायत में करती थीं। स्त्रियाँ सिर पर ओढ़ने वाला एक विशेष वस्त्र भी धारण करती थीं और पुरुष कन्धों पर दुशाला डालते थे।

(4) आभूषण—सिन्धु घाटी के स्त्री और पुरुष दोनों को ही आभूषण पहनने का विशेष शौक था। दोनों ही हार, कंगन, बाजूबन्द और अंगूठियाँ धारण करते थे। स्त्रियाँ नथ, बाली तथा पायल भी धारण करती थीं। आभूषण सोने, चाँदी, हाथीदाँत तथा बहुमूल्य पत्थरों से निर्मित किए जाते थे। धनी लोग मूल्यवान आभूषण धारण करते थे तथा निर्धन व्यक्ति मिट्टी तथा हड्डियों से बने आभूषण धारण करते थे।

(5) शृंगार—सिन्धु घाटी के स्त्री और पुरुष दोनों ही केशों को विशेष रूप से सँवारते थे। स्त्रियाँ मुख पर एक विशेष लेप तथा होंठों पर लाली लगाती थीं। स्त्रियाँ और पुरुष-लम्बे-लम्बे केश भी रखते थे। स्त्रियाँ अनेक प्रकार की चोटियाँ गूँथा करती थीं तथा जूड़ा बनाकर केशों को फीते से बाँध दिया जाता था। खुदाई में प्राप्त हाथीदाँत की कंघी और दर्पण भी सिन्धुवासियों की शृंगारप्रियता के परिचायक हैं।

(6) मनोरंजन के साधन—उस समय आखेट, मछली पकड़ना तथा पक्षियों के युद्ध आदि मनोरंजन के प्रमुख साधन थे। उत्खनन में काँसे की एक नर्तकी की मूर्ति प्राप्त हुई है, जो उनके नृत्य-प्रेम की प्रतीक है। रथों की दौड़ और जुआ भी इनके मनोरंजन के साधन थे। खुदाई में बच्चों के खेलने वाले अनेक मिट्टी के खिलौने और शतरंज के मोहरे भी उपलब्ध हुए हैं।

(7) औषधियाँ—खुदाई से प्राप्त कुछ चूर्ण जैसी वस्तुओं के आधार पर यह सिद्ध होता है कि सिन्धु घाटी के लोग अनेक प्रकार की औषधियों का प्रयोग भी करते थे। हिरन के सींग और मछली की हड्डियाँ औषधि के रूप में प्रयुक्त की जाती थीं।

(8) शव-विसर्जन—सिन्धुवासी मृतकों की अन्तिम क्रिया तीन प्रकार से करते थे। अधिकांश लोग शव का दाह संस्कार कर उसकी हड्डियों को एक घड़े में बन्द करके जमीन में गाड़ देते थे। साथ ही हड़प्पा में शव दफनाने की विधि भी प्रचलित थी। इसके अतिरिक्त, कुछ व्यक्ति मृत देह को जंगलों में पशु-पक्षियों के सम्मुख फेंक देते थे।

आर्थिक जीवन

(1) कृषि—सिन्धु घाटी के निवासियों का प्रमुख व्यवसाय कृषि था। खुदाई में गेहूँ तथा जौ के अवशेष प्राप्त हुए हैं जिससे सिद्ध होता है कि ये गेहूँ और जौ की कृषि किया करते थे। फलों के चित्रों के आधार पर यह अनुमान लगाया गया है कि सिन्धु घाटी के निवासी नारियल, खजूर, अनार, आम, खरबूजा, तरबूज, नींबू आदि से परिचित थे।

(2) पशुपालन—सिन्धु निवासियों का दूसरा प्रमुख व्यवसाय पशुपालन था। ये लोग गाय, भैंस, ऊँट, हाथी तथा बैल पालते थे, परन्तु घोड़ों का ज्ञान उन्हें नहीं था। खुदाई से प्राप्त अनेक जंगली जानवरों के अस्थि-पंजर प्राप्त हुए हैं, जिससे सिद्ध होता है कि ये लोग इन पशुओं का शिकार करते थे। अनेक मुद्राओं पर चीता, भालू, बाघ, गैंडा, हिरन तथा खरगोश की आकृतियाँ भी अंकित मिली हैं।

आर्थिक जीवन

(1) कृषि
(2) पशुपालन
(3) वस्त्र उद्योग
(4) धातु उद्योग
(5) अन्य उद्योग
(6) कला-कौशल
(7) व्यापार।

(3) वस्त्र उद्योग—हड़प्पा से कताई-बुनाई के अनेक औजार प्राप्त हुए हैं, जिससे यह सिद्ध होता है कि ये लोग वस्त्र बुनना जानते थे। ये लोग सूती, ऊनी और रेशमी सभी प्रकार के वस्त्र बनाते थे। इन्हें कपड़ों की रंगाई, कढ़ाई करना भी आता था। इसके अतिरिक्त, खुदाई में प्राप्त सुइयाँ और बटन यह प्रमाणित करते हैं कि ये लोग सिलाई भी किया करते थे।

(4) धातु उद्योग—इन क्षेत्रों की खुदाई से प्राप्त बर्तन, प्रतिमाओं तथा अस्त्र-शस्त्रों से यह विदित होता है कि सिन्धु घाटी के लोग सोना-चाँदी, पीतल, सीसा, काँसा, ताँबा आदि धातुओं का प्रयोग करना जानते थे। ये लोग पत्थर का भी प्रयोग करते थे। धातु उद्योग यहाँ के लोगों का प्रिय व्यवसाय था।

(5) अन्य उद्योग—सिन्धु घाटी के निवासी अनेक प्रकार की घरेलू वस्तु बनाना जानते थे। खुदाई में सुईं, कैंची, कुल्हाड़ी, हथौड़ा, बर्मा (छेद करने वाला औजार), छुरी तथा हँसिया आदि वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं। ये लोग आकर्षक खिलौने, अस्त्र-शस्त्र भी भारी मात्रा में बनाते थे। आभूषणों का निर्माण तथा मिट्टी की वस्तुओं के निर्माण का ज्ञान भी उस काल में उन्नत दशा में था।

(6) कला-कौशल—सिन्धु सभ्यता के निवासी शिल्पी और कलाकार भी थे। वे लेखन-कला में प्रवीण थे। लगभग 500 मुहरें ऐसी मिली हैं जिन पर सुन्दर लिपि अंकित है, परन्तु अभी तक उस लिपि को पढ़ा नहीं जा सका है। मुहरों पर पशुओं के सुन्दर चित्र बने हुए हैं तथा उन पर चमकदार पॉलिश की हुई है। अनेक धातुओं की मूर्तियाँ भी प्राप्त हुई हैं, जिनसे यह विदित होता है कि ये लोग मूर्ति कला में भी प्रवीण थे। इन लोगों को अलंकरण कला का भी पर्याप्त ज्ञान था।

(7) व्यापार—सिन्धुवासी जल व थलमार्गों द्वारा विदेशों से व्यापार भी किया करते थे। थल पर बैलगाड़ियाँ और जल में जहाजों का प्रयोग किया जाता था। ये सोना, चाँदी, सीसा, ताँबा आदि धातुओं का आयात करते थे। पिगेट के अनुसार, सम्भवतः दासों का व्यापार भी होता था। खुदाई में एक तराजू व अनेक बाँट भी प्राप्त हुए हैं। इनमें सबसे छोटा बाँट 13·64 ग्राम का मिला है।

धार्मिक जीवन

(1) मातृ देवी की पूजा—खुदाई में प्राप्त मुहरों, ताम्रपत्रों तथा प्रतिमाओं के आधार पर यह सिद्ध होता है कि सिन्धु निवासी मातृ देवी की उपासना करते थे। मातृ देवी की अनेक छोटी-छोटी मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं जो 'माता', 'अम्बा', 'काली' तथा 'कराली' की प्रतीक हैं।

(2) **पशुपति (शिवजी) की पूजा**—खुदाई में एक तीन मुख वाले देवता की मूर्ति (मोहर के रूप में) प्राप्त हुई है। मुख्य देवता के बाईं ओर एक गैंडा और एक भैंसा हैं तथा दाईं ओर एक हाथी और बाघ हैं, जिसके सम्मुख एक हिरन चित्रित है। विद्वानों ने यह अनुमान लगाया है कि यह मूर्ति पशुपति (शिवजी) के समान प्रतीत होती है। अतः ये लोग शिवजी की उपासना करते थे। अनेक पत्थर ऐसे भी उपलब्ध हुए हैं, जो शिवलिंग के समान हैं। ये पत्थर भी शिव-पूजा के परिचायक हैं।

धार्मिक जीवन

(1) मातृ देवी की पूजा
(2) पशुपति (शिवजी) की पूजा
(3) लिंग या योनि की पूजा
(4) प्रकृति की पूजा
(5) ऋषभदेव की पूजा
(6) यक्ष-यक्षणियों की पूजा
(7) बैल तथा नाग की पूजा।

(3) **लिंग या योनि की पूजा**—खुदाई में कुछ ऐसी मूर्तियाँ मिली हैं जो लिंग तथा योनि जैसी प्रतीत होती हैं, इनके आधार पर यह अनुमान लगाया जाता है कि उस समय के लोग लिंग तथा योनि (प्रजनन शक्ति के प्रतीकों) की भी पूजा करते थे।

(4) **प्रकृति की पूजा**—खुदाई में प्राप्त अग्निकुण्डों के अवशेषों से यह पता चलता है कि सिन्धु निवासी अग्नि की पूजा करते थे। वे पशु, वृक्ष, सरिता आदि की उपासना भी करते थे। सिन्धुवासी पीपल के वृक्ष और तुलसी के पौधे की सर्वाधिक उपासना किया करते थे।

(5) **ऋषभदेव की पूजा**—मोहनजोदड़ो की खुदाई में कुछ ऐसी मोहरें प्राप्त हुई हैं जिन पर योग मुद्रा में कुछ जैन तीर्थंकरों के चित्र अंकित हैं। वहाँ पर एक मोहर ऐसी भी प्राप्त हुई है जिस पर तीर्थंकर ऋषभदेव का चित्र खड़ी मुद्रा (कार्योत्सर्ग योगासन) में चित्रित है।

(6) **यक्ष-यक्षणियों की पूजा**—सिन्धु घाटी के क्षेत्र से कुछ विचित्र मानव एवं पशु-पक्षियों की मिली-जुली आकृतियों की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। जैसे कुछ मूर्तियों में नारियों के सिर से सींग निकले हुए दिखाए गए हैं। इनका आधा शरीर पशु का तथा आधा शरीर नारी या पुरुष का बनाया गया है। ये मूर्तियाँ यक्ष-यक्षणियों की उपासना की प्रतीक हैं।

(7) **बैल तथा नाग की पूजा**—प्राप्त अवशेषों में अनेक ऐसे उदाहरण मिले हैं जो बैल, साँड और नाग-पूजा के स्पष्ट परिचायक हैं। कुछ विद्वान् इन्हें शिव-शक्तियों की पूजा के रूप में स्वीकार करते हैं।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि आधुनिक हिन्दू धर्म की बहुत-सी विशेषताएँ सिन्धु घाटी के युग में विद्यमान थीं। साथ ही हिन्दू देवता शिव सम्भवतः इनके सर्वलोकप्रिय देवता थे।

सिन्धुवासियों के सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक जीवन तथा उनकी नगर योजना से सम्बन्धित विशेषताओं का अध्ययन करने पर यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि विश्व की इतनी प्राचीन सभ्यता होते हुए भी यह एक विकसित नगरीय सभ्यता थी। नगरीय जीवन में परिलक्षित होने वाली समस्त व्यवस्थाएँ एवं सुविधाएँ सिन्धु सभ्यता में विद्यमान थीं। भारत के वर्तमान जनजीवन पर भी इस सभ्यता का प्रभाव दिखाई देता है।

प्रश्न 3—"सिन्धु सभ्यता नगरीय और आर्य (वैदिक) सभ्यता ग्रामीण थी।" इस कथन को स्पष्ट कीजिए।

अथवा **"ऋग्वैदिककालीन सभ्यता तथा सिन्धु घाटी सभ्यता एक-दूसरे से पूर्णतया भिन्न सभ्यताएँ हैं।" दोनों सभ्यताओं को विषमताओं के आधार पर सिद्ध कीजिए।** *(1990, 94)*

अथवा **सैन्धव और वैदिक सभ्यताओं की तुलना कीजिए।** *(1994)*

अथवा **सैन्धव सभ्यता एवं वैदिक सभ्यता का तुलनात्मक विवेचन कीजिए।** *(1996)*

उत्तर—

सिन्धु सभ्यता और वैदिक सभ्यता की तुलना

सिन्धु घाटी व आर्य सभ्यता दोनों ही भारत की प्राचीनतम सभ्यताएँ हैं। सिन्धु घाटी की सभ्यता को नगरीय और वैदिक सभ्यता को ग्रामीण सभ्यता माना जाता है। इन दोनों में पर्याप्त भिन्नताएँ थीं। संक्षेप में, हम इन दोनों सभ्यताओं का तुलनात्मक अध्ययन इस प्रकार कर सकते हैं—

(1) **राजनीतिक जीवन में अन्तर**—(i) सिन्धु सभ्यता में गणतन्त्रात्मक शासन व्यवस्था के चिह्न मिलते हैं, जबकि वैदिक सभ्यता की राजनीतिक व्यवस्था राजतन्त्रात्मक थी।

> **सिन्धु सभ्यता और वैदिक सभ्यता की तुलना**
> (1) राजनीतिक जीवन में अन्तर
> (2) सामाजिक जीवन में अन्तर
> (3) आर्थिक जीवन में अन्तर
> (4) धार्मिक जीवन में अन्तर।

(ii) सिन्धुवासी उच्चकोटि के अस्त्र-शस्त्रों से अपरिचित थे, जबकि आर्य युद्ध-विद्या में पारंगत थे।

(2) **सामाजिक जीवन में अन्तर**—(i) आर्यों का समाज पितृ-प्रधान था, जबकि सिन्धु घाटी में मातृ-सत्तात्मक व्यवस्था थी।

(ii) आर्य लोग संयुक्त परिवार प्रथा के पोषक थे, जबकि सिन्धु निवासी इस प्रथा से परिचित नहीं थे।

(iii) सिन्धुवासी वर्णाश्रम व्यवस्था में आस्था नहीं रखते थे, परन्तु आर्यों का समाज वर्णाश्रम व्यवस्था पर ही आधारित था।

(iv) आर्यों और सिन्धुवासियों के खान-पान में भी पर्याप्त भिन्नता थी।

(v) आर्य लोग लौह-धातु के प्रयोग से परिचित थे, जबकि सिन्धुवासी लोहे से अपरिचित थे।

(vi) सिन्धु जाति लेखन कला में प्रवीण थी, जबकि आर्य जाति लेखन कला से अपरिचित थी।

(vii) सिन्धु घाटी के लोग आर्यों की अपेक्षा मूर्तिकला और चित्रकला में विशेष रूप से दक्ष थे।

(viii) दोनों के वस्त्राभूषणों में भिन्नता थी। साथ ही, सिन्धु घाटी के निवासी शृंगार और आभूषणों को अपेक्षाकृत अधिक महत्त्व प्रदान करते थे।

(3) **आर्थिक जीवन में अन्तर**—(i) सिन्धु सभ्यता नगर प्रधान थी, जबकि आर्य सभ्यता ग्राम प्रधान थी।

(ii) दोनों की भवन निर्माण कला में भारी अन्तर था। आर्यों के भवन कच्चे और अति साधारण थे, जबकि सिन्धुवासियों ने सुन्दर और कलात्मक भवनों का निर्माण करने की कला सीख रखी थी।

(iii) आर्यों का मुख्य व्यवसाय कृषि ही रहा था, जबकि सिन्धु घाटी के निवासी विशेष उद्योगों और दूरस्थ प्रदेशों तक के व्यापार में भी संलग्न रहते थे।

(4) **धार्मिक जीवन में अन्तर**—(i) सिन्धुवासी मातृ देवी, शिवलिंग, योनि, वनस्पति, पशु, भूत-प्रेत आदि की उपासना करते थे, परन्तु आर्य देवताओं की उपासना को विशेष महत्त्व देते थे।

(ii) सिन्धु घाटी के निवासी मूर्तिपूजक थे, जबकि आर्य मूर्तिपूजा नहीं करते थे।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि सिन्धु सभ्यता और वैदिक सभ्यता में पर्याप्त विभिन्नताएँ थीं। सिन्धु सभ्यता नगरीय और आर्य सभ्यता ग्रामीण थी। सिन्धु सभ्यता के निर्माता आर्य न होकर कोई अन्य जाति थी। सिन्धु सभ्यता वैदिक काल के पूर्व विद्यमान थी, जबकि आर्यों ने भारत में प्रवेश कर अपने विचारों के अनुरूप नवीन सभ्यता का निर्माण किया था।

प्रश्न 4—वैदिक सभ्यता के निर्माता आर्य कौन थे? उनके मूल स्थानों से सम्बन्धित विभिन्न मतों की विवेचना कीजिए।

अथवा **"सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में एक भी संकेत नहीं मिलता है, जिससे यह सिद्ध किया जा सके कि भारतीय आर्य कहीं बाहर से आए थे।" राजबली पाण्डेय के इस कथन की विवेचना कीजिए।**

अथवा **आर्यों के आदि देश के सम्बन्ध में प्रचलित विभिन्न मतों की व्याख्या कीजिए।**

अथवा **आर्यों के आदि देश के विषय में विभिन्न मतों का परीक्षण कीजिए।** *(1997)*

उत्तर—

आर्यों का मूल निवास स्थान

आर्य कौन थे और उनका मूल निवास स्थान कहाँ था? यह एक विवादास्पद प्रश्न है। भारतीय साहित्य में इनके मूल निवास स्थान का स्पष्टीकरण कहीं भी प्राप्त नहीं हुआ है। डॉ० वी० ए० स्मिथ ने लिखा है कि, "आर्यों के मूल स्थान के विषय में कुछ विचार व्यक्त करने से जान-बूझकर बचा गया है, क्योंकि उस सम्बन्ध में कोई निश्चित मत प्रकट करना असम्भव लगता है।"

अधिकांश इतिहासकारों का मत यही है कि आर्य लोग हृष्ट-पुष्ट, लम्बे डील-डौल वाले, लम्बी नाक, गौर वर्ण तथा उच्च मस्तक वाले थे और इन्होंने द्रविड़ जाति को पराजित कर अपनी सभ्यता का विकास किया था।

आर्यों के मूल निवास स्थान के सन्दर्भ में विभिन्न मत (सिद्धान्त)

आर्यों के निवास स्थान के सम्बन्ध में विभिन्न मत प्रचलित हैं। इनका संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

(1) यूरोपियन सिद्धान्त—सर्वप्रथम फ्लोरेन्स (इटली) निवासी फिलिप्पो सेसटी ने भाषा की समानता और कुछ अन्य आधारों पर यह मत प्रस्तुत किया है कि आर्यों का मूल स्थान यूरोप महाद्वीप था। इसके बाद 1786 ई० में सर विलियम जोन्स ने अपने लेख में यह विचार व्यक्त किया कि यूरोपीय भाषाओं और आर्यों की मूल भाषा संस्कृत में आश्चर्यजनक समानता है; जैसे—पितृ, पिदर, पेटर, फादर और मातृ, मादर, मेटर और मदर क्रमशः संस्कृत, फारसी, लैटिन और अंग्रेजी भाषाओं के शब्दों में बड़ी समानता दृष्टिगोचर होती है। अतः इस आधार पर एक ही भाषा बोलने वाले लोगों का मूल निवास एक ही रहा होगा।

अनेक विद्वानों ने अपने शोधपूर्ण प्रयासों के आधार पर यूरोप के कुछ देशों को आर्यों का मूल स्थान बताने की चेष्टा की है, जो निम्न प्रकार है—

(i) हंगरी मूल निवास स्थान : डॉ० गाइल्स का मत—इण्डो-यूरोपियन भाषाओं का अध्ययन करके डॉ० पी० गाइल्स ने यह निष्कर्ष निकाला है कि प्रारम्भिक आर्य लोग गाय, भेड़, सूअर, हिरन आदि पशुओं से परिचित थे और गेहूँ तथा जौ की कृषि करते थे। ये वस्तुएँ समशीतोष्ण जलवायु में ही सुलभ होती हैं। यूरोप में ऐसी जलवायु वाला देश केवल हंगरी ही है। अतः सम्भव है कि आर्यों का मूल निवास हंगरी ही रहा हो। लेकिन डॉ० गाइल्स का मत सत्यता के निकट नहीं है, क्योंकि जिन फसलों तथा पशुओं का वर्णन वैदिक ग्रन्थों में है, वे उस समय हंगरी में रही हों, इस बात का कोई प्रमाण नहीं है।

आर्यों के मूल निवास स्थान के सन्दर्भ में विभिन्न मत (सिद्धान्त)

(1) यूरोपियन सिद्धान्त :
  (i) हंगरी मूल निवास स्थान
  (ii) जर्मनी मूल निवास स्थान
  (iii) रूस मूल निवास स्थान
(2) मध्य एशिया का सिद्धान्त :
  (i) पामीर प्रदेश अथवा रूसी तुर्किस्तान आर्यों का मूल निवास स्थान
  (ii) किर्गीज स्टेप्स मैदान आर्यों का मूल निवास स्थान
(3) आर्कटिक प्रदेश उत्तरी ध्रुव का सिद्धान्त
(4) भारतीय सिद्धान्त।

(ii) जर्मनी मूल निवास स्थान—श्री पेन्का का मत—जर्मन विद्वान् पेन्का और कुछ अन्य विद्वानों का मत है कि आर्यों का मूल निवास स्थान जर्मन प्रदेश था। इन विद्वानों का तर्क है कि जर्मनवासी सदैव ही इण्डो-यूरोपियन भाषा का प्रयोग करते रहे हैं, क्योंकि उनके कुछ ताम्रपत्रों में यह भाषा अंकित मिली है। पेन्का महोदय की यह धारणा है कि आर्यों तथा जर्मनों की शारीरिक बनावट की विशेषताएँ भी आपस में समानता रखती हैं; जैसे—बाल, शरीर का गठन आदि। अतः पेन्का तथा एक अन्य विद्वान् हर्ट जर्मन प्रदेश को ही आर्यों का मूल निवास स्थान मानते हैं। लेकिन यह मत भी भ्रामक है।

(iii) रूस मूल निवास स्थान : नेहरिंग तथा पोकानों का मत—नेहरिंग तथा पोकानों ने दक्षिणी रूस से प्राप्त कुछ मिट्टी के बर्तनों और ताम्रपत्रों के आधार पर यह विचार व्यक्त किया है कि आर्यों का मूल निवास स्थान दक्षिणी रूस था, परन्तु स्पष्ट प्रमाणों के अभाव में यह मत भी न्यायसंगत नहीं माना गया।

(2) मध्य एशिया का सिद्धान्त—जर्मन विद्वान् मैक्समूलर तथा कुछ अन्य विद्वानों ने यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि आर्यों का मूल निवास स्थान मध्य एशिया था। इस सन्दर्भ में इन विद्वानों ने वेदों और ईरान के ग्रन्थ अवेस्ता में वर्णित समानताओं का उल्लेख किया है।

कृषि और पशुपालन आर्यों के मुख्य व्यवसाय थे और कृषि तथा पशुपालन के लिए उपयुक्त चरागाह और मैदान तथा अन्य सुविधाएँ मध्य एशिया में ही हैं। इसी प्रकार, आर्य घोड़े के प्रयोग से परिचित

थे और मध्य एशिया तथा ईरान में घोड़े का सर्वाधिक प्रचलन था। पीपल के वृक्ष से भी दोनों परिचित थे। इसके अतिरिक्त, वेद और अवेस्ता में वर्णित उनके उपकरण एवं सामग्री मध्य एशिया के विस्तृत प्रदेश में उपलब्ध होती है। ये समस्त प्रमाण आर्यों के मध्य एशिया में रहने का परिचायक हैं।

मध्य एशिया में किस स्थान विशेष पर आर्य लोग निवास करते थे, इस प्रश्न पर भी विद्वानों के निम्नलिखित मत हैं—

(i) पामीर प्रदेश अथवा रूसी तुर्किस्तान आर्यों का मूल निवास स्थान—एडवर्ड मेयर, ओल्डनबर्ग, कीथ आदि विद्वानों ने आर्यों का मूल निवास स्थान पामीर प्रदेश अथवा रूसी तुर्किस्तान निश्चित किया है। उनका तर्क है कि आर्य यहीं से पश्चिम को ईरान की ओर से होकर भारत आए। लेकिन डॉ० गाइल्स ने इस मत का तर्कपूर्ण खण्डन किया है। उनका तर्क है कि पामीर पठारी प्रदेश है। अतः आर्यों का वहाँ पर मूल निवास स्थान होना नितान्त असम्भव है। इसके अतिरिक्त, जिन सामान्य वस्तुओं का उल्लेख आर्यों के ग्रन्थों में है, वे भी पामीर प्रदेश में नहीं पाई जाती हैं।

(ii) किर्गीज स्टेप्स मैदान आर्यों का मूल निवास स्थान—बैण्डेस्टीन ने एशिया के किर्गीज स्टेप्स मैदानों को आर्यों का मूल निवास स्थान सिद्ध करने का प्रयास किया है। उनका तर्क है कि आर्य ग्रन्थों में अनेक ऐसे पशुओं का उल्लेख है जो एशिया के किर्गीज स्टेप्स के मैदान में पाए जाते हैं और ये यूरोप में नहीं पाए जाते हैं। इसलिए आर्य यहीं के मूल निवासी रहे होंगे।

(3) आर्कटिक प्रदेश उत्तरी-ध्रुव का सिद्धान्त—बाल गंगाधर तिलक ने आर्यों का मूल निवास आर्कटिक प्रदेश सिद्ध किया है। उनका तर्क यह है कि आर्य इस तथ्य से अवगत थे कि एक लम्बे दिन और लम्बी रात का एक वर्ष होता है। उनके मतानुसार ऋग्वेद में 6 माह के दिन तथा 6 माह की रात्रि का उल्लेख मिलता है और उसमें हिम प्रदेशों का भी विवरण है। साथ ही ईरानी ग्रन्थों में भी इसी प्रकार की जलवायु का वर्णन है। अतः आर्य लोग उत्तरी ध्रुव में निवास करते होंगे और 800 वर्ष ईसा पूर्व के लगभग उन्हें उत्तरी ध्रुव-प्रदेश छोड़कर मध्य एशिया में जाकर बसना पड़ा होगा। वहीं से वे अन्य देशों में पहुँच गए होंगे। तिलक जी के इस मत का अनेक विद्वानों ने खण्डन भी किया है।

(4) भारतीय सिद्धान्त—डॉ० सम्पूर्णानन्द, राजबली पाण्डेय, डॉ० अविनाश चन्द्र, डी० एस० त्रिवेदी, एल० डी० काला, गंगानाथ झा, अलबरूनी, टेलर, ए० सी० दास, के० एम० मुंशी तथा एस० श्रीकान्त शास्त्री आदि ने अपने तार्किक मतों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि आर्य मूल रूप से भारत के निवासी थे। इस सन्दर्भ में इनके प्रमुख विचार निम्नलिखित हैं—

(i) इस तथ्य के स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलते कि आर्य विदेशी थे। आर्य ग्रन्थों में भी इनके विदेश से आने का कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं मिलता है। डॉ० राजबली पाण्डेय ने लिखा है, **"सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में एक भी ऐसा संकेत नहीं मिलता है, जिससे यह प्रमाणित किया जा सके कि भारतीय आर्य कहीं बाहर से आए थे। भारतीय अनुश्रुति या जनश्रुति में कहीं इस बात की गन्ध नहीं पाई जाती कि भारतीय आर्यों की पितृ-भूमि या धर्म इस देश के बाहर थी।"**

(ii) आर्य ग्रन्थों में सप्त सिन्धु के प्रदेश का उल्लेख है, यह प्रदेश पंजाब है, जहाँ पाँच नदियाँ बहती हैं। आर्यों ने यहीं पर वेदों की रचना की थी और वे यहीं पर आदिकाल से निवास करते रहे होंगे।

(iii) ऋग्वेद में जिन स्थानों और वस्तुओं का उल्लेख मिलता है, वे समस्त वस्तुएँ और स्थान पंजाब में दर्शनीय हैं अतः आर्यों का मूल निवास स्थान पंजाब (भारत) को ही मानना उचित है।

(iv) संस्कृत भाषा में; जिसमें वेदों की रचना हुई है, इण्डो-यूरोपियन भाषाओं के शब्द अधिक हैं और वे आज भी अपनी मूल अवस्था में भारत के विभिन्न प्रदेशों में प्रचलित हैं। अतः इस आधार पर भी आर्यों का मूल निवास भारत ही रहा होगा।

उपर्युक्त भारतीय सिद्धान्त का भी अनेक विद्वानों ने खण्डन किया है। भाषा सम्बन्धी तर्क अकाट्य न होने के फलस्वरूप इस सिद्धान्त को भी पूर्ण मान्यता प्राप्त नहीं हो सकी है।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि आर्यों के मूल स्थान के सम्बन्ध में विभिन्न सिद्धान्त प्रचलित हैं, परन्तु कोई भी सिद्धान्त इतना प्रामाणिक नहीं है कि उसकी सत्यता स्वीकार की जा सके। अधिकांश विद्वान् इन्हें अन्य देशों से ही भारत में आया हुआ (विदेशी) स्वीकार करते हैं, जबकि सामान्य रूप से भारतीय विद्वान् इन्हें मूल रूप से भारत का ही निवासी मानते हैं।

प्रश्न 5—"ऋग्वेद एक सुसंगठित समाज तथा विकसित सभ्यता की ओर संकेत करता है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।

अथवा **पूर्व वैदिक काल के आर्यों के सामाजिक एवं राजनीतिक जीवन का वर्णन कीजिए।** *(1990)*

अथवा **पूर्व वैदिक आर्यों की सभ्यता की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।**

अथवा **"ऋग्वैदिक काल में आर्यों का सामाजिक जीवन पवित्रता और नैतिकता से युक्त था।" विवेचना कीजिए।**

अथवा **ऋग्वैदिक आर्यों के धार्मिक व राजनीतिक जीवन का निरूपण कीजिए।** *(1991)*

अथवा **ऋग्वैदिक काल में आर्यों के राजनीतिक जीवन तथा संगठन का वर्णन कीजिए।** *(1992)*

अथवा **वैदिक काल की सामाजिक एवं आर्थिक दशा पर प्रकाश डालिए।** *(1993, 97)*

अथवा **पूर्व वैदिक युग की सामाजिक एवं धार्मिक दशा का वर्णन कीजिए तथा यह भी बताइए कि उत्तर वैदिक युग में इसमें क्या परिवर्तन हुए।** *(1995, 99)*

अथवा **ऋग्वैदिक काल में सामाजिक और धार्मिक जीवन का उल्लेख कीजिए।** *(1995)*

अथवा **ऋग्वैदिक आर्यों के राजनीतिक तथा आर्थिक जीवन का वर्णन कीजिए।** *(1996)*

अथवा **पूर्वकालीन वैदिक सभ्यता में सामाजिक, धार्मिक जीवन पर प्रकाश डालिए।** *(1991)*

अथवा **वैदिक काल के सामाजिक-धार्मिक जीवन पर प्रकाश डालिए।** *(1992)*

अथवा **वैदिकयुगीन सामाजिक और आर्थिक जीवन का वर्णन कीजिए।** *(1997, 99)*

अथवा **ऋग्वैदिक आर्यों के धर्म की प्रमुख विशेषताओं की विवेचना कीजिए।** *(1997)*

उत्तर—

ऋग्वैदिक काल की सभ्यता

आर्यों की सभ्यता से परिचित होने के लिए सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण साधन वेद ग्रन्थ हैं। ऋग्वेद से पूर्व वैदिक काल की सभ्यता पर व्यापक प्रकाश पड़ता है और यजुर्वेद, अथर्ववेद तथा सामवेद से उत्तर वैदिक काल के आर्यों के राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक जीवन की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। जिस काल में ऋग्वेद की रचना हुई उस काल की सभ्यता को हम ऋग्वैदिक सभ्यता अथवा पूर्व वैदिक सभ्यता के नाम से पुकारते हैं।

ऋग्वैदिक या पूर्व वैदिक सभ्यता की विशेषताएँ

ऋग्वैदिक अथवा पूर्व वैदिक सभ्यता के राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक जीवन से सम्बन्धित प्रमुख विशेषताओं का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

राजनीतिक जीवन

(1) राजा—प्रारम्भिक आर्यों का राजनीतिक संगठन बहुत ही उच्च कोटि का था। उनकी शासन व्यवस्था राजतन्त्रात्मक थी। अतः राजा ही उनका सर्वोच्च शासक होता था। सामान्यतः राजा का पद वंशानुगत होता था। कुछ राज्यों में राजा के निर्वाचन की भी प्रथा थी। राजाओं का राज्यारोहण उत्सव बड़ी धूमधाम के साथ मनाया जाता था। इस अवसर पर राजा जनता के हितों की रक्षा करने की भी शपथ लिया करता था। निरंकुश और अयोग्य राजा को जनता पद से हटा भी देती थी।

(2) समिति—राजा को परामर्श देने वाली और राजा के निर्वाचन में भाग लेने वाली एक संस्था 'समिति' होती थी। जनता द्वारा निर्वाचित यह समिति अपने कार्यों के लिए जनता के प्रति ही उत्तरदायी होती थी। यह समिति राजा पर नियन्त्रण रखती थी।

(3) सभा—समिति के अतिरिक्त एक अन्य संस्था 'सभा' भी होती थी। यह राजा को परामर्श देते हुए राजा की निरंकुशता पर नियन्त्रण रखती थी।

(4) न्याय-व्यवस्था—पूर्व वैदिक काल में न्याय-व्यवस्था का सर्वोच्च अधिकारी राजा होता था। उस समय दण्ड व्यवस्था बहुत अधिक कठोर नहीं थी। भयंकर अपराधियों को ही मृत्यु-दण्ड दिया जाता था। राज्य के साधारण विवाद ग्राम पंचायत और ग्रामणी द्वारा ही हल कर लिए जाते थे।

राजनीतिक जीवन
(1) राजा
(2) समिति
(3) सभा
(4) न्याय-व्यवस्था
(5) राज्य का संगठन
(6) सैनिक संगठन।

(5) राज्य का संगठन—पूर्व वैदिक आर्यों के राजनीतिक संगठन की सबसे छोटी इकाई 'परिवार' थी। कई परिवार मिलकर 'ग्राम' का निर्माण करते थे और अनेक ग्रामों के समूह को 'विश' कहा जाता था। कुछ विशों का समुदाय 'जन' कहलाता था। इस जन का नेता ही राजा होता था। इसे 'गोप' भी कहते थे। अनेक जनों से मिलकर देश वनता था, जिसे 'राष्ट्र' कहा जाता था।

(6) सैनिक संगठन—युद्ध आर्यों के जीवन का एक प्रमुख अंग था। अतः ऋग्वैदिक राजा प्रशिक्षित और सुव्यवस्थित सैन्य बल रखते थे। इस युग में रथों पर युद्ध करने वाले सैनिक रथिन तथा भूमि पर युद्ध करने वाले पदाति कहलाते थे। आर्य अस्त्र-शस्त्रों में रक्षा-कवच, ढाल, शिरस्राण, तलवार, धनुष-बाण तथा भाले आदि का प्रयोग करते थे। ऋग्वेद में राज्यों की सीमा पर सुरक्षित दुर्गों का भी उल्लेख मिलता है।

सामाजिक जीवन

(1) समाज का संगठन—आर्यों का समाज अत्यन्त संगठित एवं सुव्यवस्थित था। पूर्व वैदिक काल के प्रारम्भ में आर्य समाज केवल दो वर्गों, आर्य और अनार्य में विभक्त था। समाज में प्रधानता के आधार पर सभी स्नेह और सहयोग से रहते थे। आर्यों ने अनार्यों को अपना दास तथा सेवक बना लिया था। कालान्तर में ऋग्वैदिककालीन समाज चार वर्णों में विभक्त हो गया था।

सामाजिक जीवन
(1) समाज का संगठन
(2) परिवार
(3) नारियों की दशा
(4) विवाह
(5) खान-पान
(6) वस्त्राभूषण
(7) मनोरंजन के साधन
(8) नैतिकता।

(2) परिवार—वैदिक काल में संयुक्त परिवार-प्रथा प्रचलित थी और परिवार पितृसत्तात्मक होते थे। एक परिवार में माता-पिता, पति-पत्नी, बच्चे तथा अविवाहित भाई-बहिन रहते थे। परिवार के सभी सदस्य प्रेम एवं सहयोग के साथ गृह-मुखिया (परिवार के वयोवृद्ध व्यक्ति) के नियन्त्रण में रहते थे। परिवार में पुत्र-जन्म पर विशेष उत्सव मनाया जाता था। पुत्री का जन्म, पुत्र-जन्म की भाँति हर्ष का विषय नहीं रहता था।

(3) नारियों की दशा—समाज में स्त्रियों की दशा बहुत अच्छी थी। अधिकांश स्त्रियाँ विदुषी होती थीं। ऋग्वेद में कुछ ऐसी विदुषी स्त्रियों का उल्लेख है, जिन्होंने ऋग्वेद की ऋचाओं की रचना की थी। अपाला, विश्वधारा, घोषा तथा लोपा आदि इस युग की प्रसिद्ध विदुषी स्त्रियाँ थीं। उस समय पर्दा-प्रथा नहीं थी। स्त्रियों को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था और उन्हें पिता की सम्पत्ति में भी उपयुक्त भाग मिलता था। इस प्रकार, स्त्रियों का परिवार और समाज में उच्च स्थान था।

(4) विवाह—वैदिक काल में साधारणतया एक विवाह-प्रथा प्रचलित थी। कन्या सामान्य रूप से और स्वयंवर में अपनी इच्छानुसार पति का चयन कर सकती थी। इस युग में अन्तर्जातीय विवाह भी हो जाते थे। बाल-विवाह तथा सती-प्रथा नहीं थी। विधवा का विवाह देवर के साथ ही हो जाता था।

(5) खान-पान—वैदिक आर्यों का मुख्य भोजन गेहूँ, जौ और दालें थीं। वेदों में चावल का उल्लेख नहीं मिलता है। वे लोग दूध, दही, सब्जी तथा फलों का उपयोग भी प्रचुरता से करते थे। मांस खाने की प्रथा भी प्रचलित थी। उत्सवों आदि पर आर्य सोमरस नामक (सुरा) पेय का प्रयोग करते थे।

(6) वस्त्राभूषण—पूर्व वैदिक काल में आर्य लोग सूती और ऊनी दोनों प्रकार के वस्त्रों का उपयोग करते थे। कुछ लोग मृगछाला और अन्य पशुओं की खाल भी धारण किया करते थे। वस्त्रों में तीन मुख्य

वस्त्र थे—(i) नीवी (अधोवस्त्र)—धोती अथवा साड़ी, (ii) वास—शरीर के ऊपरी भाग पर धारण किया जाने वाला वस्त्र अंगरखा अथवा चोली, (iii) अधिवास—ऊपर से ओढ़ने वाला वस्त्र—चादर या ओढ़नी। पुरुषों द्वारा धारण की जाने वाली पगड़ी (उष्णीय) का भी चौथे वस्त्र के रूप में विवरण प्राप्त होता है।

आर्य लोग स्वर्णहार, कुण्डल, अंगूठी आदि आभूषण धारण करते थे। चूड़ियाँ और पायजेब स्त्रियों के प्रिय आभूषण थे। इसके अतिरिक्त, वैदिक साहित्य में कर्णशोभन (कान के आभूषण), निष्क्रीव (कण्ठहार), खांदि (कंगन या कड़े), रुक्मपक्ष (हार), भुजबन्ध, कंकण, मुद्रिका, नूपुर आदि आभूषणों का उल्लेख भी प्रचुरता से मिलता है।

(7) मनोरंजन के साधन—आर्य लोग मनोरंजन के साधनों में भी रुचि लेते थे। रथ-दौड़, जुआ, गायन तथा नृत्य आदि इनके मनोरंजन के प्रमुख साधन थे। वैदिक ग्रन्थों में वीणा, दुन्दुभि, नावि, शृंग, तूणवे, शंख तथा बाँसुरी आदि वाद्य यन्त्रों का उल्लेख भी मिलता है। इनके अतिरिक्त, आखेट करना और पशुओं को लड़ाना भी आर्यों के मनोरंजन के मुख्य साधन थे।

(8) नैतिकता—आर्यों का सामाजिक जीवन सरल, सादा और पवित्र था। उस युग में चोरी, लूट, अपहरण तथा व्यभिचार का नामोनिशान तक नहीं था। इसीलिए प्रायः यह कहा जाता है कि, **"ऋग्वैदिक काल में आर्यों का सामाजिक जीवन पवित्रता और नैतिकता से युक्त था।"** समाज कुरीतियों से मुक्त था, किन्तु स्वाभाविक रूप से इसके कुछ अपवाद भी थे।

आर्थिक जीवन

(1) कृषि—आर्यों का मुख्य व्यवसाय कृषि था। कृषि हल एवं बैलों से की जाती थी और अधिकांशतः गेहूँ और जौ बोए जाते थे। चावल का हमारे ऋग्वैदिक पूर्वजों को ज्ञान न था। अधिक उपज देने वाली भूमि 'उर्वरा' कहलाती थी। आर्य उपज बढ़ाने में खाद का प्रयोग करते थे। खेतों में कुओं, तालाबों, झीलों तथा नदियों से सिंचाई करने की समुचित व्यवस्था थी।

(2) पशुपालन—पशुपालन ऋग्वैदिक आर्यों का दूसरा प्रमुख व्यवसाय था। ग्रामों के अधिकांश परिवार गाय, बैल, घोड़े, भेड़-बकरी तथा कुत्ते आदि पशु पालते थे। गाय को अत्यधिक सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। पहचान के लिए लोग अपने पशुओं के कानों को काले रंग से रंग दिया करते थे। पशुओं के लिए विशेष चरागाहों की पर्याप्त व्यवस्था थी। पशुओं का क्रय-विक्रय भी होता था।

(3) व्यापार—ऋग्वैदिक युग में व्यापार भी प्रगति पर था। व्यापार को समाज में **'पणी'** की संज्ञा दी जाती थी। आर्य लोग नावों द्वारा दूरस्थ प्रदेशों में व्यापार किया करते थे। ऋग्वेद में अनेक व्यापारिक मार्गों का उल्लेख भी मिलता है। उस समय **'निष्क'** नामक मुद्रा प्रचलित थी। फिर भी वस्तु-विनिमय को विशेष महत्त्व प्राप्त था। प्रायः वस्तुओं का मूल्य गायों की संख्या के आधार पर निश्चित किया जाता था।

> **आर्थिक जीवन**
> **(1) कृषि**
> **(2) पशुपालन**
> **(3) व्यापार**
> **(4) अन्य व्यवसाय।**

(4) अन्य व्यवसाय—ऋग्वैदिक समाज में अनेक व्यवसाय प्रचलित थे। लुहार, बढ़ई तथा रथ बनाने वालों को समाज में बड़ी प्रतिष्ठा प्राप्त थी। चमड़ा रँगने और कपड़ा बुनने का व्यवसाय भी अच्छी दशा में था। इसके अतिरिक्त हस्त-शिल्प व्यवसायों में आर्यों की विशेष रुचि थी।

धार्मिक जीवन

(1) बहुदेववाद—आर्य प्राकृतिक शक्तियों को देवी-देवता मानकर उनकी उपासना किया करते थे। वैदिक देवताओं की तीन श्रेणियाँ थीं—प्रथम श्रेणी में पृथ्वी, सोम और अग्नि; द्वितीय श्रेणी में इन्द्र, वायु, मारुति और तृतीय श्रेणी में सूर्य, वरुण, विष्णु, अश्विन आदि देवता थे। सभी देवताओं में 'वरुण' को विशेष महत्त्व दिया जाता था। आर्य लोग 'उषा' को देवी मानकर पूजा करते थे। ऋग्वेद में मुख्य रूप से 33 देवी-देवताओं की उपासना की जाती थी।

(2) धार्मिक कार्य—आर्य देवी-देवताओं को प्रसन्न करने के लिए प्रार्थना को विशेष महत्त्व देते थे। वे यज्ञ एवं हवन आदि भी किया करते थे। यज्ञों में भोजन तथा पेय सामग्री देवी-देवताओं को चढ़ाई

जाती थी। युद्ध में विजय प्राप्त करने और संकट से मुक्ति पाने के लिए यज्ञों आदि का आयोजन भी किया जाता था।

धार्मिक जीवन
(1) बहुदेववाद
(2) धार्मिक कार्य
(3) आत्मा के अस्तित्व और पुनर्जन्म में विश्वास
(4) धर्म की श्रेष्ठता।

(3) आत्मा के अस्तित्व और पुनर्जन्म में विश्वास—ऋग्वैदिक दर्शन में आत्मा के अस्तित्व में पूर्ण विश्वास किया जाता है। डॉ० राजबली पाण्डेय 'आत्म-तत्त्व' को स्वीकार करते हुए लिखते हैं कि, "ऋग्वेद में कुछ ऐसी ऋचाएँ हैं, जिनसे अनुमान होता है कि आर्य पुनर्जन्म को मानते थे।"

(4) धर्म की श्रेष्ठता—ऋग्वैदिक धर्म सरल, सादा और उत्तम था। इसकी अनेक बातें आज तक भी हिन्दू समाज में प्रचलित हैं। उदाहरणार्थ, आज भी हिन्दू धर्म में सूर्य की उपासना प्रचलित है। इसी प्रकार हिन्दू, वेदों को ही धर्म का मूल स्रोत मानते हैं और विवाह आदि संस्कारों में मन्त्रों को विशेष महत्त्व देते हैं।

(नोट—उत्तर वैदिक काल के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में हुए परिवर्तनों का अध्ययन करने हेतु प्रश्न संख्या 6 का अध्ययन कीजिए।)

प्रश्न 6—उत्तर वैदिक काल की सभ्यता का वर्णन कीजिए।

अथवा **"उत्तर वैदिक काल में मानव का जीवन जटिल कर्मकाण्डों से युक्त होने लगा था।" समालोचना कीजिए।**

अथवा **प्राचीनकाल में वर्णाश्रम व्यवस्था की विवेचना कीजिए।** *(1990, 92)*

अथवा **वर्णाश्रम धर्म का संक्षिप्त विवरण दीजिए।** *(1999)*

अथवा **"आर्यों की वर्ण-व्यवस्था कालान्तर में हिन्दू समाज की मूलाधार बन गई और अभी तक प्रभावित करती चली आ रही है।" समीक्षा कीजिए।**

अथवा **उत्तर वैदिक काल में उत्तरी भारत की सामाजिक व आर्थिक दशा का वर्णन कीजिए।** *(1990, 97)*

अथवा **उत्तर वैदिक काल के सामाजिक-धार्मिक जीवन पर प्रकाश डालिए।** *(1992)*

अथवा **उत्तर वैदिक काल में आर्यों की सामाजिक दशा एवं सांस्कृतिक प्रगति पर प्रकाश डालिए।** *(1993)*

अथवा **उत्तर वैदिक काल के राजनीतिक और सामाजिक जीवन का उल्लेख कीजिए।** *(1995)*

उत्तर—

उत्तर वैदिककालीन सभ्यता एवं संस्कृति

वैदिक साहित्य के अनेक ग्रन्थों विशेषकर यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, ब्राह्मणों और वेदांगों से उत्तर वैदिककालीन आर्यों की सभ्यता व संस्कृति का पर्याप्त ज्ञान प्राप्त होता है। इन ग्रन्थों के आधार पर उत्तर वैदिक काल की सभ्यता और संस्कृति निम्न प्रकार थी—

(1) राजनीतिक जीवन—उत्तर वैदिक काल में राज्यों की सीमाएँ बहुत अधिक विस्तृत हो गईं तथा प्रमुख राज्य कर्मचारियों (मन्त्रियों) की संख्या भी 3 के स्थान पर 12 हो गई थी। इसके अतिरिक्त, इस युग में राजा की शक्तियों में बहुत वृद्धि हो गई तथा ऋग्वेद काल की सभा एवं समिति नामक संस्थाएँ शक्तिहीन हो गई थीं। युद्धक्षेत्र में जाना अब राजा के लिए अनिवार्य नहीं रह गया था। सेनापति ही युद्धक्षेत्र में युद्ध का प्रतिनिधित्व करने लगा था।

(2) सामाजिक जीवन—इस युग की सामाजिक स्थिति में भी अनेक परिवर्तन हो गए थे। ऋग्वैदिक काल में केवल चार वर्णों का उल्लेख मात्र ही मिलता है, किन्तु इस काल में वर्ण-व्यवस्था और आश्रम-व्यवस्था पूर्ण रूप से स्थिर हो गई थी। चारों वर्णों एवं चारों आश्रमों के कार्य निश्चित कर दिए गए थे। अन्य सामाजिक परम्पराएँ पूर्व वैदिक काल जैसी ही थीं। नारी की प्रतिष्ठा में भी कुछ अन्तर अवश्य आ गया था।

(3) वर्ण-व्यवस्था—वर्ण-व्यवस्था भारतीय संस्कृति की एक प्रमुख विशेषता रही है। उत्तर वैदिक काल में आर्यों ने समाज का विभाजन, कार्य के आधार पर चार वर्णों में कर लिया था। ये चार वर्ण थे—

(i) ब्राह्मण—ब्राह्मणों का कार्य वेदों का अध्ययन करना, यज्ञ करना तथा कराना, दान लेना व दान देना तथा अध्ययन एवं अध्यापन था। समाज में ब्राह्मणों का स्थान सर्वोपरि था। राजा भी ब्राह्मणों का सम्मान से अभिवादन करते थे।

(ii) क्षत्रिय—क्षत्रियों का प्रधान कर्त्तव्य प्रजा की रक्षा करना था। राज्य की सुरक्षा तथा उसके प्रशासन का उत्तरदायित्व मुख्य रूप से इसी वर्ण पर था। साथ ही, वेदों का अध्ययन, यज्ञ तथा दान देना आदि भी उनका नैतिक और अनिवार्य कर्त्तव्य था।

(iii) वैश्य—राष्ट्र के आर्थिक, व्यापारिक तथा कृषि-सम्बन्धी कार्यों का उत्तरदायित्व वैश्य वर्ण पर था। पशुओं की रक्षा तथा उनका पालन करना भी इन्हीं का उत्तरदायित्व था।

(iv) शूद्र—समाज में चौथा वर्ण शूद्रों का था। शूद्रों का कार्य उपर्युक्त तीनों वर्णों की सेवा करना था। इस वर्ण का समाज के अन्य वर्णों की अपेक्षा बहुत निम्न स्थान होता था। इस वर्ण को धर्मपालन और अध्ययन से वंचित रखा गया था।

प्रारम्भ में यह वर्ण-व्यवस्था कर्म पर आधारित थी। कर्म और कार्यों के आधार पर वर्ण परिवर्तन सम्भव भी था, किन्तु कालान्तर में वर्ण-व्यवस्था ने जन्म के आधार पर जटिल रूप धारण कर लिया था । यही वर्ण-व्यवस्था आगे चलकर जाति-प्रथा के रूप में परिणत हो गई थी। आज की जाति और वर्ण-व्यवस्था का यही मूलाधार है। आज भी ब्राह्मणों का सम्मान है, तो शूद्रों को समाज में निम्न दृष्टि से देखा जाता है।

(4) आश्रम-व्यवस्था—गृह सूत्र ग्रन्थ में आर्यों द्वारा प्रचलित आश्रम-व्यवस्था पर पूर्ण प्रकाश डाला गया है। आर्य मनीषियों ने चार—**(i) ब्रह्मचर्य, (ii) गृहस्थ, (iii) वानप्रस्थ,** और **(iv) संन्यास** आश्रम का विधान किया था। मनुष्य की औसत आयु 100 वर्ष निश्चित की गई थी और इस सौ वर्ष के काल को निम्नलिखित चार भागों अथवा आश्रमों में विभक्त किया गया था—

(i) ब्रह्मचर्य आश्रम—यह आश्रम लगभग 25 वर्ष की आयु तक चलता था। इसमें विद्यार्थी गुरु के आश्रम में रहकर विद्याध्ययन करता था। वह पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करते हुए समाज के भौतिक वातावरण से मुक्त रहता था।

> **उत्तर वैदिककालीन सभ्यता एवं संस्कृति**
>
> **(1) राजनीतिक जीवन**
> **(2) सामाजिक जीवन**
> **(3) वर्ण व्यवस्था : (i) ब्राह्मण, (ii) क्षत्रिय, (iii) वैश्य, (iv) शूद्र**
> **(4) आश्रम व्यवस्था : (i) ब्रह्मचर्य आश्रम, (ii) गृहस्थ आश्रम, (iii) वानप्रस्थ आश्रम, (iv) संन्यास आश्रम**
> **(5) नारी जीवन**
> **(6) भोजन एवं पेय**
> **(7) आर्थिक जीवन**
> **(8) धार्मिक जीवन : (i) ब्राह्मणों का महत्त्व, (ii) यज्ञ तथा बलि प्रथा का विकास, (iii) नए देवताओं की उत्पत्ति, (iv) दार्शनिक चिन्तन।**

(ii) गृहस्थ आश्रम—25 वर्ष की आयु पूर्ण करने के उपरान्त ब्रह्मचारी गृहस्थ आश्रम में प्रवेश कर जाता था। वह 25 वर्ष से 50 वर्ष तक की आयु इसी आश्रम में व्यतीत करता था। इस आश्रम में व्यक्ति अपना विवाह करते थे और दाम्पत्य जीवन व्यतीत करते थे।

(iii) वानप्रस्थ आश्रम—वानप्रस्थ आश्रम 50 से 75 वर्ष की आयु तक माना जाता था। 50 वर्ष की आयु पूर्ण कर लेने के उपरान्त स्त्री तथा पुरुष अपने ज्येष्ठ पुत्र पर परिवार का भार छोड़कर तथा उसे अपना उत्तराधिकारी बनाकर वन में चले जाते थे। वहाँ वे तप एवं त्याग का जीवन व्यतीत करते थे।

(iv) संन्यास आश्रम—75 वर्ष की आयु पूर्ण कर लेने के उपरान्त व्यक्ति संन्यास आश्रम में प्रवेश करता था। 75 से 100 वर्ष तक की आयु संन्यास आश्रम की मानी जाती थी। इस आश्रम में जीवन-साथी का भी त्याग कर दिया जाता था। इस प्रकार वह परिव्राजक (संन्यासी) बन जाता था। संन्यासी के लिए ग्राम या नगर में रहना वर्जित था। वह वन और पर्वतों की कन्दराओं में वैराग्ययुक्त एवं त्यागमय जीवन व्यतीत करता था।

(5) नारी जीवन—ऋग्वैदिककालीन समाज में नारियों का सम्मान अपेक्षाकृत कम हो गया था। पुरुष अनेक पत्नियाँ रखने लगे थे। इस समय तक सती-प्रथा नहीं थी। विधवा का विवाह हो सकता था। नारियाँ सभी प्रकार की शिक्षाओं में रुचि लेती थीं तथा पर्दा-प्रथा भी नहीं थी।

(6) भोजन एवं पेय—गेहूँ, जौ और चावल आर्यों के प्रमुख अन्न थे। दूध का अनेक रूपों में प्रयोग किया जाता था। क्षीरोदन (खीर), तिलोदन (तिल की खीर), पुआ, पूड़ी, युआगू (भात), सक्तु (सत्तु) आदि इनके प्रिय व्यंजन थे। मांस और शराब का प्रयोग भी किया जाता था।

(7) आर्थिक जीवन—इस काल की आर्थिक स्थिति संतोषप्रद थी। आर्यों का मुख्य व्यवसाय अभी भी कृषि ही था, किन्तु कृषि-पद्धतियों में बहुत उन्नति हो गई थी। पशुपालन उद्योग भी इस काल में प्रचलित था। गाय का महत्त्व इस युग में बहुत बढ़ गया था। इस युग में व्यापार की भी विशेष उन्नति हुई थी। इसके अतिरिक्त, अनेक प्रकार के हस्तकला-कौशल के उद्योग-धन्धे भी प्रचलित थे। कपड़ा बुनना, चमड़ा रँगना, आभूषण बनाना, रथ बनाना, बर्तन बनाना, लुहारगिरी आदि इस काल के प्रमुख व्यवसाय थे।

(8) धार्मिक जीवन—उत्तर वैदिक काल में आर्यों की धार्मिक विचारधारा में व्यापक परिवर्तन हो गए थे। ऋग्वैदिक काल में धर्म अत्यन्त सरल था, किन्तु उत्तर वैदिक काल में धर्म के क्षेत्र में अनेक जटिल आडम्बर आ गए थे।

(i) ब्राह्मणों का महत्त्व—इस काल में ब्राह्मणों का महत्त्व बहुत बढ़ गया था। अनेक ब्राह्मण ग्रन्थों की रचना इसी काल में हुई थी। इन ब्राह्मण ग्रन्थों के रचयिता ब्राह्मण ही थे। ब्राह्मण ही यज्ञ करते थे। यज्ञ और धार्मिक क्रियाएँ कराने वाले ये ब्राह्मण पुरोहित-वर्ग के नाम से जाने जाते थे।

(ii) यज्ञ तथा बलि-प्रथा का विकास—इस युग में यज्ञ तथा बलि की प्रथा बहुत विकसित हुई। अब यज्ञ विधि-विधान से किया जाता था। यज्ञ में पशु की बलि दी जाती थी। यज्ञों की संख्या में अत्यधिक वृद्धि हो गई थी।

(iii) नए देवताओं की उत्पत्ति—इस काल में ऋग्वैदिक काल के देवताओं; जैसे—इन्द्र, वरुण आदि का महत्त्व कम हो गया और उनका स्थान नए-नए देवताओं ने ग्रहण कर लिया था। प्रजापति (ब्रह्मा) का महत्त्व इस युग में सर्वाधिक हो गया था। कुछ समय बाद रुद्र (शिव) का भी महत्त्व बढ़ गया और रुद्र को महादेव कहा जाने लगा। कुछ विद्वान् इस समय के रुद्र को शिव से पृथक् मानते हैं। इसके अतिरिक्त, विष्णु देवता भी लोकप्रिय हो गए थे।

(iv) दार्शनिक चिन्तन—आर्यों ने दार्शनिक चिन्तन के क्षेत्र में सराहनीय उन्नति की थी। इस काल में आत्मा तथा परमात्मा के सम्बन्धों की जैसी विशद् व्याख्या की गई वैसी अन्यत्र दुर्लभ है। इस काल में पुनर्जन्म के सिद्धान्त को भी स्वीकार किया गया और कर्म के सिद्धान्त को प्रबलता से मान्यता प्रदान की गई। वैदिक काल के ये दार्शनिक विचार उपनिषदों में संग्रहीत हैं।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि उत्तर वैदिक काल में धर्म के क्षेत्र में बहुत विकास हुआ और अनेक सिद्धान्तों का सृजन हुआ। इस काल में भूत-प्रेत, मन्त्र-तन्त्र, जादू-टोना आदि में भी लोगों का विश्वास बढ़ता जा रहा था।

प्रश्न 7—पूर्व एवं उत्तर वैदिककालीन सभ्यताओं का तुलनात्मक अध्ययन कीजिए। ***(1994)***

उत्तर—

पूर्व एवं उत्तर वैदिक कालीन सभ्यताओं का तुलनात्मक अध्ययन

पूर्व एवं उत्तर वैदिककालीन सभ्यताओं में निम्नलिखित दृष्टियों से अन्तर है—

(1) राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन—ऋग्वैदिक अथवा पूर्व वैदिक काल में राज्य कर्मचारियों (मन्त्रियों) की संख्या 3 थी, जो उत्तर वैदिक काल में 12 हो गई। उत्तर वैदिक काल में राजाओं की शक्तियों में भी वृद्धि हो गई और उन्होंने गौरवसूचक उपाधियाँ धारण करना प्रारम्भ कर दिया।

(2) वर्ण व्यवस्था का क्रमशः जटिल होना—पूर्व वैदिककाल में केवल चार वर्णों का उल्लेख मात्र ही मिलता है; परन्तु उत्तर वैदिक काल में वर्ण व्यवस्था और आश्रम व्यवस्था पूर्ण रूप से स्थिर हो गई।

(3) **नारी की दशा में परिवर्तन**—पूर्व वैदिककाल में नारी को विशेष सम्मान प्राप्त था, परन्तु उत्तर वैदिक काल में नारी की प्रतिष्ठा में काफी ह्रास हुआ। पुरुष अनेक पत्नियाँ रखने लगे थे और स्त्रियों को भोग-विलास की सामग्री समझा जाने लगा था।

(4) **कृषि के क्षेत्र में परिवर्तन**—पूर्व वैदिक काल की कृषि व्यवस्था के अन्तर्गत 'भूमिपति' का उल्लेख प्राप्त नहीं होता है; परन्तु उत्तर वैदिक काल में बड़े-बड़े भूमिपतियों का एक वर्ग वनना प्रारम्भ हो गया था। इसके अतिरिक्त, उत्तर वैदिक काल में कृषि के अनेक नवीन साधनों का प्रयोग होने लगा था।

(5) **पशुओं में गाय को अधिक महत्त्व**—पशुपालन के क्षेत्र में उत्तर वैदिक काल में गाय को पहले की अपेक्षा अधिक महत्त्व दिया जाने लगा था।

(6) **धार्मिक मान्यताओं में परिवर्तन**—पूर्व वैदिककाल में धर्म का स्वरूप अत्यन्त सरल था; परन्तु उत्तर वैदिक काल में कर्मकाण्डों को अधिक महत्त्व प्रदान किया जाने लगा। इस युग में देवताओं को प्रसन्न करने हेतु यज्ञों का प्रचलन बढ़ गया और यज्ञों में बलि भी दी जाने लगी। उत्तर वैदिक काल में ब्राह्मणों को भी काफी महत्त्व दिया जाने लगा।

> **पूर्व एवं उत्तर वैदिककालीन सभ्यताओं की तुलना**
>
> (1) राजनीतिक व्यवस्था में परिवर्तन
> (2) वर्ण व्यवस्था का क्रमशः जटिल होना
> (3) नारी की दशा में परिवर्तन
> (4) कृषि के क्षेत्र में परिवर्तन
> (5) पशुओं में गाय को अधिक महत्त्व
> (6) धार्मिक मान्यताओं में परिवर्तन।

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—ऋग्वैदिक तथा सिन्धु सभ्यता के चार मुख्य अन्तर क्या थे? *(1990)*

उत्तर—ऋग्वैदिक तथा सिन्धु सभ्यता के चार मुख्य अन्तर निम्नलिखित थे—

(1) इन सभ्यताओं में प्रथम अन्तर यह था कि वैदिक सभ्यता ग्रामीण थी, जबकि सिन्धु सभ्यता नगरीय थी।

(2) दूसरा अन्तर दोनों सभ्यता के लोगों के पहनावे में था।

(3) तीसरा अन्तर यह था कि घोड़ा, गाय और लोहा ये तीनों वस्तुएँ आर्यों के लिए बड़ी महत्त्वपूर्ण थीं, परन्तु सिन्धुवासियों के लिए गाय का महत्त्व नहीं था और लोहे तथा घोड़े का तो उन्हें सम्भवतः ज्ञान ही नहीं था।

(4) सिन्धु सभ्यता के लोग मूर्ति-पूजा में विश्वास करते थे, परन्तु वैदिक सभ्यता के लोग मूर्तिपूजक नहीं थे।

प्रश्न 2—आर्यों के मूल निवास स्थान सम्बन्धी प्रतिपादित चार सिद्धान्तों का उल्लेख कीजिए।

उत्तर—आर्यों के मूल निवास स्थान के सम्बन्ध में प्रतिपादित चार मुख्य सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

(i) सर विलियम जोन्स के अनुसार, आर्य; हंगरी, जर्मनी या रूस के साइबेरिया प्रदेश से भारत में आए थे।

(ii) मैक्समूलर और ब्रैडस्टीन के अनुसार, आर्य मध्य एशिया के पामीर या किर्गीज स्टेप्स के मैदानों से भारत में आए थे।

(iii) लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के अनुसार, आर्य उत्तरी ध्रुव प्रदेश से भारत में आए थे।

(iv) राजबली पाण्डेय ने आर्यों का मूल निवास स्थान भारत बताया है।

प्रश्न 3—आश्रम-व्यवस्था क्या थी?

उत्तर : आश्रम व्यवस्था—आश्रम-व्यवस्था का विकास उत्तर वैदिक काल में हुआ। आर्यों ने मानव जीवन 100 वर्ष का माना और इसको चार भागों में विभाजित किया—ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम। प्रत्येक आश्रम 25 वर्ष का होता था। ब्रह्मचर्य आश्रम में बालक गुरु के आश्रम में रहकर विद्याध्ययन करता था और पूर्ण रूप से ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करता था। गृहस्थ आश्रम में व्यक्ति विवाह करते थे और दाम्पत्य जीवन का उपभोग करते थे। वानप्रस्थ आश्रम में व्यक्ति अपने ज्येष्ठ पुत्र पर परिवार

का भार छोड़कर वन में चले जाते थे और तपस्या करते थे। संन्यास आश्रम में व्यक्ति अपने जीवन-साथी का भी त्याग कर दिया करते थे और त्यागमय जीवन व्यतीत करते थे।

प्रश्न 4—ऋग्वैदिक सामाजिक व्यवस्था की दो प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए। *(1995)*

उत्तर—ऋग्वैदिक सामाजिक व्यवस्था की दो प्रमुख विशेषताएँ निम्नवत् हैं—

(1) आदर्श कुटुम्ब व्यवस्था—ऋग्वैदिक काल में, सामाजिक इकाई के रूप में परिवार अथवा कुटुम्ब को मान्यता प्राप्त थी। परिवार का स्वामी पिता होता था और उसका परिवार के सभी सदस्यों पर नियन्त्रण रहता था। कुटुम्ब के सभी सदस्य परस्पर प्रेमपूर्ण व्यवहार करते थे।

(2) नारियों की सम्मानपूर्ण स्थिति—ऋग्वैदिक काल में नारियों को विशेष सम्मान प्राप्त था। इस काल में स्त्रियों का आचरण अत्यन्त श्रेष्ठ था। प्रत्येक धार्मिक कार्य में उनकी उपस्थिति आवश्यक समझी जाती थी। समाज में राजवंशों को छोड़कर, एक पत्नी विवाह की प्रथा ही प्रचलित थी।

प्रश्न 5—सिन्धु घाटी के निवासियों के दो प्रमुख देवताओं का संक्षिप्त विवरण दीजिए। *(1995)*

उत्तर—सिन्धु घाटी के निवासियों के दो प्रमुख देवताओं का संक्षिप्त विवरण निम्नवत है—

(1) शिव—हड़प्पा की खुदाई में एक ऐसी मुहर प्राप्त हुई है। इस मुहर पर बने चित्र को देखकर इतिहासकारों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि योग मुद्रा में प्रदर्शित की गई यह मूर्ति शिव की है। इस प्रकार सिन्धु घाटी के निवासी शिवोपासक थे।

(2) अग्नि—सिन्धु घाटी के निवासी अग्नि की पूजा भी करते थे। खुदाई में ऐसी वस्तुएँ प्राप्त हुई हैं, जिनके आधार पर यह ज्ञात होता है कि सिन्धु घाटी सभ्यता में अग्निशालाएँ भी थीं और वहाँ अग्नि देवता को बलि भी दी जाती थी।

प्रश्न 6—सैन्धव सभ्यता के दो प्रमुख स्थलों का परिचय दीजिए। *(1996)*

उत्तर—(नोट—इस प्रश्न के उत्तर हेतु ऐतिहासिक स्थलों से सम्बन्धित प्रश्न संख्या 2 के अन्तर्गत मोहनजोदड़ो और हड़प्पा का अध्ययन कीजिए।)

प्रश्न 7—सभा तथा समिति पर प्रकाश डालिए। *(1996)*

उत्तर—सभा तथा समिति का संक्षिप्त परिचय निम्नवत् है—

(1) समिति—समिति की सदस्य समस्त प्रजा होती थी। जनता द्वारा निर्वाचित यह संस्था अपने कार्यों के लिए जनता के प्रति उत्तरदायी होती थी। इसका कार्य राजा को परामर्श देना और राजा के निर्वाचन में भाग लेना था। यह राजा को अपदस्थ करने, निर्वासित करने अथवा अपदस्थ राजा को पुनः राजा बनाने का अधिकार भी रखती थी।

(2) सभा—इस संस्था में राजा द्वारा चुने गए सदस्य होते थे; जो शासन कार्यों में राजा को परामर्श देते थे। यह एक छोटी संस्था थी, जो राजा को परामर्श देते हुए उसकी निरंकुशता पर नियन्त्रण भी रखती थी।

प्रश्न 8—चातुर्वर्ण्य व्यवस्था पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। *(1997)*

उत्तर—चातुर्वर्ण्य व्यवस्था—वैदिक काल में सम्पूर्ण समाज को कार्य-विभाजन की दृष्टि से चार वर्णों में विभक्त किया गया था। ये चार वर्ण थे—(1) ब्राह्मण, (2) क्षत्रिय, (3) वैश्य तथा (4) शूद्र। समाज में ब्राह्मण वर्ग को सर्वाधिक सम्मान प्राप्त था। ब्राह्मण का कार्य पठन-पाठन, क्षत्रिय का कार्य युद्ध एवं राज्य की रक्षा करना, वैश्य का कार्य व्यापार करना तथा शूद्र का कार्य तीनों वर्णों के व्यक्तियों की सेवा करना था। वैदिक ऋषियों की कल्पना के अनुसार वर्ण का निर्धारण मानव शरीर के रूप में किया गया। उनके अनुसार शरीर का शीर्ष स्थान ब्राह्मण थे, भुजा रूप क्षत्रिय थे, पेट एवं जंघा के रूप में वैश्य थे तथा शूद्र पैरों के समान थे। 'पुरुषसूक्त' के अनुसार तो आदि पुरुष के मुख से ब्राह्मण, भुजाओं से क्षत्रिय, जंघाओं से वैश्य और चरणों से शूद्र की उत्पत्ति हुई।

ऋग्वैदिक काल में यह वर्ण व्यवस्था वंशानुगत नहीं थी, वरन् व्यक्ति की योग्यता, गुण एवं कर्म के आधार पर ही उसके वर्ण का निर्धारण होता था। कालान्तर में यही वर्ण व्यवस्था जाति प्रथा व्यवस्था में परिवर्तित हो गई और व्यक्ति की जाति का निर्धारण वंशानुगत हो गया।

ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों और व्यक्तियों पर आधारित प्रश्न

प्रश्न 1—निम्नांकित तिथियों से सम्बन्धित ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख कीजिए—

उत्तर—(1) 2500 ईसा पूर्व *(1997, 99)*—कुछ विद्वानों के अनुसार इसी तिथि को आर्यों का भारत में आगमन हुआ।

(2) 2500 ईसा पूर्व—1500 ईसा पूर्व *(1997)*—2500 ई० पूर्व में आर्यों ने भारत में प्रवेश किया तथा उनके प्रयासों के फलस्वरूप 1500 ई० पूर्व तक भारत में वैदिक सभ्यता का विकास हुआ।

(3) 1922 ई० *(1992)*—इस तिथि को सर जॉन मार्शल के नेतृत्व में राखालदास बनर्जी ने मोहनजोदड़ो में सिन्धु सभ्यता की खोज करके भारतीय इतिहास में एक नए अध्याय को जोड़ दिया।

(4) 1935 ई० *(1996)*—इस तिथि को एम० एस० वाट्सन के निर्देशन में रंगपुर नामक स्थान पर सिन्धु सभ्यता के अवशेष प्राप्त किए गए।

(5) 1954 ई०—इस तिथि को लोथल (गुजरात) नामक स्थान में सिन्धु सभ्यता के अवशेष खोज निकाले गए और यह ज्ञात हुआ कि सिन्धु घाटी सभ्यता का क्षेत्र काफी विस्तृत था।

प्रश्न 2—निम्नलिखित ऐतिहासिक स्थानों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) मोहनजोदड़ो *(1999)*—यह स्थान सिन्ध (वर्तमान में पश्चिमी पाकिस्तान में) के लरकाना जिले में स्थित है। सन् 1922 ई० में सर जॉन मार्शल की अध्यक्षता में राखालदास बनर्जी ने इस स्थान की खुदाई कराई। इस खुदाई में मकान, स्नानागार, आँगन, सीढ़ियाँ, सड़कें, अनाज के अवशेष, जानवरों के चित्र, धातु की वस्तुएँ, मिट्टी की मूर्तियाँ, मुहरें आदि अनेक वस्तुएँ मिली हैं। इन अवशेषों के आधार पर ही विद्वानों ने मोहनजोदड़ो को प्राचीन सिन्धु घाटी सभ्यता का प्रधान केन्द्र स्वीकार किया है।

(2) हड़प्पा—हड़प्पा नामक स्थान पंजाब के मांटगोमरी जिले (वर्तमान में पश्चिमी पाकिस्तान) में स्थित है। सन् 1921 ई० में दयाराम साहनी ने इस स्थान की खुदाई कराकर अनेक पाषाण मूर्तियाँ, मुद्राएँ, ताँबे की मुहरें, आभूषण व भवनों के अवशेष प्राप्त किए, जिनके आधार पर हड़प्पा को सिन्धु सभ्यता का दूसरा प्रधान नगर घोषित किया गया है।

(3) लोथल—यह स्थान गुजरात राज्य में समुद्र तट के निकट स्थित है। सन् 1954–55 ई० में इस स्थान की खुदाई में स्त्री-पुरुषों के अवशेष, सीरिया और मिस्र के लोगों की कुछ मूर्तियाँ, धातुओं व बहुमूल्य पत्थरों की अनेक वस्तुएँ तथा मकानों के भग्नावशेष आदि प्राप्त हुए हैं। इनके आधार पर यह अनुमान लगाया गया कि लोथल सिन्धु सभ्यता का मुख्य केन्द्र था और प्राचीन काल में एक विकसित बन्दरगाह था।

(4) हस्तिनापुर *(1992, 97)*—यह स्थान मेरठ जिले में स्थित है। यहाँ वैदिक सभ्यता के अनेक अवशेष आज भी देखने को मिलते हैं। महाभारत काल में हस्तिनापुर वैदिक सभ्यता का एक प्रमुख नगर तथा सभ्यता का केन्द्र था।

(5) इन्द्रप्रस्थ *(1998)*—यह स्थान दिल्ली के निकट स्थित है। यह वैदिक काल का एक ऐतिहासिक केन्द्र था। इस स्थान पर अनेक ऐतिहासिक भवनों के अवशेष आज भी विद्यमान हैं।

प्रश्न 3—निम्नांकित ऐतिहासिक व्यक्तियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) वाल्मीकि—वाल्मीकि 'रामायण' नामक महाकाव्य के रचयिता थे, जिसमें श्रीरामचन्द्र की जीवनगाथा का सजीव चित्रण किया गया है। इनके जीवन के सम्बन्ध में विस्तृत सूचना उपलब्ध नहीं है। कहा जाता है कि प्रारम्भ में ये डाकू थे, परन्तु बाद में मरा-मरा के जाप ने इनके जीवन को पूर्णतः परिवर्तित कर दिया और यह एक महर्षि बन गए। इनकी कृति 'रामायण' ने इन्हें ऐतिहासिक पुरुष बना दिया।

(2) वेदव्यास—ये महाभारत नामक महाकाव्य के रचयिता थे। इस ग्रन्थ में कौरवों और पाण्डवों के शौर्यपूर्ण कार्यों का वर्णन है। वेदव्यास की यह ऐतिहासिक रचना भारतीय इतिहास की बहुमूल्य विरासत है।

(3) श्रीरामचन्द्र—ये अयोध्या के राजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र थे। इन्होंने लंका के राजा रावण को पराजित कर अधर्म का विनाश किया और धर्म की रक्षा की। ये एक प्रजापालक तथा आदर्श शासक भी थे। हिन्दू धर्मावलम्बियों के द्वारा इनको ईश्वर का अवतार माना जाता है और इनकी उपासना की जाती है।

(4) श्रीकृष्ण—ये वासुदेव के पुत्र थे और देवकी इनकी माता का नाम था। इनका जन्म राजा कंस के कारागार में हुआ था। युवा होकर इन्होंने अनेक असुरों का संहार किया और राजा कंस का वध कर जनता को उसके अत्याचारों से मुक्ति दिलाई। महाभारत के युद्ध में श्रीकृष्ण ने अर्जुन को गीता का उपदेश देकर निष्काम भाव से कर्म करने की शिक्षा दी। भारतवासी उनकी उपासना ईश्वर के रूप में करते हैं।

(5) युधिष्ठिर—ये पाण्डव भाइयों में ज्येष्ठ और अपने समय के सत्यवादी महापुरुष थे। महाभारत नामक महाकाव्य में इनसे सम्बन्धित अनेक दन्तकथाओं का वर्णन मिलता है।

(6) राजा परीक्षित—राजा परीक्षित वैदिककालीन राजाओं की अन्तिम कड़ी थे। वैदिक ग्रन्थों के अनुसार पाण्डवों के काल-कवलित हो जाने के बाद उन्होंने उत्तरी भारत की सत्ता ग्रहण की। भारतीय इतिहास में उन्हें ऐतिहासिक महत्त्व प्राप्त है ।

5 धार्मिक क्रान्ति का युग : जैन धर्म व बौद्ध धर्म

[महावीर स्वामी का जीवन परिचय, जैन धर्म के सिद्धान्त, बुद्ध का जीवन परिचय, बौद्ध धर्म के सिद्धान्त, बौद्ध धर्म की उत्थान एवं पतन के कारण, बौद्ध धर्म की देन, जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म का तुलनात्मक अध्ययन]

"अनेक विचारों तथा मान्यताओं में जैन धर्म हिन्दू धर्म को अपनाए हुए हैं। जैन तीर्थंकरों ने जैन धर्म की स्थापना द्वारा प्राचीन वैदिक धर्म में सुधारवादी प्रयोग किए तथा किसी नवीन एवं अभिन्न अंग की स्थापना नहीं की।"

— जे० एस० नेगी

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—जैन धर्म के 24वें तीर्थंकर महावीर स्वामी के जीवन-वृत्तान्त का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

अथवा **महावीर स्वामी के जीवन और उनकी शिक्षाओं पर प्रकाश डालिए।** *(1991)*

अथवा **महावीर के जीवन तथा उनकी शिक्षाओं का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।** *(1999)*

उत्तर—

महावीर स्वामी का जीवन परिचय

महावीर स्वामी को; जैन धर्म के अनुयायियों द्वारा 24वाँ तीर्थंकर स्वीकार किया जाता है। जैन धर्म के कुल 24 तीर्थंकरों में **ऋषभदेव** ई० पू०. के सर्वप्रथम तीर्थंकर थे। महावीर स्वामी का वास्तविक नाम **वर्धमान** था। उनका जन्म 599 ईसा पूर्व में उत्तरी भारत के एक गणराज्य वैशाली के निकट **'कुण्डग्राम'** में हुआ था। इनकी माता का नाम त्रिशला देवी और पिता का नाम सिद्धार्थ था। युवावस्था में उनका विवाह यशोदा नामक राजकुमारी से सम्पन्न हुआ, जिससे उन्हें एक कन्या **'प्रियदर्शना'** की प्राप्ति हुई।

जिस समय इनके माता-पिता का स्वर्गवास हुआ, उस समय वे तीस वर्ष के थे। इन्होंने सांसारिक मोह त्यागकर अपने बड़े भाई **नन्दिवर्धन** की आज्ञा से संन्यास (प्रवज्या) ले लिया और अपने शरीर को अनेक प्रकार की यातनाएँ देकर कठोर तपस्या की।

बारह वर्ष की कठोर साधना के पश्चात् इन्हें परम ज्ञान (केवल्य) प्राप्त हुआ। अब वे पाँच **ज्ञानों—मति ज्ञान, श्रुत ज्ञान, अवधि ज्ञान, मन पर्याय ज्ञान और केवल्य ज्ञान** के पूर्ण स्वामी हो गए थे।

ज्ञान-प्राप्ति के पश्चात् महावीर; अर्हन्त, जिन तथा निग्रन्थ आदि नामों से सम्बोधित किए जाने लगे और इनके द्वारा प्रचलित धर्म जैन-धर्म कहलाने लगा।

पूर्ण ज्ञान होने के पश्चात् महावीर सम्पूर्ण भारत में तीस वर्ष तक अपने ज्ञान का प्रचार करते रहे। ग्यारह गणधर इनके प्रमुख शिष्य थे। इसके उपरान्त 527 ई० पू० में 72 वर्ष की आयु में मल्लों की दूसरी राजधानी पावापुरी में महावीर स्वामी ने अपना नश्वर शरीर त्यागकर मोक्ष प्राप्त किया।

(नोट—महावीर स्वामी की शिक्षाओं के लिए प्रश्न संख्या 2 का अध्ययन कीजिए।)

प्रश्न 2—जैन धर्म के प्रमुख सिद्धान्तों या शिक्षाओं का उल्लेख कीजिए।

अथवा **"जैन धर्म लोकहित करने वाला कर्मकाण्डों से विहीन सर्वग्राही धर्म है।" समालोचना कीजिए।**

अथवा **महावीर स्वामी द्वारा प्रतिपादित जैन धर्म के मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए।**

अथवा **जैन धर्म के सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए। इस धर्म की सफलता के क्या कारण थे?**

उत्तर—

जैन धर्म के सिद्धान्त (शिक्षाएँ)

महावीर स्वामी के सिद्धान्त अत्यन्त सरल और व्यावहारिक थे, इसलिए जैन-धर्म अल्प-समय में ही इतना अधिक विस्तृत एवं प्रसिद्ध हुआ और यह धर्म आज भी जन-जन में व्याप्त है। इस जनप्रिय जैन-धर्म के सिद्धान्त इस प्रकार हैं—

जैन धर्म के सिद्धान्त (शिक्षाएँ)

(1) ईश्वर में अविश्वास
(2) वेदों में अविश्वास
(3) त्रिरत्नों के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति
(4) मोक्ष प्राप्ति की प्रथम सीढ़ी : पाँच महाव्रत—(i) अहिंसा, (ii) सत्य, (iii) अस्तेय, (iv) अपरिग्रह, (v) ब्रह्मचर्य।
(5) कर्म की प्रधानता में विश्वास
(6) मोक्ष की प्राप्ति
(7) आत्मा की सत्ता में विश्वास
(8) कुछ अन्य सिद्धान्त
(9) अनेकान्तवाद
(10) स्यादवाद्।

(1) ईश्वर में अविश्वास—जैन धर्म मतावलम्बी ईश्वर को सृष्टि का निर्माता एवं पालनकर्त्ता नहीं मानते हैं। महावीर के अनुसार, ईश्वर नाम की कोई ऐसी सत्ता नहीं है, जो जीव-जन्तुओं के सुख या दुःख की निर्धारक हो। जैन धर्म के अनुसार केवल स्वकर्मों से ही दुःख-सुख मिलता है।

(2) वेदों में अविश्वास—जैन धर्म के अनुयायी वेदों में विश्वास नहीं करते। वेदों में ईश्वर और सृष्टि के बारे में जो कुछ कहा गया है, उस पर ये विश्वास नहीं करते, अपितु महावीर स्वामी के वचनों में ही विश्वास करते हैं।

(3) त्रिरत्नों के द्वारा मोक्ष की प्राप्ति—जैन धर्म के मुख्य सिद्धान्त त्रिरत्न के नाम से प्रसिद्ध हुए हैं। ये त्रिरत्न हैं— (1) सम्यक् ज्ञान, (2) सम्यक् दर्शन तथा (3) सम्यक् चरित्र। ज्ञान, दर्शन और चरित्र; आत्मा में मूल रूप से निहित अवस्थाएँ हैं। तीर्थंकरों द्वारा दिखाए मार्ग पर चलकर इन तीनों रत्नों की प्राप्ति से तथा कर्मों के बन्धन से मुक्ति पाकर आत्मा जन्म-मरण से मुक्ति प्राप्त कर लेती है और मोक्ष में चली जाती है। इसी अवस्था को जैन धर्म में निर्वाण (मुक्ति) कहा जाता है।

(4) मोक्ष-प्राप्ति की प्रथम सीढ़ी : पाँच महाव्रत— जैन धर्म के अनुसार, मोक्ष प्राप्ति के लिए पाँच अन्य नियमों का पालन करना भी आवश्यक है। ये नियम या महाव्रत इस प्रकार हैं—

(i) अहिंसा—इसका अर्थ है—'जीव मात्र के प्रति दया का व्यवहार करना'।

(ii) सत्य—जैन धर्म के अनुसार मनुष्य को सदैव सत्य बोलना चाहिए। सत्य बोलने के लिए मनुष्य को लोभ, मोह, मायाचार एवं क्रोध से दूर रहना चाहिए।

(iii) अस्तेय—इससे तात्पर्य है—'चोरी न करना'।

(iv) अपरिग्रह—इसका अर्थ है—'सांसारिक वस्तुओं का संग्रह करने के मोह को त्याग देना'।

(v) ब्रह्मचर्य—इसका अर्थ है—'इन्द्रियों को वश में करते हुए सदाचार पर आधारित जीवन व्यतीत करना'।

(5) कर्म की प्रधानता में विश्वास—जैन धर्म 'कर्मवाद' में विश्वास रखता है, जिसका आशय है कि इस संसार में जो भी जन्म लेता है, उसे अपने वर्तमान जीवन के कर्मों और पूर्व जन्म के कर्मों के अनुसार

फल की प्राप्ति होती है। कर्म के ही आधार पर जीव को योनि एवं सुख-दुःख की प्राप्ति होती है। जैन धर्म में कर्मबन्धन तीन बलों—मन-बल, वचन-बल, काय-बल (शरीर-बल) के द्वारा स्वीकार किया गया है अर्थात् मन में विचार कर लेने से ही शुभ या अशुभ कर्मों का बन्धन हो जाता है।

(6) मोक्ष की प्राप्ति—जैन धर्म के अनुयायियों का मत है कि मनुष्य पूर्वजन्म के कर्मों को भोगने के लिए ही बार-बार जन्म लेता है। परन्तु जब उसकी आत्मा इन जन्म-मरण के बन्धनों से मुक्त हो जाती है, तो वह परम-ज्ञान या केवल्य ज्ञान की प्राप्ति कर निर्वाण अवस्था को प्राप्त होती है। इस दशा को मोक्ष की प्राप्ति भी कहते हैं।

(7) आत्मा की सत्ता में विश्वास—महावीर स्वामी समस्त चेतन प्राणियों में आत्मा का अस्तित्व स्वीकार करते थे। इसी आधार पर यह माना जाता है कि प्रत्येक जीव में एक स्थायी, अजर और अमर आत्मा निवास करती है और जीव की मृत्यु हो जाने पर यही आत्मा नए शरीर में प्रवेश कर जाती है।

(8) कुछ अन्य सिद्धान्त—(i) जैन-धर्म के अनुयायी तप एवं व्रत में दृढ़ विश्वास करते हैं।

(ii) ये पशुओं की बलि का प्रबल विरोध करते हैं।

(iii) आखेट, मांस-भक्षण, नारी-गमन, जुआ तथा नशीली वस्तुओं के परित्याग को भी सच्चे जैन धर्मावलम्बियों के लिए परम आवश्यक माना गया है।

(9) अनेकान्तवाद—जैन धर्म ने मत-मतान्तरों के पारस्परिक वाद-विवाद को दूर करने के लिए अनेकान्तवाद का प्रतिपादन किया। अनेकान्तवाद के अनुसार, कोई भी सिद्धान्त या कथन पूर्णरूपेण सत्य या असत्य नहीं है।

(10) स्यादवाद्—स्यादवाद् जैन धर्म का सबसे महत्त्वपूर्ण सिद्धान्त है। इसका अभिप्राय यह है कि जो बात कही जा रही है, वह किसी विशेष अपेक्षा से (किसी एक इच्छित दृष्टिकोण से) कही जा रही है, परन्तु यह बात अन्य दृष्टिकोणों से या अपेक्षाओं से भी कही जा सकती है और नहीं भी कही जा सकती है।

जैन धर्म के उपर्युक्त सिद्धान्तों का अध्ययन करने से यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि जैन धर्म लोकहितकारी धर्म है और इस धर्म में व्यर्थ के कर्मकाण्डों के लिए कोई स्थान नहीं है। इसी कारण प्रायः यह कहा जाता है कि यह एक **सर्वग्राही धर्म** है।

(नोट—जैन धर्म की सफलता के कारणों के लिए प्रश्न संख्या 3 के उत्तर का अध्ययन कीजिए।)

प्रश्न 3—जैन धर्म की सफलता के क्या कारण थे? यह धर्म आज भी क्यों जीवित है?

अथवा **"जैन धर्म सभी के लिए सामान्य रूप से खुला हुआ और जटिल कर्मकाण्डों से विहीन होने के कारण सफल, लोकप्रिय धर्म था।" विवेचना कीजिए।**

अथवा **जैन धर्म के सीमित प्रसार के कारणों की विवेचना कीजिए।**

उत्तर—

जैन धर्म की सफलता के कारण

जैन धर्म प्रारम्भ से ही अपने सरल एवं महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों के कारण बहुत विकसित हुआ। महावीर स्वामी ने स्वयं भ्रमण कर जैन धर्म का प्रचार किया। उनके द्वारा स्थापित संघों में अनेक भिक्षु एवं भिक्षुणियाँ थीं। जिस समय जैन-धर्म का उदय हुआ, उस समय जनता ब्राह्मण धर्म के असमानता पर आधारित दृष्टिकोण से बहुत असन्तुष्ट थी। जनता में सामाजिक एवं धार्मिक दृष्टि से अत्यधिक असन्तोष व्याप्त था। इसलिए पर्याप्त संख्या में लोग समानता पर आधारित इस धर्म की ओर आकृष्ट हुए। कुछ तत्कालीन सम्राटों ने भी इस धर्म को अपनी सुरक्षा एवं संरक्षण प्रदान किया। महावीर स्वामी का धर्म-दरबार शूद्रों एवं स्त्रियों के लिए भी समान रूप से खुला हुआ था। यही कारण था कि महावीर स्वामी भी महात्मा बुद्ध की भाँति प्रसिद्ध हुए और उनके उपदेश बहुत लोकप्रिय हुए। यही नहीं, भारत में जैन धर्म आज भी विद्यमान है, जबकि इसी धर्म का समकालीन बौद्ध धर्म प्रायः लुप्त हो चुका है।

कर्मकाण्डों से विहीन जैन धर्म का व्यावहारिक स्वरूप भी इसके प्रचार में अत्यन्त सहायक हुआ था। इसके सिद्धान्त प्रत्येक मानव के कल्याण के लिए तो थे ही साथ ही इस धर्म में पशुओं एव कीट-पतंगों तक के लिए सद्व्यवहार और स्नेह करने के निर्देश दिए गए थे। अतः यह धर्म, जो किसी भी जाति-भेद और वर्ग-भेद से दूर और जटिल कर्मकाण्डों से विहीन था, इन्हीं कारणों से जनता में बहुत लोकप्रिय था।

उच्च नियमों और आदर्शों के कारण आज भी यह धर्म भारत में बहुत लोकप्रिय है। जैन मुनियों और साध्वियों का त्यागमय जीवन इसकी सतत् अभिवृद्धि की आधारशिला है।

जैन धर्म के सीमित प्रसार के कारण

प्राचीन काल में बौद्ध धर्म की तुलना में जैन धर्म अधिक लोकप्रिय न हो सका। जैन धर्म केवल भारत की सीमाओं तक ही सीमित रहा, जबकि बौद्ध धर्म न केवल भारत वरन् सम्पूर्ण दक्षिण-पूर्वी एशिया तक विस्तृत हुआ। संक्षेप में जैन धर्म के सीमित होने के कारण थे—

(1) कठोर व अव्यावहारिक सिद्धान्त, (2) जटिल दार्शनिक सिद्धान्त, (3) अहिंसा पर विशेष बल, (4) मौलिकता का अभाव, (5) राजकीय संरक्षण का अभाव, (6) बौद्ध-धर्म तथा ब्राह्मण-धर्म से प्रतिस्पर्द्धा, (7) जाति-प्रथा का विरोध, (8) प्रचार साधनों का अभाव, (9) दो सम्प्रदायों का उदय और (10) विदेशी आक्रमण।

उपर्युक्त कारणों के फलस्वरूप ही जैन धर्म, बौद्ध धर्म की अपेक्षा अधिक लोकप्रियता प्राप्त न कर सका।

प्रश्न 4—गौतम बुद्ध के जीवन और उनकी शिक्षाओं का संक्षिप्त परिचय दीजिए। *(1999)*

अथवा **"मेरे जीवन की शृंखला में एक कड़ी और जुड़ गई है।" बुद्ध के जीवन-परिचय के सन्दर्भ में इस उक्ति की विवेचना कीजिए।**

अथवा **गौतम बुद्ध के जीवन तथा शिक्षाओं की रूपरेखा प्रस्तुत कीजिए।** *(1991, 97)*

उत्तर—

महात्मा बुद्ध का जीवन परिचय

महात्मा बुद्ध का जीवन परिचय निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया है—

(1) प्रारम्भिक जीवन—गौतम बुद्ध का जन्म लगभग 563 ई० पू० शाक्य गणराज्य की राजधानी कपिलवस्तु के पास लुम्बिनी वन में हुआ था। इनकी जन्म तिथि के विषय में विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है। इनका बचपन का नाम सिद्धार्थ था। इनके पिता राजा शुद्धोधन थे तथा माता का नाम महामाया था। बुद्ध के जन्म के सात दिन पश्चात् महामाया का निधन हो गया था। इनकी मौसी प्रजापति गौतमी ने इनका पालन-पोषण किया। ये प्रारम्भ से ही एकान्तप्रिय, मननशील एवं दयावान थे। सिद्धार्थ के ऐसे स्वभाव से इनके पिता को बहुत चिन्ता हुई। इसीलिए उन्होंने भोग-विलास की समस्त वस्तुएँ इनके चारों ओर एकत्र कर दीं, किन्तु इनका मन सांसारिक भोगों की ओर आकर्षित न हो सका।

महात्मा बुद्ध का जीवन परिचय

(1) प्रारम्भिक जीवन
(2) वैवाहिक जीवन
(3) गृह का परित्याग
(4) बुद्धत्व या ज्ञान की प्राप्ति
(5) धर्म का प्रचार
(6) निर्वाण की प्राप्ति।

(2) वैवाहिक जीवन—सांसारिक सुखों के प्रति उदासीनता के कारण इनके पिता ने 16 वर्ष की अल्पायु में ही इनका विवाह यशोधरा नामक एक सुन्दर राजकुमारी से कर दिया। कुछ समय पश्चात् इन्हें एक पुत्ररत्न प्राप्त हुआ। उसका नाम राहुल रखा गया। सम्पूर्ण राजमहल में खुशियाँ मनाई गईं, किन्तु इनको कोई विशेष प्रसन्नता नहीं हुई और इन्होंने इस अवसर पर कहा, "आज मेरे बन्धन की शृंखला की एक कड़ी और बढ़ गई है।" पुत्रजन्म के उपरान्त बुद्ध अपनी इन शृंखलाओं को तोड़ने के लिए और भी अधिक प्रयत्नशील हो गए। कुछ समय के उपरान्त बुद्ध ने एक वृद्ध व्यक्ति को, एक बीमार व्यक्ति को तथा एक शव को ले जाते देखा, जिससे इनके मन में और भी अधिक तीव्र वैराग्य उत्पन्न हो गया।

(3) गृह का परित्याग—कुछ दिनों पश्चात् एक दिन रात्रि के समय ऐसा प्रतीत हुआ कि कोई उनसे कह रहा है कि, "यही समय है, उठो संसार का त्याग कर अपने लक्ष्य को ढूँढने के लिए चल पड़ो।" गौतम इस आवाज की अवहेलना न कर सके। वे अपनी शृंखलाओं को तोड़कर 28 वर्ष की अवस्था में घर त्याग कर चल दिए। बौद्ध धर्म में बुद्ध के गृह-त्याग की इस घटना को 'महाभिनिष्क्रमण' कहते हैं। इसके पश्चात् इन्होंने अपना मुंडन कराया, पीले वस्त्र धारण किए तथा ज्ञान की खोज में निकल पड़े।

(4) बुद्धत्व या ज्ञान की प्राप्ति—सत्य की खोज में भ्रमण करते हुए सिद्धार्थ की अनेक महापुरुषों, साधुओं और संन्यासियों से भेंट हुई। मगध की राजधानी में सांख्ययोग के आचार्य अलार-कलाम और 250 शिष्यों के गुरु आचार्य उद्रक नामक दो प्रसिद्ध ब्राह्मणों से इनका परिचय हुआ, किन्तु इनसे सिद्धार्थ सन्तुष्ट न हुए। तब उन्होंने कठोर तपस्या द्वारा ज्ञान प्राप्ति का निर्णय किया। अतः उन्होंने उरूवेला की एक पहाड़ी पर अपने पाँच ब्राह्मण मित्रों सहित घोर तपस्या प्रारम्भ कर दी। इस घोर तपस्या से भी जब उन्हें अपने उद्देश्य की प्राप्ति होती दिखाई नहीं पड़ी तो उन्होंने तप तथा व्रत को त्याग दिया तथा अल्पाहार प्रारम्भ कर दिया। उनके साथियों ने सोचा कि, **"गौतम भोगवादी है, उसने शरीर के लिए व्रत का परित्याग किया है।"** ऐसा मानकर इन्होंने बुद्ध का साथ त्याग दिया। जब एक दिन वे पीपल के वृक्ष के नीचे ध्यानस्थ होने जा रहे थे, तो ध्यान लगाने से पूर्व उन्होंने सुजाता नामक कन्या से पायस (खीर) ग्रहण की। फिर वे ध्यान लगाकर बैठ गए, तो उन्हें अकस्मात् अपने हृदय में परम प्रकाश का अनुभव हुआ। यह प्रकाश ही बुद्धत्व (ज्ञान की प्राप्ति) था। बौद्ध धर्म में इस घटना को 'सम्बोधि' कहा गया है। जिस वृक्ष के नीचे गौतम बुद्ध ने ज्ञान प्राप्त किया था वह वृक्ष, कालान्तर में बोधि वृक्ष कहलाया।

(5) धर्म का प्रचार—महात्मा बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश सारनाथ (बनारस) में दिया। वहाँ उनके वही पाँचों पुराने मित्र थे, जिन्होंने उन्हें पथभ्रष्ट कहकर उनका साथ त्याग दिया था। ये पाँचों बुद्ध के उपदेशों से बहुत प्रभावित हुए और अपने किए व्यवहार की क्षमा माँगी। बुद्ध ने इन्हें क्षमा कर दिया और उन्हें अपना शिष्य बना लिया। भारतीय इतिहास में बौद्ध धर्म के प्रचार से सम्बन्धित यह प्रारम्भिक घटना 'धर्म-चक्र प्रवर्तन' (धर्म के चक्र का चलाना) के नाम से विख्यात हुई।

(6) निर्वाण की प्राप्ति—बुद्ध अनेक स्थानों पर उपदेश देते हुए पावापुरी पहुँचे। यहाँ उनको अतिसार का भयंकर रोग हो गया। इसी स्थिति में वे वहाँ से फिर कुशीनगर गए, जहाँ अति उदर पीड़ा के कारण उन्होंने अपना शरीर त्याग दिया और मोक्ष को प्राप्त हुए। 483 ईसा पूर्व की यह घटना 'महापरिनिर्वाण' के नाम से प्रसिद्ध है।

वस्तुतः गौतम बुद्ध मानवता की भावना के सच्चे पोषक, प्रचारक और प्रतीक थे। उनकी मानवता के सन्दर्भ में डॉ० राधाकृष्णन ने लिखा है कि, **"शंका, सन्देह और वास्तविकता से भरे हुए कितने ही साहित्यों में बुद्ध-देव का नाम आदर से लिया गया है। जो मानवतावादी हैं वे बुद्ध-देव का आदर यह समझकर करते हैं कि वे मानवता के प्राचीनतम प्रवर्त्तकों में से एक हैं।"**

(नोट—गौतम बुद्ध की शिक्षाओं के लिए अगला प्रश्न देखिए।)

प्रश्न 5—महात्मा बुद्ध के प्रमुख उपदेशों की विवेचना कीजिए। *(1991)*

अथवा **"बौद्ध-दर्शन, इच्छा समाप्ति के द्वारा दुःख के निरोध का महान् दर्शन है।" बौद्ध-दर्शन और शिक्षाओं के प्रकाश में इस कथन की विवेचना कीजिए।** *(M. Imp.)*

अथवा **गौतम बुद्ध की शिक्षाओं का वर्णन कीजिए।** *(1995)*

उत्तर—

बौद्ध धर्म के सिद्धान्त (शिक्षाएँ)
(महात्मा बुद्ध के उपदेश)

महात्मा बुद्ध के प्रमुख उपदेश उनके चार 'आर्य सत्य' थे, जिन पर उन्होंने विशेष बल दिया। उनके अन्य उपदेश अथवा सिद्धान्त इन्हीं चार आर्य सत्यों पर आधारित थे। ये चार आर्य सत्य इस प्रकार हैं—

(1) दुःख—बुद्ध का कहना था कि मानव जीवन में चारों ओर दुःख ही दुःख है। रोग, बुढ़ापा और मृत्यु ये तीनों दुःख मनुष्य के जीवन में निश्चित रूप से आते हैं। इसके अतिरिक्त, इच्छित वस्तु की प्राप्ति न होने पर भी दुःख का अनुभव होता है। प्रिय के बिछुड़ने पर भी दुःख होता है। इस प्रकार संसार दुःखों का सागर है।

(2) दुःख समुदय (दुःख का कारण)—भगवान बुद्ध ने निर्बोध जनता को केवल दुःख की स्थिति को ही नहीं बताया, बल्कि दुःखों की उत्पत्ति का कारण (इच्छा, तृष्णा, भोग, काम-वासना आदि) भी बताया।

(3) दुःखों की समाप्ति तृष्णा के नाश से सम्भव है—लोगों को दुःख का कारण समझा देने के बाद उन्होंने तीसरे सत्य के अन्तर्गत यह बताया कि यदि इस तृष्णा को नष्ट कर दिया जाए, तो मनुष्य जन्म-मरण के चक्कर से मुक्त हो निर्वाण प्राप्त करता है। महात्मा बुद्ध का तीसरा आर्य सत्य यही है कि दुःख की समाप्ति भी एक दिन अवश्य होती है और यह इच्छा समाप्ति से ही सम्भव होती है। यही मुख्य बौद्ध-दर्शन है। वस्तुतः "बौद्ध-दर्शन, इच्छा समाप्ति के द्वारा दुःख के निरोध का महान् दर्शन है।"

बौद्ध धर्म के सिद्धान्त (शिक्षाएँ)

(1) दुःख
(2) दुःख समुदय
(3) दुःखों की समाप्ति तृष्णा के नाश से सम्भव है
(4) तृष्णा का नाश अष्टांगिक मार्ग द्वारा
(5) दस आचरण।

(4) तृष्णा का नाश अष्टांगिक मार्ग द्वारा—गौतम बुद्ध ने अपने चौथे आर्य सत्य में लोगों को इस तृष्णा से मुक्ति पाने के लिए अष्टांगिक मार्ग (Eight Fold Path) का अनुसरण करने पर बल दिया। अष्टांग मार्ग के अन्तर्गत आठ साधन हैं, जो इस प्रकार हैं—(i) सम्यक् दृष्टि, (ii) सम्यक् संकल्प, (iii) सम्यक् वाणी, (iv) सम्यक् जीविका, (v) सम्यक् कर्म, (vi) सम्यक् स्मृति, (vii) सम्यक् व्यायाम एवं (viii) सम्यक् समाधि।

इस अष्टांग मार्ग को 'मध्यमा-प्रतिपाद' अर्थात् मध्यम-मार्ग (Middle Path) भी कहते हैं।

(5) दस आचरण—बुद्ध ने अपने व्यावहारिक धर्म में दस आचरण (शीलों) को पालन करने का निर्देश दिया है। प्रथम पाँच आचरण संसार में रहने वाले गृहस्थों और बौद्ध भिक्षुओं तथा भिक्षुणियों दोनों के लिए हैं। बाद के पाँच आचरण केवल बौद्ध-भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिए ही हैं। ये दस आचरण निम्नलिखित हैं—

(i) **अहिंसा**—हिंसा न करना, (ii) **सत्य**—झूठ न बोलना, (iii) **अचौर्य**—चोरी न करना, (iv) **ब्रह्मचर्य**—व्यभिचार न करना, (v) **अपरिग्रह**—अधिक वस्तुओं का संग्रह न करना, (vi) असमय भोजन का परित्याग, (vii) कोमल आरामदायक शैया का परित्याग, (viii) सुगन्धित वस्तुओं इत्र, तेल तथा पुष्पों आदि का परित्याग, (ix) नृत्य, गायन, नाटक, तमाशों आदि का परित्याग, (x) मदिरा, बीड़ी आदि नशीली वस्तुओं का परित्याग।

इस तरह बुद्ध ने सम्पूर्ण मानव समाज के कल्याण के लिए इन मुख्य शिक्षाओं को आचरण में लाने का निर्देश दिया था, जिसका मूल उद्देश्य मानव-दुःखों की समाप्ति ही था।

महात्मा गौतम बुद्ध के महत्त्वपूर्ण दार्शनिक उपदेश

चार आर्य सत्यों के अतिरिक्त महात्मा बुद्ध के कुछ महत्त्वपूर्ण दार्शनिक उपदेश इस प्रकार हैं—

(1) नास्तिकवाद—महात्मा बुद्ध ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार नहीं करते थे। उनका मत था कि मनुष्य अपने पूर्वजन्म के कर्मानुसार स्वयं पृथक्-पृथक् योनियों में जन्म लेता रहता है। सृष्टि अनादि काल से चली आ रही है, इसमें ईश्वर का कहीं कोई अस्तित्व नहीं है तथा ईश्वर सुख-दुःखों का निर्धारक भी नहीं है।

(2) कर्मवाद—महात्मा बुद्ध का पुनर्जन्म में विश्वास था। उनका कहना था कि मनुष्य जैसे कर्म करता है उसी के अनुसार वह उच्च अथवा निम्न योनि में प्रवेश करता है। यदि वह अच्छे कर्म करता है तो उसे दुःखों से मुक्ति मिल जाती है अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है और यदि बुरे कार्य करता है तो उसे बार-बार विभिन्न योनियों में जन्म लेकर संसार और नर्क में अनेक प्रकार के दुःख भोगने पड़ते हैं।

गौतम बुद्ध के दार्शनिक उपदेश

(1) नास्तिकवाद
(2) कर्मवाद
(3) अनात्मवाद पर विचार
(4) निर्वाण अन्तिम उद्देश्य
(5) क्षणिकवादी दर्शन।

(3) अनात्मवाद पर विचार—महात्मा बुद्ध का मत था कि शरीर के नष्ट हो जाने पर आत्मा नाम की कोई वस्तु शेष नहीं रह जाती अर्थात् शरीर अनेक तत्त्वों से बना होता है और मृत्यु के बाद ये सभी तत्त्व

अलग-अलग हो जाते हैं, फिर आत्मा का अस्तित्व नहीं रहता। इस प्रकार, आत्मा के सम्बन्ध में उनके कोई स्पष्ट दार्शनिक विचार नहीं थे। वे तो केवल आदर्श आचरण का उपदेश देकर लोगों के जीवन को सुखी एवं शान्त बनाना चाहते थे। इस प्रकार बौद्ध-दर्शन अनात्मवादी दर्शन है।

(4) निर्वाण अन्तिम उद्देश्य—महात्मा बुद्ध का कहना था कि मनुष्य का अन्तिम उद्देश्य निर्वाण की प्राप्ति होना चाहिए। निर्वाण उस स्थिति को कहते हैं जहाँ मनुष्य की समस्त वासनाएँ और इच्छाएँ समाप्त हो जाती हैं। ऐसी स्थिति में पहुँचकर, इच्छाओंरहित होने पर, निर्वाण की प्राप्ति हो जाती है।

(5) क्षणिकवादी दर्शन—गौतम बुद्ध द्वारा प्रतिपादित बौद्ध दर्शन क्षणिकवादी दर्शन भी है। बौद्ध-दर्शन के अनुसार संसार क्षणभंगुर है। संसार की वस्तुएँ सत्ता परिवर्तन के कारण बनती-बिगड़ती रहती हैं। इस कारण संसार से मोह करना व्यर्थ है।

प्रश्न 6—बौद्ध धर्म के प्रमुख सम्प्रदायों का उल्लेख करते हुए समय-समय पर आयोजित बौद्ध संगीतियों का वर्णन कीजिए। *(1999)*

उत्तर

बौद्ध धर्म के सम्प्रदाय

महात्मा बुद्ध के जीवन काल में बौद्ध धर्म बहुत फला-फूला। देश-विदेश तक में उसका प्रसार हुआ। किन्तु उनके निर्वाण के बाद उनके जैसे प्रभावशाली व्यक्तित्व वाला कोई भिक्षु नहीं हुआ। बौद्ध भिक्षुओं में अनेक मतभेद उत्पन्न होने लगे। बौद्ध-सिद्धान्तों तथा व्यावहारिक नियमों के प्रति अनेक शंकाएँ उत्पन्न होने लगीं जिनके समाधान हेतु अनेक बौद्ध-संगीतियों का आयोजन किया गया, किन्तु ये संगीतियाँ बौद्ध-भिक्षुओं की शंकाओं का समाधान करने में असमर्थ रहीं। परिणामस्वरूप कालान्तर में बौद्ध मतानुयायी अपनी मान्यतानुसार अनेक सम्प्रदायों में विभाजित होने लगे। इन सम्प्रदायों में हीनयान और महायान दो प्रमुख सम्प्रदाय थे। इन दोनों सम्प्रदायों के उत्पन्न होने का प्रमुख कारण यह था कि जब बौद्ध धर्म को राज्याश्रय की प्राप्ति हुई तो अनेक राज्यों में उसने 'राज्य-धर्म' का स्थान ग्रहण कर लिया। राज्याश्रय ग्रहण कर लेने के बाद अनेक भिक्षु उसके सिद्धान्तों में लचीलापन या उदारता लाने के पक्ष में थे तो कई भिक्षु महात्मा बुद्ध द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों के अक्षरशः पालन करने के हिमायती थे। दोनों में मतभेद गहरा होता गया और समझौता नहीं हो पाया। फलस्वरूप बौद्ध-धर्म 'हीनयान' तथा 'महायान' सम्प्रदायों में विभक्त हो गया।

हीनयान सम्प्रदाय—हीनयान सम्प्रदाय कट्टरपंथी बौद्ध-भिक्षुओं का सम्प्रदाय था। इनके मतानुसार चार बौद्ध संगीतियों द्वारा बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों में किया गया परिवर्तन तथा समझौता धर्म विरुद्ध था। यह सम्प्रदाय बुद्ध के उपदेशों का अक्षरशः पालन करने का हिमायती था। इनके अनुसार ईश्वर की सत्ता का कोई अस्तित्व नहीं है। केवल कर्म ही सृष्टिकर्त्ता है तथा मानव के पूर्व कर्मों के आधार पर उसे वर्तमान जीवन में कर्मफल प्राप्त होते हैं। ये देववाद के विरोधी थे तथा इनके अनुसार निर्वाण प्राप्ति के लिए किसी देव-माध्यम की आवश्यकता नहीं होती है। इनके प्रमुख विचार, मान्यताएँ और विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(1) सृष्टि का आधार कर्म है।

(2) बौद्ध संगीतियों द्वारा किया गया परिवर्तन इन्हें अमान्य था।

(3) इस सम्प्रदाय के सभी ग्रन्थ पाली भाषा में हैं।

(4) महात्मा बुद्ध द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्तों तथा व्यावहारिक नियमों के पालन द्वारा ही आवागमन से मुक्ति तथा निर्वाण की प्राप्ति हो सकती है।

(5) निर्वाण प्राप्ति के लिए देवी-देवता की उपासना की कोई आवश्यकता नहीं है।

(6) सृष्टि का आधार कर्म है।

(7) पूर्वजन्म के कर्मानुसार ही वर्तमान जीवन का निर्धारण होता है।

(8) निर्वाण मार्ग कठिन तथा दुस्सह है।

(9) व्यक्तिगत साधना पर बल देते हुए उन्होंने बुद्ध को भगवान के रूप में उपासना का विरोध किया।

(10) ये पवित्रता, सदाचार, व्यवहारनिष्ठा तथा नियमों के पालन पर विशेष बल देते थे।

(11) इस सम्प्रदाय के अनुयायियों की संख्या सीमित थी।

महायान सम्प्रदाय—बौद्ध धर्म के जिस सम्प्रदाय ने इस धर्म के कतिपय कठोर नियमों में परिवर्तन करके इन्हें जनसाधारण के लिए व्यावहारिक बनाने का पक्ष लिया वह महायान सम्प्रदाय के रूप में प्रस्फुटित हुआ।

महायान सम्प्रदाय के प्रमुख सिद्धान्त, विचार तथा मान्यताएँ निम्नलिखित हैं—

(1) महायान सम्प्रदाय का उद्देश्य सम्यक् ज्ञान प्राप्त करके संसार के समस्त प्राणियों के दुःखों का निवारण करना था।

(2) इस सम्प्रदाय के अनुसार महात्मा बुद्ध ईश्वर का अवतार थे और ये महात्मा बुद्ध की उपासना ईश्वर के रूप में करते हैं।

(3) महायान सम्प्रदाय के नियम अत्यन्त सरल, स्पष्ट तथा व्यावहारिक हैं।

(4) इस सम्प्रदाय के लोग मूर्तिपूजा तथा संस्कारों के पक्षपाती हैं। इस सम्प्रदाय के ग्रन्थ संस्कृत भाषा में रचे गए हैं।

(5) महायान सम्प्रदाय के अनुसार इसी जीवन में जीवित रहते हुए निर्वाण प्राप्ति की जा सकती है।

यह सम्प्रदाय समयानुकूलन में आस्था रखता था तथा रूढ़िवाद का विरोधी था। इस सम्प्रदाय के प्रयासों के फलस्वरूप बौद्ध धर्म की जड़ें गहरी जम गईं तथा अपनी अनेक आकर्षक एवं व्यावहारिक उपलब्धियों के कारण शीघ्र ही यह जनसाधारण का सर्वप्रिय धर्म बन गया। इस सम्प्रदाय के प्रयत्नस्वरूप ही बौद्ध धर्म विदेशों की ओर अग्रसर हुआ। आज बौद्ध धर्म के अधिकांश अनुयायी महायान सम्प्रदाय के हैं।

बौद्ध धर्म की संगीतियाँ

महात्मा बुद्ध ने अपने जीवनकाल में अनेक उपदेशात्मक बातें कहीं। अनेक घटनाओं तथा वार्ताओं आदि में उन्होंने जिस सत्य का निरूपण किया उसको ग्रहण करने में उनके ही शिष्यों तथा भिक्षुओं में अनेक मतभेद थे। अतः यह आवश्यकता प्रतीत होने पर कि उनके समस्त विचारों की स्पष्ट व्याख्या की जाए—कालान्तर में अनेक संगीतियों का आयोजन किया गया। इन संगीतियों का विवरण निम्नलिखित है—

(1) राजगृह की प्रथम बौद्ध संगीति—चुल्लवग्ग में इस संगीति के कारणों का वर्णन करते हुए कहा गया है कि महात्मा बुद्ध के निर्वाण पर शोक प्रकट करते हुए सुभद्र नामक एक भिक्षु ने कहा कि "हम तथागत द्वारा प्रतिपादित अनेक नियमों तथा निषेधों से मुक्त हो गए हैं।" इस कथन से सम्पूर्ण संघ में हलचल मच गई और सुभद्र के शंकापूर्ण वाक्यों से भिक्षुओं में भय का संचार हो गया। परिणामस्वरूप तथागत के समस्त उपदेश संकलित तथा संग्रहीत करने के लिए 'महाकस्सप' नामक भिक्षु की अध्यक्षता में पाँच सौ भिक्षुओं के सम्मेलन का आयोजन किया गया। सभी बौद्ध ग्रन्थों के अनुसार प्रथम संगीति (महासभा) का आयोजन महात्मा बुद्ध के निर्वाण प्राप्ति के कुछ ही सप्ताहों के पश्चात् राजगृह के निकट सप्तपर्णी गुहा में किया गया था।

इस संगीति का आयोजन 487 ई० पू० में हुआ था। संगीति के विचार-विमर्श द्वारा तथागत की समस्त शिक्षाओं को दो भागों में विभाजित कर दिया गया—(1) धम्म पिटक तथा (2) विनय पिटक। इन दोनों पिटकों में भिक्षुओं के व्यावहारिक तथा नैतिक आचार-विचार के नियमों की स्पष्ट व्याख्या की गई है।

(2) वैशाली की द्वितीय संगीति—वैशाली के भिक्षु दस सिद्धान्तों में आस्था रखते थे परन्तु 'यस' नामक भिक्षु ने इसे धर्म विरुद्ध घोषित कर दिया। इस आकस्मिक घोषणा द्वारा पुनः हलचल मच गई।

वाद-विवाद तथा तर्क-वितर्क हेतु देश के कोने-कोने से भिक्षु आने लगे। इस प्रकार पारस्परिक मतभेदों का निराकरण करने के लिए, महापरिनिर्वाण के ठीक सौ वर्ष बाद 387 ई० पू० में वैशाली में द्वितीय संगीति का आयोजन किया गया। वैशाली के भिक्षु अपने 'दस सिद्धान्तों' की मान्यता पर अडिग रहे परन्तु अन्य क्षेत्रों में आए सभी भिक्षुओं ने उनका विरोध किया।

मतभेदों का पूर्णतया निराकरण न हो सका। परिणामस्वरूप जिन भिक्षुओं ने परम्परागत 'विनय' में आस्था रखी, वे 'स्थविर' कहलाए और जिन्होंने उसके संशोधित रूप को स्वीकार किया वे 'महासन्धिक' कहलाए।

(3) पाटलिपुत्र की तृतीय संगीति—महात्मा बुद्ध के महापरिनिर्वाण के 236 वर्षों के पश्चात् तथा सम्राट अशोक के समय, 251 ई० पू० में आचार्य मोग्गिलिपुत्त तिस्स की अध्यक्षता में तृतीय बौद्ध संगीति का आयोजन पाटलिपुत्र में किया गया। इस संगीति में दो प्रमुख कार्य किए गए—

(i) सर्वप्रथम बौद्ध साहित्य का नया वर्गीकरण करके 'अभिधम्म' नामक तीसरे पिटक की रचना की गई। अब महात्मा बुद्ध के उपदेश तथा विचार 'त्रिपिटक' के नाम से प्रसिद्ध हो गए।

(ii) इस संगीति द्वारा बौद्ध साहित्य को निश्चित तथा प्रामाणिक रूप दे दिया गया तथा संघ भेद के विरुद्ध कठोर नियमों का प्रतिपादन करके बौद्ध धर्म को निश्चिन्तता प्रदान करने का प्रयत्न किया गया।

(4) कश्मीर की चतुर्थ संगीति—कश्मीर और गान्धार के बौद्ध भिक्षुओं के मध्य अनेक मतभेद उत्पन्न हो गए थे। अतः मतभेद निराकरण हेतु राजा कनिष्क के राज्यकाल में वसुमित्र तथा अश्वघोष की अध्यक्षता में बौद्ध धर्म की चतुर्थ तथा अन्तिम संगीति का आयोजन कश्मीर में किया गया। मतभेदों का निराकरण हेतु त्रिपिटकों पर विभाषाशास्त्र तथा तीन महाभाष्यों की रचना की गई तथा इन्हें ताम्रपत्रों पर उत्कीर्ण करवाकर एक स्तूप में सुरक्षित करके रख दिया गया।

प्रश्न 7—बौद्ध धर्म की तीव्र उन्नति तथा प्रसार के कारणों की विवेचना कीजिए। *(Imp.)(1991)*

अथवा **बौद्ध धर्म की सफलता के क्या कारण थे? विस्तारपूर्वक वर्णन कीजिए।** *(1990, 92, 97)*

अथवा **भारत में बौद्ध धर्म के उत्थान एवं पतन के कारणों पर प्रकाश डालिए।** *(1996)*

अथवा **"बौद्ध धर्म के उत्थान में एक ही भावना अन्तर्निहित थी कि वहाँ कोई ब्राह्मण या शूद्र नहीं था।" समीक्षा कीजिए।**

अथवा **भारत में बौद्ध धर्म के उदय एवं प्रगति के कारणों पर प्रकाश डालिए।** *(1992)*

अथवा **बौद्ध धर्म की प्रसिद्धि के कारण बताइए एवं भारतीय संस्कृति को इसकी देन का वर्णन कीजिए।** *(1996)*

अथवा **भारत में बौद्ध धर्म के उत्थान एवं पतन के कारणों की समीक्षा कीजिए।**

अथवा **"बौद्ध और जैन धर्म की सफलता का प्रमुख कारण तत्कालीन जनता में व्याप्त धार्मिक और सामाजिक असन्तोष था।" स्पष्ट कीजिए।** *(1997)*

(**संकेत**—जैन धर्म की सफलता के लिए उत्तरदायी उपर्युक्त कारणों का अध्ययन करने हेतु दीर्घ उत्तरीय **प्रश्न संख्या 3** का अध्ययन कीजिए।)

उत्तर—

बौद्ध धर्म का उत्थान

बौद्ध धर्म महात्मा बुद्ध के समय से ही अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया था। भारत के अतिरिक्त इस धर्म की जड़ें दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों तक भी पहुँच गई थीं और वहाँ भी यह बहुत लोकप्रिय हो गया था। बौद्ध धर्म की इस लोकप्रियता के कारणों पर प्रकाश डालते हुए ई० बी० हैवेल ने कहा है, "गौतम बुद्ध के उपदेशों की सफलता कुछ तो उनके चुम्बकीय व्यक्तित्व के कारण थी और कुछ इस बात से भी थी कि उन्होंने विशाल जनसमूह को एक ऐसा धर्म प्रदान किया जो बोधगम्य था और जिसने निम्न वर्ग के लोगों का जीवन उन्नत बनाया।"

बौद्ध धर्म की उन्नति एवं प्रसार अथवा सफलता के कारण (बौद्ध धर्म की प्रसिद्धि के कारण)

बौद्ध धर्म की उन्नति एवं प्रसार के निम्नलिखित कारण थे—

(1) हिन्दू-धर्म में व्याप्त दोष—जिस समय बौद्ध धर्म का उदय हुआ उस समय तक हिन्दू धर्म में अनेक दोष उत्पन्न हो चुके थे। धर्म के दार्शनिक विचार इतने जटिल हो गए थे कि वे साधारण जनता की समझ से परे थे। जाति-पाँति के बन्धन बहुत कठोर हो गए थे। शूद्र वर्ण के लोगों को किसी भी प्रकार के धर्मपालन का अधिकार नहीं रहा था, साथ ही वैदिक धर्म बहुत खर्चीला भी हो गया था, क्योंकि इस धर्म में पंडितों एवं पुरोहितों का प्रभुत्व बढ़ गया था तथा प्रत्येक अवसर पर यज्ञ करने का प्रचलन था, जिन्हें पुरोहित लोग करते थे और वे पर्याप्त दक्षिणा आदि लेते थे। ऐसे वातावरण में सरल और सर्वग्राही बौद्ध धर्म का विकास होना स्वाभाविक ही था।

बौद्ध धर्म की उन्नति एवं प्रसार के कारण

(1) हिन्दू-धर्म में व्याप्त दोष
(2) महात्मा बुद्ध का नैतिक जीवन व आकर्षक व्यक्तित्व
(3) भिक्षुओं का दृढ़ संगठन
(4) शासन का सहयोग
(5) जाति-पाँति का भेदभाव न होना
(6) जनसाधारण की भाषा में धर्म-प्रचार
(7) बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का सरल होना
(8) बौद्ध भिक्षुओं और भिक्षुणियों का त्यागमय जीवन
(9) बौद्ध धर्म की सभाएँ
(10) श्रेष्ठ प्रचार विधि
(11) नालन्दा विश्वविद्यालय द्वारा प्रचार।

(2) महात्मा बुद्ध का नैतिक जीवन व आकर्षक व्यक्तित्व—महात्मा बुद्ध का जीवन आदर्शों से युक्त था। उनकी विशेषता यह थी कि वे जैसा आचरण करने को लोगों से कहते थे वैसा ही आचरण स्वयं करते थे, जिससे जनता पर प्रत्यक्ष रूप से गहरा प्रभाव पड़ता था। इसके अतिरिक्त, महात्मा बुद्ध परम त्यागी, निःस्वार्थी, दयावान एवं ज्ञानी पुरुष थे। उनका यह प्रभावशाली व्यक्तित्व और नैतिक चरित्र बौद्ध धर्म की व्यापकता का मुख्य आधार स्तम्भ बना।

(3) भिक्षुओं का दृढ़ संगठन—बौद्ध धर्म के प्रसार का एक मुख्य कारण भिक्षुओं का आश्चर्यजनक संगठन भी था। बुद्ध को यह भली-भाँति ज्ञात था कि भिक्षुओं का दृढ़ संगठन किए बिना बौद्ध धर्म को दूर तक पहुँचाना सम्भव नहीं है। इसीलिए उन्होंने भिक्षुओं को अधिक संख्या में संगठित किया।

(4) शासन का सहयोग—बौद्ध धर्म को अनेक महान् राजाओं ने अपना आश्रय भी प्रदान किया। सम्राट अशोक ने तो अपना तन-मन-धन एवं पुत्र-पुत्री को भी इस धर्म के प्रचार में लगा दिया था। उसने बौद्ध धर्म के उपदेशों को शिलाओं पर लिखवाकर स्थान-स्थान पर लगवा दिया, जिससे साधारण जनता उन उपदेशों को पढ़कर आचरण करे। सम्राट अशोक की मृत्यु के पश्चात् कनिष्क और इसी प्रकार हर्ष ने भी इस धर्म की उन्नति में पर्याप्त योगदान दिया। हर्ष की कन्नौज सभा से बौद्ध धर्म का विशेष प्रसार हुआ।

(5) जाति-पाँति का भेदभाव न होना—बौद्ध धर्म से पूर्व प्रचलित धर्मों में जाति-पाँति का बहुत भेदभाव व्याप्त था, किन्तु बौद्ध-धर्म के द्वार सबके लिए निष्पक्ष खुले थे। अतः निम्न जाति के लोगों ने बौद्ध धर्म की शरण ली। बौद्ध धर्म में समस्त जातियों और वर्णों के स्त्री-पुरुषों को प्रवज्या लेने का अधिकार प्राप्त था। शूद्र हो या ब्राह्मण, सभी भिक्षुओं और भिक्षुणियों को बौद्ध धर्म में समान अधिकार प्राप्त थे।

(6) जनसाधारण की भाषा में धर्म-प्रचार—बौद्ध धर्म की लोकप्रियता का एक प्रमुख कारण यह भी था कि उस समय प्रचलित ब्राह्मण धर्म के ग्रन्थ, वेद अत्यन्त जटिल भाषा में लिखे गए थे। उनमें दिया गया वर्णन सामान्य व्यक्ति नहीं समझ सकता था। बुद्ध ने अपने धर्म की बातें बड़ी सरल एवं जन-सामान्य की बोल-चाल की भाषा पाली में बताईं; यही कारण था कि व्यक्ति उनके उपदेशों को सुगमता एवं सहजतापूर्वक ग्रहण कर उनके अनुयायी बनते चले गए।

(7) बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का सरल होना—बौद्ध धर्म के सिद्धांत अत्यन्त सरल और बोधगम्य थे। महात्मा बुद्ध ने अत्यन्त सरल भाषा में लोगों को समझाया कि जीवन दुःखमय है और तृष्णा को समाप्त

करके ही दुःखमय जीवन से मुक्ति प्राप्त कर पाना सम्भव है। इस प्रकार उन्होंने क्रमबद्ध ढंग से समझाया कि जीवन कैसा है? और उससे किस प्रकार मुक्ति पाई जा सकती है?

(8) बौद्ध-भिक्षुओं और भिक्षुणियों का त्यागमय जीवन—भिक्षुओं और भिक्षुणियों का जीवन अन्य सम्प्रदायों के साधु-संन्यासियों की अपेक्षा बहुत ही आदर्शपूर्ण और त्यागमय था। इस त्यागमयी जीवन का समाज के सामान्य और बुद्धिजीवी व्यक्तियों पर अत्यन्त गहन प्रभाव पड़ता था।

(9) बौद्ध धर्म की सभाएँ—बौद्ध धर्म की त्रुटियों को दूर करने के उद्देश्य से समय-समय पर सभाओं का आयोजन भी किया जाता था; जिसके कारण इस धर्म की प्रगति में बहुत सफलता प्राप्त हुई। इन सभाओं का एक लाभ यह होता था कि इन सभाओं में आन्तरिक मतभेद दूर हो जाते थे, जिससे बौद्ध प्रचारक अधिक उत्साह से प्रचार कार्य में तल्लीन हो जाते थे।

(10) श्रेष्ठ प्रचार विधि—महात्मा बुद्ध में एक विशेष बात यह थी कि वे अपने धर्म को बोधगम्य बनाने के लिए जिन उपमाओं एवं उदाहरणों का सहारा लेते थे वे मानव-जीवन से सम्बन्धित होते थे। इससे लोग बौद्ध धर्म की अनेक बातें सरलता से समझ जाते थे।

(11) नालन्दा विश्वविद्यालय द्वारा प्रचार—नालन्दा विश्वविद्यालय नें भी बौद्ध धर्म के प्रचार में पर्याप्त योगदान दिया। विद्यार्थी एवं विद्वान् बौद्ध धर्म की शिक्षाओं के अध्ययन हेतु सुदूर स्थानों से नालन्दा में आते थे और लौटकर अपने देशों में बौद्ध धर्म का व्यापक प्रचार करते थे।

(नोट—बौद्ध धर्म के पतन के कारणों को समझने के लिए **प्रश्न संख्या 8** तथा भारतीय संस्कृति को बौद्ध धर्म की देन का अध्ययन करने हेतु दीर्घ उत्तरीय **प्रश्न संख्या 9** का अध्ययन कीजिए।)

प्रश्न 8— बौद्ध धर्म की अवनति के कारण लिखिए।

अथवा **"बौद्ध धर्म का पतन धर्मसंघ और भिक्षुओं के जीवन में परिवर्तनों के कारण ही हुआ था।" समीक्षा कीजिए।** ***(V. Imp.)***

उत्तर—

बौद्ध धर्म के पतन के कारण

कनिष्क की मृत्यु के पश्चात् हिन्दू धर्म का पुनरुत्थान प्रारम्भ हुआ। उसमें बौद्ध धर्म की सभी विशेषताओं को सम्मिलित कर लिया गया था। इससे बौद्ध धर्म के प्रसार में बहुत बाधा पहुँची थी। इसके अतिरिक्त ई० प्रथम शताब्दी तक बौद्ध धर्म का कोई सशक्त संगठनकर्त्ता भी नहीं रह गया था, जो हिन्दू धर्म की विसंगतियों का तर्कपूर्ण एवं युक्तिसंगत उत्तर दे सकता तथा लोगों को बौद्ध धर्म के सम्बन्ध में आवश्यक मार्गदर्शन कराता। अतः यह धर्म निरन्तर पतन की ओर अग्रसारित होता चला गया। जैसा कि हन्टर (Hunter) ने लिखा है—**"बौद्ध धर्म के पतन का मुख्य कारण हिन्दू धर्म में अच्छी बातों एवं सिद्धान्तों का उत्पन्न हो जाना था।"** बौद्ध धर्म के पतन के कारणों को निम्न प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है—

बौद्ध धर्म के पतन के कारण

(1) सम्राटों का संरक्षण न मिलना
(2) बौद्ध भिक्षुओं का पतित होना
(3) बौद्ध मठों में स्त्रियों का प्रवेश
(4) बौद्ध धर्म का सम्प्रदायों में विभक्त होना
(5) भाषा में परिवर्तन
(6) देववाद एवं मूर्तिपूजा का प्रारम्भ
(7) गृहस्थ धर्म की अवहेलना
(8) नास्तिकता
(9) विदेशियों के आक्रमण।

(1) सम्राटों का संरक्षण न मिलना—सम्राट अशोक तथा कनिष्क के पश्चात् के राजाओं ने बौद्ध धर्म को धारण करने के स्थान पर हिन्दू धर्म को स्वीकार किया और इसे ही अपना राज धर्म भी घोषित किया। गुप्त सम्राटों ने ब्राह्मण धर्म स्वीकार कर विष्णु की पूजा प्रारम्भ कर दी। राजपूत राजाओं ने भी ब्राह्मण धर्म को ही अपनाया। इस प्रकार कालान्तर में बौद्ध धर्म को राजाओं का आश्रय प्राप्त नहीं हुआ। इन परिस्थितियों में बौद्ध धर्म का पतन स्वाभाविक हो गया।

(2) बौद्ध-भिक्षुओं का पतित होना—गौतम बुद्ध के जीवन-काल एवं उनकी मृत्यु के कुछ समय पश्चात् तक बौद्ध धर्म को पर्याप्त राजकीय सहयोग एवं सहायता मिली। अनेक राजाओं और धनवानों ने मठ आदि बनवाए और पर्याप्त धन दान में दिया। इससे बौद्ध विहार पर्याप्त समृद्धता की स्थिति में पहुँच गए। भिक्षुओं को आराम से रहने और अच्छा भोजन आदि को मिलने लगा, जिससे वे त्याग और साधना

से दूर होते चले गए और भोग-विलास में डूब गए। धीरे-धीरे लोगों को यह सब ज्ञात हो गया और वे इस धर्म से घृणा करने लगे।

(3) बौद्ध मठों में स्त्रियों का प्रवेश— प्रारम्भ में बुद्ध ने स्त्रियों को अपने धर्म संघ में प्रवेश नहीं दिया, किन्तु अपने प्रिय शिष्य आचार्य आनन्द और मौसी प्रजापति गौतमी के आग्रह पर इन्होंने स्त्रियों को अपने संघ में प्रवेश की अनुमति प्रदान की। यद्यपि वे इसका परिणाम जानते थे। इसीलिए एक बार उन्होंने आनन्द से भी कहा था—"आनन्द ! मैने जो धर्म चलाया था वह पाँच हजार वर्ष तक स्थायी रहने वाला था, लेकिन अब वह केवल पाँच सौ वर्ष ही चलेगा, क्योंकि हमने स्त्रियों को संघ में सम्मिलित होने की अनुज्ञा दे दी है।" वास्तव में, स्त्रियों के प्रवेश के दुष्परिणाम कुछ तो बुद्ध के सामने ही स्पष्ट होने लगे थे और उनकी मृत्यु के पश्चात् तो भिक्षु एवं भिक्षुणियाँ पूर्ण रूप से काम-वासना में लिप्त हो गए। चुल्लवग्गा ग्रन्थ में यह विवरण प्राप्त होता है कि बौद्ध भिक्षु सुन्दर पुष्पमालाओं और अन्य साधनों से कुल-वधुओं और कुमारियों को आकर्षित करने में संलग्न रहते थे। इस प्रकार के अनैतिक वातावरण के कारण बौद्ध धर्म का पतन होना स्वाभाविक था।

(4) बौद्ध धर्म का सम्प्रदायों में विभक्त होना—बौद्ध धर्म की अवनति का एक प्रमुख कारण यह भी था कि बौद्ध-धर्मोपासक दो सम्प्रदायों में विभक्त हो गए। ये दो सम्प्रदाय थे—हीनयान और महायान। इन प्रचारकों को बौद्ध धर्म की उन्नति का कोई ध्यान नहीं रहा और वे व्यर्थ के वाद-विवाद में ही समय व्यतीत करने लगे। बौद्ध धर्म का विघटन दो सम्प्रदायों तक ही सीमित नहीं रहा, अल्प मत-मतान्तरों के साथ कुछ उपासक कुछ और सम्प्रदायों में भी विभाजित होते चले गए। इसका दुष्परिणाम यह हुआ कि भिक्षुओं में प्रारम्भ में धर्म-प्रचार के लिए जो निष्ठा एवं अदम्य उत्साह विद्यमान था, वह धीरे-धीरे कम होता चला गया, जिससे बौद्ध धर्म की उन्नति अवरुद्ध हो गई।

(5) भाषा में परिवर्तन—बुद्ध ने अपने सिद्धान्तों एवं आदर्शों को अत्यन्त सरल भाषा में समझाया था, किन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात् बौद्ध धर्माचार्यों ने संस्कृत भाषा को प्रयुक्त किया तथा बौद्ध धर्म में अनेक गूढ़ बातों को अपना लिया। भाषा में होने वाले इन परिवर्तनों के कारण लोगों में बौद्ध धर्म के प्रति विरक्ति उत्पन्न होने लगी।

(6) देववाद एवं मूर्तिपूजा का प्रारम्भ—महात्मा बुद्ध ईश्वर और देवताओं का अस्तित्व नहीं मानते थे। उनका कहना था कि सृष्टि कर्मों के फल के अनुसार ही चली आ रही है, किन्तु उनकी मृत्यु के पश्चात् इनके अनुयायियों ने बौद्ध धर्म में हिन्दुओं के देववाद को अपना लिया तथा वे मूर्तिपूजा एवं हिन्दू धर्म के अनेक रीति-रिवाजों का अनुसरण करने लगे। इससे बौद्ध धर्म के अनुयायी हिन्दू-धर्म की कर्मकाण्ड वाली जटिल रीतियों को अपनाने की दिशा में प्रवृत्त हुए।

(7) गृहस्थ धर्म की अवहेलना—बौद्ध धर्म अपनाने वाले व्यक्ति भी अपने गृहस्थ धर्म को त्यागकर भिक्षु बनने लगे थे। इससे सामाजिक व्यवस्था असन्तुलित होने लगी। इसकी क्षतियों के सम्बन्ध में राष्ट्रकवि दिनकर ने लिखा था कि—"बौद्ध धर्म से समाज की तीसरी कु-सेवा यह हुई कि लोग घर-बार छोड़कर संन्यासी होने लगे और सारा देश मठों और विहारों से भर गया ·········बुद्ध ने यह प्रथा चला दी थी कि बालक, बूढ़ा, नौजवान जो जब चाहे तब संन्यास ले सकता है। परिणाम यह हुआ कि हृष्ट-पुष्ट लोग, जो खेती में काम कर सकते थे अथवा समाज की सेवा कर सकते थे, गेरुआ वस्त्र पहनकर भिक्षु बनकर इधर-उधर डोलने लगे।" गृहस्थ धर्म की इस सीमा तक अवेहलना का परिणाम यह हुआ कि बौद्ध धर्म पतन के गर्त में विलीन होने लगा।

(8) नास्तिकता—बुद्ध किसी देव या ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते, जबकि साधारण मनुष्य ऐसी धारणा रखता है कि उसके अच्छे और बुरे कार्यों को भगवान देख रहा है, इसीलिए बुरे कार्यों को करने से वह डरता है तथा मूर्तिपूजा, आराधना, उपासना करके मन में सन्तोष अनुभव करता है। इस प्रकार, ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास के कारण लोग अच्छे कर्म करते हैं, लेकिन बौद्ध धर्म में ईश्वर को नहीं माना गया है। नास्तिकता की इस भावना के प्रसार का परिणाम यह हुआ कि लोग यह सोचने लगे

कि चाहे अच्छे कार्य करो, चाहे बुरे, कोई उन्हें देखने वाला ईश्वर नहीं है। यह नास्तिकता भी बौद्ध धर्म के पतन का प्रमुख कारण बनी।

(9) विदेशियों के आक्रमण—कालान्तर में विदेशी जातियों ने आक्रमण कर बौद्ध संस्कृति के असंख्य अवशेषों को नष्ट कर दिया। विशेषकर हूणों ने भी बौद्ध धर्म को बहुत अधिक हानि पहुँचाई थी। मुसलमानों ने भी भारत में अपने धर्म के प्रचार हेतु बौद्ध मठों एवं विहारों को तुड़वा डाला तथा अनेक भिक्षुओं एवं भिक्षुणियों को मौत के घाट उतार दिया। उनमें से कुछ बौद्ध डरकर विदेशों में भाग गए और कुछ ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया। इस प्रकार, बौद्ध धर्म को मुसलमानों ने अपार क्षति पहुँचाई।

यह कथन सत्य ही है कि बौद्ध धर्म में विनाशकारी परिवर्तनों, सम्प्रदायवाद और भिक्षु-भिक्षुणियों के अनैतिक चरित्र के कारण महाआदर्श विलीन हो गए और बौद्ध उपासक अब आधुनिक काल में सम्पूर्ण भारत में अल्प संख्या में शेष ही रह गए हैं।

उपर्युक्त कारणों के फलस्वरूप बौद्ध धर्म का तीव्र गति से पतन होना प्रारम्भ हो गया। इसमें सन्देह नहीं कि बौद्ध धर्म के पतन का प्रमुख कारण बौद्ध धर्म-संघों में निरन्तर फैलती हुई अनैतिकता ही थी। इसी आधार पर प्रायः यह कहा जाता है कि, **"बौद्ध धर्म का पतन, धर्म-संघ और भिक्षुओं के जीवन में परिवर्तनों के कारण ही हुआ था।"**

प्रश्न 9—भारतीय संस्कृति को बौद्ध धर्म की क्या देन है ?

अथवा **"बौद्ध धर्म ने विभिन्न कलाओं के क्षेत्र में ऐसी कृतियाँ दी हैं, जो पाश्चात्य कला के सर्वोच्च नमूनों के समान हैं।" समीक्षा कीजिए।**

अथवा **भारत में कला और साहित्य के विकास में बौद्ध धर्म के योगदान का मूल्यांकन कीजिए।**

उत्तर—

बौद्ध धर्म की देन

बौद्ध धर्म द्वारा भारतीय साहित्य और कला के क्षेत्र में उल्लेखनीय प्रगति हुई। भारतीय संस्कृति में हुई अभिवृद्धि की दृष्टि से बौद्ध धर्म की छह प्रमुख देन निम्नवत् हैं—

(1) कला का विकास—बौद्ध धर्म के द्वारा भारतीय कला का पर्याप्त विकास हुआ। इतिहास इस बात का साक्षी है कि हमारी प्राचीन कला के (सिन्धु घाटी की कला को छोड़कर) जो भी नमूने मिले हैं उनमें अधिकांश नमूने बौद्ध कला के ही हैं। बौद्ध कला में जिन कलाकृतियों का निर्माण हुआ उन कलाकृतियों में असाधारण कला के दर्शन होते हैं। इसीलिए प्रो० कोहन ने लिखा है, "यह स्पष्ट है कि बौद्ध-कला की अनुभूति हमारे लिए गम्भीर अनुभूति रखती है। विभिन्न कलाओं में बौद्ध धर्म ने ऐसी कृतियाँ दी हैं जो पाश्चात्य कला के सर्वोच्च नमूनों के समकक्ष रखी जा सकती हैं। यह बात भी सत्य है कि भारतीय कला का प्रारम्भ बौद्ध कला से ही होता है। यह कला गुफाओं तथा मन्दिरों में विकसित हुई। दक्षिण की अजन्ता और एलोरा की गुफाएँ भारतीय चित्रकला और शिल्पकला का विश्व में उत्कृष्ट और उच्च आदर्श उपस्थित करती हैं। अशोक के स्तम्भ पच्चीकारी तथा शिल्पकारी के अद्वितीय उदाहरण हैं। साँची का स्तूप कला की दृष्टि से अद्वितीय है। यह सब बौद्ध धर्म के प्रभाव के कारण ही सम्भव हुआ है।"

> **बौद्ध धर्म की देन**
> (1) कला का विकास
> (2) साहित्यिक प्रगति
> (3) भारतीय दर्शन का विकास
> (4) आर्थिक क्षेत्र में प्रगति
> (5) राजनीतिक क्षेत्र में देन
> (6) भारतीय संस्कृति का प्रसार
> (7) बाह्य देशों से सम्पर्क।

(2) साहित्यिक प्रगति—बौद्ध धर्म से पूर्व भारत का अधिकांश साहित्य संस्कृत भाषा में लिखा हुआ था, किन्तु बौद्ध धर्मावलम्बियों ने लोकभाषा में साहित्य की रचना की। उस समय पाली और प्राकृत भाषा में 500 से अधिक उल्लेखनीय पुस्तकों की रचना हुई। बौद्ध धर्म पर आधारित पुस्तकें—पालि-त्रिपिटक, बुद्ध-चरित, सौन्दरानन्द, महावस्तु, ललित-विस्तर, दिव्यावदान, आर्य मंजु श्रीमूलकल्प आदि इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं।

(3) भारतीय दर्शन का विकास—बौद्ध धर्म के उदय के पश्चात् बौद्ध धर्म से सम्बन्धित अनेक बौद्ध दार्शनिक सम्प्रदाय उत्पन्न हो गए। इन सभी के विचार भिन्न-भिन्न थे। इनके भिन्न विचारों की

आलोचना हेतु अन्य विचारधाराओं को उत्पन्न होने का अवसर प्राप्त हुआ। परिणामतः भारतीय दर्शन पूर्व की अपेक्षा और अधिक समृद्ध होता चला गया।

(4) आर्थिक क्षेत्र में प्रगति—भारत को दूसरे देशों से व्यापारिक सम्बन्ध बनाने में बौद्ध धर्म ने पर्याप्त सहयोग दिया। प्रारम्भ में बौद्ध भिक्षु अपने धर्म के प्रचार हेतु अन्य देशों में गए। धीरे-धीरे लोग यहाँ बौद्ध धर्म की शिक्षाएँ ग्रहण करने आने लगे। इस प्रकार भारत अन्य देशों के सम्पर्क में आया, जिससे विदेशों से भारत का सम्बन्ध स्थापित हुआ तथा उनके साथ व्यापारिक सम्बन्ध बने।

(5) राजनीतिक क्षेत्र में देन—राजनीतिक क्षेत्र में भी बौद्ध धर्म ने अपार सहयोग दिया। त्रिपिटक और अन्य बौद्ध साहित्य में राज्य और राजा के सन्दर्भ में अनेक नीतियों के निर्देश दिए गए हैं। सम्राट अशोक तो लोक-कल्याण पर आधारित इन नीतियों से बहुत प्रभावित था। उसने बौद्ध धर्म स्वीकार करने के बाद राजनीति और प्रशासन के क्षेत्र में जिन नीतियों का प्रचलन किया, वे बौद्ध धर्म पर ही आधारित थीं।

(6) भारतीय संस्कृति का प्रसार—भारत के बौद्ध भिक्षुओं ने अन्य देशों में जाकर भारतीय संस्कृति का व्यापक प्रसार किया। इससे पूर्व भारतीय कभी दूसरे देशों में नहीं गए थे। यही नहीं दूसरे देशों में जाने से कूटनीतिक सम्बन्धों में भी वृद्धि हुई थी।

(7) बाह्य देशों से सम्पर्क—बौद्ध धर्म की सबसे महत्त्वपूर्ण अन्तिम देन यह है कि इसने विदेशियों के साथ भारत का निकटतम सम्पर्क स्थापित कर दिया। बौद्ध धर्म बाह्य संसार के लिए भारत का सबसे अमूल्य उपहार था। समस्त प्राचीन पूर्वी देशों ने इसे स्वीकार किया और इस प्रकार भारत की काफी समय से चली आ रही पृथकता समाप्त हो गई।

यदुनाथ सरकार के शब्दों में, **"बौद्ध धर्म ने भारत तथा विदेशों के बीच सम्बन्ध स्थापित किया। यह देश का विश्वव्यापी आन्दोलन था, जिसमें जाति का कोई बन्धन नहीं था। सभी पूर्वी देशों ने इसे स्वतन्त्रतापूर्वक अपना लिया।"**

प्रश्न 10—छठी शताब्दी ई० पू० के सोलह महाजनपदों का परिचय दीजिए।

उत्तर—

छठी शताब्दी ई० पू० के सोलह महाजनपद

डॉ० वासुदेवशरण अग्रवाल के शब्दों में, "लगभग एक सहस्र ई० पू० से पाँच सौ ई० पू० तक के युग को भारतीय इतिहास में जनपद या महाजनपद युग कहा जा सकता है।" इस युग में समस्त देश में एक सिरे से दूसरे सिरे तक जनपदों का ही शासन था। बौद्ध ग्रन्थ 'अंगुत्तर निकाय' में इस प्रकार के सोलह महाजनपदों के नाम दिए गए हैं, जो निम्नलिखित हैं—

छठी शताब्दी ई०पू० के सोलह महाजनपद

(1) अंग
(2) मगध
(3) काशी
(4) वज्जि
(5) मल्ल
(6) कौशल
(7) वत्स
(8) चेदि
(9) पांचाल
(10) कुरु
(11) शूरसेन
(12) मत्स्य
(13) अवन्ति
(14) अश्मक
(15) गान्धार
(16) कम्बोज।

(1) अंग—यह राज्य बिहार के आधुनिक भागलपुर और मुंगेर जिले में स्थित था। यहाँ का प्रसिद्ध राजा ब्रह्मदत्त था।

(2) मगध—यह राज्य आधुनिक बिहार के गया तथा पटना जिलों को मिलाकर बना था। राजगृह इसकी राजधानी थी। बुद्ध के समय में बिम्बसार यहीं का राजा था।

(3) काशी—काशी को वाराणसी भी कहा जाता था। इसकी राजधानी काशी थी, जो शिक्षा, शिल्प तथा व्यापार का केन्द्र थी।

(4) वज्जि—यह राज्य उत्तरी बिहार में स्थित था। इसके अन्तर्गत आठ गणराज्य सम्मिलित थे जिनमें लिच्छिवि, विदेह, शाक्य तथा वज्जि प्रमुख थे। लिच्छिवि गणराज्य की राजधानी वैशाली (वर्तमान मुजफ्फरपुर में) थी।

(5) मल्ल—यह जनपद वर्तमान गोरखपुर और देवरिया जिलों में स्थित था। मल्ल गणतन्त्र की दो राजधानियाँ कुशीनगर और पावा थीं।

(6) कौशल—वर्तमान अवध ही पुराना कौशल था। इसकी राजधानी श्रावस्ती थी। कौशल की पुरानी राजधानी अयोध्या थी। बुद्ध के समय में प्रसेनजित वहाँ का राजा था।

(7) वत्स—यह कौशल राज्य की दक्षिणी सीमा पर था। इसकी राजधानी कौशाम्बी थी। बुद्ध के समय उदयन वहाँ का शासक था।

(8) चेदि—यह आधुनिक बुन्देलखण्ड में स्थित था। इसकी राजधानी केन नदी के किनारे पर स्थित शक्तिमती थी।

(9) पांचाल—यह जनपद गंगा-यमुना के दोआब में स्थित था। इसकी दो राजधानियाँ थीं। उत्तरी भाग की राजधानी अहिक्षत्र थी। इसके खण्डहर वर्तमान बरेली जिले में मिले हैं। दक्षिण भाग की राजधानी काम्पिल्य थी, जो फर्रूखाबाद में स्थित है।

(10) कुरु—वर्तमान दिल्ली के आस-पास का क्षेत्र कुरु जनपद था जिसकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ थी।

(11) शूरसेन—यह जनपद वर्तमान मथुरा के आसपास था। इसकी राजधानी मथुरा थी।

(12) मत्स्य—आधुनिक जयपुर, भरतपुर और अलवर के क्षेत्र इस महाजनपद में सम्मिलित थे। इसकी राजधानी विराटनगर (आधुनिक जयपुर के पास) थी।

(13) अवन्ति—यह जनपद वर्तमान मालवा में था। उज्जयिनी इसकी राजधानी थी। यहाँ का बुद्धकालीन राजा प्रद्योत था।

(14) अश्मक—यह राज्य अवन्ति के दक्षिण में था। इसकी राजधानी गोदावरी के निकट स्थित पौदन्य थी। यहाँ इक्ष्वाकु वंश के राजा राज्य करते थे।

(15) गान्धार—इस राज्य के अन्तर्गत तक्षशिला, कश्मीर का कुछ क्षेत्र और अफगानिस्तान का अधिकांश क्षेत्र सम्मिलित था। इसकी राजधानी तक्षशिला थी। तक्षशिला का विश्वविद्यालय जगप्रसिद्ध था।

(16) कम्बोज—गान्धार के उत्तर में वर्तमान पामीर और बदख्शां में यह राज्य स्थित था। इसकी राजधानी रायपुर थी।

प्रश्न 11—बौद्ध धर्म तथा जैन धर्म की समानताएँ और असमानताएँ स्पष्ट कीजिए। *(M. Imp.)*

अथवा **बौद्ध धर्म व जैन धर्म की तुलनात्मक विवेचना कीजिए।** *(1995)*

अथवा **बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए तथा जैन धर्म से इसकी तुलना कीजिए।** *(1995)*

(संकेत—बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों का अध्ययन करने हेतु दीर्घ उत्तरीय प्रश्न संख्या 5 का अवलोकन कीजिए।)

उत्तर— **बौद्ध धर्म एवं जैन धर्म का तुलनात्मक अध्ययन**

श्री लासेने का कथन है कि, "जैन लोग बौद्धों की एक विभक्त शाखा है।" इस प्रकार सुप्रसिद्ध विचारक मोनियर विलियम के अनुसार, "जैन धर्म और बौद्ध धर्म को एक पिता की दो सन्तानों के रूप में समझना चाहिए, जिनका जन्म लगभग एक ही समय में हुआ था।" डॉ० आर० सी० मजूमदार ने लिखा है, "जैन व बौद्ध धर्म दोनों की पृष्ठभूमि आर्य संस्कृति की है। वे दोनों ही उपनिषदों के विचारों तथा दर्शन से प्रेरित हैं।"

किन्तु इसके साथ ही अनेक अनुसंधानों द्वारा यह भी सिद्ध हो चुका है कि वास्तव में दोनों धर्मों का अस्तित्व पूर्णतः स्वतन्त्र है। स्मिथ महोदय ने यह स्पष्ट कहा है कि, "कतिपय समानताओं के आधार पर जैन और बौद्ध मतों को एक ही धर्म के विभिन्न सम्प्रदाय मानना गलत है। ये दोनों मत एक-दूसरे से भिन्न हैं।"

वास्तव में, इन दोनों धर्मों में कुछ समानताएँ और कुछ असमानताएँ दोनों ही हैं। इनका विवरण अग्र प्रकार है—

जैन एवं बौद्ध धर्म में समानताएँ

जैन एवं बौद्ध धर्म की पारस्परिक समानताओं का संक्षिप्त उल्लेख इस प्रकार है—

(1) धर्मों के अस्तित्व सम्बन्धी समानता—दोनों धर्मों की उत्पत्ति-समान भावनाओं और उद्देश्यों को लेकर हुई थी। दोनों का प्रमुख उद्देश्य था प्रत्येक जीव-जन्तु को परम सुख की अवस्था में पहुँचा देना। जब ब्राह्मण धर्म पाखण्डवादी हो गया, तो यह प्रचलित धर्म पर्याप्त जटिल एवं निकृष्ट हो गया। परिणामस्वरूप दोनों धर्म तत्कालीन विकृत धार्मिक परिस्थितियों के विरुद्ध लोक-कल्याणकारी आन्दोलन के रूप में उदित हुए थे।

जैन तथा बौद्ध धर्म में समानताएँ

(1) धर्मों के अस्तित्व सम्बन्धी समानता
(2) ईश्वर के अस्तित्व के विषय में अविश्वास
(3) दोनों धर्मों का वेदों में अविश्वास
(4) दोनों धर्मों का कर्मवाद में विश्वास
(5) दोनों धर्मों का पुनर्जन्म में विश्वास
(6) दोनों धर्मों का अन्तिम उद्देश्य 'मुक्ति'
(7) कुछ अन्य समानताएँ।

(2) ईश्वर के अस्तित्व के विषय में अविश्वास—बौद्ध धर्म का कहना था कि सृष्टि किसी सर्वोच्च शक्ति द्वारा नहीं चलती, वरन् मनुष्य (जीव) अपने कर्मों के आधार पर स्वयं निर्मित एवं नष्ट होता रहा है। मनुष्य निर्माण अणुओं द्वारा होता है, उसमें ईश्वर का कोई योगदान नहीं है। इसी प्रकार जैन मतावलम्बी भी ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते। इस प्रकार, इस सम्बन्ध में दोनों धर्मों में पर्याप्त समानता है।

(3) दोनों धर्मों का वेदों में अविश्वास—जैन और बौद्ध, दोनों धर्मों ने वेदों का खण्डन किया। इसलिए दोनों को भारतीय दर्शन में नास्तिक कहा गया। इन दोनों धर्मों ने वेदों के मतानुसार भी ईश्वर का अस्तित्व स्वीकार नहीं किया। जातक ग्रन्थों के अनुसार, वेद सारहीन और निरर्थक पुस्तकें हैं।

(4) दोनों धर्मों का कर्मवाद में विश्वास—दोनों धर्म जीव के कर्म-बन्धन के सिद्धान्त में विश्वास करते थे। दोनों धर्मों का कहना था कि, "मनुष्य (जीव) निर्बाध गति से अपने अच्छे-बुरे कर्मों के आधार पर उच्च एवं निम्न कोटि में जन्म लेता रहता है और अपने इस जन्म और पूर्वजन्म के कृत कर्मों का फल भोगता है।"

(5) दोनों धर्मों का पुनर्जन्म में विश्वास—दोनों ही धर्मावलम्बी यह विश्वास करते थे कि जीवित मानव या अन्य जीव कुछ तत्त्वों का सम्मिश्रण हैं। मृत्यु के पश्चात् ये तत्त्व पृथक्-पृथक् हो जाते हैं और जैसे ही वे पृथक्-पृथक् होते हैं, इस जीवन में किए गए कर्मों के अनुसार दूसरे तत्त्वों से उसका पुनःनिर्माण (पुनर्जन्म) हो जाता है।

(6) दोनों धर्मों का अन्तिम उद्देश्य 'मुक्ति'—इन दोनों ही धर्मों का मुख्य उद्देश्य लोगों को यह बताना था कि संसार दुःखों का भण्डार है और यदि इन दुःखों से मुक्ति प्राप्त करनी है तो जन्म-मरण के चक्र से मुक्ति पानी होगी। अतः इन दोनों धर्मों का उद्देश्य मनुष्य को निर्वाण अर्थात् दुःखरहित अवस्था तक पहुँचाना था।

(7) कुछ अन्य समानताएँ—(i) दोनों धर्मों का प्रचार सामान्य जनता की बोलचाल की भाषा में हुआ। (ii) दोनों धर्मों ने भिक्षुओं और भिक्षुणियों के लिए अत्यंन्त त्यागमय और कठोर जीवन-निर्वाह का निर्देश दिया। (iii) दोनों धर्म तत्कालीन हिन्दू पाखण्डवाद के कट्टर विरोधी थे। (iv) दोनों धर्म अहिंसा के समर्थक थे। (v) दोनों धर्म लगभग एक ही समय, एक ही स्थान (भारत) में उत्पन्न हुए थे। (vi) दोनों धर्मों के जन्मदाता क्षत्रिय राजकुमार थे।

जैन धर्म और बौद्ध धर्म में असमानताएँ

इन दोनों धर्मों के मध्य निम्न दृष्टियों से असमानताएँ हैं—

(1) निर्वाण सिद्धान्त के सम्बन्ध में मतभेद—बौद्ध और जैन-दर्शन, दोनों में ही निर्वाण का अन्तिम अर्थ जीव को जन्म-मरण के बन्धनों से मुक्ति दिलाकर मोक्ष प्राप्त करने से है, परन्तु बौद्ध-दर्शन में जीवित अवस्था में ही मनुष्य कर्मबंन्धन से मुक्ति पाकर और परम ज्ञान प्राप्त करके निर्वाण प्राप्त कर सकता है।

जैन-दर्शन में निर्वाण उस अवस्था को कहा जाता है, जब 'आत्मा' यह शरीर त्यागकर मुक्त हो जाती है अर्थात् केवल्य-ज्ञानी आत्मा मृत्यु के बाद मोक्ष पाती है।

(2) निर्वाण के साधनों में अन्तर—जैन-दर्शन में निर्देशित है कि कठोर व्रत एवं तपस्या के द्वारा कर्मों के प्रभाव को समाप्त करने पर मोक्ष की प्राप्ति होती है, जबकि बौद्ध धर्म ने निर्वाण प्राप्त करने के लिए अष्टांग-मार्ग को साधन बनाया।

जैन धर्म तथा बौद्ध धर्म में असमानताएँ

(1) निर्वाण सिद्धान्त के सम्बन्ध में मतभेद
(2) निर्वाण के साधनों में अन्तर
(3) आत्मा सम्बन्धी विचारों में मतभेद
(4) अहिंसा सम्बन्धी विचारों में अन्तर
(5) प्रचार-प्रसार में अन्तर
(6) गृहस्थ एवं संघ के जीवन के विषय में मतभेद
(7) कुछ अन्य असमानताएँ।

(3) आत्मा सम्बन्धी विचारों में मतभेद—बौद्ध धर्म के अनुसार सम्पूर्ण शरीर का निर्माण कुछ तत्त्वों के संयोग से होता है और इन तत्त्वों के अलग होने पर आत्मा एवं शरीर दोनों ही समाप्त हो जाते हैं, किन्तु जैन धर्म अनन्त, विनष्ट न होने वाली आत्मा का अस्तित्व स्वीकार करता है।

(4) अहिंसा सम्बन्धी विचारों में अन्तर—जैन धर्म में सूक्ष्म-से-सूक्ष्म जीव की हत्या करना या उन्हें कष्ट देना भी पाप समझा जाता था, जबकि बौद्ध धर्म के अनुयायियों का कहना था कि विशेष परिस्थितियों में मांस-भक्षण भी किया जा सकता है।

(5) प्रचार-प्रसार में अन्तर—बौद्ध धर्म का प्रचार अति शीघ्रता से तथा भारत के बाहर श्रीलंका, बर्मा, जापान, चीन आदि देशों में भी हुआ, जबकि जैन धर्म का प्रचार केवल भारत की सीमा तक ही सीमित रहा था। बौद्ध आचार्य प्रचार को अधिक महत्त्व देते थे, जबकि जैन आचार्य धर्मपालन को।

बौद्ध धर्म आज पूर्ण रूप से हिन्दू धर्म में विलीन हो गया है, लेकिन जैन धर्म का अभी भी पृथक् अस्तित्व है।

(6) गृहस्थ एवं संघ के जीवन के विषय में मतभेद—महात्मा बुद्ध का कहना था कि मनुष्य को संघ के नियमों का पूर्ण रूप से पालन करना चाहिए अर्थात् निर्वाण की इच्छा रखने वालों को पूर्ण संन्यासी होना चाहिए, लेकिन जैन धर्म संन्यास से पूर्व गृहस्थ जीवन को भी महत्त्व देता है।

(7) कुछ अन्य असमानताएँ—(i) दोनों का साहित्य विभिन्न प्रकार की विषय-सामग्री पर आधारित है। (ii) जैन धर्म के लोग 24 तीर्थंकरों को मानते हैं, किन्तु बौद्ध धर्म के लोग 25 बुद्धों को मानते हैं। (iii) जैन धर्म को अधिक राजकीय सहायता प्राप्त नहीं हुई, लेकिन बौद्ध धर्म को पर्याप्त राजकीय सहायता प्राप्त हुई। (iv) कुछ विचारों में जैन धर्मावलम्बी ईश्वर को भी मानते हैं, लेकिन प्रारम्भिक बौद्ध धर्मावलम्बी ईश्वर को बिल्कुल नहीं मानते। (v) अब अनेक खोजों द्वारा यह सिद्ध हो गया कि जैन धर्म, बौद्ध धर्म से अधिक प्राचीन है।

निष्कर्ष—उपर्युक्त अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि इन दोनों धर्मों में समानता ही नहीं है, वरन् अनेक दृष्टियों से दोनों धर्मों में पर्याप्त विभिन्नताएँ भी विद्यमान हैं।

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1— बौद्ध धर्म का अष्टांगिक मार्ग क्या था?

उत्तर : अष्टांगिक मार्ग—गौतम बुद्ध ने सांसारिक दुःखों का अन्त करने के लिए जिस मार्ग का प्रतिपादन किया उसे अष्टांगिक मार्ग कहते हैं। इसके अन्तर्गत निम्नलिखित आठ बातें सम्मिलित हैं—

(1) सम्यक् दृष्टि, (2) सम्यक् संकल्प, (3) सम्यक् वाक्,
(4) सम्यक् कर्म, (5) सम्यक् जीविका, (6) सम्यक् ध्यान,
(7) सम्यक् व्यायाम (उद्यम), (8) सम्यक् समाधि।

प्रश्न 2—बौद्ध धर्म के चार आर्य सत्य क्या हैं?

अथवा **बौद्ध धर्म के चार आर्य सत्यों का विवरण दीजिए।** *(1991, 94, 95)*

अथवा **चार आर्य सत्य क्या हैं? इनका प्रथम उपदेश कहाँ दिया गया था?** *(1996)*

अथवा **बौद्ध धर्म के चार आर्य सत्यों का उल्लेख कीजिए।**

उत्तर : चार आर्य सत्य—बौद्ध धर्म के चार आर्य सत्य निम्न हैं—

(i) दुःख—प्रत्येक अवस्था दुःखमय है। **(ii) दुःख समुदय**—दुःख का कारण इच्छा (तृष्णा) है। **(iii) दुःख निरोध**—दुःख की समाप्ति भी हो सकती है। **(iv) दुःख निरोधी मार्ग**—दुःख को समाप्त करने का मार्ग अष्टांगिक मार्ग है।

ये चार आर्य सत्य बौद्ध धर्म के आधार स्तम्भ हैं। महात्मा बुद्ध द्वारा चार आर्य सत्यों का प्रथम उपदेश उत्तर प्रदेश के वाराणसी नगर के समीप स्थित सारनाथ नामक स्थान पर दिया गया था।

प्रश्न 3—बौद्ध धर्म के प्रमुख सिद्धान्त क्या थे?

अथवा **गौतम बुद्ध की चार प्रमुख शिक्षाएँ क्या थीं?** *(1992, 94)*

उत्तर—बौद्ध धर्म के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित थे—

(1) चार आर्य सत्य—(i) दुःख, (ii) दुःख समुदय, (iii) दुःख निरोध, (iv) दुःख निरोधी मार्ग—अष्टांगिक मार्ग।

(2) दस शील—(i) अहिंसा, (ii) सत्य, (iii) अचौर्य, (iv) ब्रह्मचर्य, (v) अपरिग्रह, (vi) कुसमय भोजन का त्याग, (vii) नाटक-तमाशों का त्याग, (viii) इत्र-तेल व फूलों का त्याग, (ix) नशीली वस्तुओं का त्याग, (x) कोमल शैया का त्याग।

(3) वेदों की प्रामाणिकता में अविश्वास।

(4) कर्मवाद एवं पुनर्जन्म में विश्वास।

(5) अनीश्वरवाद।

प्रश्न 4—बौद्ध धर्म के पतन के कोई चार कारण लिखिए।

उत्तर—बौद्ध धर्म के पतन के चार प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

(1) बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों में परिवर्तन होते रहना।

(2) सम्राटों के सहयोग का अभाव।

(3) विदेशियों के आक्रमण।

प्रश्न 5—हीनयान और महायान सम्प्रदाय क्या हैं?

उत्तर—हीनयान और महायान सम्प्रदाय—गौतम बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् बौद्ध धर्म दो शाखाओं में बँट गया था—(1) हीनयान और (2) महायान। हीनयान; बौद्ध धर्म का वह सम्प्रदाय है जो बौद्ध धर्म के प्राचीन स्वरूप को ही स्वीकार करता है। यह सम्प्रदाय ईश्वर के स्वरूप तथा अस्तित्व में विश्वास नहीं करता है। यह लोक-कल्याण की अपेक्षा स्व-कल्याण में विश्वास करता है। इसके विपरीत, महायानी परिवर्तनों के समर्थक हैं, वे बुद्ध को ईश्वर मानकर उनकी पूजा करते हैं। ये लोक-कल्याण में विश्वास करते हैं तथा कर्मकाण्डों को अधिक महत्त्व देते हैं।

प्रश्न 6—जैन धर्म के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिए। *(1997)*

अथवा **संक्षेप में जैन धर्म की शिक्षाओं का उल्लेख कीजिए।**

अथवा **महावीर की प्रमुख शिक्षाओं का वर्णन कीजिए।** *(1992)*

अथवा **महावीर स्वामी की तीन प्रमुख शिक्षाओं का उल्लेख कीजिए।** *(1995)*

अथवा **महावीर स्वामी की मुख्य शिक्षाएँ क्या थीं?**

उत्तर—जैन धर्म के चार प्रमुख सिद्धान्त अथवा शिक्षाएँ इस प्रकार हैं—

(1) ईश्वर में अविश्वास—ईश्वर कुछ नहीं करता है। हम स्वयं ही अपने अच्छे-बुरे कर्मों का भोग करते हैं।

(2) आत्मा के अस्तित्व तथा अमरत्व में विश्वास। आत्मा अमर है। आत्मा अनन्त है।

(3) सम्यक् ज्ञान, सम्यक् चरित्र और सम्यक् दर्शन में विश्वास।

(4) पंच-अणुव्रत का पालन करने पर बल।

प्रश्न 7—बौद्ध तथा जैन धर्म के सिद्धान्तों में दो प्रमुख अन्तर बताइए। *(1990, 94)*

अथवा **बौद्ध एवं जैन धर्मों की दो भिन्नताओं का परिचय दीजिए।** *(1996)*

उत्तर—बौद्ध तथा जैन धर्म के सिद्धान्तों में दो प्रमुख अन्तर निम्नलिखित हैं—

(1) बौद्ध धर्म की तुलना में जैन धर्म अधिक अहिंसावादी है।

(2) जैन धर्म मूर्तिपूजा में आस्था नहीं रखता, जबकि बौद्ध धर्म का महायान सम्प्रदाय, बोधिसत्वों की पूजा को स्वीकार करता है।

प्रश्न 8—जैन धर्म और बौद्ध धर्म की चार समानताएँ लिखिए।

उत्तर—जैन धर्म और बौद्ध धर्म में चार समानताएँ निम्नलिखित हैं—

(1) दोनों धर्मों की उत्पत्ति उत्तर भारत में हुई थी तथा दोनों के प्रवर्तक क्षत्रिय राजकुमार थे।

(2) दोनों धर्म वेदों में विश्वास नहीं करते तथा कर्मकाण्डों का विरोध करते हैं। मूर्ति-पूजा और बहुदेववाद दोनों में ही प्रचलित नहीं है।

(3) जैन और बौद्ध धर्म दोनों ही बलि-प्रथा का विरोध करते हैं।

(4) दोनों ही धर्म कर्मवाद में विश्वास करते हैं। दोनों धर्मों में यह निर्देशित किया गया है कि जीव तीन बलों (मन बल, वचन बल, काय बल) से कर्मों के बन्धन में बँधता है तथा उसी के अनुसार उसे अच्छे-बुरे फल भोगने पड़ते हैं।

प्रश्न 9—बौद्ध धर्म से सम्बन्धित दो स्थानों का वर्णन कीजिए। *(1992)*

उत्तर— बौद्ध धर्म से सम्बन्धित दो स्थान हैं—(1) सारनाथ, (2) बोध गया। इनके वर्णन के लिए ऐतिहासिक स्थलों से सम्बन्धित प्रश्न संख्या 2 का अवलोकन करें।

प्रश्न 10—छठी शताब्दी ई० पू० के चार प्रमुख राज्यों का वर्णन कीजिए। *(1991, 95, 96, 99)*

उत्तर—छठी शताब्दी ई० पू० के चार प्रमुख राज्य निम्नवत् हैं—

(1) काशी, (2) मगध, (3) कौशल, (4) गांधार।

प्रश्न 11—बौद्ध धर्म की हीनयान और महायान शाखा के मध्य दो प्रमुख भेदों को स्पष्ट कीजिए। *(1997)*

उत्तर—हीनयान एवं महायान शाखा के मध्य दो भेद निम्नलिखित हैं—

(1) हीनयान सम्प्रदाय अनीश्वरवादी है। इसके विपरीत महायान सम्प्रदाय में महात्मा बुद्ध में ईश्वरत्व की कल्पना की गई है।

(2) हीनयान सम्प्रदाय के अनुयायी संख्यात्मक दृष्टि से अत्यन्त सीमित थे, जबकि महायान सम्प्रदाय के अनुयायियों की संख्या में तीव्र गति से वृद्धि हो रही थी। इसका कारण महायान सम्प्रदाय का विदेशों में भी प्रचार होता था, जबकि हीनयान सम्प्रदाय के अनुयायियों ने इस दिशा में कोई प्रयास नहीं किया।

प्रश्न 12—जैन धर्म के सम्प्रदायों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। *(1999)*

उत्तर : जैन धर्म के दो प्रमुख सम्प्रदाय हैं—(1) श्वेताम्बर और (2) दिगम्बर।

(1) श्वेताम्बर सम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय के अनुयायी नग्न न रहकर वस्त्र धारण करते हैं और महावीर के मूल सिद्धान्तों का पालन नहीं करते हैं। इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक स्थूलभद्र थे।

(2) दिगम्बर सम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक भद्रबाहु थे। दिगम्बर महावीर के मूल सिद्धान्तों का पालन करते हैं और वस्त्र धारण नहीं करते हैं। जैन धर्म का दिगम्बर सम्प्रदाय अधिक लोकप्रिय नहीं हुआ है।

ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों एवं व्यक्तियों पर आधारित प्रश्न

प्रश्न 1—निम्नांकित तिथियों के ऐतिहासिक महत्त्व पर प्रकाश डालिए—

उत्तर—(1) 599 ईसा पूर्व *(1992, 99)*—इस तिथि को जैन धर्म के प्रवर्तक और 24वें तीर्थंकर महावीर स्वामी (वर्द्धमान) ने वैशाली गणराज्य के 'कुण्डग्राम' नामक स्थान पर जन्म लिया था। इनके पिता का नाम सिद्धार्थ और माता का नाम त्रिशला था।

(2) 527 ईसा पूर्व *(1992, 96, 99)*—इस तिथि को महावीर स्वामी ने पावापुरी (पटना) नामक स्थान पर 72 वर्ष की आयु में निर्वाण प्राप्त किया था।

(3) 563 ईसा पूर्व *(1997)*—इस तिथि को बौद्ध धर्म के संस्थापक गौतम बुद्ध (सिद्धार्थ) ने लुम्बिनी (कपिलवस्तु) नामक वन में जन्म लिया था। इनके पिता का नाम शुद्धोधन और माता का नाम महामाया था।

(4) 562 ईसा पूर्व *(1993, 96)*—कुछ विद्वानों के मतानुसार इस तिथि को ही महात्मा बुद्ध का जन्म हुआ था।

(5) 542 ईसा पूर्व *(1993)*—कुछ विद्वान् इसी तिथि को महात्मा बुद्ध के महापरिनिर्वाण की तिथि सिद्ध करते हैं।

(6) 540 ईसा पूर्व *(1996)*—कुछ विद्वानों के अनुसार इसी तिथि को महावीर स्वामी का जन्म हुआ था।

(7) 487 ईसा पूर्व *(1993)*—इस तिथि को महाकस्सप की अध्यक्षता में राजगृह के निकट सप्तपर्णी गुफा में प्रथम बौद्ध संगीति का आयोजन हुआ था।

(8) 486 ईसा पूर्व *(1994, 96)*—कुछ विद्वानों के अनुसार इसी तिथि को महात्मा बुद्ध को महापरिनिर्वाण प्राप्त हुआ।

(9) 483 ईसा पूर्व *(1995, 96)*—इस तिथि को महात्मा बुद्ध ने 80 वर्ष की आयु में कुशीनगर (गोरखपुर) नामक स्थान पर महापरिनिर्वाण प्राप्त किया था। इसी वर्ष बौद्धभिक्षु कस्सप ने राजगृह में पहली बौद्ध सभा का आयोजन करवाया था।

(10) 468 ईसा पूर्व *(1993, 95, 96)*—कुछ विद्वानों का मत है कि इस तिथि को पावापुरी (राजगृह के निकट) नामक स्थान पर महावीर स्वामी को निर्वाण पद प्राप्त हुआ था।

(11) 387 ईसा पूर्व *(1997, 99)*—इस तिथि को वैशाली में दूसरी बौद्ध सभा का अधिवेशन हुआ था।

(12) 251 ईसा पूर्व—इस तिथि को सम्राट अशोक ने आचार्य मोग्गिलिपुत्त तिस्स की अध्यक्षता में तीसरी बौद्ध सभा का आयोजन पाटलिपुत्र में करवाया था।

प्रश्न 2—निम्नांकित ऐतिहासिक स्थलों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) कपिलवस्तु *(1997)*—यह स्थान गौतम बुद्ध की जन्मभूमि है। बौद्धकाल में यह शाक्य वंश के राजा शुद्धोधन की राजधानी था। इसके अन्तर्गत गोरखपुर का पश्चिमी भाग और नेपाल का तराई भाग सम्मिलित था। यहाँ का लुम्बिनी वन और बौद्ध स्मारक आज भी दर्शनीय हैं।

(2) कुण्डग्राम—यह स्थान वैशाली के निकट वर्तमान बिहार में स्थित है। छठी शताब्दी ईसा पूर्व में इस स्थान पर ज्ञात्रिकों का प्रभुत्व था और यहीं पर महावीर स्वामी ने जन्म लिया था। यहाँ का जैन मन्दिर दर्शनीय है।

(3) बोध गया—यह स्थल प्राचीन बौद्ध और हिन्दू संस्कृति का केन्द्र रहा है। महात्मा बुद्ध ने यहीं पर पीपल के वृक्ष के नीचे दिव्य ज्ञान प्राप्त किया था। इस वृक्ष को बोधि वृक्ष कहा जाता है और यह आज भी विद्यमान है। इसके अतिरिक्त गया में एक विशाल बौद्ध मन्दिर भी है।

(4) सारनाथ *(1990, 91, 92, 93, 94, 95, 97, 99)*—वाराणसी के निकट स्थित यह स्थल बौद्ध धर्म का प्रमुख तीर्थ स्थान है। यहाँ पर स्थित महात्मा बुद्ध की विशालकाय मूर्ति, बौद्ध मठ तथा विहार दर्शनीय हैं। इसी स्थान पर महात्मा बुद्ध ने अपने पाँच शिष्यों को प्रथम उपदेश दिया था। यह घटना बौद्ध धर्म के इतिहास में **'धर्म-चक्र प्रवर्तन'** के नाम से विख्यात है।

(5) पावा—यह नगर प्राचीन मल्ल राज्य की राजधानी था। यह स्थल वर्तमान गोरखपुर जिले में स्थित है। इसी स्थान पर महावीर स्वामी ने निर्वाण प्राप्त किया था।

(6) कुशीनगर *(1992, 94, 97)*—गोरखपुर जिले में स्थित यह स्थल प्राचीन मल्ल गणराज्य की राजधानी था। महात्मा बुद्ध ने यहीं पर महापरिनिर्वाण प्राप्त किया था। यहाँ के बौद्ध स्मारक दर्शनीय हैं।

(7) कौशाम्बी *(1991, 96, 99)*—यह प्राचीन काल में वत्स महाजनपद की राजधानी थी, जो इलाहाबाद से 30 मील दूर थी। यहाँ का राजा उदयन इतिहास प्रसिद्ध है। यह नगर प्राचीन भारत का प्रमुख व्यापारिक केन्द्र था।

(8) वैशाली—यह स्थान प्राचीन काल में लिच्छवियों की राजधानी था। महात्मा बुद्ध के समय में इस पर वज्जियों का प्रभुत्व स्थापित था।

(9) स्वर्णगिरि—यह नगर वर्तमान मिर्जापुर के निकट स्थित था। प्राचीन काल में मग्गों ने यहाँ पर अपना गणराज्य स्थापित कर रखा था।

(10) उज्जैन *(1990, 99)*—मध्य प्रदेश में स्थित उज्जैन; प्राचीन काल से ही ऐतिहासिक नगर रहा है। बौद्धकाल में उत्तरी अवन्ति की राजधानी उज्जैन ही थी। यहाँ का विख्यात राजा प्रद्योत बुद्ध का समकालीन था। इस नगर के अनेक ऐतिहासिक स्थल दर्शनीय हैं।

(11) वाराणसी *(1993, 97)*—यह प्राचीन काशी महाजनपद की राजधानी और अपने समय के प्रमुख नगरों में से एक था। जैन तीर्थंकर पार्श्वनाथ के पिता काशी के ही राजा थे। यह नगर अपनी ऐतिहासिकता के लिए भारतीय इतिहास में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

(12) श्रावस्ती *(1991, 95, 97)*—यह प्राचीन काल में कौशल महाजनपद (मध्य उत्तर प्रदेश—अवध) की राजधानी थी। प्राचीन समय में यह कला और संस्कृति का मुख्य केन्द्र थी।

(13) चम्पा नगरी—यह मगध के पश्चिम में स्थित अंग महाजनपद की राजधानी थी। इस पर मगध के शासक बिम्बसार ने अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था।

(14) राजगृह *(1997)*—यह प्राचीन मगध साम्राज्य की राजधानी थी। इसे गिरिव्रज भी कहा जाता था। वृहद्रथ, जरासन्ध, बिम्बसार और अजातशत्रु आदि विख्यात राजाओं ने यहाँ पर शासन किया था।

(15) मिथिला—वर्तमान बिहार में स्थित मिथिला नगरी प्राचीन महाजनपद विदेह की राजधानी थी। उस समय इस पर वज्जि कबीले की एक शाखा का शासन था।

(16) शक्तिमती—वर्तमान बुन्देलखण्ड में स्थित चेदि राज्य की राजधानी शक्तिमती थी। यहीं का राजा शिशुपाल था।

(17) अहिच्छत्र *(1997)*—वर्तमान रुहेलखण्ड में स्थित उत्तरी पांचाल की राजधानी अहिच्छत्र थी।

(18) काम्पिल्य—वर्तमान रुहेलखण्ड में स्थित दक्षिणी पांचाल की राजधानी यही नगरी थी।

(19) विराटनगर—दिल्ली के निकट स्थित विराटनगर प्राचीन काल में मत्स्य राज्य की राजधानी थी। महाभारत युग में शाहज नामक राजा यहाँ का शासक था।

(20) मथुरा *(1990, 93, 97, 99)*—प्राचीन काल से ही मथुरा एक ऐतिहासिक नगर रहा है। प्रारम्भ में मथुरा शूरसेन राज्य की राजधानी थी। यहाँ का राजा अवन्तिपुत्र बुद्ध का समकालीन था।

(21) पोतल—इसका दूसरा नाम पोतली था। यह अस्सक राज्य की राजधानी और गोदावरी नदी के तट पर स्थित था।

(22) राजगीर (राजगिरि) *(1990)*—यह पहाड़ी स्थल बिहार प्रदेश के नालन्दा जिले में दक्षिण में 8 किमी दूर स्थित है। मगध शासक बिम्बसार ने राजगृह नामक अपनी नई राजधानी यहीं बसाई थी। पहले उसकी राजधानी राजगीर के निकट स्थित गिरिव्रज थी। राजगीर के निकट अशोक के कुछ शिलालेख भी मिले हैं। राजगीर में महात्मा बुद्ध और महावीर स्वामी ने अपने उपदेश दिए थे।

(23) माहिष्मती—वर्तमान मालवा प्रान्त (मध्य प्रदेश) में स्थित नगर प्राचीन काल में दक्षिणी अवन्ति राज्य की राजधानी था।

(24) लुम्बिनी—लुम्बिनी वन कपिलवस्तु (वर्तमान नेपाल) के निकट स्थित है। लुम्बिनी वन में राजा शुद्धोधन की रानी महामाया ने गौतम बुद्ध (सिद्धार्थ) को जन्म दिया था। गौतम बुद्ध बौद्ध धर्म के प्रवर्तक थे।

प्रश्न 3—निम्नांकित ऐतिहासिक व्यक्तियों पर टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) पार्श्वनाथ—आप जैन धर्म के 23वें तीर्थंकर थे। आपके पिता अश्वसेन काशी महाजनपद के राजा थे। आपने जैन धर्म के उत्थान के लिए अथक प्रयास किया था।

(2) ऋषभदेव—आप जैन धर्म के संस्थापक तथा प्रथम तीर्थंकर थे। आपके जीवन के विषय में अधिक जानकारी उपलब्ध नहीं है।

(3) बिम्बसार *(1993)*—बिम्बसार मगध साम्राज्य का संस्थापक और एक शक्तिशाली शासक था। उसने कौशल के राजा महाकौशल की पुत्री कौशल देवी से, जो राजा प्रसेनजित की बहन थी, विवाह किया था। उसका शासन काल 603 ईसा पूर्व से 551 ईसा पूर्व माना जाता है।

(4) अजातशत्रु *(1995, 97, 99)*—अजातशत्रु बिम्बसार का पुत्र था। उसने अपने पिता की हत्या करके 551 ईसा पूर्व में मगध का सिंहासन प्राप्त किया और 510 ईसा पूर्व तक सफलतापूर्वक शासन किया। अजातशत्रु ने कौशल व वैशाली के राजाओं से युद्ध करके उन पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। अजातशत्रु जैन धर्म और बौद्ध धर्म दोनों का अनुयायी था।

(5) शिशुनाग—शिशुनाग परम वीर और साहसी सम्राट था। उसने अवन्ति के राजा अवन्तिवर्धन को पराजित कर अवन्ति को मगध के साम्राज्य में मिला लिया। उसने 18 वर्ष (471 ईसा पूर्व से 453 ईसा पूर्व) तक मगध पर शासन किया था।

(6) उदयन—पुराणों के अनुसार उदयन या उदायी अजातशत्रु का पुत्र और उत्तराधिकारी था। उदयन ने ही मगध की नई राजधानी पाटलिपुत्र की स्थापना की थी।

(7) चण्ड प्रद्योत—यह अवन्ति का एक क्रूर और महत्त्वाकांक्षी राजा था। इसने अपनी पुत्री वासवदत्ता का विवाह राजा उदयन से किया था। इसने 23 वर्ष तक अवन्ति पर शासन किया था।

(8) प्रसेनजित—यह महात्मा बुद्ध का समकालीन कौशल का एक शक्तिशाली राजा था। यह इक्ष्वाकु वंश से सम्बन्धित था। इसे अग्निदत्त और प्रसेनदी नामों से भी पुकारा जाता है। इसने काशी और मगध से अनेक बार युद्ध किया था।

(9) कस्सप—यह एक महान् ज्ञानी बौद्ध विद्वान् था। महात्मा बुद्ध की मृत्यु के पश्चात् पहली बौद्ध सभा की अध्यक्षता कस्सप ने ही की थी। कस्सप ने अभिधम्मपिटक का सम्पादन भी किया था।

(10) उपालि—उपालि महात्मा बुद्ध का सर्वाधिक वयोवृद्ध शिष्य था। इसे बौद्ध संघ के नियमों का पूर्ण ज्ञान था। प्रथम बौद्ध सभा के अधिवेशन में उपालि ने विनय पिटक का संशोधन किया था।

(11) नागसेन—यह बौद्ध धर्म का प्रकाण्ड विद्वान् था। इसने राजा मिनेण्डर से शास्त्रार्थ करके उनकी बौद्ध धर्म सम्बन्धी जिज्ञासा को सन्तुष्ट किया था।

(12) मिनेण्डर *(1990, 91, 95, 97)*—यह ग्रीक-बैक्ट्रियन शासक था। इसने भारत पर आक्रमण करके यहाँ के कुछ भाग पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया था। बौद्ध धर्म के विद्वान् नागसेन और मिनेण्डर का वार्तालाप 'मिलिन्दपन्हों' नामक बौद्ध-ग्रन्थ में संकलित है।

(13) महावीर स्वामी *(1996, 99)*—इनका जन्म 599 ईसा पूर्व, वैशाली के निकट 'कुण्ड' नामक ग्राम में, एक क्षत्रिय राजघराने में हुआ था। इनके बचपन का नाम 'वर्द्धमान' था। इनकी माता का नाम 'त्रिशला' और पिता का नाम 'सिद्धार्थ' था। युवावस्था में इनका विवाह 'यशोदा' नामक राजकुमारी के साथ हुआ। अपने पिता की मृत्यु के उपरान्त वर्द्धमान ने संन्यास धारण कर लिया और 12 वर्ष तक कठोर तपस्या की। 12 वर्ष की घोर तपस्या के उपरान्त उन्हें 'कैवल्य' (ज्ञान) की प्राप्ति हुई। ज्ञान की प्राप्ति के उपरान्त महावीर स्वामी ने जैन धर्म के प्रचार का कार्य प्रारम्भ किया। धर्म प्रसार के लिए आजीवन संघर्ष करते हुए, 527 ईसा पूर्व में पटना के निकट 'पाँवापुरी' नामक स्थान पर, महावीर स्वामी का देहान्त हो गया।

6 बौद्धकालीन सभ्यता और संस्कृति

[बौद्धकालीन राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा धार्मिक दशा]

"भारत के सांस्कृतिक इतिहास का प्रारम्भ सुदूर प्राचीन काल में हुआ, किन्तु उसके राजनीतिक इतिहास का प्रारम्भ 650 ईसा पूर्व से पहले दृष्टिगत नहीं होता। फिर भी राजनीतिक इतिहास के सूत्र बिखरे हुए हैं और राजनीतिक एकीभूत राष्ट्रीय इतिहास के पट के रूप में हम उन्हें बुना हुआ नहीं पाते।" —डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—बौद्धकालीन राजनीतिक और आर्थिक दशा पर प्रकाश डालिए। *(Imp.)*

अथवा **छठी शताब्दी ईसा पूर्व में भारत की राजनीतिक दशा का वर्णन कीजिए।**

उत्तर—

बौद्धकालीन राजनीतिक दशा

इस युग की राजनीतिक दशा विचित्र थी। उत्तरी भारत तथा शेष भारत में भी छोटे-बड़े अनेक राज्य थे, किन्तु इस युग में अधिकांशतः निरंकुश राज्य ही थे, इनमें कुछ राज्य प्रजातन्त्रात्मक भी थे। बौद्ध साहित्य के अध्ययन से विदित होता है कि उस समय छोटे-बड़े अनेक राज्य (महाजनपद) थे। किन्तु बुद्ध के अन्तिम दिनों तक इनमें से केवल 16 महाजनपद ही शेष रह गए थे। इनके नाम निम्नलिखित हैं—

(1) मगध, (2) वत्स, (3) कौशल, (4) अवन्ति, (5) काशी, (6) अंग, (7) वज्जि, (8) शूरसेन, (9) मत्स्य, (10) चेदि, (11) कुरु, (12) मल्ल, (13) कम्बोज, (14) गान्धार, (15) पांचाल, (16) अश्मक।

इनमें पहले चार राजतन्त्रीय राज्य सर्वाधिक शक्तिशाली थे। ये राज्य साम्राज्यवादी नीति के पोपक थे। इसीलिए ये राज्य निरन्तर छोटे-छोटे राज्यों पर अधिकार स्थापित करने के प्रयत्न में लगे रहते थे।

(नोट—इन महाजनपदों का विस्तृत विवरण अध्याय 5 के दीर्घ उत्तरीय प्रश्न 10 में दिया जा चुका है।)

इन महाजनपदों के अतिरिक्त उत्तरी भारत में कुछ गणराज्य भी थे। रीज़ डेविड्स ने अपनी पुस्तक 'Buddhist India' में निम्नलिखित गणराज्यों का उल्लेख किया है—

(1) कपिलवस्तु के शाक्य। (2) अल्लकप के बुली।
(3) केसपुत्त के कालाम। (4) सुंसुमारगिरि के भग्ग।
(5) रामग्राम के कोलिय। (6) पावा के मल्ल।
(7) कुशीनारा के मल्ल। (8) पिप्पलीवन के मोरिय।
(9) मिथिला के विदेह। (10) वैशाली के लिच्छवि।
(11) वैशाली के नाग।

(1) गणराज्यों की शासन-प्रणाली—बौद्धकालीन गणतन्त्र राज्यों में प्रजातान्त्रिक शासन-प्रणाली प्रचलित थी। जनता द्वारा राज्य-परिषद् के सदस्यों का चुनाव होता था। इस परिषद् के प्रधान या अध्यक्ष का निर्वाचन भी जनता ही करती थी। यह प्रधान सभा का सारा प्रबन्ध करता था। कोई भी प्रस्ताव परिपद या सभा के समक्ष प्रस्तुत करने से पूर्व इसको सूचना देनी पड़ती थी। प्रस्तावों का निर्णय परिपद् के सदस्यों के मतों के आधार पर होता था।

(2) राजतन्त्रों में पारस्परिक संघर्ष—राजतन्त्रीय राज्यों (मगध, वत्स, कौशल, अवन्ति) में उस समय वर्तमान समय की भाँति कोई संवैधानिक केन्द्रीय सरकार नहीं थी। राज्यों में साम्राज्यवादी भावना विद्यमान थी। इसलिए ये चारों राज्य परस्पर युद्धरत रहते थे। प्रत्येक राजतन्त्र अपने राज्य की सीमा बढ़ाने के लिए

प्रयलशील रहता था। इन चारों राज्यों में कौशल राज्य सर्वाधिक शक्तिशाली था, किन्तु बाद में मगध राज्य ने कौशल राज्य को अपने में मिलाकर उसका अस्तित्व समाप्त कर दिया था।

बुद्ध के समय अवन्ति राज्य का शासक प्रद्योत अपनी कठोर नीति के कारण 'चण्ड' कहा जाता था। प्रद्योत मगध पर आक्रमण करना चाहता था, किन्तु उसकी मृत्यु हो गई और इसके साथ ही अवन्ति राज्य का पतन प्रारम्भ हो गया।

वत्स राज्य का राजा उदयन अत्यन्त रसिक प्रकृति का था। इसीलिए उस समय का संस्कृत साहित्य उसकी प्रेम-कथाओं से परिपूर्ण है। उदयन की मृत्यु के पश्चात् से वत्स राज्य का भी पतन होने लगा था।

बौद्धकालीन राजनीतिक व्यवस्था

(1) गणराज्यों की शासन-प्रणाली
(2) राजतन्त्रों में पारस्परिक संघर्ष
(3) मगध साम्राज्य का उत्थान
(4) श्रेष्ठ न्याय व्यवस्था।

(3) मगध साम्राज्य का उत्थान—अन्त में तीनों राजतन्त्रों को मगध अपने राज्य में मिलाने में सफल हो गया और यह एक विशाल साम्राज्य बन गया। मगध की इस सफलता में **राजा बिम्बसार और उसके पुत्र अजातशत्रु** का प्रमुख योगदान था।

(4) श्रेष्ठ न्याय-व्यवस्था—बौद्धकाल में न्याय व्यवस्था उत्तम कोटि की थी। अपराधियों को उचित दण्ड दिया जाता था। एक सामान्य पुरुष भी गण के प्रधान या राजा से अपनी समस्या का निराकरण करवा सकता था।

बौद्धकालीन आर्थिक दशा

(1) कृषि—उस समय अधिकांशतः लोग कृषि करते थे। सिंचाई के लिए कुएँ, तालाब एवं जलाशय आदि पर्याप्त संख्या में थे। खेतों को अपने ढंग से व्यवस्थित किया जाता था। चारों ओर से झाड़ियों आदि से उन्हें घेर दिया जाता था। इसके अतिरिक्त, जीवन-निर्वाह का अन्य साधन पशुपालन भी था। समाज के व्यक्तियों का जीवन सरल, साधारण एवं शान्तिमय था।

(2) उद्योग-धन्धे—जातकों से पता चलता है कि उस समय हस्त उद्योग-धन्धे भी पर्याप्त उन्नत अवस्था में थे। बौद्ध ग्रन्थों से पता चलता है कि उस समय 18 प्रकार की दस्तकारी समृद्ध अवस्था में थी। उस समय बड़े-बड़े कारखाने न थे। इसीलिए राज्य की समस्त आवश्यकताओं की पूर्ति इन्हीं हस्त-उद्योगों द्वारा होती थी। इनमें लकड़ी का काम, लुहार और सुनार का काम, चमड़े का काम उन्नत अवस्था में था। इसके साथ ही कुम्हार, माली, तेली, जुलाहा, रंगरेज, हाथीदाँत के कारीगर आदि का आर्थिक स्तर भी संतोषप्रद था। व्यवसाय जन्म के आधार पर अपनाए जाते थे। महत्त्वपूर्ण हस्त-उद्योग की वस्तुओं तथा हाथीदाँत की वस्तुओं का निर्यात किया जाता था।

बौद्धकालीन आर्थिक दशा

(1) कृषि
(2) उद्योग-धन्धे
(3) उन्नत व्यापार
(4) मुद्रा का प्रचलन।

(3) उन्नत व्यापार—उस समय व्यापारियों की संख्या पर्याप्त थी। ये राज्य में तथा राज्य से बाहर भी अनेक वस्तुएँ बेचने एवं खरीदने जाते थे। ये लोग काफिला बनाकर चलते थे। देश में अत्यन्त सुन्दर राजमार्ग बने हुए थे। ये मार्ग राज्य में एक नगर से दूसरे नगर तक सीधे जाते थे। उस समय स्थल-मार्ग के अतिरिक्त जल-मार्ग द्वारा भी व्यापार होता था। भारतीय दूसरे देशों को रेशम, किमखाब, मलमल, बर्तन, औषधि, हाथीदाँत की वस्तुएँ तथा अन्य अनेक वस्तुएँ बेचने जाते थे।

(4) मुद्रा का प्रचलन—बौद्धकालीन भारत में सोने, चाँदी एवं ताम्र धातु के सिक्कों का प्रचलन था। एक रुपये के सिक्के को **कर्षापण** कहा जाता था। किन्तु गाँवों में वस्तु-विनिमय का ही अधिक प्रचार था। सिक्कों पर उनकी तौल एवं अन्य समस्त तथ्य उत्कीर्ण किए जाते थे।

प्रश्न 2—बौद्धकालीन सामाजिक और धार्मिक दशा पर एक निबन्ध लिखिए।

अथवा **"बुद्ध के आगमन से प्रचलित सामाजिक और धार्मिक दशाओं में लोकहितकारी परिवर्तन हुए।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं?**

अथवा **भारत में ईसा पूर्व छठी शताब्दी में हुई धार्मिक क्रान्ति का विवरण दीजिए।** *(1995)*

उत्तर— छठी शताब्दी ईसा पूर्व की धार्मिक क्रान्ति

भारत के धार्मिक इतिहास में ईसा पूर्व छठी शताब्दी का एक विशिष्ट स्थान है, क्योंकि इस शताब्दी में धर्म के क्षेत्र में भारी उथल-पुथल और क्रान्ति हुई, जिनका समाज पर व्यापक प्रभाव पड़ा। इस शताब्दी में धार्मिक क्रान्ति के प्रणेता न केवल भारतीय थे, बल्कि विदेशी विचारकों ने भी प्राचीन धार्मिक परम्पराओं का खण्डन कर जनता को एक नया मार्ग दिखाया। ईरान में जरथुस्त्र, चीन में कन्फ्यूशियस, यूनान में हिराक्लिटस ने नवीन धर्मों की नींव डाली। भारत में महावीर स्वामी तथा गौतम बुद्ध ने क्रमशः जैन धर्म और बौद्ध धर्म का सूत्रपात किया।

भारत में इस धार्मिक क्रान्ति के उद्भव के निम्नांकित कारण थे—

(1) बहुदेववाद की प्रधानता। (2) धार्मिक चिन्तन की स्वतन्त्रता।
(3) धार्मिक कर्मकाण्डों की जटिलता। (4) कठिन तथा अव्ययी यज्ञ।
(5) ब्राह्मणों का नैतिक पतन। (6) क्लिष्ट धार्मिक साहित्य।
(7) वर्ण व्यवस्था। (8) दार्शनिकों का जन्म।

बौद्धकालीन सामाजिक दशा
(छठी शताब्दी ईसा पूर्व में हुए सामाजिक परिवर्तन)

छठी शताब्दी ईसा पूर्व में हुए सामाजिक परिवर्तनों का संक्षिप्त परिचय निम्नवत् है—

(1) जाति-पाँति के बन्धनों में शिथिलता—छठी शताब्दी ईसा पूर्व में जाति-पाँति के बन्धन अत्यन्त कठोर थे। इसकी प्रतिक्रिया या विरोधस्वरूप ही छठी शताब्दी ई० पू० में बौद्ध धर्म का जन्म हुआ। बौद्ध धर्म ने बिना भेद-भाव के सभी जातियों एवं वर्गों के लोगों को शरण देनी आरम्भ कर दी थी। इसी समय जैन धर्म का उदय भी हो चुका था। यह धर्म भी निरन्तर जाति-पाँति का भेद-भाव समाप्त करने का प्रयत्न कर रहा था। इससे जाति-पाँति के बन्धनों में शिथिलता आई और समाज में एकता का सूत्रपात हुआ।

(2) स्त्रियों की दशा—अनेक बौद्ध ग्रन्थों द्वारा यह विदित होता है कि बौद्धकाल में स्त्रियों की स्थिति सन्तोषप्रद थी। इस युग में पर्दा-प्रथा नहीं थी। बौद्ध संघ में पर्याप्त ज्ञानी स्त्रियाँ निष्पक्ष रूप से पुरुषों के समान शिष्य बनाई जाती थीं। इस प्रकार, उस काल में स्त्रियाँ अनेक दृष्टियों से पुरुष के समान अधिकारिणी होती थीं। जातक साहित्य में ऐसी महिलाओं के विवरण भी प्राप्त होते हैं, जो दुष्ट प्रवृत्ति की होती थीं और परिवार में कलह का वातावरण उत्पन्न करती थीं। बौद्ध धर्म और जैन धर्म के प्रभाव से, इस प्रकार की नारियों के जीवन में क्रान्तिकारी परिवर्तन आया।

(3) विवाह—विवाह के सम्बन्ध में भी इस युग की अनेक विशिष्ट बातें उल्लेखनीय हैं। कुछ लोग सगोत्र विवाह करना उचित, तो कुछ अनुचित मानते थे। सगोत्र का अर्थ है—मामा-चाचा के पुत्र-पुत्रियों में विवाह हो जाना। बुद्ध का विवाह उनके मामा की पुत्री के साथ ही हुआ था। इसके अतिरिक्त, उस समय स्वयंवर-प्रथा भी प्रचलित थी। उस समय बहुविवाह, पुनर्विवाह और विधवा-विवाह आदि प्रथाएँ भी प्रचलित थीं।

> **बौद्धकालीन सामाजिक दशा**
> (1) जाति-पाँति के बन्धनों में शिथिलता
> (2) स्त्रियों की दशा
> (3) विवाह
> (4) गाँवों और नगरों की व्यवस्था।

(4) गाँवों और नगरों की व्यवस्था—बौद्ध साहित्य में कुछ नगरों का वर्णन अवश्य मिलता है; यथा—वैशाली, कपिलवस्तु, तक्षशिला और राजगृह आदि। किन्तु अधिकांश जनता गाँवों में ही निवास करती थी। गाँवों की व्यवस्था का उत्तरदायित्व स्थानीय संस्था 'ग्राम-सभा' पर होता था और नगरों का 'नगर-सभा' पर। ग्रामों की दशा में उल्लेखनीय सुधार हुआ था, क्योंकि धर्म और ज्ञान का प्रकाश यहाँ भी फैलने लगा था।

बौद्धकालीन धार्मिक दशा
(छठी शताब्दी ईसा पूर्व में हुए धार्मिक परिवर्तन)

इस काल में प्रत्येक धर्म की दशा में अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हो रहे थे, जो अग्र प्रकार हैं—

(1) ब्राह्मण धर्म में अनेक दोषों का समावेश—ब्राह्मण धर्म पाखण्डवादी होता जा रहा था। उसमें यज्ञों का प्रचलन बढ़ रहा था। साथ ही ब्राह्मण धर्म दार्शनिक ऐसी विचारधाराओं से भी ग्रसित होता जा रहा था, जो आम-जनता की समझ से परे थीं। ब्राह्मणों का कहना था कि वेदों की गूढ़ बातों को जानने का अधिकार केवल ब्राह्मणों को है। आम जनता को तो केवल पशु-पूजा, वृक्ष-पूजा आदि करने की आज्ञा थी। इस प्रकार, ब्राह्मण धर्म में पाखण्डवाद और भेद-भाव बढ़ता जा रहा था। बौद्ध धर्म और जैन धर्म ने इस पाखण्डवाद पर शक्तिशाली प्रहार किया।

(2) बौद्ध धर्म की उन्नति—बौद्ध धर्म की इस काल में अत्यधिक उन्नति हुई। भारत में ही नहीं, वरन् इस धर्म का प्रसार अन्य देशों में भी हुआ। इसका एक प्रमुख कारण यह था कि इस धर्म का प्रचार बुद्ध ने अत्यन्त सरल भाषा में किया तथा लोगों के हृदय में धर्म के प्रति विशेष आस्था जाग्रत की।

बौद्धकालीन धार्मिक दशा
(1) ब्राह्मण धर्म में अनेक दोषों का समावेश
(2) बौद्ध धर्म की उन्नति
(3) जैन धर्म का उत्थान।

(3) जैन धर्म का उत्थान—छठी शताब्दी ईसा पूर्व में ही जैन धर्म का भी अभूतपूर्व प्रसार हुआ और इस धर्म ने भी उल्लेखनीय उन्नति की। जैन धर्म और बौद्ध धर्म अनेक बातों में समान थे, किन्तु कुछ बातों में उनमें अत्यधिक अन्तर था। जैन धर्म भी सभी वर्गों और जातियों के लिए समान रूप से खुला हुआ था। अतः इस धर्म के उपासकों की संख्या भी सम्पूर्ण भारत में निरन्तर बढ़ती गई।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि ईसा पूर्व की छठी शताब्दी में प्रत्येक क्षेत्र में अनेक क्रान्तिकारी परिवर्तन हुए, लोगों को धार्मिक जटिलताओं से मुक्ति मिली और सामाजिक क्षेत्र में जाति-पाँति के भेद-भाव समाप्त हुए। इस प्रकार, इस युग में चतुर्मुखी विकास और पर-कल्याण की भावना का अभूतपूर्व विकास हुआ। वास्तव में, बुद्ध के आगमन से समाज के धार्मिक क्षेत्र में अनेक लोकहितकारी परिवर्तन हुए थे।

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—भारतीय संस्कृति के लिए बौद्ध धर्म की देन लिखिए।

उत्तर—भारतीय संस्कृति को बौद्ध धर्म की देन निम्नलिखित हैं—

(1) बौद्ध धर्म के विकास के परिणामस्वरूप जन-साहित्य का विकास हुआ और जन-साहित्य से जनसामान्य को धर्म की विस्तृत जानकारी प्राप्त हुई।

(2) बौद्ध धर्म द्वारा प्रचलित संघ-व्यवस्था के माध्यम से जनता धर्म के वास्तविक रूप से परिचित हुई।

(3) कला के क्षेत्र में भी अपूर्व प्रगति हुई। गान्धार कला का विकास बौद्धकाल में ही हुआ। स्तूप भी बौद्ध संस्कृति की प्रमुख देन हैं।

(4) इस धर्म द्वारा जन-सेवा तथा मानव-प्रेम की भावना का विकास विशेष रूप से हुआ। लोक-हित पर विशेष बल दिया गया तथा समाज में परोपकार को प्रोत्साहन दिया गया।

प्रश्न 2—बौद्धकालीन गणराज्यों की चार विशेषताएँ बताइए।

उत्तर—बौद्धकालीन गणराज्यों की चार विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(1) गणराज्यों के शासन का स्वरूप प्रजातन्त्रीय था। गणराज्य के प्रधान का चुनाव होता था और गणराज्य का प्रधान शासन में जनता की इच्छा को सर्वाधिक महत्त्व देता था।

(2) राज्य परिषद् में जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि होते थे, जो प्रस्तावों पर वाद-विवाद करते थे। इन प्रस्तावों पर आवश्यकता पड़ने पर मतदान भी होता था।

(3) सैनिक-शक्ति को विशेष महत्त्व दिया गया था। प्रत्येक सैनिक को विशेष प्रशिक्षण दिया जाता था।

(4) इस काल में न्याय-व्यवस्था उत्तम कोटि की थी। जनसाधारण को निष्पक्ष रूप से न्याय प्राप्त होता था।

प्रश्न 3—सोलह महाजनपदों में से किन्हीं चार महाजनपदों के नाम लिखिए। *(1995)*

उत्तर— (1) काशी, (2) कम्बोज, (3) गान्धार एवं (4) चेदि।

ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों एवं व्यक्तियों पर आधारित प्रश्न

प्रश्न 1—निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्त्व पर प्रकाश डालिए—

उत्तर—(1) 603 ईसा पूर्व—इस तिथि को बिम्बसार मगध के सिंहासन पर आसीन हुआ था।

(2) 528 ईसा पूर्व—कुछ विद्वान इसी तिथि को महावीर स्वामी की निर्वाण तिथि मानते हैं।

(3) 394 ईसा पूर्व—इस तिथि को शिशुनाग का पुत्र कालाशोक मगध के सिंहासन पर बैठा। द्वितीय बौद्ध संगीति का आयोजन इसी के शासन काल में हुआ था।

प्रश्न 2—निम्नलिखित ऐतिहासिक स्थलों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) मगध—छठी शताब्दी ईसा पूर्व में यह राज्य, वर्तमान बिहार राज्य के गया एवं पटना जिले के मध्य स्थित था। इस राज्य की राजधानी राजगृह थी। इस राज्य के कई शासक बौद्ध धर्म के प्रसार में सहायक हुए।

(2) कुरु—धार्मिक क्रान्ति के समय यह राज्य वर्तमान दिल्ली तथा मेरठ के समीप स्थित था। इसकी राजधानी इन्द्रप्रस्थ (दिल्ली के समीप) थी।

प्रश्न 3—निम्नलिखित ऐतिहासिक व्यक्तियों पर टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) आनन्द—यह महात्मा बुद्ध का सर्वप्रिय शिष्य था, जो अन्त तक उनके साथ रहा। आनन्द ने 483 ईसा पूर्व में आयोजित प्रथम बौद्ध संगीति में भी भाग लिया था।

(2) राहुल—यह गौतम बुद्ध का पुत्र था। इसके जन्म का समाचार सुनते ही महात्मा बुद्ध के मुख से सहसा ये शब्द निकले थे—"राहु जातो बन्धनं जानन्ति।" अर्थात् राहु उत्पन्न हुआ, बन्धन पैदा हुआ। ये शब्द सुनकर ही शुद्धोदन ने अपने पौत्र का नाम राहुल रखा।

7 पश्चिमी जगत से भारत का सम्पर्क : सिकन्दर का आक्रमण

[सिकन्दर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक दशा, सिकन्दर का भारत पर आक्रमण तथा इस आक्रमण का भारत पर प्रभाव]

"सिकन्दर के भारतीय अभियान ने साहित्य, जीवन अथवा शासन किसी पर भी कोई स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ा।"

— डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी

विस्तृत उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—सिकन्दर के आक्रमण से पूर्व भारत की दशा का संक्षेप में वर्णन कीजिए। इस आक्रमण ने भारतीय राजनीति तथा समाज को किस प्रकार प्रभावित किया ? *(1990, 94)*

अथवा **"सिकन्दर के आक्रमण के समय उत्तरी भारत छोटे-छोटे राज्यों का अजायबघर बना हुआ था।" विवेचना कीजिए।**

अथवा **सिकन्दर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक दशा पर प्रकाश डालिए।** *(1995)*

अथवा **सिकन्दर के आक्रमण के समय भारत की दशा पर प्रकाश डालिए तथा यह भी बताइए कि इसका भारतीय इतिहास और राजनीति पर क्या प्रभाव पड़ा ?** *(1995)*

उत्तर— सिकन्दर के आक्रमण के समय उत्तरी भारत के राज्य

(सिकन्दर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक दशा)

सिकन्दर के आक्रमण के समय भारत में अनेक छोटे-बड़े राज्य थे जो परस्पर युद्धरत रहते थे। उनमें कोई ऐसा शक्तिशाली राज्य नहीं था, जिसकी छत्रछाया में सब राज्य संगठित होकर अपने देश की सीमा में शान्ति एवं सुरक्षा के साथ रह पाते। इसलिए भारतीय राज्यों की सेनाएँ सिकन्दर को भारतीय सीमा में प्रवेश करने से नहीं रोक सकीं। सतलज नदी के पूर्व में नन्द सम्राटों का शक्तिशाली राज्य था। किन्तु उत्तरी भारतीय राज्यों से इनका कोई सम्बन्ध न था। इसलिए सिकन्दर को भारत में प्रवेश करने से रोकने के लिए नन्द राजाओं ने किसी प्रकार का विरोध नहीं किया। यूनानी इतिहासकारों के अनुसार, उस समय उत्तरी भारत में निम्नलिखित प्रमुख राज्य थे—

सिकन्दर के आक्रमण के समय उत्तरी भारत के राज्य

(1) मगध राज्य
(2) तक्षशिला
(3) पुरु राज्य
(4) पश्चिम गान्धार
(5) विभिन्न गणराज्य।

(1) मगध राज्य—यूनानियों के अनुसार, उस समय मगध राज्य सबसे शक्तिशाली राज्य था। इसने आसपास के छोटे राज्यों को अपने राज्य में मिला लिया था। मगध की राजधानी पाटलिपुत्र थी।

(2) तक्षशिला—सिन्धु और झेलम नदी के मध्य तक्षशिला का राज्य स्थित था। यहाँ का राजा आम्भि था। आम्भि की अपने पड़ोसी राजा पुरु से शत्रुता थी। आम्भि ने ही सिकन्दर को पुरु के विरुद्ध आक्रमण करने का आमन्त्रण दिया था।

(3) पुरु राज्य—पुरु का शक्तिशाली राज्य झेलम और चिनाव नदी के मध्य स्थित था। यह बहुत शक्तिशाली राज्य था। राजा पुरु के पास एक विशाल और संगठित सेना भी थी।

(4) पश्चिमी गान्धार—यह भी उत्तर-पश्चिमी भारत का महत्त्वपूर्ण राज्य था। पुष्करावती इसकी राजधानी थी। सिकन्दर ने इस राज्य को बुरी तरह पराजित किया था।

(5) विभिन्न गणराज्य—भारत में उस समय के अनेक प्रबल गणराज्यों का विवरण भी मिलता है। इन गणराज्यों में अस्सप (अश्वायन), गौरी, अस्सकीनोस (अश्वकायन), नीसा, अरसेकस (उरषा), ग्लोगनिकाई, गन्दरीस, अद्रेष्ट, कठ, सौभूति, यौद्धेय, शूद्रक, शिवि, मालव, अगलिस्सि, अम्बष्ठ, मुचिकर्ण, पटन आदि प्रमुख थे। इनमें यौद्धेय, कठ एवं मालव गणराज्य अत्यधिक शक्तिशाली थे।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि जिस समय सिकन्दर ने भारत पर आक्रमण किया उस समय सम्पूर्ण भारत कई राज्यों में विभक्त था। इसी कारण प्रायः यह कहा जाता है कि **सिकन्दर के आक्रमण के समय उत्तरी भारत छोटे-छोटे राज्यों का अजायबघर बना हुआ था।** प्रत्येक राज्य एक-दूसरे के प्रति ईर्ष्या-द्वेष की भावना रखता था। सब एक-दूसरे के विरोधी थे। इसी कारण सिकन्दर को भारत में प्रवेश करने और एक-एक करके इन राज्यों को जीतने का अवसर प्राप्त हो गया।

(**संकेत**—सिकन्दर के आक्रमण और उसके प्रभाव के लिए **प्रश्न संख्या 2 व 4** का अध्ययन कीजिए।)

प्रश्न 2—सिकन्दर के भारत पर आक्रमण का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

अथवा **"पोरस ...... एक बहुत ही विशालकाय हाथी पर बैठा हुआ युद्ध करता रहा और जब उसे नौ घाव लगे, तभी उसे बन्दी बनाया जा सका।" इस कथन के प्रकाश में पोरस की पराजय के कारणों का परीक्षण कीजिए।**

अथवा **सिकन्दर के भारतीय युद्धों का संक्षिप्त विवरण दीजिए तथा यह भी बताइए कि उसके आक्रमण का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा?** *(1996)*

उत्तर—

सिकन्दर का भारत पर आक्रमण
(सिकन्दर के भारतीय युद्ध)

सिकन्दर मकदूनिया के शासक फिलिप का पुत्र था। उसने अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् 336 ईसा पूर्व में गद्दी पर बैठते ही एक सुसंगठित सैन्य बल का संगठन किया और मकदूनिया (अपने राज्य) से विश्व-विजय का स्वप्न लेकर प्रस्थान कर दिया। 330 ईसा पूर्व में ईरान के सम्राट 'डेरियस' को पराजित कर और उसकी राजधानी पार्सिपोलिस को लूटकर सिकन्दर ने अपनी विश्व-विजय का श्रीगणेश किया। इसके पश्चात् वह बैक्ट्रिया, ट्रान्ससेक्सयाना, समरकन्द पर अधिकार करता हुआ काबुल की घाटी में पहुँचा। वहाँ सिकन्दर ने अपनी सेना को दो भागों में विभक्त कर दिया और अपने सैनिकों को खैबर के दर्रे से भारत में प्रवेश करने की आज्ञा दी। सिकन्दर के इस भारतीय अभियान को निम्न सन्दर्भों में जाना जा सकता है—

(1) तक्षशिला के राजा आम्भि से मित्रता—326 ईसा पूर्व में उसने औहिन्द के निकट सिन्धु नदी को पार किया और तक्षशिला की ओर अग्रसर हुआ। यहाँ के राजा आम्भि ने उसका अनेक उपहारों के साथ स्वागत किया।

(2) पोरस से युद्ध—तक्षशिला के राजा आम्भि से मित्रता कर सिकन्दर ने उत्तर में पुरु राज्य के राजा पोरस के पास आत्मसमर्पण हेतु अपना संदेश भेजा, लेकिन पोरस ने सिकन्दर के दूत को उत्तर दिया कि वह उससे रणक्षेत्र में ही भेंट करेगा और वह अपनी सेना के साथ झेलम नदी के दूसरी ओर जा डटा। झेलम नदी में उस समय बाढ़ आई हुई थी। परिणामस्वरूप एक रात अवसर पाकर सिकन्दर ने अपने कुछ घुड़सवार सैनिकों के साथ झेलम नदी पार करके पोरस पर आक्रमण कर दिया। पोरस के पुत्र ने उसे रोकने का बहुत प्रयास किया, किन्तु वह असफल रहा और रणभूमि में वीरगति को प्राप्त हो गया। तब पोरस ने स्वयं सिकन्दर का सामना किया, किन्तु भाग्य उसके विपरीत रहा। प्रारम्भ में पोरस के हाथियों पर सवार सैनिकों ने सिकन्दर के सैनिकों का वीरतापूर्वक सामना किया, किन्तु यूनानियों ने जब फरसों से हाथियों के पैर काटने प्रारम्भ किए तो पोरस की सेना के हाथी भाग खड़े हुए और दुर्भाग्यवश अन्त में पोरस की पराजय हुई और घायल अवस्था में उसे बन्दी बना लिया गया। उसके लगभग 12,000 सैनिकों की हत्या कर दी गई और लगभग 9,000 सैनिक सिकन्दर द्वारा बन्दी बना लिए गए। पोरस के शरीर में भी नौ भयंकर घाव लगे थे।

जब पोरस को बन्दी बनाकर सम्राट सिकन्दर के समक्ष लाया गया तो सिकन्दर ने उससे पूछा, **"आपके साथ कैसा व्यवहार किया जाना चाहिए?"** वीर एवं साहसी योद्धा पोरस ने निर्भीकता के साथ उत्तर दिया—**"जैसा एक राजा दूसरे राजा के साथ करता है।"** (Act as a King)। अधिकांश इतिहासकारों का कहना है कि पोरस के इस साहसिक उत्तर से सिकन्दर अत्यन्त प्रभावित हुआ और उसने उसका राज्य वापस कर दिया और उसे अपना मित्र बना लिया।

सिकन्दर के भारतीय अभियान

(1) तक्षशिला के राजा आम्भि से मित्रता
(2) पोरस से युद्ध
(3) सिकन्दर की अन्य सफलताएँ
(4) सिकन्दर का वापस लौटना।

(3) सिकन्दर की अन्य सफलताएँ— पोरस से मित्रता कर सिकन्दर तत्कालीन ग्लोगनिकाई राज्य के विरोध करने पर भी आगे बढ़ा और उस पर विजय प्राप्त कर उसे पोरस को दे दिया। इसके पश्चात् उसने कठ नामक राज्य पर आक्रमण किया। सिकन्दर और पोरस की सम्मिलित शक्ति तो संगठित होकर इस जाति से युद्ध कर ही रही थी, साथ ही पाँच हजार भारतीय सैनिक भी इसके विरुद्ध लड़ रहे थे। किन्तु कठ जाति अपने अभूतपूर्व संगठन एवं एकता के कारण सिकन्दर के सैनिकों के दाँत खट्टे करने में सफल रही। अतः इस युद्ध से यवन सैनिकों का उत्साह ठण्डा पड़ गया। आगे नन्दों का शक्तिशाली मगध का राज्य था, जिसके शौर्य की कहानियाँ सुनकर यूनानी सैनिकों ने भयभीत होकर आगे बढ़ने से मना कर दिया।

(4) सिकन्दर का वापस लौटना—जब सैनिकों का उत्साह ठण्डा पड़ गया और उन्होंने आगे बढ़ने से मना कर दिया तो सिकन्दर ने अनेक सैनिकों को वापस अपने-अपने घर जाने की आज्ञा दे दी। लेकिन लौटने से पूर्व विजित राज्यों की समुचित व्यवस्था का प्रबन्ध करना सिकन्दर ने आवश्यक समझा। सिकन्दर ने अपने बसाए राज्यों एवं नगरों में अपने यूनानी सैनिकों को वहाँ की सुरक्षा हेतु नियुक्त कर दिया। लौटती हुई सिकन्दर की सेनाओं को भारतीय क्षुद्रक और मालव जातियों से अनेक भयंकर संघर्ष करने पड़े। वह स्वयं सिन्धु नदी के मुहाने पर पहुँचा और स्थल-मार्ग द्वारा अपनी जन्मभूमि बेबीलोन पहुँचा और वहीं पर 323 ईसा पूर्व में उसका स्वर्गवास हो गया।

(**नोट**—पोरस की पराजय के कारणों के लिए **प्रश्न संख्या 3** तथा सिकन्दर के आक्रमण के प्रभावों के लिए **प्रश्न संख्या 4** के उत्तर का अध्ययन कीजिए।)

प्रश्न 3—सिकन्दर के विरुद्ध राजा पोरस की पराजय के क्या कारण थे?

अथवा **"दलदली भूमि पर घोड़ों के पैर नहीं टिकते थे और हाथियों ने अपनी सेना को ही रौंदना शुरू कर दिया था।" पोरस की पराजय के कारणों में इस तथ्य का परीक्षण कीजिए।**

उत्तर—

पुरु या पोरस की हार के कारण

जिस समय सिकन्दर ने पोरस पर आक्रमण किया, उस समय कुछ प्राकृतिक कारण पोरस की हार के लिए विशेष रूप से सहायक सिद्ध हुए। ये कारण निम्न प्रकार थे—

(1) **कर्टियस** का विचार है कि, **"रथों के कारण राजा पोरस को पर्याप्त क्षति हुई, क्योंकि घनघोर वर्षा के कारण भूमि दलदली हो गई थी, जिस पर घोड़ों के पैर नहीं रुकते थे, साथ ही रथों के पहिए धँस जाते थे।"** हाथी भी दलदल में विचलित हो गए थे। युद्ध-भूमि की यह स्थिति उसकी पराजय का एक प्रमुख कारण बनी।

(2) दलदली भूमि के कारण हाथियों के पैर ठीक प्रकार से टिक नहीं रहे थे। दलदल में फँसने से **हाथियों ने अपनी सेना को ही रौंदना शुरू कर दिया था।**

(3) भारतीय सेना की टुकड़ियाँ बहुत बड़ी थीं, जिन्हें युद्ध के मैदान में सुगमता से नहीं मोड़ा जा सका।

(4) जब यूनानियों ने हाथियों के पैर काटने प्रारम्भ कर दिए तो वे उल्टे-सीधे भागने लगे थे, जिससे पोरस की सेना के बहुत-से अश्वारोही और पैदल सैनिक कुचल गए।

(5) सिकन्दर ने कुशलता के साथ सैन्य संचालन किया था। उसका सैन्य-संचालन पोरस की अपेक्षा अधिक उत्तम श्रेणी का था।

(6) भारत के राजाओं में एकता नहीं थी। राजा परस्पर संघर्ष करते रहते थे और विदेशी आक्रमणकारी इसका लाभ उठाते थे। राजा आम्भि का व्यवहार इसका प्रमुख उदाहरण है।

प्रश्न 4—सिकन्दर महान् के आक्रमण का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा? *(Imp.)*

अथवा **"सिकन्दर का भारत पर आक्रमण एक आँधी के समान था, जिसका कोई स्थायी प्रभाव नहीं पड़ा।" आप इस मत से कहाँ तक सहमत हैं?**

अथवा **सिकन्दर के आक्रमण का भारतीय इतिहास एवं सांस्कृतिक जीवन पर क्या प्रभाव पड़ा?** *(1995)*

अथवा **सिकन्दर के भारतीय आक्रमण के प्रभावों का उल्लेख कीजिए।** *(1995)*

अथवा **"सिकन्दर ने उत्तर पश्चिम सीमान्त, पंजाब और सिन्धु प्रदेश को राजनीतिक एकता प्रदान की।" उपर्युक्त कथन के परिप्रेक्ष्य में सिकन्दर के आक्रमण का विवेचन कीजिए।**

अथवा **भारतीय मूर्तिकला और सिक्कों पर यूनानी प्रभाव के विषय में आप क्या जानते हैं?** *(1997)*

अथवा **"सिकन्दर का आक्रमण एक ऐसी महान घटना थी कि भारतीय इतिहास पर इसका प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी था।" विवेचना कीजिए।** *(1999)*

उत्तर—

सिकन्दर के आक्रमण का भारत पर प्रभाव

सिकन्दर के आक्रमण का भारत पर कोई प्रभाव पड़ा या नहीं, इस सम्बन्ध में दो विरोधी मत प्रचलित हैं—

(1) डॉ० वी० ए० स्मिथ और रॉबिन्सन का मत है कि, सिकन्दर का आक्रमण एक घटना मात्र है, जिसका भारत पर कोई व्यापक प्रभाव नहीं पड़ा। भारत की हिन्दू, जैन और बौद्ध साहित्य से सम्बन्धित किसी भी कृति में सिकन्दर के आक्रमण का उल्लेख नहीं मिलता है। डॉ० मुकर्जी के अनुसार, **"सिकन्दर के भारतीय अभियान ने साहित्य, जीवन अथवा शासन, किसी पर भी कोई स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ा।"**

(2) इसके विपरीत, डॉ० मजूमदार, डॉ० आर० एस० त्रिपाठी, डॉ० राय चौधरी आदि इतिहासकारों का मत है कि सिकन्दर के आक्रमण का भारत पर व्यापक प्रभाव पड़ा।

अतः यह कथन अतिशयोक्तिपूर्ण है कि, **"सिकन्दर आँधी के समान भारत आया और वैसे ही चला गया।"** वास्तविकता उपर्युक्त दोनों मतों के मध्य निहित है।

सिकन्दर के आक्रमण का भारत पर निश्चय ही प्रभाव पड़ा, क्योंकि इसने भारत की राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक दशा में अनेक परिवर्तन किए। इनका विवरण निम्नवत् है—

राजनीतिक प्रभाव

(1) **राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास**—सिकन्दर के आक्रमण ने भारतीयों को इस बात का आभास कराया था कि अपने राज्य को शक्तिशाली बनाने के लिए उसमें राष्ट्रीय एकता का होना अति आवश्यक है।

(2) **सैन्य कुशलता का ज्ञान**—सिकन्दर के आक्रमण से भारतीयों को यह आभास हुआ कि उनका सैन्य संगठन अत्यन्त दोषपूर्ण एवं दुर्बल है। सिकन्दर के प्रशिक्षित और सुसंचालित सैनिकों को देखकर भारतीय यह समझ गए कि थोड़े से प्रशिक्षित सैनिक भी एक विशाल असंगठित सेना को सरलता से पराजित कर सकते हैं।

सिकन्दर के आक्रमण का राजनीतिक प्रभाव

(1) राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास
(2) सैन्य कुशलता का ज्ञान
(3) केन्द्रीय शक्ति के महत्त्व का विकास
(4) राजनीतिक चेतना।

(3) **केन्द्रीय शक्ति के महत्त्व का विकास**—यह सत्य है कि सिकन्दर के आक्रमण ने सम्पूर्ण देश को प्रभावित नहीं किया, किन्तु इसने पंजाब और सिन्ध के छोटे-छोटे राज्यों की शासन पद्धति को नष्ट किया और एक विशाल साम्राज्य की स्थापना में सहायता दी। छोटे-छोटे राज्यों और गणतन्त्रों के एक विशाल

राजनीतिक इकाई में परिवर्तित हो जाने से कालान्तर में चन्द्रगुप्त मौर्य के लिए यह सम्भव हो सका कि वह आगे चलकर कुछ वर्ष पश्चात् पश्चिमोत्तर प्रदेश को अपने साम्राज्य में मिला सका।

(4) राजनीतिक चेतना—राजनीतिक दृष्टि से इस आक्रमण से सामान्य जनता में भी राज्य और राष्ट्र के प्रति देशभक्ति की भावना जाग्रत हुई और राष्ट्रीय सुरक्षा की भावना का अत्यन्त प्रबल विकास हुआ। यह विकसित राजनीतिक चेतना राष्ट्र के सांस्कृतिक विकास में अत्यन्त सहायक सिद्ध हुई।

सांस्कृतिक प्रभाव

(1) भारतीय ज्योतिष एवं दर्शन पर प्रभाव—ज्योतिष के क्षेत्र में जहाँ एक ओर भारतीयों ने यूनानियों से बहुत कुछ सीखा, वहीं महान् यूनानी चिन्तक पाइथागोरस पर भारतीय दर्शन का गहरा प्रभाव पड़ा।

गार्गी संहिता में कहा गया है कि, "यवन यद्यपि म्लेच्छ हैं, परन्तु ज्योतिषशास्त्र को जन्म देने के कारण वे देवताओं के समान पूज्य हैं।" कुछ भारतीय ज्योतिष की राशियाँ—मेष, वृषभ, शनि आदि यूनानी नामों का ही रूपान्तर हैं। भारतीय ज्योतिषशास्त्र के रोन्त्रक और मौखिक सिद्धान्त निःसंदेह यूनानी ही हैं।

(2) गान्धार शैली का प्रादुर्भाव—यूनानियों के प्रभाव के कारण भारतीय मूर्तिकला और चित्रकला के क्षेत्र में एक नवीन शैली का उदय हुआ है, जो भारतीय इतिहास में गान्धार शैली कहलाती है। इसके अतिरिक्त, भवन-निर्माण के क्षेत्र में भी यूनानी कला का समन्वय दृष्टिगोचर होता है। गान्धार कला ने भारतीय कला को एक नए युग में प्रवेश कराया।

सांस्कृतिक प्रभाव

(1) भारतीय ज्योतिष एवं दर्शन पर प्रभाव
(2) गान्धार शैली का प्रादुर्भाव
(3) मुद्रा-निर्माण पर प्रभाव
(4) व्यापारिक क्षेत्र का विकास।

(3) मुद्रा-निर्माण पर प्रभाव—भारत में यूनानी शासकों ने कुछ समय तक ही राज्य किया, तथापि उनके चले जाने के पश्चात् भी कुछ सुन्दर सिक्के यहीं रह गए। जब वे बाद में प्रचलन में आए तो उनकी कलात्मक सुन्दरता को देखकर भारतीय आश्चर्यचकित रह गए और उन्होंने भी अपने पुराने सिक्कों के स्थान पर नए सिक्के चलाए। ये सिक्के यूनानी मुद्रा की तौल, आकार और कलात्मक विशेषताओं आदि के अनुसार निर्मित किए गए थे। इस प्रकार, भारतीयों ने यूनानियों से सिक्के बनाने की उच्चकोटि की कला का ज्ञान प्राप्त किया।

(4) व्यापारिक क्षेत्र का विकास—सिकन्दर ने अनेक नगरों और दूर-दूर के क्षेत्रों में विशाल पक्के राजमार्गों का निर्माण करवाया था, जिससे व्यापार के क्षेत्र में विशेष प्रगति हुई। आवागमन के साधनों से सांस्कृतिक समन्वय में भी बहुत सहायता मिली।

भारतीय इतिहास पर प्रभाव

कुछ विद्वानों का मत है कि सिकन्दर के युद्ध का भारत पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा। इसी कारण इसका भारतीय साहित्य में उल्लेख नहीं मिलता है। किन्तु वास्तव में इसका भारतीय राजनीति के क्षेत्र में पर्याप्त प्रभाव पड़ा तथा सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि सिकन्दर के आक्रमण की तिथि से ही भारत में तिथि-क्रम प्रारम्भ हुआ। सिकन्दर के आक्रमण से पूर्व भारत अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था, जिनमें कुछ गणराज्य भी थे। सिकन्दर ने उत्तर पश्चिम सीमान्त, पंजाब और सिन्धु प्रदेश के राज्यों को जीतकर उन्हें राजनीतिक एकता प्रदान की।

भारतीय सभ्यता पर यूनानी प्रभाव का वर्णन करते हुए श्री एन० एन० घोष ने उचित ही लिखा है, **"दो महान् सभ्यताओं के सम्पर्क का परिणाम उनके पारस्परिक विचार-विनिमय का माध्यम बना, जो दर्शन, नक्षत्र विज्ञान तथा ज्योतिष के क्षेत्र में, विशेषतः ज्योतिष में, परिलक्षित होता है।"**

प्रश्न 5—भारतीय संस्कृति पर यूनानी प्रभाव की विवेचना कीजिए। *(1999)*

उत्तर—

भारतीय संस्कृति पर यूनानी प्रभाव

भारतीय संस्कृति पर यूनानी प्रभाव के विषय में विद्वानों में मतैक्य नहीं है। पाश्चात्य विद्वानों का कहना है कि भारत को यूनानियों की अनेक देनें हैं किन्तु भारतीय विद्वान इस बात से सहमत नहीं हैं। उनका

मत है कि भारत ने यूनानियों से जो शिक्षा ग्रहण की थी उसकी तुलना में भारत ने यूनानियों को बहुत अधिक ज्ञान दिया था। फिर भी भारतीय संस्कृति पर जो विभिन्न यूनानी प्रभाव पड़े वे उल्लेखनीय रहे, जो निम्न प्रकार हैं—

(1) ज्योतिष तथा विज्ञान के क्षेत्र पर प्रभाव—भारतीय ज्योतिष के क्षेत्र पर यूनानी प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। जैसे—हीरा, रोमक व पोलिश शब्द एवं सिद्धान्त यूनानी शब्द व सिद्धान्त हैं। फलित ज्योतिष में नक्षत्र को देखकर भविष्य कथन की कला यूनानियों की ही देन है। भारतीय ज्योतिष पर यूनानी प्रभाव की ओर संकेत करते हुए 'गार्गी संहिता' में लिखा है कि, **"यद्यपि यवन बर्बर हैं तथापि ज्योतिष के मूल निर्माता होने के कारण ये देवताओं की भाँति स्तुत्य हैं।"** ज्योतिष के साथ-ही-साथ चिकित्सा विज्ञान पर भी यूनानियों का प्रभाव पड़ा।

(2) कला पर प्रभाव—यूनानी प्रभाव भारतीय स्थापत्य कला पर अधिक नहीं पड़ा किन्तु मूर्तिकला पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। यूनानी प्रभाव के परिणामस्वरूप एक नवीन कला-शैली का प्रादुर्भाव हुआ, जो गान्धार कला या इण्डो-यूनानी कला के नाम से प्रसिद्ध हुई। यूनानी कला से प्रभावित मूर्तिकला का स्पष्ट प्रमाण प्रथम शताब्दी ई० पू० के प्रारम्भ में तक्षशिला में बने कुछ भवनों पर स्पष्टतः दर्शनीय है किन्तु प्रथम शताब्दी के उपरान्त इस प्रकार की शैली का प्रयोग प्रायः नहीं किया गया है।

(3) मुद्रा निर्माण के क्षेत्र पर प्रभाव—भारतीय संस्कृति पर सबसे अधिक यूनानी प्रभाव मुद्रा-निर्माण के क्षेत्र पर पड़ा, क्योंकि यूनानियों के भारत में पदार्पण करने से पूर्व भारत में छोटे-छोटे ताँबे तथा चाँदी के सिक्कों का प्रयोग किया जाता था जिन पर वृषभ, चक्र, चैत्य तथा अन्य चिन्ह अंकित रहते थे। इस समय कुछ स्वर्ण-मुद्राओं का प्रचलन था, किन्तु भारतीय मुद्राओं की तौल तथा आकार में अनियमितता पाई जाती थी। यूनानियों के आगमन के बाद सिक्कों को कलात्मक एवं सुडौल रूप में ढालना शुरू किया और लेखों तथा चिन्हों को सुन्दर रूप में उत्कीर्ण किया। अतएव यह सत्य है कि भारतीयों ने कलापूर्ण मुद्राओं का निर्माण यूनानियों से ही सीखा।

(4) व्यापार के क्षेत्र पर प्रभाव—यूनानियों के राज्य भारत में स्थापित हो जाने से भारतीय व्यापार अधिक उन्नत हुआ। नवीन मार्गों का निर्माण हुआ, जहाँ से रोम के धनी वर्गों द्वारा विलास की भारतीय सामग्री काम में लाई जाने लगी। भारतीय सामान्य तथा अनेक उपयोगी वस्तुओं का निर्यात यूनान को किया जाने लगा।

(5) साहित्यिक क्षेत्र पर प्रभाव—कुछ विद्वानों का मत है कि यूनानी भाषा एवं साहित्य का प्रभाव भारतीय भाषा तथा साहित्य पर पड़ा किन्तु इसके विपरीत, कुछ विद्वान इसे सत्य नहीं मानते। अपने मत को सिद्ध करते हुए वे कहते हैं कि भारतीय सिक्कों पर इष्ठी व प्राकृत भाषा तथा खरोष्ठी लिपि का प्रयोग इस बात का प्रमाण है कि जन-साधारण को यूनानी भाषा-लिपि की कोई जानकारी नहीं थी। एरियन, प्लूटार्क आदि विद्वानों ने यह भी कहा है कि भारतीय होमर के काव्य का अध्ययन करते थे। वेबर महोदय का मत है कि संस्कृत नाटकों का उदय यूनानी नाटकों से हुआ।

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—सिकन्दर महान् कौन था?

उत्तर—सिकन्दर यूनान का एक महान् विजेता था। उसका पिता फिलिप यूनान की एक रियासत मकदूनिया का शासक था। अपने पिता फिलिप की मृत्यु के पश्चात् सिकन्दर महान् ने विश्व-विजय के लिए प्रस्थान किया। 25 वर्ष की अल्प आयु में ही सिकन्दर ने अनेक विजयें प्राप्त कर एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया। उसने लगभग 326 ईसा पूर्व में भारत पर आक्रमण कर दिया। भारत की अनेक छोटी-छोटी लड़ाकू जातियों से संघर्ष करके सिकन्दर ने पोरस को पराजित किया। लेकिन वह अधिक समय तक भारत में न ठहर सका। 323 ईसा पूर्व में वह भारत से लौटकर बेबीलोन पहुँचा, जहाँ तीव्र ज्वर के कारण उसकी मृत्यु हो गई। सिकन्दर महान् की गणना विश्व के महान् विजेताओं एवं सेनापतियों में की जाती है।

प्रश्न 2—सिकन्दर के आक्रमण के भारत पर जो प्रभाव पड़े, उनमें से किन्हीं दो का वर्णन कीजिए। *(1990, 92, 96)*

अथवा **भारत पर सिकन्दर के आक्रमण के प्रभाव की विवेचना कीजिए।** *(1992)*

उत्तर—दीर्घ उत्तरीय प्रश्न संख्या 4 का उत्तर देखिए।

प्रश्न 3—सिकन्दर द्वारा विजित किन्हीं दो राज्यों का परिचय दीजिए। *(1994)*

उत्तर—सिकन्दर द्वारा विजित राज्यों में से दो राज्यों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है—

(1) नीसा राज्य—भारत में प्रवेश करने के उपरान्त सिकन्दर ने कई सीमान्त एवं पर्वतीय राज्यों पर आक्रमण किया और वहाँ की सेनाओं को परास्त किया। 'नीसा' एक पर्वतीय राज्य था, जो कोहेमोर की घाटी और ढाल पर स्थित था। यहाँ के लोग सिकन्दर की सेना का अधिक समय तक सामना नहीं कर सके और उन्होंने सिकन्दर की अधीनता स्वीकार कर ली।

(2) संगल पर विजय—326 ईसा पूर्व में सिकन्दर ने कठों के महत्त्वपूर्ण नगर संगल पर आक्रमण किया। कठों ने अत्यधिक वीरता का प्रदर्शन करते हुए, सिकन्दर के अश्वारोहियों को विफल कर दिया। इसी समय पुरु, सिकन्दर को सैनिक सहायता प्रदान करने के लिए, अपने 5,000 सैनिकों के साथ आ पहुँचा। सिकन्दर और पुरु की सम्मिलित सेनाओं का सामना करने में संगलवासी असफल हुए और संगल पर सिकन्दर का अधिकार हो गया।

ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों एवं व्यक्तियों पर आधारित प्रश्न

प्रश्न 1—निम्नांकित तिथियों के ऐतिहासिक महत्त्व पर टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) 530 ईसा पूर्व—इस तिथि को अखामनी साम्राज्य के निर्माता और ईरानी सम्राट साइरस की मृत्यु हुई थी। साइरस ने 550 ईसा पूर्व के मध्य भारत पर भी आक्रमण किया था।

(2) 522 ईसा पूर्व—इस तिथि को ईरानी शासक डेरियस प्रथम राजगद्दी पर आसीन हुआ था। वह अखामनी वंश का तीसरा महत्त्वपूर्ण सम्राट था। उसने 522 ईसा पूर्व से 486 ईसा पूर्व तक शासन किया। यूनानी इतिहासकारों के मतानुसार डेरियस ने भारत पर आक्रमण किया था।

(3) 468 ईसा पूर्व *(1988, 93)*—इस तिथि को डेरियस का पुत्र जरक्सीज राजगद्दी पर बैठा। हेरोडोट्स के अनुसार इस सम्राट ने भारत के कुछ प्रदेशों पर अपना प्रभुत्व जमा लिया था।

(4) 330 ईसा पूर्व—इस तिथि को सिकन्दर महान् ने ईरान के अखामनी साम्राज्य को छिन्न-भिन्न करके उसकी राजधानी पर्सिपोलिस को जलाकर राख कर दिया था।

(5) 326 ईसा पूर्व *(1992, 95, 96, 99)*—इस तिथि को यूनान के शासक सिकन्दर महान् ने भारत पर आक्रमण किया था। ऐतिहासिक कालक्रम की दृष्टि से इस तिथि का भारतीय इतिहास में अत्यधिक महत्त्व है।

(6) 325 ईसा पूर्व *(1996, 97)*—कुछ विद्वानों के अनुसार इसी तिथि को सिकन्दर ने भारत से वापस अपने देश जाने के लिए प्रस्थान किया।

(7) 324 ईसा पूर्व *(1993)*—इस तिथि को सिकन्दर सूसा नगर पहुँचा और ज्वरग्रस्त हो गया।

(8) 323 ईसा पूर्व *(1992, 94, 96, 97)*—इस तिथि को विश्व के महान् विजेता सिकन्दर महान् की बेबीलोन में केवल 33 वर्ष की आयु में मृत्यु हो गई थी।

(9) 322 ईसा पूर्व *(1990, 91, 97)*—इस तिथि को चन्द्रगुप्त मौर्य मगध की गद्दी पर बैठा था।

(10) 305 ईसा पूर्व *(1990, 95, 96, 99)*—इस तिथि को चन्द्रगुप्त मौर्य व सेल्यूकस के मध्य युद्ध हुआ।

(11) 262 ईसा पूर्व *(1995, 99)*—इस तिथि को अशोक ने धर्म-विजय की घोषणा की थी।

(12) 261 ईसा पूर्व *(1991, 93 , 96)*—कुछ विद्वानों के अनुसार इस तिथि को अशोक ने कलिंग राज्य पर आक्रमण किया बाद में उसने धर्म-विजय की घोषणा की थी।

(13) 110 ईसा पूर्व—इस तिथि को यवन शासक मिनाण्डर ने भारत पर आक्रमण किया था।

प्रश्न 2—निम्नांकित ऐतिहासिक स्थलों पर संक्षेप में टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) अभिसार—सिकन्दरकालीन यह राज्य कश्मीर के पश्चिमी भाग में स्थित था। इस राज्य में आधुनिक पुंछ जिला, निकटवर्ती प्रदेश तथा हजारा जिले का कुछ भाग सम्मिलित था। अभिसार के राजा ने विना लड़े ही सिकन्दर की अधीनता स्वीकार कर ली थी।

(2) तक्षशिला—यह एक प्राचीन ऐतिहासिक स्थल है। सिकन्दर के समय राजा आम्भि तक्षशिला का शासक था। यह राज्य सिन्धु और झेलम नदियों के मध्य स्थित था।

प्रश्न 3—निम्नांकित ऐतिहासिक व्यक्तियों का संक्षिप्त परिचय दीजिए—

उत्तर—(1) साइरस—साइरस ईरान के अखामनी साम्राज्य का निर्माता था। इस ईरानी सम्राट ने 550 ईसा पूर्व से 529 ईसा पूर्व के मध्य किसी समय भारत पर आक्रमण किया था, परन्तु इतिहासकार स्ट्रेबो के अनुसार उसे अपने अभियान में सफलता नहीं मिली थी।

(2) डेरियस प्रथम—यह अखामनी वंश का तीसरा महत्त्वपूर्ण सम्राट था। इसने 522 ईसा पूर्व से 468 ईसा पूर्व तक ईरान का शासन किया। हेरोडोट्स के विवरण और अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि डेरियस प्रथम ने भारत के कुछ प्रदेशों से नियमित रूप से 'राजकर' वसूल किया था।

(3) जरक्सीज—यह डेरियस प्रथम का पुत्र और ईरान का शासक था। इसने 468 ईसा पूर्व तक ईरान पर शासन किया। इसने भी भारत के कुछ प्रान्तों पर अपना प्रभाव जमा रखा था।

(4) आम्भि—राजा आम्भि सिकन्दर का समकालीन और तक्षशिला का शासक था। कहा जाता है कि इसने ही सिकन्दर को भारत पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया था। जब सिकन्दर ग्लोगनिकाई में था, तभी आम्भि कीमती वस्तुएँ उपहारस्वरूप लेकर सिकन्दर से मिला था और उसने सिकन्दर की अधीनता स्वीकार कर ली थी। भारतीय इतिहास में राजा आम्भि को सर्वप्रथम देशद्रोही की संज्ञा दी जाती है।

(5) पोरस या पुरु—इसे राजा पोरस भी कहा जाता था। सिकन्दर के आक्रमण के समय यह पुरु राज्य का शासक था। राजा पोरस महान् वीर, साहसी तथा कट्टर देशभक्त था। पोरस ने अपनी मातृभूमि की रक्षा के लिए सिकन्दर की सेना से घमासान युद्ध किया, लेकिन युद्धक्षेत्र की भूमि दलदली हो जाने तथा अन्य कारणों से उसे घायल होकर सिकन्दर का कैदी बनना पड़ा। सिकन्दर ने उसकी वीरता से प्रभावित होकर उसके साथ मित्रता कर ली थी।

8

राजनीतिक एकता की प्रक्रिया : चन्द्रगुप्त मौर्य और अशोक महान्

[चन्द्रगुप्त मौर्य : प्रारम्भिक जीवन, विजय अभियान, शासन-प्रबन्ध; अशोक महान् : अशोक की महानता के कारण, अशोक का धर्म (धम्म) तथा इस धर्म के प्रचार हेतु उसके द्वारा किए गए कार्य; मौर्य साम्राज्य के पतन के कारण]

"मौर्य वंश के संस्थापक के रूप में चन्द्रगुप्त ने पहली बार भारत को ऐसा इतिहास प्रदान किया, जिसका क्रम कहीं नहीं टूटता और जो इसके साथ ही एक सूत्र में बँधा हुआ इतिहास है।" —डॉ० आर० के० मुकर्जी

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—चन्द्रगुप्त मौर्य के जीवन-चरित्र तथा उसकी उपलब्धियों का विवरण प्रस्तुत कीजिए। *(M. Imp.)*

अथवा **"चन्द्रगुप्त मौर्य एक विजेता ही नहीं, वरन् महान् साम्राज्य-निर्माता था।" समालोचना कीजिए।**

अथवा **"चन्द्रगुप्त मौर्य सामान्य कुल में उत्पन्न होकर भी एक महान् विजेता सिद्ध हुआ।" इस कथन की विवेचना कीजिए।**

अथवा **"भारतीय इतिहास में चन्द्रगुप्त मौर्य की गणना महान् विजेताओं एवं कुशल प्रशासकों में की जाती है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।** *(1993, 97)*

अथवा **"भारतीय इतिहास में चन्द्रगुप्त मौर्य की गणना महानतम एवं अत्यधिक सफल राजाओं में होती है।" समीक्षा कीजिए।** *(1991, 94)*

अथवा **"चन्द्रगुप्त मौर्य मगध साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक था।" समीक्षा कीजिए।** *(1994)*

अथवा **चन्द्रगुप्त मौर्य की उपलब्धियों का विश्लेषण कीजिए।** *(1996)*

अथवा **मौर्य कौन थे ? चन्द्रगुप्त मौर्य की राजनीतिक सफलताओं का वर्णन कीजिए।** *(1999)*

उत्तर—

मौर्य कौन थे ?

मौर्य कौन थे ? यह भारतीय इतिहास का एक विवादास्पद प्रश्न है। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित मत प्रचलित हैं—

(1) मौर्य पारसी थे—स्पूनर महोदय का मत है कि चन्द्रगुप्त मौर्य की शासन प्रणाली, रहन-सहन और राजदरबार में अग्नि रखने की प्रथा आदि पारसीक परम्परा के अनुरूप है। इससे स्पष्ट होता है कि मौर्य वंश की उत्पत्ति का स्रोत पारसिक है। लेकिन यह मत सर्वथा गलत, भ्रमपूर्ण और निरर्थक है।

(2) मौर्य शूद्र थे—ब्राह्मण साहित्य के ग्रन्थों में मौर्य को शूद्र बतलाया गया है, यथा—

(i) विष्णु पुराण के अनुसार मौर्य शूद्र थे, क्योंकि चन्द्रगुप्त नन्दराजा की दासी 'मुरा' से उत्पन्न हुआ था।

(ii) मुद्राराक्षस में विशाखदत्त ने चन्द्रगुप्त को वृषल कहते हुए उसे नन्दपुत्र तथा अपनी माता की अवैध सन्तान कहा है।

(iii) कथा सरित्सागर तथा वृहत्कथामंजरी के लेखकों, क्रमशः सोमदेव तथा क्षेमेन्द्र के अनुसार मौर्य शूद्र थे।

(3) मौर्य क्षत्रिय थे—अधिकांश विद्वानों तथा साक्ष्यों से सिद्ध होता है कि मौर्य शूद्र न होकर क्षत्रिय थे। इन प्रमाणों तथा साक्ष्यों का विवरण अग्रलिखित है—

(i) महावंश के अनुसार मौर्य वंश क्षत्रिय शाक्य वंश की उपशाखा था। महापरिनिब्बानसुत्त में भी मौर्यों को क्षत्रिय कहा गया है। महाबोधि वंश में कहा गया है कि मौर्य वंश के लोग शाक्यों के नगर 'मोरिय' में निवास करते थे। दिव्यावदान में बिन्दुसार और अशोक ने स्वयं को क्षत्रिय बताया है।

(ii) परिशिष्ट पर्वन के अनुसार चन्द्रगुप्त मयूर पालक सरदार का नाती था। जैन ग्रन्थ 'आवश्यक सूत्र' के टीकाकार ने भी मौर्यों को क्षत्रिय माना है।

(iii) कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' से प्रमाणित होता है कि मौर्य क्षत्रिय थे।

(iv) जस्टिन, प्लूटार्क, डियोडोरस तथा कर्टियस के विवरण भी मौर्यों को क्षत्रिय सिद्ध करते हैं।

(v) नन्दनगढ़ के अशोक स्तम्भ के निचले भाग, साँची के स्तूप तथा अशोक के अनेक अभिलेखों में मयूर पक्षी का अंकन किया गया है। ऐसा प्रतीत होता है कि मौर्य जिस प्रदेश में मूल रूप से निवास करते थे, वहाँ पर मयूर पक्षी बहुतायत से रहते थे। राजपूताना गजेटियर में भी मौर्यों को राजपूत बताया गया है तथा आज भी राजपूत सूची में मौर्य वंश का उल्लेख मिलता है।

उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट है कि ब्राह्मण ग्रन्थकारों ने मौर्यों को शूद्र, वृषल, हीन आदि नामों से विभूषित किया है। इसके विपरीत बौद्ध साहित्य, जैन धर्मग्रन्थ तथा पुरातात्त्विक साक्ष्यों द्वारा मौर्य क्षत्रिय प्रमाणित होते हैं।

चन्द्रगुप्त मौर्य (319 ईसा पूर्व से 298 ईसा पूर्व तक)

चन्द्रगुप्त मौर्य को भारतीय इतिहास का प्रथम सफल सम्राट कहा जा सकता है, क्योंकि उसी के समय से भारत की राजनीतिक घटनाएँ तिथियुक्त एवं क्रमबद्ध रूप में मिलती हैं। इस शासक से पूर्व के शासकों के विषय में जो कुछ जानकारी मिलती है, वह तिथि-क्रमानुसार और विश्वसनीय नहीं है। इसीलिए चन्द्रगुप्त का उदय भारतीय इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। इतिहासकार वी० ए० स्मिथ ने इस सम्बन्ध में लिखा है, **"वह सही अर्थों में पहला ऐतिहासिक व्यक्ति था, जिसे भारत का सम्राट कहा जा सकता है।"**

अब तक चन्द्रगुप्त के जीवन की समस्त घटनाओं की तथ्यात्मक जानकारी ठीक-ठीक प्राप्त हो गई है। कुछ तथ्यों को लेकर विभिन्न इतिहासकारों में मतभेद अवश्य है, किन्तु यह मतभेद भी धीरे-धीरे कम होता जा रहा है। उसके जीवन की उपलब्धियों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि वह सफल विजेता ही नहीं, वरन् कुशल शासन प्रबन्धक भी था।

प्रारम्भिक जीवन

चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रारम्भिक जीवन का संक्षिप्त परिचय निम्नवत् है—

(1) **चन्द्रगुप्त मौर्य का परिचय**—चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रारम्भिक जीवन के सम्बन्ध में विद्वानों में अत्यधिक मतभेद है। कुछ विद्वानों के अनुसार, वह मगध के राजा महापद्मनन्द की शूद्र रानी मुरा से उत्पन्न वर्णसंकर पुत्र था। इसीलिए इसकी माँ मुरा के नाम पर चन्द्रगुप्त के वंश का नाम मौर्यवंश पड़ा, किन्तु अधिकांश भारतीय विद्वान् चन्द्रगुप्त मौर्य के कुल व जाति के सम्बन्ध में बौद्ध साहित्य के विवरण को अधिक विश्वसनीय मानते हैं। इनके अनुसार चन्द्रगुप्त का जन्म मोरिय नाम के क्षत्रिय वंश में हुआ था तथा इसी मोरिय से मौर्य बना था।

चन्द्रगुप्त मौर्य का प्रारम्भिक जीवन
(1) चन्द्रगुप्त मौर्य का परिचय
(2) जन्म एवं वंश
(3) चाणक्य से भेंट।

(2) **जन्म एवं वंश**—चन्द्रगुप्त मौर्य का जन्म लगभग 345 ईसा पूर्व में हुआ था। यूनानी लेखक जस्टिन के अनुसार—"चन्द्रगुप्त मौर्य साधारण कुल का था।" उसके वंश के सम्बन्ध में यूनानी लेखक का यह कथन उचित प्रतीत होता है। किन्तु जीवन की अन्य घटनाओं के सम्बन्ध में यूनानी लेखकों का विवरण लोक-प्रचलित कथाओं पर ही आधारित प्रतीत होता है।

ब्राह्मण साहित्य, पुराणों एवं मुद्राराक्षस नाटक के आधार पर विद्वानों ने चन्द्रगुप्त को शूद्र सिद्ध करने का प्रयास किया है। 'मुद्राराक्षस' में चन्द्रगुप्त के लिए 'वृषल' शब्द का प्रयोग किया गया है, इस 'वृषल'

शब्द के आधार पर भी चन्द्रगुप्त को निम्न जाति का कहा गया है, परन्तु चन्द्रगुप्त को क्षत्रिय मानने वाले विद्वानों का कहना है कि वृषल का अर्थ 'शूद्र' नहीं, वरन् क्षत्रिय है। कुछ ग्रन्थों के अनुसार मौर्य शब्द 'मुर' शब्द का पुल्लिंग है जो क्षत्रियों के एक गोत्र का नाम था। बौद्ध ग्रन्थ 'महावंश' में तो स्पष्ट लिखा है कि, **"चन्द्रगुप्त मौर्य क्षत्रिय वंश में उत्पन्न हुआ था।"** 'दिव्यावदान' में भी चन्द्रगुप्त, बिन्दुसार तथा अशोक को क्षत्रिय बताया गया है। इसके अतिरिक्त, महापरिनिब्बान सुत्त में भी मौर्यों को क्षत्रिय बतलाया गया है। इस प्रकार, समस्त बौद्ध साहित्य चन्द्रगुप्त मौर्य के क्षत्रिय-वंशीय होने के बारे में एकमत है। इसी प्रकार **'परिशिष्ट पर्वन'** और अन्य जैन धार्मिक ग्रन्थों के अनुसार चन्द्रगुप्त मयूर-पालकों के क्षत्रिय सरदार का नाती था।

(3) चाणक्य से भेंट—चन्द्रगुप्त का पिता नन्दवंश के राजा के यहाँ एक सैनिक अधिकारी के रूप में कार्य करता था। कुछ कारणोंवश उसकी हत्या कर दी गई। अतः उसके हृदय में नन्दों के विरुद्ध प्रतिशोध की तीव्र भावना उत्पन्न हुई। इसी बीच उसकी भेंट ब्राह्मण आचार्य **'चाणक्य'** से हुई। वह भी नन्दों से प्रतिशोध लेने की आग में जल रहा था, क्योंकि उसके साथ भी नन्दों ने अपने पिता के श्राद्ध के अवसर पर काला ब्राह्मण कहकर दुर्व्यवहार किया था। अतः इन दोनों ने मिलकर नन्द साम्राज्य का विनाश करने की योजना बनाई। चन्द्रगुप्त को चाणक्य जैसे कूटनीतिज्ञ विद्वान् की आवश्यकता थी तथा चाणक्य को चन्द्रगुप्त जैसे महत्त्वाकांक्षी वीर सेनापति की; अतः दोनों संगठित होकर नन्द वंश के विनाश तथा भारत की सुरक्षा में जुट गए।

चन्द्रगुप्त मौर्य का विजय अभियान

चन्द्रगुप्त मौर्य की विजयों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(1) मगध राज्य पर प्रथम आक्रमण—बौद्ध ग्रन्थ महावंश के अनुसार, चन्द्रगुप्त एवं चाणक्य ने एक संगठित सेना द्वारा मगध की शक्तिशाली सेना पर आक्रमण कर दिया। किन्तु इस युद्ध में उनकी पूर्ण पराजय हुई, क्योंकि मगध की सेना सुसंगठित एवं विशाल थी।

(2) सिकन्दर से भेंट—भाग्यवश इसी समय सिकन्दर महान् भारत के उत्तरी राज्यों को पराजित करता हुआ मगध राज्य की ओर बढ़ा चला आ रहा था। इस बात की सूचना चन्द्रगुप्त को किसी प्रकार प्राप्त हो गई। अतः यह सोचकर कि सिकन्दर को अपना उद्देश्य मगध राज्य को हराना बताकर उससे सहायता ली जाए, उसने सिकन्दर से भेंट की तथा समस्त योजना सिकन्दर के समक्ष स्पष्ट कर दी। इससे सिकन्दर अप्रसन्न हो गया, क्योंकि वह स्वयं मगध पर विजय प्राप्त करना चाहता था। सिकन्दर इतना अप्रसन्न हो गया कि वह चन्द्रगुप्त का वध करने के लिए तैयार हो गया, किन्तु चन्द्रगुप्त वीरता से युद्ध करता हुआ सिकन्दर के शिविर से भाग आया। तदुपरान्त कूटनीतिज्ञ चाणक्य और चन्द्रगुप्त सिकन्दर से प्रतिशोध लेने का निश्चय कर वहाँ से पलायन कर गए।

> **चन्द्रगुप्त मौर्य का विजय अभियान**
>
> **(1) मगध राज्य पर प्रथम आक्रमण**
> **(2) सिकन्दर से भेंट**
> **(3) पंजाब पर विजय**
> **(4) मगध पर विजय**
> **(5) अन्य विजयें—**
> **(i) उत्तर पश्चिमी भारत के राज्यों पर आधिपत्य**
> **(ii) सौराष्ट्र विजय**
> **(iii) बंगाल पर आधिपत्य**
> **(iv) सेल्यूकस से युद्ध और विजय**
> **(v) दक्षिणी भारत पर विजय।**

(3) पंजाब पर विजय—जब सिकन्दर पंजाब से वापस लौटा तो चन्द्रगुप्त ने चाणक्य के सहयोग से पंजाब के छोटे-छोटे राज्यों को विदेशी यूनानी सत्ता के विरुद्ध भड़काना प्रारम्भ कर दिया। परिणामस्वरूप इन दोनों के नेतृत्व में उन राज्यों की जनता ने विद्रोह कर दिया। 323 ईसा पूर्व में सिकन्दर की मृत्यु हो गई थी। सिकन्दर की मृत्यु होते ही अनेक दास राजाओं ने चन्द्रगुप्त का साथ दिया और यूनानी अधिपतियों को अपने राज्य से बाहर निकाल दिया। चन्द्रगुप्त वहाँ का एकमात्र शासक बन गया। लेकिन चन्द्रगुप्त इससे सन्तुष्ट नहीं हुआ, उसका उद्देश्य तो मगध को जीतकर सम्पूर्ण भारत में एक विशाल सुदृढ़ साम्राज्य की स्थापना करना था।

(4) मगध पर विजय—पंजाब पर आधिपत्य स्थापित कर लेने के पश्चात् उसने पंजाब के सम्पूर्ण राज्य की शक्ति एक विशाल सेना के रूप में संगठित की और मगध की ओर प्रस्थान

किया। मगध की राजधानी पाटलिपुत्र को चारों ओर से घेर लिया गया और वहाँ का नन्दवंशीय सम्राट घनानन्द सम्पूर्ण राज-परिवार सहित चन्द्रगुप्त मौर्य की सेना द्वारा मारा गया। इस विजय में पहाड़ियों के शासक 'पर्वतक' से बहुत सहायता प्राप्त हुई थी। इस विजय के पश्चात् ही लगभग 319 ईसा पूर्व से 322 ईसा पूर्व के मध्य चन्द्रगुप्त मगध के सिंहासन पर आसीन हुआ।

(5) अन्य विजयें—चन्द्रगुप्त अत्यन्त महत्त्वाकांक्षी सेनानी था। वह दिग्विजय प्राप्त करने का इच्छुक था। इसलिए मगध पर आधिपत्य स्थापित करने के पश्चात् उसने उत्तरी भारत के सम्पूर्ण राज्यों को विजित करने की एक विशाल योजना बनाई और इस योजना के आधार पर निम्न सफलताएँ प्राप्त कीं—

(i) उत्तर-पश्चिमी भारत के राज्यों पर आधिपत्य—चन्द्रगुप्त ने अपनी योजना के अनुसार सर्वप्रथम उत्तरी-पश्चिमी राज्यों को अपने नियन्त्रण में किया और सिन्धु नदी तक अपना एकछत्र आधिपत्य स्थापित कर लिया।

(ii) सौराष्ट्र विजय—उसने सौराष्ट्र क्षेत्र पर भी अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इस विजय का प्रमाण गिरनार से प्राप्त अभिलेखों से उपलब्ध हुआ है।

(iii) बंगाल पर आधिपत्य—इसने पूर्वी राज्यों को परास्त कर बंगाल को भी अपने अधिकार क्षेत्र में सम्मिलित कर लिया।

(iv) सेल्यूकस से युद्ध और विजय—सेल्यूकस सिकन्दर का प्रमुख सेनापति था और उसकी मृत्यु के पश्चात् उसने सम्पूर्ण पश्चिमी और मध्य-एशिया पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। अतः प्रतिशोधवश और विश्व-विजय की इच्छा के कारण सेल्यूकस ने 305 ईसा पूर्व में चन्द्रगुप्त मौर्य पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में सेल्यूकस की पराजय हुई और उसे चन्द्रगुप्त के साथ अपमानजनक सन्धि करनी पड़ी। उसे अपनी पुत्री हेलन का विवाह चन्द्रगुप्त के साथ करना पड़ा और साथ ही अपने चार प्रदेश—हैरात, गांधार, काबुल की घाटी एवं बलूचिस्तान भी चन्द्रगुप्त को देने पड़े। चन्द्रगुप्त ने भी उपहारस्वरूप सेल्यूकस को 500 हाथी भेंट किए।

(v) दक्षिणी भारत पर विजय—ऐतिहासिक साक्ष्यों; जैसे—मुद्राराक्षस, बौद्ध साहित्य, प्लूटार्क का विवरण, चन्द्रगिरि अभिलेख, तमिल-साहित्य, जैन-ग्रन्थ आदि के आधार पर यह ज्ञात होता है कि चन्द्रगुप्त ने 6 लाख पैदल सिपाहियों और अन्य प्रकार की सेनाओं को साथ लेकर दक्षिणी भारत को भी रौंद डाला था। रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख से भी यह विदित होता है कि उसने दक्षिण भारत पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था।

चन्द्रगुप्त मौर्य के साम्राज्य विस्तार पर प्रकाश डालते हुए डॉ० स्मिथ ने लिखा है, **"दो हजार वर्ष से भी पूर्व भारत के प्रथम सम्राट ने उस वैज्ञानिक सीमा को प्राप्त कर लिया था, जिसके लिए उसके ब्रिटिश उत्तराधिकारी व्यर्थ ही आहें भरते रहें तथा सोलहवीं व सत्रहवीं शताब्दियों के मुगल सम्राट भी कभी पूर्ण रूप से प्राप्त नहीं कर सके।"**

चन्द्रगुप्त मौर्य का मूल्यांकन

चन्द्रगुप्त मौर्य एक कुशल योद्धा, सेनानायक, योग्य शासक और महान् विजेता था। वह ऐसा प्रथम व्यक्ति था जिसने न केवल यूनानी व वैदेशिक आक्रमणों को विफल किया, वरन् भारत के एक विशाल भू-भाग को भी यूनानी आधिपत्य से मुक्त कराया। उसने ही सर्वप्रथम भारत को राजनीतिक एकता प्रदान की। उसका मूल्यांकन निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है—

(1) विशाल साम्राज्य-निर्माता—चन्द्रगुप्त मौर्य का साम्राज्य बड़ा विशाल था। उसका साम्राज्य हिन्दूकुश पर्वत से लेकर बंगाल तक तथा हिमालय पर्वत से लेकर मैसूर (कर्नाटक) तक विस्तृत था। इसके अन्तर्गत अफगानिस्तान, बलूचिस्तान के विशाल प्रदेश, सिन्धु, पंजाब, कश्मीर, नेपाल, गंगा-यमुना का मध्य भाग, मगध, बंगाल, कलिंग, सौराष्ट्र, मालवा तथा दक्षिण भारत का मैसूर तक का प्रदेश सम्मिलित हो गया था।

चन्द्रगुप्त मौर्य का मूल्यांकन

(1) विशाल साम्राज्य-निर्माता
(2) एक महान विजेता
(3) लोक-कल्याणकारी शासक।

(2) एक महान् विजेता—चन्द्रगुप्त को वास्तव में एक महान् विजेता कहा जा सकता है, क्योंकि वह एक साधारण परिवार में जन्मा व्यक्ति था। उसे कोई छोटा-सा राज्य भी उत्तराधिकार के रूप में नहीं मिला था जिसके आधार पर वह अन्य राज्यों को जीतकर अपने राज्य को विस्तृत करता। उसने मात्र अपने पौरुष एवं विद्वत्ता के आधार पर तथा चाणक्य के कुशल मार्गदर्शन में मगध जैसे शक्तिशाली राज्य को जीता। प्लूटार्क का कहना है कि "छह लाख सैनिकों की विशाल सेना लेकर चन्द्रगुप्त मौर्य ने सम्पूर्ण भारत को रौंद डाला।" इस तथ्य के आधार पर भी यह स्पष्ट होता है कि वास्तव में चन्द्रगुप्त एक महान् विजेता था।

(3) लोक-कल्याणकारी शासक—चन्द्रगुप्त के सन्दर्भ में एक विशेष बात यह है कि वह स्वेच्छाचारी शासक होते हुए भी प्रजा के हित का विशेष ध्यान रखता था। वह ईरान (Persia) के डेरियस की भाँति निरंकुश शासक नहीं था। वह वास्तव में सम्पूर्ण मानव जाति का शुभचिंतक था। इसीलिए इतिहासकार जस्टिन ने लिखा है कि—

"सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् चन्द्रगुप्त भारत की स्वतन्त्रता का लेखक था।" ("Chandra Gupta was the author of India's Liberty after Alexander's death.")

चन्द्रगुप्त की उपरोक्त विशेषताओं के फलस्वरूप प्रायः सभी विद्वानों के द्वारा उसे निर्विवाद रूप से भारत का प्रथम महान् विजेता मगध साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक और साम्राज्य-निर्माता माना जाता है।

डॉ० आर० के० मुकर्जी ने चन्द्रगुप्त मौर्य के महत्त्व के सम्बन्ध में लिखा है—"मौर्य राजवंश के संस्थापक के रूप में चन्द्रगुप्त ने पहली बार भारत को ऐसा इतिहास प्रदान किया, जिसका क्रम कहीं नहीं टूटता और जो इसके साथ ही एक सूत्र में बंधा हुआ इतिहास है।"

प्रश्न 2—चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रशासन के विशिष्ट तत्त्वों का निरूपण कीजिए। *(1991, 93, 94)*

अथवा **मेगस्थनीज के बारे में आप क्या जानते हैं? मौर्य प्रशासन के सम्बन्ध में उसने क्या लिखा है?**

अथवा **चन्द्रगुप्त की शासन-प्रणाली का वर्णन कीजिए।**

अथवा **"एक अकेला पहिया कभी रथ नहीं चला सकता है, अतः राजा का कर्त्तव्य है कि वह योग्य अमात्यों की नियुक्ति करे।" चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन-प्रबन्ध के प्रकाश में कौटिल्य के सिद्धान्त की समालोचना कीजिए।**

अथवा **चन्द्रगुप्त मौर्य की प्रशासनिक व्यवस्था पर प्रकाश डालिए।** *(1995)*

अथवा **मौर्य प्रशासन की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।** *(1995)*

अथवा **मेगस्थनीज के विवरण के आधार पर पाटलिपुत्र की नगर-व्यवस्था पर प्रकाश डालिए।** *(1996)*

उत्तर—

चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन-प्रबन्ध

भारत-भूमि पर अपने बाहुबल द्वारा एक विशाल साम्राज्य स्थापित करने वाला प्रथम शासक चन्द्रगुप्त मौर्य ही था। उसकी सफलता का सर्वप्रमुख कारण उसका कुशल शासन-प्रबन्ध एवं सैन्य संगठन था। चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन-प्रबन्ध का ज्ञान हमें मेगस्थनीज के विवरण तथा कौटिल्य के अर्थशास्त्र से प्राप्त होता है।

शासन-प्रबन्ध के आधारभूत सिद्धान्त अथवा तत्त्व
(मौर्य प्रशासन की प्रमुख विशेषताएँ)

चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन-प्रबन्ध के आधारभूत सिद्धान्त (तत्त्व) अथवा विशेषताओं का संक्षिप्त विवरण निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया है—

(1) प्रजा के हितों की सुरक्षा—कौटिल्य और मेगस्थनीज के विवरण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि मौर्य प्रशासन में प्रजा के हितों और प्रजा के सुखों की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था।

(2) शत्रुओं से सुरक्षा—चन्द्रगुप्त मौर्य ने शत्रुओं से देश की सुरक्षा के लिए सुशिक्षित सैन्य बल के संगठन की ओर विशेष ध्यान दिया था।

चन्द्रगुप्त मौर्य के शासन-प्रबन्ध के आधारभूत सिद्धान्त (मौर्य प्रशासन की प्रमुख विशेषताएँ)

(1) प्रजा के हितों की सुरक्षा
(2) शत्रुओं से सुरक्षा
(3) सुदृढ़ न्याय-व्यवस्था
(4) प्रशासन की सभी इकाइयों की ओर ध्यान।

(3) सुदृढ़ न्याय-व्यवस्था—मौर्य साम्राज्य के प्रत्येक मनुष्य को निष्पक्ष न्याय प्राप्त हो, ऐसी प्रशासनिक व्यवस्था मौर्य प्रशासन की उल्लेखनीय विशेषता थी। इस सम्बन्ध में यूनानी राजदूत मेगस्थनीज ने लिखा है, **"आबनूसी बेलनों से मालिश कराते समय भी वह प्रजा के कष्टों को जानने के लिए चिन्तित रहता था।"**

(4) प्रशासन की सभी इकाइयों की ओर ध्यान—मौर्य प्रशासन की सफलता का मुख्य आधार यह था कि चन्द्रगुप्त द्वारा, प्रशासन से सम्बन्धित समस्त विभागों और अधिकारियों के समुचित प्रबन्ध की ओर ध्यान दिया गया था। वास्तव में, उसके द्वारा कौटिल्य के गाड़ी वाले दो पहियों के सिद्धान्त को व्यावहारिक महत्त्व दिया गया था।

शासन-प्रबन्ध

(क) केन्द्रीय प्रशासन : (i) सम्राट की सर्वोच्चता—चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन एकात्मक पद्धति पर आधारित था अर्थात् शासन की सम्पूर्ण शक्तियाँ सम्राट के हाथ में रहती थीं। लेकिन सर्वोच्च शक्तियों का स्वामी होने पर भी वह स्वेच्छाचारी या निरंकुश नहीं था। यद्यपि वही सर्वोच्च प्रशासक, प्रधान सेनापति और मुख्य न्याय्याधीश था, तथापि उसने अपने अमात्य-मण्डल की सहायता से लोक-कल्याण के कार्यों को अपनी इच्छाओं से अधिक महत्त्वपूर्ण बनाया था।

(ii) मन्त्रि-परिषद्—चन्द्रगुप्त को उसके शासन कार्यों में सहायता देने के लिए मन्त्रियों की एक परिषद् थी। मन्त्रियों के परामर्श को मानने के लिए राजा किसी भी प्रकार से बाध्य नहीं था, परन्तु फिर भी वह उनका परामर्श बहुत ही उपयोगी मानता था। **कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में लिखा है कि, "राज्य रूपी रथ, एक पहिये (राजा) के द्वारा नहीं चल सकता, अतएव दूसरे पहिये के रूप में उसे मन्त्रि-परिषद् की आवश्यकता होती है।"** इस परिषद् के सदस्य विश्वासपात्र, ईमानदार एवं कर्त्तव्यपरायण व्यक्ति होते थे।

(iii) केन्द्रीय शासन के प्रमुख विभाग—कौटिल्य के अर्थशास्त्र में तीस से अधिक प्रशासकीय विभागों का वर्णन मिलता है। शासन के सभी विभाग उच्च पदाधिकारियों के अधीन रहते थे। प्रत्येक अधिकारी अपने-अपने विभाग का उत्तरदायित्व भली-भाँति निभाता था। इन उच्च अधिकारियों को क्रमशः अमात्य, महामात्य और अध्यक्ष के नाम से जाना जाता था। केन्द्रीय शासन के विभागों को **'तीर्थ'** कहा जाता था। केन्द्रीय अमात्य-परिषद् में 18 अमात्यों का उल्लेख मिलता है। इनमें कुछ मुख्य अमात्य थे— **पुरोहित** (धर्म का अधिकारी), **सचिव** (प्रधानमन्त्री), **समाहर्ता** (राजस्व संग्रह अधिकारी), **सेनापति** (युद्ध विभाग का अध्यक्ष), **व्यावहारिक** (न्यायाधीश), **दण्डपाल** (सेना का अधिकारी), **अन्तपाल** (सीमाओं का रक्षक), **कर्मान्तक** (उद्योग विभाग का अध्यक्ष), **आटविक** (वन सेना का अध्यक्ष) आदि। कुछ अन्य विभागाध्यक्षों में—**टकसाल अध्यक्ष, नौकाध्यक्ष, वनाध्यक्ष, गणिकाध्यक्ष तथा धातु अध्यक्ष** का विवरण भी प्राप्त होता है।

(ख) प्रान्तीय शासन—सम्पूर्ण राज्य का शासन सुचारु रूप से संचालित हो सके, इसके लिए चन्द्रगुप्त ने अपने साम्राज्य को अनेक प्रान्तों में विभक्त किया था। चन्द्रगुप्तकालीन प्रान्तों की निश्चित संख्या के विषय में पूर्ण जानकारी उपलब्ध नहीं है। अशोक के अभिलेखों से यह अवश्य ज्ञात होता है कि मौर्य साम्राज्य के छह प्रमुख प्रान्त थे, जो निम्न प्रकार हैं—

प्रान्त	राजधानी
(i) उत्तरापथ	तक्षशिला
(ii) अवन्ति	उज्जयिनी
(iii) प्राच्य (मध्य प्रदेश)	पाटलिपुत्र
(iv) दक्षिणापथ	सुवर्णगिरि
(v) कलिंग	तोषाली
(vi) सेल्यूकस द्वारा दिया गया प्रदेश	कपिशा

मुख्य केन्द्रीय प्रशासन के अन्तर्गत प्राच्य-प्रदेश था, जिसका प्रशासन एवं संचालन स्वयं सम्राट के हाथों में ही था। अन्य प्रान्तों का प्रशासन राजा द्वारा नियुक्त प्रान्तीय अध्यक्ष (राजकुमार या अन्य राज-परिवार के सदस्य) चलाते थे। इन्हें 'कुमार' कहा जाता था। प्रान्त को 'चक्र' के नाम से जाना जाता था। केन्द्रीय मन्त्रि-परिषद् की भाँति प्रान्तों में भी एक मन्त्रि-परिषद् होती थी। प्रान्तपति प्रायः इस मन्त्रि-परिषद् से परामर्श लेता था। प्रान्तों में कभी-कभी विद्रोह भी हो जाते थे।

(ग) स्थानीय प्रशासन—केन्द्रीय एवं प्रान्तीय प्रशासन को सुचारु रूप से चलाने के लिए विभिन्न स्थानीय प्रशासनों को सुव्यवस्थित रूप प्रदान किया गया था। स्थानीय प्रशासन की विभिन्न इकाइयों को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है—

(i) पाटलिपुत्र नगर (राजधानी) का शासन-प्रबन्ध—पाटलिपुत्र नगर मौर्य साम्राज्य की राजधानी थी। यूनानी राजदूत मेगस्थनीज ने अपने विवरण में इस नगर की शासन व्यवस्था का विस्तृत वर्णन किया है। उसने लिखा है कि इस नगर का प्रबन्ध करने के लिए पाँच सदस्यों की छह समितियाँ थीं। प्रत्येक समिति के अलग-अलग कार्य थे। **पहली, शिल्प कला समिति**, नगर में कला-कौशल, कारखानों और वाणिज्य की देख-रेख करती थी। **दूसरी, वैदेशिक समिति**, विदेशियों के निवास-स्थान एवं भोजन आदि का प्रबन्ध करती थी। **तीसरी, जनसंख्या समिति**, जन्म और मरण का लेखा-जोखा रखती थी। **चौथी, वाणिज्य समिति**, बिकने वाले सामान की माप-तौल पर नियन्त्रण रखती थी। **पाँचवीं, उद्योग समिति**, वस्तुओं के गुणों पर नियन्त्रण रखती थी तथा **छठी, कर समिति** का कार्य बिक्री की वस्तुओं पर कर वसूल करना था। पाटलिपुत्र का शासन-प्रबन्ध आधुनिक म्यूनिसिपल बोर्ड के शासन-प्रबन्ध के समान ही था।

(ii) जनपद का प्रशासन—प्रत्येक प्रान्त आधुनिक काल के समान अनेक मण्डलों में विभक्त होता था, जिनमें महामात्य शासन करते थे। प्रत्येक प्रान्त पुनः अनेक जिलों या जनपदों में विभक्त होता था। इस सम्बन्ध में डॉ० विमलचन्द्र पाण्डेय लिखते हैं कि "जनपद के मुख्य अधिकारी का कार्यभार समाहर्ता नामक अधिकारी को सौंपा गया था जो केन्द्रीय मन्त्री समाहर्ता के अधीन होते थे। समाहर्ता (जनपद का समाहर्ता) अनेक अधिकारियों की सहायता से जनपद का प्रशासन सुचारु रूप से चलाते थे।"

(iii) ग्राम का प्रशासन—ग्राम, प्रशासन की सबसे छोटी इकाई थी। इनका प्रबन्धकर्त्ता 'ग्रामिक' कहलाता था। ग्रामिक का चुनाव ग्राम के व्यक्ति ही करते थे। ग्रामिक; ग्राम-सभा की सहायता से ग्राम का प्रशासन और न्यायिक कार्यों का संचालन करते थे। लगभग दस ग्रामों का संयुक्त प्रशासनाधिकारी गोप होता था, गोप के ऊपर स्थानिक होता था, जिसके अधिकार में जिले का चौथाई भाग रहता था।

(घ) न्याय व्यवस्था—सम्राट न्याय और दण्ड-व्यवस्था का सर्वोच्च अधिकारी था। सम्राट का निर्णय अन्तिम होता था। नगरों और ग्रामों की न्याय व्यवस्था का स्वरूप भिन्न-भिन्न था। न्यायालय कंटकशोधन (फौजदारी) एवं धर्मस्थीय (दीवानी), दो प्रकार के थे। न्यायाधीश किसी भी मामले की पूर्ण परीक्षा करके तथा निष्पक्ष रूप से ही अपना निर्णय देते थे। इस समय न्याय व्यवस्था अत्यन्त कठोर थी। छोटे-छोटे अपराधों के लिए भी मृत्युदण्ड दे दिया जाता था। इस कठोरता का प्रमुख उद्देश्य अपराधों को कम करना और षड्यंत्रकारियों को सदैव भयभीत रखना था, ताकि कोई शासन के प्रति विद्रोह करने का दुस्साहस न करे। परम्पराओं, प्रथाओं व रीति-रिवाजों के अतिरिक्त उस समय के कानूनों का मुख्य स्रोत धर्मशास्त्र भी थे। राजा का अपना एक गुप्तचर विभाग भी होता था, जो राज्य की समस्त बातों और विचारणीय घटनाओं का अध्ययन करता था और सबकी सूचना राजा को देता था।

चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन-प्रबन्ध

(क) केन्द्रीय प्रशासन
(ख) प्रान्तीय शासन
(ग) स्थानीय प्रशासन
(घ) न्याय व्यवस्था
(ङ) सैन्य संगठन
(च) आय के स्रोत
(छ) सड़कों का निर्माण
(ज) सिंचाई

(ङ) सैन्य संगठन—चन्द्रगुप्त मौर्य ने अपनी सेना का बड़ी योजनाबद्ध ढंग से संगठन किया था। उसकी विशाल सेना में 6 लाख पैदल, 30 हजार घुड़सवार, 9 हजार हाथी और 8 हजार रथ थे। युद्ध का एक अलग विभाग था, जो सेना का प्रबन्ध एवं निरीक्षण करता था। मेगस्थनीज के अनुसार इस समय

पाँच-पाँच व्यक्तियों की छह समितियाँ थीं। ये समितियाँ क्रमशः पैदल-सेना, अश्व-सेना, गज-सेना, जल-सेना, रथ-सेना, सैन्य सामग्री एवं रसद तथा अस्त्र-शस्त्रों का प्रबन्ध देखती थीं। इस प्रकार, मौर्य सम्राट चन्द्रगुप्त ने उच्चकोटि का सैन्य संगठन स्थापित किया था।

(च) आय के स्रोत—चन्द्रगुप्त मौर्य की प्रशासनिक व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य की आय के अनेक स्रोत थे, जिनमें मालगुजारी आय का प्रमुख स्रोत था। यह कर उपज के छठे भाग (1/6 भाग) के रूप में लिया जाता था। बाजार, हाट, मेलों आदि से भी कर के रूप में विशेष आय प्राप्त होती थी। खानों से खनिज, वनों, जंगलों की सम्पत्ति एवं विदेशी व्यापार से आयात-निर्यात कर आदि भी राज्य की आय के महत्त्वपूर्ण साधन थे। कर से प्राप्त धन को लोकहित के सार्वजनिक कार्यों तथा सैन्य संगठन के लिए व्यय किया जाता था। इस प्रकार, चन्द्रगुप्त के समय की राजस्व-व्यवस्था लगभग वर्तमान समय की शासन व्यवस्था की भाँति ही थी।

(छ) सड़कों का निर्माण—सम्राट चन्द्रगुप्त ने अपने समय में अनेक नई सड़कें बनवाईं एवं पुरानी सड़कों का पुनर्निर्माण कराया। राज्य में सड़कों की व्यवस्था के निरीक्षण हेतु एक पृथक् विभाग भी बनाया गया था।

(ज) सिंचाई—मेगस्थनीज एवं कौटिल्य के अर्थशास्त्र में इस बात का उल्लेख है कि उस समय कृषि की सिंचाई की समुचित व्यवस्था थी। राज्य की ओर से नहरों, तालाबों एवं कुओं द्वारा सिंचाई का प्रबन्ध किया जाता था। कृषि की उन्नति के लिए कृषकों को प्रत्येक प्रकार की सहायता दी जाती थी। जूनागढ़ अभिलेख से यह पता चलता है कि चन्द्रगुप्त ने सिंचाई के लिए विशाल 'सुदर्शन झील' का निर्माण करवाया था।

निष्कर्ष—वास्तव में, चन्द्रगुप्त की शासन-व्यवस्था बड़ी वैज्ञानिक एवं विकसित थी। उसकी शासन-व्यवस्था की प्रशंसा में स्मिथ ने लिखा है, "चन्द्रगुप्त की शासन-व्यवस्था पूर्ण थी, जबकि वह केवल संकेत रूप में ही प्राप्त होती है। विभागों की कार्य-प्रणाली हमारे आश्चर्य में वृद्धि करती है कि ईसा से लगभग 300 वर्ष पूर्व इस प्रकार की शासन-व्यवस्था की स्थापना की जा सकी और उसे पूर्ण सफलता प्राप्त हुई।"

मोरलैण्ड ने लिखा है, **"शासन के सम्बन्ध में मेगस्थनीज के फुटकर वर्णनों के अनुसार यह स्पष्ट है कि शासन पूर्ण विकसित और भली प्रकार संगठित था।"**

चन्द्रगुप्त मौर्य के बाद सम्राट अशोक ने मौर्य शासन प्रणाली में कुछ परिवर्तन किए। अशोक ने कुछ नए प्रशासकीय पदों को जन्म दिया और नए अधिकारी नियुक्त किए, जिनमें धर्म महामात्र, महामात्र, राजुक (राज्यपाल के समान), प्रादेशिक (जिले का शासक), युत्त (राजकीय सम्पत्ति का प्रबन्धक), पुलिस (राजपुरुष या गुप्तचर अधिकारी) आदि।

प्रान्तीय शासन में अशोक ने एक नए पद का गठन किया। यह 'उपराज' का पद था। उसका कार्य सम्राट का प्रशासकीय उत्तरदायित्व निभाना था तथा सम्राट को प्रान्त की व्यवस्था से परिचित कराना था। अशोक ने सीमान्त प्रदेश के शासन की विशेष व्यवस्था की थी। अशोक के शासन काल में मन्त्रि-परिषद का प्रमुख विषय 'धम्म' की स्थापना, लोक कल्याण तथा धार्मिक शिक्षा था। मन्त्रि-परिषद में अमात्य को प्रमुख स्थान प्राप्त था।

अशोक ने सैन्य-व्यवस्था शिथिल कर दी थी और कठोर दण्ड कम कर दिए थे। उसने लोककल्याणकारी कार्यों की ओर विशेष ध्यान दिया था।

प्रश्न 3—अशोक की गणना संसार के महानतम शासकों में क्यों की जाती है? समझाइए।
अथवा **"सब मनुष्य मेरे पुत्र हैं। जिस प्रकार मैं चाहता हूँ कि मेरे पुत्र सब प्रकार के हित व सुख को प्राप्त करें, उसी प्रकार मैं चाहता हूँ कि सब मनुष्य ऐहिक और लौकिक सब तरह के हित व सुख को प्राप्त करें।" अशोक के इस कथन की व्याख्या कीजिए।**
अथवा **"प्रत्येक युग और प्रत्येक देश में अशोक जैसा सम्राट पैदा नहीं होता है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।**

अथवा "अशोक का नाम एक दैदीप्यमान नक्षत्र की भाँति चमक रहा है।" अशोक के कृत्यों के आधार पर इस कथन की विवेचना कीजिए।

अथवा "अशोक प्राचीन भारत का एक महानतम् शासक था।" विस्तार से वर्णन कीजिए। *(1990, 92)*

अथवा "अशोक का व्यक्तित्व एक दुर्दान्त साम्राज्यवादी तथा कट्टर शांतिवादी का समन्वय था।" इस कथन की विवेचना कीजिए। *(1992)*

अथवा "अशोक प्राचीन भारत का महानतम् व्यक्तित्व है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए। *(1993)*

अथवा "भारत के इतिहास में अशोक का व्यक्तित्व बड़ा ही रोचक है। उसमें चन्द्रगुप्त की क्षमता, समुद्रगुप्त की प्रतिभा तथा अकबर की धर्मनिष्ठता विद्यमान थी।" इस कथन की व्याख्या कीजिए। *(1995)*

अथवा "इतिहास में वर्णित हजारों राजाओं और महाराजाओं के बीच अशोक का नाम एक दैदीप्यमान नक्षत्र की भाँति अकेला चमक रहा है।" इस कथन की व्याख्या कीजिए। *(1995)*

अथवा अशोक का भारतीय इतिहास में स्थान निर्धारित कीजिए। *(1997)*

उत्तर—

अशोक महान्

भारत की बागडोर कितने ही शासकों के हाथ में आई और गई, किन्तु अशोक उनमें ऐसा शासक हुआ जिसने अपने अदम्य साहस, जन-कल्याण की पवित्र भावना, योग्य शासन, धर्म-नीतियों एवं कर्त्तव्य-परायणता आदि गुणों के द्वारा न केवल भारत, वरन् विश्व के महानतम् सम्राटों में अपना सर्वाधिक गौरवशाली स्थान बनाया। उसके इन्हीं गुणों के कारण उसकी गणना संसार के महानतम् शासकों में की जाती है। एच० जी० वेल्स ने ईसा मसीह, महात्मा बुद्ध, अरस्तू, बेकन और अब्राहम लिंकन के साथ अशोक को भी विश्व का मुख्य व्यक्ति मानते हुए उसके सम्बन्ध में लिखा है, "इतिहास के स्तम्भों को भरने वाले सहस्रों राजाओं में केवल अशोक का ही नाम दीप्तिमान है। वह एक सितारे की भाँति चमकता है। वोल्गा से लेकर जापान तक उसका नाम आदर के साथ लिया जाता है। चीन, तिब्बत और यहाँ तक कि भारत में भी। यद्यपि यहाँ अब उसके धर्म का प्रचार नहीं है, पर उसकी महानता की परम्परा आज भी रक्षित है।" स्मिथ के शब्दों में भी, "अशोक एक महान् सम्राट था।" इस प्रकार, अशोक न केवल भारतीय इतिहास का, वरन् विश्व का एक महान् सम्राट था।

अशोक की महानता के कारण

इतिहासकारों ने अशोक की तुलना कान्स्टेण्टाइन, मार्क्स ओरिलियस, एल्फ्रेड शार्लमेन, उमर खलीफा तथा अकबर आदि से की है और उसे भारत का एक महानतम् सम्राट बताया है। एच० जी० वेल्स ने तो यहाँ तक लिखा है कि, "प्रत्येक युग तथा प्रत्येक राष्ट्र ऐसे राजा को प्रस्तुत नहीं कर सकता। विश्व-इतिहास में आज तक अशोक की समता किसी से नहीं की जा सकती।" संक्षेप में, अशोक की इस महानता के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

(1) महान् धर्मपरायण एवं सहिष्णु शासक—अशोक के हृदय में धर्म के प्रति जो निष्ठा थी, उसे उसने व्यावहारिक रूप प्रदान किया। यद्यपि वह बौद्ध धर्मावलम्बी था, किन्तु उसने जनता को जिस धर्म का अनुसरण करने की आज्ञा दी वह बौद्ध धर्म नहीं था, वरन् उसमें सभी के आदर्शों और कल्याणकारी सिद्धान्तों का समन्वय था। साथ ही उसने लोकहितकारी बौद्ध धर्म का व्यापक प्रचार सुदूर देशों में भी किया। यथार्थ में अशोक स्वतन्त्र धार्मिक विचारों का सम्राट था। कलिंग विजय के पश्चात् वह पूर्णतः अहिंसावादी हो गया था। अशोक की अहिंसावादी भावना, धर्मपरायणता और सहिष्णुता की सराहना संसार के सभी विद्वानों ने की है। धर्म-प्रचार के लिए विशेष '**धर्म-महामात्र**' अधिकारियों की नियुक्ति भी अशोक के द्वारा की गई थी।

(2) महान् विजेता एवं अहिंसावादी सम्राट—अशोक ने युद्ध के मैदान में अनेक उल्लेखनीय सफलताएँ प्राप्त की थीं, परन्तु कलिंग विजय के बाद अशोक को युद्ध और हिंसा से घृणा हो गई और वह पूर्ण अहिंसावादी बन गया था। उसने सत्य, अहिंसा का पालन करना शुरू कर दिया था। उसने शस्त्रों का प्रयोग त्याग दिया और अपनी सेना को भी सत्य, अहिंसा एवं शान्ति के शस्त्रों से सुसज्जित किया। उसने स्नेह तथा प्रेम के द्वारा विश्व-विजय प्राप्ति का अभियान प्रारम्भ किया और शीघ्र ही उसने आधे से अधिक

संसार के व्यक्तियों के हृदय पर विजय प्राप्त कर ली। उसकी यह नैतिक विजय भारतीय इतिहास में ही नहीं, वरन् संसार के इतिहास में आज भी स्वर्णाक्षरों में अंकित है। इसीलिए उसके सम्बन्ध में यह उचित ही कहा जाता है कि, **"अशोक का व्यक्तित्व एक दुर्दान्त साम्राज्यवादी तथा कट्टर शांतिवादी का समन्वय था।"**

(3) राष्ट्रीय एकता का निर्माण—अशोक ने अपने व्यवहार द्वारा जनता में पारस्परिक प्रेम उत्पन्न कर राष्ट्रीय एकता का संचार किया। उसने सम्पूर्ण देश के लिए एक ही भाषा के प्रयोग का आदेश इसी उद्देश्य की पूर्ति हेतु दिया था।

अशोक की महानता के कारण

(1) महान धर्मपरायण एवं सहिष्णु शासक
(2) महान विजेता एवं अहिंसावादी सम्राट
(3) राष्ट्रीय एकता का निर्माण
(4) प्रजा-वत्सल सम्राट
(5) शान्ति एवं मानवता का पुजारी
(6) लोक-हित के कार्य
(7) कला की उन्नति
(8) उच्चकोटि की शासन व्यवस्था।

(4) प्रजा-वत्सल सम्राट—अशोक अपनी प्रजा को अपनी सन्तान के समान समझता था। अशोक ने कलिंग के शिलालेखों में लिखवाया था कि, "सभी मनुष्य मेरे पुत्र हैं और जिस प्रकार मैं अपने पुत्रों का हित और सुख चाहता हूँ उसी प्रकार मैं अपनी प्रजा के लिए ऐहिक और लौकिक हित एवं सुख की कामना करता हूँ।" इसी कारण उसने अपने गुप्तचर विभाग को यह आज्ञा भी दे रखी थी कि, **"चाहे मैं शयनागार में होऊँ, मुझे प्रजा के दुःख का समाचार अवश्य पहुँचना चाहिए।"**

(5) शान्ति एवं मानवता का पुजारी—कलिंग युद्ध के बाद उसने जीवनपर्यन्त शान्ति एवं अहिंसा के साथ अपने शासन का संचालन किया और यहीं से उसमें मानवता के गुणों का संचार हुआ। वह दया, वत्सलता, प्रेम, त्याग, करुणा, जन-कल्याण आदि गुणों की साक्षात् मूर्ति बन गया था। मानवता के सम्बन्ध में सम्राट अशोक के विचार अत्यन्त व्यापक थे।

(6) लोक-हित के कार्य—अशोक ने लोक-हित के भी अनेक कार्य किए। सर्वप्रथम उसने अपने राज्य में पशु-वध का निषेध ही नहीं किया, वरन् उनके रोग निवारण हेतु चिकित्सालय भी खुलवाए। यात्रियों के आवागमन की सुविधा हेतु नई सड़कों का निर्माण करवाया। पथिकों को सुख देने के उद्देश्य से सड़कों के दोनों ओर छायादार वृक्ष लगवाए, धर्मशालाओं का निर्माण करवाया, मदिरा-सेवन और नशीली वस्तुओं के प्रयोग पर नियन्त्रण लगाया, आम के बाग लगवाए तथा थोड़ी-थोड़ी दूर पर शीतल जल हेतु कुएँ भी खुदवाए।

(7) कला की उन्नति—अशोक के काल में कला की चहुँमुखी उन्नति हुई थी। उसे विभिन्न कलाओं एवं भवन-निर्माण के प्रति विशेष अनुराग था। अशोक के काल की कला का उत्कृष्ट उदाहरण सारनाथ का स्तम्भ है। इसी प्रकार, प्रियदर्शी सम्राट अशोक का राजचिह्न भारत सरकार का राष्ट्रीय चिह्न बना हुआ है।

(8) उच्चकोटि की शासन व्यवस्था—अशोक ने अपने शासन में अनेक सराहनीय सुधार भी किए। उसने अपने पिता के शासन की कठोर नीति को उदार बनाने का प्रयत्न किया, किन्तु वह अपराधियों को दण्ड देने का पक्षपाती अवश्य रहा। उसके द्वारा राज्य कर्मचारियों के चरित्र के विकास हेतु राज्य में अनेक महात्माओं की नियुक्ति की गई थी। नैतिक जीवन की उन्नति हेतु सम्राट अशोक ने धर्म-विभाग की स्थापना की थी। इस धर्म-विभाग के धर्म-महामात्रों का कार्य सभी वर्गों के लोगों को धर्मपालन के लिए प्रोत्साहित करना था। धर्म-महामात्रों को निर्धनों, वृद्धों और असहायों को आर्थिक सहायता देने का अधिकार था। उसने महामात्रों को यह आज्ञा भी दी कि वे उन बन्दियों को जेल से मुक्त कर दिया करें, जो अपाहिज हों। इस प्रकार, प्रशासनिक क्षेत्र में भी अशोक ने अनेक लोकहितकारी परिवर्तन किए थे।

निष्कर्ष—निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि अशोक सिकन्दर, सीजर, सेन्टपाल आदि सभी राजाओं से अधिक महान् था। उसमें प्रजा-वत्सलता, सहिष्णुता, कल्याण की भावना, करुणा आदि अनेक मानवीय गुण विद्यमान थे। अशोक के विलक्षण व्यक्तित्व के सम्बन्ध में यह कथन पूर्णतः उपयुक्त है कि,

"भारत के इतिहास में अशोक का व्यक्तित्व बड़ा ही रोचक है। उसमें चन्द्रगुप्त की क्षमता, समुद्रगुप्त की प्रतिभा तथा अकबर की धर्मनिष्ठता विद्यमान थी।" उसके सन्दर्भ में डॉ० हेमचन्द राय चौधरी लिखते हैं, "अशोक अपने उत्साह और प्रयत्न में अथक् था और उसने अपने साम्राज्य के समस्त साधनों को अपनी प्रजा की भौतिक और आध्यात्मिक उन्नति में लगा दिया।"

वस्तुतः अशोक प्राचीन भारत का एक महानतम् शासक था। उसके सम्बन्ध में यह कथन भी पूर्णतः उपयुक्त ही है कि "प्रत्येक युग और प्रत्येक देश में अशोक जैसा सम्राट पैदा नहीं होता।"

प्रश्न 4—अशोक के 'धम्म' से क्या तात्पर्य है ? उसके धम्म के मूल सिद्धान्तों का उल्लेख कीजिए।

अथवा **"मेरे राज्य में सब लोग एक साथ मेल-जोल से रहें।...लोग एक-दूसरे के धर्म को ध्यान देकर सुनें और उसका आदर करें ...सभी सम्प्रदायों में धर्म के सार की वृद्धि है।" अशोक के धम्म के प्रकाश में इस कथन की व्याख्या कीजिए।**

अथवा **अशोक के 'धम्म' का वर्णन कीजिए।** ***(1990)***

अथवा **"अशोक की धर्म-भावना लोक-कल्याण तथा मानवता के उच्च आदर्शों पर आधारित थी।" सविस्तार व्याख्या कीजिए।** ***(1990, 94)***

अथवा **"अशोक केवल बौद्ध धर्म का ही नहीं अपितु मानव-धर्म का प्रचारक था।" विवेचना कीजिए।** ***(1993, 96, 99)***

अथवा **"अशोक केवल बौद्ध धर्मावलम्बी था।" इस कथन की विवेचना कीजिए।**

अथवा **अशोक के धर्म का विश्लेषण कीजिए।** ***(1994)***

अथवा **अशोक के 'धम्म' का वर्णन कीजिए। इसके प्रचार के लिए उसने क्या उपाय किए ?** ***(1995)***

अथवा **अशोक के 'धम्म' से आप क्या समझते हैं ? इसके प्रसार के लिए उसने क्या उपाय किए ?** ***(1996)***

अथवा **"अशोक केवल बौद्ध धर्म का ही नहीं अपितु मानव धर्म का प्रचारक था।" विवेचन कीजिए।** ***(1999)***

उत्तर—

अशोक का धर्म (धम्म)

यह प्रश्न आज भी विवादग्रस्त है कि अशोक ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था या बौद्ध धर्म का। अनेक इतिहासकार उसे ब्राह्मण धर्म का अनुयायी मानते हैं। भण्डारकर का यह विचार है कि वह बौद्ध धर्म का अनुयायी था, किन्तु फॉदर हेरास, टॉमस, सेनार्ट और फ्लीट इस बात का खण्डन करते हैं। इन विद्वानों का कथन है कि उसके लेखों में जो आदेश प्राप्त होते हैं, वे केवल मानव धर्म के आदेश कहे जा सकते हैं न कि बौद्ध धर्म के प्रचार कार्य के रूप में। डॉ० आर० के० मुकर्जी ने भी लिखा है, "जिस धर्म का अशोक ने प्रचार किया वह निश्चय ही बौद्ध धर्म नहीं था।" फादर हेरास ने भी यह मत प्रतिपादित किया है कि अशोक ब्राह्मण धर्मावलम्बी था, दूसरी ओर डॉ० हेमचन्द राय चौधरी का कहना है, "इसमें सन्देह के लिए स्थान नहीं है कि अशोक बौद्ध बन गया था। भाबू शिलालेख में उसने स्पष्ट स्वीकार किया है कि बौद्ध धर्म तथा संघ में उसका विश्वास था।"

अशोक के बौद्ध होने में सन्देह का कारण—इस सन्देह का प्रमुख कारण यह है कि अशोक ने अपने शिलालेखों में बौद्ध-धर्म के चार आर्य सत्यों, अष्टांगिक मार्ग और निर्वाण आदि का वर्णन नहीं किया है। अभिलेखों एवं शिलालेखों में वह कई बार—मेरा धर्म, यह मेरा धर्म है, आदि शब्दों का भी प्रयोग किया है, अर्थात् मानो अशोक ने अपना कोई नवीन धर्म चलाया हो।

दूसरी बात यह है कि वह प्रारम्भ में शिव की पूजा किया करता था और आमोद-प्रमोद में जीवन व्यतीत करता था। आखेट, मांसभक्षण आदि में भी उसकी रुचि थी। वह क्रोधी स्वभाव का युद्धप्रिय शासक था। कहते हैं कि कलिंग के युद्धस्थल में वीभत्स दृश्य देखकर अकस्मात् उसका हृदय परिवर्तित हो गया और उसने क्रूरता एवं अत्याचारपूर्ण जीवन और ब्राह्मण धर्म को त्याग दिया और बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। कुछ भी रहा हो, परन्तु अपने धार्मिक विचारों से उसने सम्पूर्ण मानव-जाति को ही नहीं, अपितु जीव-जगत को भी प्रभावित किया था। वह लोक-कल्याणकारी धार्मिक सिद्धान्तों का जनसामान्य में प्रचार

एवं प्रसार करने लगा था। इसी कारण यह कहा जाता है कि "अशोक केवल बौद्ध धर्म का ही नहीं अपितु मानव-धर्म का भी प्रचारक था।"

अशोक के बौद्ध होने के प्रमाण

अशोक के निम्नलिखित कार्यों के आधार पर उसे बौद्ध धर्मावलम्बी सिद्ध करने का प्रयास किया जाता है—

(1) बौद्ध धर्म का प्रचार—अशोक ने बौद्ध धर्म स्वीकार करके इस धर्म को राजकीय संरक्षण प्रदान किया तथा उत्साहपूर्वक इसका प्रचार किया।

(2) धर्म यात्रा—इस धर्म के प्रचार हेतु उसने बौद्ध धर्म से सम्बन्धित अनेक धार्मिक स्थानों की यात्राएँ कीं।

(3) बौद्ध धर्म को राजधर्म घोषित करना—अशोक ने बौद्ध धर्म को राजधर्म घोषित किया तथा सभी वर्गों की जनता में इसके प्रति आदर एवं अनुराग उत्पन्न किया।

(4) शिलालेखों पर बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों को लिखवाना—अशोक ने बौद्ध धर्म की अनेक शिक्षाएँ शिलालेखों और स्तम्भों पर लिखवा दीं और फिर इन्हें विभिन्न स्थानों पर स्थापित करवाया, ताकि अधिक-से-अधिक व्यक्ति इन्हें पढ़ सकें और बौद्ध-धर्म अपना सकें।

(5) बौद्ध-धर्म का विदेशों में प्रचार करवाना—अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को नेपाल एवं श्रीलंका आदि देशों को भेजा था।

(6) तृतीय बौद्ध धर्म सम्मेलन—अशोक ने बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों को स्पष्ट करने के लिए पाटलिपुत्र में बौद्ध भिक्षुओं का एक विशाल सम्मेलन आयोजित किया था। इस ऐतिहासिक सम्मेलन ने बौद्ध धर्म के प्रसार में महत्त्वपूर्ण योगदान किया था।

अशोक के बौद्ध होने के प्रमाण

(1) बौद्ध धर्म का प्रचार
(2) धर्म यात्रा
(3) बौद्ध धर्म को राजधर्म घोषित करना
(4) शिलालेखों पर बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों को लिखवाना
(5) बौद्ध धर्म का विदेशों में प्रचार करवाना
(6) तृतीय बौद्ध धर्म सम्मेलन
(7) बौद्ध-विहारों और स्तूपों का निर्माण।

(7) बौद्ध-विहारों और स्तूपों का निर्माण—सम्राट अशोक ने लगभग 80 हजार बौद्ध-स्तूपों का निर्माण करवाया था। उसने बौद्ध भिक्षुओं और भिक्षुणियों के आवास हेतु अनेक बौद्ध विहार भी बनवाए थे।

उपर्युक्त प्रमाणों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि अशोक बौद्ध था। वास्तव में, कलिंग विजय के पश्चात् उसने बौद्ध-धर्म अंगीकार कर लिया था। उसका अपना कोई पृथक् नवीन धर्म नहीं था। सभी धर्मों के श्रेष्ठ गुणों का संग्रह ही उसका स्वधर्म था। वास्तव में, उसका अपना यह स्वधर्म बौद्ध धर्म से भी उच्च हो गया था, क्योंकि उसमें सभी धर्मों के सम्मानित गुण समाहित थे। अशोक के धर्म के ये गुण अथवा सिद्धान्त संक्षेप में इस प्रकार थे—

(i) माता-पिता, गुरुजनों तथा वृद्धों का आदर-सम्मान करना चाहिए।
(ii) मनुष्य को पाप कर्म नहीं करना चाहिए।
(iii) चित्त को सदैव शुद्ध रखना चाहिए।
(iv) निष्ठुरता, अभिमान, क्रोध, ईर्ष्या आदि दुर्गुणों को त्याग देना चाहिए।
(v) मितव्ययी एवं अल्पसंग्रही बनना चाहिए।
(vi) समय-समय पर आत्मा की शुद्धि की परीक्षा लेते रहना चाहिए।
(vii) सेवकों से प्रेम एवं उचित व्यवहार करना चाहिए।
(viii) ब्राह्मणों व भिक्षुओं का सम्मान करना चाहिए।
(ix) अहिंसा का पालन करते हुए जीवों पर दया करनी चाहिए।

निष्कर्ष—अशोक ने धर्म के क्षेत्र में अत्यन्त सराहनीय कार्य किया। उसने बौद्ध धर्म तथा अन्य सभी धर्मों के श्रेष्ठतम गुणों को स्वीकार कर उन्हें जनता के समक्ष उपदेश के रूप में प्रसारित किया। अशोक के धर्म की बातें तथा उपदेश अत्यन्त अर्थपूर्ण तथा लोकोपकारी थे, जिन्हें व्यक्ति एक ही बार में सुनकर उनका पालन करने में लग जाते थे। अतः उसने जो उपदेश दिए, उनसे मानव-समाज का असीम कल्याण हुआ। अशोक धर्म-सहिष्णु सम्राट भी था। धर्म के सम्बन्ध में उसके विचार इस प्रकार थे, "मेरे साम्राज्य में सब सम्प्रदाय के लोग एक साथ मेल-जोल से रहें, लोग एक-दूसरे के धर्म को ध्यान देकर सुनें और उसका आदर करें, सब सम्प्रदायों में कर्म के सार की वृद्धि हो।"

(नोट—धर्म के प्रचार एवं प्रसार हेतु अशोक द्वारा किए गए कार्यों का अध्ययन करने के लिए प्रश्न संख्या 5 का अवलोकन कीजिए।)

प्रश्न 5—अशोक ने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए क्या-क्या महान् कार्य किए थे?

अथवा **"अशोक के जीवन का एकमात्र उद्देश्य बौद्ध धर्म का उत्थान रह गया था।" समालोचना कीजिए।**

उत्तर—

बौद्ध धर्म का प्रचार

प्राचीन भारत के समस्त शासकों में, सम्राट अशोक का नाम, इस दृष्टि से भी उल्लेखनीय है कि उसने बौद्ध धर्म के प्रचार में सर्वाधिक योगदान दिया। डॉ० राय चौधरी ने लिखा है कि, "अशोक केवल महान् समर विजेता ही न था, बल्कि विद्वान् भिक्षुओं के साथ वह धर्म की सूक्ष्म बातों की चर्चा भी कर सकता था। उसने धर्म-प्रचार के ऐसे कार्य किए जो तीन महाद्वीपों तक फैले हुए थे ....और जिसके कारण गंगा घाटी का सम्प्रदाय (बौद्ध-धर्म) संसार के महान् धर्म में बदल गया था।"

अशोक द्वारा बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु किए गए कार्य

बौद्ध-धर्मावलम्बी होने के बाद अशोक ने बौद्ध धर्म का विशेष प्रचार ही नहीं किया, वरन् अन्य धर्मों के श्रेष्ठतम गुणों को भी बौद्ध धर्म में समाहित कर वह अपनी प्रजा को उनका अनुसरण करने का उपदेश देता रहा। उसने निम्नलिखित उपायों के माध्यम से बौद्ध धर्म को विश्व में लोकप्रिय बनाया—

(1) स्वयं बौद्ध धर्म स्वीकार करना—कलिंग विजय के पश्चात् उसने स्वयं बौद्ध धर्म अंगीकार कर लिया। उसने युद्ध, शिकार, मांसभक्षण आदि सभी का त्याग कर दिया, जिससे जनता के हृदय पर उसके चरित्र एवं आचरण का प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा तथा लोग स्वेच्छा से उसका अनुकरण करने लगे।

अशोक द्वारा बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु किए गए कार्य

(1) स्वयं बौद्ध धर्म स्वीकार करना
(2) राजकीय संरक्षण
(3) बौद्ध धर्म को प्रोत्साहन देना
(4) धर्म-यात्राएँ
(5) बाह्याडम्बरों को समाप्त करना
(6) शिलालेखों एवं मठों का निर्माण
(7) धार्मिक विषयों पर आधारित प्रदर्शनों का आयोजन
(8) दान-व्यवस्था
(9) तृतीय बौद्ध संगीति का आयोजन
(10) विदेशों में प्रचार हेतु धर्माचार्यों को भेजना
(11) पशु-वध का निषेध
(12) पाली भाषा का प्रयोग।

(2) राजकीय संरक्षण—अनेक विद्वानों का विचार है कि अशोक ने बौद्ध धर्म को अपना राजधर्म भी घोषित किया था। इस धर्म को पूर्ण राजकीय संरक्षण प्रदान करने के उद्देश्य से अशोक ने अपने राज्य में एक नवीन धर्म विभाग भी स्थापित किया। इस विभाग का प्रधान अधिकारी 'धर्म महामात्य' (धर्म महामात्र) कहलाता था। इसका प्रमुख कार्य जनता में धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार कर लोगों को सद्चरित्र बनाना था।

(3) बौद्ध धर्म को प्रोत्साहन देना—अशोक बौद्ध धर्म को राजकीय धर्म बनाने हेतु स्वयं भिक्षुओं की भाँति रहने लगा तथा लोगों को इस धर्म के श्रेष्ठ गुणों के विषय में जानकारी व उपदेश देने लगा। इससे लोग बहुत अधिक प्रभावित हुए और बौद्ध धर्म की उन्नति में सहयोग देने लगे।

(4) धर्म-यात्राएँ—अशोक ने अपनी आमोद-प्रमोद के उद्देश्य से की जानी वाली यात्राएँ समाप्त कर दीं। इसके स्थान पर वह प्रति पाँच वर्ष बाद धर्म-यात्रा करने लगा। इतना ही नहीं वह विभिन्न स्थानों पर जाकर धार्मिक उपदेश भी देने लगा।

(5) बाह्याडम्बरों को समाप्त करना—अशोक ने व्यक्तिगत आचरण पर विशेष बल दिया और वह व्यक्तिगत धर्म-आडम्बरों का खण्डन करने लगा। उसने हिन्दुओं में प्रचलित विवाह, जन्म एवं मृत्यु आदि के अवसर पर धर्म के नाम पर किए जाने वाले विभिन्न पाखण्डों को समाप्त करवा दिया। इससे व्यक्ति बौद्ध धर्म के यथार्थवादी ज्ञान की ओर आकर्षित हुए और इनमें बौद्ध धर्म के प्रति सहज आकर्षण उत्पन्न होने लगा।

(6) शिलालेखों एवं मठों का निर्माण—सम्राट अशोक ने धर्म के प्रचार हेतु धर्म के विभिन्न उपदेशों एवं सिद्धातों को अभिलेखों एवं शिलालेखों पर सामान्य जन-भाषा में लिखवाकर उन्हें स्थान-स्थान पर लगवाया, जिससे कि सभी इन्हें पढ़ सकें और इनके अनुकूल आचरण कर सकें। साथ ही उसने अनेक मठों का निर्माण भी करवाया, ताकि अधिकाधिक लोग बौद्ध धर्म ग्रहण करने के उपरान्त भिक्षु बनकर वहाँ रहें और बौद्ध धर्म के प्रचार का कार्य करें।

(7) धार्मिक विषयों पर आधारित प्रदर्शनों का आयोजन—अशोक ने जनता को ऐसे उपायों के माध्यम से धर्म के प्रति आकर्षित किया जिनसे व्यक्ति स्वेच्छा से बौद्ध धर्म के अनुयायी बनें। उसने जनता के समक्ष साक्षात् स्वर्ग के दृश्यों को नाटकों द्वारा प्रदर्शित करने की व्यवस्था करवाई। अशोक से पूर्व मनोरंजन हेतु पशुओं की लड़ाइयाँ दिखाई जाती थीं, लेकिन अशोक ने इनके स्थान पर शिक्षाप्रद धार्मिक मनोरंजन के प्रदर्शनों का प्रबन्ध किया।

(8) दान-व्यवस्था—अशोक अपने राजकोष का धन दीन-दुखियों, असहाय लोगों की सेवा और धार्मिक संस्थाओं को अनुदान देने के रूप में व्यय किया करता था। अशोक ने बौद्ध संघों को भी विशेष दान दिए थे। इससे बौद्ध धर्म के प्रचार तथा प्रसार में पर्याप्त सहायता मिली थी।

(9) तृतीय बौद्ध संगीति का आयोजन—'सिंहली-अनुश्रुति' के अनुसार अशोक ने पाटलिपुत्र में अपने राज्याभिषेक के 18वें वर्ष में एक बौद्ध सम्मेलन आयोजित किया था। इसमें विभिन्न देशों से एक हजार के लगभग बौद्ध भिक्षु आए थे। इस सम्मेलन के आयोजन का उद्देश्य बौद्ध धर्म में उत्पन्न दोषों एवं मतभेदों को समाप्त करना था।

(10) विदेशों में प्रचार हेतु धर्माचार्यों को भेजना—अशोक ने बौद्ध धर्म का प्रचार न केवल भारत की सीमा के अन्दर ही, वरन् सुदूर देशों में भी किया। उसने इस धर्म के प्रचार हेतु विभिन्न देशों में अनेक बौद्ध भिक्षु एवं भिक्षुणियों को भेजा। यही नहीं, उसने अपने पुत्र महेन्द्र और पुत्री संघमित्रा को भी इसी उद्देश्य से नेपाल एवं श्रीलंका भेजा था।

(11) पशु-वध निषेध—अशोक ने अपने राज्य में पशु-वध निषिद्ध घोषित करवा दिया था और लोगों को जीव-जन्तुओं पर दया भाव रखने का उपदेश दिया। अशोक ने यज्ञों में भी पशु-बलि निषिद्ध घोषित कर दी थी। इस प्रकार, अहिंसा का स्वयं पालन कर उसने अपनी प्रजा को भी ऐसा करने के लिए बाध्य किया।

(12) पाली भाषा का प्रयोग—बुद्ध ने अपने उपदेशों को जनसाधारण द्वारा प्रयुक्त की जाने वाली पाली भाषा में दिया था, जिससे जनता इन्हें सुगमता से ग्रहण कर सकी। इसीलिए अशोक ने बौद्ध धर्म का प्रचार करने और अपने उद्देश्यों से जनसाधारण को अवगत कराने के लिए जनसाधारण की इसी पाली भाषा का ही प्रयोग किया।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवरण के आधार पर हम यह कह सकते हैं कि अशोक ने बौद्ध धर्म का प्रचार तन, मन एवं धन से किया। साथ-ही-साथ जनता का अपने उपदेशों द्वारा नैतिक उत्थान कर मानव मात्र का कल्याण किया। अतः इस दृष्टि से यह कहना अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है कि अशोक के जीवन का एकमात्र उद्देश्य बौद्ध धर्म का उत्थान रह गया था।

प्रश्न 6—मौर्य साम्राज्य के पतन के कारणों पर प्रकाश डालिए। *(V. Imp.)*

अथवा **"अशोक की शान्तिवादी नीति मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी थी।" इस मत की समीक्षा कीजिए।** *(1988)*

अथवा **"ब्राह्मणवाद का पुनरुत्थान ही मौर्य साम्राज्य के पतन का वास्तविक कारण था।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? तर्क प्रस्तुत कीजिए।** *(1993)*

अथवा मौर्य साम्राज्य के पतन के कारणों की विवेचना कीजिए। अशोक किस सीमा तक इसके लिए उत्तरदायी था ? *(1996)*

अथवा "अशोक के धम्म प्रचार की नीति मौर्य साम्राज्य के पतन का प्रमुख कारण थी।" आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए। *(1997)*

उत्तर—

मौर्य साम्राज्य के पतन के कारण

जिस मौर्य साम्राज्य की स्थापना महान् चन्द्रगुप्त ने अपनी बुद्धि और अदम्य साहस से की थी वह दुर्भाग्य से सम्राट अशोक की मृत्यु के पश्चात् पतन के गर्त में डूबता चला गया। कुछ विद्वानों का कथन है कि अशोक के समय में ही इसका पतन प्रारम्भ हो गया था। अनेक विद्वानों ने इस पतन का कारण अशोक की धार्मिक नीति को बताया है। उनका मानना है कि अशोक ने अधिकांश समय बौद्ध धर्म के प्रचार में लगा दिया तथा सैन्य शक्ति और प्रशासन की ओर अधिक ध्यान न दे सका। इसके परिणामस्वरूप मौर्य साम्राज्य का शीघ्र ही पतन होने लगा, किंतु यह आरोप पूर्णतः सत्य नहीं है। इसका कारण यह है कि वह किसी एक धर्म का नहीं वरन् सभी धर्मों का आदर करता था। इसलिए ऐसा नहीं कहा जा सकता कि अशोक की धार्मिक नीति से असन्तुष्ट होकर उसकी प्रजा उससे रुष्ट हो गई होगी। फिर भी, वह कुछ सीमा तक मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी अवश्य स्वीकार किया जा सकता है, क्योंकि उसकी अहिंसावादी नीति के फलस्वरूप सैन्य-बल बहुत कमजोर हो गया था। इसके अतिरिक्त भी कुछ अन्य उल्लेखनीय कारण थे जिनका विवरण निम्न प्रकार है—

(1) शासन की शिथिलता—यातायात के साधनों के अभाव के कारण सुदूर प्रदेशों की शासन-व्यवस्था के संचालन में असुविधा उत्पन्न होने लगी थी, जिससे इन प्रान्तों की शासन-व्यवस्था में 'अमात्य' और अन्य शासनाधिकारी वहाँ के सर्वेसर्वा हो गए थे और साम्राज्य की जनता उनके निरंकुश व्यवहार से व्याकुल होने लगी थी। अतः जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि केन्द्रीय व्यवस्था भी शिथिल पड़ रही है तो अशोक की मृत्यु होते ही साम्राज्य में विनाशकारी विभाजन प्रारम्भ हो गया था। यह विभाजन मौर्य साम्राज्य के पतन का एक प्रमुख कारण सिद्ध हुआ।

मौर्य साम्राज्य के पतन के कारण

(1) शासन की शिथिलता
(2) जनता का शोषण
(3) अशोक की अहिंसात्मक नीति
(4) दरबार के षड्यन्त्र
(5) अयोग्य उत्तराधिकारी
(6) शासन का विकेन्द्रीकरण
(7) गुप्तचर विभाग की निष्क्रियता
(8) अशोक की धार्मिक नीति और ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान।

(2) जनता का शोषण—केन्द्रीय शासन-व्यवस्था शिथिल पड़ने से सुदूर प्रदेशों के राज्य कर्मचारी प्रशासनिक कार्यों में एकपक्षीय निर्णय लेने लगे और जनता पर अनेक प्रकार के अत्याचार करने लगे। इसी प्रकार के अत्याचारों के फलस्वरूप बिन्दुसार के समय में तक्षशिला की जनता ने प्रान्तीय मन्त्रियों के अत्याचारपूर्ण शासन के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था।

तक्षशिला की जनता मौर्य राजा बिन्दुसार के विरुद्ध हो गई थी। विद्रोह के दमन के लिए राजा बिन्दुसार के द्वारा युवराज अशोक को भेजा गया। युवराज (कुमार) अशोक चतुरंगिणी सेना लेकर वहाँ पहुँचे। उनके आगमन का समाचार सुनकर तक्षशिला के नगर निवासियों ने निवेदन किया, **"हम न कुमार के विरुद्ध हैं और न राजा बिन्दुसार के ही, किन्तु दुष्ट मन्त्रिगण हमारा अपमान करते हैं।"** इस कथन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि प्रान्तीय प्रशासन और दूरस्थ प्रदेशों के प्रशासन में बहुत अधिक शिथिलता आ गई थी, जो मौर्य साम्राज्य के पतन का प्रमुख कारण बनी थी।

(3) अशोक की अहिंसात्मक नीति—अशोक बौद्ध धर्म का समर्थक था। वह बौद्ध धर्म के अहिंसा के सिद्धान्त में बहुत विश्वास करने लगा था। इसलिए उसने सैन्य शक्ति की उन्नति के प्रति समुचित ध्यान नहीं दिया। इससे सेना का स्तर निरन्तर गिरता चला गया और सैनिकों में वह उत्साह व आत्मबल नहीं रह गया जो चन्द्रगुप्त के समय में था। शक्तिशाली एवं विशाल सेना के बल पर ही विशाल साम्राज्य का अस्तित्व स्थायी रह सकता है। अतः इसका परिणाम यह हुआ कि मौर्य वंश के शत्रुओं ने संगठित होकर, मौर्य साम्राज्य की नींव को खोखला करना प्रारम्भ कर दिया था।

(4) दरबार के षड्यन्त्र—बिन्दुसार की मृत्यु के पश्चात् युवराज अशोक और युवराज सुशीम के मध्य भीषण युद्ध हुआ, जिससे सम्पूर्ण शासन व्यवस्था असंतुलित हो गई। अशोक की अनेक रानियाँ थीं जिनके अनेक पुत्र थे। अशोक की मृत्यु के पश्चात् उनके मध्य राज्य सत्ता पर अधिकार हेतु पारस्परिक संघर्ष प्रारम्भ हो गए। कर्मचारी भी विभिन्न दलों में बँट गए। अतः ऐसी स्थिति में मौर्य साम्राज्य का पतन होना अवश्यम्भावी हो गया था।

(5) अयोग्य उत्तराधिकारी—अशोक की मृत्यु के पश्चात् अनेक उत्तराधिकारी राज्य सिंहासन पर आसीन हुए, लेकिन उनमें से कोई भी इतना योग्य न हुआ, जो इतने विशाल साम्राज्य की व्यवस्था कर सकता। अतः योग्य शासक के अभाव में मौर्य साम्राज्य का अन्त होना स्वाभाविक ही था।

(6) शासन का विकेन्द्रीकरण—अशोक ने प्रान्तीय शासकों को व्यवस्था सम्बन्धी अनेक विशेष अधिकार प्रदान कर दिए थे, जिसके परिणामस्वरूप शासन-व्यवस्था के अन्तर्गत विकेन्द्रीकरण की भावना पनपनी शुरू हो गई। इसका परिणाम उस समय सामने आया जब अशोक की मृत्यु हो गई। अशोक की मृत्यु होते ही कश्मीर में 'जालोक' ने स्वयं को स्वतन्त्र शासक के रूप में घोषित कर दिया और कन्नौज तक के प्रदेशों को अपने अधिकार में कर लिया। अशोक के पौत्रों के काल में मौर्य साम्राज्य दो प्रमुख युवराजों दशरथ और सम्प्रति के मध्य विभक्त हो गया। इस प्रकार, शासन का विभाजन और विकेन्द्रीकरण मौर्य वंश के पतन का प्रमुख कारण बने थे।

(7) गुप्तचर विभाग की निष्क्रियता—चन्द्रगुप्त मौर्य गुप्तचर विभाग द्वारा ही राज्य की समस्त आन्तरिक सूचनाएँ प्राप्त करता था और उनके अनुसार शासन-व्यवस्था का संचालन करता था। उनके द्वारा ही वह प्रान्तीय शासकों पर नियन्त्रण बनाए रखता था। इससे राज्य के कर्मचारियों का जनता पर अंकुश रहता था और जनता को विद्रोह करने का अवसर ही प्राप्त नहीं होता था। किन्तु अशोक ने गुप्तचर विभाग पर समुचित ध्यान नहीं दिया, जिससे इस विभाग के लोग निष्क्रिय हो गए।

(8) अशोक की धार्मिक नीति और ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान—मौर्य साम्राज्य के पतन में वास्तव में अशोक की धार्मिक नीति भी सहायक रही थी। उसने बौद्ध धर्म को अधिक और ब्राह्मण धर्म को कम प्रोत्साहन दिया। यद्यपि उसने किसी धर्म का निरादर नहीं किया, तथापि इससे ब्राह्मण क्रोधित हो उठे और उन्होंने पुष्यमित्र शुंग के षड्यन्त्र में सक्रिय रूप से भाग लेकर मौर्य साम्राज्य के पतन में सहयोग दिया। इसके अतिरिक्त, ब्राह्मण धर्म के प्रचार एवं प्रसार की दिशा में भी विशेष प्रयास किए जाने लगे। पुष्यमित्र शुंग ने तो अपना राजधर्म भी ब्राह्मण धर्म ही बनाया। ब्राह्मण धर्म के इस विकास को ध्यान में रखते हुए प्रायः यह कहा जाता है कि, **"ब्राह्मण धर्म का पुनरुत्थान ही मौर्य साम्राज्य के पतन का वास्तविक कारण था।"**

निष्कर्ष—मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए केवल अशोक की धार्मिक नीति ही उत्तरदायी नहीं थी, उसके पतन के अन्य कई कारण भी थे। इस सन्दर्भ में डॉ० आर० के० मुकर्जी ने लिखा है, "कुछ विद्वानों के मतानुसार मौर्य साम्राज्य के पतन का कारण अशोक की शान्तिप्रिय नीति थी जिसके परिणामस्वरूप उसने भेरी-घोष को धर्म-घोष में परिवर्तित कर दिया, किन्तु अशोक के आदर्श महान् थे। वह युद्ध बन्द कर तथा शक्ति के स्थान पर न्याय व कानून के राज्य की स्थापना करके मानवता को हिंसा के अभिशाप से बचाना चाहता था। इसलिए इन महान् आदर्शों के लिए हम अशोक को दोषी नहीं ठहरा सकते हैं।"

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न.1—कलिंग युद्ध के विषय में आप क्या जानते हो ?

उत्तर—सम्राट अशोक के शासन काल के प्रारम्भ में ही कलिंग युद्ध हुआ था। अशोक के 13वें शिलालेख में कलिंग युद्ध का विस्तृत विवरण दिया हुआ है। इस भीषण युद्ध में अशोक को महान् विजय प्राप्त हुई, किन्तु इस युद्ध में इतना भीषण रक्तपात हुआ था कि अशोक को युद्ध से सदैव के लिए घृणा हो गई थी और उसने इस युद्ध के बाद कभी भी शस्त्र न उठाने की प्रतिज्ञा की थी।

प्रश्न 2—निम्नलिखित में से प्रत्येक पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

(1) इण्डिका, (2) मुद्राराक्षस, (3) अशोक के शिलालेख, (4) तृतीय बौद्ध सभा (तृतीय बौद्ध संगीति), (5) सारनाथ का स्तम्भ अभिलेख।

उत्तर—(1) इण्डिका—यह एक यूनानी ग्रन्थ है, जिसकी रचना चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में रहने वाले यूनानी राजदूत मेगस्थनीज ने की थी। इस ग्रन्थ से मौर्यकाल के इतिहास पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इसमें मौर्य-प्रशासन के नगर एवं सैन्य प्रशासन का विस्तृत उल्लेख है। यद्यपि यह ग्रन्थ हमें आजकल उपलब्ध नहीं है, तथापि इस ग्रन्थ के अनेक अंश हमें यूनानी तथा रोमन ग्रन्थों में उपलब्ध होते हैं।

(2) मुद्राराक्षस—यह एक नाटक ग्रन्थ है। इसकी रचना चौथी शताब्दी के विख्यात विद्वान् विशाखदत्त ने की थी। इस ग्रन्थ में चन्द्रगुप्त मौर्य व चाणक्य द्वारा नन्द वंश के विनाश व उनके द्वारा विशाल मौर्य साम्राज्य की स्थापना का सुन्दर चित्रण किया गया है। इसके आधार पर मौर्यकालीन संस्कृति का ज्ञान भी प्राप्त होता है।

(3) अशोक के शिलालेख—सम्राट अशोक ने शिलाओं और स्तम्भों पर अनेक लेख लिखवाए, जिनका उद्देश्य धर्म-प्रचार करना था। अशोक के अभिलेखों में 14 शिलालेख, 6 लघु शिलालेख, 7 स्तम्भ लेख, 7 लघु स्तम्भ अभिलेख और 2 गुहा अभिलेख आज भी देश के विभिन्न स्थानों पर उपलब्ध हैं। इन अभिलेखों से सम्राट अशोक की विजयों, शासन-व्यवस्था व धर्म सम्बन्धी नीतियों पर व्यापक प्रकाश पड़ता है।

(4) तृतीय बौद्ध सभा—मौर्यकाल में सम्राट अशोक ने पाटलिपुत्र में तृतीय बौद्ध सभा का आयोजन किया था। यह सभा तृतीय बौद्ध-संगीति भी कहलाती है। इस समय तक बौद्ध धर्म में अनेक दोष उत्पन्न हो चुके थे। इस सभा में बौद्ध धर्म के दोषों को समाप्त करने का प्रयत्न किया गया और भिक्षुओं के लिए अनेक उपयोगी नियमों का निर्धारण भी किया गया।

(5) सारनाथ का स्तम्भ अभिलेख—यह स्थापत्य कला का महान् नमूना है जो बनारस के निकट सारनाथ नामक स्थान पर सम्राट अशोक के द्वारा लगवाया गया था। यह भगवान बुद्ध के प्रथम उपदेश 'धर्म-चक्र प्रवर्तन' की स्मृति में लगवाया गया था। इसके ऊपरी भाग पर चारों दिशाओं में मुँह किए हुए चार सिंह प्रदर्शित किए गए हैं। ये सिंह कन्धों पर धर्म-चक्र धारण किए हुए हैं। अशोक के सारनाथ स्तम्भ पर प्रदर्शित इस धर्म-चक्र को ही भारत सरकार ने अपना राज-चिह्न घोषित किया है।

प्रश्न 3—अशोक को महान् सम्राट कहने के लिए कोई चार तर्क दीजिए। अशोक भारत का महान् शासक क्यों कहा जाता है?

उत्तर—अशोक को महान् सम्राट कहने के लिए निम्न चार तर्क दिए जा सकते हैं—

(1) अशोक जनता का महान् सेवक था। उसने अनेक लोकहित के कार्य किए थे।

(2) अशोक एक महान् विजेता था। उसने कलिंग व कश्मीर पर विजय प्राप्त की थी।

(3) अशोक महान् धर्म-सहिष्णु सम्राट था।

(4) अशोक महान् राष्ट्र-निर्माता था।

प्रश्न 4—चन्द्रगुप्त मौर्य एवं सेल्यूकस के मध्य हुई सन्धि की कोई चार प्रमुख बातें लिखिए।

उत्तर—305 ई० पू० में सेल्यूकस, चन्द्रगुप्त मौर्य से पराजित हो गया। अतः उसे चन्द्रगुप्त मौर्य से अपमानजनक सन्धि करनी पड़ी। इस सन्धि की चार प्रमुख शर्तें निम्नवत् थीं—

(1) सेल्यूकस को चन्द्रगुप्त को कन्धार, काबुल की घाटी तथा बलूचिस्तान के प्रान्त देने पड़े।

(2) सेल्यूकस ने अपनी पुत्री हेलन का विवाह चन्द्रगुप्त के साथ किया।

(3) चन्द्रगुप्त ने सेल्यूकस को भेंटस्वरूप 500 हाथी दिए।

(4) सेल्यूकस ने मेगस्थनीज नामक राजदूत चन्द्रगुप्त के दरबार में भेजा।

प्रश्न 5—अशोक द्वारा बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए किए गए चार प्रयास लिखिए।

उत्तर— अशोक बौद्ध धर्म का अनुयायी ही नहीं था, वरन् उसने इस धर्म के प्रसार हेतु अग्रलिखित प्रयास भी किए—

(1) अशोक ने स्वयं बौद्ध धर्म अपनाया।
(2) अशोक ने बौद्ध धर्म को राजधर्म घोषित किया।
(3) अशोक ने अपने देश और विदेशों में बौद्ध धर्म का प्रचार करवाया।
(4) अशोक ने बौद्ध धर्म के उपदेशों को शिलाओं तथा स्तम्भों पर उत्कीर्ण करवाया।

प्रश्न 6—एक साम्राज्य के रूप में मगध के उत्कर्ष के कारणों की विवेचना कीजिए। *(1993)*

उत्तर—मगध प्राचीन भारत का एक महत्त्वपूर्ण राज्य था। प्राचीनकाल के कई शासकों ने इस राज्य को अपनी सत्ता का केन्द्र बनाकर सम्पूर्ण देश में अपने साम्राज्य का विस्तार किया। मगध साम्राज्य के उत्कर्ष में अनेक कारण सहायक हुए थे। उनमें बिम्बिसार द्वारा दूसरे राज्यों से किए गए वैवाहिक सम्बन्ध, अजातशत्रु और उदयन के द्वारा सैन्य बल के आधार पर साम्राज्य का प्रसार करना, चन्द्रगुप्त मौर्य के द्वारा सम्पूर्ण भारत को राजनीतिक एकता के सूत्र में बाँधना तथा अशोक का धर्म प्रचार आदि उल्लेखनीय हैं। इन समस्त कारकों ने सामूहिक रूप से मगध के उत्कर्ष में अपना योगदान दिया।

प्रश्न 7—मौर्य शासन तन्त्र के चार पदाधिकारियों का उल्लेख कीजिए। *(1992)*

उत्तर—मौर्य शासन तन्त्र के चार पदाधिकारियों का विवरण निम्नवत् है—

(1) दण्डपाल (सेना का अधिकारी), (2) अन्तपाल (सीमाओं का रक्षक), (3) व्यावहारिक (न्यायाधीश), (4) कर्मान्तक (उद्योग विभाग का अध्यक्ष)।

प्रश्न 8—मौर्यकालीन इतिहास जानने के लिए प्रसिद्ध दो साहित्यिक स्रोतों का उल्लेख कीजिए। *(1997)*

उत्तर—मौर्यकालीन इतिहास की जानकारी प्राप्त करने हेतु निम्न दो साहित्यक स्रोतों का विशेष महत्त्व है—

(1) अर्थशास्त्र—मौर्यकाल में रचित कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र' राजनीति के अनेक महत्त्वपूर्ण सिद्धान्तों का संकलन है। कौटिल्य (चाणक्य) द्वारा रचित यह ग्रन्थ मौर्यकाल की सम्पूर्ण जानकारी प्रदान करने की दृष्टि से, एक अत्यन्त उपयोगी स्रोत के रूप में सहायक सिद्ध हुआ है। इस ग्रन्थ में राजा के कर्त्तव्यों, उसकी विदेश नीति, गुप्तचरों के संगठन तथा तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक दशा पर प्रकाश डाला गया है।

(2) इण्डिका—इस ग्रन्थ की रचना मेगस्थनीज ने की थी। वह एक यूनानी यात्री था, जो चन्द्रगुप्त मौर्य के शासनकाल में भारत आया था। चन्द्रगुप्त के शासनकाल में उसने जो कुछ भी देखा अथवा दूसरों से सुना, उसे अपनी पुस्तक 'इण्डिका' में लिपिबद्ध कर दिया। उसने 'इण्डिका' में तत्कालीन भारतीय जीवन के अनेक महत्त्वपूर्ण पहलुओं पर अपने विचार व्यक्त किए। इस पुस्तक में चन्द्रगुप्त मौर्य के राज्य प्रवन्ध, सैनिक प्रशासन, स्थानीय शासन आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है।

प्रश्न 9—मौर्य साम्राज्य के पतन के दो कारणों का उल्लेख कीजिए। *(1997)*

उत्तर—मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी कारणों में से दो कारणों का उल्लेख निम्न बिन्दुओं के अन्तर्गत किया गया है—

(1) केन्द्रीय शक्ति का दुर्बल हो जाना—अशोक की मृत्यु के पश्चात् शासन करने वाले मौर्य सम्राट अयोग्य एवं निर्बल सिद्ध हुए। इसके परिणामस्वरूप मन्त्री और राज्य के उत्तराधिकारी अपनी मनमानी करने लगे तथा एक-दूसरे के शत्रु बन गए। मौर्य सचिव और सेनापति भी एक-दूसरे का विरोध करते हुए मौर्य साम्राज्य के विनाश में लगे रहे। अन्तिम मौर्य सम्राट वृहद्रथ भी उनमें एकता स्थापित करने में असफल रहा और धीरे-धीरे मौर्य साम्राज्य का पूर्ण रूप से पतन हो गया।

(2) अशोक की अहिंसात्मक नीति—अशोक की अहिंसात्मक नीति ने भी मौर्य साम्राज्य को पतन के गर्त में ढकेल दिया। उसने कलिंग युद्ध के बाद युद्ध-विजय के स्थान पर धर्म-विजय की घोषणा की। उसके द्वारा की गई भविष्य में युद्ध न करने की प्रतिज्ञा ने मौर्य साम्राज्य के सैन्य संगठन को दुर्बल बना दिया। परिणामस्वरूप 184 ई० पू० में इस साम्राज्य का अस्तित्व ही समाप्त हो गया।

प्रश्न 10—अशोक के अभिलेखों का संक्षेप में विवरण दीजिए। *(1999)*

उत्तर—लघु उत्तरीय प्रश्न 2 की टिप्पणियों में 'अशोक के शिलालेख' नामक टिप्पणी का अवलोकन कीजिए।

ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों एवं व्यक्तियों पर आधारित प्रश्न

प्रश्न 1—निम्नांकित तिथियों के ऐतिहासिक महत्त्व पर संक्षेप में प्रकाश डालिए—

उत्तर—(1) 345 ईसा पूर्व—इस तिथि को मौर्य वंश के संस्थापक चन्द्रगुप्त का जन्म हुआ था। भारतीय इतिहास में चन्द्रगुप्त के वंश के सम्बन्ध में इतिहासकारों में भारी मतभेद हैं।

(2) 322 ईसा पूर्व *(1990, 91, 92, 97, 99)*—इस तिथि को चन्द्रगुप्त मौर्य राजगद्दी पर आसीन हुआ था। चन्द्रगुप्त मौर्य ने 322 ईसा पूर्व से 298 ईसा पूर्व तक शासन किया था।

(3) 321 ईसा पूर्व *(1994)*—कुछ विद्वानों के अनुसार, इसी तिथि को चन्द्रगुप्त मौर्य मगध के सिंहासन पर बैठा।

(4) 305 ईसा पूर्व *(1996, 99)*—इस तिथि को यूनानी शासक सेल्यूकस और चन्द्रगुप्त मौर्य के मध्य युद्ध हुआ था, जिसमें सेल्यूकस ने पराजित होकर चन्द्रगुप्त मौर्य के साथ सन्धि कर ली थी।

(5) 298 ईसा पूर्व *(1990, 94, 96)*—इस तिथि को चन्द्रगुप्त मौर्य की मृत्यु हुई थी और बिन्दुसार राजगद्दी पर बैठा था।

(6) 273 ईसा पूर्व *(1990, 91, 94, 95, 96, 97)*—इस तिथि को मौर्य वंश के द्वितीय सम्राट बिन्दुसार की मृत्यु हुई थी। बिन्दुसार ने 298 ईसा पूर्व से 273 ईसा पूर्व तक शासन किया था।

(7) 269 ईसा पूर्व *(1990, 94, 96, 99)*— इस तिथि को महान् सम्राट अशोक मौर्य राजवंश के सिंहासन पर आसीन हुआ था। अशोक के राज्यारोहण की यह तिथि इतिहासकारों के मध्य एक विवादग्रस्त प्रश्न है।

(8) 263 ईसा पूर्व *(1995)*—कुछ विद्वान इतिहासकारों के अनुसार, सम्राट अशोक ने इसी तिथि को कलिंग राज्य पर आक्रमण किया।

(9) 261 ईसा पूर्व *(1990, 91, 93, 95, 96, 99)*—इस तिथि को सम्राट अशोक ने कलिंग राज्य पर आक्रमण किया था।

(10) 232 ईसा पूर्व *(1990, 96, 97)*—इस तिथि को सम्राट अशोक की मृत्यु हुई थी। सम्राट अशोक ने 269 ईसा पूर्व से 232 ईसा पूर्व तक शासन किया था।

(11) 206 ईसा पूर्व *(1993)*—इस तिथि को सम्राट अशोक के उत्तराधिकारी शालिशुक का निधन हुआ और देवशर्मा, मगध के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ।

(12) 187 ईसा पूर्व *(1994, 97)*—कुछ विद्वानों के अनुसार इस तिथि को मौर्य वंश का अन्तिम सम्राट वृहद्रथ मगध के सिंहासन पर बैठा।

प्रश्न 2—निम्नांकित ऐतिहासिक स्थलों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) पाटलिपुत्र *(1990, 91, 95, 96, 99)*—यह प्राचीन ऐतिहासिक नगर आधुनिक बिहार राज्य की राजधानी है। चन्द्रगुप्त मौर्य ने पाटलिपुत्र को ही अपने साम्राज्य की राजधानी बनाया था। मेगस्थनीज के विवरण के अनुसार उस समय पाटलिपुत्र की शासन-व्यवस्था उच्चकोटि की थी। सम्राट अशोक के समय में पाटलिपुत्र के गौरव में अभूतपूर्व वृद्धि हुई थी। मेगस्थनीज के अनुसार, पाटलिपुत्र भारत का सबसे बड़ा नगर था। यह गंगा तथा सोन नदी के संगम पर बसा हुआ था जो 15 किमी लम्बा तथा $2\frac{3}{4}$ किमी चौड़ा था। इसके चारों ओर 185 मीटर चौड़ी तथा 30 हाथ गहरी खाई थी। नगर चारों ओर से एक ऊँची चहार दीवारी से घिरा हुआ था, जिसमें 64 द्वार तथा 570 बुर्ज थे। यहाँ के राजप्रासादों को देखकर चीनी यात्री फाह्यान अत्यधिक प्रभावित हुआ था।

(2) तोषाली—तोषाली प्राचीनकाल में कलिंग राज्य की राजधानी और एक भव्य नगरी रहा है। मौर्य सम्राट अशोक ने कलिंग से भीषण युद्ध करके इस पर अपना प्रभुत्व जमा लिया था।

(3) **गिरनार**—यह स्थान जूनागढ़ (गुजरात) के निकट स्थित है। गिरनार में सम्राट अशोक द्वारा निर्मित एक शिलालेख मिला है।

(4) **कालसी**—यह स्थान देहरादून (उत्तर प्रदेश) जिले में है। कालसी में भी सम्राट अशोक ने एक शिलालेख उत्कीर्ण कराया था।

(5) **वैराट**—यह स्थान जयपुर (राजस्थान) में है। इस स्थल पर अशोक द्वारा निर्मित एक लघु शिलालेख उपलब्ध होता है।

(6) **कौशाम्बी** *(1991, 93, 96, 99)*—यह स्थान इलाहाबाद के निकट स्थित है। कौशाम्बी में अशोक द्वारा उत्कीर्ण कराया गया लघु शिलालेख दर्शनीय है।

(7) **बाराबर**—यह स्थान गया (बिहार) के निकट एक पहाड़ी पर स्थित है। बाराबर में अशोक द्वारा उत्कीर्ण कराए गए तीन गुहालेख उपलब्ध होते हैं।

(8) **साँची** *(1990, 94, 96, 97)*—यह स्थान मध्य प्रदेश में भोपाल के पास स्थित है। साँची में बना हुआ बौद्ध स्तूप अपनी कलात्मक उत्कृष्टता के लिए समस्त विश्व में विख्यात है।

(9) **श्रीनगर**—इस नगर को मौर्य सम्राट अशोक ने बसाया था। श्रीनगर अपने प्राकृतिक सौन्दर्य के लिए विश्वभर में प्रसिद्ध है। यहाँ के बाग भी दर्शनीय हैं।

प्रश्न 3—निम्नलिखित ऐतिहासिक व्यक्तियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) **मेगस्थनीज** *(1990, 92, 95, 96, 99)*—मेगस्थनीज एक यूनानी राजदूत था, जिसे यूनानी शासक सेल्यूकस ने चन्द्रगुप्त मौर्य के दरबार में भेजा था। वह लगभग 6 वर्षों तक पाटलिपुत्र में रहा और उसने भारतीय जन-जीवन को अपनी आँखों से प्रत्यक्षतः देखा था। मेगस्थनीज ने अपनी पुस्तक **'इण्डिका'** में चन्द्रगुप्त मौर्य का शासन-प्रबन्ध और तत्कालीन भारत की सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक दशा का विस्तृत विवरण दिया है।

(2) **कौटिल्य (चाणक्य)** *(1994, 95, 96)*—आचार्य कौटिल्य चन्द्रगुप्त मौर्य का गुरु और प्रधानमन्त्री, नन्द वंश का कट्टर शत्रु, दक्ष कूटनीतिज्ञ तथा राजनीति का प्रकाण्ड विद्वान् था। कौटिल्य को चाणक्य और विष्णुगुप्त नामों से भी सम्बोधित किया जाता है। कौटिल्य ने अपनी शिखा खोलकर नन्द वंश का विनाश करने की प्रतिज्ञा की थी। उसने नन्द वंश के अन्तिम राजा महापद्मनन्द की हत्या कराकर चन्द्रगुप्त मौर्य को एक विशाल साम्राज्य का स्वामी बनाया था। कौटिल्य ने **'अर्थशास्त्र'** नामक ग्रन्थ लिखा था, जो आज भी राजनीतिशास्त्र और कूटनीतिशास्त्र का एक प्रामाणिक ग्रन्थ माना जाता है।

(3) **सेल्यूकस**—सेल्यूकस सिकन्दर महान् का प्रधान सेनापति था। सिकन्दर की मृत्यु के पश्चात् 323 ईसा पूर्व में सेल्यूकस उसके द्वारा विजित भारतीय प्रदेश और मध्य एशिया के साम्राज्य का शासक बन गया। 305 ईसा पूर्व के लगभग चन्द्रगुप्त मौर्य ने सेल्यूकस को पराजित करके उसे सन्धि करने के लिए विवश कर दिया। इस सन्धि के अनुसार, सेल्यूकस ने अपनी पुत्री हेलन का विवाह चन्द्रगुप्त मौर्य के साथ कर दिया, आधुनिक काबुल, कन्धार तथा बलूचिस्तान के प्रदेश उसे दे दिए और मेगस्थनीज को राजदूत बनाकर उसके दरबार में भेजा। इसके बदले में चन्द्रगुप्त मौर्य ने सेल्यूकस को 500 हाथी उपहारस्वरूप प्रदान किए।

(4) **महापद्मनन्द**—यह मगध का अन्तिम नन्दवंशीय सम्राट् था। यह बड़ा अहंकारी, क्रूर और अत्याचारी शासक था। कहा जाता है कि एक बार इसने कौटिल्य का अपमान कर दिया था, जिससे क्षुब्ध होकर कौटिल्य ने भरी सभा में अपनी शिखा खोलकर नन्दवंश का समूल नाश करने की प्रतिज्ञा की थी। अन्त में महापद्मनन्द चन्द्रगुप्त मौर्य के हाथों मारा गया और कौटिल्य ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी की।

(5) **बिन्दुसार** *(1999)*—बिन्दुसार मौर्यवंश का उत्तराधिकारी और चन्द्रगुप्त मौर्य का पुत्र था। यह 298 ईसा पूर्व के लगभग गद्दी पर बैठा और इसने 273 ईसा पूर्व अर्थात् 25 वर्षों तक शासन किया। इसके दो अन्य नाम **'अमिलघात'** और **'सिंहसेन'** भी इतिहास में उपलब्ध हैं। वह अपने पिता के समान वीर तथा योग्य नहीं था। सुरा और सुन्दरी तथा राग-रंग से उसे विशेष प्रेम था। प्रशासनिक अयोग्यता के कारण उसके शासनकाल में अनेक विद्रोह हुए, जिनमें तक्षशिला का विद्रोह सबसे भयंकर था। इस विद्रोह का दमन उसके प्रतिभाशाली और वीर पुत्र अशोक के द्वारा किया गया था।

(6) सुसीम—सुसीम विन्दुसार के ज्येष्ठ पुत्र और अशोक महान् का सौतेला भाई था। इतिहासकारों का मत है कि विन्दुसार की मृत्यु के पश्चात् सुसीम ने राजगद्दी प्राप्त करने के लिए अशोक से युद्ध किया, परन्तु अपनी अयोग्यता के कारण वह पराजित होकर मारा गया। भारतीय इतिहास में सुसीम को एक अभागा राजकुमार स्वीकार किया जाता है।

(7) पाणिनि—पाणिनि मौर्यकाल की एक महान् विभूति थे। वे एक महान् भाषाविद् और व्याकरणाचार्य थे। संस्कृत व्याकरण में उनका ज्ञान अभूतपूर्व था। उन्होंने 'अष्टाध्यायी' नामक ग्रन्थ की रचना की थी, जिसे आज भी संस्कृत व्याकरण का प्रामाणिक एवं उच्चकोटि का ग्रन्थ स्वीकार किया जाता है।

(8) जीवक—महान् चिकित्साशास्त्री जीवक ने तक्षशिला में शिक्षा प्राप्त की थी। जीवक का ज्ञान अपरिमित था। उन्होंने दुःसाध्य रोगों की चिकित्सा हेतु अनेक औषधियों का निर्माण किया था। कहा जाता है कि जीवक ने राजा बिम्बसार, महात्मा बुद्ध और राजा प्रद्योत के अनेक रोगों का निवारण करके अत्यधिक यश और सम्मान प्राप्त किया था।

(9) विशाखदत्त—विशाखदत्त एक महान् साहित्यकार और नाटककार थे। आपकी विख्यात रचना 'मुद्राराक्षस' है, जिसमें चन्द्रगुप्त मौर्य और कौटिल्य द्वारा नन्दवंश के विनाश का प्रभावशाली चित्रण किया गया है।

9 शुंग और कुषाण वंश

[शुंग वंश का साम्राज्य, पुष्यमित्र शुंग, शुंगकालीन सभ्यता एवं संस्कृति, कनिष्क, कनिष्क की उपलब्धियाँ]

"पुष्यमित्र भारत के इतिहास में और विशेष रूप से मध्य भारत के राज्य में एक महत्त्वशाली युग का प्रवर्तक था।"
—डॉ० राय चौधरी

"कनिष्क का भारत के कुषाण सम्राटों में निःसंदेह सबसे आकर्षक व्यक्तित्व है। वह एक महान् विजेता और बौद्ध धर्म का आश्रयदाता था। उसमें चन्द्रगुप्त की सामरिक योग्यता और अशोक के धार्मिक उत्साह का समन्वय था।"
—डॉ० आर० पी० त्रिपाठी

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—शुंग वंश के विषय में आप क्या जानते हैं? पुष्यमित्र शुंग के चरित्र तथा कार्यों पर प्रकाश डालिए।

अथवा **"क्या पुष्यमित्र शुंग बौद्ध धर्म का कट्टर शत्रु था?" विवेचना कीजिए।**

उत्तर—

शुंग वंश का साम्राज्य

शुंग वंश का परिचय—मौर्य वंश के अन्तिम सम्राट बृहद्रथ की हत्या करके उसके सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने 184 ईसा पूर्व में एक नवीन राजवंश की स्थापना की थी। भारतीय इतिहास में यह वंश शुंग वंश कहलाता है।

शुंग कौन थे? यह प्रश्न इतिहास में अत्यधिक विवादग्रस्त है। हरप्रसाद शास्त्री शुंगों को पारसी बताते हैं। 'दिव्यावदान' ग्रन्थ में शुंगों को 'मौर्य' कहा गया है। 'मालविकाग्निमित्रम्' ग्रन्थ में शुंगों को ब्राह्मण बताया गया है। अधिकांश विद्वान् शुंगों को ब्राह्मण ही स्वीकार करते हैं। इन विद्वानों में तारानाथ और कीथ मुख्य हैं।

पुष्यमित्र शुंग (184-148 ईसा पूर्व)

डॉ० जायसवाल के अनुसार, पुष्यमित्र शुंग मौर्य राजकुल के पुरोहित का पुत्र था। वह भारत के विदिशा नामक स्थान का रहने वाला था। पुष्यमित्र युवावस्था में मौर्य सेना में भर्ती हो गया था। वह धर्मपरायण ब्राह्मण था और एक अनुभवी सैनिक, कुशल सेनापति व प्रवीण शासक था। उसके शासनकाल की प्रमुख घटनाएँ निम्न प्रकार हैं—

(1) विदर्भ पर आक्रमण—अपनी स्थिति को सुदृढ़ देखकर पुष्यमित्र ने अपने राज्य-विस्तार की योजना बनाई। उसने सर्वप्रथम विदर्भ पर आक्रमण किया। इससे पूर्व विदर्भ राज्य मौर्य साम्राज्य के अधिकार में ही था, किन्तु मौर्य साम्राज्य का पतन प्रारम्भ होने पर यह स्वतन्त्र हो गया था और उस समय इसका शासक यज्ञसेन था। राजा यज्ञसेन के साथ हुए युद्ध में युद्ध का संचालन पुष्यमित्र के पुत्र अग्निमित्र ने किया। उसने राजनीतिक षड्यन्त्रों द्वारा यज्ञसेन के चचेरे भाई को अपने साथ मिला लिया था। परिणामस्वरूप युद्ध में यज्ञसेन की पराजय हुई। पुष्यमित्र ने विदर्भ को दो भागों में विभाजित कर उसका एक भाग माधवसेन (यज्ञसेन का चचेरा भाई) और दूसरा भाग यज्ञसेन को ही दिया, किन्तु दोनों को पुष्यमित्र की अधीनता में रहकर शासन करना पड़ा।

(2) यवनों का आक्रमण—पुष्यमित्र के काल की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना दो यवन आक्रमणकारियों द्वारा किए गए आक्रमण हैं। ये यवन आक्रमणकारी साकेत और मथुरा पर विजय प्राप्त करते हुए पाटलिपुत्र तक आ गए थे। इस घटना के सम्बन्ध में हमें पतंजलि के 'महाभाष्य' और 'गार्गी संहिता' से जानकारी प्राप्त होती है। इन यवन आक्रमणकारियों ने मौर्य काल में भी एक बार आक्रमण किया था, परन्तु तब इनके आक्रमण प्रभावहीन रहे थे। इसीलिए ये भारत पर आँख लगाए हुए थे और उपयुक्त अवसर पाते ही इन्होंने पाटलिपुत्र पर आक्रमण कर दिया, लेकिन इस आक्रमण में भी उन्हें पुनः मुँह की खानी पड़ी। कालिदास के नाटक 'मालविकाग्निमित्रम्' से यवनों के द्वितीय युद्ध के विषय में जानकारी प्राप्त होती है। इस युद्ध में भी पुष्यमित्र के पुत्र वसुमित्र ने सिन्धु नदी के तट पर इन्हें पूरी तरह से परास्त कर दूर तक खदेड़ दिया था।

पुष्यमित्र शुंग के शासनकाल की घटनाएँ

1. (1) विदर्भ पर आक्रमण
2. (2) यवनों का आक्रमण
3. (3) अश्वमेध यज्ञ
4. (4) बौद्धों के साथ सम्बन्ध।

(3) अश्वमेध यज्ञ—अयोध्या के अभिलेख के आधार पर यह ज्ञात होता है कि पुष्यमित्र ने अपनी सफलताओं की खुशी में दो अश्वमेध यज्ञ कराए थे। इन यज्ञों के कराने का उद्देश्य यह था कि शुंगों ने मौर्य साम्राज्य की समाप्ति कर अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित की और यवन आक्रमणकारियों को परास्त किया। इस यज्ञ के माध्यम से इस बात का भी संकेत दिया गया था कि अब बौद्ध धर्म की अपेक्षा ब्राह्मण धर्म और संस्कृति का उदय हो रहा है।

(4) बौद्धों के साथ सम्बन्ध—बौद्ध अनुश्रुतियों में पुष्यमित्र शुंग को असहिष्णु ब्राह्मण बताया गया है। दिव्यावदान तथा तिब्बती इतिहासकार तारानाथ के अनुसार, "पुष्यमित्र बौद्ध धर्म का कट्टर शत्रु था। उसने बौद्ध-भिक्षुओं पर भीषण अत्याचार किए। उसने स्तूपों और विहारों का विध्वंस करवाया और शाकल (स्यालकोट) जाते समय उसने घोषणा की कि जो मुझे एक बौद्ध-भिक्षु का सिर लाकर देगा उसे मैं सौ मोहरें दूँगा।" उसने बौद्ध धर्म को समूल नष्ट करना चाहा, किन्तु यह कहना पूर्णतया सत्य नहीं है, क्योंकि शुंग काल में ही बौद्ध धर्म से सम्बन्धित 'साँची' के स्तूप के तोरण का निर्माण हुआ था, 'भरहुत स्तूप' भी इसी समय बने थे। अतः कुछ विद्वानों का मत है कि उसने यह कार्य बौद्ध धर्म को नष्ट करने के लिए नहीं किया था, वरन् बौद्ध मठ एवं विहार राजनीति के केन्द्र न बन जाएँ, इस भय से उसने बौद्ध मठों और स्तूपों आदि को नष्ट करवाया था। ई० बी० हेवल ने इस सन्दर्भ में लिखा है, "पुष्यमित्र शुंग ने बौद्धों का दमन इसलिए किया कि संघ राजनीतिक शक्ति के केन्द्र बन गए थे, इसलिए नहीं कि वे ऐसे धर्म को मानते थे जिसमें वह विश्वास नहीं करता था।" कुछ अन्य विद्वान् यह भी स्वीकार करते हैं कि कुछ बौद्ध संघ अनैतिकता

और व्यभिचार के केन्द्र बन गए थे। उनकी स्थिति को सुधारने के लिए उसने ऐसा किया था। वास्तव में, पुष्यमित्र शुंग को बौद्ध-धर्म का कट्टर शत्रु कहना उसके प्रति अन्याय है। वस्तुतः पुष्यमित्र शुंग एक वीर साम्राज्यवादी व योग्य शासक ही नहीं, वरन् महान् साहित्य एवं कला प्रेमी भी था।

प्रश्न 2—शुंग काल में कला, साहित्य एवं धर्म के क्षेत्र में हुए विकास पर प्रकाश डालिए। *(Imp.)*

अथवा शुंग काल के सांस्कृतिक विकास पर एक निबन्ध लिखिए।

उत्तर—

शुंगकालीन सभ्यता एवं संस्कृति

शुंग वंश के काल से भारतीय इतिहास में एक नवीन युग का सूत्रपात होता है। शुंगों के शासन काल में ब्राह्मण धर्म और साहित्य ने बहुत अधिक उन्नति की। डॉ० वी० ए० स्मिथ के अनुसार, "पुष्यमित्र के अश्वमेध यज्ञ ने ब्राह्मण-धर्म की उस प्रतिक्रिया का आरम्भ किया, जिसका पूर्ण विकास पाँच शताब्दियों के बाद समुद्रगुप्त और उसके उत्तराधिकारियों के समय में हुआ था।" वास्तव में, शुंग काल में हिन्दू और ब्राह्मण साहित्य के क्षेत्र में विशेष प्रगति हुई थी। कला के क्षेत्र में भी अनेक अद्वितीय नमूनों का निर्माण इस काल में हुआ था। यह काल सांस्कृतिक विकास के दृष्टिकोण से प्राचीन इतिहास में एक महान् युग के नाम से विख्यात हुआ।

संक्षेप में, शुंगकालीन सभ्यता व संस्कृति का विवरण निम्नांकित शीर्षकों के अन्तर्गत दिया जा सकता है—

(1) ब्राह्मण धर्म का उत्थान—शुंगों के शासन के समय वैदिक और ब्राह्मण धर्म की पर्याप्त उन्नति हुई। ब्राह्मण धर्म की विधियाँ एवं रीतियाँ पुनः प्रचलित हो चलीं। पुष्यमित्र ने दो बार अश्वमेध यज्ञ करवाया। इसी काल में स्मृतियों की रचना हुई। इन पुस्तकों में ब्राह्मण आदर्शों को समाज में पुनर्प्रचलित करने का विवरण मिलता है। इस काल में ब्राह्मण धर्म, भागवत धर्म के नाम से प्रसिद्ध हुआ था। ब्राह्मण धर्म की प्रधानता होने पर भी शुंग काल में धार्मिक उदारता का अभाव न था।

(2) साहित्य—इस काल में साहित्य और कला के भण्डार में भी पर्याप्त उन्नति हुई। इस काल में भी महापण्डित पतंजलि द्वारा 'पाणिनि' के व्याकरण ग्रन्थ 'अष्टाध्यायी' पर एक महाभाष्य रचा गया। इसके अतिरिक्त 'मनुस्मृति' की टीका भी इसी काल में रची गई।

(3) कला की उन्नति—शुंग काल में कला के क्षेत्र में भी अविस्मरणीय प्रगति हुई। 'भरहुत' तथा 'साँची' के स्तूपों का निर्माण शुंग काल में ही हुआ। इसी काल में भारतीय कला में नवीन व्यावहारिक वास्तुकला का श्रीगणेश हुआ। इस काल की ऐसी अनेक कलात्मक वस्तुएँ मिलती हैं जिनसे शुंग काल की उन्नत अवस्था का आभास मिलता है। वेसनगर का 'गरुड़-स्तम्भ' शुंगकालीन कला का अद्‌भुत नमूना है।

शुंगकालीन सभ्यता एवं संस्कृति
(1) ब्राह्मण धर्म का उत्थान
(2) साहित्य
(3) कला की उन्नति।

डॉ० राय चौधरी के शब्दों में, "शुंग काल का भारतीय इतिहास में राजनीतिक, सांस्कृतिक एवं कला की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्व है। यह वैदिक धर्म के अभ्युत्थान तथा ब्राह्मण धर्म एवं संस्कृति के पुनरुद्धार का युग कहा जा सकता है।"

प्रश्न 3—कनिष्क के प्रारम्भिक जीवन का उल्लेख करते हुए इसकी उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।

अथवा **"कनिष्क की ख्याति का कारण उसकी विजय नहीं थी, वरन् बौद्ध धर्म के प्रति विशेष अनुराग और कर्त्तव्यों की पूर्ति थी।" विवेचना कीजिए।**

अथवा **"कनिष्क की प्रसिद्धि उतनी उसकी विजयों के कारण नहीं है, जितनी कि उसकी शाक्य मुनि के धर्म के आश्रयदाता के रूप में है।" डॉ० राय चौधरी के इस कथन की समीक्षा कीजिए।**

अथवा **"कनिष्क में चन्द्रगुप्त की सामरिक योग्यता और अशोक के धार्मिक उत्साह का सम्मिश्रण था।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।**

अथवा **"कनिष्क की प्रसिद्धि उसकी विजयों पर आधारित न होकर उसके द्वारा कला और धर्म को संरक्षण देने पर निर्भर है।" विवेचना कीजिए।**

अथवा "कनिष्क को द्वितीय अशोक कहा जाता है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए ।

अथवा कनिष्क की धार्मिक नीति का वर्णन कीजिए। बौद्ध धर्म के प्रति उसकी सेवाओं का भी वर्णन कीजिए। *(1990)*

अथवा "बौद्ध धर्म के प्रति की गई सेवाओं के दृष्टिकोण से कनिष्क को द्वितीय अशोक माना जाता है।" व्याख्या कीजिए। *(1990, 92)*

अथवा "कनिष्क की प्रतिष्ठा उतनी उसकी विजयों पर आधारित नहीं है, जितनी कि उसके कला तथा धर्म के योगदानों पर।" इस कथन की विवेचना कीजिए। *(1995)*

अथवा कनिष्क के युग की सांस्कृतिक उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए। *(1995)*

अथवा "वास्तुकला तथा उसकी सहायक स्थापत्य कला कनिष्क के उदार संरक्षण में पली।" इस कथन की विवेचना कीजिए। *(1995)*

अथवा कनिष्क की प्रमुख उपलब्धियों एवं बौद्ध धर्म के प्रति उसकी सेवाओं का वर्णन कीजिए। *(1997)*

अथवा बौद्ध धर्म के प्रति कनिष्क के योगदानों का मूल्यांकन कीजिए। *(1997, 99)*

उत्तर—

कनिष्क (78 ई० से 106 ई०)

कनिष्क कुषाण वंश का सर्वाधिक प्रतापी एवं शक्तिशाली शासक था। इसलिए इसका विवरण भारतीय इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठों पर अंकित है। कनिष्क के वंश एवं तिथि के विषय में इतिहासकारों में अत्यधिक मतभेद है। सर जान मार्शल का मत है कि, "कनिष्क खोतान में रहने वाली कुषाण जाति की शाखा से सम्बन्धित था।"

कनिष्क की तिथि—डॉ० भण्डारकर, फर्ग्युसन तथा डॉ० राखालदास बनर्जी ने कनिष्क के राज्यारोहण की तिथि 78 ई० स्वीकार की है। इसी समय में भारत में शक सम्वत् प्रारम्भ हुआ। कुछ इतिहासकारों ने इस मत का खण्डन किया है। दुब्रील के मतानुसार, यदि कुजुल कडफाइसिस की मृत्यु 75 ई० में हुई तो उसके बाद होने वाले राजा विम कडफाइसिस ने कुछ वर्षों तक शासन किया होगा। अतः कनिष्क की तिथि 78 ई० नहीं हो सकती है। परन्तु यह भी असम्भव नहीं कि विम कडफाइसिस ने केवल तीन वर्ष ही शासन किया हो। वह वृद्धावस्था में सम्राट बना होगा, क्योंकि उसके पिता कुजुल कडफाइसिस की मृत्यु 80 वर्ष की अवस्था में हुई थी, अतः यह सम्भव है कि उसने केवल तीन वर्ष ही शासन किया हो। तिब्बत तथा चीन के अनेक इतिहासकार भी कनिष्क का द्वितीय शताब्दी में सम्राट् होना स्वीकार करते हैं। यह भी सम्भव है कि वह कनिष्क प्रथम न होकर कनिष्क द्वितीय हो। अतः कनिष्क के राज्यारोहण की तिथि 78 ई० स्वीकार की गई है। रैप्सन, डॉ० राय चौधरी और एन० एन० घोष ने भी इसी तिथि की पुष्टि की है। कनिष्क ने लगभग 28 वर्ष तक राज्य किया था अतः उसके शासन की अन्तिम तिथि 106 ई० स्वीकार की जाती है।

कनिष्क की उपलब्धियाँ

साम्राज्य विस्तार, धर्म, कला आदि के क्षेत्र में कनिष्क की उपलब्धियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(1) कनिष्क की विजय—कनिष्क एक पराक्रमी और महत्त्वाकांक्षी शासक था। उसने अपने शौर्य एवं पराक्रम के द्वारा अनेक अभूतपूर्व विजय प्राप्त कीं। सर्वप्रथम उसने कश्मीर को जीतकर अपने राज्य में सम्मिलित किया, फिर पूर्व में पाटलिपुत्र और साकेत को जीता। कुछ इतिहासकारों का यह भी मत है कि मगध को जीतकर वहीं से वह एक **'अश्वघोष'** नामक बौद्ध भिक्षु को लाया था। उसने विदेशियों पर भी आक्रमण किया। **पार्थिया** के राजा को भी उसने पराजित किया और चीन पर भी आक्रमण किया, परन्तु वह पराजित हुआ। उसने चीन पर पुनः आक्रमण किया और अपने इस आक्रमण में वह विजयी हो गया। **'खोतान'** और **'यारकन्द'** क्षेत्रों पर भी कनिष्क ने अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था। उसने अपने साम्राज्य को पंजाब, बिहार तक विस्तृत कर लिया था। इस प्रकार कनिष्क ऐसा प्रथम विदेशी शासक था, जिसने भारत के इतने राज्यों को अपने अधिकार क्षेत्र में लिया और उन पर शासन किया।

(2) साम्राज्य-विस्तार—कनिष्क ने दिग्विजय के द्वारा विशाल साम्राज्य की स्थापना की। उसके साम्राज्य की सीमा भारत के अन्दर तथा बाहर दोनों ओर विस्तृत थी। उसके समय के अभिलेखों तथा सिक्कों के आधार पर यह सिद्ध होता है कि भारत के बाहर अफगानिस्तान, बैक्ट्रिया, काशगर, यारकन्द तथा खोतान आदि के क्षेत्र भी उसके साम्राज्य के अंग थे। भारत में मथुरा, श्रावस्ती, कौशाम्बी, सारनाथ, उड़ीसा, साँची एवं विलासपुर, सुई, बिहार तथा पेशावर आदि में उसके अभिलेख प्राप्त होते हैं तथा पंजाब, उत्तर प्रदेश, सिन्धु, कश्मीर आदि में विभिन्न स्थानों पर उसके शासनकाल में प्रचलित सिक्के प्राप्त हुए हैं। इन अभिलेखों और सिक्कों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि ये प्रदेश उसके साम्राज्य में सम्मिलित थे। उसकी राजधानी पुरुषपुर (पेशावर) थी।

(3) कनिष्क का धर्म—कनिष्क बौद्ध धर्म का अनुयायी बन गया था। वह प्रारम्भ में क्रूर एवं कठोर शासक था, किन्तु कुछ परिस्थितियों के कारण वह लोकहितकारी और धर्मपरायण बन गया था। सम्राट अशोक की भाँति ही उसने भी अपना शेष जीवन बौद्ध धर्म के प्रचार में व्यतीत किया। उसकी धार्मिक नीति अत्यधिक उदार थी। उसके प्रचार कार्यों के कारण ही बौद्ध धर्म चीन, जापान, तिब्बत और मध्य एशिया के कई भागों में व्यापक रूप से फैल गया था। वह बौद्ध धर्म के उत्थान करने के कारण अशोक की भाँति विश्व का महान् सम्राट बन गया था। इस सम्बन्ध में श्रीनिवासचारी एवं आयंगर का कहना है कि, "उसकी ख्याति का कारण उसकी विजय न थी, वरन् बौद्ध धर्म के प्रति उसके कर्त्तव्य थे।"

कनिष्क की उपलब्धियाँ

(1) कनिष्क की विजय
(2) साम्राज्य-विस्तार
(3) कनिष्क का धर्म
(4) कनिष्क के काल में सांस्कृतिक प्रगति : (i) धार्मिक सुधार,
(ii) चतुर्थ बौद्ध संगीति,
(iii) कला की उन्नति,
(iv) साहित्य की उन्नति,
(v) आर्थिक एवं व्यापारिक प्रगति।

डॉ० राय चौधरी का कथन है—"कनिष्क का वंश विजयों पर उतना अधिक अवलम्बित नहीं है, जितना कि 'शाक्य' मुनि (गौतम बुद्ध) के धर्म को राजाश्रय प्रदान करने पर है।" कनिष्क अपने प्रारम्भिक जीवन में भारतीय हिन्दुओं के महान् देवता शंकर का अनुयायी था, क्योंकि उसकी मुद्राओं पर शिव, पार्वती तथा नन्दी आदि के चित्र प्राप्त हुए हैं। कनिष्क बौद्ध होने से पूर्व यूनानी देवताओं सूर्य और चन्द्रमा की भी उपासना किया करता था। इसलिए उसे धर्म-सहिष्णु सम्राट के रूप में स्वीकार किया जाता है, परन्तु फिर भी कालान्तर में वह बौद्ध धर्म में ही विशेष रुचि प्रदर्शित करने लगा था।

(4) कनिष्क के काल में सांस्कृतिक प्रगति : (i) धार्मिक सुधार—कनिष्क सभी धर्मों का समान रूप से आदर करता था, इसीलिए उसने अपने शासनकाल में प्रचलित कराए गए सिक्कों पर हेक्लिज, सेरापिज इत्यादि विदेशी और सूर्य, शिव एवं नन्दी आदि भारतीय देवी-देवताओं की आकृतियाँ अंकित करवाई थीं। यह कार्य उसकी धार्मिक सहिष्णुता की भावना के साथ ही उसकी कलात्मक अभिरुचियों का भी परिचायक है। फिर भी इसमें सन्देह नहीं कि उसने बौद्ध धर्म का ही विशेष रूप से प्रचार किया था।

(ii) चतुर्थ बौद्ध संगीति या धर्म-सम्मेलन—जिस समय कनिष्क सिंहासनारूढ़ हुआ उस समय बौद्ध धर्म पतनोन्मुख अवस्था में था। उसमें अनेक दोष उत्पन्न गए थे, जिससे लोग बौद्ध धर्म से घृणा करने लगे थे। बौद्ध विहार भोग-विलास एवं अनैतिक कार्यों के केन्द्र बन गए थे। कनिष्क ने इस धर्म का उद्धारक बनकर इसका पुनरुत्थान किया। उसने इस धर्म में उत्पन्न दुर्गुणों को समाप्त करने के उद्देश्य से कश्मीर में कुण्डल वन नामक स्थान पर एक बौद्ध-संगीति (सम्मेलन) का आयोजन किया। इसमें बौद्ध एवं अन्य धर्मों के सैकड़ों भिक्षुओं और विद्वानों ने भाग लिया। इस सभा में बौद्ध धर्म के स्वरूप पर विचार-विमर्श हुआ जिसके परिणामस्वरूप बौद्ध धार्मिक ग्रन्थों पर टीकाएँ रची गईं। किन्तु यह सभा अपने उद्देश्य में पूर्ण सफल न हुई, क्योंकि इसके पश्चात् बौद्ध धर्म दो सम्प्रदायों—हीनयान एवं महायान में विभाजित हो गया। दोनों का साध्य (लक्ष्य) एक, किन्तु साधन भिन्न-भिन्न थे। फिर भी यह तथ्य उल्लेखनीय है कि चतुर्थ बौद्ध-संगीति का आयोजन उसके महान् कर्त्तव्यों की पूर्ति थी। इससे वह एक महान् अलौकिक व्यक्तित्व का स्वामी बन गया था।

(iii) कला की उन्नति—कनिष्क कला-प्रेमी भी था। उसने अनेक भवनों एवं स्तूपों का निर्माण करवाया। कुछ लोगों के मतानुसार उसने तक्षशिला के पास एक नगर भी बसाया था। कश्मीर का कनिष्कपुर नामक नगर भी सम्भवतः उसी ने बसाया था। यूनानी और कनिष्क काल की भारतीय कलाओं के संयोग से एक महान् विश्वप्रसिद्ध गान्धार कला का विकास, कनिष्क काल में ही हुआ था। इस कला की यह विशेषता है कि इसमें आकृतियाँ एवं भाव भारतीय हैं, किन्तु वेशभूषा यूनानी ढंग की है। इसी प्रकार कनिष्क के समय में शिल्पकला की भी पर्याप्त उन्नति हुई।

(iv) साहित्य की उन्नति—कनिष्क के समय में साहित्य के क्षेत्र में भी पर्याप्त उन्नति हुई। इस काल में केवल बौद्ध धर्म पर टीकाओं जैसे धार्मिक साहित्य का सृजन ही नहीं हुआ, वरन् चिकित्सा विज्ञान, दर्शनशास्त्र आदि पर भी अनेक पुस्तकें लिखी गईं। चरक ने कनिष्क के काल में ही आयुर्वेद के महान् ग्रन्थ चरक-संहिता की रचना की थी। बुद्धचरित (महाकाव्य), सौन्दरानन्द काव्य और सारिपुत्र प्रकरण नामक नाटक कनिष्क के काल में ही लिखे गए थे। प्रसिद्ध बौद्ध आचार्य नागार्जुन भी कनिष्क के काल के ही थे। इन्होंने नवीन दर्शन शून्यवाद का विकास किया था।

(v) आर्थिक एवं व्यापारिक प्रगति—कनिष्क ने जो विशाल साम्राज्य स्थापित किया था, उसके फलस्वरूप आयात एवं निर्यात के क्षेत्र में विशेष प्रगति हुई थी। ईरान, मध्य एशिया, चीन एवं रोम आदि प्रदेशों से भारत के विशेष व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित हुए थे। इस समय भारतवर्ष के वस्त्र, आभूषण और सौन्दर्य-प्रसाधन के अनेक उपकरण रोम साम्राज्य और अन्य देशों मे पहुँचने लगे थे और वहाँ से अपार सोना-चाँदी भारत आने लगा था।

निष्कर्ष—कनिष्क ने साम्राज्य विस्तार, कला एवं धर्म का विकास, आर्थिक प्रगति आदि से सम्बन्धित प्रायः सभी क्षेत्रों में आश्चर्यजनक सफलताएँ प्राप्त की थीं। जैसा कि डॉ० आर० पी० त्रिपाठी ने लिखा है, "कनिष्क का भारत के कुषाण सम्राटों में निःसन्देह सबसे आकर्षक व्यक्तित्व है। वह एक महान् विजेता और बौद्ध धर्म का आश्रयदाता था। उसमें चन्द्रगुप्त की सामरिक योग्यता और अशोक के धार्मिक उत्साह का समन्वय था।" बौद्ध धर्म के उत्थान हेतु उसने अनेक चमत्कारिक कार्य किए थे, तभी एन० एन० घोष ने भी लिखा है कि, "महायान सम्प्रदाय के आश्रयदाता और समर्थक के रूप में उसे उतना ही उच्च स्थान प्राप्त है, जितना अशोक को हीनयान सम्प्रदाय के संरक्षक तथा समर्थक के रूप में प्राप्त था।" **डॉ० ईश्वरी प्रसाद के शब्दों में, "कनिष्क की कीर्ति उसके बौद्ध मत के संरक्षण पर निर्भर है, जिससे इतिहास में उसका नाम अशोक के बाद आता है।"**

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—गान्धार कला के विषय में आप क्या जानते हैं? गान्धार कला-शैली की प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।

अथवा **गान्धार कला की दो प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।** *(1995)*

उत्तर : गान्धार कला—कनिष्क के समय में गान्धार कला की अभूतपूर्व उन्नति हुई थी। यह कला यूनानी और भारतीय कला का समन्वित रूप थी, इसीलिए इसे इण्डो-ग्रीक (Indo-Greek) कला भी कहा जाता है। इस कला का मुख्य केन्द्र गान्धार प्रदेश (अफगानिस्तान) था। इस कला के अन्तर्गत महात्मा बुद्ध की बोधिसत्व मूर्तियों का निर्माण हुआ था। इस कला की मुख्य विशेषताएँ निम्नलिखित थीं—

(1) इसकी विषय-वस्तु भारतीय और शैली यूनानी थी।
(2) इस कला पर आधारित कलाकृतियों में महात्मा बुद्ध का प्रभामण्डल बनाया गया था।
(3) मूर्तियों में शरीर के अंगों व प्रत्यंगों के प्रदर्शन पर विशेष ध्यान दिया गया था।
(4) कलाकृतियों की पृष्ठभूमि का अलंकरण काल्पनिकता पर आधारित था।

प्रश्न 2—कनिष्क द्वारा बौद्ध धर्म के प्रति की गई किन्हीं दो सेवाओं का वर्णन कीजिए। *(1990, 94)*

उत्तर—कनिष्क द्वारा बौद्ध धर्म के प्रति की गई दो सेवाएँ अग्रलिखित हैं—

(1) कनिष्क बौद्ध धर्म के महायान सम्प्रदाय का अनुयायी और संरक्षक बन गया था। उसने बौद्ध धर्म की उन्नति के लिए असंख्य स्तूपों तथा विहारों व बुद्ध की आकर्षक मूर्तियों का निर्माण करवाया।

(2) कनिष्क ने बौद्ध धर्म के दोषों को समाप्त करने के लिए कश्मीर के कुण्डल वन में चतुर्थ बौद्ध सभा भी बुलाई थी।

प्रश्न 3—कनिष्क के समय में कला एवं साहित्य की उन्नति का संक्षिप्त विवरण दीजिए। *(1993)*

उत्तर—इस प्रश्न के उत्तर के लिए प्रश्न संख्या 3 में कनिष्क की उपलब्धियों का अध्ययन कीजिए।

प्रश्न 4—भारतीय मूर्तिकला और सिक्कों पर यूनानी प्रभाव के विषय में आप क्या जानते हैं? *(1997, 99)*

उत्तर—भारतीय मूर्तिकला और सिक्कों पर यूनानी प्रभाव का उल्लेख निम्नवत् है—

(1) **भारतीय मूर्तिकला पर यूनानी प्रभाव**—मूर्तिकला के क्षेत्र में यूनानियों का बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। कुषाण काल में गान्धार में एक नवीन कला-शैली का जन्म हुआ जिसे हम **'गान्धार शैली'** के नाम से जानते हैं। गान्धार शैली के आधार पर निर्मित मूर्तियों पर यूनानी मूर्तिकला (तक्षण-कला) प्रभाव स्पष्ट रूप से दृष्टिगोचर होता है। महात्मा बुद्ध की अनेक मूर्तियाँ इसी शैली के आधार पर बनाई गई हैं। इनमें से महात्मा बुद्ध की कई मूर्तियाँ ग्रीक देवता 'अपोलो' के समान प्रतीत होती हैं।

(2) **भारतीय सिक्कों पर यूनानी प्रभाव**—यूनानियों के भारत आगमन से पूर्व भारतीय ताँबे पर चाँदी के छोटे-छोटे सिक्कों का निर्माण करते थे। इनका वजन तथा आकार भी सुनिश्चित नहीं था। यूनानियों ने सिक्कों के उपयुक्त आकार एवं सुन्दरता की ओर विशेष ध्यान दिया। उनके सिक्के अत्यन्त सुडौल एवं कलात्मक होते थे। सिक्कों पर लेखों तथा विभिन्न चिन्हों को भी अत्यन्त कलात्मक ढंग से उत्कीर्ण किया जाता था। इस प्रकार भारतीयों ने यूनानियों से ही कलापूर्ण सिक्के बनाने की विधि सीखी।

ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों एवं व्यक्तियों पर आधारित प्रश्न

प्रश्न 1—निम्नांकित तिथियों के ऐतिहासिक महत्त्व पर संक्षेप में प्रकाश डालिए—

उत्तर : (1) 248 ईसा पूर्व *(1993)*—इस तिथि को पाटलिपुत्र में तृतीय बौद्ध सम्मेलन का आयोजन किया गया था।

(2) 185 ईसा पूर्व *(1995, 96)*—कुछ इतिहासकारों के मतानुसार इसी तिथि को पुष्यमित्र शुंग; मौर्य वंश के अन्तिम सम्राट बृहद्रथ की हत्या करके मगध के सिंहासन पर बैठा था।

(3) 184 ईसा पूर्व *(1999)*—इस तिथि को मौर्य वंश के अन्तिम सम्राट बृहद्रथ की हत्या करके उसके सेनापति पुष्यमित्र ने शुंग वंश की स्थापना की थी। पुराणों में यह तिथि 186 ईसा पूर्व वर्णित की गई है।

(4) 149 ईसा पूर्व *(1995, 99)*—कुछ विद्वानों ने अपने शोधपूर्ण प्रयासों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि इस तिथि को पुष्यमित्र शुंग की मृत्यु हुई।

(5) 148 ईसा पूर्व *(1993)*—इस तिथि को पुष्यमित्र शुंग की मृत्यु हुई थी।

(6) 106 ई० *(1993, 97)*—इस तिथि को कुषाण वंश के प्रतापी नरेश कनिष्क की मृत्यु हुई थी।

(7) 78 ई० *(1990, 91, 92, 93, 94, 95, 96, 97, 99)*—भारतीय इतिहास में इस तिथि का व्यापक महत्त्व है। इसी तिथि से शक सम्वत् शुरू हुआ था और कुषाण वंश के महान् सम्राट कनिष्क का राज्यारोहण भी इसी तिथि को हुआ था।

(8) 72 ईसा पूर्व *(1996)*—इस तिथि को शुंग वंश के अन्तिम राजा देवमूर्ति को मारकर वासुदेव ने कण्व वंश की नींव डाली थी।

(9) 71 ईसा पूर्व *(1993)*—कुछ इतिहासकार इस तिथि से कण्व वंश का प्रारम्भ मानते हैं।

प्रश्न 2—निम्नांकित ऐतिहासिक स्थलों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) पुरुषपुर—कनिष्क के साम्राज्य की राजधानी पुरुषपुर (आधुनिक पेशावर, पाकिस्तान) एक भव्य नगर थी। पुरुषपुर में सम्राट कनिष्क ने लकड़ी का एक विशाल स्तम्भ निर्मित कराया था, जिसकी ऊँचाई 400 फुट के लगभग थी। इस नगर में अनेक बौद्ध मठों व विहारों के भग्नावशेष आज भी देखने को मिल जाते हैं।

(2) कनिष्कपुर—सम्राट कनिष्क ने अपनी राजधानी पुरुषपुर के निकट कनिष्कपुर नामक नगर की स्थापना की थी। इस नगर के अवशेष कनिष्क की बौद्ध धर्म के प्रति आस्था के प्रतीक हैं।

प्रश्न 3—निम्नलिखित ऐतिहासिक व्यक्तियों पर टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) अश्वघोष *(1990, 94, 97, 99)*—बौद्ध धर्म के महान् आचार्य अश्वघोष की तुलना बौद्ध आचार्य संघ के प्रधान आचार्य आनन्द से की जा सकती है। कनिष्क के समय में बौद्ध धर्म के उत्थान का प्रमुख श्रेय इनको ही दिया जाता है। इन्होंने अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थों की रचना की थी। इनके तीन ग्रन्थ विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—**बुद्ध-चरित, सौन्दरानन्द और सारिपुत्र प्रकरण।** बुद्ध-चरित में बुद्ध के जीवन-चरित्र पर विस्तृत प्रकाश डाला गया है। अश्वघोष ने अपने दर्शन से भारतीयों को नई दिशा प्रदान की थी।

(2) चरक—चरक को भी कनिष्क के काल का ही स्वीकार किया जाता है। चरक चिकित्साशास्त्र के महान् विद्वान् थे। इन्होंने **'चरक-संहिता'** नामक ग्रन्थ की रचना की थी। चरक ने आयुर्वेदशास्त्र को अनेक नवीन खोजों से भर दिया था और अनेक असाध्य रोगों की औषधि खोज निकाली थी। उन्होंने अपने ज्ञान से मानव-जाति को बहुत लाभान्वित किया। चरक राजाओं के राजा और विद्वानों के विद्वान् थे।

(3) नागार्जुन—नागार्जुन का जन्म ब्राह्मण परिवार में हुआ था। वे अत्यधिक विद्वान् और दर्शनाचार्य थे। आप में बौद्ध धर्म के प्रति प्रारम्भ से ही रुचि उत्पन्न हो गई थी। बौद्ध धर्म के दार्शनिक स्वरूप का इन्होंने गहन अध्ययन किया था। कुछ प्रबल मतों के आधार पर इन्होंने एक नए दर्शन 'शून्यवाद' का विकास किया था। यह शून्यवाद अनेक बौद्धों के द्वारा अपनाया गया था। कालान्तर में यह बौद्ध धर्म का एक लोकप्रिय सम्प्रदाय बन गया था। नागार्जुन ने लगभग बीस ग्रन्थों की रचना की थी, जिनमें **'माध्यमिक सूत्र'** का विशेष महत्त्व है।

(4) पुष्यमित्र शुंग *(1992, 93)*—पुष्यमित्र शुंग (185 ई॰ पू॰ से 148 ई॰ पू॰) द्वारा मौर्य वंश के अंतिम शासक बृहद्रथ की हत्या कर शुंग वंश की सत्ता स्थापित की गई थी। पाणिनी तथा तारानाथ ने शुंगों को ब्राह्मण स्वीकार किया है। उसके शासन काल की प्रथम महत्त्वपूर्ण घटना विदर्भ के साथ किया गया युद्ध था। उसने विदर्भ तथा यवनों को पराजित करने के पश्चात् दो बार अश्वमेध यज्ञ किया था। 148 ई॰ पू॰ में पुष्यमित्र शुंग की मृत्यु हो गई थी।

(5) खारवेल *(1993)*—यह चेदि वंश का क्षत्रिय राजा था जिसके सम्बन्ध में हाथीगुम्फा अभिलेख से जानकारी प्राप्त होती है। हाथीगुम्फा अभिलेख के अनुसार वह कलिंग का प्रतापी शासक था। अपने शासन के प्रथम वर्ष में उसने अनेक निर्माण कार्य कराए, दूसरे वर्ष में सातवाहन राजा शतकर्णी को परास्त किया, चौथे वर्ष में राजा भोज पर विजय प्राप्त की और अपने शासन के पाँचवें वर्ष में एक नहर का विस्तार कराया। उसने मगध पर भी दो बार आक्रमण किया, परन्तु उसे सफलता प्राप्त नहीं हो सकी।

(6) कनिष्क *(1995)*—कनिष्क कुषाण वंश का सर्वाधिक प्रतापी तथा शक्तिशाली शासक था। 78 ई॰ पू॰ में उसका राज्यारोहण हुआ था। उसके शासनकाल में गान्धार कला की विशेष प्रगति हुई। वह बौद्ध धर्म का उपासक था तथा इस धर्म के प्रचार-प्रसार में उसने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। अतः भारतीय इतिहास में वह 'द्वितीय अशोक' के नाम से प्रसिद्ध है।

10 केन्द्रीय शक्ति का पुनरुत्थान : गुप्त साम्राज्य

[सम्राट समुद्रगुप्त : समुद्रगुप्त की दिग्विजय तथा चरित्र-चित्रण; सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय : उपलब्धियाँ, शासन प्रबन्ध तथा चरित्र एवं मूल्यांकन; फाह्यान के अनुसार भारत की तत्कालीन दशा, गुप्त काल को प्राचीन भारत का स्वर्ण युग कहे जाने के कारण, गुप्तकालीन शासन-व्यवस्था, गुप्त साम्राज्य के पतन के कारण, हूणों के आक्रमण का भारत पर प्रभाव]

"गुप्त सम्राटों का काल भारतीय इतिहास में स्वर्णयुग कहा जाता है। इस काल के अनेक उदात्त, मेधावी और शक्तिशाली राजाओं ने उत्तर भारत को एक छत्र के नीचे संगठित कर शासन में सुव्यवस्था तथा देश में समृद्धि व शान्ति की स्थापना की।"

—डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—समुद्रगुप्त की दिग्विजयों (विजयों) का संक्षिप्त वर्णन कीजिए। *(M. Imp.)*

अथवा "समुद्रगुप्त एक विजेता ही नहीं था, वरन् सफल कूटनीतिज्ञ भी था।" पराजित राष्ट्रों के प्रति अपनाई गई नीतियों के प्रकाश में इस कथन की समीक्षा कीजिए।

अथवा "समुद्रगुप्त भारत का नेपोलियन था।" उसकी विजयों का उल्लेख करते हुए इस कथन की समीक्षा कीजिए।

अथवा समुद्रगुप्त की विजयों का परिचय दीजिए। क्या उसे भारत का नेपोलियन कहा जा सकता है?

अथवा समुद्रगुप्त की दक्षिण विजय का पूर्ण वर्णन कीजिए। *(1990, 92)*

अथवा समुद्रगुप्त द्वारा विजित दक्षिणापथ के किन्हीं चार राज्यों और उनके राजाओं का उल्लेख कीजिए। *(1991, 92)*

अथवा समुद्रगुप्त की दक्षिणापथ की विजयों एवं उसके साम्राज्य-विस्तार का वर्णन कीजिए। *(1992)*

उत्तर—

सम्राट समुद्रगुप्त (335 ई०–375 ई०)

सम्राट चन्द्रगुप्त प्रथम की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र समुद्रगुप्त लगभग 335 ई० में सिंहासन पर आसीन हुआ। इतिहास में समुद्रगुप्त के राज्यारोहण की तिथि निश्चित नहीं है। वह एक महत्त्वाकांक्षी, साहसी एवं पराक्रमी शासक था। उसने भारत को एक शक्तिशाली साम्राज्य के रूप में संगठित करने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की थी। इसी कारण उसे 'भारत का नेपोलियन' नामक विशिष्ट उपाधि से विभूषित किया गया है। उसने अपने जीवनकाल में अनेक युद्ध लड़े और लगभग सभी में उल्लेखनीय सफलताएँ प्राप्त कीं। उसकी इन सफलताओं के कारण ही स्मिथ ने लिखा है, "समुद्रगुप्त, जो कि दूसरा गुप्त सम्राट था, भारतीय इतिहास के सम्राटों में एक महत्त्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय स्थान रखता है।"

समुद्रगुप्त की दिग्विजय

नेपोलियन व सिकन्दर की भाँति समुद्रगुप्त भी युद्ध के मैदान में निरन्तर विजयें प्राप्त करने वाला महान् भारतीय शासक हुआ है। वह अपने साम्राज्य का अत्यधिक विस्तार करने का इच्छुक था। इसीलिए सिंहासनारूढ़ होते ही उसने भारत के स्वतन्त्र राज्यों पर अधिकार करने की योजना बनाई। उसकी विजयों और उसके जीवन की विस्तृत जानकारी प्रयाग (इलाहाबाद) के स्तम्भ लेख के आधार पर प्राप्त होती है। जिस पर उसके दरबारी कवि हरिषेण द्वारा उसकी प्रशस्ति अंकित है। प्रयाग प्रशस्ति अथवा प्रयाग के स्तम्भ लेख के ऐतिहासिक महत्त्व पर प्रकाश डालते हुए डॉ० आर० सी० मजूमदार ने लिखा है, "यह भारत

की राजनीतिक अवस्था, समुद्रगुप्त के कार्यों एवं चरित्र का इतना सांगोपांग एवं पूर्ण विवरण प्रस्तुत करती है कि केवल सम्राट अशोक के अतिरिक्त उत्तरी भारत के अन्य किसी सम्राट के अभिलेख से इस प्रकार का परिचय प्राप्त होना कठिन है।"

प्रयाग प्रशस्ति में यह उल्लेख किया गया है कि समुद्रगुप्त ने पराजित राष्ट्रों और राजाओं के प्रति समयानुकूल और भौगोलिक आधार पर छह पृथक्-पृथक् नीतियाँ अपनाई थीं, जिनका विवरण निम्न प्रकार है—

(1) समीप के प्रदेशों के राज्यों का उसने अपने राज्य में विलय कर लिया था।

(2) दूरस्थ देशों के राज्यों को उन पर अनुग्रह करते हुए, स्वतन्त्र कर दिया था, जैसा कि उसके द्वारा दक्षिणी भारत के राज्यों के साथ किया गया था।

(3) उसने जंगली राज्यों को पूर्णतः अपना दास बना लिया था।

(4) कुछ भ्रष्ट राज्यों को अपने राज्य में मिलाकर उनका उद्धार कर दिया था।

(5) कुछ राज्यों को अपनी आज्ञा मानने के लिए बाध्य करते हुए, प्रतिवर्ष उनको कर देने के लिए विवश किया था।

(6) उसने पराजित राजाओं के आग्रह करने पर उनकी कन्याओं से विवाह किया और उन्हें सामन्तीय शासकों की भाँति स्वतन्त्रता प्रदान कर दी। यह नीति विदेशी राज्यों के प्रति अपनाई गई थी।

ये पृथक्-पृथक् नीतियाँ अपनाकर समुद्रगुप्त ने स्वयं को एक सफल कूटनीतिज्ञ सिद्ध किया था। इसी कारण यह कहा जाता है कि समुद्रगुप्त न केवल एक सफल विजेता वरन् सफल कूटनीतिज्ञ भी था।

समुद्रगुप्त द्वारा पराजित राज्यों का विवरण निम्नवत् है—

(1) उत्तरी भारत पर विजय—समुद्रगुप्त ने अपने साम्राज्य में अभिवृद्धि करने के लिए उत्तरी भारत के राज्यों को विजित करने की योजना बनाई थी। उस समय उत्तरी भारत में नौ नागवंशीय राजा राज्य कर रहे थे—अच्युत, रुद्रसेन, मत्तिल, नागसेन, गणपतिनाग, नागदत्त, चन्द्रवर्मन, नन्दि और बलवर्मन। उसने इन सभी राजाओं से युद्ध किया और सबको परास्त कर सम्पूर्ण आर्यवर्त्त को अपने अधिकार में कर लिया।

(2) मध्य भारत के आटविक राज्यों (जंगली राज्यों) की विजय—मध्य भारत पर विजय प्राप्त करने का एक प्रमुख कारण यह था कि वह दक्षिणी भारत पर विजय प्राप्त करना चाहता था, किन्तु मध्य भारत में अनेक जंगली जातियाँ रहती थीं और उन्हें परास्त करना आवश्यक था। अतः समुद्रगुप्त ने यथाशीघ्र उन पर आक्रमण कर तथा उन्हें अपने अधीन कर अपना दास बना लिया तथा वे उसे कर देने लगे।

समुद्रगुप्त की दिग्विजय

(1) उत्तरी भारत पर विजय
(2) मध्य भारत के आटविक राज्यों (जंगली राज्यों) की विजय
(3) दक्षिणी भारत की विजय
(4) सीमान्त राज्यों की विजय
(5) गणराज्यों की विजय
(6) समुद्रगुप्त के विदेशों से सम्बन्ध
(7) अश्वमेध यज्ञ।

(3) दक्षिणी भारत की विजय—भारत के मध्यवर्ती राज्यों पर विजय के बाद उसने दक्षिणी भारत की ओर प्रस्थान किया और वहाँ के 12 राज्यों को विजित किया, किन्तु उसने उन राज्यों को अपने साम्राज्य में सम्मिलित नहीं किया अपितु वहाँ के राजाओं पर अनुग्रह करते हुए उनके राज्य उन्हें वापस लौटा दिए गए थे। दक्षिणी भारत के ये राज्य एवं राजा थे—कौशल का महेन्द्र, महाकान्तर का व्याघ्रराज, कुराल का मण्तराज, कौट्टरक का स्वामीदत्त, पिष्टपुर का महेन्द्रगिरि, अवमुक्त का नीलराज, एरण्डपल्ल का दमन, वेंगी का हस्तिवर्मन, पाल्लक का अग्रसेन, कांची का विष्णुगोप, कुस्थलपुर का धनंजय और देवराष्ट्र का कुबेर।

(4) सीमान्त राज्यों की विजय—अनेक इतिहासकारों का मत है कि जब समद्रगुप्त ने सीमान्त प्रदेशों की ओर प्रस्थान किया, तो बिना किसी विशेष युद्ध के पाँच सीमान्त राज्यों ने उसके सामने आत्मसर्मपण कर दिया। ये पाँच सीमान्त राज्य थे—समतट, दवाक, कामरूप, नेपाल और कर्तृपुर थे।

(5) गणराज्यों की विजय—समुद्रगुप्त के साम्राज्य के समीप के प्रदेशों में नौ गणराज्य भी थे, जिनमें प्रजातान्त्रिक सिद्धान्तों के आधार पर शासन होता था। ये अत्यन्त दुर्बल राज्य थे। ये नौ गणराज्य

थे—योधेय, आर्जुनायन, प्रार्जुन, आभीर, मद्र, मालव, सनकानिक, काक और खरपरिक। ये राज्य भली-भाँति समझ गए कि समुद्रगुप्त की सेना के समक्ष वे नहीं टिक सकते हैं, इसीलिए उन्होंने समुद्रगुप्त की अधीनता स्वीकार कर ली थी।

(6) समुद्रगुप्त के विदेशों से सम्बन्ध—समुद्रगुप्त की इन विजयों को देखकर विदेशी राज्य भी भयभीत हो उठे तथा वे समुद्रगुप्त से मैत्री-सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न करने लगे। विदेशी राज्यों में देवपुत्र-शाहीशाहनुशाही, शक, मुरण्ड और सिंहल का विवरण मिलता है। समुद्रगुप्त ने इनसे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए थे और इन्हें अपने अधीनस्थ शासकों की भाँति स्वतन्त्रता प्रदान की।

(7) अश्वमेध यज्ञ—सम्भवतः, दिग्विजय के उपलक्ष में समुद्रगुप्त ने एक अश्वमेध यज्ञ का भी आयोजन कराया था। इस अवसर पर दक्षिणा देने के लिए उसने विशेष प्रकार की मुद्राएँ ढलवाईं। ये मुद्राएँ सोने की थीं और उनके एक ओर यज्ञ-स्तम्भ में बँधे हुए घोड़े की मूर्ति तथा दूसरी ओर चँवर लिए प्रधान राजमहीषी (मुख्य रानी) की मूर्ति थी। साथ ही उस पर 'अश्वमेध पराक्रम' उत्कीर्ण था।

वस्तुतः उसकी विजयों की एक लम्बी शृंखला थी, जो उसकी कीर्ति का आधार बनी। स्मिथ के शब्दों में, "समुद्रगुप्त असाधारण क्षमता तथा विभिन्न गुणों का आगार था। वह एक सच्चा मनुष्य, एक विद्वान् कवि, गायक तथा वीर सेनानी था।"

निष्कर्ष—समुद्रगुप्त के द्वारा उपर्युक्त विजयें प्राप्त करने के कारण ही उसे भारत का नेपोलियन कहा जाता है। स्मिथ ने उसे अपने युग का महान् नेपोलियन कहकर पुकारा है। स्मिथ के शब्दों में ही "नेपोलियन के समान ही समुद्रगुप्त भी अपने युग का वीर पुत्र था।"

प्रश्न 2—समुद्रगुप्त के चरित्र और सफलताओं का मूल्यांकन कीजिए।

अथवा **"समुद्रगुप्त एक वास्तविक मनुष्य, कवि, संगीतज्ञ तथा सेनानायक था।" विवेचना कीजिए।**

अथवा **"समुद्रगुप्त एक विजेता और कुशल योद्धा ही नहीं वरन् संगीत, साहित्य तथा कला का संरक्षक भी था।" उपर्युक्त कथन की पुष्टि कीजिए।** *(1990)*

अथवा **"ऐसा कौन-सा गुण है जो उसमें (समुद्रगुप्त में) नहीं है।" हरिषेण के इस कथन की समीक्षा कीजिए।**

अथवा **"उसमें (समुद्रगुप्त में) अशोक की चारित्रिक विशेषता और नेपोलियन की अजेय क्षमता विद्यमान थी।" इस कथन की समालोचना कीजिए।**

अथवा **"समुद्रगुप्त अद्भुत व्यक्तित्व क्षमता का व्यक्ति था और उसमें असाधारण रूप से विभिन्न गुण मौजूद थे।" इस कथन की विवेचना कीजिए।** *(1993, 96)*

अथवा **समुद्रगुप्त केवल विजेता ही नहीं था, अपितु संस्कृति का संरक्षक भी था।" व्याख्या कीजिए।** *(1994)*

उत्तर—

समुद्रगुप्त का चरित्र-चित्रण

इलाहाबाद प्रशस्ति में समुद्रगुप्त के चारित्रिक गुणों का विस्तृत उल्लेख मिलता है। डॉ० स्मिथ ने उसके गुणों के सम्बन्ध में लिखा है, "समुद्रगुप्त अद्भुत व्यक्तिगत क्षमता का व्यक्ति था और उसमें असाधारण विभिन्न गुण विद्यमान थे। वह एक वास्तविक मनुष्य, कवि, संगीतज्ञ तथा सेनानायक था।" उसके चारित्रिक गुणों को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है—

(1) महान् विजेता—समुद्रगुप्त वास्तव में एक महान् विजेता था। उसकी महान् विजयों ने भारत की छिन्न-भिन्न शक्ति को एक-बार पुनः संगठित कर दिया। अशोक की मृत्यु के बाद समुद्रगुप्त ने 600 वर्षों के बाद भारत में एक-बार पुनः विशाल साम्राज्य स्थापित किया। प्रयाग प्रशस्ति के अनुसार वह 'अप्रतिवीर्य' था जिसका समस्त शरीर सहस्रों अस्त्र-शस्त्र के घावों के चिह्नों से युक्त था तथा वह प्रत्येक अस्त्र-शस्त्र को चलाने में कुशल था। निःसंदेह, एक विजेता के रूप में उसकी तुलना सिकन्दर महान् और नेपोलियन बोनापार्ट से की जा सकती है।

(2) योग्य शासक—समुद्रगुप्त केवल महान् विजेता ही नहीं, वरन् योग्य एवं कुशल शासक भी था। यद्यपि उसकी शासन-व्यवस्था के सम्बन्ध में कोई भी स्पष्ट प्रमाण नहीं मिलते हैं, किन्तु यह निश्चित है

कि उसके काल में शासन-व्यवस्था अत्यधिक उत्तम थी। जनता सुखी और समृद्ध थी तथा सम्पूर्ण राज्य में शान्ति का वातावरण था। समुद्रगुप्त ने अपने शासनकाल में लगभग पाँच प्रकार की शुद्ध सोने की मुद्राएँ प्रचलित करवाई थीं। इससे यही सिद्ध होता है कि उसके राज्य में आर्थिक स्थिति अत्यन्त सन्तोषप्रद थी। दान देने में भी उसे 'वरुण' के समान बताया गया है।

(3) कुशल सेनानायक और योद्धा—उसने अपने सभी युद्धों में स्वयं सेना का संचालन किया तथा सदैव विजयश्री प्राप्त की। इससे सिद्ध होता है कि वह एक कुशल सेनानायक था। प्रयाग प्रशस्ति यह स्पष्ट करती है कि समुद्रगुप्त की विजयों का रहस्य, उसके द्वारा एक महान् योद्धा के गुणों का निर्वाह करते हुए अपनी सेना का कुशल संचालन करना था।

(4) कुशल राजनीतिज्ञ—पराजित दक्षिण के राज्यों और गणतन्त्रीय राज्यों के प्रति सम्राट समुद्रगुप्त ने जो नीति अपनाई वह उसको एक कुशल राजनीतिज्ञ सिद्ध करती है। समुद्रगुप्त जानता था कि साम्राज्य में अधिक राज्य मिला लेने से उसके शासन का संचालन ठीक प्रकार से न हो सकेगा। इसीलिए उसने अनेक राज्यों को अपने अधीन करने के पश्चात् भी उन्हें अपने राज्य में पूर्ण रूप से सम्मिलित नहीं किया।

समुद्रगुप्त का चरित्र-चित्रण

(1) महान् विजेता
(2) योग्य शासक
(3) कुशल सेनानायक और योद्धा
(4) कुशल राजनीतिज्ञ
(5) कला का पोषक
(6) साहित्य-प्रेमी
(7) धर्मसहिष्णु शासक।

(5) कला का पोषक—समुद्रगुप्त संगीत-प्रेमी और कलाप्रिय सम्राट भी था। प्रयाग प्रशस्ति के अनुसार वीणावादन में उसने स्वर्ग के देवताओं 'नारद' तथा 'तुम्बरू' को भी हराया था। साथ ही उसके शासनकाल में निर्मित मुद्राएँ अत्यधिक कलात्मक हैं। समुद्रगुप्त ने स्वयं को वीणा बजाते हुए मुद्राओं पर अंकित करवाया था।

(6) साहित्य-प्रेमी—समुद्रगुप्त में वास्तव में सभी चारित्रिक गुण थे, तभी उसकी शस्त्र तथा शास्त्र में एकसमान रुचि थी। डॉ० आर० एस० त्रिपाठी के अनुसार, "समुद्रगुप्त में विरोधी गुणों का मिश्रण था। वह केवल युद्ध-विद्या में ही पारंगत नहीं था, वरन् शास्त्रों का भी ज्ञाता था। स्वयं सुसंस्कृत होने के साथ-साथ वह विद्वानों की संगति का भी प्रेमी था।"

(7) धर्मसहिष्णु शासक—समुद्रगुप्त के राज्य में धर्म की संकीर्ण भावना को कोई स्थान प्राप्त न था। उसके राज्य में शैव, जैन तथा बौद्ध आदि विभिन्न धर्मों के लोग उच्च पदों पर नियुक्त थे। वह सभी धर्मों का समान रूप से आदर करता था। उसने वैष्णव धर्मावलम्बी होते हुए भी श्रीलंका के राजा को 'गया' में एक बौद्ध विहार बनवाने की स्वीकृति दे दी थी। उसके इन्हीं गुणों के कारण उसे भारत का द्वितीय अशोक कहा जाता है।

निष्कर्ष—उपर्युक्त वर्णन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि उसमें एक गौरवपूर्ण शासक के सभी गुण विद्यमान थे। अनेक विद्वानों एवं इतिहासकारों ने उसके गुणों की मुक्त कण्ठ से प्रशंसा की है। उसके सम्बन्ध में हरिषेण ने सत्य ही कहा है कि, **"ऐसा कौन-सा गुण है, जो उसमें नहीं है।"** स्मिथ ने उसके सम्बन्ध में अपने विचार इस प्रकार स्पष्ट किए हैं, **"यह स्पष्ट है कि समुद्रगुप्त साधारण शक्तियों से युक्त न था। वह वास्तव में विलक्षण प्रतिभा का ख्याति प्राप्त व्यक्ति था।"**

आर० डी० बनर्जी ने लिखा है, **"समुद्रगुप्त एक महान् सम्राट था, सम्भवतः वह गुप्त वंश का सबसे महान् शासक था।"**

डॉ० आर० सी० मजूमदार के अनुसार, **"इसमें सन्देह नहीं है कि समुद्रगुप्त का व्यक्तित्व महान् प्रभावक व अद्वितीय था तथा उसने भारतीय इतिहास में नवीन युग का प्रादुर्भाव किया।"**

वस्तुतः समुद्रगुप्त एक विजेता और कुशल योद्धा ही नहीं, वरन् संस्कृति का भी संरक्षक था।

प्रश्न 3—चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की विजयों का वर्णन करते हुए उसकी न्यायप्रियता का विवेचन कीजिए तथा उसके शासन-प्रबन्ध पर प्रकाश डालिए।

अथवा चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासनकाल का संक्षिप्त इतिहास लिखिए।

अथवा "चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की उपलब्धियों के बल पर ही गुप्त-काल स्वर्ण-युग कहलाता है।" समालोचना कीजिए।

अथवा "चंद्रगुप्त चन्द्रवंश का चन्द्र ही नहीं, सूर्य भी है।" चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की उपलब्धियों के प्रकाश में इस कथन की विवेचना कीजिए।

अथवा चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य की उपलब्धियों का विश्लेषण कीजिए। *(1997)*

उत्तर—

सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय (375 ई०–412 ई०)

चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का परिचय—गुप्तवंश का प्रतिभाशाली नरेश चन्द्रगुप्त द्वितीय, भारतीय इतिहास में विक्रमादित्य के नाम से प्रसिद्ध है। यह सम्राट समुद्रगुप्त का पुत्र था। कुछ ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर यह कहा जाता है कि वह अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् सिंहासन पर आसीन नहीं हुआ था। सिंहासन पर समुद्रगुप्त का ज्येष्ठ पुत्र रामगुप्त बैठा, लेकिन वह कायर था। वह विदेशी शत्रु शकों से अपनी पत्नी ध्रुवस्वामिनी एवं प्रजा की रक्षा नहीं कर पाया था। रामगुप्त ने शकराज की माँग पर अपनी सुन्दर पत्नी ध्रुवदेवी को शकराज को भेंट में देना स्वीकार कर लिया था। चन्द्रगुप्त ने अपने पराक्रम और कूटनीति के बल पर अपने बड़े भाई की धर्मपत्नी ध्रुवस्वामिनी के सतीत्व की रक्षा की और प्रजा की माँग पर रामगुप्त की हत्या कर, सिंहासन पर अधिकार स्थापित किया था। वह लगभग 375 ई० में सिंहासन पर आसीन हुआ और लगभग 412 ई० तक राज्य करता रहा।

गुप्तकाल के अभिलेखों के अनुसार, समुद्रगुप्त का उत्तराधिकारी चन्द्रगुप्त द्वितीय ही था। वह बिना संघर्ष किए राजा बन गया था। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की माँ **'पट्टाभिमहादेवी दत्तादेवी'** थी। चन्द्रगुप्त के सिंहासनासीन होते ही उसके सामने अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न हुईं। इनमें से प्रमुख एवं महत्त्वपूर्ण कठिनाई शकों के आक्रमण से राज्य की रक्षा करने की थी।

चन्द्रगुप्त द्वितीय की उपलब्धियाँ

चन्द्रगुप्त द्वितीय की उपलब्धियों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है—

(1) शकों पर विजय—चन्द्रगुप्त ने एक विशाल एवं सुसंगठित सेना लेकर सर्वप्रथम गुप्त साम्राज्य की सीमा पर स्थित स्वतन्त्र गणराज्यों पर आक्रमण किया और उन्हें एक-एक करके अपने साम्राज्य में विलीन कर लिया। इसके पश्चात् उसने शकों पर आक्रमण कर दिया। दोनों के मध्य घमासान युद्ध हुआ। अन्त में शकों की पराजय हुई। चन्द्रगुप्त की चाँदी की मुद्राएँ साक्षी हैं कि अवन्ति एवं उसके पास के काठियावाड़, मालवा, गुजरात आदि प्रदेशों पर चन्द्रगुप्त का अधिकार हो गया था, जहाँ पहले शकों का राज्य था।

(2) पूर्वी प्रदेशों पर अधिकार—चन्द्रगुप्त ने अपने साम्राज्य को पूर्व दिशा की ओर विस्तृत करने का भी प्रयत्न किया। दिल्ली में **'मेहरौली'** के लौह-स्तम्भ के आधार पर, इस तथ्य के विषय में यह विदित होता है कि उसने पूर्व बंगाल पर विजय प्राप्त कर ली थी। अन्य ऐतिहासिक साक्ष्यों से विदित होता है कि गुप्त साम्राज्य के शत्रु—**'दवाक'** और **'कामरूप'** (असम) के राजा बंगाल में सम्मिलित होकर गुप्त साम्राज्य पर आक्रमण करने की योजना बना रहे थे। लेकिन चन्द्रगुप्त ने उन पर आक्रमण करके उन्हें परास्त कर दिया था।

चन्द्रगुप्त द्वितीय की उपलब्धियाँ

(1) शकों पर विजय
(2) पूर्वी प्रदेशों पर अधिकार
(3) पश्चिमी प्रदेशों पर अधिकार
(4) दक्षिणी भारत की विजय
(5) साम्राज्य विस्तार
(6) वैवाहिक सम्बन्ध।

(3) पश्चिमी प्रदेशों पर अधिकार—इसके पश्चात् चन्द्रगुप्त ने कुषाण जाति पर आक्रमण किया, जिसका पश्चिमी प्रदेशों पर अधिकार था। उन्हें परास्त कर उनके प्रदेशों पर भी चन्द्रगुप्त ने अधिकार कर लिया था। यदि मेहरौली लौह-स्तम्भ को चन्द्रगुप्त द्वितीय का स्वीकार करें तो यह भी स्पष्ट है कि उसने सिन्धु नदी और उसकी सहायक नदियों को पार कर सीमान्त प्रदेशों पर भी अपना अधिकार कर लिया था। अतः उसका पश्चिमी भारत में सम्पूर्ण पंजाब एवं सीमान्त प्रदेशों पर अधिकार स्थापित हो गया था।
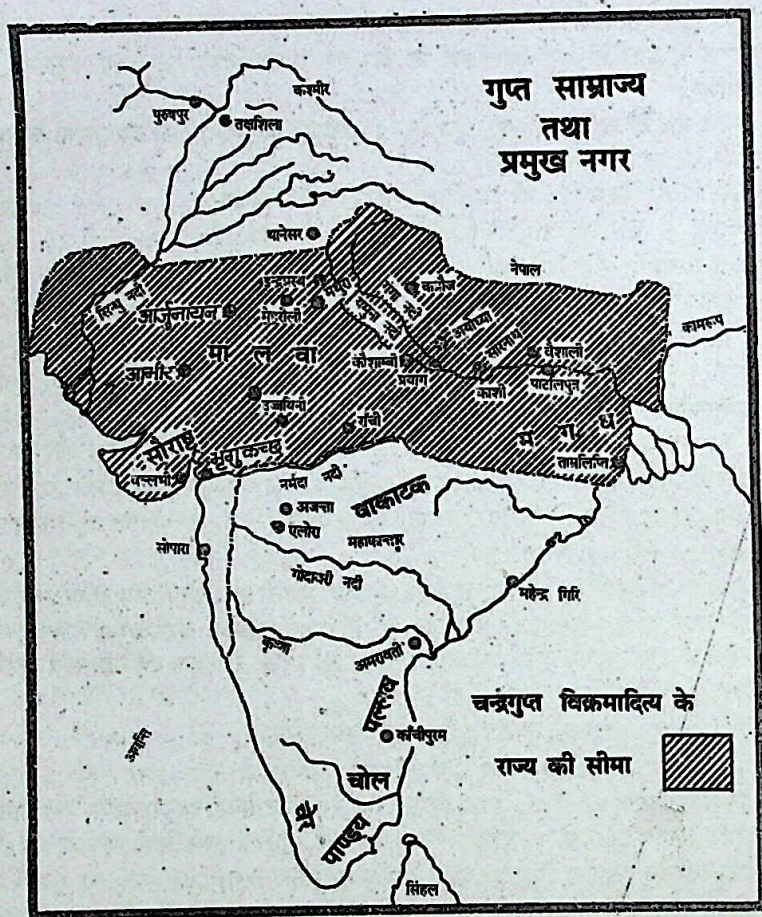
मानचित्र—गुप्त साम्राज्य तथा प्रमुख नगर।

(4) दक्षिणी भारत की विजय—गुप्त साम्राज्य की निर्बलता का लाभ उठाकर दक्षिणी राज्यों के शासकों ने गुप्त साम्राज्य की प्रभुसत्ता स्वीकार करना अस्वीकार कर दिया था, किन्तु चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने उन सभी शासकों को अपने पराक्रम के समक्ष पुनः गुप्त साम्राज्य की प्रभुसत्ता मानने को विवश कर दिया था। इस प्रकार, उसने दक्षिणी भारत पर भी अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था।

(5) साम्राज्य विस्तार—चारों दिशाओं में विजय प्राप्त करने के पश्चात् उसका साम्राज्य अत्यधिक विस्तृत हो गया था। उसका राज्य उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण दिशा में नर्मदा नदी तक तथा पूर्व दिशा में बंगाल से लेकर पश्चिम दिशा में काठियावाड़ तक के समस्त प्रदेशों तक विस्तृत था। इनके अतिरिक्त उत्तर प्रदेश, गुजरात, सौराष्ट्र तथा मालवा आदि प्रदेशों पर भी उसका अधिकार था। शकों एवं कुषाणों को अपने साम्राज्य से निकालने के पश्चात् उसने **'विक्रमादित्य'** की उपाधि ग्रहण की थी। इस प्रकार, वह एक दिग्विजयी सम्राट के रूप में भारतीय इतिहास में अमर है।

(6) वैवाहिक सम्बन्ध—चन्द्रगुप्त द्वितीय ने भी अपने वंश की परम्परानुसार समकालीन प्रतिभाशाली राजवंशों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर अपनी स्थिति को सुदृढ़ किया था। उसने उस समय के गौरवपूर्ण वंश नागवंश की राजकुमारी **'कुबेरनागा'** से स्वयं विवाह किया और अपनी पुत्री प्रभावती

का विवाह वाकाटक वंश के राजा रुद्रसेन द्वितीय के साथ किया। इस प्रकार, वाकाटकों से मैत्री होने पर गुप्तवंश के गौरव में चार चाँद लग गए थे। चन्द्रगुप्त द्वितीय के पुत्र कुमारगुप्त प्रथम का विवाह कदम्ब वंश की राजकुमारी के साथ हुआ था।

चन्द्रगुप्त द्वितीय का शासन-प्रबन्ध

यह सत्य है कि चन्द्रगुप्त द्वितीय महान् विजेता होने के साथ-साथ एक सफल एवं कुशल शासक भी था। उसके विशाल साम्राज्य की शासन-व्यवस्था अत्यधिक सुव्यवस्थित थी, जिसका ज्ञान हमें चीनी यात्री फाह्यान के यात्रा-विवरण के आधार पर प्राप्त होता है। उसके विवरण से चन्द्रगुप्त के प्रशासन की निम्नलिखित प्रमुख बातों का पता चलता है—

चन्द्रगुप्त द्वितीय का शासन-प्रबन्ध

(1) सम्राट एवं केन्द्रीय मन्त्रि-परिषद
(2) प्रान्तीय शासन
(3) विषय (जिले) एवं ग्राम का प्रशासन
(4) न्याय-व्यवस्था।

(1) सम्राट एवं केन्द्रीय मन्त्रि-परिषद्—शासन का सर्वोच्च सम्प्रभु राजा होता था, किन्तु वह स्वेच्छाचारी एवं निरंकुश नहीं था। शासन-कार्यों में उसकी सहायता के लिए एक केन्द्रीय मन्त्रि-परिषद् होती थी; किन्तु वह मन्त्रि-परिषद् का निर्णय मानने के लिए बाध्य नहीं था।

(2) प्रान्तीय शासन—शासन को सुचारु रूप से संचालित करने के उद्देश्य से साम्राज्य को कई भागों में बाँट दिया गया था तथा प्रत्येक प्रान्त (भुक्ति) के लिए एक प्रान्तपति नियुक्त था। बंगाल, बिहार एवं सौराष्ट्र प्रान्त चन्द्रगुप्त के काल के प्रसिद्ध प्रान्त थे।

(3) विषय (जिले) एवं ग्राम का प्रशासन—चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन-प्रबन्ध में प्रान्तों का विभाजन जिलों में किया गया था, जिन्हें **'विषय'** कहा जाता था। विषय का प्रशासनिक अधिकारी विषयपति कहलाता था। वह अन्य अधिकारियों की सहायता से सम्पूर्ण जिले का प्रशासन संचालित करता था। ग्राम प्रशासन की सबसे छोटी इकाई था। ग्राम प्रधान 'महत्तर' कहलाता था।

(4) न्याय-व्यवस्था—सम्राट चन्द्रगुप्त के समय में न्याय-व्यवस्था का समुचित प्रबन्ध था और वह सभी के लिए समान थी। सम्राट न्याय का अन्तिम निर्णायक होता था। अपराधों की संख्या बहुत कम थी। सामान्य अपराधियों को अर्थ-दण्ड दिया जाता था, जबकि भयंकर अपराधियों को मृत्यु-दण्ड तक दिया जाता था। निष्पक्ष एवं उपयुक्त न्याय-व्यवस्था के कारण अपराधी सदैव भयभीत रहते थे।

चन्द्रगुप्त द्वितीय का चरित्र एवं मूल्यांकन

चन्द्रगुप्त द्वितीय की चारित्रिक विशेषताओं का संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है—

(1) महान् कूटनीतिज्ञ—चन्द्रगुप्त महान् कूटनीतिज्ञ था। इसका प्रमाण दो तथ्यों के आधार पर प्राप्त होता है। **प्रथम**, उसने अपने ज्येष्ठ भाई रामगुप्त के शासनकाल में छद्मवेश में शकराज की हत्या कर गुप्त-कुल की रक्षा की। इस कूटनीतिक चाल में वह पूर्ण सफल रहा। **द्वितीय**, उसने अपना दिग्विजयी अभियान प्रारम्भ करने से पहले भारत के शक्तिशाली वंशों से वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित कर अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली थी।

(2) साहित्यानुरागी तथा कला-प्रेमी—उसके द्वारा ढलवाए गए सिक्कों पर बनी सुन्दर आकृतियाँ उसकी कलाप्रियता की ओर संकेत करती हैं। चन्द्रगुप्त द्वितीय ने सोने, चाँदी और ताँबे की बहुत सुन्दर और कलात्मक मुद्राएँ प्रचलित कराई थीं। चन्द्रगुप्त की आठ प्रकार की स्वर्ण मुद्राएँ और पाँच प्रकार की ताम्र-मुद्राएँ विश्वविख्यात हैं। ये मुद्राएँ उसके परम् वैष्णव होने की भी परिचायक हैं।

चन्द्रगुप्त द्वितीय का चरित्र एवं मूल्यांकन

(1) महान् कूटनीतिज्ञ
(2) साहित्यानुरागी तथा कला-प्रेमी
(3) धर्म-सहिष्णु सम्राट
(4) प्रजावत्सल शासक।

साहित्य के क्षेत्र में भी उसका योगदान सराहनीय है। उसने अनेक विद्वानों एवं साहित्यकारों को अपने राज्य में आश्रय दिया था। उसके राज्य के विद्वानों का समूह 'नव-रत्न' मण्डली के नाम से प्रसिद्ध है। इनमें **कालिदास** एवं **'वैद्यराज धन्वंतरि'**

आदि जैसे नौ प्रकाण्ड विद्वान् थे। उसके शासनकाल में संस्कृत भाषा की विशेष उन्नति हुई। फलस्वरूप उसके काल में संस्कृत भाषा में अनेक ग्रन्थ लिखे गए।

(3) धर्म-सहिष्णु सम्राट—चन्द्रगुप्त वैष्णव धर्म का अनुयायी था, किन्तु वह अन्य धर्मों का भी समान रूप से आदर करता था। चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का सेनापति और महासन्धिविग्रहक (विदेश मन्त्री) वीरसेन शैव धर्म को मानने वाला था। उसका एक और अन्य मन्त्री 'आम्रकद्दिव' बौद्ध धर्म को मानने वाला था। वह बिना धार्मिक भेदभाव के योग्य व्यक्तियों को उच्च पदों पर नियुक्त करता था। उसके काल में बौद्ध एवं जैन धर्मों का भी उत्थान हुआ था।

(4) प्रजावत्सल शासक—चन्द्रगुप्त अपनी प्रजा के हित का बहुत ध्यान रखता था। प्रजा के सुख के लिए ही उसने ऐसे समृद्ध राज्य की व्यवस्था की थी जिसके वैभव पर मुग्ध होकर अनेक इतिहासकारों ने उसके शासनकाल को 'स्वर्ण-युग' का नाम दिया है। राज्य की सर्वांगीण उन्नति एवं उत्तम शासन-व्यवस्था के कारण ही उसे विश्व के महान् शासकों में एक अविस्मरणीय स्थान प्राप्त हुआ है।

निष्कर्ष—उपर्युक्त गुणों के आधार पर चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य गुप्त वंश का ही नहीं, वरन् सम्पूर्ण भारत के महान् सम्राट के रूप में जाना जाता है। वास्तव में, उसकी उपलब्धियाँ स्पष्ट करती हैं कि उसमें शशि की शीतलता और सूर्य की गर्मी थी। इसी कारण यह कहा जाता है कि, **"वह चन्द्रवंश का चन्द्र ही नहीं, सूर्य भी है। उसकी उपलब्धियों के बल पर ही गुप्तकाल को स्वर्ण-युग कहना पूर्णतः न्यायोचित है।"**

प्रश्न 4—फाह्यान की यात्रा का वर्णन कीजिए। उसका विवरण भारतीय धर्म, सभ्यता और शासन-व्यवस्था पर क्या प्रकाश डालता है?

अथवा **फाह्यान के वर्णन के आधार पर भारतीय समाज का चित्रण कीजिए।** *(1997)*

उत्तर—

फाह्यान का यात्रा विवरण

फाह्यान का परिचय—फाह्यान एक चीनी युवक था। वह बौद्ध धर्म का अनुयायी था और बचपन से ही उसके हृदय में बौद्ध धर्म के प्रति विशेष आस्था एवं श्रद्धा थी। युवा होने पर उसने चीन में बौद्ध धर्म के विषय में अधिकतम ज्ञान प्राप्त किया, किन्तु फिर भी उसकी ज्ञान-पिपासा शान्त नहीं हुई अतः वह अपने ज्ञान की प्यास बुझाने चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय में भारत आया था। चीनी भाषा में 'फा' का अर्थ 'धर्म' तथा 'हियान' का अर्थ 'रक्षक' होता है। इस प्रकार, फाह्यान का अर्थ धर्म-गुरु से लगाया जाता है। वह भारत में लगभग छह वर्षों (405 ई० से 411 ई०) तक रहा। उसने **तक्षशिला विश्वविद्यालय** में रहकर संस्कृत तथा दर्शनशास्त्र का अध्ययन किया। वह सम्पूर्ण देश में विभिन्न स्थानों पर गया। वह पाटलिपुत्र में भी कई वर्ष रहा था। उसने अपने देश लौटकर अपने मित्रों को अपनी यात्रा का विवरण सुनाया जिसे उसके एक मित्र ने लेखबद्ध किया। उसके यात्रा-विवरण के सम्बन्ध में स्मिथ ने लिखा है, **"यद्यपि सामान्य जीवन का उसने आनुसंगिक रूप से उल्लेख किया है तथापि उसका विवरण विश्वसनीय है, क्योंकि उसका दृष्टिकोण सामान्य एवं पक्षपातरहित है।"**

फाह्यान के अनुसार भारत की तत्कालीन दशा

फाह्यान के विवरण के आधार पर भारत की तत्कालीन दशा का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(1) राजनीतिक दशा—फाह्यान के विवरण के आधार पर हम कह सकते हैं कि उस समय भारत की राजनीतिक दशा पर्याप्त संतोषप्रद थी। राजा प्रजा की इच्छा के कानूनों को लागू करने में विशेष रुचि रखता था। प्रत्येक नागरिक को अपने अधिकारों एवं कर्त्तव्यों के विषय में पूर्ण जानकारी थी। इससे व्यक्ति अपराध कम करते थे। साथ ही न्याय-व्यवस्था अधिक कठोर न थी। साधारण अपराधों के लिए आर्थिक दण्ड दिया जाता था, किन्तु गम्भीर अपराधों के लिए प्राण-दण्ड तक दिया जाता था। राजद्रोहियों को अंग-भंग का दण्ड दिया जाता था। राज्य में पूर्ण शान्ति थी। राज्य-कर अत्यन्त कम था। कृषि का एक-चौथाई भाग कर के रूप में लिया जाता था और इससे प्राप्त धन को कृषि की उन्नति में ही व्यय कर दिया जाता था।

फाह्यान के अनुसार भारत की तत्कालीन दशा

(1) राजनीतिक दशा
(2) नगरों की व्यवस्था
(3) सामाजिक दशा
(4) धार्मिक दशा
(5) पाटलिपुत्र नगर का विवरण।

(2) नगरों की व्यवस्था—फाह्यान ने तत्कालीन नगर व्यवस्था की भरपूर प्रशंसा की है। नगर में राजकीय औषधालय था, जहाँ निःशुल्क औषधि मिलती थी। नगर में अनेक कुएँ एवं यात्रियों के ठहरने के लिए धर्मशालाएँ थीं, जहाँ भोजन एवं निवास की समुचित व्यवस्था थी। आवागमन के लिए सड़कें पर्याप्त और संतोषप्रद अवस्था में थीं तथा सड़कों के दोनों ओर छायादार वृक्ष लगे हुए थे। शिक्षा का भी उचित प्रबन्ध था। इस प्रकार, उस समय की नगर व्यवस्था अत्यन्त संतोषप्रद थी।

(3) सामाजिक दशा—फाह्यान के विवरण के आधार पर ऐसा ज्ञात होता है कि मौर्यकाल की तुलना में इस काल के सामाजिक जीवन में बहुत अन्तर आ गया था। सामान्यतः जीव-हत्या नहीं होती थी, किन्तु निम्न जाति के व्यक्ति, जो चाण्डाल कहलाते थे, जीव-हत्या करते थे तथा सुरापान, लहसुन और प्याज का उपयोग करते थे। ये चाण्डाल लोग शहर के बाहर रहते थे और जब नगर में आते थे तो शोर करके आते थे जिससे उच्च वर्गों के व्यक्ति रास्ते से हट जाएँ। फाह्यान ने लिखा है, "माँस-भक्षण निन्दनीय समझा जाता है तथा प्याज और लहसुन का प्रयोग नहीं किया जाता है।" वह आगे लिखता है, "चाण्डाल लोग नगर से बाहर रहते हैं तथा नगर में प्रवेश करने पर उन्हें एक प्रकार के बाजे की आवाज करनी पड़ती है।" उसने लिखा है, **"अधिकतर व्यक्ति धनवान, धर्मप्रेमी, दानशील तथा अहिंसा के अनुयायी हैं। चोरों का तो नामोनिशान ही नहीं है।"** इस प्रकार, गुप्तकाल की सामाजिक दशा पर आधारित यह विवरण गुप्त सम्राटों द्वारा स्थापित उच्चकोटि की सामाजिक व्यवस्था और उन्नत न्याय व्यवस्था का परिचायक है।

(4) धार्मिक दशा—फाह्यान बौद्ध धर्म के सम्बन्ध में गहन ज्ञानार्जन का उद्देश्य लेकर भारत आया था। इसलिए उसने भारत की धार्मिक दशा का विस्तृत रूप में वर्णन किया है। फाह्यान के विवरण से पता चलता है कि गुप्त राजा वैष्णव धर्म के अनुयायी थे, परन्तु उनके शासनकाल में अन्य धर्मों को भी अपना विकास करने की पूर्ण स्वतन्त्रता थी। उसका कहना है कि, "बौद्ध धर्म इस काल में विकसित दशा में था तथा सारे देश में स्थान-स्थान पर विहार और स्तूप निर्मित थे।" फाह्यान ने स्वयं 1600 स्तूपों को देखा था। फाह्यान का कथन है कि, **"मध्य प्रदेश में धर्म के पतन के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे थे, किन्तु बंगाल और बिहार में यह अत्यन्त विकसित दशा में था। साधारणतः भारत के सभी स्थानों में धार्मिक सहिष्णुता विद्यमान थी।"** फाह्यान पाटलिपुत्र में मौर्य सम्राट अशोक द्वारा निर्मित भव्य भवनों को देखकर मन्त्रमुग्ध हो गया था। उसका विचार था कि ये भवन सामान्य व्यक्तियों के द्वारा बनाए गए नहीं हो सकते हैं, ये देवताओं द्वारा निर्मित प्रतीत होते हैं। उसके समय में कहीं-कहीं पर बौद्ध धर्म का ह्रास अवश्य हो रहा था एवं वैष्णव धर्म का अधिक वर्चस्व था, किन्तु राजा-प्रजा दोनों ही, सभी धर्मों के प्रति सहिष्णु थे।

(5) पाटलिपुत्र नगर का विवरण—फाह्यान पाटलिपुत्र भी गया और वहाँ पर तीन वर्ष तक रहा। उसके विवरण के अनुसार यह नगर उसके समय में बड़ा सुन्दर एवं सुव्यवस्थित था। यहाँ पर दो बौद्ध विहार स्थित थे, जिनमें 600 के लगभग बौद्ध भिक्षु निवास करते थे। उसके अनुसार पाटलिपुत्र शिक्षा और धर्म का महान् केन्द्र था। वहाँ अनेक राजकीय औषधालय थे, जहाँ निःशुल्क औषधि मिलती थी। यात्रियों के ठहरने के लिए धर्मशालाएँ थीं, जहाँ भोजन आदि की समुचित व्यवस्था थी।

इस प्रकार, भारतीय इतिहास में फाह्यान का यात्रा-विवरण ऐतिहासिक और सांस्कृतिक दृष्टियों से बहुत महत्त्वपूर्ण है।

प्रश्न 5—"गुप्तकाल प्राचीन भारत का स्वर्ण-युग था।" इस कथन की विवेचना कीजिए।
(1994, 97)

अथवा **"गुप्तकाल कला और साहित्य के क्षेत्र में महान् क्रियाशीलता का समय था।" विवेचना कीजिए।**

अथवा **गुप्तकाल को प्राचीन भारतीय इतिहास का स्वर्ण-काल क्यों कहा जाता है?** *(1991)*

अथवा **"गुप्तकाल भारतीय इतिहास का स्वर्ण-युग था।" कला एवं साहित्य के क्षेत्र में हुए विकास की दृष्टि से इस कथन की पुष्टि कीजिए।** *(1993)*

अथवा **साहित्य और कला के क्षेत्र में गुप्तकाल की उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।** *(1996)*

अथवा **"गुप्त शासनकाल में साहित्य, कला तथा विज्ञान के क्षेत्रों में अभूतपूर्व उन्नति हुई।" सविस्तार व्याख्या कीजिए।**

अथवा "गुप्तकाल भारतीय इतिहास का स्वर्ण-युग था।" समीक्षा कीजिए। *(1991, 99)*

अथवा "कला एवं साहित्य के क्षेत्र में गुप्तों का युग प्राचीन भारत के चरम विकास का प्रतिनिधित्व करता है।" इस कथन की विवेचना कीजिए। *(1997)*

अथवा "गुप्तकालीन स्वर्ण-युग मुख्यतः समुद्रगुप्त और चन्द्रगुप्त द्वितीय की रचना थी।" विवेचना कीजिए। *(1997)*

अथवा गुप्तकाल में साहित्य के विकास पर टिप्पणी लिखिए। *(1999)*

उत्तर—

गुप्तकाल : प्राचीन भारत का स्वर्ण-युग

भारतीय इतिहास में गुप्तकाल को 'स्वर्ण-युग' के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इसका प्रमुख कारण यह है कि उस काल में देश जितना समृद्ध एवं शान्तिमय था, उतना कभी नहीं हुआ। स्मिथ के शब्दों में, गुप्तकाल की सम्पूर्ण स्थिति का वर्णन इस प्रकार है, "हिन्दू भारत के इतिहास में महान् गुप्त सम्राटों का युग जितना सुन्दर और सन्तोषजनक है उतना कोई अन्य युग नहीं। इस युग में साहित्य, कला तथा विज्ञान की असाधारण उन्नति हुई और बिना अत्याचार के धर्म में क्रमागत परिवर्तन भी किए गए।" यह तथ्य सही भी है।

कुछ विद्वानों ने गुप्तकाल की समता रोम के इतिहास के 'आगस्टन काल' और इंग्लैण्ड की महान् साम्राज्ञी 'एलिजाबेथ प्रथम' के काल से की हैं। डॉ० बारनेट (Dr. Barnct) ने इसकी तुलना यूनान के इतिहास के 'पेरीक्लीज' के काल से की है। गुप्तकाल को 'स्वर्ण-युग' कहे जाने के पक्ष में निम्नलिखित तथ्यों का अवलोकन करना होगा—

(1) राजनीतिक एकता एवं संगठन का युग—गुप्त शासकों ने भारत के विभिन्न प्रदेशों को जीतकर सम्पूर्ण भारत को एक सूत्र में बाँध दिया था। डॉ० राधाकुमुद मुखर्जी के शब्दों में, **"गुप्त साम्राज्य अत्यन्त सुसंगठित राज्य था, जिसे अपनी सार्वभौम सम्प्रभुता की छाया में भारत के बहुत बड़े भाग पर राजनीतिक एकता स्थापित करने में सफलता प्राप्त हुई।"** गुप्त नरेश समुद्रगुप्त और उसके पुत्र चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य; दोनों ने ही राजनीतिक एकता स्थापित करने का प्रशंसनीय एवं महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। इसके अतिरिक्त, उस समय की राजनीतिक अवस्था की कुछ अन्य उल्लेखनीय विशेषताएँ इस प्रकार हैं—(i) राजा और प्रजा में देव-दास का-सा सम्बन्ध था। राजा प्रजा की सेवा करना अपना परम् कर्त्तव्य समझता था तथा जनता राजा को ईश्वर-तुल्य मानकर उसका आदर किया करती थी। (ii) राजा साहित्य, कला, विज्ञान और संगीत आदि को पर्याप्त प्रोत्साहन देते थे। (iii) राजा शासन का कार्य मन्त्रि-परिषद् के परामर्श से किया करता था। (iv) शासन-प्रबन्ध की सुविधा के लिए साम्राज्य कई प्रान्तों में बँटा हुआ था। (v) न्याय व्यवस्था न कठोर थी, न सरल। न्याय और दण्ड-व्यवस्था का उद्देश्य प्रत्येक मनुष्य को न्याय प्रदान करना था।

गुप्तकाल को प्राचीन भारत का स्वर्ण-युग कहे जाने के कारण

(1) राजनीतिक एकता एवं संगठन का युग
(2) आर्थिक समृद्धि का युग
(3) धार्मिक सहिष्णुता का युग
(4) साहित्य की उन्नति का युग
(5) ललित-कलाओं के चरमोत्कर्ष का युग :
(i) मूर्तिकला, (ii) चित्रकला
(iii) धातुकला, (iv) मुद्राकला
(6) विज्ञान की उन्नति का युग
(7) भारतीय संस्कृति के प्रसार का युग।

(2) आर्थिक समृद्धि का युग—इस युग में देश धन-धान्य से परिपूर्ण था। प्रजा पूर्ण सुखी थी। असन्तोष का कहीं नामोनिशान न था। गरीब-से-गरीब व्यक्ति को भरपेट भोजन एवं तन ढकने को पर्याप्त वस्त्र और समुचित आवास उपलब्ध था। ऐसी निर्धनता नहीं थी कि जीवनोपयोगी आवश्यक वस्तुएँ प्राप्त न हों। उस समय व्यापार भी चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया था। उस समय व्यापार में सोने की मुद्राओं द्वारा विनिमय होता था, जो गुप्तकालीन समाज की समृद्धि का परिचायक था।

देश में कृषि की व्यवस्था भी बहुत अच्छी थी। गेहूँ, चावल, गन्ना, जूट, सुपारी, ज्वार, बाजरा, मसाले आदि अनेक चीजें उत्पन्न होती थीं लेकिन कपड़े का उद्योग प्रमुख था। इनमें बहुत-सी चीजें विदेशों को

निर्यात होती थीं, जिनके बदले सोना लिया जाता था। गुप्त युग की इस आर्थिक समृद्धता के कारण ही भारत को 'सोने की चिड़िया' कहकर पुकारा जाता था।

(3) धार्मिक सहिष्णुता का युग—गुप्त सम्राट वैष्णव धर्मावलम्बी थे, किन्तु अन्य धर्मों के प्रति भी उनकी अत्यन्त उदार नीति थी। उन्होंने जैन, बौद्ध, शैव धर्म तथा अन्य हिन्दू देवी-देवताओं के उपासकों को अपने धर्मपालन के लिए हर प्रकार की स्वतन्त्रता प्रदान कर रखी थी। वास्तव में, गुप्त राज्य सच्चे अर्थों में धर्म निरपेक्ष राज्य था।

(4) साहित्य की उन्नति का युग—सभी गुप्त सम्राट साहित्य एवं कला के प्रेमी थे। उन्होंने संस्कृत भाषा को विशेष महत्त्व दिया था। इसीलिए गुप्तकाल में संस्कृत साहित्य की अत्यधिक उन्नति हुई। इनके शासनकाल में विद्वानों को विशेष राजकीय संरक्षण एवं सम्मान प्रदान किया गया था। गुप्तकालीन कवि 'कालिदास' की रचनाएँ 'कुमारसम्भव', 'मेघदूतम्', 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्', एवं 'रघुवंश' आदि संस्कृत भाषा की विश्व की महान् कृतियों के रूप में जानी जाती हैं। इसके अतिरिक्त, ज्ञान-विज्ञान के अन्य विषयों—गणित, ज्योतिष, दर्शनशास्त्र, वनस्पति विज्ञान, वैद्यकशास्त्र; आदि पर भी इस काल में गहन अध्ययन हुआ और नवीन ग्रन्थों की रचना हुई।

(5) ललित-कलाओं के चरमोत्कर्ष का युग—गुप्तकाल में कलाओं के क्षेत्र में अविस्मरणीय उन्नति हुई। इस युग में विभिन्न प्रकार की कलाओं और कलाविधियों की प्रशंसनीय और अभूतपूर्व प्रगति हुई। वस्तुतः यह विभिन्न कलाओं के उत्थान का युग था। इस युग में निम्नलिखित प्रकार की ललित-कलाओं की उन्नति हुई थी—

(i) मूर्तिकला—इस युग में मूर्तिकला की बहुत सराहनीय उन्नति हुई। बौद्ध, जैन और हिन्दू धर्म के प्रमुख देवी-देवताओं की अनेक मूर्तियाँ तत्कालीन कलाकारों के द्वारा बनाई गईं। इस काल में निर्मित बुद्ध की तीन प्रतिमाएँ अपनी भग्न अवस्था में 'मथुरा', 'सारनाथ' और 'सुल्तानगंज' में मिली हैं। गुप्तकालीन विष्णु की भी बहुत सुन्दर मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। ये प्रतिमाएँ अत्यन्त सौम्य मुखाकृति वाली हैं और उनके हाव-भाव बड़े अद्वितीय हैं।

(ii) चित्रकला—गुप्तकालीन चित्रकला के अद्वितीय उदाहरण आज भी 'अजन्ता', 'एलोरा', 'बाघ', 'सितनवासल' आदि गुफाओं में सुरक्षित हैं। इन गुफाओं में चट्टानों को काट-काट कर उनकी दीवारों पर उच्चकोटि की चित्रकारी की गई है। गुप्तकाल की एक विशेषता यह है कि इस काल की चित्रकला आध्यात्मिक भाव-भंगिमा से परिपूर्ण है। अजन्ता की चित्रकला इतनी भव्य है कि यह अकेले ही गुप्तकाल को 'स्वर्ण-युग' कहलवाने की अधिकारी है।

(iii) धातुकला—इस युग में धातुकला की भी विशेष उन्नति हुई जिसके उदाहरण नालन्दा से प्राप्त बुद्ध की ताम्रमूर्ति, सुल्तानगंज से प्राप्त बुद्ध की प्रतिमा ($7\frac{1}{2}$ फीट ऊँची) हैं। मेहरौली का लौह स्तम्भ तो विश्व-प्रसिद्ध कलाकृति है। इस पर आज तक जंग नहीं लगी है, जिसे देखकर आधुनिक विद्वान् भी आश्चर्यचकित हो जाते हैं।

(iv) मुद्राकला—गुप्त शासकों ने अपने-अपने शासनकाल में अनेक प्रकार की सोने, चाँदी एवं ताँबे की मुद्राएँ ढलवाईं, जिन पर विभिन्न देवी-देवताओं एवं पशु-पक्षियों की बनी आकृतियाँ तत्कालीन मुद्राकला की उन्नति की परिचायक हैं। ये सिक्के विभिन्न खुदाइयों में प्राप्त होते रहते हैं। इन मुद्राओं पर उत्कीर्ण अभिलेखों और देवी-देवताओं के चित्रों के आधार पर विभिन्न ऐतिहासिक तथ्यों का विवरण भी प्राप्त होता है। इन सिक्कों की यह विशेषता थी कि सभी सिक्कों की आकृतियाँ एवं तौल पूर्णतया समान होती थीं।

(6) विज्ञान की उन्नति का युग—इस युग में भूगोल एवं विज्ञान की भी बहुत उन्नति हुई! इस युग में प्रमुख वैज्ञानिक 'आर्यभट्ट', 'वराहमिहिर', 'ब्रह्मगुप्त' आदि थे। कहा जाता है कि गुप्तकालीन वैद्य 'धन्वंतरि' के पास एक विशेष प्रयोगशाला थी जिसमें भौतिक एवं रसायनशास्त्र की ऐसी सामग्री उपलब्ध थी, जिसके द्वारा वह बाल तक का भार ज्ञात कर सकता था। महान् गणितज्ञ आर्यभट्ट ने वर्गमूल एवं घनमूल

निकालने की विधि का निर्माण तथा दशमलव पद्धति का अन्वेषण इसी युग में किया था। इसके अतिरिक्त, आर्यभट्ट एवं वराहमिहिर आदि विद्वानों ने तारों एवं नक्षत्रों की सूक्ष्म गतिविधियों के सम्बन्ध में इतनी विश्वस्त सूचनाएँ दी हैं, जो आज के वैज्ञानिक युग में भी विश्वसनीय मानी जाती हैं।

(7) भारतीय संस्कृति के प्रसार का युग—इस युग में व्यापार के साथ-साथ भारतीय संस्कृति भी सुदूर देशों तक पहुँची थी। जावा, सुमात्रा, श्रीलंका, मलाया, कम्बोडिया आदि स्थानों से प्राप्त भग्नावशेषों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि वहाँ संस्कृत भाषा बोली, समझी व लिखी जाती थी तथा वे लोग भारतीय धर्म के अनुयायी रहे थे।

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि गुप्तकाल में भारत का सर्वांगीण विकास हुआ। इसीलिए यह युग '**स्वर्ण-युग**' कहलाया। इस सन्दर्भ में **मोरलैण्ड एवं चटर्जी** का यह कथन उपयुक्त ही है कि, "गुप्तकाल कला तथा साहित्य में बड़ी क्रियाशीलता का युग था। उस काल में साम्राज्य समृद्ध तथा सुशासित था।" **बारनेट** के शब्दों में, "गुप्तकाल भारत के साहित्यिक इतिहास में वही स्थान रखता है जो यूनान के इतिहास में पेरीक्लीज के युग को प्राप्त है।"

प्रश्न 6—गुप्तकालीन शासन-व्यवस्था का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

अथवा **गुप्तकालीन शासन-व्यवस्था की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।** *(1993)*

उत्तर—

गुप्तकालीन शासन-व्यवस्था

गुप्त सम्राटों ने लगभग 200 वर्षों तक प्रायः समस्त उत्तर भारत पर राज्य किया। उन्होंने एक सुव्यवस्थित तथा सुसंगठित शासन-व्यवस्था स्थापित की। गुप्तकालीन शासन-व्यवस्था का संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है—

(1) सम्राट—गुप्तों की शासन-व्यवस्था राजतन्त्रात्मक थी। सम्राट राज्य का प्रमुख होता था। वह सेना, न्याय तथा शासन का प्रधान होता था। वह विभिन्न विभागों पर अपना पूर्ण नियन्त्रण रखता था। गुप्त सम्राट महाराजाधिराज, परमेश्वर, विक्रमादित्य आदि उपाधियाँ धारण करते थे। वे प्रजा के हित का सदैव ध्यान रखते थे।

गुप्तकालीन शासन-व्यवस्था

(1) सम्राट
(2) मन्त्रि-परिषद्
(3) राज्य कर्मचारी
(4) प्रान्तीय शासन
(5) विषय (जिले) का शासन
(6) गाँव तथा नगर का शासन
(7) राजकीय आय के साधन
(8) सैनिक संगठन
(9) न्याय व्यवस्था
(10) आरक्षी या पुलिस व्यवस्था।

(2) मन्त्रि-परिषद्—सम्राट को प्रशासनिक कार्यों में परामर्श देने के लिए एक मन्त्रि-परिषद् होती थी। सम्राट उसका परामर्श स्वीकार करने के लिए बाध्य नहीं था। मन्त्रियों का प्रधान प्रधानमन्त्री कहलाता था। मन्त्रियों में सन्धि विग्रहक (परराष्ट्र मन्त्री), अक्षापटलाधिकृत (राजकीय अभिलेखों का मन्त्री) आदि होते थे। युवराज भी मन्त्रि-परिषद् का सदस्य होता था।

(3) राज्य कर्मचारी—राज्य के प्रमुख अधिकारियों की नियुक्ति सम्राट द्वारा होती थी। गुप्तकाल के प्रमुख अधिकारी महादण्डनायक, रण-भण्डागारिक, राज्याशिक, सर्वाध्यक्ष आदि थे। राज्य के विभिन्न विभागों को अधिकरण कहा जाता था।

(4) प्रान्तीय शासन—सम्पूर्ण गुप्त साम्राज्य अनेक प्रान्तों में विभक्त था जिनको भुक्ति कहा जाता था। भुक्ति के शासक प्रायः राजकुल के होते थे, उन्हें युवराज या कुमारामात्य कहा जाता था। कुछ भुक्तियों में उपरिक (प्रान्तपति) होते थे। इनके अधीन सेनापति, दण्डनायक आदि होते थे। प्रान्तपतियों की नियुक्ति सम्राट द्वारा होती थी। प्रान्तपति का मुख्य कार्य प्रान्त में शान्ति-व्यवस्था बनाए रखना था।

(5) विषय (जिले) का शासन—प्रत्येक भुक्ति विषयों अथवा जिलों में विभाजित होती थी। विषय का प्रधान विषयपति होता था जिसकी नियुक्ति सम्राट करता था। विषय के शासन के संचालन हेतु एक परिषद् होती थी जिसके सदस्यों में साहूकार, व्यापारी, शिल्पकार, लेखक आदि होते थे।

(6) गाँव तथा नगर का शासन—गाँव का प्रधान मुखिया कहलाता था। उसकी सहायता के लिए पंचायत होती थी। पंचायत ग्राम की रक्षा, न्याय तथा सार्वजनिक सेवा-सम्बन्धी कार्य करती थी।

नगर का प्रबन्ध 'पुरपाल' करता था। शासन के कार्यों में सहायता देने के लिए नगर के प्रमुख व्यक्तियों की एक सभा होती थी।

(7) राजकीय आय के साधन—राजा की ओर से प्रजा पर अनेक कर लगाए जाते थे। इन करों में भूमि-कर प्रधान था। भूमि कर पैदावार का 1/4 भाग तक लिया जाता था। चुंगी राज्य की आय का एक अन्य साधन थी। इसके अतिरिक्त जंगलों, चरागाहों, खानों तथा जुर्मानों से भी आय होती थी।

(8) सैनिक संगठन—गुप्त सम्राटों ने सेना के संगठन की ओर विशेष ध्यान दिया था। उनकी सेना चार प्रकार की थी अर्थात् हाथी, घोड़े, रथ तथा पैदल। सम्राट स्वयं सैनिकों की भर्ती करता था। वह स्वयं सेना का प्रधान सेनापति होता था।

(9) न्याय-व्यवस्था—सम्राट स्वयं सर्वोच्च न्यायाधीश था। उसके अतिरिक्त केन्द्र, भुक्ति तथा विषयों में भी न्यायाधीश नियुक्त किए जाते थे। गुप्तकाल में दण्ड-विधान कठोर नहीं था। प्राण-दण्ड नहीं दिया जाता था। विद्रोहियों का अंग भंग कर दिया जाता था। साधारण अपराध के लिए जुर्माने किए जाते थे। चोरी तथा डकैती नहीं होती थी। फाह्यान ने लिखा है कि उसे मार्ग में कहीं चोर या डाकू नहीं मिले थे।

(10) आरक्षी या पुलिस विभाग—आन्तरिक शान्ति तथा सुव्यवस्था के लिए पुलिस विभाग की स्थापना की गई थी। इसका प्रधान दण्डाधिकारी कहलाता था। उसके अधीन अन्य कर्मचारी होते थे। पुलिस विभाग के अन्तर्गत गुप्तचर विभाग भी था।

प्रश्न 7—गुप्त साम्राज्य के पतन के कारणों का वर्णन कीजिए। *(1992)*

अथवा **गुप्तकाल के पतन के कारणों की समीक्षा कीजिए।** *(1994)*

अथवा **"गुप्त साम्राज्य के पतन का कारण मुख्यतः हूणों का आक्रमण था।" इस मत की विवेचना कीजिए।** *(1997)*

उत्तर—

गुप्त साम्राज्य के पतन के कारण

समुद्रगुप्त तथा चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन के पश्चात् गुप्त साम्राज्य के अन्य शासक, गुप्त साम्राज्य की पूर्व प्रतिष्ठा के अनुरूप शासन न कर सके, जिसके परिणामस्वरूप छठी शताब्दी के प्रारम्भ में गुप्त साम्राज्य के पतन की प्रक्रिया आरम्भ हो गई। गुप्त साम्राज्य के पतन के कारणों का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है—

(1) अयोग्य एवं दुर्बल उत्तराधिकारी—गुप्त साम्राज्य का उत्थान समुद्रगुप्त, चन्द्रगुप्त द्वितीय तथा कुमारगुप्त के अधीन अपनी चरम सीमा पर था। स्कन्दगुप्त के पश्चात् गुप्त साम्राज्य के पतन की प्रक्रिया प्रारम्भ हो गई। पुरुगुप्त तथा बुद्धगुप्त आदि शासकों में इतने विशाल साम्राज्य को नियन्त्रित करने की न तो सामर्थ्य थी और न ही उनमें प्रशासनिक कुशलता विद्यमान थी।

गुप्त साम्राज्य के पतन के कारण

(1) अयोग्य एवं दुर्बल उत्तराधिकारी
(2) उत्तराधिकार के नियमों का अभाव
(3) बौद्ध धर्म का उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ प्रभाव
(4) सीमाओं की सुरक्षा की अवहेलना
(5) आन्तरिक विद्रोह
(6) साम्राज्य की विशालता
(7) हूणों के आक्रमण।

(2) उत्तराधिकार के नियमों का अभाव—गुप्त साम्राज्य के अन्तर्गत उत्तराधिकार की समुचित व्यवस्था का अभाव था जिसके कारण प्रत्येक शासक की मृत्यु के पश्चात् सिंहासन प्राप्ति हेतु संघर्ष आवश्यक था। राजवंश पारस्परिक विवादों, राजकीय षड्यन्त्रों तथा गुप्त योजनाओं का केन्द्र बन गया था। यह कहा जाता है कि स्कन्दगुप्त के राजधानी से अनुपस्थित होने पर उसका भ्राता पुरुगुप्त स्वयं साम्राज्य का शासक बन गया था।

(3) बौद्ध धर्म का उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ प्रभाव—गुप्त साम्राज्य के प्रारम्भिक शासक हिन्दू धर्म के अनुयायी थे। अतः उन्होंने अपने शासनकाल में हिन्दू धर्म को विकसित करने हेतु अथक प्रयास किए थे। लेकिन उनके पश्चात् आने वाले अधिकांश शासक बौद्ध धर्म के प्रति आकृष्ट होने लगे। इनमें बालादित्य तथा बुद्धगुप्त प्रमुख थे।

(4) सीमाओं की सुरक्षा की अवहेलना—गुप्त साम्राज्य के अन्तिम शासकों द्वारा सेना के संगठन तथा सीमाओं की रक्षा की अवहेलना प्रारम्भ कर दी गई थी। उनके द्वारा सतलज के पार के क्षेत्र को विजित करने का प्रयत्न नहीं किया गया, जबकि यह क्षेत्र सामरिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण था। सीमाओं पर समुचित रक्षा व्यवस्था के अभाव के कारण ही हूण जाति के आक्रमण प्रारम्भ हो गए थे।

(5) आन्तरिक विद्रोह—केन्द्रीय सत्ता के निर्बल हो जाने के कारण विद्रोह होने स्वाभाविक थे। अतः साम्राज्य की निर्बलता के कारण अनेक राज्यों में विद्रोह प्रारम्भ हो गए तथा प्रान्तों के गवर्नरों ने भी विद्रोह प्रारम्भ कर दिया। स्कन्दगुप्त को भी इस प्रकार के अनेक आन्तरिक विद्रोहों का सामना करना पड़ा था। गुप्त शासक कुमारगुप्त की मृत्यु भी एक ऐसे ही विद्रोह के अनन्तर हुई थी। इन आन्तरिक विद्रोहों के परिणामस्वरूप अनेक छोटे राज्य; जैसे—कन्नौज, वल्लभी तथा मालवा आदि स्वतन्त्र हो गए थे।

(6) साम्राज्य की विशालता—गुप्त साम्राज्य का विस्तार वहुत अधिक हो गया था, लेकिन उसके अनुरूप साम्राज्य की सुरक्षा व्यवस्था इतनी अधिक सुदृढ़ न थी। दूरस्थ प्रान्तों में हुए विद्रोहों का नियन्त्रण करना अति कठिन कार्य था। उस काल में आवागमन के साधनों का विकास न होने के कारण भी प्रान्तों पर प्रभावी नियन्त्रण कठिन था। साम्राज्य के इस विस्तार ने पतन की प्रक्रिया को और अधिक तीव्र कर दिया।

(7) हूणों के आक्रमण—गुप्त साम्राज्य की सीमाओं की समुचित व्यवस्था के अभाव में हूणों के आक्रमण प्रारम्भ हो गए थे। हूणों के आक्रमण गुप्त शासक कुमारगुप्त के काल में आरम्भ हुए। वास्तव में हूणों द्वारा किए गए आक्रमण गुप्त साम्राज्य के पतन के मुख्य कारणों में से एक था। प्रसिद्ध इतिहासकार वी० ए० स्मिथ के अनुसार, **"पाँचवीं और छठी शताब्दी के हूणों के बर्बर आक्रमणों ने उत्तरी और पश्चिमी भारत के राजनीतिक और सामाजिक इतिहास में एक विशेष परिवर्तन ला दिया। उन्होंने गुप्त राज्य को छिन्न-भिन्न करके अनेक नए राज्यों के जन्म के लिए क्षेत्र तैयार कर दिया।"**

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि गुप्त साम्राज्य के पतन के लिए अनेक कारण उत्तरदायी थे। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध इतिहासकार डॉ० मजूमदार के शब्द अत्यन्त सारगर्भित हैं, **"गुप्त राज्य की अवनति और पतन के वही कारण थे, जो पुराने समय में मौर्य राज्य और पिछले समय में मुगल राज्य की अवनति के थे।"**

प्रश्न 8—भारत पर हूणों के आक्रमणों का संक्षिप्त विवरण दीजिए। इन आक्रमणों का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा? *(1999)*

उत्तर—

हूणों का परिचय

हूण एक खानाबदोश और जंगली जाति थी जिसका मूल स्थान मध्य एशिया का स्टेपीज प्रदेश था। इस जाति के लोग निर्दयी, बर्बर और युद्ध-प्रेमी थे। परिस्थितियोंवश इन्हें अपना मूल स्थान त्यागना पड़ा और आजीविका की खोज में ये इधर-उधर भटकने लगे। फिर उन्होंने पश्चिम की ओर पलायन किया और दो शाखाओं में विभक्त हो गए—एक टोली वोल्गा नदी की ओर चली गई और दूसरी टोली ऑक्सस नदी की ओर पलायन कर गई। हूणों की जो टोली यूरोप की ओर गई। उसे 'काले हूण शाखा' की संज्ञा दी गई। ऑक्सस नदी की ओर पलायन करने वाले हूण 'श्वेत हूण' कहलाए। इन्होंने ऑक्सस नदी को पार करके फारस पर अधिकार कर लिया और भारत की ओर कूच करने के लिए मार्ग प्रशस्त कर लिया।

हूणों का आक्रमण

हूणों ने सर्वप्रथम सन् 458 ई० में भारत पर आक्रमण किया। इस समय भारत पर स्कन्दगुप्त का शासन था। वह एक साहसी, वीर एवं पराक्रमी राजा था। अतः हूणों का भारत पर आक्रमण विफल रहा और उन्हें वापस जाने के लिए विवश होना पड़ा। कुछ समय तक हूण शान्त रहे और पुनः अपनी सम्पूर्ण शक्ति के साथ 484 ई० में फारस पर आक्रमण किया और वहाँ के ससानी वंश के शासक 'फिरोज' को मारकर फारस पर अपना अधिकार कर लिया। फारस विजय के उपरान्त हूणों ने भारत पर आक्रमण किया। इस समय गुप्त साम्राज्य अपने पतन के कगार पर था। हूणों के इस द्वितीय आक्रमण ने गुप्त साम्राज्य का पतन कर दिया। इस समय हूणों का नेता तोरमाण था।

तोरमाण

तोरमाण के विषय में विद्वानों की भिन्न विचारधाराएँ हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार तोरमाण हूण नहीं था, बल्कि कुषाण था तथा उसने हूणों से मित्रता करके उनका नेतृत्व किया था। इस विषय में डॉ० मजूमदार का कहना है कि, "यद्यपि इस बात के कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलते हैं कि तोरमाण हूण था फिर भी परिस्थिति जन्य प्रमाणों से ऐसा प्रतीत होता है कि वह हूण हीं था।" मुद्राओं से यह ज्ञात होता है कि तोरमाण विदेशी था तथा हूणों से उसका निकट का सम्बन्ध था। उसने अपने शौर्य के बल पर गुप्त साम्राज्य के अनेक प्रान्तों पर अपना अधिकार कर लिया तथा मध्य भारत तक अपनी शक्ति को पर्याप्त बढ़ा लिया था। 'कुवलय माला' व 'कुर अभिलेख' से यह ज्ञात होता है कि पंजाब पर उसने आक्रमण किया था और उसे अपने अधिकार में कर लिया था तथा मालवा को भी अपने अधीन कर लिया था। अनुमानतः 515 ई० में तोरमाण की मृत्यु हुई थी।

मिहिरकुल

सन् 515 ई० में तोरमाण की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र मिहिरकुल हूणों का नेता बना। अनेक प्रमाणों से पता चलता है कि वह अपने पिता से भी अधिक क्रूर एवं निर्दयी था। उसे नृशंसता में आनन्द आता था। ह्वेनसांग के लेखों से पता चलता है कि पहले मिहिरकुल बौद्ध धर्म का अनुयायी था किन्तु बाद में उसने बौद्धों पर घोर अत्याचार किए और उनके स्तूपों व विहारों को नष्ट कर दिया। मिहिरकुल का संघर्ष मगध-नरेश राजा वालादित्य से भी हुआ, जिसमें उसकी पराजय हुई तथा मिहिरकुल को वालादित्य ने वन्दी बना लिया, किन्तु बाद में उसे मुक्त कर दिया। यहाँ से वह कश्मीर गया और वहाँ के राजा से मित्रता कर ली। किन्तु कुछ समय के उपरान्त एक षड्यन्त्र रचकर उसने कश्मीर पर अपना अधिकार कर लिया। मिहिरकुल अपने राज्य का अधिक दिनों तक सुख नहीं भोग सका और शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई। मिहिरकुल की मृत्यु के सम्बन्ध में सभी विद्वान मतैक्य नहीं हैं। कुछ विद्वान 540 ई० में तथा कुछ अन्य विद्वान 547 ई० में उसकी मृत्यु मानते हैं।

भारत पर हूणों के आक्रमणों का प्रभाव

भारत पर हूणों के आक्रमणों का राजनीतिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में निम्नलिखित प्रभाव पड़ा, परन्तु ये समस्त प्रभाव नकारात्मक ही रहे—

(1) राजनीतिक क्षेत्र पर—भारत पर हूणों के आक्रमणों का सबसे अधिक प्रभाव भारतीय राजनीति पर पड़ा। हूण आक्रमणों से भारत के अनेक छोटे-छोटे राज्यों का अस्तित्व समाप्त हो गया। हूणों ने गुप्त साम्राज्य के समस्त साधनों पर तुषारापात करके गुप्त साम्राज्य का पतन अवश्यम्भावी बना दिया। इनके आक्रमण के कारण भारत की राजनीतिक एकता भंग हो गई और एक बार फिर आंचलिक राज्यों का उदय हुआ।

(2) सामाजिक क्षेत्र पर—हूण अधिक संख्या में भारत-भूमि पर आए थे और यहाँ स्थायी रूप से बस गए थे, जिसके परिणामस्वरूप भारतीय जातियों के साथ इनका सम्मिश्रण हुआ और अन्तर्जातीय विवाह हुए। इस कारण अनेक नई जातियों का जन्म हुआ। जैसा कि हैवेल महोदय का मत है कि, "कुछ राजपूत वंश विदेशी तत्त्वों के मिश्रण का परिणाम हैं।"

(3) सांस्कृतिक क्षेत्र पर—हूणों ने अपने आक्रमण के समय भारत की सुन्दर कलाकृतियों को नष्ट कर दिया, अनेक मन्दिरों एवं विहारों को गिरा दिया। इसके साथ-साथ उन्होंने इतिहास के मूल स्रोतों को भी नष्ट करने का प्रयत्न किया। यह उनके आक्रमण का दुष्परिणाम है कि वैदिक धर्म से नैतिकता दूर होने लगी। हूणों के अपवित्र भोजन, असभ्य आचरण का भारतीयों पर असर पड़ा।

(4) ऐतिहासिक क्षेत्र पर—चूँकि हूण बर्बर थे। उन्होंने भारतीय संस्कृति, कलाकृतियों, भवनों, स्तूपों, मन्दिरों आदि को नष्ट कर दिया था। यही कारण है कि आज उत्तर-पश्चिम में कनिष्क के समय के किसी भी मठ, भवन एवं स्तूपों के अवशेष प्राप्त नहीं होते। हूणों के इस कार्य से भारत का इतिहास जानने की सामग्री का अभाव है।

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि हूणों के आक्रमणों से भारत ने कुछ भी पाया नहीं, वरन् दुष्परिणाम ही भोगे।

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—गुप्तवंश का संस्थापक कौन था?

अथवा **टिप्पणी लिखिए—चन्द्रगुप्त प्रथम।**

उत्तर—गुप्तवंश का संस्थापक और प्रथम महत्त्वपूर्ण सम्राट चन्द्रगुप्त प्रथम था। उसने **'महाराजाधिराज'** की उपाधि धारण की थी। चन्द्रगुंप्त प्रथम का विवाह लिच्छवी वंश की राजकुमारी कुमारदेवी के साथ हुआ था। प्रयाग-प्रशस्ति से इसके पिता और दादा के नाम क्रमशः महाराजा घटोत्कच और महाराजा श्रीगुप्त प्राप्त हुए हैं। परन्तु श्रीगुप्त या घटोत्कच को वास्तविक संस्थापक स्वीकार करने का कोई प्रबल आधार नहीं है। इनके नाम पूर्वजों के नाम के उल्लेख के रूप में दे दिए गए हैं, वे किसी व्यवस्थित राज्य के स्वतन्त्र स्वामी नहीं थे। साथ ही उनके लिए महाराजाधिराज की उपाधि का प्रयोग भी नहीं किया गया था। अधिकांश विद्वान् इन तर्कों के आधार पर चन्द्रगुप्त प्रथम को ही गुप्तवंश का संस्थापक मानते हैं।

प्रश्न 2—इलाहाबाद की प्रशस्ति के विषय में आप क्या जानते हो? *(1992)*

उत्तर—

इलाहाबाद प्रशस्ति

इलाहाबाद की प्रशस्ति समुद्रगुप्त के शासनकाल के इतिहास की जानकारी का एक प्रामाणिक साधन है। इस प्रशस्ति स्तम्भ का निर्माण पुरातन समय में सम्राट अशोक ने करवाया था। इसमें एक ओर अशोक की धर्म-विजयों का उल्लेख है और दूसरी ओर समुद्रगुप्त की विजयों का वर्णन किया गया है। समुद्रगुप्त के दरबारी कवि हरिषेण ने 33 पंक्तियों में संस्कृत भाषा में समुद्रगुप्त की विजयों, चरित्र एवं उपलब्धियों का उल्लेख इस प्रयाग प्रशस्ति में किया है। यह समुद्रगुप्त की विजयों की विस्तृत जानकारी प्रदान करती है। इससे यह भी पता चलता है कि उसने पराजित राष्ट्रों के प्रति अलग-अलग प्रकार की नीतियाँ अपनाई थीं।

प्रश्न 3—रामगुप्त पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। *(1999)*

उत्तर—

रामगुप्त

रामगुप्त, समुद्रगुप्त का ज्येष्ठ पुत्र था। उसकी पत्नी का नाम ध्रुवस्वामिनी (ध्रुवदेवी) था, लेकिन रामगुप्त बड़ा अयोग्य व विलासी शासक था। उसकी दुर्बलता का लाभ उठाकर शकराज ने उस पर आक्रमण कर दिया। रामगुप्त अपनी पत्नी के बदले में शकराज से सन्धि करने के लिए तैयार हो गया। लेकिन रामगुप्त के भाई चन्द्रगुप्त द्वितीय ने षड्यन्त्र रचकर स्त्री-वेश बनाकर, शत्रु के शिविर में जाकर शकराज की हत्या कर दी और अपने कुल के सम्मान को सुरक्षित रखा। कायर रामगुप्त अपने भाई चन्द्रगुप्त द्वितीय के द्वारा ही मार डाला गया था। रामगुप्त को अनेक विद्वान् काल्पनिक स्वीकार करते थे। अब गुप्तकालीन ताम्र-मुद्राएँ मिल जाने और तीन जैन-तीर्थंकरों की प्रतिमा की चौकी पर इसका नाम प्राप्त हो जाने से यह स्पष्ट हो गया है कि यही रामगुप्त गुप्तकाल से सम्बन्धित था।

प्रश्न 4—कुमारगुप्त प्रथम पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर—

कुमारगुप्त प्रथम

कुमारगुप्त प्रथम चन्द्रगुप्त द्वितीय और ध्रुवस्वामिनी का पुत्र था। इसने लगभग 414 से 455 ई० तक या उसके कुछ समय पश्चात् तक शासन किया। इसने अश्वमेध यज्ञ करके 'कुमारगुप्त महेन्द्रादित्य' की उपाधि धारण की थी। इसके शासनकाल में पुष्यमित्रों के अनेक आक्रमण हुए। यह वैष्णव धर्म का अनुयायी और कार्तिकेय देवता का उपासक था। इसके काल में जैन, शैव, वैष्णव और बौद्धों के अनेक भव्य मन्दिरों का निर्माण हुआ, जो इसकी धर्म-सहिष्णुता का परिचायक है। इसने विदेशी शासकों से कूटनीतिक सम्बन्ध स्थापित किए थे। वह विदेशी शासकों को उपहार भेजा करता था। इसका महत्त्व इस दृष्टि से अधिक है कि इसने पुष्यमित्र जाति और हूणों से भारत को सुरक्षित रखा था।

प्रश्न 5—समुद्रगुप्त को भारत का नेपोलियन कहने के कोई चार तर्क लिखिए। *(1990)*

उत्तर—समुद्रगुप्त को अग्रांकित चार तर्कों के आधार पर भारत का नेपोलियन कहा जाता है—

(1) समुद्रगुप्त नेपोलियन की तरह महान् योद्धा तथा विजेता था। इसने समकालीन सभी भारतीय राजाओं को पराजित करने के साथ-साथ विदेशी राज्यों को भी पराजित किया था।

(2) नेपोलियन की भाँति समुद्रगुप्त ने भारतीय राजाओं को नतमस्तक कर दिया था तथा जिस प्रकार नेपोलियन ने फ्रांसीसी साम्राज्य को संगठित किया था, उसी प्रकार समुद्रगुप्त ने भी भारतीय साम्राज्य को संगठित कर दिया था।

(3) अनेक राजाओं ने समुद्रगुप्त की अधीनता उसी प्रकार स्वीकार कर ली थी; जैसे नेपोलियन की अधीनता स्पेन, हॉलैण्ड आदि ने स्वीकार की थी।

(4) अनेक विदेशी राजाओं ने समुद्रगुप्त की नेपोलियन की भाँति अधीनता स्वीकार की।

प्रश्न 6—फाह्यान द्वारा वर्णित पाटलिपुत्र नगर के विवरण का संक्षिप्त उल्लेख कीजिए। *(1993)*

अथवा **पाटलिपुत्र के भवनों, कलाकृतियों तथा ऐतिहासिक महत्त्व का उल्लेख कीजिए।** *(1995, 96)*

उत्तर—पाटलिपुत्र नगर गुप्त शासकों की राजधानी थी। यह एक भव्य नगर था। इस नगर के पुराने राजमहलों को फाह्यान ने अपनी आँखों से देखा था। पाटलिपुत्र नगर के सम्बन्ध में उसने इस प्रकार विवरण प्रस्तुत किया था, "नगर में अशोक राजा का प्रासाद और सभाभवन है। सब असुरों के बनाए हुए हैं। पत्थर चुनकर भीत और द्वार बनाए गए हैं। इनमें सुन्दर खुदाई और पच्चीकारी है। ऐसे भवन इस लोक के व्यक्ति नहीं बना सकते। ये आज तक वैसे ही हैं। इनके अतिरिक्त, यहाँ पर व्यवस्थित धर्मशालाएँ हैं, यहाँ पर राजकीय औषधालय हैं, जिनमें निःशुल्क औषधि मिलती है। यह अन्तर्राष्ट्रीय गतिविधियों की भी नगरी है।"

प्रश्न 7—हूणों के आक्रमण का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा?

उत्तर—

हूणों के आक्रमण का भारत पर प्रभाव

विदेशी हूणों के आक्रमण का भारत पर निम्नलिखित प्रभाव पड़ा—

(1) **गुप्त साम्राज्य का पतन**—हूणों के आक्रमण से भारत की राजनीतिक एकता छिन्न-भिन्न हो गई तथा अन्त में गुप्त साम्राज्य का पतन हो गया।

(2) **हिन्दू समाज पर प्रभाव**—हूणों के आक्रमण से भारतीय आचार-विचार तथा सामाजिक मूल्यों में परिवर्तन हो गया।

(3) **हिन्दू धर्म में कुप्रथाओं का उदय**—हूणों के घृणित रीति-रिवाजों से हिन्दू धर्म में अनेक कुरीतियाँ उत्पन्न हो गईं।

(4) **नवीन जाति का प्रादुर्भाव**—हूणों के आक्रमण के फलस्वरूप राजपूतों की अनेक वर्णसंकर जातियाँ उत्पन्न हो गई थीं।

प्रश्न 8—स्कन्दगुप्त पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। *(1990, 94)*

उत्तर—

स्कन्दगुप्त

स्कन्दगुप्त सम्राट कुमारगुप्त प्रथम का ज्येष्ठ पुत्र था। स्कन्दगुप्त लगभग 454 अथवा 455 ई० में गद्दी पर बैठा। ऐसी मान्यता है कि उसने उत्तराधिकार के युद्ध में अपने भाइयों को पराजित करके गद्दी प्राप्त की थी। उसके काल की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण घटना हूणों का आक्रमण है। स्कन्दगुप्त ने अत्यधिक वीरता के साथ हूणों को पराजित करके अपने विशाल साम्राज्य की रक्षा की। स्कन्दगुप्त एक प्रजा-हितकारी सम्राट था। उसने सुदर्शन झील का जीर्णोद्धार कराया तथा अनेक जन-हितकारी कार्य किए थे। इसने लगभग 467 ई० तक कुशलतापूर्वक राज्य किया था।

प्रश्न 9—गुप्तकालीन दो प्रमुख साहित्यकारों के नाम तथा उनकी एक-एक रचना का नाम लिखिए।

उत्तर—गुप्तकालीन प्रसिद्ध साहित्यकारों में कालिदास का नाम सर्वोपरि है। वह सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के नवरत्नों में से एक थे। उन्होंने कई नाटक तथा महाकाव्यों की रचना की थी। अभिज्ञानशाकुन्तलम् उनका प्रसिद्ध नाटक है।

गुप्तकाल का दूसरा प्रसिद्ध साहित्यकार विशाखदत्त था। उसने मुद्राराक्षस नामक नाटक लिखा। इस नाटक में मौर्यकाल की राजनीतिक दशा का वर्णन किया गया है।

प्रश्न 10—समुद्रगुप्त द्वारा विजित आर्यावर्त्त के राजाओं में से किन्हीं चार राजाओं के नाम लिखिए। *(1990)*

उत्तर—समुद्रगुप्त ने आर्यावर्त्त के नौ नागवंशीय राजाओं पर विजय प्राप्त की थी। उनमें से चार राजाओं के नाम निम्न प्रकार थे—

(1) नागसेन, (2) चन्द्रवर्मन, (3) गणपति नाग, (4) बलवर्मन।

प्रश्न 11—गुप्तकाल स्वर्ण-युग क्यों कहा जाता है? इसके समर्थन में दो कारणों का वर्णन कीजिए। *(1996)*

उत्तर—गुप्तकाल को स्वर्णयुग कहे जाने के समर्थन में दो कारण निम्नलिखित हैं—

(1) ललित-कलाओं के चरमोत्कर्ष का युग—गुप्तकाल में कलाओं के क्षेत्र में अभूतपूर्व उन्नति हुई। मथुरा, सारनाथ व सुल्तानगंज में मिली महात्मा बुद्ध की गुप्तकालीन मूर्तियाँ, अजन्ता, एलोरा व बाघ की गुफाओं में की गई चित्रकारी, मेहरौली का लौहस्तम्भ तथा गुप्तकालीन शासकों द्वारा प्रचलित मुद्राएँ, इस काल में विकसित ललित-कलाओं के चरमोत्कर्ष की परिचायक हैं।

(2) भारतीय संस्कृति का प्रसार—गुप्तकाल में भारतीय संस्कृति का सुदूर देशों में प्रसार हुआ। जावा, सुमात्रा, मलाया, बर्मा, श्रीलंका, कम्बोडिया आदि अनेक देशों ने किसी-न-किसी रूप में भारतीय संस्कृति को अपनाया। आज भी, इन देशों के सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन पर भारतीय संस्कृति की स्पष्ट छाप परिलक्षित होती है।

प्रश्न 12—समुद्रगुप्त द्वारा विजित दक्षिणापथ के किन्हीं चार राज्यों और उनके राजाओं का उल्लेख कीजिए। *(1991)*

अथवा **समुद्रगुप्त के दक्षिण अभियान के किन्हीं चार राज्यों व उनके शासकों के नाम लिखिए।** *(1993)*

उत्तर—

राज्य	राजा
(1) कौशल	महेन्द्र
(2) काँची	विष्णुगोप
(3) देवराष्ट्र	कुबेर
(4) कुस्थलपुर	धनंजय

प्रश्न 13—गुप्त साम्राज्य के पतन के कोई चार कारण लिखिए। *(1993, 97)*

उत्तर—गुप्त साम्राज्य के पतन के चार कारण थे—

(1) गुप्त सम्राटों के निर्बल उत्तराधिकारी।

(2) बौद्ध धर्म का उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ प्रभाव।

(3) साम्राज्य का अत्यधिक विस्तार।

(4) हूणों का प्रबल आक्रमण।

प्रश्न 14—गुप्तकाल के चार प्रमुख साहित्यकारों और उनकी कृतियों के नाम लिखिए। *(1994, 96)*

उत्तर—गुप्तकाल के चार प्रमुख साहित्यकारों और उनकी कृतियों के नाम निम्नलिखित हैं—

(1) भारवि	किरातार्जुनीयम्
(2) शूद्रक	मृच्छकटिकम्
(3) विशाखदत्त	मुद्राराक्षस
(4) कालिदास	मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोवर्शीयम्, अभिज्ञानशाकुन्तलम्, रघुवंशम्, ऋतु संहार, मेघदूत।

प्रश्न 15—प्राचीन भारत के किन्हीं दो चीनी यात्रियों का परिचय दीजिए। *(1994)*

अथवा **1525 ई० से पूर्व भारत के भ्रमण पर आए किन्हीं दो विदेशी यात्रियों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।**

उत्तर—(नोट—इस प्रश्न के उत्तर हेतु ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों एवं व्यक्तियों पर आधारित प्रश्न संख्या 3 के अन्तर्गत फाह्यान और इत्सिंग का अध्ययन कीजिए।)

प्रश्न 16—समुद्रगुप्त द्वारा विजित किन्हीं चार राज्यों के नाम लिखिए। *(1994)*

उत्तर—समुद्रगुप्त द्वारा विजित चार राज्यों के नाम निम्नलिखित हैं—

(1) काँची—यह पल्लवों की राजधानी रहा है। यहाँ का राजा विष्णुगोप था जिसे समुद्रगुप्त ने परास्त किया था।

(2) देवराष्ट्र—महाराष्ट्र में स्थित इस राज्य के शासक कुबेर को भी ससुद्रगुप्त के सम्मुख नतमस्तक होना पड़ा।

(3) पिष्टपुर—मद्रास प्रान्त के गोदावरी जिले में स्थित इस राज्य के शासक महेन्द्रगिरि को भी समुद्रगुप्त द्वारा परास्त किया गया।

(4) कोटूर—यह राज्य, आधुनिक गंजाम जिले में स्थित था। यहाँ के राजा स्वामिदत्त को भी समुद्रगुप्त ने पराजित किया था।

ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों एवं व्यक्तियों पर आधारित प्रश्न

प्रश्न 1—निम्नांकित तिथियों के ऐतिहासिक महत्त्व पर प्रकाश डालिए—

उत्तर—(1) 58 ई० *(1994, 97)*—इस तिथि से चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के द्वारा विक्रम संवत् प्रारम्भ करने की घोषणा की गई।

(2) 275 ई० *(1997)*—इस तिथि को वाकाटक राजा विन्ध्यशक्ति की मृत्यु हो गई और प्रवरसेन शासक बना।

(3) 319 ई० *(1991, 95, 97, 99)*—इस तिथि से भारतीय इतिहास में गुप्त सम्वत् का प्रारम्भ माना जाता है। इस वर्ष से ही गुप्तकाल का इतिहास मिलना प्रारम्भ होता है।

(4) 320 ई० *(1990, 91, 92, 94, 95)*—इस तिथि को गुप्त वंश का सम्राट चन्द्रगुप्त प्रथम राज-सिंहासन पर बैठा।

(5) 335 ई० *(1994, 96, 99)*—इस तिथि को गुप्तवंश का दूसरा महान् सम्राट समुद्रगुप्त राजगद्दी पर आसीन हुआ था। लेकिन समुद्रगुप्त के सिंहासनारोहण से सम्बन्धित यह तिथि भारतीय इतिहास में विवादग्रस्त है।

(6) 375 ई० *(1990, 91, 93)*—इस तिथि को समुद्रगुप्त की मृत्यु हुई और उसके उपरान्त चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य सम्राट बना।

(7) 376 ई०–414 ई०—कुछ विद्वानों के अनुसार चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने 376 ई० में सिंहासनारूढ़ होकर 414 ई० तक शासन किया।

(8) 380 ई० *(1999)*—इस तिथि को गुप्तवंश का सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय 'विक्रमादित्य' की उपाधि धारण करके सिंहासन पर आसीन हुआ। इसने 413 ई० तक शासन किया था।

(9) 399 ई०—कुछ विद्वानों के अनुसार इसी तिथि को सुप्रसिद्ध चीनी यात्री फाह्यान भारत आया था।

(10) 405 ई० *(1996, 97, 99)*—इस तिथि को चीनी यात्री फाह्यान भारत आया था। वह 411 ई० तक भारत में रहा। उसने चन्द्रगुप्त द्वितीय के शासन की प्रमुख घटनाओं और तत्कालीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति का सजीव चित्रण अपने यात्रा-विवरण फो-क्वो-की (Fo-Kwo-Ki) में किया है।

(11) 411 ई०—इस तिथि को चीनी यात्री फाह्यान अपने देश चीन को वापस चला गया था।

(12) 412 ई० *(1992, 93)*—चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की मृत्यु इसी तिथि को हुई थी।

(13) 454 ई० *(1994)*—कुछ इतिहासकारों के मतानुसार इस तिथि को गुप्तवंश का पराक्रमी सम्राट स्कन्दगुप्त सिंहासन पर बैठा।

(14) 455 ई० *(1990, 93, 94, 96, 97, 99)*—इस तिथि को गुप्त सम्राट स्कन्दगुप्त गद्दी पर बैठा था।

(15) 467 ई० *(1996, 99)*—इस तिथि को गुप्तवंश के महान् सम्राट और हूणों के विजेता स्कन्दगुप्त का निधन हो गया था। इसने 455 ई० से 467 ई० तक शासन किया था। इसी वर्ष से गुप्तवंश का सूर्य भी अस्त होने लगा था।

(16) 476 ई० *(1993, 94)*—इस तिथि को गुप्तकाल के सुविख्यात ज्योतिषाचार्य आर्यभट्ट का जन्म हुआ था।

(17) 533 ई० *(1993, 94, 99)*—इस तिथि को मालवा नरेश यशोवर्मन द्वारा कुमारगुप्त तृतीय का वध कर दिया गया था।

प्रश्न 2—निम्नांकित ऐतिहासिक स्थलों पर टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) भूमरा—यह स्थान नागौर (मध्य प्रदेश) जिले में स्थित है। गुप्तकालीन सम्राटों ने इस स्थान पर एक विशाल शिव मन्दिर निर्मित कराया था। इस मन्दिर के अवशेष आज भी दर्शनीय हैं।

(2) **देवगढ़**—यह स्थान झाँसी जिले में स्थित है। यहाँ का दशावतार मन्दिर अपनी कलात्मकता और सौन्दर्य के लिए सम्पूर्ण देश में विख्यात है।

(3) **भीतरगाँव**—कानपुर के निकट स्थित इस स्थान पर ईंटों का एक विशाल शिव मन्दिर बना हुआ है। यह मन्दिर गुप्तकालीन स्थापत्य कला की उत्कृष्टता का भव्य नमूना है।

(4) **टिबुआ**—यह स्थान जबलपुर (मध्य प्रदेश) जिले में स्थित है। यहाँ का विष्णु मंन्दिर एक दर्शनीय स्मारक है।

(5) **दाहपरवतिया**—यह स्थान आसाम में स्थित है। यहाँ पर बना हुआ पार्वती मन्दिर सम्पूर्ण देश में विख्यात है।

(6) **एहोल**—यह स्थान बीजापुर में स्थित है। यहाँ का विष्णु मन्दिर और गंगा-यमुना की मूर्तियाँ दर्शनीय हैं।

(7) **अजन्ता**—यह दक्षिण में औरंगाबाद से 90 किमी दूर अजन्ता नामक स्थल पर स्थित है। अजन्ता में कुल 29 गुफाएँ हैं। इन गुफाओं की खोज 1819 ई० में हुई थी। अजन्ता की तीन गुफाएँ गुप्तकालीन मानी जाती हैं। इन गुफाओं में 16 नम्बर की गुफा 65 फीट लम्बी और इतनी ही चौड़ी है। इसमें 16 स्तम्भ और 6 कमरे हैं। गुफा के द्वार पर अनेक मनोहारी चित्र अंकित हैं। अजन्ता की गुफाओं में मरणासन्न राजकुमारी का चित्र, महात्मा बुद्ध का गृहत्याग, राजा और स्वर्ण हंस का चित्र और माता और पुत्र का चित्र, राजकीय जुलूस का चित्र अत्यन्त मनोरम और चित्ताकर्षक हैं। इन चित्रों में कल्पना और सौन्दर्य, धार्मिकता और सामाजिकता, भौतिकता तथा आध्यात्मिकता का अद्‌भुत समन्वय देखने को मिलता है।

(8) **एलोरा** *(1992)*—अजन्ता की गुफाओं से 60 किमी दूरी पर एलोरा की गुफाएँ स्थित हैं। इन गुफाओं की संख्या 34 है। इनमें 1 से 16 नम्बर तक की गुफाओं में बौद्ध धर्म से सम्बन्धित चित्र बने हुए हैं। 17 से 30 नम्बर तक की गुफाएँ शिव एवं पार्वती के चित्रों से सज्जित हैं और 31 से 34 नम्बर तक की गुफाओं में बौद्ध धर्म से सम्बन्धित चित्र हैं। कला की दृष्टि से एलोरा की गुफाएँ अजन्ता की गुफाओं की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ हैं।

(9) **काँची** *(1993, 94, 95, 96)*—यह गुप्तकालीन साम्राज्य के अन्तर्गत दक्षिणापक्ष का राज्य था। यहाँ पर विष्णुगोप का शासन था। समुद्रगुप्त ने अपने दक्षिणापक्ष-अभियान के समय, काँची नरेश विष्णुगोप को परास्त किया था।

प्रश्न 3—निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक व्यक्तियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) कालिदास *(1990, 92, 93, 94, 96, 99)*—भारतीय साहित्य में कालिदास का नाम विशेष सम्मान के साथ लिया जाता है। संस्कृत साहित्य को समृद्ध बनाने की दृष्टि से उनका योगदान अविस्मरणीय है। कालिदास चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के दरबार के एक महान् साहित्यकार व नाटककार माने जाते हैं। इनके सुविख्यात ग्रन्थ हैं—अभिज्ञानशाकुन्तलम्, कुमारसम्भव, मेघदूतम्, रघुवंश और मालविकाग्निमित्रम्। कालिदास ने अपने ग्रन्थों में नारी-सौन्दर्य का विलक्षण वर्णन किया है। वास्तव में, कालिदास कविकुलगुरु और सरस्वती पुत्र थे।

(2) आर्यभट्ट *(1997)*—आर्यभट्ट गुप्तकाल के सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक और ज्योतिषाचार्य थे। आर्यभट्ट ने भूगोल, खगोल, गणित, रेखागणित, भौतिक विज्ञान और रसायन विज्ञान से सम्बन्धित अनेक नवीन खोज करने में सफलता प्राप्त की थी। उन्होंने ग्रहों की स्थिति, चन्द्रग्रहण, सूर्यग्रहण, पृथ्वी की परिक्रमा आदि को वैज्ञानिक ढंग से समझा दिया था। विश्व में स्वीकार की जाने वाली दशमलव पद्धति को आर्यभट्ट ने वर्तमान समय से हजारों वर्ष पूर्व ही स्पष्ट कर दिया था। एक विद्वान के अनुसार, "आर्यभट्ट के मस्तिष्क में गणित विषय में आधुनिक उच्चतम श्रेणी के कम्प्यूटर से अधिक क्षमता थी।"

(3) ध्रुवदेवी—महारानी ध्रुवदेवी चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की पटरानी (राजमहिषी) थीं। महाराजाधिराज सम्राट कुमारगुप्त 'प्रथम' इसी से उत्पन्न हुए थे। ध्रुवदेवी एक स्वाभिमानी महिला थी। ध्रुवदेवी के सन्दर्भ में एक कथानक यह भी प्रचलित है कि ध्रुवदेवी पहले रामगुप्त की पत्नी थी। रामगुप्त ने अपनी रानी ध्रुवदेवी को शत्रु शकराज को भेंट में देना स्वीकार कर लिया था, परन्तु चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने शत्रु शकराज की हत्या करके अपने भाई (ध्रुवदेवी के कायर पति) रामगुप्त की हत्या कर दी थी। इसके पश्चात् चन्द्रगुप्त ने स्वयं ध्रुवदेवी से विवाह कर अपना राज्य स्थापित किया था।

(4) हरिषेण[1] *(1990, 94, 97)*—हरिषेण गुप्तकाल का एक महान् कवि और संस्कृत का प्रकाण्ड विद्वान् था। वह गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त के दरबार में महासन्धिविग्रहक के पद पर आसीन था। हरिषेण ने समुद्रगुप्त की दिग्विजय के उपलक्ष में एक कविता लिखी थी, जो इलाहाबाद प्रशस्ति अभिलेख के रूप में आज भी सुरक्षित है। यह कविता 33 पंक्तियों में लिखी गई है और एक ही वाक्य में है। हरिषेण द्वारा रचित इलाहाबाद प्रशस्ति लेख समुद्रगुप्त के वीरतापूर्ण कार्यों व उसके महान् व्यक्तित्व का परिचय कराता है।

(5) मिहिरकुल—यह हूण नरेश तोरमाण का पुत्र था। तोरमाण की मृत्यु के पश्चात् 515 ई० में मिहिरकुल सिंहासन पर आसीन हुआ। ह्वेनसांग के अनुसार, उसकी राजधानी शाकल (स्यालकोट) थी। मिहिरकुल शैव धर्म का अनुयायी था। उसने बौद्ध-भिक्षुओं पर भीषण अत्याचार किए थे और बहुत-से मठों व विहारों को जलवा दिया था।

(6) फाह्यान *(1991, 92, 94, 95, 96, 97, 99)*—फाह्यान एक चीनी यात्री था। उसका जन्म चीन में हुआ था। वह 400 ई० में चार भिक्षुओं के साथ भारत भ्रमण के लिए चला। मार्ग में उसको अनेक कष्ट उठाने पड़े। वह चीन से खोतान, गान्धार, तक्षशिला होता हुआ पेशावर और वहाँ से 405 ई० में भारत पहुँचा। उस समय भारत में चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य का शासन था। फाह्यान मथुरा, कन्नौज, श्रावस्ती, कुशीनगर, वैशाली, पाटलिपुत्र, नालन्दा, राजगृह, काशी, सारनाथ आदि नगरों को देखता हुआ ताम्रलिप्ति पहुँचा। इसके उपरान्त वह वहाँ से अपने देश के लिए रवाना हुआ। वह भारत में 6 वर्ष रहा। उसने अपने देश लौटकर अपने मित्रों को अपनी यात्रा का विवरण सुनाया जिसे उसके मित्रों ने लिपिबद्ध कर लिया। 88 वर्ष की आयु में फाह्यान का परलोकवास हो गया।

(7) भवभूति *(1991)*—यह संस्कृत भाषा का प्रमुख विद्वान् व ख्याति प्राप्त नाटककार था। भवभूति के द्वारा 'उत्तर रामचरित' नामक ग्रन्थ की रचना की गई थी।

(8) प्रभावती गुप्त *(1993)*—चन्द्रगुप्त द्वितीय की दो रानियाँ थीं। प्रथम—ध्रुवदेवी और दूसरी—कुबेरनागा। प्रभावती; इसी कुबेरनागा की पुत्री थी। इसका विवाह वाकाटक नरेश रुद्रसेन द्वितीय के साथ सम्पन्न हुआ था।

(9) इत्सिंग—यह चीनी यात्री सम्राट हर्षवर्धन की मृत्यु के पश्चात् भारत आया था। इत्सिंग ने अपने यात्रा विवरण में गुप्तकाल से सम्बन्धित अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों का उल्लेख किया है। इत्सिंग बौद्ध धर्म का उपासक था। उसके यात्रा-विवरण को कई दृष्टियों से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण एवं प्रामाणिक माना जाता है।

---

1. वाकाटक वंश के अन्तिम राजा का नाम भी हरिषेण ही था, जिसने 475 ई० से 510 ई० तक शासन किया था। अजन्ता के एक लेख से पता चलता है कि उसने दक्षिणी कौशल, गुजरात, मालवा और कुन्तल के प्रदेशों पर अधिकार कर लिया था। हरिषेण के शासनकाल में वाकाटक साम्राज्य अपने चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया था।

(10) वराहमिहिर *(1997)*—वराहमिहिर गुप्तकाल का प्रसिद्ध गणितज्ञ एवं ज्योतिषज्ञ था। उसने ज्योतिष पर आधारित अनेक पुस्तकें लिखीं। इन पुस्तकों में 'लघुजातक', 'वृहत्जातक', 'वृहत्संहिता' तथा 'पंचसिद्धान्तिका' विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। वराहमिहिर ने अपनी पुस्तकों के अन्तर्गत फलित ज्योतिष का विस्तृत रूप में प्रतिपादन किया है। 'वृहत्संहिता' उसके द्वारा रचित ऐसा सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसे ज्योतिष का विश्वकोश समझा जाता है। वराहमिहिर ने अपनी अन्य दो पुस्तकों—'वृद्ध विवाह पटल' और 'स्वल्प विवाह पटल' में विवाह सम्बन्धी शुभ लग्नों का विचार किया है। वराहमिहिर की महान् प्रतिभा से प्रभावित होकर गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य ने उन्हें 'नवरत्नों' में सम्मिलित किया था।

11 सम्राट हर्षवर्धन : विजय, धर्म एवं प्रशासन

[सम्राट हर्षवर्धन का परिचय, विजयें, शासन-प्रबन्ध तथा चारित्रिक गुण, ह्वेनसांग तथा उसके द्वारा भारत की तत्कालीन दशा का विवरण, हर्ष एक महान् धर्म-सहिष्णु सम्राट के रूप में]

"हर्ष विशिष्ट पुरुष था और भारत के महान् शासकों में उसका स्थान अशोक और अकबर के साथ है। सैनिक तथा प्रशासक, अद्वितीय प्रजापालक, साहित्य के संरक्षक और स्वयं एक सुयोग्य नाटककार आदि के रूप में वह इतिहास के पृष्ठों में एक प्रतिभावान् और चित्ताकर्षक व्यक्ति है।"

—एच०जी० रॉबिन्सन

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—सम्राट हर्षवर्धन के प्रारम्भिक जीवन का उल्लेख करते हुए उसकी विजयों पर प्रकाश डालिए।

अथवा **"हर्ष दूसरा समुद्रगुप्त था।" उसकी विजयों के प्रकाश में इस कथन की समीक्षा कीजिए।**

अथवा **विजेता के रूप में हर्ष की उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिए।** *(1990)*

अथवा **हर्षवर्धन की प्रारम्भिक कठिनाइयों का उल्लेख करते हुए उसकी महत्त्वपूर्ण विजयों का वर्णन कीजिए।** *(1999)*

उत्तर—

सम्राट हर्षवर्धन (606–647 ई०)

प्राचीन भारतीय इतिहास के प्रसिद्ध सम्राटों में सम्राट हर्षवर्धन एक ऐसा सम्राट था जिसने भारत को एकता के सूत्र में बाँधने की दृष्टि से उल्लेखनीय प्रयास किए। उसने गुप्तवंश के पतन के पश्चात् पुनः सम्पूर्ण भारत को संगठित कर राजनीतिक एकता स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। हर्ष के जीवन से सम्बद्ध घटनाओं का ज्ञान प्राप्त करने के अनेक साधन उपलब्ध हैं, किन्तु उनमें से दो प्रमुख हैं—प्रथम वर्ग के साधनों के अन्तर्गत महाकवि बाणभट्ट द्वारा रचित हर्षचरित और चीनी यात्री ह्वेनसांग की यात्रा का विवरण सी-यू-की तथा द्वितीय वर्ग में पुरातत्त्व सम्बन्धी साक्ष्य (मधुबन, बाँसखेड़ा तथा सोनीपत के अभिलेख) हैं।

हर्ष का जीवन परिचय—हर्ष, राजा प्रभाकरवर्धन (थानेश्वर का राजा) का छोटा पुत्र था। श्री वैद्य के अनुसार, उसका जन्म 4 जून, 590 ई० को हुआ था। राजा प्रभाकरवर्धन की मृत्यु के साथ ही हर्षवर्धन के बड़े भाई राज्यवर्धन को सूचना मिली कि मालवा के राजा देवगुप्त व बंगाल के गौड़ नरेश शशांक ने मिलकर कन्नौज पर आक्रमण कर दिया है और उन्होंने गृहवर्मा की हत्या करके उसकी बहन रानी राज्यश्री को कारागार में डाल दिया है। गृहवर्मा राज्यवर्धन का बहनोई था। अतः अपने बहनोई की हत्या और बहन राज्यश्री के बन्दी बनाए जाने की सूचना पाकर राज्यवर्धन तुरन्त एक विशाल सेना को साथ लेकर शत्रुओं का सामना करने के लिए कन्नौज की ओर चल दिया। युद्ध में मालव नरेश बुरी तरह पराजित हुआ, किन्तु मालवराज ने बंगाल के राजा शशांक की सहायता से, धोखे से राज्यवर्धन की हत्या करवा दी। इस घटना के सन्दर्भ में महाकवि बाणभट्ट लिखते हैं कि अपने भाई की हत्या का समाचार पाते ही हर्षवर्धन ने यह प्रण

किया कि, "मैं आर्य की चरणरज को स्पर्श करके शपथ खाता हूँ कि यदि मैं गौड़ राज्य को उसके अभिभावकों सहित पृथ्वी से न मिटा दूँ तथा समस्त विरोधी राजाओं के पैरों को जंजीरों की झंकार से पृथ्वी को प्रतिध्वनित न कर दूँ, तो मैं स्वयं को पतंगे की भाँति अग्नि को समर्पित कर दूँगा।"

हर्ष की विजयें
(हर्ष विजेता के रूप में)

अपने पिता की मृत्यु तथा भाई व बहनोई की मृत्यु से शोकमग्न हर्ष, 606 ई० में सिंहासन पर आसीन हुआ। गद्दी पर बैठते ही उसने अपने साम्राज्य का विस्तार करने तथा अपने बड़े भाई के हत्यारे शशांक से बदला लेने की योजना बनाई। सर्वप्रथम उसने कन्नौज की ओर प्रस्थान किया। इस सन्दर्भ में ह्वेनसांग लिखता है कि, "जैसे ही हर्ष राजा हुआ वैसे ही उसने विशाल सेना लेकर अपने भाई के हत्यारे से प्रतिशोध लेने के उद्देश्य से कन्नौज की ओर प्रस्थान किया। उसकी इच्छा हुई कि पड़ोसी राज्यों को जीतकर अपने अधीन कर लूँ। वह पूर्व की ओर बढ़ा और उसने उन देशों पर आक्रमण किया जिन्होंने उसकी अधीनता मानने से इन्कार कर दिया था। वह 6 वर्षों तक निरन्तर युद्ध करता रहा। इन 6 वर्षों में उसने अभूतपूर्व सफलताएँ प्राप्त की थीं। बहुत-से छोटे-छोटे राज्य तो उसे अपना स्वामी बनाकर गौरव का अनुभव करने लगे थे।"

हर्ष की विजयें

(1) कामरूप के राजा भास्कर वर्मा से मित्रता
(2) कन्नौज पर अधिकार
(3) बंगाल
(4) वल्लभी राज्य
(5) सिन्धु तथा गुजरात
(6) पुलकेशियन द्वितीय से युद्ध और पराजय
(7) अन्य विजयें।

(1) कामरूप के राजा भास्कर वर्मा से मित्रता—राजा हर्ष ने जब अपना विजय अभियान प्रारम्भ किया, तो कामरूप के राजा भास्कर वर्मा ने अपने दूत से हर्ष को कुछ भेंट भिजवाकर उसके समक्ष मित्रता का प्रस्ताव रखा। फलतः दोनों में मित्रतापूर्ण सम्बन्ध स्थापित हो गए। इसी समय राजा हर्ष को सेनापति भाण्डि ने यह सूचना दी कि राज्यश्री बन्दीगृह से मुक्त होकर विन्ध्याचल की पहाड़ियों में सती होने के लिए चली गई है। अनेक इतिहासकारों का मत है कि राजा हर्ष ने अपनी बहन राज्यश्री को ठीक उस समय पर बचाया था, जब वह चिता में कूदने ही वाली थी। इस तरह राजा हर्ष ने राज्यश्री को बचाकर पुनः अपना विजय अभियान प्रारम्भ कर दिया।

(2) कन्नौज पर अधिकार—ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह पता चलता है कि हर्ष ने मालवराज को पराजित कर कन्नौज पर अपना पूर्ण अधिकार कर लिया तथा कन्नौज को अपनी राजधानी बनाया। इस सफलता से उसने वर्धन-वंश के गौरव में अपरिमित वृद्धि की।

(3) बंगाल—बंगाल का राजा शशांक हर्ष का सबसे बड़ा शत्रु था, क्योंकि उसने मालवराज के साथ मिलकर उसके बड़े भाई और उसके बहनोई का वध किया था तथा बहन राज्यश्री को कैद में डालकर अनेक यातनाएँ दी थीं। अतः उसने सबसे पहले शशांक पर आक्रमण किया था, किन्तु जब उसे सफलता नहीं मिली तो उसने अपने मित्र भास्कर वर्मा की सहायता से शशांक पर पुनः आक्रमण किया। तब उसे सफलता प्राप्त हुई, परन्तु अभिलेखीय साक्ष्यों के आधार पर यह प्रमाणित होता है कि फिर भी वह शशांक का वध करने में सफल नहीं हो सका।

(4) वल्लभी राज्य—हर्ष ने वल्लभी के राजा ध्रुवसेन पर भी आक्रमण किया। ध्रुवसेन ने हर्ष की अधीनता स्वीकार कर ली और हर्ष ने अपनी पुत्री का विवाह उसके साथ कर दिया था।

(5) सिन्धु तथा गुजरात—बाणभट्ट के अनुसार, हर्ष ने सिन्धु प्रदेश के राजा को भी नष्ट कर दिया था और उसकी सम्पत्ति पर अपना अधिकार कर लिया था। इसी प्रकार, गुजरात को भी उसने शक्ति के बल पर अपने साम्राज्य में मिला लिया था।

(6) पुलकेशियन द्वितीय से युद्ध और पराजय—चीनी यात्री ह्वेनसांग के अनुसार हर्ष ने लगभग 620 ई० में दक्षिणी भारत के चालुक्य राजा पुलकेशियन द्वितीय पर आक्रमण किया था। दोनों में घमासान

मानचित्र—हर्ष का साम्राज्य।

युद्ध हुआ। इस युद्ध में हर्ष को पराजय का मुँह देखना पड़ा तथा उसके साम्राज्य की सीमा नर्मदा नदी तक सीमित होकर रह गई थी।

(7) अन्य विजयें—कुछ विद्वानों का मत है कि हर्ष ने कश्मीर, काँगोद, नेपाल, उड़ीसा एवं सौराष्ट्र आदि प्रान्तों पर भी विजय प्राप्त की थी। ऐसा प्रतीत होता है कि पुलकेशियन द्वितीय की मृत्यु के उपरान्त उसने 643 ई० में गंजम प्रदेश पर भी आक्रमण किया था, परन्तु इस आक्रमण के परिणामों का स्पष्ट ज्ञान प्राप्त नहीं हो सका है।

निष्कर्ष—हर्ष एक महान् विजेता था। उसका साम्राज्य उत्तर में हिमालय पर्वत से लेकर दक्षिण में नर्मदा नदी तक तथा पूर्व में बंगाल से लेकर पश्चिम में सिन्धु नदी तक विस्तृत हो गया था। इस प्रकार, हर्ष ने समस्त उत्तर भारत को एकता के सूत्र में बाँध दिया था। उसने 'महाराजाधिराज' की उपाधि भी धारण की थी। इसमें सन्देह नहीं कि विजयों के मामले में वह दूसरा समुद्रगुप्त ही था। हर्ष के सम्बन्ध में डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी का यह कथन अक्षरशः सत्य है कि, "हर्ष प्राचीन भारत के इतिहास के श्रेष्ठतम सम्राटों में से है। उसमें समुद्रगुप्त और अशोक दोनों ही के गुण संयुक्त थे। उसका जीवन पहले की सैनिक

सफलताओं और दूसरे की पवित्रता की याद दिलाता है।" वास्तव में, हर्ष समुद्रगुप्त की भाँति विजेता तथा अशोक की भाँति धार्मिक व जन-कल्याण की भावना से परिपूर्ण था।

प्रश्न 2—शासक के रूप में हर्ष का मूल्यांकन कीजिए। *(1997)*

अथवा **"हर्ष एक धैर्यशाली और परिश्रमी प्रशासक, एक कुशल और वीर सैनिक, अपने धर्म का सच्चा व्यक्ति था।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।**

अथवा **"हर्ष के शासन-प्रबन्ध में मौर्यों और गुप्तों के प्रशासन की नीतियों का जनहितकारी समन्वय था।" समालोचना कीजिए।**

अथवा **हर्ष की शासन-व्यवस्था का वर्णन कीजिए।**

उत्तर—

हर्ष का शासन-प्रबन्ध (शासन-व्यवस्था)
(शासक के रूप में हर्ष की उपलब्धियाँ)

इतिहासकारों के मतानुसार, हर्ष में समुद्रगुप्त (गुप्त वंश) और अशोक (मौर्य वंश) के महान् गुणों का समावेश था। वास्तव में, **प्रशासन की दृष्टि से भी उसमें गुप्तों और मौर्यों की कल्याणकारी प्रशासनिक नीतियों का जनहितकारी समन्वय था।** अपने समय के अन्य शासकों की भाँति हर्ष भी निरंकुश राजतन्त्रात्मक प्रणाली के आधार पर ही शासन करता था, किन्तु वह स्वयं प्रत्येक विभाग के कर्मचारियों के कार्यों का निरीक्षण करता था। ह्वेनसांग के मतानुसार, हर्ष को अपने प्रशासन को सुव्यवस्थित करने के लिए बड़ा परिश्रम करना पड़ता था। हर्ष के शासन-प्रबन्ध की उल्लेखनीय व्यवस्थाओं को निम्न सन्दर्भों में जाना जा सकता है—

(1) मन्त्रि-परिषद्—हर्ष की प्रशासनिक व्यवस्था के अन्तर्गत राज्य की गूढ़ समस्याओं के विषय में परामर्श देने के लिए एक मन्त्रि-परिषद् होती थी। केन्द्रीय शासन अनेक विभागों में विभक्त था। इन विभिन्न विभागों का उत्तरदायित्व इस मन्त्रि-परिषद् के सदस्यों पर ही था। मन्त्रि-परिषद् में प्रधानमन्त्री, पुरोहित, सन्धि-विग्रहिक, सेनापति आदि विशेष अमात्य होते थे। केन्द्रीय शासन में सहयोग देने के लिए—**(i) महाबलाधिकृत** (सेना का अध्यक्ष), **(ii) महासन्धि-विग्रहाधिकृत** (युद्ध और शान्ति का मन्त्री), **(iii) वृहदाश्वाशर** (अश्व-सेनाध्यक्ष), **(iv) कटुक** (गज सेनाध्यक्ष), **(v) राजस्थानीय** (पर-राष्ट्र मन्त्री या राज प्रतिनिधि), **(vi) महाप्रतिहार** (राजमहल का अधिकारी और रक्षक), **(vii) मीमांसक** (न्यायाधीश) आदि अमात्य होते थे। इसके अतिरिक्त, साम्राज्य के शासन कार्य में सहायता देने के लिए अनेक छोटे स्तर के कर्मचारी भी थे। इसके साथ ही राज्य की महत्त्वपूर्ण घटनाओं को लिपिबद्ध करने के लिए **'अक्षपटलिक'** अधिकारी (साधारण कर्मचारी) की नियुक्ति की जाती थी।

हर्ष का शासन-प्रबन्ध (शासक के रूप में हर्ष की उपलब्धियाँ)

(1) मन्त्रि-परिषद्
(2) प्रान्तीय एवं स्थानीय शासन
(3) न्याय व्यवस्था
(4) सेना की व्यवस्था
(5) कर व्यवस्था
(6) लोक-हितकारी कार्य।

(2) प्रान्तीय एवं स्थानीय शासन—हर्ष ने अपने विशाल साम्राज्य को **'भुक्तियों'** (प्रान्तों) में बाँट रखा था और प्रत्येक प्रान्त का एक प्रमुख अधिकारी होता था जो **'उपरिक'** कहलाता था। 'भुक्तियों' (प्रान्तों) को **'विषयों'** (जिलों) में बाँटा गया था जिनके प्रधान अधिकारी **'विषयपति'** होते थे तथा विषय को **'प्रथकों'** (तहसीलों) में बाँटा गया था।

ग्रामों की व्यवस्था का उत्तरदायित्व ग्राम-अधिकारियों पर था। ग्राम का वयोवृद्ध ग्राम-प्रधान **(ग्रामिणी)** के पद पर नियुक्त होता था। अन्य सहायक अधिकारियों की सहायता से ग्राम के हितों का ध्यान रखते हुए वह अपने ग्राम की न्याय व्यवस्था का प्रबन्ध करता था।

(3) न्याय व्यवस्था—हर्ष के राज्य में दण्ड-नीति कठोर थी। विद्रोही और कानून के विरुद्ध आचरणकर्ता को आजीवन कारावास का दण्ड दिया जाता था। चोर और व्यभिचारी को अंग-भंग का दण्ड दिया जाता था तथा साधारण अपराधों के लिए अर्थ-दण्ड दिया जाता था। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह विदित होता है कि यद्यपि हर्ष अत्यन्त न्यायप्रिय सम्राट था, फिर भी उसके साम्राज्य में चोरी आदि बहुत

होती थीं। ह्वेनसांग को भी डाकुओं ने दो बार लूटा था। राजा न्याय का सर्वोच्च अधिकारी होता था। वह स्वयं अपराधियों को दण्ड देता था एवं निर्धनों तथा दुःखियों को न्याय प्रदान करता था।

(4) सेना की व्यवस्था—हर्ष ने अपनी सेना का संगठन अत्यन्त कुशलता व चतुरता के साथ किया था। उसकी सेना में 60,000 हाथी; 1,00,000 अश्वारोही और 50,000 पैदल सैनिक थे। बाणभट्ट ने 'हर्षचरित' में लिखा है कि, "वह अपनी सेना की ओर बहुत ध्यान देता था। फारस और अफगानिस्तान तक से कुशल घोड़े मँगवाए जाते थे। रणक्षेत्र में वह स्वयं सेना का संचालन करता था। सेना के विभिन्न विभागों के भिन्न-भिन्न सेनापति होते थे।" उसके सैन्य विभागों की प्रशासनिक व्यवस्था के अन्तर्गत चन्द्रगुप्त मौर्य के सैन्य प्रशासन की झलक मिलती है।

(5) कर व्यवस्था—यद्यपि हर्ष को सैन्य व्यवस्था पर पर्याप्त व्यय करना पड़ता था, परन्तु इसके उपरान्त भी उसने राज्य करों में कोई वृद्धि नहीं की। हर्ष के शासनकाल में व्यापार की वस्तुओं पर चुंगी और घाटों पर 'खेवा कर' अवश्य लगाया जाता था। यही राज्य की आय का मुख्य साधन था। इसके अतिरिक्त, किसानों से उपज का 1/6 भाग भूमि-कर के रूप में लिया जाता था। यह सब धन शासन के कार्यों पर व्यय किया जाता था।

(6) लोक-हितकारी कार्य—हर्ष एक प्रजावत्सल शासक था। प्रजा के हित व कल्याण को वह सबसे अधिक महत्त्व देता था। यही कारण था कि वह राजकीय आय का एक बड़ा हिस्सा लोक-हितकारी कार्यों पर ही व्यय करता था। उसने बौद्धों के लिए विहार एवं स्तूपों का निर्माण करवाया तथा हिन्दुओं के लिए अनेक भव्य मन्दिर बनवाए। उसने अनेक सड़कें, कुएँ एवं धर्मशालाएँ भी बनवाईं तथा सड़कों के दोनों ओर वृक्षारोपण करवाया। कहा जाता है कि, "सद्कार्यों के लिए हर्ष निद्रा और भोजन सब कुछ भूल गया था।" प्रत्येक पाँचवें वर्ष वह धार्मिक सभाएँ किया करता था। उस अवसर पर हर्षवर्धन राजकोष का सम्पूर्ण धन दान में दे देता था। वह शिक्षा को प्रोत्साहन देने के लिए अनेक विश्वविद्यालयों को भी पर्याप्त मात्रा में धन देता था। उसने नालन्दा विश्वविद्यालय को सबसे अधिक धन भेंट स्वरूप दिया था। इस प्रकार, हर्ष द्वारा मौर्य नरेश अशोक की भाँति प्रशासनिक नीतियों का पालन किया गया था। वस्तुतः उसके सम्बन्ध में यह कथन भी पूर्णतः उपयुक्त ही है कि, "हर्ष एक धैर्यशाली और परिश्रमी शासक, एक कुशल और वीर सैनिक तथा अपने धर्म का सच्चा व्यक्ति था।"

उपर्युक्त प्रशासनिक व्यवस्थाओं के आधार पर हर्ष को एक महान् प्रशासक स्वीकार किया जा सकता है।

प्रश्न 3—हर्ष के चरित्र का मूल्यांकन कीजिए।

अथवा **"हर्ष में अशोक और समुद्रगुप्त दोनों के गुणों का समावेश था।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।**

अथवा **"हर्ष साहित्य में सरस्वती पण्डित और धर्म-दान में कर्ण था।" समीक्षा कीजिए।**

अथवा **"हर्षवर्धन एक योद्धा तथा विद्या और साहित्य का महान् संरक्षक था।" इस कथन की पुष्टि कीजिए।** *(1990, 94)*

अथवा **हर्षवर्धन की मुख्य उपलब्धियों का विवरण दीजिए।** *(1994)*

अथवा **"हर्षवर्धन भारत का अन्तिम महान् हिन्दू सम्राट था।" सतर्क समीक्षा कीजिए।** *(1996)*

अथवा **'उसमें (हर्षवर्धन में) समुद्रगुप्त तथा अशोक दोनों ही महान् सम्राटों की विशेषताएँ सम्मिलित थीं।' इस कथन की विवेचना कीजिए।**

उत्तर—

हर्ष के महान् चारित्रिक गुण

सम्राट हर्ष प्राचीन भारत के हिन्दू शासकों में निःसन्देह महान विजेता, धर्म-सहिष्णु, बौद्ध धर्म का प्रसारक और एक सफल शासक था। हर्ष के चारित्रिक गुणों को निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—

(1) महान् राज्य-निर्माता—हर्ष सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात् छह वर्षों तक निरन्तर युद्धों में संलग्न रहा। $2\frac{1}{2}$ वर्ष तक वह दिग्विजयों के कारण अपनी राजधानी से दूर रहा। उसने अपने पिता के छोटे-से राज्य में, भारत के सम्पूर्ण छोटे-छोटे राज्यों को मिलाकर एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया। गुप्त सम्राटों के पतन के पश्चात् भारत के बिखरे हुए साम्राज्य को हर्षवर्धन ने ही संगठित किया और अपने

साम्राज्य में राजनीतिक एकता की स्थापना की। यह कार्य प्रथम बार गुप्तकालीन सम्राट समुद्रगुप्त ने किया था। अतः एक राज्य-निर्माता की दृष्टि से दिग्विजयी सम्राट हर्ष; अशोक, समुद्रगुप्त और अकबर से भी महान् था।

(2) कुशल शासक—हर्ष कुशल प्रशासक भी था। उसने सम्पूर्ण साम्राज्य में पर्याप्त सुसंगठित और सुदृढ़ शासन-व्यवस्था स्थापित की थी। उसकी सेना का प्रबन्ध भी अत्यन्त कुशलतापूर्वक किया गया था। वह राज्य कर्मचारियों का स्वयं निरीक्षण करता था और अपराधियों को उसी समय स्वयं ही दण्ड देता था। वह राज्य के कार्यों में अत्यधिक व्यस्त रहता था और सारे दिन अथक परिश्रम करता था। इसीलिए ह्वेनसांग ने लिखा है, "शीलादित्य सम्राट हर्ष इतने अथक परिश्रमी हैं कि दिन का सम्पूर्ण समय भी उनके लिए पर्याप्त नहीं होता है।"

हर्ष के महान् चारित्रिक गुण

(1) महान् राज्य निर्माता
(2) कुशल शासक
(3) साहित्य-प्रेमी
(4) धर्मपरायण
(5) प्रजावत्सल एवं दानी।

(3) साहित्य-प्रेमी—हर्ष गुप्त सम्राटों की भाँति साहित्य का अनन्य प्रेमी एवं प्रतिभासम्पन्न विद्वान् था। यह इस बात से प्रमाणित होता है कि उसने अपने जीवन में तीन ग्रन्थों 'नागानन्द', 'रत्नावली' तथा 'प्रियदर्शिका' की रचना स्वयं की थी। हर्ष अपने राज्य में विद्वानों को राजकीय स्तर पर सम्मान देता था। उसके दरबार में बाणभट्ट जैसा प्रकाण्ड विद्वान था, जिसने हर्षचरित एवं कादम्बरी जैसी महान् रचनाएँ रची थीं। इसके अतिरिक्त, मयूर एवं मातंग दिवाकर आदि हर्ष के दरबार के अन्य विद्वान थे। साहित्य के प्रति उसकी अपूर्व रुचि को देखते हुए उसे सरस्वती पण्डित कहना भी अतिशयोक्तिपूर्ण नहीं है। शिक्षा के उत्थान हेतु उसने तत्कालीन विश्वविद्यालयों को बहुत अधिक दान दिया। वह भूमि-कर का 1/4 भाग शिक्षा और विद्वानों को पुरस्कार देने में ही व्यय किया करता था।

(4) धर्मपरायण—हर्ष एक धर्मनिष्ठ सम्राट था। वह प्रारम्भ में शैव-मतावलम्बी था, किन्तु अपने अन्तिम दिनों में वह बौद्ध धर्म का उपासक भी बन गया था तथा उसने बौद्ध धर्म के प्रचार के लिए बहुत प्रयास किए थे। हर्ष और अशोक दोनों ही बौद्ध धर्म के अनन्य उपासक होते हुए भी धर्म-सहिष्णु थे। दोनों की धार्मिक नीति अत्यधिक उदार थी। अतः इस गुण के सन्दर्भ में भी दोनों में बहुत समानता पाई जाती है। डॉ० राय चौधरी ने हर्ष के धार्मिक गुणों की प्रशंसा करते हुए लिखा है, "A great general and a just administrator, he was even a patron of religion."

(5) प्रजावत्सल एवं दानी—हर्ष अपनी प्रजा से बड़ा स्नेह रखता था। वह दिन-रात शासन-कार्यों में लगा रहता था और अथक परिश्रम करता था, दीन-दुखियों का दुःख वह स्वयं ही सुना करता था। रोगियों को निःशुल्क दवाई मिल सके, इसके लिए उसने अनेक औषधालय खुलवा रखे थे। इसी प्रकार के अन्य लोक-हितकारी कार्यों पर वह राजकीय आय का 1/4 भाग व्यय किया करता था। दान देने में भी वह कुछ कम न था। उसने प्रयाग के तट पर एक बार अपने वस्त्र तक दान कर दिए थे। तभी उसके इस दानशील स्वभाव के सन्दर्भ में एक समकालीन विद्वान् ने लिखा है कि, **"वह दान देने के कारण भगवान सूर्य को कर्ण से भी अधिक प्रिय हो गया था।"**

हर्ष का मूल्यांकन

हर्ष अपने लोक-कल्याणकारी कार्यों के कारण इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। हर्ष के विषय में यह बात निश्चित रूप से कही जा सकती है कि एक शासक के रूप में उसने अपनी प्रजा की सुख-समृद्धि के लिए अनेक महान् कार्य किए थे। प्रयाग के पंचवर्षीय दानों द्वारा दीन-हीन जनों की सेवा करके उसने अपने महान् गुणों का परिचय दिया था। उसके सम्बन्ध में कहा गया यह कथन भी पूर्णतः उचित ही है कि, "हर्षवर्धन एक योद्धा तथा विद्या और साहित्य का महान् संरक्षक था।"

डॉ० राधाकुमुद मुकर्जी के शब्दों में, "हर्ष प्राचीन भारत के इतिहास के श्रेष्ठतम सम्राटों में से है। उसमें समुद्रगुप्त और अशोक दोनों ही के गुणों का समावेश था। उसका जीवन हमें पहले की सैनिक उपलब्धियों तथा दूसरे की पवित्रता का स्मरण कराता है।"

हर्ष के उपर्युक्त सभी गुणों के अतिरिक्त, उसका इस दृष्टि से भी विशेष महत्त्व है कि वह भारत का अन्तिम महान् हिन्दू सम्राट था। उसने ऐसे समय में भारत की बागडोर सँभाली, जब उत्तरी भारत में चारों ओर अराजकता का वातावरण था और देश की राजनीतिक अखण्डता समाप्त हो चुकी थी। उसने अपनी योग्यता और पराक्रम से एक विशाल साम्राज्य की स्थापना की और देश की राजनीतिक अखण्डता पर कुठाराघात करने वाली शक्तियों के मनोबल पस्त कर दिए। उसकी मृत्यु के उपरान्त, कई शताब्दियों तक के लिए, भारत की राजनीतिक अखण्डता लुप्त हो गई। देश में चारों ओर अनेक छोटे-छोटे राज्यों की स्थापना हो गई, भारत पर बाह्य शक्तियों के आक्रमण होने लगे और धीरे-धीरे सम्पूर्ण भारत पर मुस्लिम शासकों का आधिपत्य स्थापित हो गया। इस दृष्टि से उसे भारत का अन्तिम महान् हिन्दू सम्राट कहना उचित ही है।

प्रश्न 4—ह्वेनसांग कौन था? उसने तत्कालीन भारत की राजनीतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक स्थिति के सम्बन्ध में क्या लिखा है? *(V. Imp.)*

अथवा **"ह्वेनसांग का विवरण प्राचीन भारत के सांस्कृतिक इतिहास का एक कोष है।" समालोचना कीजिए।**

अथवा **हर्ष के राज्यकाल में भारत की सामाजिक, धार्मिक तथा आर्थिक अवस्था पर प्रकाश डालिए।**

(1993, 96)

उत्तर—

ह्वेनसांग का यात्रा-विवरण

ह्वेनसांग का जीवन परिचय—ह्वेनसांग एक चीनी बौद्ध भिक्षु था। बौद्ध धर्म के प्रति उसे बचपन से ही बहुत अनुराग था। वह 20 वर्ष की अवस्था में बौद्ध धर्म की दीक्षा लेकर बौद्ध भिक्षु बन गया और उसके उपरान्त उसने चीन में अनेक धार्मिक स्थानों का भ्रमण किया, किन्तु फिर भी बौद्ध धर्म के ग्रन्थों एवं तथ्यों के विषय में उसे पूर्ण जानकारी प्राप्त नहीं हो सकी। अतः अपनी बौद्ध धर्म के प्रति ज्ञान की पिपासा को शान्त करने के लिए, वह 631 ई० में कश्मीर की सीमा में आ पहुँचा। वहाँ से विभिन्न धार्मिक स्थलों के दर्शन करता हुआ वह सम्राट हर्ष की राजधानी कन्नौज पहुँचा। सम्राट ने उसका बहुत आदर-सत्कार किया और उसको विभिन्न तीर्थ-स्थानों कौशाम्बी, वैशाली, बोधगया एवं नालन्दा आदि के दर्शन करने में बहुत सहायता प्रदान की। 643 ई० में उसने सिन्धु नदी पार की और अपने देश चीन लौट गया।

भारत की तत्कालीन दशा का वर्णन

ह्वेनसांग ने हर्ष के समय की राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सामाजिक दशा का काफी विस्तृत वर्णन किया है। उसके विवरण के आधार पर भारत की तत्कालीन स्थिति इस प्रकार थी—

(1) हर्ष की शासन-व्यवस्था—ह्वेनसांग हर्ष की शासन-व्यवस्था से अत्यधिक प्रभावित हुआ था। ह्वेनसांग ने हर्ष की इस शासन-व्यवस्था के सम्बन्ध में लिखा है कि, "शासन-व्यवस्था का संचालन उदार सिद्धान्तों पर आधारित था, अतएव उसके संचालन में कोई कठिनाई नहीं होती थी। परिवारों को सरकारी रजिस्टरों में अपना ब्यौरा दर्ज नहीं कराना पड़ता था और लोगों से बेगार नहीं ली जाती थी। हर्ष प्रजा की सुरक्षा एवं सुख का बहुत अधिक ध्यान रखता था। भूमि-कर के रूप में उपज का केवल 1/6 भाग ही लिया जाता था और राजकीय आय को चार भागों में बाँट दिया जाता था। एक भाग सरकारी कार्यों पर, दूसरा भाग कर्मचारियों को जागीरें देने में, तीसरा भाग विद्या एवं शिक्षा और कला की उन्नति पर तथा चौथा भाग विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों को सहायता देने एवं लोकहित के कार्यों पर व्यय होता था। हर्ष के समय में न्याय व्यवस्था कठोर थी। छोटे अपराधों के दण्डस्वरूप नाक, कान, पैर या हाथ आदि काट दिया जाता था। देशद्रोहियों या राजद्रोहियों को आजीवन कारावास दिया जाता था। हर्ष एक परोपकारी एवं आदर्श राजा भी था। उसने सड़कें बनवाई एवं उनके दोनों ओर छायादार वृक्ष लगवाए थे। समय-समय पर वह स्वयं जाकर प्रजा की दशा का अवलोकन करता था और उनके कष्टों को सुनता व दूर करता था।"

(2) धार्मिक दशा—ह्वेनसांग ने अपने यात्रा-विवरण में भारत की तत्कालीन धार्मिक स्थिति का भी वर्णन किया है। ह्वेनसांग के अनुसार उस समय ब्राह्मण, जैन, बौद्ध, शैव एवं वैष्णव धर्म समान रूप से उन्नति की ओर अग्रसर थे। उसके मतानुसार उसके समय में बौद्ध धर्म 'मध्य प्रदेश' में अधिक प्रचलित था।

कन्नौज में 100 बौद्ध विहार थे, जिनमें दोनों सम्प्रदायों (हीनयान और महायान) के 10,000 भिक्षु रहते थे। किन्तु इस काल में बौद्ध भिक्षु भ्रष्ट और अनैतिक हो चले थे। फिर भी बौद्ध विहार शिक्षा एवं संस्कृति के महान् केन्द्र थे। उस काल में बौद्ध धर्म का पतन तथा ब्राह्मण और जैन धर्म का उत्थान हो रहा था। उसके विवरण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि उस समय समाज में विभिन्न धर्मों के अनेक सम्प्रदाय बन चुके थे, जो विभिन्न वैचारिक मतभेदों के कारण एक-दूसरे के विरुद्ध षड्यंत्र करने में व्यस्त रहते थे।

ह्वेनसांग द्वारा भारत की तत्कालीन दशा का वर्णन

(1) हर्ष की शासन-व्यवस्था
(2) धार्मिक दशा
(3) आर्थिक दशा
(4) सामाजिक दशा
(5) शिक्षा।

(3) आर्थिक दशा—हर्ष के शासनकाल में राज्य की आर्थिक स्थिति बहुत अच्छी थी, क्योंकि देश में व्यापार एवं कृषि की स्थिति बहुत उन्नत अवस्था में थी। अनेक प्रकार का सामान विदेशों को निर्यात किया जाता था और उसके बदले में सोना लिया जाता था। लोग गाँवों में अधिक रहते थे और कृषि एवं छोटे-छोटे कार्य करते थे। किसी को भी आजीविका की कमी न थी। राज्य सब ओर से धन-धान्य से परिपूर्ण था।

(4) सामाजिक दशा—ह्वेनसांग के अनुसार, तत्कालीन समाज में जाति-पाँति के बन्धन कठोर थे। अन्तर्जातीय एवं विधवा-विवाह नहीं होते थे। बाल-विवाह अवश्य प्रचलित था, परन्तु पर्दा-प्रथा नहीं थी। निम्न जातियाँ उच्च जातियों के आवास से दूर रहती थीं। लोग लहसुन, प्याज, मांस-मदिरा एवं मछली का बहुत कम प्रयोग करते थे। ब्राह्मण लोग विद्यार्जन, क्षत्रिय युद्ध और वैश्य व्यापार किया करते थे। शूद्र वर्ग के लोग बहुत निम्न स्तर का जीवन-यापन करते थे। धनी व्यक्ति निर्धनों की सहायता किया करते थे।

(5) शिक्षा—ह्वेनसांग ने लिखा है कि उस समय शिक्षा का व्यापक प्रसार हुआ था। नालन्दा विश्वविद्यालय तत्कालीन शिक्षा का बहुत बड़ा केन्द्र था। हर्ष ने उसे राजकीय संरक्षण प्रदान कर रखा था और वह उसे पर्याप्त आर्थिक सहायता भी देता था। वहाँ चीन, मंगोल तथा अन्य देशों के अनेक विद्यार्थी ज्ञान प्राप्त करने आते थे। उस समय नालन्दा विश्वविद्यालय में दस हजार विद्यार्थी अध्ययनरत थे। विदेशी विद्यार्थियों को वहाँ भोजन, दवाई, वस्त्र आदि की विशेष सुविधा प्रदान की जाती थी। ह्वेनसांग ने स्वयं कुछ समय वहाँ विद्याध्ययन किया था। काशी एवं वल्लभी के विश्वविद्यालय भी उस समय में बहुत अच्छी अवस्था में थे, किन्तु सर्वाधिक संतोषप्रद आर्थिक स्थिति नालन्दा की ही थी, जैसा कि ह्वेनसांग ने लिखा है, "भारत में इस प्रकार की अन्य सहस्त्रों शिक्षण संस्थाएँ हैं, किन्तु वैभव में नालन्दा की तुलना उनमें से किसी से भी नहीं की जा सकती।"

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि हर्ष का शासनकाल प्रायः प्रत्येक दृष्टि से सन्तोषजनक था। हर्ष के शासनकाल की विस्तृत जानकारी सुलभ कराने में ह्वेनसांग का विवरण बहुत सहायक सिद्ध हुआ है। अतः इस आधार पर ह्वेनसांग का यात्रा-विवरण हर्षकालीन इतिहास के ज्ञान का कोष माना जा सकता है।

प्रश्न 5—"हर्ष एक महान् धार्मिक और धर्म-सहिष्णु सम्राट था।" ह्वेनसांग के विवरण के आधार पर इस कथन की समालोचना कीजिए।

अथवा **ह्वेनसांग द्वारा वर्णित कन्नौज की धार्मिक सभा और प्रयाग के सम्मेलन के आधार पर सिद्ध कीजिए कि "हर्ष एक महान् धर्म-सहिष्णु सम्राट था।"**

उत्तर—

हर्ष एक महान् धर्म-सहिष्णु सम्राट के रूप में

वास्तव में, हर्ष अपने हृदय में विभिन्न धर्मों को संजोए हुए था। वह धर्म का विशाल सागर था। उसने सभी धर्मों के विकास में गहरी रुचि ली थी। उसके काल के विभिन्न धार्मिक सम्मेलन इतिहास में अभूतपूर्व और अद्वितीय थे। ह्वेनसांग के वर्णन तथा अन्य साक्ष्यों के आधार पर इन सम्मेलनों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है—

(1) कन्नौज का धार्मिक सम्मेलन—जब ह्वेनसांग भारत में था, तो हर्ष ने अपनी राजधानी कन्नौज में एक भव्य विशाल धार्मिक महोत्सव आयोजित किया था। इसका उद्देश्य महायान सम्प्रदाय का विकास

और प्रचार करना था। यह विशाल धार्मिक सम्मेलन, महोत्सव और महासभा ह्वेनसांग के सभापतित्व में सम्पन्न हुई थी। इसमें हर्ष के साम्राज्य के बीस राजा और सामन्त, तीन हजार बौद्ध भिक्षु, तीन हजार ब्राह्मण विद्वान्, जैन साधु, नालन्दा विश्वविद्यालय के एक हज़ार बौद्ध विद्वान् तथा अनेक धर्माचार्य व दार्शनिक आमन्त्रित किए गए थे। ह्वेनसांग स्वयं भी इस सम्मेलन में उपस्थित रहता था। इस सम्मेलन में ह्वेनसांग ने अन्य धर्मों एवं सम्प्रदायों की अपेक्षा महायान मत का प्रबल समर्थन किया। यह धार्मिक महोत्सव 18 दिन तक चलता रहा था। इस अवसर पर एक विशाल स्थायी विहार व स्तूप बनवाया गया, जिसमें मनुष्य की ऊँचाई व आकृति के बराबर बुद्ध की एक स्वर्ण-मूर्ति एक बहुत ऊँचे स्तम्भ पर प्रतिष्ठित की गई। इसके अतिरिक्त, लगभग एक मीटर ऊँची बुद्ध की प्रतिमा भी निर्मित की गई, जिसे प्रतिदिन धार्मिक जुलूस में निकाला जाता था। इसका मूर्ति-छत्र हर्ष स्वयं उठाता था और मूर्ति को धोकर, उसे अपने कन्धों पर उठाकर, उसे स्तम्भ तक ले जाकर प्रतिष्ठित करता था। तत्पश्चात् हीरे-मोतियों से जड़ित अनेक रेशमी वस्त्र इस अद्वितीय प्रतिमा को अर्पित किए जाते थे। इस धार्मिक सम्मेलन में महायान बौद्ध धर्म को उच्चतम और सर्वश्रेष्ठ धर्म घोषित किया गया था। इसके अतिरिक्त, इसी सम्मेलन में ह्वेनसांग को महायान का सर्वश्रेष्ठ विद्वान घोषित करते हुए उसे 'महायान देव' और 'मोक्ष देव' की उपाधियों से विभूषित किया गया था।

(2) प्रयाग की सभा—कन्नौज की इस सभा के अतिरिक्त हर्षवर्धन नियमित रूप से प्रत्येक पाँचवें वर्ष प्रयाग में एक धार्मिक सभा बुलाया करता था। प्रयाग की इस सभा में हर्ष अपने सैनिक शस्त्रों के अतिरिक्त अपना सर्वस्व दान में दे देता था। दान देते समय वह कोई धार्मिक भेदभाव नहीं रखता था। वह अपने बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण तथा अन्य वस्तुएँ व्यक्तियों में बाँट देता था। इस सन्दर्भ में, ह्वेनसांग अपने समय के छठे प्रयाग सम्मेलन का विस्तृत विवरण देते हुए लिखते हैं कि, **"हर्ष ने अपने शरीर के वस्त्र तक दान कर दिए तथा अपनी बहन राज्यश्री से माँगकर वस्त्र पहने थे।"** लगभग 50,000 व्यक्ति उसकी इन भेंटों को प्राप्त करते थे। दान देते समय निर्धन और असहाय व्यक्तियों का विशेष ध्यान रखा जाता था। समकालीन साक्ष्यों के आधार पर ज्ञात होता है कि इस सभा का आरम्भ बुद्ध-पूजा से होता था, दूसरे दिन सूर्य देव की पूजा की जाती थी और तीसरे दिन महादेव शिव की पूजा होती थी, तत्पश्चात् दान का कार्य आरम्भ होता था, जो लगभग ढाई मास तक चलता रहता था।

कन्नौज के धार्मिक सम्मेलन और प्रयाग की सभा के उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि हर्ष बहुत ही धार्मिक विचारों का व्यक्ति था। उसके विचार संकीर्ण नहीं थे। वह अत्यन्त दयालु और उदार धार्मिक सम्राट था। दान देने की दृष्टि से तो उसका उदाहरण भारतीय इतिहास में अद्वितीय है। इसी कारण उसे महादानी सम्राट के नाम से पुकारा जाता था। वह वास्तव में, **एक महान् धार्मिक और धर्म-सहिष्णु सम्राट था।**

बाणभट्ट और **ह्वेनसांग** ने अपने विवरणों में हर्ष के इन सम्मेलनों की विशेषताओं का जो वर्णन किया है, वह हर्ष को एक अलौकिक और दिव्य सम्राट के रूप में प्रतिष्ठित करता है। एक विद्वान ने उसकी धर्मनिष्ठता और दानशीलता के सम्बन्ध में लिखा है, **"हर्ष में अशोक और समुद्रगुप्त का चरित्र ही समाहित नहीं था, वह तो शिव की कृपा से अपने युग का अर्जुन था और सूर्य के प्रताप से कर्ण भी था।"**

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—हर्ष के राज्यारोहण से पूर्व उत्तरी भारत की राजनीतिक दशा का वर्णन कीजिए।

उत्तर—गुप्त साम्राज्य के पतन के पश्चात् भारत की राजनीतिक एकता समाप्त हो गई थी तथा सम्पूर्ण देश अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित हो गया था। छठी शताब्दी में हूणों के आक्रमण के फलस्वरूप उत्तरी और पूर्वी भारत में अनेक छोटे-छोटे राज्यों की स्थापना हुई थी जिनमें मगध, मालवा, वल्लभी, कान्यकुब्ज, गौड़, कामरूप तथा थानेश्वर आदि राज्य प्रमुख थे। कान्यकुब्ज पर गृहवर्मा का राज्य था और बंगाल में गौड़वंशीय राजा शशांक शासन करता था। इनमें सर्वाधिक शक्तिशाली राज्य थानेश्वर का था। यहाँ के सम्राट हर्ष ने कुछ समय के लिए देश में राजनीतिक एकता की स्थापना करने में सफलता प्राप्त की थी।

प्रश्न 2—नालन्दा विश्वविद्यालय पर एक टिप्पणी लिखिए। *(1999)*

उत्तर : नालन्दा विश्वविद्यालय—हर्ष के शासनकाल में नालन्दा विश्वविद्यालय शिक्षा का एक विश्व-प्रसिद्ध केन्द्र था। यह बिहार राज्य में स्थित था। इसमें 10 हजार विद्यार्थी शिक्षा प्राप्त करते थे तथा 1200 शिक्षक विद्यार्थियों को शिक्षा देते थे। यहाँ बौद्ध साहित्य, दर्शन, ज्योतिष, व्याकरण, गणित तथा विभिन्न विज्ञानों आदि की शिक्षा दी जाती थी। चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी कुछ समय तक इस विश्वविद्यालय में शिक्षा ग्रहण की थी। यहाँ पर एशिया और अन्य देशों के विद्यार्थी विद्याध्ययन हेतु आते थे। यहाँ प्रवेश प्राप्त करना भी सरल नहीं था। मेधावी विद्यार्थियों को उच्च शिक्षा के लिए पूर्व परीक्षा लेने के बाद ही प्रवेश दिया जाता था।

प्रश्न 3—हर्ष को एक महान् सम्राट कहने के प्रक्ष में कोई चार तर्क दीजिए।

उत्तर—हर्ष को निम्नलिखित गुणों के आधार पर एक महान् सम्राट कहा जा सकता है—

(1) महान् विजेता—समुद्रगुप्त की भाँति हर्ष भी एक महान् विजेता तथा पराक्रमी सम्राट था। उसने दक्षिणी भारत को छोड़कर सम्पूर्ण भारत को जीत लिया था।

(2) महान् शासक—हर्ष की शासन-व्यवस्था उच्चकोटि की थी। इसलिए उसे महान् शासक कहा जाता है।

(3) धर्मपरायण सम्राट—हर्ष बौद्ध धर्म का निष्ठावान् अनुयायी था। वह बहुत ही उदार तथा धर्म-सहिष्णु सम्राट था। इसलिए उसे दूसरा अशोक भी कहा जाता है।

(4) साहित्य, शिक्षा एवं कला-प्रेमी—हर्ष साहित्य और दर्शन का प्रकाण्ड विद्वान् था। उसने स्वयं ही तीन ग्रन्थों की भी रचना की थी। वह शिक्षाशास्त्रियों तथा कलाकारों का भी सम्मान करता था।

प्रश्न 4—हर्षकालीन किन्हीं चार ग्रन्थों के नाम लिखिए। *(1997)*

उत्तर—हर्षकालीन चार प्रमुख ग्रन्थों के नाम इस प्रकार हैं—

(1) हर्षचरित, (2) कादम्बरी, (3) चण्डीशतक तथा (4) प्रियदर्शिका।

ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों एवं व्यक्तियों पर आधारित प्रश्न

प्रश्न 1—निम्नांकित तिथियों के ऐतिहासिक महत्त्व पर प्रकाश डालिए—

उत्तर—(1) 606 ई० *(1990, 92, 93, 95, 96, 97, 99)*—इस तिथि को वर्धन वंश का महान् शासक हर्षवर्धन थानेश्वर के सिंहासन पर आसीन हुआ था। हर्ष ने 606 ई० से 647 ई० तक उत्तरी भारत पर शासन किया था।

(2) 610 ई०—इस तिथि को चालुक्य वंश की बदामी शाखा का शासक पुलकेशियन द्वितीय राजगद्दी पर आसीन हुआ। वह बड़ा वीर और शक्तिशाली राजा था। पुलकेशियन द्वितीय ने 629 ई० से 640 ई० के मध्य राजा हर्षवर्धन को हराने में भी सफलता प्राप्त की थी। इसने 642 ई० तक राज्य किया था।

(3) 629 ई० *(1990, 94, 95, 96, 99)*—इस तिथि को चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भारत में प्रवेश किया था। उसने अपने यात्रा-संस्मरणों को सी-यू-की नामक ग्रन्थ में संकलित किया था।

(4) 630 ई०–644 ई० *(1997)*—कुछ इतिहासकारों के अनुसार प्रसिद्ध चीनी यात्री ह्वेनसांग 630 ई० में सम्राट हर्ष के शासनकाल में भारत आया तथा 644 ई० तक भारत में रहा। इस प्रकार यह समयावधि ह्वेनसांग के भारत प्रवास की अवधि है।

(5) 643 ई० *(1994)*—इस तिथि को राजा हर्षवर्धन ने कन्नौज में एक धर्म-परिषद् आयोजित करवाई थी। इस धर्म-परिषद् में 18 देशों के राजाओं, तीन हजार बौद्ध भिक्षुओं, तीन हजार ब्राह्मणों तथा जैन व नालन्दा मठ के एक हजार पुरोहितों ने भाग लिया था। इस परिषद् में चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी भाग लिया था।

(6) 644 ई०—इस तिथि को प्रयाग (इलाहाबाद) में एक विशाल धर्म-सम्मेलन हुआ था। इस सम्मेलन में राजा हर्षवर्धन ने अपार धन दान में दिया था।

(7) 647 ई० *(1990, 91, 93, 95, 97, 99)*—इस तिथि को राजा हर्षवर्धन की मृत्यु हुई थी। वह प्राचीन भारत का अन्तिम शक्तिशाली हिन्दू राजा था। उसके निधन के बाद वर्धन साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया था।

प्रश्न 2—निम्नलिखित ऐतिहासिक स्थलों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) कन्नौज *(1990, 94, 95, 96)*—राजा हर्ष के समय कन्नौज एक विशाल नगर था। कन्नौज में विभिन्न धर्मों के अनुयायी निवास करते थे। हर्ष ने 643 ई० में इसी नगर में एक विशाल धर्म-परिषद् आयोजित करवाई थी। इस नगर में आज भी बौद्ध मठों व विहारों के भग्नावशेष देखने को मिलते हैं।

(2) नालन्दा *(1996, 99)*—पटना (बिहार) के निकट स्थित नालन्दा नामक स्थान प्राचीन भारत में शिक्षा और संस्कृति का विश्वविख्यात केन्द्र था। राजा हर्ष के समय में नालन्दा विश्वविद्यालय में देश व विदेश के 10 हजार विद्यार्थी अध्ययन करते थे। राजा हर्ष ने 100 ग्रामों की आय इस विद्यालय को प्रदान कर रखी थी। ह्वेनसांग ने भी इस शिक्षा-केन्द्र में बौद्ध-धर्मग्रन्थों का अध्ययन किया था। नालन्दा का बौद्ध विहार एक दर्शनीय स्मारक है।

(3) कौशाम्बी *(1993, 96, 97, 99)*—यह स्थान इलाहाबाद के निकट स्थित है। यह प्राचीन काल में वत्स महाजनपद की राजधानी थी। राजा उदयन यहीं का राजा था। यह नगर प्राचीन भारत का व्यापारिक केन्द्र भी था।

(4) मथुरा *(1993, 99)*—प्राचीनकाल से ही मथुरा एक ऐतिहासिक नगर रहा है। प्रारम्भ में; यह नगर शूरसेन राज्य की राजधानी था। यहाँ का राजा अवन्तिपुत्र महात्मा बुद्ध का समकालीन था।

प्रश्न 3—निम्नलिखित ऐतिहासिक व्यक्तियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) प्रभाकरवर्धन—महान् वर्धन वंश के अनेक प्रतिभाशाली नरेशों में प्रभाकरवर्धन का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। प्रभाकरवर्धन की महारानी यशोमती थी। प्रभाकरवर्धन शैव धर्म के कट्टर उपासक थे। उन्होंने एक विशाल साम्राज्य की स्थापना करके 'महाराजाधिराज' की उपाधि धारण की थी। राज्यवर्धन, राज्यश्री और हर्षवर्धन इनकी तीन सन्तानें थीं।

(2) ह्वेनसांग *(1995, 96, 97)*—ह्वेनसांग एक चीनी यात्री था। वह बौद्ध धर्म का प्रकाण्ड विद्वान था और बौद्ध धर्म का विशिष्ट ज्ञान प्राप्त करने भारत आया था। उसने हर्षवर्धन के काल की घटनाओं के सम्बन्ध में एक पुस्तक सी-यू-की लिखी थी। राजा हर्षवर्धन ह्वेनसांग का बहुत अधिक सम्मान करता था। उसे कन्नौज के धार्मिक सम्मेलन में 'महायान देव' की उपाधि से विभूषित किया गया था।

(3) बाणभट्ट *(1996, 97, 99)*—बाणभट्ट राजा हर्षवर्धन के दरबार में रहने वाले राजकवि थे। बाणभट्ट संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इन्होंने राजा हर्ष के जीवन-चरित्र से सम्बन्धित एक ऐतिहासिक पुस्तक 'हर्षचरित' लिखी थी। इनकी दो अन्य रचनाएँ भी अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। ये सुप्रसिद्ध रचनाएँ हैं—'कादम्बरी' और 'चण्डीशतक'। विद्वानों ने बाणभट्ट को उनकी विद्वत्ता के कारण दूसरा कालिदास कहा है।

(4) पुलकेशियन द्वितीय—पुलकेशियन द्वितीय चालुक्य वंश के एक प्रतिभाशाली नरेश थे। सम्राट हर्षवर्धन ने 640 ई० के लगभग इन पर आक्रमण किया था। पुलकेशियन द्वितीय की पराक्रमशीलता का परिचय इस तथ्य से ही स्पष्ट हो जाता है कि इन्होंने राजा हर्ष को बुरी तरह पराजित किया था। इस तरह पुलकेशियन द्वितीय का स्थान भारत के वीर सम्राटों में अग्रगण्य है।

(5) राज्यश्री *(1992)*—राज्यश्री थानेश्वर के राजा प्रभाकरवर्धन की पुत्री तथा कन्नौज के राजा ग्रहवर्मा की पत्नी थी। मालवा के राजा देवगुप्त तथा गौड़ शासक शशांक ने मिलकर कन्नौज पर आक्रमण करके ग्रहवर्मा की हत्या कर दी और राज्यश्री को बन्दीगृह में डाल दिया। बाद में किसी तरह वह बन्दीगृह से भाग निकली, वह सती होने की तैयारी कर ही रही थी कि उसके भाई सम्राट हर्षवर्धन ने उसे बचा लिया। हर्षवर्धन ने कन्नौज पर अधिकार कर लिया था। अतः उसने राज्यश्री से कन्नौज की राज्यसत्ता सम्भालने का आग्रह किया। जब वह इसके लिए तैयार नहीं हुई तो हर्षवर्धन ने उसके संरक्षक के रूप में कन्नौज का शासन अपने हाथ में ले लिया।

12 स्थानीय शक्तियों का उदय : राजपूत युग

[राजपूतों की उत्पत्ति के सिद्धान्त, राजपूतों के प्रमुख राज्य तथा मुस्लिम आक्रमणकारियों के विरुद्ध राजपूतों की पराजय के कारण]

"राजपूत शूरवीर थे और निर्भीकता, साहस तथा वीरोचित सम्मान की दृष्टि से उनका चरित्र तुर्कों से कहीं ऊँचा था। उन्हें अपनी तलवार चलाने की कला पर घमण्ड था। किन्तु जाति भक्ति की भावना ने उनके इन गुणों को ढक लिया था।"

—डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—राजपूतों की उत्पत्ति के विषय में आप क्या जानते हैं ? आपके मत में राजपूतों की उत्पत्ति का उचित सिद्धान्त कौन-सा है ?

अथवा **"राजपूतों की उत्पत्ति अग्निकुण्ड से हुई थी।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।**

अथवा **राजपूतों की उत्पत्ति के विभिन्न सिद्धान्तों का उल्लेख कीजिए।**

उत्तर—

राजपूतों की उत्पत्ति के सिद्धान्त

यह एक विवादग्रस्त प्रश्न है कि राजपूत कौन थे ? राजपूत शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम सातवीं शताब्दी में उपलब्ध होता है। 'राजपूत' संस्कृत भाषा के शब्द 'राजपुत्र' का अपभ्रंश है। इतिहासकारों ने 'राजपूत' शब्द का प्रयोग अनेक अर्थों में किया है। राजपूतों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विभिन्न इतिहासकारों ने चार सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है—

(1) अग्निकुण्ड का सिद्धान्त—राजपूतों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कवि चन्दबरदाई ने 'पृथ्वीराज-रासो' में लिखा है, "वशिष्ठ मुनि ने राक्षसों से देवताओं की रक्षा करने के लिए अग्नि से परमार, चालुक्य, प्रतिहार और चौहान नाम के चार प्रसिद्ध राजपूत वंशों को उत्पन्न किया था।" परन्तु अग्निकुण्ड से मानव उत्पन्न हुआ है, यह तथ्य विश्वसनीय नहीं है। अग्निकुण्ड के सिद्धान्त से यही आभास होता है कि शत्रु से रक्षा के लिए एक विशेष यज्ञ का आयोजन किया गया होगा और वहीं पर कुछ वीरों को रक्षा के लिए नियुक्त किया गया होगा। ये वीर ही बाद में राजपूत कहलाए होंगे।

राजपूतों की उत्पत्ति के सिद्धान्त

(1) अग्निकुण्ड का सिद्धान्त
(2) आर्यों (क्षत्रिय) से उत्पत्ति का सिद्धान्त
(3) विदेशियों से उत्पत्ति का सिद्धान्त
(4) मिश्रित रक्त की जाति का सिद्धान्त
(5) भारतीय ब्राह्मण होने का सिद्धान्त।

(2) आर्यों (क्षत्रिय) से उत्पत्ति का सिद्धान्त—श्री गौरीशंकर ओझा और श्री सी० वी० वैद्य इन्हें भारतीय आर्यों की ही सन्तान मानते हैं। उनका विचार है कि ये क्षत्रिय ही थे। आर्यों की वर्ण व्यवस्था के अनुसार, क्षत्रिय को राज्य करने का अधिकार प्राप्त था। अतः ये क्षत्रिय ही कालान्तर में 'राजपूत' या राजपुत्र कहलाने लगे।

(3) विदेशियों से उत्पत्ति का सिद्धान्त—कर्नल टॉड का कथन है, कि राजपूत भारत पर आक्रमण करने वाली विदेशी जातियों की सन्तान थे। इन्हीं विदेशियों में सम्भवतः हूणों की सन्तानें कालान्तर में राजपूत कही जाने लगी थीं। डॉ० भण्डारकर के अनुसार, "राजपूत गुर्जर एवं खिर्जर जाति की सन्तान थे, जो आक्रमणकारी हूणों के साथ भारत आए थे।"

(4) मिश्रित रक्त की जाति का सिद्धान्त—डॉ० वी० ए० स्मिथ आदि इतिहासकारों ने इन्हें आर्यों और अनार्यों के संयोग से उत्पन्न सन्तान बताया है। डॉ० वी० ए० स्मिथ के मतानुसार, दक्षिण भारत में गौड़, भार व भील आदि जंगली जातियाँ निवास करती थीं। इन्हीं जातियों से चन्देल, राठौर और गहरवार आदि राजपूत जातियों की उत्पत्ति हुई। ये राजपूत अपने को सूर्यवंशी तथा चन्द्रवंशी राजपूत कहते थे।

(5) भारतीय ब्राह्मण होने का सिद्धान्त—कुछ भारतीय इतिहासकारों का मानना है कि राजपूत भारतीय आर्य थे। इन्हें ब्राह्मण आर्यों की सन्तान स्वीकार किया जाता है। डॉ० दशरथ शर्मा का विचार है कि, "राजपूतों की उत्पत्ति ब्राह्मणों से हुई थी। चौहानों का आदि पुरुष वत्सगोत्र का ब्राह्मण था।"

हर्ष के पश्चात् भारत की बागडोर 550 वर्ष तक इन्हीं राजपूतों ने सँभाली और मुस्लिम आक्रमणकारियों से देश की सुरक्षा हेतु ये अपने तन-मन-धन से अर्पित हो गए। इसीलिए कर्नल टॉड ने लिखा है, "मानव जाति के इतिहास में केवल राजस्थान में ही ऐसी एक जाति राजपूत थी जो बर्बरता के आघातों का अदम्य उत्साह से सामना कर सकती थीं और प्रहारों से भूमि स्पर्श करके अदम्य उत्साह के ऊपर उठ सकती थी तथा विपत्तियों का सहर्ष स्वागत करती थी।"

(नोट—राजपूतों की उत्पत्ति से सम्बन्धित इस प्रश्नोत्तर में दिए गए सभी मत सुविख्यात भारतीय एवं विदेशी इतिहासकारों के निष्कर्षों पर आधारित हैं, जो अभी तक भी विवादग्रस्त हैं। राजपूतों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कोई भी सर्वमान्य निष्कर्ष अभी तक प्रतिपादित नहीं हो पाया है।)

प्रश्न 2—राजपूतों के प्रमुख राज्यों का विवेचन कीजिए। *(1996)*

उत्तर—

राजपूतों के प्रमुख राज्य

648 ई० से 1200 ई० तक के काल को भारतीय इतिहास में 'राजपूत काल' के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इस काल में भारत के विभिन्न भागों में स्थापित राजपूत राज्यों का संक्षिप्त परिचय निम्नवत् है—

(1) गुर्जर प्रतिहार वंश—कुछ विद्वानों में इस बात को लेकर मतभेद है कि इस वंश की उत्पत्ति कैसे हुई थी? प्रतिहार वंश का संस्थापक नागभट्ट था। वह भारत के गुर्जर प्रान्त का रहने वाला था तथा उसने सर्वप्रथम कन्नौज राज्य पर अपना अधिकार स्थापित किया था। इसलिए यह राजवंश भारतीय इतिहास में कन्नौज के गुर्जर प्रतिहार वंश के नाम से प्रसिद्ध है। इस वंश के प्रमुख शासकों में नागभट्ट प्रथम, वत्सराज, नागभट्ट द्वितीय, मिहिरभोज व महेन्द्रपाल प्रथम आदि का नाम उल्लेखनीय है। इस वंश का अन्तिम शासक यशपाल था।

राजपूतों के प्रमुख राज्य

(1) गुर्जर प्रतिहार वंश
(2) कन्नौज का गहड़वाल वंश
(3) अजमेर का चौहान वंश
(4) बुन्देलखण्ड का चन्देल वंश
(5) गुजरात का सोलंकी वंश
(6) मालवा का परमार वंश
(7) त्रिपुरा का कल्चुरि वंश
(8) बंगाल के पाल एवं सेन वंश।

(2) कन्नौज का गहड़वाल वंश—इस वंश की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी विद्वान् एकमत नहीं हैं। इस वंश ने कन्नौज पर विजय प्राप्त कर उसे अपनी राजधानी बनाया था। चन्द्रदेव इस वंश का संस्थापक था, जिसने 1080 ई० से 1085 ई० तक शासन किया। भारत के इतिहास में एक देशद्रोही के रूप में कुख्यात जयचन्द भी इसी वंश का शासक था। 1225 ई० में इल्तुतमिश के द्वारा इस वंश का अन्त कर दिया गया।

(3) अजमेर का चौहान वंश—इस वंश की स्थापना साँभर प्रदेश में वासुदेव के द्वारा की गई थी। यह प्रदेश इस समय जोधपुर की सीमा पर स्थित है। वासुदेव के उत्तराधिकारियों में सबसे प्रसिद्ध एवं प्रतापी राजा पृथ्वीराज तृतीय था। 1301 ई० में उसके उत्तराधिकारियों को अलाउद्दीन खिलजी के समक्ष नतमस्तक होना पड़ा।

(4) बुन्देलखण्ड का चन्देल वंश—इस राजवंश के राजपूतों का उदय नवीं शताब्दी में हुआ। ये चन्द्रवंशी क्षत्रिय थे। इनका राज्य बुन्देलखण्ड था। इस राजवंश की स्थापना नन्नुक चन्देल ने की थी, लेकिन इसका प्रथम, स्वतन्त्र एवं ख्याति प्राप्त शासक यशोवर्मन था। 1160 ई० में उसकी मृत्यु हो गई और उसके पुत्र धंग ने शासन संभाला। धंग भी अपने पिता के समान योग्य एवं शक्तिशाली था। इस वंश का अन्तिम प्रतापी राजा परमार्दि था। इस वंश के राजपूत राजा अत्यधिक कला-प्रेमी थे। खजुराहो के प्रसिद्ध मन्दिर इसी वंश के शासकों द्वारा बनवाए गए थे।

(5) गुजरात का सोलंकी वंश—इस वंश का अभ्युदय गुजरात में हुआ था। इस वंश की स्थापना मूलराज ने की थीं। उसने अपनी राजधानी अन्हिलवाड़ा को बनाया था। इस वंश के प्रतापी शासक जयसिंह, सिद्धराज एवं कुमारपाल थे। इस वंश का अन्तिम शासक भीम द्वितीय था। 1229 ई० में अलाउद्दीन खिलजी ने गुजरात को जीत लिया और उसे अपने राज्य में सम्मिलित करके, इस वंश का अस्तित्व समाप्त कर दिया।

(6) मालवा का परमार वंश—इस राजवंश की स्थापना आबू पर्वत के निकट हुई थी। लेकिन ये गुजरात से मालवा चले गए थे; इसलिए ये मालवा के परमार कहलाए। इस वंश का संस्थापक कृष्णराज था। इस वंश का सबसे प्रसिद्ध राजा भोज था, जो अपनी साहित्यप्रियता एवं दानशीलता के लिए बहुत प्रसिद्ध था। इस वंश का अन्तिम शासक उदयादित्य था।

(7) त्रिपुरा का कल्चुरि वंश—कल्चुरि वंश की राजधानी त्रिपुरा थी। इस वंश का सबसे योग्य एवं प्रसिद्ध शासक लक्ष्मणराज था। परमार और चन्देल राजाओं के लगातार आक्रमण होते रहने के कारण 13वीं शताब्दी में इस वंश का अन्त हो गया।

(8) बंगाल के पाल एवं सेन वंश—पाल वंश का उदय बंगाल में हुआ था। हर्ष की मृत्यु के बाद बंगाल की प्रजा ने वहाँ शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित करने के लिए गोपाल नामक व्यक्ति को अपना राजा चुन लिया था। इस वंश में लगातार अनेक योग्य, वीर एवं प्रतापी शासक हुए। लेकिन जब एक ओर से सेन वंश और दूसरी ओर से गहड़वाल वंश के राजपूतों ने आक्रमण कर दिया, तो पाल वंश का अन्त हो गया और वहाँ पर सेन वंश की स्थापना हो गई। 1205 ई० में मुसलमानों ने इस राज्य पर आक्रमण करके, सेन वंश का अन्त कर दिया और यहाँ अपने राज्य की स्थापना की।

प्रश्न 3—कन्नौज के गुर्जर प्रतिहार वंश के इतिहास का परिचय देते हुए प्रमुख प्रतिहार राजाओं की उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए। *(V. Imp.)*

उत्तर—

कन्नौज का गुर्जर प्रतिहार वंश

कन्नौज के प्रतिभाशाली प्रतिहार वंश की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। कुछ विद्वानों के मतानुसार इनकी उत्पत्ति भारतीय क्षत्रियों से हुई थी। किन्तु के० एम० मुंशी०, सी० वी० वैद्य, जी० एस० ओझा, डी० सी० गांगुली तथा दशरथ शर्मा के अनुसार, ये गुर्जरों के ही वंशज थे। हर्ष की मृत्यु के बाद कन्नौज पर अनेक राजाओं ने शासन किया। कन्नौज राज्य पर सर्वप्रथम इस वंश के नागभट्ट ने अपना शासन स्थापित किया था। नागभट्ट से पहले प्रतिहार वंश का कोई शासक नहीं हुआ। इसीलिए उसको किसी का वंशज या उत्तराधिकारी नहीं माना जा सकता है। प्रतिहार वंश के सर्वप्रथम शासक नागभट्ट और उसके बाद के शासकों का संक्षिप्त परिचय निम्नवत् है—

प्रतिहार वंश के शासक

(1) नागभट्ट प्रथम—प्रतिहार वंश का संस्थापक नागभट्ट प्रथम था। उसने अपने राज्य को सुदृढ़ बनाया और अनेक विजयें प्राप्त की थीं।

प्रतिहार वंश के शासक

(1) नागभट्ट प्रथम
(2) वत्सराज
(3) नागभट्ट द्वितीय
(4) मिहिरभोज
(5) महेन्द्रपाल
(6) महीपाल।

(2) वत्सराज (775-800 ई०)—वत्सराज के सिंहासनारूढ़ होने के समय बंगाल एवं दक्षिण के राजा प्रतिहार राज्य की ओर आँखें लगाए हुए थे। अतः उसने सर्वप्रथम बंगाल के शासक को पराजित किया। बाद में वह दक्षिण की ओर मुड़ा, किन्तु दक्षिण के राजा ध्रुव ने वत्सराज को बुरी तरह पराजित किया। उसकी मृत्यु के कुछ दिन बाद नागभट्ट द्वितीय राजगद्दी पर आसीन हुआ। वत्सराज ने लगभग 775 ई० से लेकर 800 ई० तक राज्य किया था।

(3) नागभट्ट द्वितीय (800-833 ई०)—यह प्रतिहार वंश का एक शक्ति-सम्पन्न एवं विजेता राजा था। इसने भी अपने राज्य को पुनः शक्तिशाली बनाया। अपने पूर्वजों का बदला लेने के लिए इसने स्वयं

दक्षिण भारत के राष्ट्रकूट राजा पर आक्रमण किया, किन्तु पराजित हो गया। अपनी शक्ति को पुनः संगठित करके उसने पुनः आक्रमण प्रारम्भ किए और काठियावाड़, मालवा और पूर्वी राजपूताना को जीत लिया। इसने पश्चिमी भारत के अरबों को परास्त कर उन्हें अपने अधीन किया। इन विजयों से उसकी ख्याति चारों ओर फैल गई। उसकी मृत्यु के बाद उसका पुत्र रामभद्र राजगद्दी पर बैठा, लेकिन वह अत्यन्त अयोग्य था, इसलिए इसके बाद मिहिरसेन भोज नागभट्ट का उत्तराधिकारी बना।

(4) मिहिरभोज (836-885 ई०)—मिहिरभोज 836 ई० में सम्राट बना। सिंहासनारूढ़ होते ही उसने मध्य प्रदेश को अपने अधिकार में ले लिया। इसके बाद उसने दिग्विजय की नीति का अनुसरण कर बुन्देलखण्ड, मारवाड़ आदि राज्यों पर विजय प्राप्त की तथा दक्षिण में नर्मदा नदी तक अपना राज्य विस्तृत कर लिया। उसके राज्य में चारों ओर शान्ति तथा सुव्यवस्था थी। ज्ञान-विज्ञान तथा कला के क्षेत्र में उसके काल में अभूतपूर्व उन्नति हुई। राजा मिहिरभोज के समय में प्रतिहार साम्राज्य अपनी समृद्धता की पराकाष्ठा पर पहुँच गया था।

(5) महेन्द्रपाल (885-910 ई०)—महेन्द्रपाल, मिहिरभोज का उत्तराधिकारी था और मिहिरभोज के समान ही शक्तिशाली एवं प्रतापी था। उसने उत्तरी बंगाल, सौराष्ट्र और मगध आदि क्षेत्रों को विजित किया। वह एक साहित्य-प्रेमी सम्राट था और विद्वानों को अपने राजदरबार में आश्रय प्रदान किया करता था। कवि राजशेखर (कविराज शेखर) ने उसकी राजसभा में रहते हुए **'कर्पूरमंजरी'**, **'बालरामायण'**, **'काव्य मीमांसा'** आदि पुस्तकों की रचना की थी।

(6) महीपाल (912-944 ई०)—महेन्द्रपाल के बाद प्रतिहार राज्य की राजगद्दी पर महीपाल नाम का नरेश आसीन हुआ। इसके समय में साम्राज्य की शक्ति क्षीण होने लगी थी, क्योंकि राष्ट्रकूटों से उसका निरन्तर युद्ध होता रहा था। 1089 ई० में गहड़वाल वंश के चन्द्रदेव ने प्रतिहार वंश के अन्तिम शासक यशपाल को परास्त कर प्रतिहार राज्य पर पूर्ण अधिकार कर लिया। इस प्रकार प्रतिहार वंश के साम्राज्य का अन्त हो गया।

प्रश्न 4—कन्नौज के गहड़वाल वंश के प्रमुख राजाओं का परिचय देते हुए इनकी उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए। ***(Imp.)***

उत्तर—

कन्नौज का गहड़वाल वंश

गहड़वाल वंश की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वानों में विभिन्न मतभेद हैं। कुछ किंवदन्तियों और अभिलेखों के अनुसार गहड़वाल यशोविग्रह या ययाति जाति के वंशज थे। इतिहासकार स्मिथ ने गहड़वालों को चन्देलों से सम्बन्धित बताया है। इस वंश के प्रमुख शासकों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है—

गहड़वाल वंश के प्रमुख शासक

(1) चन्द्रदेव (1085-1104 ई०)—डॉ० त्रिपाठी के अनुसार, चन्द्रदेव ने गोपाल नामक शासक को पराजित कर लगभग 1080 तथा 1085 ई० के मध्य कान्यकुब्ज (कन्नौज) में गहड़वाल वंश की स्थापना की थी। कन्नौज पर आधिपत्य स्थापित करने से पूर्व उसने अयोध्या और काशी को जीत लिया था। उसने कन्नौज पर 1104 ई० तक राज्य किया। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र मदनपाल (1104-1114 ई०) कन्नौज का शासक हुआ, लेकिन उसके विषय में जानकारी देने वाले स्रोतों का पर्याप्त अभाव है। इसके बाद गोविन्द चन्द्र गद्दी पर बैठा।

गहड़वाल वंश के प्रमुख शासक

(1) चन्द्रदेव
(2) गोविन्द चन्द्र
(3) जयचन्द।

(2) गोविन्द चन्द्र (1114-1154 ई०)—गोविन्द चन्द्र गहड़वाल वंश का प्रतिभाशाली एवं पराक्रमी शासक था। सिंहासनारूढ़ होने के बाद उसने मालवा और मगध के कुछ भागों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। उसने लाहौर के शासकों से भी टक्कर ली। यही नहीं उसने मुस्लिम आक्रमणकारियों से भी अपने राज्य की रक्षा की। वह योग्य शासक और विद्या एवं कला का विशेष प्रेमी था।

(3) जयचन्द (1170-1194 ई०)—गोविन्द चंद्र के पश्चात् उसका पुत्र विजय चन्द्र (1154-1170 ई०) कन्नौज का शासक बना, लेकिन उसके शासनकाल में कोई विशेष घटना नहीं घटी।

उसके बाद जयचन्द गद्दी पर बैठा। वह इस वंश का अन्तिम एवं पराक्रमी सम्राट था। वह बहुत ही महत्त्वाकांक्षी शासक था। जयचन्द का अजमेर के चौहानवंशीय शासक पृथ्वीराज चौहान से अनवरत संघर्ष चलता रहा और सम्भवतः उसको नीचा दिखाने के लिए ही उसने मुहम्मद गोरी को उस पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया। परन्तु पृथ्वीराज को परास्त करने के पश्चात् मुहम्मद गोरी ने 1194 ई० में कन्नौज पर भी आक्रमण कर दिया। चन्द्रावर के युद्ध में राजा जयचन्द की शर्मनाक हार हुई और वह मारा गया। तभी से गहड़वाल वंश का पतन प्रारम्भ हो गया।

गहड़वाल वंश का अन्तिम शासक हरिश्चन्द्र था। 1225 ई० में इल्तुतमिश ने कन्नौज को जीतकर उसे दिल्ली सल्तनत का अंग बना लिया। इस प्रकार गहड़वाल वंश का शासन सदैव के लिए समाप्त हो गया।

प्रश्न 5—चौहान वंश के राजाओं का उल्लेख करते हुए पृथ्वीराज चौहान की उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए। *(Imp.)*

अथवा **पृथ्वीराज चौहान के जीवन तथा उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।** *(1996)*

अथवा **पृथ्वीराज चौहान के विषय में आप क्या जानते हैं ? उसकी पराजय के कारण समझाइए।** *(1999)*

अथवा **पृथ्वीराज चौहान के जीवन तथा उपलब्धियों का विवरण दीजिए।** *(1999)*

उत्तर—

दिल्ली और अजमेर का चौहान वंश

उत्तरी भारत के विभिन्न राजपूत वंशों में दिल्ली व अजमेर के चौहानों को विशेष स्थान प्राप्त है। इनकी वीरता की प्रशंसा अनेक विद्वानों ने की है। इनके सम्बन्ध में कर्नल टॉड ने लिखा है, "Chauhans were the most valiant of the Rajputs."

किन्तु चौहानों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विद्वान् एकमत नहीं हैं। पृथ्वीराज के राजकवि चन्दबरदाई ने अग्निकुण्ड के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए ऋषि वशिष्ठ के द्वारा अग्निकुण्ड से उत्पन्न किए गए चार योद्धाओं में से एक को चौहान स्वीकार किया है। अतः इसी से चौहान वंश की उत्पत्ति मानी जाती है। सामान्य रूप से इन्हें क्षत्रिय माना जाता है।

प्रतिहार राज्य के विघटन के बाद अजमेर के आसपास के क्षेत्रों में इस वंश के राजाओं ने अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित कर लिया था। उस वंश के प्रमुख शासकों का विवरण निम्नलिखित है—

चौहान वंश के प्रमुख शासक

इस वंश का संस्थापक वासुदेव (551 ई०) था। वासुदेव के बाद का इतिहास अन्धकारपूर्ण है। कहा जाता है कि 1105 से 1130 ई० तक सामन्तराज व अजयराज प्रथम को मिलाकर अनेक राजाओं ने अजमेर व उसके आसपास के क्षेत्रों पर शासन किया। इनके बाद अर्णोराज या अजयराज द्वितीय ने 1130 से 1150 ई० तक शासन किया। चौहान वंश के अन्य महत्त्वपूर्ण शासकों का विवरण निम्नलिखित है—

चौहान वंश के प्रमुख शासक
(1) अजयराज द्वितीय
(2) विग्रहराज या बीसलदेव चतुर्थ
(3) पृथ्वीराज तृतीय (पृथ्वीराज चौहान)
(4) हरिराज।

(1) अजयराज द्वितीय (1130-1150 ई०)—यह चौहान वंश का एक शक्तिशाली शासक था। सर्वप्रथम इसने अपने राज्य की शक्ति को बढ़ाया और वास्तु-निर्माण कला को बड़ा प्रोत्साहन दिया। इसने कई बड़े-बड़े मन्दिरों एवं अजयमेरू (अजमेर नामक दुर्ग) का निर्माण करवाया था।

(2) विग्रहराज या बीसलदेव चतुर्थ (1153-1164 ई०)—डॉ० त्रिपाठी के अनुसार, विग्रहराज चतुर्थ का शासनकाल (1153-1164 ई०) और डॉ० मजूमदार के अनुसार, उसका शासनकाल (1150-1163 ई०) था। यह चौहान वंश का अत्यन्त शक्तिशाली एवं प्रभावशाली राजा था। इसने गहड़वाल राजा विजयचन्द्र को परास्त कर कन्नौज तथा दिल्ली पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इसने तुर्कों को आगे नहीं बढ़ने दिया और उन्हें अनेक बार खदेड़कर दूर भगाया। विग्रहराज बहुत अधिक महत्त्वाकांक्षी एवं साहित्य-प्रेमी था। इसने स्वयं 'हरिकेल' नामक नाटक की रचना की। बीसलदेव ने अपने शासनकाल में एक संस्कृत विद्यालय भी खोला था। सोमदेव नामक कवि ने 'ललित-विग्रहराज' नामक पुस्तक में उसकी विशेष प्रशंसा की है।

(3) पृथ्वीराज तृतीय (पृथ्वीराज चौहान) (1179-1192 ई०)—विग्रहराज चतुर्थ के बाद उसका पुत्र अपरगांगेय गद्दी पर बैठा, किन्तु शीघ्र ही जगद्देव के पुत्र पृथ्वीराज द्वितीय ने उसकी हत्या कर दी और स्वयं शासक बन बैठा। उसने 1169 ई० तक शासन किया। उसके बाद सोमेश्वर ने 1169 ई० से 1177 ई० तक शासन किया। सोमेश्वर के बाद उसका पुत्र पृथ्वीराज तृतीय चाहमान वंश की राजगद्दी पर आसीन हुआ। जिस समय पृथ्वीराज गद्दी पर बैठा, उस समय उसकी आयु 11 वर्ष ही थी। अतः उसकी माता कर्पूरीदेवी ने संरक्षिका के रूप में मुख्यमंत्री कदम्बवास की सहायता से राज्य कार्य संचालित किया। कदम्बवास बड़ा योग्य और स्वामिभक्त सेवक था। भुवनैक मल्ल नामक एक अन्य मन्त्री ने भी उसकी सहायता की। पृथ्वीराज की प्रारम्भिक विजयों का श्रेय इन्हीं दोनों मन्त्रियों को दिया जाता है।

सन् 1180 ई० के लगभग पृथ्वीराज चौहान ने शासन सूत्र अपने हाथों में ले लिया। शीघ्र ही पृथ्वीराज को अनेक शक्तिशाली राजाओं से लोहा लेना पड़ा। पृथ्वीराज ने आक्रामक नीति अपनाकर अपने विरोधियों को नतमस्तक किया। उसकी प्रमुख उपलब्धियाँ इस प्रकार रहीं—

(i) नागार्जुन के विद्रोह का दमन—सन 1180 ई० में विग्रहराज चतुर्थ के पुत्र नागार्जुन ने पृथ्वीराज के विरुद्ध विद्रोह करके गुड़पुर पर अधिकार कर लिया। पृथ्वीराज ने नागार्जुन के विद्रोह का दमन करने में सफलता प्राप्त की।

(ii) भण्डानकों का दमन—सन् 1182 ई० में भण्डानकों ने विद्रोह कर दिया। इनके राज्य में भिवानी, रिवाड़ी तथा अलवर के कुछ क्षेत्र सम्मिलित थे। पृथ्वीराज ने इनके विद्रोह का दमन करके इन क्षेत्रों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।

(iii) चन्देलों से युद्ध—'पृथ्वीराज रासो' से ज्ञात होता है कि पृथ्वीराज ने चन्देल राजा परमार्दी पर विजय प्राप्त की थी। मदनपुर अभिलेख से इस तथ्य की पुष्टि होती है। लेकिन पृथ्वीराज की चन्देल साम्राज्य पर विजय अस्थायी रही थी।

(iv) गुजरात पर आक्रमण—पृथ्वीराज रासो से पता चलता है कि पृथ्वीराज के पिता सोमेश्वर और चालुक्य नरेश भीम के बीच एक भीषण युद्ध हुआ था, जिसमें भीम द्वितीय ने सोमेश्वर का वध करके नागौर पर अधिकार कर लिया था।

अतः पृथ्वीराज ने राजा बनते ही अपने पिता की हत्या का प्रतिशोध भीम का वध करके लिया। लेकिन पृथ्वीराज रासो का यह विवरण संदिग्ध है, क्योंकि भीम द्वितीय के गद्दी पर बैठने से पूर्व ही सोमेश्वर की मृत्यु हो चुकी थी। चालुक्य अभिलेखों के अनुसार चाहमानों और चालुक्यों के मध्य संघर्ष 1184 के उपरान्त हुआ था।

(v) गहड़वालों से सम्बन्ध—पृथ्वीराज चौहान का समकालीन गहड़वाल शासक जयचन्द था। राजा जयचन्द एक शक्तिशाली शासक था और उसने अनके विजयें प्राप्त की थीं। चन्दबरदाई के अनुसार राजा जयचन्द ने अपनी पुत्री संयोगिता के विवाह के लिए एक स्वयंवर आयोजित किया और पृथ्वीराज चौहान को नीचा दिखाने के लिए उसे स्वयंवर समारोह में आमंत्रित नहीं किया। इससे क्रुद्ध होकर पृथ्वीराज चौहान ने संयोगिता का अपहरण कर लिया। इससे दोनों के मध्य घोर शत्रुता हो गई, जिसका लाभ कालान्तर में मुहम्मद गोरी ने उठाया।

(vi) तराइन का प्रथम युद्ध (1191 ई०)—पृथ्वीराज चौहान और मुहम्मद गोरी के मध्य पहला संघर्ष 1191 ई० में तराइन के मैदान में हुआ। पृथ्वीराज की सेना के भीषण आक्रमण और विशाल संख्या के समक्ष गोरी के सैनिक टिक न सके। शीघ्र ही गोरी की सेना पराजित होकर भागने को बाध्य हुई। स्वयं गोरी भी घायल हुआ, किन्तु वह किसी प्रकार युद्ध-क्षेत्र से भागने में सफल हो गया। पृथ्वीराज ने भागती हुई सेना का पीछा न करके एक भयंकर भूल की और इस भूल का परिणाम उसे शीघ्र ही भुगतना पड़ा।

(vii) तराइन का द्वितीय युद्ध (1192 ई०)—मुहम्मद गोरी अपनी अपमानजनक पराजय को न भूल सका और अगले ही वर्ष 1 लाख 30 हजार घुड़सवारों के साथ तराइन के मैदान में आकर डट गया। गोरी ने पृथ्वीराज को सन्देश भेजा कि वह इस्लाम धर्म स्वीकार कर ले। इस पर पृथ्वीराज स्वयं एक विशाल

सेना लेकर तराइन के मैदान में पहुँच गया। पृथ्वीराज ने गोरी के पास सन्देश भिजवाया कि यदि वह वापस लौट जाए तो वह गोरी को कोई क्षति नहीं पहुँचाएगा। इस पर गोरी ने चालाकी से काम लेते हुए पृथ्वीराज के पास यह कहलवाया कि वह अपने भाई मुईनुद्दीन की आज्ञा से भारत पर आक्रमण करने आया है, अतः इस सम्बन्ध में भाई से अनुमति लेनी आवश्यक है तथा मैं अपने भाई के पास सन्देश भेज रहा हूँ। इस सूचना को पाकर पृथ्वीराज की सेना विश्राम करने लगी। इसी समय गोरी ने अचानक उस पर आक्रमण कर दिया, फलस्वरूप पृथ्वीराज की सेना में भगदड़ मच गई। फिर भी राजपूत सेना ने तुर्कों से भयंकर युद्ध किया, किन्तु अन्त में उन्हें पराजित होना पड़ा। इस युद्ध में एक लाख भारतीय सैनिक मारे गए और पृथ्वीराज को बन्दी बना लिया गया। बाद में पृथ्वीराज की हत्या कर दी गई।

तराइन के द्वितीय युद्ध में पृथ्वीराज के पराजित होने के प्रमुख कारणों में मुहम्मद गोरी की धूर्तता तथा छलभरी नीति, जयचन्द से पृथ्वीराज की सहायता न मिलना तथा प्रथम तराइन युद्ध के बाद पृथ्वीराज का विलासी हो जाना था।

वस्तुतः पृथ्वीराज तृतीय एक वीर तथा योग्य सेनापति था, किन्तु उसमें राजनीतिक दूरदर्शिता का अभाव था। यही कारण था कि वह अत्यन्त शक्तिशाली होते हुए भी गोरी से पराजित हो गया। डॉ० डी० सी० गांगुली ने तराइन के द्वितीय युद्ध के परिणामों पर प्रकाश डालते हुए कहा है कि, "तराइन के द्वितीय युद्ध में पृथ्वीराज की पराजय ने न केवल चाहमानों की राजशक्ति को समाप्त कर दिया, वरन् भारत के लिए भी दुर्दशा का कारण बनी।" डॉ० राय चौधरी के अनुसार, "इस युद्ध ने शाकम्भरी के चाहमानों के प्रभुत्व को यथार्थ में समाप्त कर दिया।"

(viii) विद्वानों का संरक्षक—पृथ्वीराज तृतीय विद्वानों का संरक्षक तथा आश्रयदाता था। उसके दरबार में जगनिक, जनार्दन, विद्यापति आदि अनेक विद्वान आश्रय पाते थे। पृथ्वीराज रासो का रचयिता चन्दवरदाई उसका दरबारी कवि था।

(4) हरिराज (1192-1198 ई०)—पृथ्वीराज की मृत्यु के बाद चाहमान वंश का पतन सुनिश्चित हो गया। यद्यपि उसके भाई हरिराज ने अजमेर पर पुनः अधिकार करके 1198 ई० तक उस पर शासन किया, बाद में दिल्ली पर आक्रमण करने पर तुर्कों से हुए युद्ध में वह वीरगति को प्राप्त हो गया। इस प्रकार चाहमान राजवंश का सूर्यास्त हो गया।

प्रश्न 6—परमार वंश के राजाओं का उल्लेख करते हुए राजा भोज की उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।

अथवा **"राजा भोज अपने युग का प्रकाण्ड पण्डित था।" समालोचना कीजिए।**

उत्तर—

मालवा का परमार वंश

परमार वंश की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है; लेकिन यह निश्चित है कि इस वंश का उदय दसवीं शताब्दी में मालवा में हुआ था। इस वंश को स्थापित करने वाला महान् नरेश, राजा उपेन्द्रराज [कृष्णराज (790-817 ई०)] था। इस वंश के तीन शासक अत्यन्त ख्यातिप्राप्त एवं पराक्रमी हुए थे। इन तीनों शासकों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

(1) सीयक हर्ष (945-972 ई०)—सीयक हर्ष 945 ई० में मालवा की राजगद्दी पर बैठा। उस समय भारत में चारों ओर अशान्ति का साम्राज्य था। सीयक हर्ष को प्रारम्भ में राष्ट्रकूटों से अपना स्वतन्त्र राज्य स्थापित करने के लिए अनेक युद्ध करने पड़े। इन युद्धों में उसे प्रत्येक बार विजयश्री प्राप्त हुई। इन विजयों के कारण उसके मान एवं वंश की प्रतिष्ठा में अत्यधिक वृद्धि हुई। महान् सीयक हर्ष की 972 ई० में मृत्यु हो गई।

मालवा का परमार वंश
(1) सीयक हर्ष
(2) वाक्पति द्वितीय या मुन्जराज
(3) राजा भोज।

(2) वाक्पति द्वितीय या मुन्जराज (973-996)—यह परमार वंश का परम विद्वान्, साहित्य प्रेमी एवं प्रतापी राजा था। उसने सर्वप्रथम चेदि, चोल एवं केरल आदि प्रदेशों को विजित किया। वह एक कुशल सेनानायक भी था। उसकी सबसे महत्त्वपूर्ण विजय चालुक्य नरेश तैलप द्वितीय के विरुद्ध हुई थी। वाक्पति मुन्ज के शासनकाल में कला एवं साहित्य के क्षेत्र में अपार उन्नति हुई थी।

(3) राजा भोज (1010-1055 ई०)—भोज इस वंश का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण शासक था। वह एक कुशल सेनानायक तथा कला एवं साहित्य का प्रेमी भी था। उसके शासनकाल में सभी क्षेत्रों में अभूतपूर्व उन्नति हुई। उसका चालुक्यों से हमेशा संघर्ष होता रहता था। ऐसे ही एक युद्ध के मध्य उसकी मृत्यु हो गई। राजा भोज ने 1010 ई० से 1055 ई० तक राज्य किया था। उसके शासनकाल में साहित्य, व्याकरण, गणित, औषधि विज्ञान, वास्तुकला आदि की अत्यधिक उन्नति हुई। उसके शासनकाल में जनता सुखी और सम्पन्न थी। डॉ० मजूमदार के अनुसार, राजा भोज सिंधुराज का पुत्र एवं उसका उत्तराधिकारी था। वह 1000 ई० के लगभग सिंहासनारूढ़ हुआ था तथा उसने 50 वर्ष से अधिक शासन किया था।

एक अभिलेख में भोज को 'कविराज' की उपाधि से विभूपित किया गया है। उसने व्याकरण, ज्योतिष, अलंकार, विज्ञान, धर्म, औषधि विज्ञान आदि पर अनेक ग्रन्थ लिखे थे। उसका दरबार विद्वानों और कलाकारों से भरा रहता था। धारानगरी में उसने एक विश्वविद्यालय स्थापित किया था। इन सभी उपलब्धियों के कारण राजा भोज को 'सरस्वती पण्डित' कहा जाता है। उसने भोपाल के दक्षिण में भोजपुर नामक एक नगर भी बसाया तथा इस नगर के निकट उसने एक झील का निर्माण भी कराया था। इस प्रकार, एक महान् निर्माता और लोक-हितकारी शासक के रूप में भोज को इतिहास में एक गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है।

राजा भोज की मृत्यु के पश्चात् जयसिंह और उदयादित्य नामक राजाओं ने शासन किया। अन्त में, 1305 ई० में खिलजी सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने मालवा पर आक्रमण कर मालवा के परमारवंशीय राजाओं द्वारा शासित क्षेत्रों को दिल्ली सल्तनत में मिला लिया। इस प्रकार, यह वंश समाप्त हो गया।

प्रश्न 7—चन्देल वंश का परिचय देते हुए प्रमुख चन्देल राजाओं की उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—

चन्देल वंश

चन्देल वंश की उत्पत्ति के सम्बन्ध में भी अनेक कहानियाँ एवं मान्यताएँ प्रचलित हैं। डॉ० वी० ए० स्मिथ के अनुसार, "चन्देल, भार अथवा गोंडों की जाति के आदिवासी थे तथा उनका मूल स्थान छतरपुर रियासत में केन नदी के तट पर मनियागढ़ था।" फिर भी इतना निश्चित है कि इनका वंश राजपूतों के 36 वंशों में से एक था। यह जनश्रुति प्रचलित है कि, "एक ब्राह्मण पुरोहित इन्द्रजीत की सुन्दर कन्या हेमवती एक दिन सरोवर में स्नान कर रही थी कि चन्द्रमा उस पर मोहित हो गया तथा उसने उस कन्या के साथ सहवास किया। उस कन्या से उत्पन्न पुत्र से ही चन्देल वंश की उत्पत्ति हुई।" इस प्रकार, चन्देल वंश की उत्पत्ति का इतिहास भी स्पष्ट नहीं है। परन्तु इतना अवश्य है कि 9वीं शताब्दी के प्रारम्भ में नन्नुक चन्देल (831-844 ई०) नामक राजा ने दक्षिणी बुन्देलखण्ड में इस राज्य की स्थापना की थी।

चन्देल वंश के प्रमुख शासक

चन्देल वंश के प्रमुख शासकों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

(1) यशोवर्मन (930-950 ई०)—यह इस वंश का प्रथम ख्यातिप्राप्त शासक था। इसने मालवा, कौशल प्रदेशों तथा कालिंजर को जीता और फिर महोवा को अपनी राजधानी बनाया। इसका राज्य 930 ई० से 950 ई० तक माना जाता है।

चन्देल वंश के प्रमुख शासक

(1) यशोवर्मन
(2) धंग
(3) गण्ड
(4) विद्याधर
(5) कीर्तिवर्मन
(6) परमार्दि।

(2) धंग (950-1002 ई०)—धंग इस वंश का दूसरा शक्तिशाली राजा था। उसने अपने पिता यशोवर्मन के समान चारों दिशाओं में अपने राज्य का विस्तार किया। प्रतिहारों से ग्वालियर का दुर्ग प्राप्त करने के कारण उसकी शक्ति बहुत बढ़ गई थी तथा वह पूर्व में बनारस तक छा गया था। कहते हैं कि वह इलाहाबाद को जीतकर वहीं संगम में स्वयं डूबकर मर गया था। इसने 950 ई० से लेकर 1002 ई० तक राज्य किया था।

(3) गण्ड (1003-1017 ई०)—धंग का उत्तराधिकारी गण्ड था। उसके समय में महमूद गजनवी ने भारत पर आक्रमण किया था। गण्ड ने महमूद गजनवी के आक्रमण के विरुद्ध वीर राजपूत आनन्दपाल की सहायता की थी। इससे महमूद गजनवी क्रोधित हो उठा और उसने गण्ड पर आक्रमण कर दिया। गण्ड

मुसलमानों की सेना से भयभीत होकर भाग गया और महमूद ने चन्देलों के राज्य का विध्वंस कर डाला। इसका शासन 1003 से 1017 ई० तक रहा था।

(4) विद्याधर (1018-1029 ई०)—गण्ड की मृत्यु के बाद उसका पुत्र विद्याधर 1018 ई० में गद्दी पर बैठा। यह चन्देल वंश का सबसे प्रतापी और शक्तिशाली राजा था। 1024 ई० में महमूद ने इस पर आक्रमण किया, परन्तु उसे सफलता नहीं मिली और महमूद कालिंजर का दुर्ग विजित न कर सका। नन्द (विद्याधर) की मृत्यु 1029 ई० में हो गई थी। इसके पश्चात् राजा देववर्मन ने 1070 ई० तक दक्षिणी बुन्देलखण्ड पर शासन किया था।

(5) कीर्तिवर्मन (1070-1100 ई०)—1070 ई० में प्रतापी राजा कीर्तिवर्मन ने इस वंश की बागडोर सँभाली। उसने पतनोन्मुख चन्देल वंश की प्रतिष्ठा पुनः स्थापित की। कीर्तिवर्मन की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र सुलक्षणवर्मन गद्दी पर बैठा। अपने पिता की भाँति वह भी दानी, प्रतापी एवं योग्य शासक था। उसकी मृत्यु 1115 ई० में हुई थी।

(6) परमार्दि (1165-1203 ई०)—इस वंश का अन्तिम शासक परमार्दि था। परमार्दि 1165 ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ और 1182 ई० में पृथ्वीराज चौहान द्वारा युद्ध में पराजित हुआ।

सन् 1203 ई० में कुतुबुद्दीन ऐबक ने इस राज्य पर आक्रमण किया। इस आक्रमण के फलस्वरूप मुसलमान विजयी हुए और चन्देलों ने कुतुबुद्दीन ऐबक की अधीनता स्वीकार कर ली। 1546 ई० तक चन्देलों का राज्य मुस्लिम साम्राज्य का अंग बना रहा। इसके बाद अकबर ने इस पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। चन्देल शासकों ने वास्तुकला और मूर्तिकला के क्षेत्र में विशेष योगदान दिया था। विश्व-प्रसिद्ध खजुराहो के मन्दिर चन्देल राजाओं के काल में ही निर्मित हुए थे। कला की दृष्टि से इस वंश का नाम इतिहास में अमर है।

प्रश्न 8—मुस्लिम आक्रमणकारियों के विरुद्ध राजपूतों की पराजय के कारणों का उल्लेख कीजिए। *(1990)*

अथवा **राजपूतों की पराजय के प्रमुख कारणों का वर्णन कीजिए।** *(1990, 92, 93, 94)*

अथवा **"राजपूतों की पराजय का एक ही कारण था, सेना में हाथियों का प्रयोग।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।**

अथवा **राजपूतों के पतन के कारणों की विवेचना कीजिए।** *(1994, 96)*

अथवा **राजपूतों की पराजय के कारणों का विश्लेषण कीजिए।** *(1997)*

अथवा **विदेशी आक्रमणकारियों के साथ संघर्षों में राजपूत शक्तियों के पराभव के कारणों का विश्लेषण कीजिए।** *(1999)*

उत्तर—

राजपूतों की पराजय के कारण

राजपूतों की पराजय के निम्नलिखित कारण थे—

(I) राजनीतिक कारण

(1) राजपूतों में एकता का अभाव—तुर्कों के विरुद्ध राजपूतों की पराजय का प्रमुख कारण राजपूतों में एकता का अभाव था। सम्पूर्ण भारत उस समय अनेक छोटे-छोटे स्वतन्त्र राज्यों में बँटा हुआ था। प्रत्येक राज्य दूसरे के प्रति संघर्ष करने की भावना से ओतप्रोत था। अतः तुर्कों ने एक-एक करके अनेक राज्यों पर बड़ी सुगमता से अधिकार कर लिया और अनेक राजपूत वंशों का अन्त कर दिया।

(2) वंश परम्परागत शासक होना—राजपूतों में एक शासक की मृत्यु के उपरान्त सिंहासन के उत्तराधिकारी वंश परम्परागत होते थे। इससे अनेक बार जब राज्य अयोग्य शासक के हाथ में चला जाता था, तब तुर्क आक्रमणकारी अवसर का लाभ उठाकर उस राज्य पर अपना अधिकार कर लेते थे।

राजनीतिक कारण

(1) राजपूतों में एकता का अभाव
(2) वंश परम्परागत शासक होना
(3) सीमान्त प्रदेशों की सुरक्षा की उपेक्षा
(4) परस्पर ईर्ष्या एवं द्वेष
(5) राष्ट्रीय भावना का अभाव।

(3) सीमान्त प्रदेशों की सुरक्षा की उपेक्षा—राजपूत काल में वर्तमान समय की भाँति सीमान्त प्रदेशों की सुरक्षा की व्यवस्था नहीं थी। अतः मुसलमानों को भारत में प्रवेश करने में किसी प्रकार की असुविधा नहीं होती थी।

(4) परस्पर ईर्ष्या एवं द्वेष—राजपूत शासकों में पारस्परिक द्वेष की भावना इतनी अधिक थी कि वे संकट के समय में भी एकजुट होकर बाहरी शत्रुओं से सामना न कर सके और साथ ही दूसरे राजा को नीचा दिखाने के लिए उन्होंने तुर्कों का साथ भी दिया।

(5) राष्ट्रीय भावना का अभाव—उस समय प्रत्येक राजपूत शासक अपने राज्य की रक्षा करना ही अपने कर्त्तव्य की इतिश्री समझता था। वे राष्ट्रीय भावना के महत्त्व को नहीं समझ सके। यही कारण था कि वे तुर्कों से पराजित हो गए।

(II) सामाजिक कारण

(1) जाति-प्रथा—इस समय जाति-प्रथा बहुत ही दोषपूर्ण एवं जटिल हो गई थी। समाज की शक्ति विभिन्न जातियों में बँट गई थी और युद्ध करने का उत्तरदायित्व केवल क्षत्रिय और राजपूतों पर ही रह गया था। दूसरी ओर राजपूत शासक समस्त वर्गों पर अपना एकाधिकार स्थापित करना चाहते थे। अन्य वर्गों के व्यक्तियों को महत्त्वहीन समझा जाता था। इस प्रकार, तीन-चौथाई जनता का युद्ध में भाग न लेना भी राजपूतों की पराजय का प्रमुख कारण सिद्ध हुआ।

सामाजिक कारण
(1) जाति-प्रथा
(2) राजपूतों का नैतिक पतन
(3) अहंकार की अधिकता
(4) मुसलमानों में धार्मिक जोश तथा एकता की भावना।

(2) राजपूतों का नैतिक पतन—उस समय राजपूत अपने कर्त्तव्यों से विमुख हो गए थे। उनका चारित्रिक पतन प्रारम्भ हो गया था। वे नाच-गाने तथा भोग-विलास में व्यस्त रहते थे और अपने राज्यों की सुरक्षा का ध्यान भी ठीक तरह से नहीं रखते थे। अतः इस स्थिति का महमूद गजनवी और मुहम्मद गोरी जैसे वीर, साहसी एवं चतुर आक्रमणकारियों ने लाभ उठाया और अपनी प्रभुता स्थापित करने में सफल हुए।

(3) अहंकार की अधिकता—राजपूत अहंकार की भावना से ओत-प्रोत हो गए थे। उन्हें अपनी वीरता, साहस एवं रण-कौशल पर बड़ा अभिमान हो गया था। वे सोचते थे कि उन्होंने स्वयं अपने बल पर अपने ही राज्य की स्थापना की है। अतः अन्य शासकों से सहायता लेना वे अपना अपमान समझते थे। ऐसी अहंकार की स्थिति में विदेशियों के आक्रमण करने पर, उनकी पराजय निश्चित हो गई थी।

(4) मुसलमानों में धार्मिक जोश तथा एकता की भावना—मुसलमान आक्रमणकारियों में धार्मिक जोश तथा एकता की प्रबल भावना थी। उनकी एकता की इस भावना ने ही राजपूतों को पराजित करने में विशेष योगदान दिया।

(III) सैनिक कारण

(1) राजपूतों की सेनाओं का दोषपूर्ण संगठन—राजपूतों की सेना में सैनिक संगठन का पर्याप्त अभाव था। उनकी सेनाएँ अव्यवस्थित होती थीं। उनकी सेनाओं में या तो सैनिक हाथियों पर बैठकर युद्ध-स्थल में आते थे, या पैदल। दोनों ही मुसलमानों की अश्वारोही सेना के सामने टिक नहीं पाते थे, क्योंकि भारतीय हाथी प्रायः युद्ध-स्थल पर जाकर बिगड़ जाते थे और कभी-कभी तो जिस हाथी पर सेनापति बैठा होता था वही बिगड़कर युद्ध-स्थल से भाग जाता था जिसे देखकर शेष सेना में भी भगदड़ मच जाती थी। अतः इस स्थिति में तुर्क सरलता से विजयी हो जाते थे। महमूद ने तो अनेक युद्ध हाथियों की भगदड़ का लाभ उठाकर ही जीते थे। इसलिए यह कथन भी सही है कि राजपूत सेना में हाथियों का प्रयोग बहुत ही विनाशकारी सिद्ध हुआ था।

(2) सुरक्षित (रिजर्व) सेना का अभाव—राजपूत सेना में आजकल की तरह सुरक्षा सेना की व्यवस्था नहीं थी। समस्त सेना एक साथ ही युद्ध-क्षेत्र में पहुँच जाती थी, किन्तु तुर्क सेनाओं की व्यवस्था बहुत अच्छी थी। वे एक पृथक् सेना सुरक्षित सेना के रूप में भी रखते थे। जब राजपूत योद्धा थक जाते

थे, तब तुर्क लोग अपनी सुरक्षित सेना को युद्ध-स्थल में उतार देते थे जिनका सामना थके राजपूत सैनिक नहीं कर पाते थे और लड़खड़ा कर वहीं धराशायी हो जाते थे।

सैनिक कारण

(1) राजपूतों की सेनाओं का दोषपूर्ण संगठन
(2) सुरक्षित सेना का अभाव
(3) सैनिकों की संख्या कम होना
(4) आधुनिक. अस्त्र-शस्त्रों का अभाव।

(3) सैनिकों की संख्या कम होना—राजपूतों की पराजय का एक प्रमुख कारण यह भी था कि उनके पास सैनिक शक्ति अर्थात् सैनिकों की संख्या तुर्कों एवं मुसलमानों की तुलना में बहुत ही कम थी। इसका कारण यह था कि वर्ण-व्यवस्था के अनुसार केवल राजपूत जाति को ही युद्ध करने का अधिकार प्राप्त था। इसके विपरीत, मुसलमानों में कोई भी जाति युद्ध में भाग ले सकती थी।

(4) आधुनिक अस्त्र-शस्त्रों का अभाव—मुसलमानों के पास युद्ध के अधिक़तम एवं नवीनतम अस्त्र-शस्त्र होते थे। दूसरी ओर राजपूत अपने बाहुबल पर युद्ध करने में विश्वास रखते थे। वे ढाल और तलवार का प्रयोग करते थे, किन्तु मुसलमान तीर-कमानों का प्रयोग करते थे। तुर्क लोग दूर से ही निशाना साधकर तीर छोड़ देते थे, किन्तु राजपूतों को बिल्कुल उनके निकट जाकर लड़ना पड़ता था। इससे वे शत्रुओं के तीरों से शीघ्र ही घायल हो जाते थे।

(IV) धार्मिक कारण

(1) हिन्दुओं का ईश्वरीय शक्ति में अन्धविश्वास—राजपूत अनेक देवी-देवताओं की आराधना करते थे। संकट के समय उनके आराध्य देवता उनकी सहायता अवश्य करेंगे, इस विश्वास के कारण वे ईश्वरीय शक्ति पर अधिक विश्वास करते थे और अपनी सैन्य शक्ति की ओर अधिक ध्यान नहीं देते थे। इतना ही नहीं, अपनी असीम शक्ति-भावना के कारण वे मन्दिरों का निर्माण करवाते थे और वहाँ पर असीम धन एकत्र करके रखते थे। इसीलिए सोमनाथ के मन्दिर पर महमूद गजनवी ने आक्रमण करके उसे खूब लूटा था। सोमनाथ मन्दिर के पुजारियों का विश्वास था कि भगवान स्वयं ही आकर उनकी रक्षा करेंगे।

धार्मिक कारण

(1) हिन्दुओं का ईश्वरीय शक्ति में अन्धविश्वास
(2) युद्ध के सिद्धान्त की प्रमुखता
(3) मुसलमानों की जेहाद-भावना।

(2) युद्ध के सिद्धान्त की प्रमुखता—राजपूत धार्मिक युद्ध के पक्षपाती थे अर्थात् युद्ध के सिद्धान्तों को अत्यधिक मानते थे और वे शत्रु को धोखे से मारना या शरणागत की हत्या करना अपने धर्म के विरुद्ध समझते थे। वे सत्य और दया के पक्षपाती थे, किन्तु तुर्क आक्रमणकारी अवसरवादी थे। उनका सिद्धान्त था कि युद्ध में किसी भी प्रकार विजय प्राप्त करनी ही है, विजय ही उनका एकमात्र धर्म है।

(3) मुसलमानों की जेहाद-भावना—मुसलमान सैनिक किसी भी युद्ध को इस्लाम धर्म की रक्षा के लिए लड़ते थे। युद्ध में अपनी जान देकर वे समझते थे कि हमने धर्म, अल्लाह या खुदा की रक्षा की है। यह जेहाद की भावना ही मुसलमानों की विजय का प्रमुख कारण थी।

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—अल्बरूनी कौन था? उसने राजपूतों के विषय में क्या लिखा है?

उत्तर—अल्बरूनी एक मुस्लिम यात्री था, जो महमूद गजनवी के साथ भारत आया था। उसने अपनी पुस्तक 'तहकीके-हिन्द' में तत्कालीन भारतीय समाज का सजीव चित्रण किया है। अल्बरूनी ने अपनी पुस्तक में लिखा है कि, "राजपूत बड़े दम्भी, हठी और अहंकारी होते हैं। उनके विचार में उनके देश के समान अन्य कोई देश इस संसार में नहीं है तथा उनकी जाति के समान अन्य कोई जाति नहीं है, उनके धर्म के समान अन्य कोई धर्म नहीं है तथा उनके साहित्य एवं विज्ञान के समान अन्य कोई साहित्य एवं विज्ञान नहीं है। वे न तो किसी से कुछ सीखना चाहते हैं और न ही किसी को कुछ सिखाना चाहते हैं।"

प्रश्न 2—राजपूत काल की धार्मिक दशा का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उत्तर—राजपूत काल में हिन्दू धर्म का पर्याप्त विकास हुआ था, परन्तु इस काल में बौद्ध धर्म का निरन्तर पतन होता रहा। इस काल में आचार्य कुमारिल भट्ट और शंकराचार्य जैसे धर्म सुधारकों ने हिन्दू धर्म का व्यापक प्रचार किया। आचार्य कुमारिल भट्ट ने मायावाद, शंकराचार्य ने अद्वैतवाद और रामानुजाचार्य ने विशिष्टाद्वैतवाद के सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया।

प्रश्न 3—राजपूतकालीन स्थापत्य कला के चार मन्दिरों के उदाहरण दीजिए।

उत्तर—राजपूत युग में अनेक भव्य मन्दिरों का निर्माण भी हुआ, जिनमें कोणार्क का सूर्य मन्दिर, उड़ीसा में भुवनेश्वर का लिंगराज मन्दिर, आबू पर्वत पर स्थित दिलवाड़ा का जैन मन्दिर और जगन्नाथ जी का विष्णु मन्दिर प्रमुख हैं।

प्रश्न 4—राजपूत काल में साहित्य की क्या प्रगति हुई? *(1991, 99)*

उत्तर—राजपूत काल में साहित्य की अत्यधिक प्रगति हुई थी। अनेक राजपूत राजा स्वयं परम विद्वान् और उच्च कोटि के साहित्यकार थे। विभिन्न विषयों के अनेक विद्वान् इन राजपूत राजाओं के दरबारों में संरक्षण पाते थे। इस काल में संस्कृत के अनेक ग्रन्थ लिखे गए, जिनमें भवभूति द्वारा लिखित उत्तररामचरित व गौड़वहो तथा राजशेखर द्वारा लिखित **'कर्पूर मंजरी'** आदि प्रमुख हैं। इसी काल में कल्हण ने **'राजतरंगिणी'**, माघ ने **'शिशुपाल वध'**, जयदेव ने **'गीत गोविन्द'**, चन्दबरदाई ने **'पृथ्वीराज रासो'** तथा जगनिक ने **'परमाल रासो'** की रचना की थी।

प्रश्न 5—उत्तरी भारत के किन्हीं चार राजपूत राजवंशों के नाम और उनकी राजधानी बताइए। *(1991)*

अथवा **हर्ष के शासनकाल के पश्चात् उत्तरी भारत में स्थापित चार राजपूत राज्यों का उल्लेख कीजिए।**

उत्तर—

	राजवंश		राजधानी
(1)	परमार वंश	—	धारानगरी
(2)	चाहमान वंश	—	अजमेर
(3)	चन्देल वंश	—	महोबा
(4)	गुर्जर प्रतिहार वंश	—	कन्नौज

प्रश्न 6—दक्षिण भारत के हर्ष काल के उपरान्त के चार राजवंशों के नाम दीजिए।

अथवा **चार प्रमुख राजपूत राज्यों का वर्णन कीजिए।** *(1991, 95)*

अथवा **दक्षिण भारत के दो प्रमुख प्राचीन राज्यों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।** *(1995)*

उत्तर—दक्षिण भारत में हर्ष काल के उपरान्त के चार राजवंश निम्नलिखित थे—

(1) **कल्याणी के चालुक्य**—जिस राजवंश ने कल्याणी को राजधानी बनाकर शासन किया, वे कल्याणी के चालुक्य कहलाए। इस वंश का सबसे प्रतापी राजा विक्रमादित्य षष्टम था।

(2) **वातापी के चालुक्य**—इन चालुक्यों ने बीजापुर जिले में स्थित वातापी को अपनी राजधानी बनाया। अतः वे वातापी के चालुक्य कहलाए। इस वंश का सबसे प्रतापी राजा पुलकेशियन द्वितीय था।

(3) **राष्ट्रकूट वंश**—राष्ट्रकूट वंश के राजाओं ने मान्यखेट या मालखेड़ को अपनी राजधानी बनाया। इस वंश के राजा कृष्णराज प्रथम के काल में एलोरा का प्रसिद्ध कैलाश मन्दिर बनाया गया था।

(4) **यादव वंश**—यादव वंश के राजाओं की राजधानी देवगिरि थी। इस वंश का सबसे प्रतापी शासक सिंघन था।

प्रश्न 7—राजपूतों की पराजय के चार मुख्य कारणों की विवेचना कीजिए। *(1992)*

उत्तर—राजपूतों की पराजय के चार मुख्य कारण निम्नलिखित हैं—

(1) **राजपूतों में एकता का अभाव**—राजूपतों की पराजय का मुख्य कारण राजपूत शासकों के मध्य एकता का अभाव था। सम्पूर्ण भारत उस समय अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था और प्रत्येक राज्य दूसरे राज्य के प्रति संघर्ष की भावना रखता था। तुर्कों द्वारा इस स्थिति का पूर्ण लाभ उठाया गया।

(2) राष्ट्रीय भावना का अभाव—तत्कालीन राजपूत अपने राज्य की रक्षा करना ही अपना कर्त्तव्य समझते थे। उनमें राष्ट्रीय भावना का अभाव भी उनकी पराजय का मुख्य कारण था।

(3) अहंकार की भावना—राजपूत शासक अहंकार की भावना से ओत-प्रोत थे। अतः परिणाम-स्वरूप उनका दृष्टिकोण संकुचित हो गया था।

(4) मुसलमानों की जेहाद की भावना—मुसलमान सैनिकों द्वारा इस्लाम धर्म की रक्षा हेतु युद्ध लड़ा जाता था और वे धर्म के लिए अपना सर्वस्व बलिदान करने के लिए भी तत्पर रहते थे। जेहाद की भावना मुसलमानों की विजय तथा राजपूतों की पराजय का मुख्य कारण थी।

प्रश्न 8—राजपूतकालीन किसी एक कवि तथा उसकी कृति पर प्रकाश डालिए। *(1996)*

उत्तर—राजपूत काल के कवियों में चन्दबरदाई का नाम सुप्रसिद्ध है। चन्दबरदाई एक भाट था और दिल्ली तथा अजमेर के शासक पृथ्वीराज चौहान का दरबारी कवि था। उसने **'पृथ्वीराज रासो'** नामक ग्रन्थ की रचना की थी। इस ग्रन्थ में पृथ्वीराज चौहान के शौर्य एवं पराक्रम का वर्णन किया गया है। भारतीय इतिहास में इस ग्रन्थ का अपना विशिष्ट महत्त्व है।

ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों एवं व्यक्तियों पर आधारित प्रश्न

प्रश्न 1— निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्त्व पर प्रकाश डालिए—

उत्तर—(1) 622 ई० *(1992, 99)*—इस तिथि से हिजरी सम्वत् प्रारम्भ हुआ था और इसी तिथि को इस्लाम धर्म के प्रवर्तक मुहम्मद साहब मक्का से मदीना को चले गए थे।

(2) 712 ई० *(1990, 91, 93, 94, 95, 96, 97, 99)*—इस तिथि को बगदाद के खलीफा के आदेश पर **मुहम्मद बिन कासिम** ने सिन्ध पर आक्रमण करके उस पर विजय प्राप्त की थी। भारतीय इतिहास में मुसलमानों का भारत पर यह पहला आक्रमण था।

(3) 840 ई०—इस तिथि को प्रतिहार वंश का राजा मिहिरभोज गद्दी पर बैठा।

(4) 1018 ई० *(1997)*—इस तिथि को परमार वंश का राजा भोज गद्दी पर बैठा।

(5) 1022 ई०—इस तिथि को चन्देल वंश का राजा विद्याधर चन्देल राजगद्दी पर बैठा।

(6) 1191 ई० *(1990, 91, 92, 93, 95, 96, 99)*—इस तिथि को मुहम्मद गोरी और पृथ्वीराज चौहान के मध्य तराइन का प्रथम युद्ध हुआ था। इस युद्ध में गोरी को पराजित होकर भागना पड़ा था।

(7) 1192 ई० *(1990, 92, 94, 96, 97, 99)*—इस तिथि को तराइन का दूसरा युद्ध हुआ था। इस युद्ध में परास्त पृथ्वीराज चौहान को बन्दी बना लिया गया था और बाद में एक विद्रोह का आरोप लगाकर उसका वध कर दिया गया था। भारतीय इतिहास में तराइन का द्वितीय युद्ध एक महत्त्वपूर्ण एवं निर्णायक युद्ध माना जाता है। इस युद्ध ने भारत के राजपूत राज्यों की शक्ति को लगभग समाप्त कर दिया था।

प्रश्न 2—निम्नांकित ऐतिहासिक स्थलों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) धारानगरी—राजपूत युग में मालवा की राजधानी धारानगरी थी। इस पर परमार वंश के राजपूतों का शासन था। राजा मुंज के शासनकाल में इस नगर की अभूतपूर्व प्रगति हुई थी। आज भी अनेक मन्दिरों के भग्नावशेष इस स्थान पर मिलते हैं।

(2) तराइन—दिल्ली के निकट स्थित तराइन नामक स्थान भारतीय इतिहास में ऐतिहासिक रणभूमि के रूप में ख्याति प्राप्त है। तराइन के मैदान में दो महत्त्वपूर्ण लड़ाइयाँ हुई थीं, जिनमें 1192 ई० में हुई दूसरी लड़ाई में मुहम्मद गोरी ने चौहानवंशीय राजा पृथ्वीराज तृतीय को पराजित करके भारतीय इतिहास में एक नए अध्याय का श्रीगणेश किया था।

(3) खजुराहो *(1991, 92, 94, 95, 97)*—यह स्थान बुन्देलखण्ड में स्थित है। राजपूत काल में खजुराहो में अनेक भव्य एवं कलात्मक मन्दिरों का निर्माण किया गया था। खजुराहो के लगभग तीस मन्दिरों में ऐसी सैकड़ों मूर्तियाँ बनी हुई हैं, जो अपनी सजीवता और कलात्मकता से न केवल देशवासियों को, वरन् विदेशी पर्यटकों को भी आकर्षित करती हैं।

(4) महोबा—चन्देल वंश के प्रथम महत्त्वपूर्ण स्वतन्त्र शासक यशोवर्मन ने महोबा को ही अपनी राजधानी बनाकर वहाँ से अपने सम्पूर्ण राज्य पर शासन किया। इस समय महोबा हमीरपुर जिले में स्थित है। महोबा में कीरतसागर तथा मदनसागर झीलें दर्शनीय हैं।

(5) कोणार्क *(1993)*—राजपूत काल में सूर्य पूजा का विशेष प्रचलन था। अतः राजपूतों ने अनेक ऐसे मन्दिरों का निर्माण कराया जहाँ सूर्य देवता की आराधना की जाती थी। उड़ीसा का कोणार्क मन्दिर इन मन्दिरों में अपना विशिष्ट स्थान रखता है। सूर्य देव का यह भव्य मन्दिर, तात्कालिक वास्तुकला का अद्‌भुत नमूना है।

प्रश्न 3—निम्नलिखित ऐतिहासिक व्यक्तियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) मिहिरभोज—यह गुर्जर प्रतिहार वंश का सर्वाधिक शक्तिशाली एवं पराक्रमी राजा था। इसने 836 ई० से लेकर 885 ई० तक राज्य किया था। इसने बुन्देलखण्ड, दक्षिणी राजपूताना, सौराष्ट्र आदि पर विजय प्राप्त करके एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया था। इसने पालवंशीय व राष्ट्रकूट राजाओं से भी संघर्ष किया था। यह एक महान् शासक तथा कला और साहित्य का विशेष प्रेमी था।

(2) जयचन्द—यह गहड़वाल वंश का अन्तिम शक्तिशाली शासक था। इसने 1170 से 1194 ई० तक राज्य किया था। इसने शासकों के साथ संघर्ष किया था। पृथ्वीराज चौहान के साथ भी इसका युद्ध हुआ था। चन्दवरदाई के अनुसार, जयचन्द की पुत्री संयोगिता को पृथ्वीराज चौहान स्वयंवर मण्डप से उठा लाया था, जिसके कारण जयचन्द और पृथ्वीराज की शत्रुता अत्यधिक बढ़ गई थी। इस शत्रुता का लाभ उठाकर ही मुहम्मद गोरी ने 1194 ई० में चन्द्रावर के युद्ध में जयचन्द को पराजित करके उसका वध कर दिया था।

(3) कल्हण *(1992, 96)*—कल्हण ने राजतरंगिणी नामक ग्रन्थ लिखा। इस ग्रन्थ की रचना 12वीं शताब्दी के मध्य में हुई। कल्हण की **'राजतरंगिणी'** कश्मीर के प्राचीन इतिहास पर विस्तृत रूप में प्रकाश डालती है। इस ग्रन्थ में कश्मीर पर अशोक के आक्रमण तथा उसे अपने साम्राज्य में सम्मिलित किए जाने का वर्णन भी किया गया है।

(4) चन्दबरदाई *(1990)*—चन्दबरदाई एक भाट और दिल्ली तथा अजमेर के शासक पृथ्वीराज चौहान का दरबारी कवि था। चन्दबरदाई ने अपने ग्रन्थ **'पृथ्वीराज रासो'** में पृथ्वीराज चौहान की वीरता तथा शौर्य का अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है। इस ग्रन्थ ने चन्दबरदाई और पृथ्वीराज चौहान दोनों को ही अमर कर दिया है।

(5) पृथ्वीराज चौहान *(1993)*—यह चौहान वंश का अन्तिम प्रतापी एवं शक्तिशाली सम्राट था, जिसे **'राय पिथौरा'** के नाम से भी सम्बोधित किया जाता है। पृथ्वीराज ने 1191 ई० में तराइन के युद्ध में मुहम्मद गोरी को परास्त किया था, परन्तु अगले ही वर्ष 1192 ई० में गोरी द्वारा किए गए दूसरे आक्रमण में पृथ्वीराज को बन्दी बना लिया गया और उसका वध कर दिया गया।

13 वृहत्तर भारत

[वृहत्तर भारत का अर्थ, मध्य एवं दक्षिण-पूर्व एशिया में भारतीय संस्कृति का प्रचार और प्रसार के माध्यम]

"भारत भूमि और समुद्र दोनों पर ही फैला हुआ था तथा उसकी सीमा सुमात्रा, जावा तक थी जहाँ इन द्वीपों का शासक राज्य करता था।"
— लाल मसूदी

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—वृहत्तर भारत से आप क्या समझते हैं? प्राचीनकाल में भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्रचार विदेशों में किस प्रकार हुआ?

अथवा **दक्षिण-पूर्वी एशिया में भारतीय संस्कृति के प्रसार का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।**

अथवा **"प्राचीनकाल में मध्य एशिया भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का प्रमुख केन्द्र था।" इस कथन की विवेचना कीजिए।**

अथवा **"भारतीय धर्म, भारतीय संस्कृति, भारतीय कानून पद्धति ने प्राचीनकाल में दक्षिण-पूर्वी एशिया के विभिन्न देशों पर व्यापक प्रभाव डाला।" इस कथन की पुष्टि कीजिए।**

अथवा **दक्षिण-पूर्वी एशिया में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के प्रचार तथा प्रसार का संक्षिप्त उल्लेख कीजिए।**

उत्तर—

वृहत्तर भारत का अर्थ

प्राचीनकाल में भारतीयों ने सुदूर देशों के साथ अपने व्यापारिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्ध स्थापित किए थे। यही नहीं उन्होंने अनेक बाह्य देशों में अपने उपनिवेश भी स्थापित किए। विभिन्न विद्वानों ने उन भू-भागों को ही संयुक्त रूप में वृहत्तर भारत का नाम दिया है, जहाँ पर प्राचीनकाल में भारतीय संस्कृति का प्रसार हुआ था।

वृहत्तर भारत के अन्तर्गत मध्य एशिया के देश और तिब्बत, कोरिया, चीन, हिन्दचीन, पूर्वी द्वीप समूह, चम्पा, कम्बोज, मलाया, स्याम, जावा, बर्मा आदि देश सम्मिलित थे। भारत का यह औपनिवेशिक विस्तार व्यापारियों, धर्म-प्रचारकों तथा हिन्दू राजाओं के सुप्रयासों द्वारा ही सम्भव हो सका था। प्राचीनकाल में अनेक भारतीय शासक विदेशों में जाकर बस गए तथा उन्होंने वहाँ पर भारतीय उपनिवेशों की स्थापना की। अनेक धर्म-प्रचारकों ने भी विदेशों में घूम-घूमकर भारतीय धर्म एवं संस्कृति का प्रचार किया था। डॉ० आर० सी० मजूमदार के शब्दों में, "भारतीय धर्म, भारतीय संस्कृति, भारतीय कानून तथा भारतीय कानून पद्धति ने इस व्यापक क्षेत्र में रहने वालों के जीवन पर गहरा प्रभाव डाला और उन लोगों ने भारत के धर्म, कला व साहित्य के माध्यम से एक उच्चतर नैतिक भाव तथा बौद्धिक अभिरुचि का अर्जन किया।" ऐतिहासिक साक्ष्यों के आधार पर भी यह सिद्ध हो चुका है कि प्राचीनकाल में समस्त एशिया को सभ्य और सुसंस्कृत बनाने का श्रेय भारत और चीन को ही प्राप्त है।

वृहत्तर भारत का क्षेत्र

अथवा

मध्य एशिया एवं दक्षिण-पूर्वी एशिया में भारतीय संस्कृति का प्रसार

(1) मध्य एशिया—प्राचीनकाल में मध्य एशिया भारतीय संस्कृति का प्रधान केन्द्र था। मध्य एशिया के यारकन्द, काशगर, खोतान, शानशान, तुरफान, कुचि कारशहर, कोओच्यांग आदि क्षेत्रों में भारतीय संस्कृति का विशेष प्रभाव था। सर औरैल स्टाइन ने मध्य एशिया में खुदाई कराने के उपरान्त वहाँ के भग्नावशेषों को देखकर यह निष्कर्ष निकाला कि मध्य एशिया पर भारतीय विचारों, परम्पराओं व

रीति-रिवाजों का विशेष प्रभाव पड़ा था। इस क्षेत्र की खुदाई से अनेक बौद्ध स्तूप, विहार तथा बुद्ध, गणेश व अन्य भारतीय देवताओं की मूर्तियाँ प्राप्त हुई हैं। खोतान उस काल में बौद्ध धर्म का प्रमुख केन्द्र था। खोतान की धार्मिक स्थिति के सन्दर्भ में फाह्यान ने लिखा है, "यहाँ के सभी निवासी धार्मिक हैं। घर-घर के प्रत्येक द्वार पर छोटे-छोटे स्तूप हैं। बौद्ध भिक्षुओं का सर्वत्र आदर होता है।"

(2) **अफगानिस्तान**—प्राचीनकाल में अफ़गानिस्तान भी वृहत्तर भारत का प्रमुख अंग था। इस पर मौर्य और कुषाण राजाओं ने शासन किया था।

वृहत्तर भारत का क्षेत्र

(1) मध्य एशिया
(2) अफगानिस्तान
(3) तिब्बत
(4) चीन
(5) कोरिया, जापान और फिलिपाइन
(6) दक्षिणी पूर्वी एशिया : (अ) बर्मा, (ब) श्रीलंका, (स) चम्पा, (द) कम्बुज, (य) जावा, (र) बाली, बोर्नियो तथा मलाया।

(3) **तिब्बत**—भारत के पड़ोसी देश तिब्बत में भी भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का व्यापक प्रसार हुआ था। तिब्बत में बौद्ध धर्म प्रचलित था।

(4) **चीन**—चीन भी वृहत्तर भारत का अंग रहा था। यहाँ भारत से ही बौद्ध धर्म का प्रचार हुआ था।

(5) **कोरिया, जापान और फिलिपाइन**—कोरिया, जापान तथा फिलिपाइन भी वृहत्तर भारत के अंग थे। यहाँ के सिक्कों, कलाओं तथा लिपि पर भारतीय संस्कृति की छाप देखी जा सकती है।

(6) **दक्षिण-पूर्वी एशिया**—दक्षिण-पूर्वी एशिया के निम्न देशों में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का प्रसार हुआ था—

(अ) **बर्मा**—अशोक के शासनकाल में बर्मा वृहत्तर भारत का अंग बन गया था। यहाँ अनेक बौद्ध मन्दिर और विष्णु की अनेक मूर्तियाँ उपलब्ध हुई हैं। बर्मा में ब्राह्मण धर्म का प्रचार भी हुआ था।

(ब) **श्रीलंका**—श्रीलंका में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का प्रसार सम्राट अशोक ने किया था।

(स) **चम्पा**—आधुनिक हिन्द-चीन को प्राचीनकाल में चम्पा कहा जाता था। यहाँ का शासक रुद्रवर्मन था जिसने शैव तथा वैष्णव धर्म का प्रसार किया था। चम्पा में रामायण तथा महाभारत को भी विशेष सम्मान दिया गया था।

(द) **कम्बुज**—वर्तमान कम्बोडिया को कम्बुज कहा जाता था। यहाँ कौडिण्य नामक ब्राह्मण ने भारतीय उपनिवेश की स्थापना की थी। बाद में यशोवर्मन नामक राजा ने यहाँ पर अनेक मन्दिर तथा भवन बनवाए थे। अंगकोरवाट का भव्य विष्णु मन्दिर आज भी यहाँ भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के प्रतीक के रूप में विद्यमान है।

(य) **जावा**—जावा भी प्राचीनकाल में वृहत्तर भारत का एक मुख्य केन्द्र था। जावा का एक प्रसिद्ध शासक समरतुंग था। उसने बोरोबुदूर का प्रसिद्ध बौद्ध स्तूप बनवाया था।

(र) **बाली, बोर्नियो तथा मलाया**—प्राचीनकाल में बाली द्वीप, वोर्नियो तथा मलाया आदि देश भी वृहत्तर भारत के अंग बन गए थे। इन देशों में वर्मन राजाओं ने भारतीय सभ्यता, संस्कृति एवं कानूनी पद्धति का व्यापक प्रचार किया था।

इस प्रकार, मध्य एशिया के अनेक देशों में भारतीय संस्कृति का व्यापक प्रसार हुआ। भारतीय संस्कृति के प्रसार की इस व्यापकता को देखते हुए यह कथन उपयुक्त ही है कि, "प्राचीन काल में मध्य एशिया भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का प्रमुख केन्द्र था।"

भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्रसार के विभिन्न माध्यम

प्राचीनकाल में मध्य एशिया एवं दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों में भारतीय संस्कृति के वाहक एवं प्रसारक के रूप में निम्न माध्यमों का विशिष्ट योगदान रहा—

(1) **धर्म-प्रचारक**—प्राचीनकाल में भारत के अनेक धर्म-प्रचारक निकटवर्ती देशों में अपने धर्म का प्रचार करने गए थे। यह कार्य बौद्ध धर्म के प्रचारकों ने अधिक किया था। ये धर्म-प्रचारक जब उन देशों

के निवासियों के सम्पर्क में आए, तो वहाँ के निवासियों ने भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति से प्रभावित होकर उसकी विशिष्टताओं को सहज ही ग्रहण कर लिया।

भारतीय सभ्यता और संस्कृति के प्रसार के माध्यम
(1) धर्म प्रचारक
(2) व्यापारी
(3) भारतीय-शासक
(4) धर्म का प्रसार।

(2) व्यापारी—प्राचीनकाल में भारत; शिल्प, उद्योग एवं वाणिज्य के क्षेत्र में उन्नति के शिखर पर था। अतः अनेक व्यापारी भारत के उच्च-कोटि के सामान तथा हस्तशिल्प की वस्तुओं का व्यापार करने के लिए निकटवर्ती देशों में जाया करते थे। इन व्यापारियों के माध्यम से भी भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति उन देशों तक पहुँच जाती थी।

(3) भारतीय शासक—भारत के अनेक शासक अपना साम्राज्य स्थापित करने के उद्देश्य से दक्षिण-पूर्वी एशिया के विभिन्न देशों में गए तथा उन्होंने वहाँ पर भारतीय उपनिवेशों की स्थापना की। चोल तथा वर्मन शासकों ने दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों में अपने साम्राज्य स्थापित किए तथा वहाँ भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का प्रसार किया। इन राजाओं ने वहाँ अनेक हिन्दू मन्दिर, महल तथा बौद्ध स्तूप बनवाए जिनका स्थायी प्रभाव वहाँ के निवासियों पर पड़ा और धीरे-धीरे उन्होंने भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति को ही अपना लिया।

(4) धर्म का प्रसार—बौद्ध धर्म के दक्षिण-पूर्वी एशिया तथा मध्य एशिया तक फैल जाने के कारण वहाँ भारतीय संस्कृति का प्रसार भी सरलता से हो गया।

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—'वृहत्तर भारत' से आप क्या समझते हैं ?

उत्तर—प्राचीनकाल में भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का प्रसार जिन-जिन देशों में हुआ था, उन देशों को ही संयुक्त रूप से 'वृहत्तर भारत' कहते हैं।

प्रश्न 2—प्राचीनकाल में भारतीयों ने किन-किन स्थानों पर अपने उपनिवेश स्थापित किए ?

उत्तर—प्राचीनकाल में भारतीयों ने बर्मा, फूनान, चम्पा, मलाया, हिन्द-चीन, सुमात्रा, जावा, बाली, खोतान तथा काशगर आदि स्थानों पर अपने उपनिवेश स्थापित किए थे।

प्रश्न 3—प्राचीनकाल में दक्षिण-पूर्वी एशिया के देशों पर भारत की ओर से क्या धार्मिक प्रभाव पड़े ?

उत्तर—प्राचीनकाल में दक्षिण-पूर्वी एशिया में भारत की ओर से बौद्ध एवं ब्राह्मण धर्म का व्यापक प्रचार हुआ। अतः इन देशों में बौद्ध एवं ब्राह्मण धर्म बहुत ही लोकप्रिय हुए थे।

प्रश्न 4—'वृहत्तर भारत' के विनाश के क्या कारण थे ?

उत्तर—बारहवीं शताब्दी में 'वृहत्तर भारत' का स्वरूप छिन्न-भिन्न हो गया, फिर भी वृहत्तर भारत के क्षेत्रों में अनेक हिन्दू मन्दिर, भवन, भाषा तथा बौद्ध स्तूप भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के प्रतीक के रूप में आज भी विद्यमान हैं। वृहत्तर भारत के पतन के निम्नलिखित कारण थे—

(1) अरबों का उत्कर्ष—अरब जाति ने यहाँ पर इस्लाम धर्म का प्रचार करके भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का विनाश कर दिया।

(2) तुर्कों के आक्रमण—तुर्कों ने आक्रमण करके भारत पर अपना आधिपत्य जमा लिया, जिससे भारत के उपनिवेश स्वतः ही समाप्त हो गए।

(3) उपनिवेशों के पारस्परिक विवाद—उपनिवेशों के आपसी संघर्ष के कारण भी भारतीय सभ्यता नष्ट हो गई।

(4) मंगोलों के आक्रमण—भारतीय उपनिवेशों पर मंगोलों ने आक्रमण करके वहाँ के भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति के अवशेषों को नष्ट कर दिया।

प्रश्न 5—प्राचीनकाल में मध्य एशिया को भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्रधान केन्द्र क्यों कहा जाता था ?

उत्तर—मध्य एशिया के अनेक स्थानों पर किए गए उत्खनन (खुदाई) से अनेक बौद्ध स्तूप एवं विहार, हिन्दू मन्दिर तथा बुद्ध, गणेश व अन्य हिन्दू देवी-देवताओं की प्रतिमाएँ प्राप्त हुई हैं। इनके अतिरिक्त भारतीय भाषा, लिपि, हस्तलेख तथा चित्र आदि के अनेक अवशेष भी यहाँ प्राप्त हुए हैं, जिन पर भारतीय विचारों, परम्पराओं एवं रीति-रिवाजों की स्पष्ट छाप दिखाई पड़ती है। अतः इन प्रमाणों के आधार पर यह कहा जाता है कि प्राचीनकाल में मध्य एशिया भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का प्रधान केन्द्र था।

ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों एवं व्यक्तियों पर आधारित प्रश्न

प्रश्न 1—निम्न तिथियों के ऐतिहासिक महत्त्व पर प्रकाश डालिए—

उत्तर—(1) 450 ई०—इस तिथि को लंका के बुद्धघोष ने ब्रह्मा (बर्मा) जाकर हीनयान सम्प्रदाय की स्थापना की।

(2) 640 ई०—इस तिथि को बौद्ध प्रचारकों का पहला दल तिब्वत (बर्मा) गया था। इनके द्वारा वहाँ पर भारतीय संस्कृति का उल्लेखनीय प्रसार हुआ था।

प्रश्न 2—निम्नांकित ऐतिहासिक स्थानों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) खोतान—खोतान, बौद्ध धर्म का प्रमुख केन्द्र था। यहाँ प्रत्येक घर के सामने बौद्ध स्तूप बनाए गए हैं। यहाँ का गोमती विहार एक दर्शनीय स्थल है। यहाँ प्राचीनकाल में तीन हजार बौद्ध भिक्षु निवास करते थे।

(2) चम्पा—आजकल हिन्द-चीन में जहाँ पर अन्नाम है, वहाँ कभी चम्पा का राज्य था। इस राज्य के हिन्दू राजाओं में भद्रवर्मा और गंगराज का नाम उल्लेखनीय है। यहाँ लगभग 1300 वर्षों तक हिन्दू शासकों का राज्य रहा। चम्पा के हिन्दू एवं बौद्ध मन्दिर वास्तुकला के अद्वितीय नमूने हैं।

प्रश्न 3—निम्नलिखित ऐतिहासिक व्यक्तियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) बुद्धघोष—यह सुप्रसिद्ध बौद्ध विद्वान् था जिसने ब्रह्मा जाकर हीनयान सम्प्रदाय की स्थापना की और हीनयान बौद्ध सम्प्रदाय का व्यापक प्रचार किया।

(2) महेन्द्र और संघमित्रा—महेन्द्र अशोक का पुत्र था और संघमित्रा उसकी पुत्री थी। इन्हें अशोक द्वारा बौद्ध धर्म के प्रचार हेतु लंका भेजा गया था। ये लंका में अपने साथ बोधिवृक्ष की एक शाखा भी ले गए थे जिसे अनुराधापुर के एक विहार में स्थापित किया गया था। इनके द्वारा ही लंका में बौद्ध धर्म का प्रचार एवं प्रसार प्रारम्भ हुआ। जब इन्होंने श्रीलंका के राजा तिस्स को बौद्ध धर्म का सन्देश दिया, तो उसने इस धर्म को अपने राज्य का राजधर्म घोषित कर दिया।

14 इस्लाम धर्म : गजनवी और गोरी के आक्रमण

[इस्लाम धर्म का उदय एवं विकास, अरबों द्वारा सिन्ध की विजय, अरब आक्रमण के परिणाम (प्रभाव), महमूद गजनवी के भारत पर आक्रमण तथा आक्रमण के उद्देश्य, महमूद के आक्रमणों का भारत पर प्रभाव, मुहम्मद गोरी तथा उसके भारत पर आक्रमण, मुहम्मद के भारत पर आक्रमण करने के उद्देश्य, मुहम्मद गोरी व महमूद गजनवी की तुलना, तुर्कों के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक दशा]

"सातवीं शताब्दी में अरबों का अचानक अत्यन्त शक्तिशाली सैनिक शक्ति के रूप में उभरना विश्व के इतिहास की उल्लेखनीय घटनाओं में से एक थी।" — डॉ० राय चौधरी

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—इस्लाम धर्म के उदय के क्या कारण थे ? इस धर्म के प्रमुख सिद्धान्त बताइए।

अथवा **"एक ही स्थायी सत्ता है— अल्लाह, जो सभी में समाहित है।" इस्लाम धर्म के सन्दर्भ में इस कथन की व्याख्या कीजिए।**

अथवा **इस्लाम के मूलभूत सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए।** *(1997, 99)*

उत्तर—

इस्लाम धर्म का उदय एवं विकास

इस्लाम धर्म के प्रवर्तक हजरत मुहम्मद साहब का जन्म अरब के मक्का नामक नगर में 570 ई० में हुआ था। बचपन में ही हजरत मुहम्मद साहब के माता-पिता का देहान्त हो गया था। अत: 13 वर्ष तक ये अपने बाबा के साथ रहे। बचपन से ही मुहम्मद साहब बड़े विचारशील, चिन्तनशील व धार्मिक प्रवृत्ति के थे। समाज में व्याप्त आडम्बरों को देखकर वे बहुत दु:खी हुआ करते थे। 40 वर्ष की आयु में हजरत मुहम्मद साहब ने अपने पैगम्बर होने की घोषणा कर दी। इसके उपरान्त इन्होंने इस्लाम धर्म की नींव डाली और अपने मत का प्रचार शुरू कर दिया। लेकिन मुहम्मद साहब के उदारवादी विचारों के कारण मक्का में इनके अनेक विरोधी बन गए। इसलिए मुहम्मद साहब ने 622 ई० में मक्का से मदीना को प्रस्थान कर दिया। इस्लाम के इतिहास में 622 ई० की तिथि 'हिजरत' के नाम से प्रसिद्ध है। इसी तिथि से इस्लाम का हिजरी सम्वत् प्रारम्भ होता है। धीरे-धीरे इनके अनुयायियों की संख्या बढ़ने लगी तथा अरबवासी कुछ ही दिनों में उनसे प्रभावित होकर इनके अनुयायी हो गए। उन्होंने अरबवासियों को अंधविश्वास व अज्ञान से मुक्त किया और अपने धर्म के व्यापक प्रचार द्वारा अरबवासियों के हृदय में प्रेम और बन्धुता की भावना भर दी। 632 ई० में हजरत मुहम्मद साहब की मृत्यु हो गई।

हजरत मुहम्मद साहब द्वारा दिए गए उपदेश मुसलमानों के पवित्र ग्रन्थ 'कुरान-शरीफ' में संग्रहीत हैं। इसके अतिरिक्त, धार्मिक प्रश्नों के उत्तर में जो व्याख्यान हजरत साहब अपने अनुयायियों को देते थे, वे 'हदीस' नामक ग्रन्थ में संकलित हैं।

इस्लाम धर्म के सिद्धान्त

इस्लाम धर्म के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

(1) ईश्वर एक है तथा मुहम्मद साहब उसके पैगम्बर हैं।

(2) सभी व्यक्ति अल्लाह की सन्तान हैं, उनमें परस्पर कोई भेद नहीं है और न ही करना चाहिए। चेतन तथा अचेतन सभी वस्तुएँ अल्लाह के द्वारा निर्मित हैं, सभी में अल्लाह विद्यमान है। इस्लाम धर्म के इसी सिद्धान्त के आधार पर यह कहा गया है कि, "एक ही स्थायी सत्ता है, अल्लाह जो सभी में समाहित है।"

(3) धरती पर मनुष्य का जन्म पहला और अन्तिम है।

(4) मुहम्मद साहब के अनुसार ईश्वर और 'रूह' (जीवात्मा) में सीधा सम्बन्ध है और मूर्तिपूजा करना आडम्बरयुक्त जीवन का प्रतीक है।

(5) कुरान मुसलमानों के लिए उतनी ही पवित्र है, जितनी ईसाइयों के लिए बाइबिल तथा हिन्दुओं के लिए रामायण और गीता।

(6) मुहम्मद साहब ने रूह (आत्मा) को अमर माना है।

(7) प्रत्येक व्यक्ति को अपने धर्म की रक्षा करनी चाहिए, परन्तु दूसरों के धर्म को कभी हानि नहीं पहुँचानी चाहिए।

(8) व्यक्तियों को मादक वस्तुओं का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

(9) इस्लाम धर्म 'जन्नत' (स्वर्ग) और 'दोजख' (नरक) में विश्वास करता है।

(10) इस्लाम धर्म के अनुसार मुसलमानों के पाँच कर्त्तव्य हैं—

(क) प्रत्येक मुसलमान को 'कलमा' पढ़ना चाहिए, यह बहुत पवित्र है।

(ख) उसे पाँचों वक्त की 'नमाज़' पढ़नी चाहिए।

(ग) प्रत्येक मुसलमान को 'जकात' (दान) करना चाहिए।

(घ) रमजान के महीने में 'रोजा' रखना प्रत्येक मुसलमान का कर्त्तव्य है।

(ङ) प्रत्येक मुसलमान को चाहिए कि वह अपने जीवन में एक बार मक्का-मदीना की यात्रा अर्थात् 'हज' अवश्य करे।

(11) इस्लाम धर्म में 'कयामत' में विश्वास किया जाता है। इस धर्म के अनुसार एक दिन कयामत आएगी, जब सभी 'रूहें' जिन्दा हो जाएँगी और तभी अल्लाह अच्छे-बुरे कर्मों का फल देगा।

(12) इस्लाम धर्म 'पुनर्जन्म' में विश्वास नहीं करता है।

प्रश्न 2—अरबों की सिन्ध विजय का संक्षेप में वर्णन कीजिए। इस विजय के क्या परिणाम हुए?

अथवा **भारत में अरबों के आक्रमण के प्रभाव का परिचय दीजिए।**

अथवा **सिन्ध पर अरब आक्रमण के परिणामों का विवेचन कीजिए।** *(1997, 99)*

उत्तर—

अरबों द्वारा सिन्ध की विजय

डॉ० ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है, "सिन्ध पर मुहम्मद-बिन-कासिम का आक्रमण इतिहास की एक रोमांचकारी घटना है।"

अरबवासियों में इस्लाम धर्म के प्रति असीम उत्साह और प्रेम था। वे अपने साम्राज्य के विस्तार तथा इस्लाम धर्म का प्रचार करने के लिए बड़े उत्सुक थे। पूर्व दिशा में वे अफ़गानिस्तान तक पहुँच चुके थे। इससे आगे सिन्ध का प्रदेश था। वे इसको भी जीतना चाहते थे। 711 ई० में इसके लिए इन्हें अवसर भी मिल गया।

आठवीं शताब्दी के प्रारम्भ में श्रीलंका के राजा ने उपहार से भरे हुए कुछ जहाज इराक के गवर्नर हज्जाज के लिए भेजे, परन्तु इन जहाजों को सिन्ध के बन्दरगाह देवल के निकट कुछ समुद्री डाकुओं ने लूट लिया। उस समय सिन्ध और मुल्तान का शासक राजा दाहिर था। हज्जाज ने जब राजा दाहिर से क्षतिपूर्ति देने के लिए कहा, तो दाहिर ने उत्तर दिया कि यह डाकू मेरे अधीन नहीं हैं। इस पर हज्जाज ने 711 ई० में उबेदुल्लाह के नेतृत्व में सिन्ध पर आक्रमण के लिए एक सेना भेजी जो परास्त हो गई। तब उसने अपने नवयुवक भतीजे और दामाद मुहम्मद-बिन-कासिम को, जिसकी आयु उस समय केवल सत्रह वर्ष की ही थी, एक सेना के साथ सिन्ध पर आक्रमण करने के लिए भेजा।

मुहम्मद-बिन-कासिम एक कुशल सेनापति था, वह 712 ई० में मकरान (बलूचिस्तान) के मार्ग से भारत में प्रविष्ट हुआ। उसने भारत में प्रवेश करते ही देवल नगर को जीत लिया। फिर वह सिन्ध को पार करके आगे बढ़ा। इसी समय सिन्ध के कुछ देशद्रोही और राजा दाहिर की एक रानी उससे मिल गए,

जिससे उसका कार्य काफी सरल हो गया। 20 जून, 712 ई० को ब्राह्मणाबाद नामक स्थान पर राजा दाहिर से उसका युद्ध हुआ जिसमें दाहिर पराजित हुआ और युद्ध में ही मारा गया।

दाहिर की विधवा महारानी ने दुर्ग का आश्रय लेकर बड़ी वीरता से मुसलमानों का सामना किया, परन्तु जब सफलता की कोई आशा न रही, तो वह अपने सतीत्व की रक्षा के लिए बहुत-सी स्त्रियों के साथ अग्नि में जलकर मर गई। 713 ई० में मुहम्मद-बिन-कासिम ने मुल्तान पर अधिकार कर लिया।

अरबों की सफलता के कारण

सिन्ध पर अरबों की विजय अथवा उनकी सफलता के अनेक कारण बतलाए जाते हैं। लेनपूल के शब्दों में, "भारत और इस्लाम के इतिहास में अरबों द्वारा सिन्ध विजय किया जाना एक घटना मात्र थी।" विभिन्न वर्गों के मध्य उत्पन्न पारस्परिक मतभेद, इस्लाम धर्म में अरबी सैनिकों की अटूट आस्था, धार्मिक कारण, आक्रमणकारियों की योग्यता व भारतीयों की आपसी फूट के कारण अरबों ने सिन्ध पर सफलतापूर्वक विजय प्राप्त कर ली थी।

सिन्ध विजय के परिणाम या प्रभाव

अथवा

अरब आक्रमण के परिणाम या प्रभाव

सिन्ध पर अरबों की विजय के निम्नलिखित प्रभाव पड़े—

(1) अनेक हिन्दू जजिया कर से बचने के लिए मुसलमान बन गए, जिससे सिन्ध सदैव के लिए एक मुस्लिम बहुसंख्यक प्रान्त बन गया।

(2) बगदाद के खलीफा ने अनेक भारतीय विद्वानों को अपने यहाँ बुलाया जिन्होंने भारतीय दर्शन, ज्योतिष आदि के संस्कृत ग्रन्थों का अरबी भाषा में अनुवाद किया।

(3) अनेक भारतीय वैद्य भी बगदाद के अस्पतालों में नियुक्त किए गए।

(4) अरबों ने हिन्दुओं से राज्य प्रबन्ध से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ प्राप्त कीं।

(5) इसी प्रकार, अरबों ने भारतीय दर्शन, ज्योतिष, वैद्यक, गणित आदि का अध्ययन किया और उन्होंने यूरोप पहुँचकर इस ज्ञान का प्रसार किया। एक विदेशी इतिहासकार ने इस बात को स्वीकार किया है कि आठवीं और नवीं शताब्दी में यूरोप में जो ज्ञान फैला, उसका मुख्य कारण अरबों का भारत से सम्पर्क था।

(6) आधुनिक खोजों के आधार पर यह बात भी स्पष्ट हो गई है कि अरबों की विजय ने ही भारत में इस्लाम का सूत्रपात किया। अपने आक्रमण के उपरान्त मुहम्मद-बिन-कासिम ने भी हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बनाया था।

प्रश्न 3—"वह (महमूद गजनवी) बगदाद को भी उसी निर्दयता से लूटता जिस निर्दयता से उसने सोमनाथ को लूटा था, यदि उसे वहाँ से धन मिलने की आशा होती।" महमूद गजनवी के आक्रमण के उद्देश्य में हैवेल के इस कथन की समीक्षा कीजिए। *(V. Imp.)*

अथवा "महमूद मात्र एक लुटेरा था, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं।" इस कथन की व्याख्या कीजिए। *(1990)*

अथवा "महमूद एक धार्मिक व्यक्ति की तुलना में योद्धा अधिक था। उसके लिए भारतवर्ष वह स्थान था, जहाँ से वह प्रचुर धन एवं रत्नाभूषण अपने घर ले जा सकता था।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।

अथवा "क्या महमूद गजनवी को एक लुटेरा कहा जा सकता है ?" समालोचना कीजिए। *(1990)*

अथवा "महमूद गजनवी के भारतीय आक्रमणों का उद्देश्य मात्र धनलोलुपता थी।" विवेचना कीजिए। *(1990, 94)*

अथवा भारत पर महमूद गजनवी के आक्रमण एवं उसके प्रभाव की विवेचना कीजिए। *(1992)*

अथवा "महमूद गजनवी मात्र लुटेरा था।" इस कथन को उसके भारतीय अभियानों के आधार पर सिद्ध कीजिए। *(1997)*

अथवा महमूद गजनवी के भारतीय आक्रमणों के उद्देश्यों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—

महमूद गजनवी

महमूद गजनवी का जीवन परिचय—महमूद गजनवी गजनी के शासक सुबुक्तगीन का पुत्र था। उसका पूरा नाम अबु कासिम महमूद था। उसका जन्म 971 ई० में हुआ था। वह अपनी युवावस्था में ही बड़ा योग्य, वीर तथा साहसी लुटेरा बन गया था और सभी प्रकार की राजनीतिक चालों में निपुण हो गया था। महमूद के व्यक्तित्व के सन्दर्भ में लेनपूल ने लिखा है, **"महमूद एक महान् सैनिक, अदम्य साहसी, विलक्षण मानसिक तथा शारीरिक शक्ति का स्वामी था।"**

महमूद गजनवी के भारत पर आक्रमण करने के उद्देश्य

महमूद गजनवी एक उच्च व्यक्तित्व का स्वामी था फिर भी उसने भारत पर बार-बार आक्रमण किए। **डॉ० ईश्वरी प्रसाद** का मत है, "उसका उद्देश्य भारत को जीतना नहीं था, अपितु वह यहाँ की अतुल सम्पत्ति को लूटना और अपने धर्म का प्रचार करना चाहता था। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए उसने भारत पर 17 बार हमले किए।" अधिकांश विद्वानों ने तो उसे मात्र लुटेरा ही माना है। हैवेल ने तो यहाँ तक लिख दिया है कि, "वह बगदाद को भी निर्दयता से लूट सकता था, यदि उसे वहाँ धन मिलने की सम्भावना होती।" उसके द्वारा भारत पर किए गए आक्रमणों के सम्बन्ध में भी अधिकांशतः यही कहा जाता है—**"महमूद मात्र एक लुटेरा था, इसके अतिरिक्त कुछ नहीं।"** अथवा **"महमूद गजनवी के भारतीय आक्रमणों का उद्देश्य मात्र धनलोलुपता थी।"**

महमूद गजनवी के भारत पर आक्रमण करने के उद्देश्यों के विषय में विद्वानों में मतभेद हैं, तथापि उसके इन उद्देश्यों को निम्न प्रकार व्यक्त किया जा सकता है—

(1) मूर्तिपूजा का अन्त—महमूद गजनवी एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था। वह इस्लाम धर्म का झण्डा हर देश में फहराना अपना प्रमुख कर्त्तव्य समझता था। भारत एक मूर्तिपूजक देश था। अतः भारत में मूर्तिपूजा को समाप्त करने तथा यहाँ पर इस्लाम धर्म का प्रचार करने के उद्देश्य से उसने भारत पर बार-बार आक्रमण किए।

> **महमूद के भारत पर आक्रमण करने के उद्देश्य**
> **(1) मूर्तिपूजा का अन्त**
> **(2) धन लूटना**
> **(3) राज्य-विस्तार की कामना**
> **(4) धर्म-प्रचार।**

(2) धन लूटना—महमूद वचपन में ही भारत की अपार धन-सम्पत्ति के विषय में सुन चुका था। अतः महमूद का भारत पर आक्रमण करने का मुख्य उद्देश्य भारत के विपुल धन को लूटकर गजनी ले जाना था। **डॉ० ईश्वरी प्रसाद** का कथन है कि, "जहाँ तक भारत का प्रश्न है, महमूद गजनवी एक लुटेरा मात्र ही था और भारत के धन को लूटना ही उसके आक्रमणों का प्रमुख लक्ष्य था।"

(3) राज्य-विस्तार की कामना—कुछ इतिहासकारों ने महमूद के आक्रमणों का उद्देश्य भारत में अपने राज्य का विस्तार करना बतलाया है, किन्तु यह सत्य प्रतीत नहीं होता है। वह भारत में अपना शासन स्थापित करना नहीं चाहता था, क्योंकि उसके आक्रमणों का लक्ष्य राजधानियाँ और सुदृढ़ दुर्गों के स्थान पर समृद्ध नगर तथा सोने-चाँदी से भरपूर मन्दिर होते थे। वह दुर्गों पर आक्रमण तभी करता था, जब ऐसा करना अनिवार्य होता था। मन्दिरों पर आक्रमण करने से उसकी धन प्राप्ति की अभिलाषा पूर्ण होती थी। इसी कारण भारत में उसके अधिकांश आक्रमण उन्हीं नगरों पर हुए जहाँ कोई प्रख्यात मन्दिर था अथवा जहाँ मन्दिरों की अधिकता थी।

(4) धर्म-प्रचार—कुछ इतिहासकारों ने महमूद के आक्रमणों का उद्देश्य इस्लाम धर्म का व्यापक प्रचार करना बताया है। यद्यपि यह बात पूर्णतः सत्य है कि उसने भारतीय आक्रमणों के समय जेहाद **(धर्म-युद्ध)** का नारा लगाया और मन्दिरों एवं मूर्तियों को तोड़कर स्वयं को **'बुतशिकन'** (मूर्ति तोड़ने वाला) सिद्ध किया। महमूद गजनवी द्वारा हिन्दू धर्म को पहुँचाए गए आघात तथा हानि को स्पष्ट करते हुए **डॉ० ईश्वरी प्रसाद** ने लिखा है कि, "अपने समय के मुसलमानों के लिए वह गाजी था, जो काफिर प्रदेशों में अधार्मिकता मिटाने में संलग्न रहता था। हिन्दुओं के लिए वह आज तक एक भीषण हूण है, जिसने अनेक पवित्र मन्दिरों को नष्ट कर दिया था और उनकी आत्माओं को अत्यधिक कष्ट दिया था।"

उपर्युक्त विभिन्न मतों का अध्ययन करने से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि महमूद के आक्रमणों का मुख्य उद्देश्य भारत की अपार धनराशि को लूटना मात्र ही था। उसने धन प्राप्ति के लिए धर्म के नाम का अनुचित उपयोग किया था। डॉ० नाजिम का कथन है, "यद्यपि उसकी विजयों के पीछे-पीछे धर्म-प्रचारक भी गए और कुछ हिन्दुओं ने इस्लाम धर्म स्वीकार कर लिया, परन्तु उसका वास्तविक उद्देश्य धन प्राप्ति ही था।" प्रो० जाफर ने लिखा है कि, "महमूद का उद्देश्य भारत में इस्लाम का प्रचार करना नहीं वरन् धन लूटना था। उसने हिन्दू मन्दिरों पर इसलिए आक्रमण किया, क्योंकि वहाँ विपुल धन संचित था।"

वस्तुतः महमूद एक लुटेरा ही था। **"वह एक धार्मिक व्यक्ति की तुलना में योद्धा अधिक था। उसके लिए भारतवर्ष वह स्थान था, जहाँ से वह प्रचुर धन एवं रत्नाभूषण अपने घर ले जा सकता था।"** अपने इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उसने भारत पर आक्रमण किया था।

प्रश्न 4—महमूद गजनवी के आक्रमणों का उल्लेख करते हुए भारत पर उसके आक्रमणों के प्रभाव की समीक्षा कीजिए। *(V. Imp.)*

उत्तर—

महमूद गजनवी के भारत पर आक्रमण

महमूद ने धन लूटने की इच्छा और आंशिक रूप से धर्म-प्रचार के उद्देश्य से भारत पर अनेक वार आक्रमण किए। उसके प्रमुख आक्रमणों का विवरण निम्नवत् है—

(1) सीमावर्ती प्रदेशों पर आक्रमण—1000 ई० में महमूद ने भारत के सीमावर्ती प्रदेशों पर आक्रमण किया। उसने इन प्रदेशों के शासकों को पराजित कर वहाँ काफी धन लूटा तथा इन शासकों को अपने अधीन कर लिया।

(2) जयपाल पर आक्रमण—1001 ई० में गजनवी ने पंजाब और पेशावर के राजा जयपाल पर आक्रमण किया। राजा जयपाल ने पेशावर के युद्ध में बड़ी वीरता एवं साहस के साथ महमूद का सामना किया, किन्तु दुर्भाग्यवश उसकी हार हुई और उसने निराशा के कारण आत्महत्या कर ली।

(3) भेरा पर आक्रमण—झेलम नदी के किनारे स्थित भेरा राज्य का शासक राजा विजयराज था। विजयराज महमूद की सेना के साथ चार दिन तक घमासान युद्ध करता रहा, लेकिन अन्त में वह पराजित हो गया और उसने आत्मग्लानि के कारण आत्महत्या कर ली।

(4) मुल्तान पर आक्रमण—महमूद ने 1006 ई० में अपना चौथा आक्रमण मुल्तान पर किया। इस समय शिया सम्प्रदाय का अनुयायी फतेह दाउद यहाँ का शासक था। उसने सुन्नी इस्लाम धर्म स्वीकार नहीं किया। महमूद ने एक विशाल सेना के साथ मुल्तान पर अधिकार कर लिया और वहाँ की जनता से 20,000 दिरहम दण्डस्वरूप वसूल किए।

(5) सेवकपाल पर आक्रमण—महमूद का पाँचवाँ आक्रमण आनन्दपाल के पुत्र सेवकपाल (नवासाशाह) पर हुआ। 1006 ई० में पराजित होने पर सेवकपाल ने इस्लाम धर्म अंगीकार कर लिया था। 1007 ई० में सेवकपाल पुनः स्वतन्त्र राजा हो गया था। अतः महमूद ने पुनः सेवकपाल पर आक्रमण किया। इस युद्ध में सेवकपाल पराजित हुआ और महमूद ने उससे 4 लाख दिरहम दण्डस्वरूप प्राप्त किए।

(6) आनन्दपाल पर आक्रमण—महमूद का छठा आक्रमण लाहौर के राजा आनन्दपाल पर 1008 ई० में हुआ। आनन्दपाल के इस आक्रमण के विरुद्ध दिल्ली, उज्जैन, ग्वालियर और कन्नौज आदि के राजाओं ने एक संघ निर्मित कर महमूद का सामना किया। प्रारम्भ में ऐसा प्रतीत होता था कि मुसलमान युद्ध में पराजित हो जाएँगे, किन्तु दुर्भाग्य से आनन्दपाल का हाथी युद्धभूमि में अनियन्त्रित हो गया और युद्ध-क्षेत्र से भागने लगा। ऐसी स्थिति का लाभ उठाकर महमूद ने लाखों व्यक्तियों की हत्या कर दी। इस स्थिति में हिन्दुओं की दुर्भाग्यपूर्ण पराजय हुई और उसके बाद महमूद ने कांगड़ा प्रदेश की राजधानी नगरकोट पर आक्रमण किया तथा मन्दिरों आदि को लूटकर अतुल सम्पत्ति प्राप्त की।

(7) नगरकोट पर आक्रमण—महमूद का 7वाँ आक्रमण 1010 ई० में नगरकोट पर हुआ। इस युद्ध को जीतने का उद्देश्य उसे दिल्ली तक पहुँचना था। इस युद्ध में हिन्दुओं की पराजय हुई और महमूद गजनवी वापस लौट गया।

(8) मुल्तान पर पुनः आक्रमण—महमूद का 8वाँ आक्रमण मुल्तान पर हुआ। यद्यपि मुल्तान पर महमूद ने पहले भी आक्रमण किया था, किन्तु उसकी यह विजय स्थायी न रह सकी और 1011 ई० में महमूद ने मुल्तान के शासक फतेह दाउद को पराजित कर वहाँ पुनः अपनी सत्ता स्थापित की।

महमूद गजनवी के भारत पर आक्रमण

(1) सीमावर्ती प्रदेशों पर आक्रमण
(2) जयपाल पर आक्रमण
(3) भेरा पर आक्रमण
(4) मुल्तान पर आक्रमण
(5) सेवकपाल पर आक्रमण
(6) आनन्दपाल पर आक्रमण
(7) नगरकोट पर आक्रमण
(8) मुल्तान पर पुनः आक्रमण
(9) थानेश्वर पर आक्रमण
(10) लाहौर पर आक्रमण
(11) कश्मीर पर आक्रमण
(12) भारत के भीतरी प्रदेशों पर आक्रमण
(13) कालिंजर पर आक्रमण
(14) पंजाब पर आक्रमण
(15) ग्वालियर तथा कालिंजर पर पुनः आक्रमण
(16) सोमनाथ पर आक्रमण
(17) मुल्तान के जाटों पर आक्रमण।

(9) थानेश्वर पर आक्रमण—महमूद का 9वाँ आक्रमण 1012 ई० में थानेश्वर के मन्दिरों पर हुआ। यहाँ का शासक नगर छोड़कर भाग गया, किन्तु हिन्दुओं ने वीरता से इस आक्रमण का सामना किया। महमूद ने विजय प्राप्त करने के उपरान्त इस नगर को लूटा और यहाँ की स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार किया।

(10) लाहौर पर आक्रमण—महमूद ने 10वाँ आक्रमण पुनः लाहौर पर किया। इस समय यहाँ आनन्दपाल का पुत्र त्रिलोचनपाल शासन कर रहा था। इस बार त्रिलोचनपाल के पुत्र भीमपाल ने वीरता से महमूद का सामना किया। वह युद्ध में पराजित होकर कश्मीर भाग गया और महमूद ने पंजाब को गज़नी साम्राज्य में मिला लिया।

(11) कश्मीर पर आक्रमण— 1015 ई० में महमूद का 11वाँ आक्रमण कश्मीर पर हुआ। इस आक्रमण का मुख्य उद्देश्य भीमपाल को बंदी बनाना था। उसने इसी उद्देश्य से लौहकोट के दुर्ग को घेर लिया, किन्तु मौसम की खराबी के कारण महमूद को निराश होकर वापस आना पड़ा।

(12) भारत के भीतरी प्रदेशों पर आक्रमण—महमूद का 12वाँ आक्रमण भारत के भीतरी प्रान्तों पर हुआ। सिन्ध तथा प्रमुख नदियों को पार करता हुआ महमूद बुलन्दशहर (बरन) पहुँचा। वहाँ पर नियुक्त हरिदत्त नामक गवर्नर अपने किले को छोड़कर ही भाग गया। यहाँ से महमूद को अतुल धनराशि और हाथी प्राप्त हुए। इसके बाद वह महाबन की ओर अग्रसर हुआ तथा यहाँ के गवर्नर कुलचन्द्र को पराजित करके उसने 80 हाथी तथा अन्य वस्तुएँ प्राप्त कीं। इसके बाद उसने मथुरा को लूटा और पुनः कन्नौज की ओर बढ़ा। यहाँ का प्रतिहार राजा राज्यपाल भाग गया। महमूद को कन्नौज के मन्दिरों से अपार धन प्राप्त हुआ।

(13) कालिंजर पर आक्रमण—महमूद का 13वाँ आक्रमण 1019 ई० में कालिंजर पर हुआ। इस समय यहाँ पर राजा गण्ड का शासन था। उसके पास एक संगठित सेना थी। इस सेना के सामने महमूद को युद्ध करने में कुछ संकोच हुआ, किन्तु दुर्भाग्य से गण्ड स्वयं भयभीत होकर भाग गया। कालिंजर विजय से भी महमूद को बहुत-सा धन प्राप्त हुआ।

(14) पंजाब पर आक्रमण—महमूद का 14वाँ आक्रमण 1020 ई० में पंजाब पर हुआ। उसने पंजाब के निवासियों को मुसलमान बनने के लिए बाध्य किया। तत्पश्चात् उसने पंजाब पर अपना शासन स्थापित किया और यहाँ प्रान्तपतियों को नियुक्त करके गजनी वापस लौट गया।

(15) ग्वालियर तथा कालिंजर पर पुनः आक्रमण—1022 ई० में महमूद ने ग्वालियर तथा कालिंजर प्रान्तों पर पुनः आक्रमण किया। यहाँ के शासकों ने उसकी अधीनता को स्वीकार कर लिया। यहाँ से बहुत-सा धन प्राप्त करने के पश्चात् वह वापस गजनी लौट गया।

(16) सोमनाथ पर आक्रमण—महमूद का 16वाँ तथा प्रसिद्ध आक्रमण सोमनाथ के मन्दिर पर हुआ। यह मन्दिर काठियावाड़ के समुद्र तट पर बना हुआ था तथा अपनी कला एवं अतुल धन-सम्पदा के लिए प्रसिद्ध था। 1024 ई० में महमूद गजनवी ने एक विशाल सेना के साथ गजनी से प्रस्थान किया तथा

जनवरी 1025 में वह सोमनाथ के मन्दिर के द्वार पर पहुँच गया। इस मन्दिर की रक्षा के लिए राजपूतों ने महमूद का वीरतापूर्वक सामना किया, किन्तु वे महमूद को मन्दिर में जाने से नहीं रोक सके। गजनवी ने मन्दिर की शिव मूर्ति को टुकड़े-टुकड़े कर दिए और मन्दिर के स्थान पर एक मसजिद की नींव डाली, मन्दिर की लूट से उसे अपार धन और सोने की प्राप्ति हुई।

(17) **मुल्तान के जाटों पर आक्रमण**—महमूद का अन्तिम आक्रमण 1027 ई० में मुल्तान के जाटों पर हुआ। इन जाटों ने महमूद की सेना को अत्यधिक परेशान किया था। अतः दण्ड देने के उद्देश्य से उसने जाटों पर आक्रमण कर दिया। अनेक जाटों को उसने नदी में डुबो दिया और उनके बच्चों को पकड़ लिया। यह महमूद का अन्तिम आक्रमण था। इस आक्रमण के तीन वर्ष बाद 1030 ई० में महमूद की मृत्यु हो गई थी।

महमूद के आक्रमणों का भारत पर प्रभाव

महमूद द्वारा किए गए 17 आक्रमणों का भारत पर व्यापक प्रभाव पड़ा। इस प्रभाव का विवरण निम्नलिखित है—

(1) भारत की विपुल सम्पदा लुट जाने के कारण भारत आर्थिक दृष्टि से बहुत दुर्बल हो गया।

(2) महमूद के आक्रमण से राजपूतों की सैनिक दुर्बलता स्पष्ट हो गई।

(3) भारतीय साहित्य एवं कला की अपार क्षति हुई क्योंकि महमूद ने लूट के साथ-साथ मन्दिरों, मूर्तियों आदि को नष्ट कर दिया था और वह देश की दुर्लभ अनेक कलाकृतियों को अपने साथ गजनी ले गया था।

(4) पंजाब को गजनी राज्य में मिला लिए जाने से भविष्य के लिए मुसलमान आक्रमणकारियों का भारत में आने तथा अपना साम्राज्य स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त हो गया।

इस प्रकार, महमूद के आक्रमणों के फलस्वरूप भारत को आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से बहुत अधिक हानि उठानी पड़ी थी। इस सम्बन्ध में अलबरूनी ने ठीक ही लिखा है, "महमूद ने देश की समृद्धि को पूर्ण रूप से नष्ट कर दिया था और आश्चर्यजनक कार्यों का सम्पादन किया था जिससे हिन्दुओं को बालू के कणों की भाँति बिखरा दिया गया था। उनके बिखरे अवशेष वास्तव में मुसलमानों से घोर घृणा करने लगे थे।"

प्रश्न 5—मुहम्मद गोरी कौन था? उसकी भारतीय विजयों का वर्णन कीजिए।

अथवा **मुहम्मद गोरी के भारतीय आक्रमणों का वर्णन कीजिए तथा महमूद गजनवी से इसकी तुलना कीजिए।**

अथवा **"1192 ई० के तराइन के युद्ध (द्वितीय युद्ध) को निर्णायक कहा जा सकता है, क्योंकि इसने भारत में मुसलमानों की विजय सुनिश्चित कर दी थी।" वी० ए० स्मिथ के इस कथन की समीक्षा कीजिए।**

अथवा **मुहम्मद गोरी के भारतीय विजय-अभियानों का उल्लेख कीजिए।** *(1990)*

अथवा **मुहम्मद गोरी की भारत-विजय का सविस्तार वर्णन कीजिए।** *(1990, 92)*

उत्तर—

मुहम्मद गोरी

मुहम्मद गोरी का संक्षिप्त जीवन परिचय—मुहम्मद गोरी एक महत्त्वाकांक्षी एवं कट्टर मुसलमान शासक था। वह गजनी और हिरात के बीच स्थित गौर प्रदेश का निवासी था। उसका वास्तविक नाम मुईनुद्दीन मुहम्मद गोरी उर्फ शहाबुद्दीन गोरी था। महमूद की मृत्यु के बाद गोरी के भाई ग्यासुद्दीन ने 1173 ई० में गजनी पर अधिकार कर लिया और गजनी के शासन-प्रबन्ध का उत्तरदायित्व मुहम्मद गोरी को सौंप दिया। मुहम्मद ग़ोरी जीवन-पर्यन्त अपने भाई ग्यासुद्दीन के प्रति निष्ठावान रहा।

मुहम्मद गोरी के भारत पर आक्रमण करने के उद्देश्य—मुहम्मद गोरी अत्यन्त महत्त्वाकांक्षी और धर्मान्ध शासक था। भारत पर उसके आक्रमण के निम्नांकित उद्देश्य थे—

(1) अपने साम्राज्य की सीमा बढ़ाना।

(2) भारत से अतुल धनराशि प्राप्त करना।

(3) मुल्तान पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना।

(4) भारत में इस्लाम धर्म का प्रसार करना एवं मूर्तिपूजा का विनाश करना।

(5) महमूद गजनवी के अन्तिम उत्तराधिकारी मलिक खुसरो का अन्त करना।

(6) मध्य एशिया में अपने शत्रु ख्वारिज्म के शासक का अन्त करने के लिए सुदृढ़ भारतीय साम्राज्य की स्थापना करना।

मुहम्मद गोरी के भारत पर आक्रमण

मुहम्मद गोरी 1175 ई० से 1205 ई० तक निरन्तर भारत पर आक्रमण करता रहा, जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(1) मुल्तान एवं उच्छ पर विजय—मुहम्मद गोरी ने 1175 ई० में मुल्तान पर आक्रमण किया। उसने भाग्य के बल पर बड़ी सरलता से मुल्तान पर अधिकार कर लिया। इसके पश्चात् 1176 ई० में उसने उच्छ के दुर्ग पर आक्रमण किया। कहा जाता है कि उसने उच्छ के भट्टी राजा की रानी के पास यह सन्देश भिजवाया कि यदि तुम दुर्ग के द्वार खुलवा दोगी तो मैं तुम्हें अपनी पटरानी बना लूँगा। वहाँ की रानी ने अपने पति के साथ विश्वासघात किया और मुहम्मद गोरी का साथ दिया, किन्तु मुहम्मद गोरी ने उसे धोखा देकर वहाँ के शासक की हत्या करवा दी और उच्छ के दुर्ग पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। ऐसा कहा जाता है कि बाद में मुहम्मद गोरी ने धोखेबाज रानी को बन्दी बनाकर उसकी पुत्री से विवाह कर लिया।

मुहम्मद गोरी के भारत पर आक्रमण

(1) मुल्तान एवं उच्छ पर विजय
(2) गुजरात पर आक्रमण
(3) पेशावर व पंजाब पर विजय
(4) तराइन का प्रथम युद्ध
(5) तराइन का द्वितीय युद्ध
(6) अन्य आक्रमण
(7) गोरी की मृत्यु।

(2) गुजरात के आबू एवं अन्हिलवाड़ा पर आक्रमण—उच्छ की विजय के बाद मुहम्मद गोरी ने 1178 ई० में गुजरात पर आक्रमण किया। गुजरात के राजा मूलराज ने आबू पर्वत के समीप गोरी को बुरी तरह पराजित किया। मूलराज से परास्त होकर गोरी ने अन्हिलवाड़ा पर आक्रमण किया। अन्हिलवाड़ा का शासक भीमदेव बड़ा वीर और साहसी था। अतः उसने मुहम्मद गोरी का वीरतापूर्वक सामना किया और उसे पराजित कर दिया। उसने गोरी को अपने देश से बाहर खदेड़ दिया और उसके अनेक सैनिकों को बन्दी बना लिया।

(3) पेशावर व पंजाब पर विजय—गुजरात में पराजित होने के पश्चात्, 1180 ई० में मुहम्मद गोरी ने पेशावर पर आक्रमण कर उसे अपने अधिकार में ले लिया। 1185 ई० में मुहम्मद गोरी ने लाहौर पर आक्रमण कर लाहौर के शासक मलिक खुसरो को छलपूर्वक बन्दी बना लिया। इस प्रकार, उसने पंजाब पर भी अपना पूर्ण आधिपत्य स्थापित कर लिया।

(4) तराइन का प्रथम युद्ध (1191 ई०)—पंजाब पर पूर्ण अधिकार करने के पश्चात् गोरी ने दिल्ली-अजमेर राज्य पर आक्रमण करने का विचार किया। उस समय चौहान वंश का सुविख्यात राजा पृथ्वीराज चौहान यहाँ पर शासन कर रहा था। उसने मुहम्मद गोरी का सामना करने के लिए राजपूत शासकों का एक संघ बनाया। 1191 ई० में थानेश्वर से 14 मील दूर तराइन नामक स्थान पर गोरी एवं राजपूती सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ। राजपूतों की वीरता देखकर गोरी के सैनिकों के छक्के छूट गए और गोरी को पराजित होकर भागना पड़ा।

इस पराजय के अपमान का प्रतिशोध लेने के लिए वह दूसरे वर्ष ही पूर्ण तैयारी के साथ पुनः तराइन के मैदान में आ डटा।

(5) तराइन का द्वितीय युद्ध (1192 ई०)—मुहम्मद गोरी, दूसरी बार, 1192 ई० में 1 लाख 20 हजार योद्धाओं के साथ पुनः तराइन के मैदान में उतरा। इस बार भी तराइन में राजपूतों और मुहम्मद गोरी के मध्य घमासान युद्ध हुआ। फरिश्ता के कथनानुसार, "तराइन के पवित्र रणक्षेत्र में भारत के 150 राजाओं के नेतृत्व में पाँच लाख घुड़सवार, तीन हजार हाथी तथा एक विशाल पैदल सेना एकत्र थी।" तराइन के इस द्वितीय युद्ध में मुहम्मद गोरी की विजय हुई। कुछ विद्वानों के मतानुसार पृथ्वीराज चौहान युद्धस्थल
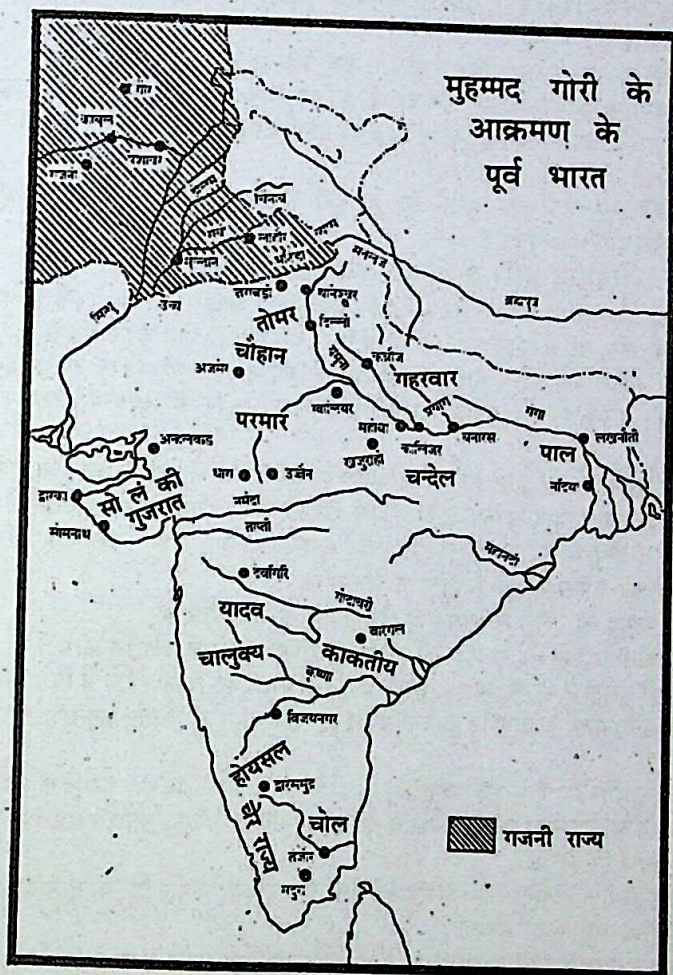
मानचित्र—मुहम्मद गोरी के आक्रमण के पूर्व भारत (बारहवीं शताब्दी) ।

में ही स्वर्गवासी हो गया।[1] इसके विपरीत, कुछ विद्वानों के अनुसार, पृथ्वीराज को बन्दी बना लिया गया और बाद में अजमेर में उसका वध कर दिया गया। इस युद्ध के परिणामों ने भारत के भाग्य को बदल दिया था और भारत में एक नवीन विदेशी मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना हुई थी। इस निर्णायक युद्ध के सन्दर्भ में विन्सेण्ट स्मिथ ने लिखा है, "1192 ई० के तराइन के युद्ध को निर्णायक युद्ध कहा जा सकता है, क्योंकि इससे हिन्दुस्तान में मुसलमानों की अन्तिम विजय सुनिश्चित हो गई। इसके बाद मुसलमानों को जो अनेक विजयें प्राप्त हुईं वे तो हिन्दुओं के संगठित मोर्चे की उस महान् पराजय का परिणाम मात्र थीं, जो उन्हें दिल्ली के उत्तर में स्थित रणक्षेत्र में भुगतनी पड़ी थीं।"

1. पृथ्वीराज चौहान की मृत्यु के सम्बन्ध में समकालीन इतिहासकारों—मिनहाज-उस-सिराज (तबकाते नासिरी), हसन निजामी (ताजुल नासिर), हिन्दू बेग फरिश्ता (तारीखे फरिश्ता) और चन्दबरदाई (पृथ्वीराज रासो) के भिन्न-भिन्न मत हैं। इनमें हसन निजामी का मत अधिक विश्वसनीय माना जाता है।

(6) **अन्य आक्रमण**—1193 ई० में मुहम्मद गोरी ने मेरठ, दिल्ली तथा कोइल (अलीगढ़) पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

सन् 1194 ई० में गोरी ने अपने मित्र कन्नौज के राजा जयचन्द पर भी आक्रमण कर दिया और चन्द्रावर के युद्ध में जयचन्द को मृत्यु के घाट उतारकर कन्नौज पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया। इसके पश्चात् मुहम्मद गोरी अपने गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक को भारतीय साम्राज्य का वाइसराय बनाकर गौर प्रदेश लौट गया।

(7) **गोरी की मृत्यु**—15 मार्च, 1206 ई० को गोरी स्वदेश जाते समय मार्ग में कुछ शिया विद्रोहियों और खोखरों द्वारा मारा गया।

मुहम्मद गोरी व महमूद गजनवी की तुलना

मुहम्मद गोरी और महमूद गजनवी की तुलना निम्नलिखित आधारों पर की जा सकती है—

(1) दोनों के भारत पर आक्रमण करने के उद्देश्य भिन्न थे। मुहम्मद गोरी कुशल राजनीतिज्ञ एवं दूरदर्शी शासक था। अतः उसका उद्देश्य भारत में स्थायी राज्य स्थापित करना और अपने धर्म का प्रसार एवं प्रचार करना था। इसके विपरीत, महमूद गजनवी ने केवल धन लूटने के उद्देश्य से ही भारत पर आक्रमण किए थे।

(2) महमूद गजनवी ने भारत पर 17 बार आक्रमण किए और कभी भी पराजित नहीं हुआ, जबकि मुहम्मद गोरी ने उसकी अपेक्षा भारत पर कम आक्रमण किए और उसे कई बार पराजय का मुँह देखना पड़ा।

(3) मुहम्मद गोरी; महमूद के समान न तो महान् सेनापति था और न ही कुशल योद्धा, किन्तु फिर भी वह गजनवी की अपेक्षा अधिक भाग्यशाली अवश्य था।

(4) गोरी, महमूद की तुलना में अधिक दूरदर्शी एवं योग्य राजनीतिज्ञ था।

(5) गोरी की विजयें महमूद गजनवी की तुलना में अधिक महत्त्वपूर्ण और स्थायी थीं।

(6) गोरी की तुलना में महमूद अधिक कुशल था। इसी कारण वह अपने पूर्वजों से मिले छोटे-से राज्य को एक विशाल साम्राज्य में परिवर्तित करने में सफल रहा और भारत की विशाल धन-सम्पदा गजनी ले जा सका।

(7) विजय के दृष्टिकोण से महमूद गजनवी, मुहम्मद गोरी से अधिक महान् था। महमूद के साम्राज्य में ईरान, खुरासान तथा बुखारा आदि भारत से बाहर के क्षेत्र भी सम्मिलित थे, परन्तु भारतीय क्षेत्र में मुहम्मद गोरी की विजय अधिक विस्तृत थी।

(8) एलफिन्स्टन के अनुसार, "यद्यपि मुहम्मद गोरी एक साहसी सैनिक था, परन्तु न तो उसमें महमूद की-सी बुद्धि थी और न ही प्रतिभा।"

(9) महमूद में मुहम्मद गोरी से अधिक कार्यक्षमता थी। प्रो० हबीब का कथन है कि, "महमूद ने जिस काम को उठाया वह असफल नहीं हुआ, क्योंकि उसने कभी असम्भव काम को हाथ में ही नहीं लिया। किन्तु मुहम्मद में यह बात नहीं थी, वह कभी-कभी ऐसे काम अपने ऊपर ले लेता था, जिनको पूरा करने की क्षमता उसमें नहीं थी।"

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि महमूद गजनवी के आक्रमणों का प्रमुख उद्देश्य भारत से धन लूटना था, जबकि मुहम्मद गोरी ने भारत में अपना राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने के उद्देश्य से आक्रमण किया था। अतः महमूद के आक्रमणों के परिणामस्वरूप भारत की आर्थिक दशा अत्यन्त कमजोर हो गई; तथा मुहम्मद गोरी के आक्रमणों के फलस्वरूप भारत से मुसलमानों ने अपनी सत्ता स्थापित कर ली। मुहम्मद गोरी के पास कुतुबद्दीन ऐबक ने 1206 ई० में भारत में गुलाम वंश की स्थापना की।

प्रश्न 6—मुस्लिम आक्रमणों के प्रभाव का आलोचनात्मक विश्लेषण कीजिए। *(1997)*

उत्तर—

भारत पर मुस्लिम आक्रमण का प्रभाव

भारत पर 712 ई० में प्रथम मुस्लिम आक्रमण हुआ था। इस आक्रमण के फलस्वरूप अरबों को सिन्ध पर विजय प्राप्त करने में सफलता प्राप्त हुई। इसके उपरान्त महमूद गजनवी और मुहम्मद गोरी ने

भारत पर अनेक आक्रमण किए। महमूद ग़जनवी के आक्रमण से मुस्लिम आक्रमणकारियों के लिए भारत पर आक्रमण करने का एक नवीन मार्ग खुल गया और भारत पर अविराम गति से अनेक मुस्लिम आक्रमण होते चले गए। राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से इन आक्रमणों का भारत पर व्यापक प्रभाव पड़ा, जिसका संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है—

(1) राजनीतिक प्रभाव—मुस्लिम आक्रमणों के परिणामस्वरूप विदेशियों के लिए भारत पर आक्रमण करने का एक नवीन मार्ग खुल गया और भविष्य में उत्तर-पश्चिम दिशा से भारत पर जितने भी आक्रमण हुए, वे सभी इसी मार्ग से हुए। महमूद गजनवी के आक्रमण से ही विदेशियों को यह ज्ञात हो गया कि भारतीय सेनाओं की रणनीति एवं सैन्य संगठन अत्यन्त कमजोर है। उन्हें यह स्पष्ट आभास हो गया भारतीय सैनिकों की दुर्वलताओं के कारण उन्हें सुगमता से पराजित किया जा सकता है। पंजाब तुर्की राज्य का अंग बन गया जो भारत के लिए अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण घटना सिद्ध हुई। पंजाब को गजनी में मिला लिए जाने से ही भविष्य में मुस्लिम आक्रमणकारियों का भारत में आने तथा भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने का मार्ग प्रशस्त हो गया।

भारत पर मुस्लिम आक्रमण का प्रभाव

(1) राजनीतिक प्रभाव
(2) सामाजिक प्रभाव
(3) आर्थिक प्रभाव
(4) सांस्कृतिक प्रभाव।

भारत में मुस्लिम आक्रमणों एवं उनके द्वारा मुस्लिम साम्राज्य की स्थापना के परिणामस्वरूप राजपूतों द्वारा स्थापित प्रशासनिक ढाँचा ध्वस्त होता चला गया। सामन्तों के अधिकार छीनकर मुस्लिमों ने अपने हाथों में ले लिए। सत्ता का केन्द्रीकरण होना प्रारम्भ हुआ और राजपूती राज्यों का अस्तित्व समाप्त होता चला गया।

(2) सामाजिक प्रभाव—मुस्लिम आक्रमण का भारतीयों के खान-पान, रहन-सहन, वेशभूषा आदि पर भी बहुत अधिक प्रभाव पड़ा। मुसलमानों में दास-प्रथा थी, अतः भारतीय समाज में भी दासों के समान नौकर रखने की प्रथा का जन्म हुआ। मुस्लिम शासकों ने सैनिक अधिकारियों को जागीरें प्रदान की थीं। इसका परिणाम यह हुआ कि भारत में जमींदारी प्रथा का प्रचलन हो गया। मुसलमान शासकों ने कई स्थानों पर छल-कपट का सहारा लेकर हिन्दुओं से उनके किले छीन लिए। इससे प्रभावित होकर हिन्दुओं में भी छल-कपट के व्यवहार का प्रचलन हो गया और भारतीय समाज का नैतिक पतन प्रारम्भ हो गया। मुसलमानों से अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा के लिए हिन्दुओं ने वाल-विवाह, पर्दा-प्रथा, सती-प्रथा आदि प्रथाओं को कठोरता से स्वीकार कर लिया।

मुस्लिम शासकों ने हिन्दुओं को धर्म परिवर्तन करने पर भी विवश किया। साथ ही कुछ हिन्दू जजिया-कर से बचने के लिए स्वतः ही मुसलमान वन गए। भारतीय समाज में व्याप्त जातिगत भेदभाव की भावना ने भी अनेक हिन्दुओं को मुस्लिम वनने के लिए प्रेरित किया। सम्भवतः इसी कारण भारतीय समाज में विकसित हो रही भयावह जाति-प्रथा के बन्धनों में कुछ शिथिलता आने लगी। इसके अतिरिक्त, भारत में साम्प्रदायिकता की भावना का उदय और समाज में वर्गवाद पर आधारित भावना का प्रमार भी मुस्लिम शासन के ही परिणाम के रूप में सामने आए।

(3) आर्थिक प्रभाव—मुस्लिम आक्रमणकारियों ने भारत की विपुल सम्पदा लूटी। विशेषकर महमूद गजनवी और गोरी आक्रमणों से भारत को महान् आर्थिक क्षति उठानी पड़ी। गजनवी ने हिन्दू मन्दिरों तथा भारतीय शासकों से अथाह सम्पत्ति लूटी और उसे अपने साथ गजनी ले गया। भारत में मुस्लिम शासन प्रारम्भ हो जाने के उपरान्त मुस्लिम शासकों ने भारत की अर्थव्यवस्था की ओर भी ध्यान दिया। उनके प्रयासों के फलस्वरूप भारत की आर्थिक स्थिति में अनेक नवीन परिवर्तन हुए। इन परिवर्तनों ने विशेष रूप से नगरीय जीवन को प्रभावित किया। विदेशों से अनेक कारीगर और शिल्पी भारत में आए और भारतीय नगरों में बस गए। शहरी समाज में कुछ कारीगरों को विशेष महत्त्व दिया जाने लगा। जुलाहे, जिनको जातीय आधार पर निम्न दृष्टि से देखा जाता था, उन्हें ऊँचा स्थान प्राप्त हुआ। राजपूतों द्वारा बसाए गए शहरों में विभिन्न जातियों के लोग जाकर बस गए और वहाँ एक मिश्रित संस्कृति का विकास प्रारम्भ हुआ।

(4) **सांस्कृतिक प्रभाव**—गजनवी, गोरी आदि कई मुस्लिम आक्रमणकारियों के आक्रमणों के फलस्वरूप भारतीय साहित्य एवं कला की अपार क्षति हुई। उन्होंने कितने ही मन्दिरों और मूर्तियों को नष्ट कर दिया और देश की अनेक दुर्लभ कलाकृतियों को अपने साथ ले गए। जहाँ एक ओर मुस्लिम आक्रमणकारियों ने भारतीय संस्कृति को अपार क्षति पहुँचाई वहीं दूसरी ओर उन्होंने भारत में वास्तुकला पर आधारित एक नवीन कला-शैली को भी जन्म दिया। गुम्बद, ऊँची मीनार, मेहराब आदि विभिन्न विशेषताओं से युक्त इस कला-शैली पर आधारित अनेक भव्य स्मारकों का भारत में निर्माण हुआ। दिल्ली कला का सर्वप्रमुख केन्द्र बन गया और यहाँ कई विश्व-प्रसिद्ध इमारतों का निर्माण हुआ। भारत में मुस्लिम आगमन के फलस्वरूप ही मदरसों की स्थापना हुई और फारसी भाषा का विकास हुआ। बाद में फारसी भाषा के सम्पर्क से ही उर्दू भाषा का भी जन्म हुआ। हिन्दी, फारसी एवं उर्दू भाषा पर आधारित नवीन साहित्य की दिशा में भी उल्लेखनीय प्रगति हुई।

इस प्रकार मुस्लिम आक्रमणों के फलस्वरूप जहाँ एक ओर भारत को सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से अपार हानि उठानी पड़ी वहीं दूसरी ओर भारतीय समाज में अनेक नवीन परिवर्तन भी हुए। हिन्दुओं में एकता की भावना बलवती हुई और वे जातिगत संकीर्णताओं के परिणामों पर चिन्तन करने लगे। उनमें धीरे-धीरे अपने धर्म एवं संस्कृति के प्रति गौरव की भावना का विकास होने लगा। यही कारण है कि राजनीतिक दृष्टि से हिन्दुओं का दमन करने और आर्थिक दृष्टि से उनका भरपूर शोषण करने के उपरान्त भी मुस्लिम शासक हिन्दुओं की सांस्कृतिक विचारधारा एवं उनकी आत्मा को परास्त नहीं कर सके।

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—"अरबों की सिन्ध विजय परिणामहीन विजय थी।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।
अथवा **सिन्ध पर अरबों की विजय का कोई स्थायी प्रभाव क्यों नहीं पड़ा? कोई चार कारण बताइए।**
(1993)

उत्तर—लेनपूल का मत है कि, "अरबों ने सिन्ध पर विजय तो अवश्य प्राप्त की, तथापि यह विजय ऐतिहासिक और इस्लाम धर्म की घटना मात्र रही। यह प्रभावरहित विजय थी।" इस मत की पुष्टि करते हुए वूल्जले हेग ने भी लिखा है कि, "अरबों की सिन्ध विजय के विषय में अधिक कुछ नहीं कहा जा सकता। यह केवल एक ऐतिहासिक घटना थी, जिसने विशाल देश के छोटे से भाग को प्रभावित किया।"

इस प्रकार, सिन्ध पर अरबों की विजय का कोई स्थायी प्रभाव नहीं पड़ सका। इसके प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

(1) अरब की सभ्यता व संस्कृति की तुलना में भारतीय सभ्यता व संस्कृति अधिक विकसित थी। अतः भारतीय सभ्यता पर अरबों का कोई स्थायी प्रभाव न पड़ सका।

(2) अरब के निवासियों को शासन व्यवस्था की कला का ज्ञान नहीं था।

(3) सिन्ध प्रदेश आर्थिक दृष्टि से समृद्ध नहीं था।

(4) सिन्ध प्रदेश बगदाद से बहुत दूर था। अतः उस पर बगदाद से नियन्त्रण रख पाना अत्यन्त कठिन था।

प्रश्न 2—तुर्कों के आक्रमण के पूर्व उत्तरी भारत की राजनीतिक दशा क्या थी?

उत्तर—

तुर्कों के आक्रमण के पूर्व उत्तरी भारत की राजनीतिक दशा

तुर्कों के आक्रमण के पूर्व भारत की राजनीतिक दशा अत्यन्त शोचनीय थी। उस समय उत्तरी भारत में निम्नलिखित प्रमुख स्वतन्त्र राज्य थे—

(1) **मुल्तान व सिन्ध**—इन पर फतेह दाउद नामक मुस्लिम सुल्तान का शासन था।

(2) **पेशावर व पंजाब**—इस पर हिन्दू राजा जयपाल का शासन था।

(3) कश्मीर—कश्मीर पर एक महिला का शासन स्थापित था, जो लोहारा वंश से सम्बन्धित थी।
(4) कन्नौज—इसका शासक गहड़वालवंशीय राजा जयचन्द था।
(5) दिल्ली-अजमेर—यहाँ का शासक पृथ्वीराज चौहान था जो बड़ा शक्तिशाली और वीर था।

प्रश्न 3—महमूद गजनवी के किन्हीं चार प्रसिद्ध आक्रमणों का विवरण दीजिए। *(1993)*

उत्तर—महमूद गजनवी के चार प्रसिद्ध आक्रमणों का विवरण इस प्रकार है—

(1) जयपाल पर आक्रमण—1001 ई० में गजनवी ने पंजाब और पेशावर के राजा जयपाल पर आक्रमण कर उसे परास्त किया।

(2) आनन्दपाल पर आक्रमण—1008 ई० में गजनवी ने आनन्दपाल पर आक्रमण किया। आनन्दपाल बड़ी वीरता से लड़ा, परन्तु दुर्भाग्य से युद्धस्थल में आनन्दपाल का हाथी बिगड़ गया और उसकी पराजय हुई।

(3) नगरकोट पर आक्रमण—1010 ई० में किए इस युद्ध में भी हिन्दुओं की घोर पराजय हुई।

(4) थानेश्वर पर आक्रमण—1012 ई० में किए गए इस आक्रमण में महमूद ने थानेश्वर के मन्दिरों को लूटा और वहाँ की स्त्रियों के साथ दुर्व्यवहार किया।

प्रश्न 4—महमूद गजनवी द्वारा आक्रमित किन्हीं चार राज्यों के नाम लिखिए। *(1993)*

उत्तर—महमूद गजनवी द्वारा आक्रमित चार राज्यों के नाम हैं—

(1) मुल्तान का राज्य, (2) लाहौर का राज्य,
(3) पंजाब का राज्य, और (4) कश्मीर का राज्य।

प्रश्न 5—मुहम्मद गोरी के आक्रमण के समय उत्तरी भारत की राजनीतिक दशा किस प्रकार की थी? *(1993)*

उत्तर—मुहम्मद गोरी के आक्रमण के समय उत्तरी भारत के पाँच प्रसिद्ध राजपूत राज्य थे, जिनमें निरन्तर पारस्परिक वैमनस्य की भावना का विकास हो रहा था। ये राज्य थे—कन्नौज, बिहार, गुजरात, बंगाल तथा दिल्ली व अजमेर का राज्य। उत्तरी भारत के ये राज्य मुसलमानों के विरुद्ध संयुक्त मोर्चा बनाकर युद्ध करने को तैयार न थे। इसी कारण वे मुस्लिम आक्रमणों का सामना करने में विफल हुए।

प्रश्न 6—इस्लाम धर्म की दो विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। *(1996)*

उत्तर—इस्लाम धर्म की दो विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(1) इस्लाम धर्म में केवल एक खुदा और उसके एक पैगम्बर को ही स्वीकार किया गया है। इस्लाम के अनुसार—अल्लाह एक है, जो सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञानी, निराकार एवं दयावान है तथा मुहम्मद साहब अल्लाह के एक मात्र पैगम्बर हैं।

(2) इस्लाम धर्म में समानता पर अत्यधिक बल दिया गया है तथा मानवता की सेवा करना व्यक्ति का परम धर्म माना गया है। इस्लाम धर्म के अनुसार, सभी खुदा के बन्दे हैं और उनकी सेवा करना ही खुदा की सेवा करना है।

ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों एवं व्यक्तियों पर आधारित प्रश्न

प्रश्न 1—निम्नांकित तिथियों के ऐतिहासिक महत्त्व पर टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) 570 ई० *(1999)*—इस तिथि को इस्लाम धर्म के प्रवर्तक हजरत मुहम्मद साहब का जन्म मक्का में हुआ था। मुस्लिम इतिहास में इस तिथि का गौरवपूर्ण एवं ऐतिहासिक महत्त्व है।

(2) 622 ई० *(1989, 91, 92, 99)*—इस तिथि को हजरत मुहम्मद साहब ने मक्का से मदीना के लिए प्रस्थान किया था। यह घटना 'हिजरत' कहलाती है। इस तिथि से मुस्लिम पंचांग का हिजरी सम्वत् भी प्रारम्भ होता है।

(3) 997 ई० *(1990)*—इस तिथि को तुर्क बादशाह महमूद गजनवी गजनी की राजगद्दी पर आसीन हुआ। महमूद गजनवी ने भारत पर 17 बार आक्रमण किए थे।

(4) 998 ई०—1030 ई० *(1997)*—998 ई० में महमूद गजनवी गजनी का शासक बना और 1027 ई० तक उसने भारत पर 17 बार आक्रमण किए थे। 1030 ई० में उसकी मृत्यु हो गई। इस प्रकार यह समयावधि महमूद गजनवी के शासनकाल से सम्बन्धित है।

(5) 1000 ई० *(1990, 95)*—इस तिथि को महमूद गजनवी ने मुल्तान पर आक्रमण किया था।

(6) 1006 ई०—इस तिथि को महमूद गजनवी ने मुल्तान पर आक्रमण करके वहाँ के शासक फतेह दाउद को पराजित किया था।

(7) 1008 ई० *(1999)*—इस तिथि को महमूद गजनवी ने लाहौर के शासक आनन्दपाल पर आक्रमण किया था। इस आक्रमण में महमूद को हिन्दुओं के प्रबल प्रतिरोध का सामना करना पड़ा। दुर्भाग्यवश आनन्दपाल का हाथी बिगड़ जाने से इस युद्ध में हिन्दुओं की पराजय हुई।

(8) 1018 ई० *(1994)*—इस तिथि को महमूद गजनवी ने कन्नौज पर आक्रमण किया था।

(9) 1022 ई०—इस तिथि को महमूद ने ग्वालियर और कालिंजर पर आक्रमण करके वहाँ की अपार सम्पत्ति लूट ली थी।

(10) 1025 ई० *(1991, 96, 97, 99)*—इस तिथि को महमूद गजनवी ने काठियावाड़ स्थित सोमनाथ के विश्वविख्यात मन्दिर पर आक्रमण किया था। इस मन्दिर की मूर्ति को तोड़कर महमूद ने अपार धन-दौलत प्राप्त की थी और स्वयं को मूर्तिभंजक (बुतशिकन) घोषित किया था।

(11) 1026 ई० *(1992, 94, 95, 99)*—1026 ई० में महमूद गजनवी ने अन्हिलवाड़ में नरसंहार करने के उपरान्त गजनी की ओर प्रस्थान किया। मार्ग में महमूद के सैनिकों को अत्यधिक कष्ट पहुँचाया था। अतः उसने जाटों पर आक्रमण करके उनकी सम्पत्ति लूट ली तथा उनके स्त्रियों और बच्चों को दास बना लिया।

(12) 1030 ई० *(1993, 94, 96, 99)*—इस तिथि को गजनी के शासक और मध्य एशिया के महान् विजेता महमूद गजनवी की मृत्यु हुई थी। महमूद ने 997 ई० से 1030 ई० तक शासन किया था।

(13) 1175 ई०—इस तिथि को तुर्क सुल्तान मुहम्मद गोरी ने भारत पर पहला आक्रमण किया था। इस आक्रमण में सफल होकर उसने मुल्तान पर अपनी प्रभुता स्थापित की थी।

(14) 1178 ई०—इस तिथि को मुहम्मद गोरी ने गुजरात की राजधानी अन्हिलवाड़ा पर आक्रमण किया था, परन्तु गुजरात के शासक मूलराज ने गोरी को बुरी तरह से पराजित करके भागने पर विवश कर दिया था।

(15) 1191 ई० *(1991, 93, 95, 96, 99)*—इस तिथि को मुहम्मद गोरी और पृथ्वीराज चौहान के मध्य तराइन का प्रथम युद्ध हुआ था। इस युद्ध में पृथ्वीराज चौहान ने मुहम्मद गोरी को परास्त किया।

(16) 1192 ई० *(1992, 94, 96, 99)*—इस तिथि को मुहम्मद गोरी ने तराइन का द्वितीय युद्ध लड़ा था। इस युद्ध में पृथ्वीराज चौहान पराजित हुआ और मुहम्मद गोरी की विजय हुई थी।

(17) 1193 ई० *(1990)*—इस तिथि को कुतुबुद्दीन ऐबक ने झाँसी, मेरठ आदि नगरों पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया।

(18) 1202 ई० *(1993)*—इस तिथि को इख्तियारुद्दीन मुहम्मद बिन बख्तियार खिलजी ने बिहार राज्य पर आक्रमण किया था।

(19) 1206 ई० *(1990, 92, 94, 95, 96, 99)*—इस तिथि को मुहम्मद गोरी की मृत्यु हुई थी और इसी तिथि से भारतीय इतिहास में दिल्ली सल्तनत का प्रारम्भ होता है।

(20) 1217 ई० *(1990, 95)*—इस तिथि को इल्तुतमिश ने अपने विरोधी ताजुद्दीन एल्दौज को पराजित किया था।

प्रश्न 2—निम्नांकित ऐतिहासिक स्थलों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) सोमनाथ—काठियावाड़ में स्थित सोमनाथ एक समुद्रवर्ती नगर है। यहाँ का विशालकाय शिव मन्दिर विश्वविख्यात है। 1025 ई० में महमूद गजनवी ने इस मन्दिर को बुरी तरह लूटा था। खिलजी सुल्तान अलाउद्दीन और मुगल सम्राट औरंगजेब ने भी सोमनाथ के मन्दिर को नष्ट करने का प्रयास किया था। 1951 ई० में सोमनाथ के मन्दिर का पुनर्निर्माण कराया गया था। यह मन्दिर बड़ा ही कलात्मक और दर्शनीय है।

(2) कन्नौज *(1990, 94, 99)*—इसका प्राचीन नाम कान्यकुब्ज था। प्रारम्भ में यह नगर मौखरी वंश की राजधानी था। राजा हर्ष ने भी इसे अपनी राजधानी बनाया था। हर्ष की वहन राज्यश्री ने इस नगर को अपने भाई को दे दिया था। ह्वेनसांग के समय में कन्नौज भारतीय सभ्यता और संस्कृति का प्रधान केन्द्र बन चुका था। हर्ष के बाद कन्नौज गहड़वाल वंश की राजधानी बना। इस वंश के राजा जयचन्द को गोरी ने चन्द्रावर के युद्ध में पराजित करके कन्नौज के गौरव को नष्ट कर दिया।

(3) कांगड़ा—यह हिमाचल प्रदेश का एक भव्य नगर है। यहाँ स्थित भगवान शंकर का विशाल मन्दिर कांगड़ा की एक दर्शनीय निधि है। महमूद गजनवी ने इस नगर को बुरी तरह लूटा था और वहाँ की अपार सम्पदा अपने साथ गजनी ले गया था।

(4) लाहौर—प्राचीन काल से ही यह भारत का एक महत्त्वपूर्ण नगर रहा है। वर्तमान समय में यह पाकिस्तान में है। लाहौर के दुर्ग और बाग दर्शनीय हैं। इसके अतिरिक्त, ऐवक का मकबरा और जहाँगीर का मकबरा लाहौर की प्रसिद्ध ऐतिहासिक इमारतें हैं।

(5) मुल्तान—यह सीमावर्ती नगर वर्तमान समय में पाकिस्तान में स्थित है। सामरिक दृष्टि से मुल्तान की स्थिति अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है। यहाँ पर निर्मित राजा रणजीतसिंह का किला दर्शनीय है।

(6) ग्वालियर *(1993, 99)*—ऐतिहासिक दृष्टि से प्रसिद्ध इस नगर को 'दुर्गों का नगर' भी कहा जाता है। इसे सूरज नामक एक राजा ने बसाया था। मध्य प्रदेश में स्थित इस नगर पर अनेक प्रख्यात शासकों का शासन रहा था।

(7) तंजौर *(1993)*—यहाँ चोल राजाओं का शासन था। चोल राजा कला और साहित्य के विकास में बहुत अधिक रुचि प्रदर्शित करते थे। 1003 ई० में चोल राजा राजराज प्रथम ने तंजौर में एक भव्य मन्दिर का निर्माण करवाया था जिसे 'तंजौर का राजराजेश्वर मन्दिर' के नाम से जाना जाता है।

प्रश्न 3—निम्नांकित ऐतिहासिक व्यक्तियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) अलबरूनी *(1992, 96)*—अलबरूनी का वास्तविक नाम अबूरिहान था। उसका जन्म 973 ई० में खीवा प्रान्त (मध्य एशिया) में हुआ था। खीवा प्रदेश पर विजय प्राप्त करने के बाद महमूद गजनवी इसे अपने साथ पकड़कर ले गया था। इसके बाद अलबरूनी महमूद गजनवी के साथ भारत आया था। अलबरूनी ने अपनी पुस्तक 'तहकीके-हिन्द' में हिन्दुओं के इतिहास, चरित्र, जीवन-प्रणाली, विज्ञान, कलाओं तथा रीति-रिवाजों के सम्बन्ध में अत्यन्त सजीव और मनोरंजक वर्णन किया है।

(2) मुहम्मद-बिन-कासिम *(1990)*—खलीफा हज्जाज के दामाद का नाम मुहम्मद-बिन-कासिम था। सिन्ध के राजा दाहिर को दण्ड देने के लिए हज्जाज ने 712 ई० में मुहम्मद-बिन-कासिम को सिन्ध पर आक्रमण करने का आदेश दिया। मुहम्मद-बिन-कासिम ने सिन्ध में प्रवेश कर, सिन्ध प्रदेश के अनेक नगरों पर अधिकार कर लिया और राजा दाहिर को मार डाला। मुहम्मद-बिन-कासिम ने दाहिर की दो पुत्रियों को उपहारस्वरूप खलीफा के पास भेज दिया। मुल्तान की विजय करने के पश्चात् मुहम्मद-बिन-कासिम वापस लौटा तो दाहिर की पुत्रियों ने उस पर सतीत्व भंग करने का आरोप लगाया, जिससे क्रोधित होकर खलीफा ने मुहम्मद-बिन-कासिम को गाय की खाल में सिलवाकर मरवा दिया।

(3) फिरदौसी—महमूद गजनवी का समकालीन फिरदौसी फारसी भाषा का प्रकाण्ड विद्वान् और विश्वविख्यात शायर था। उसका जन्म खुरासान के हूस नगर में हुआ था। उसका वास्तविक नाम अबुल कासिम हसन था। फिरदौसी की अविस्मरणीय रचना 'शाहनामा' है। इस ग्रन्थ की रचना फिरदौसी ने महमूद गजनवी के आदेश पर की थी। इस ग्रन्थ में 60 हजार श्लोक (रुबाइयाँ) हैं। महमूद ने फिरदौसी को एक श्लोक पर एक स्वर्ण दीनार देने का वचन दिया था, लेकिन महमूद ने फिरदौसी के जीवन-काल में अपने वचन का पालन नहीं किया और फिरदौसी दुःखद मृत्यु को प्राप्त हुआ। फिरदौसी का महाकाव्य 'यूसुफ व जुलेखा' भी, विश्व-साहित्य की एक अमूल्य निधि मानी जाती है।

(4) महमूद गजनवी *(1993)*—महमूद गजनवी सुबुक्तगीन का बड़ा पुत्र था। वह 998 ई० में गजनी के सिंहासन पर आसीन हुआ। गजनवी ने भारत पर सत्रह बार आक्रमण किए तथा न केवल यहाँ के अनेक राजाओं को परास्त किया वरन् यहाँ की अथाह सम्पत्ति को भी अपने साथ लूटकर गजनी ले गया। वह एक कट्टर मुसलमान और लुटेरा था। 1206 ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

15 दिल्ली सल्तनत का विस्तार

(1206-1414 A.D.)

[कुतुबुद्दीन ऐबक, इल्तुतमिश, रजिया, बलबन, अलाउद्दीन खिलजी, ग्यासुद्दीन तुगलक, मुहम्मद-बिन-तुगलक, फिरोज तुगलक, तुगलक वंश के पतन के कारण, तैमूर का भारत पर आक्रमण, दिल्ली सुल्तानों की मंगोल नीति, मंगोलों के आक्रमण का प्रभाव]

"इतिहास का कोई भी आक्रमण अपनी भयावहता तथा अपने सुदूरगामी परिणामों में मंगोलों के आक्रमण की तुलना में नहीं ठहरता। उन्होंने आबादी का नामोनिशान तक मिटा दिया और सभ्यताएँ विनष्ट कर दीं।"

—साइक्स

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—गुलाम वंश के सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक की उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए। *(V. Imp.)*

अथवा **कुतुबुद्दीन किस सीमा तक गुलाम वंश का संस्थापक माना जा सकता है ?**

अथवा **"ऐबक भारत में मुस्लिम साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक था।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।**

अथवा **कुतुबुद्दीन के समक्ष जो कठिनाइयाँ थीं, उनमें से किन्हीं दो का उल्लेख कीजिए।**

उत्तर—

कुतुबुद्दीन ऐबक

(1206-1210 A.D.)

कुतुबुद्दीन ऐबक का जीवन परिचय—मुहम्मद गोरी का सबसे योग्य, बुद्धिमान एवं प्रभावशाली गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक था। उसके माता-पिता तुर्क थे। उसका जन्म तुर्किस्तान में हुआ था। बचपन में उसके भाइयों ने ईर्ष्यावश उसे निशापुर के काजी फखरुद्दीन अब्दुल अज़ीज कौफी को बेच दिया था। काजी उसकी विलक्षण बुद्धि से बहुत प्रभावित हुआ। उसने ऐबक के लिए सैनिक प्रशिक्षण की व्यवस्था की और उसे धार्मिक शिक्षा दिलाई। इसकी योग्यता से प्रभावित होकर मुहम्मद गोरी ने इसे खरीद लिया था। धीरे-धीरे ऐबक उसका विश्वासपात्र दास बन गया और मुहम्मद गोरी ने उसे अमीर-ए-आखुर (अस्तबलों का अध्यक्ष) का पद दे दिया। गोरी के भारतीय अभियानों के समय ऐबक ने अपनी विलक्षण योग्यता का परिचय दिया। फलस्वरूप तराइन के दूसरे युद्ध के बाद गोरी ने कुतुबुद्दीन को अपने भारतीय साम्राज्य का प्रतिनिधि (सूबेदार) नियुक्त कर दिया।

सूबेदार के रूप में कुतुबुद्दीन ऐबक की सफलताएँ

अपने राज्यारोहण से पूर्व, एक सूबेदार के रूप में कुतुबुद्दीन ने निम्न सफलताएँ प्राप्त कीं—

(1) हाँसी, दिल्ली और मेरठ के विद्रोह का दमन (1193-94 ई०)—मुहम्मद गोरी राजपूतों को हराकर और भारत से लूटी गई पर्याप्त धन-सम्पदा के साथ वापस अपने देश लौट गया, किन्तु उसका सेवक ऐबक उसके चले जाने के पश्चात भी अनेक युद्ध करता रहा था। उसने सर्वप्रथम हाँसी के जाटों पर आक्रमण किया और उन्हें बुरी तरह परास्त कर दिया। इसके पश्चात उसने मेरठ और दिल्ली के विद्रोहों का दमन करके उसे अपनी राजधानी बनाया।

(2) कन्नौज पर विजय (1194 ई०)—1194 ई० में गोरी पुनः भारत आया और उसने ऐबक को कन्नौज के राजा जयचन्द पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। हसन निजामी ने अपनी पुस्तक 'ताजुल मासिर' में लिखा है—"सुल्तान की सेना के साथ ऐबक ने मूर्तिपूजा तथा विधर्माचरण के आश्रयदाता बनारस के राय (राजा जयचन्द) के विरुद्ध प्रस्थान किया, जिसे अपनी विशाल गज-सेना पर बहुत अभिमान था। वह पराजित

होकर मारा गया और लूट-पाट से विजेता को अतुल सम्पत्ति प्राप्त हुई, जिसमें 300 हाथी भी सम्मिलित थे।" चन्द्रावर की इस विजय के पश्चात् कन्नौज के राज्य का स्वामी ऐबक को बना दिया गया था।

(3) अजमेर पर आक्रमण (1197-98 ई०)—अजमेर के राय को गद्दी से हटाकर हरिराज ने उस पर अपना अधिकार कर लिया था। ऐबक ने हरिराज को हराकर पुनः राय को ही गद्दी पर बैठा दिया। इसके उपरान्त 1197 ई० को ऐबक ने नहरवाला के राजा भीमदेव पर आक्रमण किया और उस पर भी विजय प्राप्त की।

(4) गुजरात पर आक्रमण (1197-98 ई०)—अजमेर के आसपास के चौहानों तथा मेड़ों ने एक संघ स्थापित किया और गुजरात के शासक से भी तुर्कों के विरुद्ध सहायता माँगी। यह सूचना पाते ही ऐबक ने मेड़ों पर आक्रमण कर दिया, लेकिन उसी समय गुजरात से इन्हें सहायता मिल गई। अतः ऐबक को पराजय का सामना करना पड़ा। कुछ समय उपरान्त ऐबक ने मुहम्मद गोरी की सहायता से गुजरात के राजा भीम द्वितीय को पराजित किया और वहाँ खूब लूट-पाट की।

सूबेदार के रूप में कुतुबुद्दीन ऐबक की सफलताएँ

(1) हाँसी, दिल्ली और मेरठ के विद्रोह का दमन
(2) कन्नौज पर विजय
(3) अजमेर पर आक्रमण.
(4) गुजरात पर आक्रमण
(5) कालिंजर पर आक्रमण
(6) अन्य विजयें।

(5) कालिंजर पर आक्रमण (1202 ई०)—कुतुबुद्दीन ऐबक ने कालिंजर के सुदृढ़ दुर्ग के शासक चन्देल राजा परमार्दि को परास्त कर वहाँ भी असीम सम्पत्ति लूटी। हसन निजामी के अनुसार, "पचास हजार मनुष्यों के गले में दासत्व का फन्दा डाला गया और हिन्दुओं के शवों से धरती पट गई।"

(6) अन्य विजयें—उसकी अन्य महत्त्वपूर्ण विजयें महोवा, कालपी और बदायूँ आदि राज्यों की थीं। इसी समय गोरी के दूसरे गुलाम **'मुहम्मद-बिन-बख्तियार खिलजी'** ने बिहार तथा बंगाल पर अधिकार कर लिया। इस प्रकार सम्पूर्ण उत्तरी भारत ऐबक के अधीन हो गया।

ऐबक का राज्यारोहण

सन् 1206 ई० में गोरी खोखरों के हाथों मारा गया। गोरी के कोई पुत्र नहीं था; अतः कुतुबुद्दीन ऐबक ने अपने को भारत का सुल्तान घोषित कर भारत में एक नए वंश के शासन की स्थापना की।

ऐबक की कठिनाइयाँ

गद्दी पर बैठते समय ऐबक के सामने अनेक कठिनाइयाँ थीं। उसने अपने साम्राज्य को सुदृढ़ करने के साथ ही इन कठिनाइयों को सुलझाने में भी अपूर्व सफलता प्राप्त की। कुतुबुद्दीन की कठिनाइयों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(1) प्रतिद्वन्द्वी गुलामों की समस्या—गोरी की मृत्यु के समय ताजुद्दीन एल्दौज गजनी का शासक था और नासिरुद्दीन कुबाचा सिन्ध तथा मुल्तान का शासक था। इसी प्रकार एक महत्त्वाकांक्षी सरदार अलीमर्दान खाँ बिहार और बंगाल का सूबेदार था। ये तीनों भी गोरी के दास थे और एक दास (कुतुबुद्दीन) को अपना सुल्तान मानने को तैयार नहीं थे।

(2) ख्वारिज्म के शाह की समस्या—ख्वारिज्म का शाह भी भारत पर अपना अधिकार स्थापित करने का स्वप्न देख रहा था।

(3) बिहार और बंगाल में उत्पन्न अराजकता—बिहार और बंगाल में बख्तियारुद्दीन की मृत्यु होने के कारण अराजकता फैली हुई थी और अलीमर्दान खाँ ने अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली थी।

ऐबक की कठिनाइयाँ

(1) प्रतिद्वन्द्वी गुलामों की समस्या
(2) ख्वारिज्म के शाह की समस्या
(3) बिहार और बंगाल में उत्पन्न अराजकता
(4) राजपूतों का विरोध।

(4) राजपूतों का विरोध—राजपूत राजा अपनी शक्ति बढ़ाने हेतु निरन्तर प्रयत्नशील थे; ताकि वे मुस्लिम साम्राज्य को समूलतः नष्ट कर सकें।

सुल्तान के रूप में ऐबक के कार्य

ऐबक एक योग्य एवं बुद्धिमान शासक था। उसने बड़ी कुशलता एवं कूटनीति के साथ इन कठिनाइयों पर विजय प्राप्त की और अपनी सत्ता को सुदृढ़ बनाया। इस सन्दर्भ में उसके द्वारा दिए गए कार्यों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

(1) वैवाहिक सम्बन्धों की स्थापना—कुतुबुद्दीन ऐबक ने अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए गजनी के शासक ताजुद्दीन एल्दौज की कन्या से विवाह कर लिया तथा अपनी बहन का विवाह सिन्ध और मुल्तान के शासक नासिरुद्दीन कुबाचा के साथ कर दिया। इसी प्रकार उसने वदायूँ के शासक इल्तुतमिश के साथ अपनी पुत्री का विवाह कर दिया। इससे उसकी शक्ति और सम्मान में बहुत वृद्धि हुई।

सुल्तान के रूप में ऐबक के कार्य
(1) वैवाहिक सम्बन्धों की स्थापना
(2) बिहार तथा बंगाल पर नियन्त्रण
(3) दासता से छुटकारा
(4) हिन्दू सरदारों से मित्रता
(5) भवनों का निर्माण।

(2) बिहार तथा बंगाल पर नियन्त्रण—मुहम्मद-बिन-बख्तियार खिलजी की मृत्यु के बाद ऐबक ने बिहार तथा बंगाल के नए शासक अलीमर्दान खाँ को अपने अधीन कर लिया।

(3) दासता से छुटकारा—ऐबक ने गोरी के उत्तराधिकारी सुल्तान महमूद से दासता का मुक्ति-पत्र भी प्राप्त कर लिया। इसके अतिरिक्त, महमूद ने दो सम्मानसूचक राज-चिह्न 'दण्ड' और 'छत्र' भी ऐबक को भेजे थे।

(4) हिन्दू सरदारों से मित्रता—कूटनीति से कार्य लेते हुए उसने उन हिन्दुओं को भूमि का स्वामी बना रहने दिया, जिन्होंने जजिया तथा राज कर देने प्रारम्भ कर दिए थे। लेकिन असामयिक मृत्यु के कारण ऐबक राजपूत राजाओं का दमन नहीं कर पाया था।

(5) भवनों का निर्माण—ऐबक ने निम्नलिखित भवनों का निर्माण भी कराया—

(i) उसने अपने शासनकाल में मेहरौली नामक स्थान पर कुतुबमीनार का निर्माण करवाया, जिसे बाद में इल्तुतमिश ने पूरा करवाया था।

(ii) अजमेर में उसने एक मसजिद बनवाई जो 'ढाई दिन का झोंपड़ा' के नाम से प्रसिद्ध है।

मृत्यु—कुतुबुद्दीन ऐबक की मृत्यु 1210 ई० में लाहौर में चौगान (पोलो) खेलते समय घोड़े से गिर जाने के कारण हो गई। मृत्यु के उपरान्त उसे लाहौर में ही दफना दिया गया।

ऐबक का चरित्र और मूल्यांकन

कुतुबुद्दीन ऐबक के सम्बन्ध में कहा जाता है कि वह भारत में मुस्लिम साम्राज्य का संस्थापक था। लेनपूल ने भी इस तथ्य को स्वीकार करते हुए लिखा है, "He was the real founder of Muslim Dominions in India."

डॉ० ईश्वरी प्रसाद के अनुसार, "कुतुबुद्दीन ऐबक एक साहसी, योग्य, शक्तिशाली तथा उदार हृदय वाला शासक था।"

हसन निजामी ने लिखा है, "वह एक न्यायप्रिय शासक था। उसने जनता को शान्ति तथा समृद्धि प्रदान की।"

कुतुबुद्दीन ऐबक एक महान् चरित्र और व्यक्तित्व का स्वामी था। वह एक कुशल प्रशासक, कुशल राजनीतिज्ञ, वीर योद्धा साम्राज्य निर्माता, सफल कूटनीतिज्ञ, लोकहितकारी शासक और कला एवं साहित्य का संरक्षक था। वूल्जले हेग तथा कुछ अन्य इतिहासकारों का कहना है कि, "वह मुस्लिम साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक था।" इसी प्रकार उसके सम्बन्ध में डॉ० ईश्वरी प्रसाद का मत है कि, "वीर एवं शक्तिशाली तथा मुस्लिम आदर्शों के अनुसार विचारशील व न्यायपरायण ऐबक इस्लाम का दृढ़ भक्त था और विदेश में रणबांकुरी जातियों के बीच एक विशाल राज्य का संस्थापक होने के कारण वह भारत के महानतम् मुस्लिम विजेताओं की पंक्ति में स्थान पाने का अधिकारी है।" वास्तव में, दास वंश की स्थापना में ऐबक का वही स्थान है, जो मुगल वंश की स्थापना में बाबर का था।

प्रो० हबीबउल्ला ने ऐवक का मूल्यांकन करते हुए लिखा है, "यद्यपि मुईजुद्दीन ने संचालन की प्रेरणा दी, परन्तु ऐवक ने ही दिल्ली के हर पहलू को एक योजना और व्यवस्था के अनुसार संगठित किया।"

प्रश्न 2— "इल्तुतमिश गुलाम वंश का सबसे योग्य सुल्तान था।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं ? यदि हाँ, तो क्यों ? *(M. Imp.)*

अथवा **"इल्तुतमिश गुलाम वंश का सबसे महान् सुल्तान था।" इस कथन की विवेचना कीजिए।**

अथवा **इल्तुतमिश की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।**

अथवा **"भारत में दास वंश का वास्तविक संस्थापक इल्तुतमिश था।" इस कथन की विवेचना कीजिए।**

अथवा **सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात् इल्तुतमिश को किन कठिनाइयों का सामना करना पड़ा ? उसने उनका किस प्रकार समाधान किया ?**

अथवा **दास वंश का वास्तविक संस्थापक आप किसे समझते हैं ? कारण सहित उत्तर दीजिए।** *(1992)*

अथवा **कुतुबुद्दीन ऐवक व इल्तुतमिश में आप दिल्ली सल्तनत का वास्तविक संस्थापक किसे समझते हैं ? सकारण बताइए।** *(1993, 96)*

अथवा **"दास वंश का वास्तविक संस्थापक इल्तुतमिश था।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं ?** *(1994)*

अथवा **"इल्तुतमिश गुलाम वंश का वास्तविक संस्थापक था।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।** *(1995)*

अथवा **"इल्तुतमिश गुलाम वंश का सर्वश्रेष्ठ सुल्तान था।" व्याख्या कीजिए।** *(1995)*

अथवा **ऐवक और इल्तुतमिश में दास राज्य का वास्तविक संस्थापक कौन था ? सतर्क विश्लेषण कीजिए।** *(1996)*

अथवा **"इल्तुतमिश दास वंश का सर्वश्रेष्ठ शासक था।" इस कथन की विवेचना उसकी विजयों एवं चरित्र के आधार पर कीजिए।** *(1996)*

अथवा **"नव स्थापित दिल्ली सल्तनत को सुदृढ़ बनाने का श्रेय इल्तुतमिश को जाता है।" समीक्षा कीजिए।** *(1997)*

उत्तर—

इल्तुतमिश (1211–1236 ई०)

(1) इल्तुतमिश का जीवन परिचय—इल्तुतमिश इल्बरी कवीले का तुर्क था। इल्तुतमिश का पिता इस्लाम खाँ अपने कवीले का प्रधान था। उसके भाइयों ने ईर्ष्यावश इसे बुखारा के एक व्यापारी को बेच दिया था। बाद में गुलामों के इस व्यापारी से वह दो बार विका। बुखारा के व्यापारी से इसे जमालुद्दीन ने खरीद लिया और उससे इल्तुतमिश को ऐवक ने खरीदा। ऐबक उसके गुणों से अत्यधिक प्रभावित था। वह उसे अपना पुत्र कहता था। उसने अपनी तीन कन्याओं में से एक का विवाह उसके साथ कर दिया था। कुतुबुद्दीन की मृत्यु के समय वह बदायूँ का गवर्नर था। उसने कुतुबुद्दीन के पुत्र आरामशाह को हराकर 1211 ई० में दिल्ली की गद्दी प्राप्त की। उसका पूरा नाम 'शम्सुद्दीन इल्तुतमिश' था।

डॉ० ईश्वरी प्रसाद उसकी योग्यता की प्रशंसा करते हुए लिखते हैं, "शम्सुद्दीन इल्तुतमिश दास वंश का महानतम् शासक था। वह एक दास का दास था और अपनी योग्यता के बल पर ही वह इतनी ऊँची स्थिति को प्राप्त करने में सफल हुआ था।"

(2) इल्तुतमिश की प्रारम्भिक समस्याएँ—जिस समय इल्तुतमिश दिल्ली के सिंहासन पर आसीन हुआ, उस समय दिल्ली सल्तनत की स्थिति वड़ी शोचनीय थी। इस समय उसके समक्ष निम्नलिखित समस्याएँ थीं—

(i) तुर्की अमीरों की समस्या—कुतुबी और मुईजी अमीर इल्तुतमिश को सिंहासन से हटाकर स्वयं गद्दी पर वैठने के लिए बेचैन थे।

(ii) राजपूत राजाओं का विरोध—हिन्दू राजपूत राजा अपनी स्वतन्त्रता के लिए तड़प रहे थे। आरामशाह के सिंहासनारूढ़ होने पर साम्राज्य में फैली अराजकता का लाभ उठाकर कुछ राजपूत राजा स्वतन्त्र हो गए थे और वे मुस्लिम साम्राज्य को समाप्त करने के लिए प्रयत्नशील थे।

(iii) साम्राज्य का विभाजन—इल्तुतमिश का प्रबल विरोधी नासिरुद्दीन कुबाचा, सिंध और मुल्तान का गवर्नर और ताजुद्दीन एल्दौज गजनी का सूबेदार था। बिहार और बंगाल पर अलीमर्दान खाँ का अधिकार
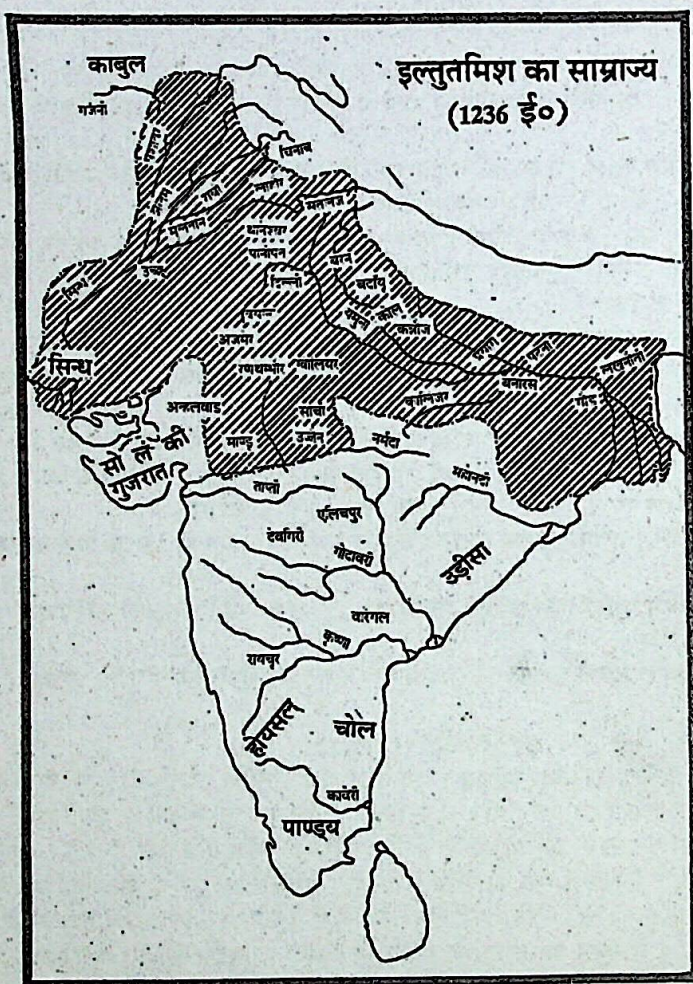
मानचित्र—इल्तुतमिश का राज्य विस्तार (1236 ई०)।

स्थापित था। ये सभी प्रान्तीय गवर्नर इल्तुतमिश को हराकर दिल्ली पर अपना आधिपत्य स्थापित करना चाहते थे।

(iv) असंगठित और दुर्बल राज्य—वास्तव में, कुतुबुद्दीन ऐबक ने जिस साम्राज्य का निर्माण किया था, उसे वह अपने अल्प शासनकाल में सुव्यवस्थित नहीं कर पाया था। ऐसे अव्यवस्थित और दुर्बल साम्राज्य को स्थायी बनाना भी इल्तुतमिश के लिए एक जटिल समस्या थी।

(v) सीमा सुरक्षा की समस्या—इन समस्याओं के अतिरिक्त इल्तुतमिश के समक्ष उत्तर-पश्चिमी सीमा की सुरक्षा की समस्या तथा खोखर जाति के विद्रोह की समस्या और भी अधिक प्रबल थी। मंगोल आक्रमणकारी चंगेज खाँ के आक्रमणों का भय भी निरन्तर बढ़ता जा रहा था।

(3) समस्याओं का समाधान—इल्तुतमिश बहुत वीर प्रकृति का सुल्तान था। डॉ० ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है, "इल्तुतमिश विकट परिस्थितियों से हार मानकर बैठ जाने वाला व्यक्ति नहीं था। वह शीघ्र ही दृढ़ता एवं तत्परता के साथ इस संकटापन्न स्थिति को निश्चयात्मक रूप से सुलझा देने के लिए जुट गया।" इल्तुतमिश ने अपनी समस्याओं का समाधान अग्र प्रकार से किया—

(i) अमीरों का दमन—तुर्की अमीर सरदार उसे एक शासक के रूप में स्वीकार करने के लिए राजी नहीं हो रहे थे। अतः सर्वप्रथम इल्तुतमिश ने उनका दमन करके, उन्हें दूरस्थ स्थानों को भेज दिया।

(ii) ताजुद्दीन एल्दौज का दमन—इल्तुतमिश का प्रबल प्रतिद्वन्द्वी एल्दौज गजनी का शासक था। 1215 ई० में ख्वारिज्म के शाह ने उसे गजनी से भागने पर विवश कर दिया। वह भारत आया और उसने अवसर पाकर पश्चिमी पंजाब पर अपना अधिकार जमा लिया। इल्तुतमिश को यह सहन न हुआ और उसने 1216-17 ई० में ताजुद्दीन एल्दौज पर आक्रमण करके उसे पराजित कर दिया और बन्दी बनाकर बदायूँ के दुर्ग में रखा, जहाँ उसकी मृत्यु हो गई।

(iii) कुबाचा का दमन—नासिरुद्दीन कुबाचा ऐबक का बहनोई एवं गोरी का एक महत्त्वपूर्ण दास था। इसलिए वह इल्तुतमिश के अधीन होना पसन्द नहीं करता था। 1217 ई० में इल्तुतमिश ने कुबाचा पर आक्रमण कर उसे अपने अधीन कर लिया। लेकिन इसके पश्चात् कुबाचा ने ख्वारिज्म के शाह को पराजित कर अपनी शक्ति में वृद्धि कर ली। फलस्वरूप इल्तुतमिश को 1228 ई० में उस पर पुनः आक्रमण करना पड़ा। कुबाचा उससे पराजित होकर भागा और सिन्धु नदी में डूबकर मर गया।

> **इल्तुतमिश**
> (1) इल्तुतमिश का जीवन परिचय
> (2) इल्तुतमिश की प्रारम्भिक समस्याएँ
> (3) समस्याओं का समाधान।

(iv) मंगोल आक्रमण से साम्राज्य की रक्षा—चंगेज खाँ मध्य एशिया का क्रूर एवं बर्बर मंगोल नेता था। 1221 ई० में चंगेज खाँ के नेतृत्व में मंगोलों ने भारत पर आक्रमण कर दिया।

मंगोल आक्रमणकारी चंगेज खाँ ख्वारिज्म के शाह जलालुद्दीन मगबर्नी का पीछा करता हुआ सिन्ध प्रदेश तक पहुँच गया, लेकिन इल्तुतमिश ने चंगेज खाँ की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए जलालुद्दीन को अपने यहाँ शरण नहीं दी। इस प्रकार, वह अपनी दूरदर्शिता के कारण मंगोल आक्रमण से अपने साम्राज्य को बचाने में सफल रहा। अन्त में चंगेज खाँ भारत पर आक्रमण किए बिना ही वापस चला गया।

इल्तुतमिश की सफलताएँ (उपलब्धियाँ)

इल्तुतमिश ने अपने शासनकाल में निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण सफलताएँ प्राप्त कीं—

(1) राजपूतों पर विजय (1226 ई०)—इल्तुतमिश ने सर्वप्रथम रणथम्भौर को जीता। 1231 ई० में उसने ग्वालियर के विद्रोही शासक मलयवर्मन देव का दमन किया। तत्पश्चात् कालिंजर, नागौर, बयाना, अजमेर, चित्तौड़ और गुजरात आदि के राजाओं पर उसने विजय प्राप्त की।

(2) बंगाल विजय—अलीमर्दान की मृत्यु के बाद बंगाल में 'हिसामुद्दीन एवाज' नाम का एक अमीर सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने गयासुद्दीन आजम की उपाधि ग्रहण की और बिहार, कामरूप, तिरहुत एवं जाज नगर आदि पर अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली। इल्तुतमिश ने बंगाल पर विजय प्राप्त करने के लिए अनेक बार प्रयत्न किए। इल्तुतमिश के पुत्र ने एवाज को अपने अधीन कर लिया था। इसी एवाज़ की मृत्यु के पश्चात् एक शाह बल्का ने बंगाल पर अधिकार कर लिया था। 1230-31 ई० में इल्तुतमिश ने शाह बल्का को अपने अधीन कर लिया।

(3) चालीस गुलामों के दल का निर्माण—इल्तुतमिश ने अपने स्वामिभक्त और विश्वासपात्र गुलामों में से चालीस योग्य एवं बुद्धिमान गुलामों का एक संगठित दल बनाया, जो इतिहास में 'चहलगान' के नाम से प्रसिद्ध है।

> **इल्तुतमिश की सफलताएँ (उपलब्धियाँ)**
> (1) राजपूतों पर विजय
> (2) बंगाल विजय
> (3) चालीस गुलामों के दल का निर्माण
> (4) खलीफा से प्रमाण-पत्र।

(4) खलीफा से प्रमाण-पत्र—इल्तुतमिश ने दिल्ली की सल्तनत उत्तराधिकार के रूप में नहीं वरन् अपने बाहुबल से प्राप्त की। इसलिए शान्ति एवं व्यवस्था को स्थापित करने के उद्देश्य से, उसने बगदाद के अब्बासी खलीफा मुस्तसिर बिल्लाह से 1229 ई० में दिल्ली का सुल्तान होने का प्रमाण-पत्र माँगा। बगदाद के खलीफा ने इल्तुतमिश को भारत के मान्यता प्राप्त सम्राट के रूप में अपनी स्वीकृति दी और शासक की

उपाधि सुल्तान-ए-हिन्द एवं शाही पोशाक भी प्रदान कर दी। वैधानिक शासक के रूप में उसने अपने नाम के सिक्के ढलवाए और खलीफा का नाम भी खुतबे में लिखवाया। इस प्रकार, इल्तुतमिश अपनी योग्यता, विजयों और खलीफा के प्रमाण-पत्र से, भारत का सार्वभौमिक एवं वैधानिक शासक बन गया था।

उसकी इन सफलताओं के आधार पर ही डॉ० आर० एस० त्रिपाठी ने लिखा है, "भारत में मुस्लिम सम्प्रभुता का प्रारम्भ वास्तविक रूप में इल्तुतमिश के समय से ही होता है।"

इल्तुतमिश का चरित्र एवं मूल्यांकन

इल्तुतमिश का मूल्यांकन निम्न शीर्षकों के आधार पर किया जा सकता है—

(1) मानव के रूप में—उसमें मानवता के गुण पर्याप्त मात्रा में विद्यमान थे। मिनहाज-उस-सिराज ने लिखा है, "उसके समान गुणवान, दयालु और सन्तों तथा विद्वानों के प्रति श्रद्धा रखने वाला अन्य कोई सुल्तान दिल्ली के सिंहासन पर नहीं बैठा।"

डॉ० ईश्वरी प्रसाद ने उसके चरित्र व योग्यता का मूल्यांकन करते हुए लिखा है, "यदि 1211 ई० में दिल्ली की गद्दी पर इल्तुतमिश आसीन न होता तो सम्भव था कि ऐबक द्वारा छोड़े गए असंगठित प्रदेश पूर्णतया छिन्न-भिन्न हो जाते और दास वंश के अधीन एक कुशल केन्द्रीय सरकार की व्यवस्था भी न होती।"

इल्तुतमिश का चरित्र एवं मूल्यांकन

(1) मानव के रूप में
(2) राजनीतिज्ञ के रूप में
(3) न्यायप्रिय सुल्तान
(4) कलाओं का संरक्षक
(5) दास वंश का वास्तविक संस्थापक।

(2) राजनीतिज्ञ के रूप में—वह एक महान् शासक भी था, जिसका प्रमाण हमें दो उदाहरणों से मिलता है—उसने दूरदर्शी राजनीतिज्ञ की भाँति खलीफा से प्रमाण-पत्र प्राप्त किया। दूसरा उदाहरण यह है कि उसने जलालुद्दीन को अपने राज्य में शरण न देकर दिल्ली की सल्तनत को एक भयानक खतरे से बचाया।

(3) न्यायप्रिय सुल्तान—इब्नेबतूता ने लिखा है, "इल्तुतमिश एक न्यायप्रिय सुल्तान था। उसने अपने महल के मुख्य बुर्ज पर दो संगमरमर के पत्थर के बने हुए शेर लगवा रखे थे जिनके गले में जंजीर लटकी रहती थी। प्रार्थी द्वारा जंजीर खींचकर घण्टा बजाने पर सुल्तान स्वयं आकर उसकी फरियाद सुनता और निष्पक्ष निर्णय देता था।"

(4) कलाओं का संरक्षक—वह कला-प्रेमी बादशाह भी था। उसने बदायूँ में एक मसजिद बनवाई और ऐबक द्वारा निर्माणाधीन कुतुबमीनार को पूर्ण करवाया था। शिक्षा के विकास की ओर भी उसने ध्यान दिया। उसके समय में दिल्ली इस्लामी शिक्षा का प्रमुख केन्द्र बन गई थी।

(5) दास वंश का वास्तविक संस्थापक—डॉ० ईश्वरी प्रसाद ने इल्तुतमिश को गुलाम वंश का वास्तविक संस्थापक मानते हुए लिखा है, "निःसन्देह इल्तुतमिश गुलाम वंश का वास्तविक संस्थापक था। यही वह व्यक्ति था जिसने अपने स्वामी कुतुबुद्दीन की विजयों को संगठित किया था।" ("Iltutmish is undoubtedly the real founder of the slave dynasty. It was he, who consolidated the conquests that had been made by his master Qutubuddin.")

लेनपूल ने भी उसे ही दास वंश का संस्थापक स्वीकार करते हुए लिखा है, "इल्तुतमिश दास वंश के उच्च शासकों का संस्थापक है, जिसको सुव्यवस्थित करने का अवसर कुतुबुद्दीन ऐबक को नहीं मिला था।"

वस्तुतः इल्तुतमिश गुलाम वंश का सर्वश्रेष्ठ सुल्तान था। इसीलिए सर वूल्जले हेग ने इल्तुतमिश को दास वंश के मुसलमानों में सर्वोच्च पद प्रदान किया है। इस सम्बन्ध में सबसे महत्त्वपूर्ण बात तो यह है कि इल्तुतमिश ने भारत में जिस मुस्लिम सत्ता की स्थापना की, वह 1526 ई० तक किसी-न-किसी रूप में चलती रही। यही बात उसकी महानता को सिद्ध कर देती है और यह प्रमाणित कर देती है कि इल्तुतमिश दास वंश के सुल्तानों में सर्वश्रेष्ठ था।

प्रश्न 3—रजिया की असफलता के कारणों का वर्णन कीजिए। *(1995)*

उत्तर—

रजिया की असफलता के कारण

रजिया ने अपने शासनकाल (1236-1240 ई०) में कुछ ही दिनों में अपार सफलता प्राप्त की थी। परन्तु अपने शासनकाल के उत्तरार्द्ध में वह तीव्र गति से असफल सिद्ध हुई। उसकी असफलता के कारण निम्न प्रकार थे—

(1) रजिया की निरंकुशता—तुर्की-अमीर कुतुबुद्दीन के शासनकाल से ही अपने को शक्तिशाली मानते थे। इल्तुतमिश भी अमीरों का सम्मान करता था। इसके विपरीत, रजिया अपने को एक निरंकुश शासिका मानती थी। अतएव वे रजिया की निरंकुशता को सहन नहीं कर सके और उन्होंने रजिया के विरुद्ध षड्यंत्र प्रारम्भ कर दिए।

(2) स्त्री लज्जा का परित्याग—रजिया के शासनकाल के समय स्त्रियों को घर की लज्जा माना जाता था, किन्तु रजिया ने मुस्लिम समाज की तात्कालिक प्रचलित प्रथाओं का परित्याग कर दिया था। वह पर्दा नहीं करती थी तथा पुरुषों के समान घोड़ों पर सवार होकर युद्ध में पहुँचती थी। इस्लाम के कट्टर समर्थक अमीरों ने रजिया के इन व्यवहारों का प्रबल विरोध किया।

(3) याकूत से अनुराग—रजिया के सम्बन्ध में कुछ विद्वानों का यह भी मत है कि रजिया अपने स्तर के नीचे के लोगों को विशेष प्रेम करती थी। रजिया जमालुद्दीन याकूत नामक एक हब्शी अफसर पर, जो घोड़ों का अध्यक्ष था, विशेष रूप से आसक्त थी। याकूत वैसे भी दास था, जो रजिया की कृपा से ही अमीर-ए-आखुर के पद पर पहुँचा था। अमीरों व मालिकों को रजिया का यह आचरण पसन्द नहीं आया। अतः उन्होंने ईर्ष्यावश रजिया का विरोध किया।

रजिया की असफलता के कारण

(1) रजिया की निरंकुशता
(2) स्त्री लज्जा का परित्याग
(3) याकूत से अनुराग
(4) विचारों में स्थायित्व का अभाव
(5) भारतीयों से घृणा
(6) सरदारों की महत्त्वाकांक्षाएँ
(7) इस्लामी प्रथाओं की उपेक्षा।

(4) विचारों में स्थायित्व का अभाव—रजिया अपने विचारों में अस्थिर थी। उसकी सबसे बड़ी दुर्बलता यही थी कि वह क्षणभर में ही अपने विचार किसी के भी कहने से बदल सकती थी। इसलिए उसके समय में उसके विश्वासपात्र भी उससे अलग हो गए थे।

(5) भारतीयों से घृणा—भारतीय हिन्दू और राजपूत रजिया या किसी भी अन्य मुसलमान को अपना शासक स्वीकार करने को तैयार न थे। इस कारण रजिया भी भारतीय राजपूतों तथा भारतीय जनता से घृणा करती थी। अपने इस व्यवहार के कारण रजिया भारतीय राजपूतों का सहयोग प्राप्त न कर सकी थी।

(6) सरदारों की महत्त्वाकांक्षाएँ—रजिया ने परम्परागत प्रथाओं का परित्याग कर दिया था। इससे राज्य के प्रभावी अमीर उससे खिन्न थे। अमीर यह समझते थे कि हम सर्वशक्तिशाली हैं और हमारे बिना किसी भी सुल्तान का कार्य नहीं चल सकता है। इसीलिए सरदारों ने रजिया का लोहा नहीं माना, वे सदैव ही उसके विरुद्ध षड्यंत्र करते रहे।

(7) इस्लामी प्रथाओं की उपेक्षा—रजिया पुरुषों जैसी पोशाक धारण करती थी और जनता के सामने बैठकर खुले दरबार में राज-काज करती थी। जब वह घोड़े पर सवार होती थी, तो उसका विश्वासपात्र जमालुद्दीन याकूत उसे सहारा देकर घोड़े पर बिठाता था। वह सैन्य संचालन स्वयं करती थी और युद्ध में भाग लेती थी। इस प्रकार, रजिया ने सभी इस्लामी प्रथाओं का परित्याग कर दिया था। उसके इन कार्यों से राज्य के अमीर और कट्टर मुसलमान उसके विरुद्ध संगठित हो गए।

रजिया के विरुद्ध संगठित होने वाले राज्य के प्रभावी अमीर, सरदार और कट्टर मुस्लिम धर्मावलम्बी अन्ततः रजिया के विरुद्ध सफल हुए और उन्होंने रजिया के स्थान पर अपनी इच्छानुसार बहराम को सिंहासन पर बैठाने में सफलता प्राप्त की। परन्तु फिर भी इतिहास में रजिया का सम्मानित स्थान है। डॉ० आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव ने लिखा है, "उससे पहले और बाद में इल्तुतमिश वंश के अन्य सभी सदस्य व्यक्तिगत और

चारित्रिक दृष्टि से उससे कहीं अधिक दुर्बल थे।" प्रो० के० ए० निजामी ने उसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है कि, "इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि वह इल्तुतमिश के उत्तराधिकारियों में सबसे श्रेष्ठ थी।"

प्रश्न 4—रजिया के चरित्र पर संक्षिप्त प्रकाश डालिए।

अथवा **"रजिया बुद्धिमती, न्यायप्रिय, उदार, विद्वानों की संरक्षिका तथा योग्य शासिका थी।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।** (1995)

अथवा **"वह सर्वगुण सम्पन्न थी, परन्तु ईश्वर ने उसे पुरुष न बनाया था।" क्या यह रजिया का सही मूल्यांकन है?**

उत्तर—

रजिया का चरित्र

इल्तुतमिश के निधन के बाद उसका पुत्र रुकनुद्दीन फिरोजशाह शासक हुआ, किन्तु भोग-विलासी होने के कारण वह सफल न हो सका। अन्त में सरदारों और अमीरों ने विवश होकर रजिया को ही सुल्तान बनाया। उसने 1236 ई० से 1240 ई० तक शासन किया। उसके चरित्र में निम्नलिखित गुण थे—

(1) योग्यतम शासिका—रजिया, सुल्तान इल्तुतमिश की पुत्री थी। बाल्यकाल से ही वह कुशल बुद्धि वाली राजकुमारी थी। अतएव इल्तुतमिश ने उसको अपने जीवनकाल में ही अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया था। रजिया को सिंहासन पर बैठते ही प्रशासन की आन्तरिक तथा बाह्य, दोनों ही प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ा। वह इन सब समस्याओं से हतोत्साहित नहीं हुई। उसने अपनी कूटनीति से विरोधियों में फूट डाल दी और उन पर विजय प्राप्त करके अपने को एक कुशल शासक सिद्ध किया। डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने लिखा है कि, "रजिया इल्तुतमिश के वंश की प्रथम और अन्तिम शासिका थी, जिसने अपनी योग्यता व चरित्र के बल पर दिल्ली सल्तनत की राजनीति को प्रभावित किया था।"

(2) कुशल प्रशासिका—रजिया एक कुशल प्रशासिका भी थी। उसने अपनी योग्यता और कुशलता से दिल्ली के नागरिकों को प्रभावित किया था। रजिया में एक कुशल वक्ता के गुण भी विद्यमान थे। उसके भाषण में एक जादू था, जिसने दिल्ली के नागरिकों तथा सैनिक अधिकारियों को मंत्रमुग्ध कर दिया था।

रजिया का चरित्र एवं व्यक्तित्व

(1) योग्यतम शासिका
(2) कुशल प्रशासिका
(3) सफल कूटनीतिज्ञ
(4) कुशल सेनानायक
(5) निरंकुशता प्रेमी
(6) अनुशासनप्रिय।

(3) सफल कूटनीतिज्ञ—रजिया में एक सफल कूटनीतिज्ञ के गुण भी विद्यमान थे। बदायूँ, मुल्तान तथा लाहौर के सूबेदार रजिया को सुल्तान मानने के लिए तैयार नहीं थे। उनकी संयुक्त शक्ति से लोहा लेना रजिया की क्षमता से बाहर था। उसने इन सरदारों में फूट डालकर बदायूँ और मुल्तान के सूबेदारों के साथ मिलकर इनको आपस में ही लड़ाया और फिर उनको एक-एक करके युद्ध में पराजित किया। यह सब रजिया के कूटनीतिज्ञ होने का ही परिणाम था।

(4) कुशल सेनानायक—रजिया में एक सेनानायक के गुण भी विद्यमान थे। वह पर्दा उतारकर पुरुषों की भाँति युद्ध-स्थल में सेनानायक बनकर पहुँचती थी। उसने अपने विरुद्ध षड्यंत्र करने वाले अमीरों को युद्ध में परास्त किया था। अपनी सैनिक प्रतिभा के कारण ही वह अपने साम्राज्य की सीमा का विस्तार करने में सफल हो सकी थी। इस सम्बन्ध में प्रसिद्ध लेखक मिनहाज-उस-सिराज ने लिखा है, "लखनौती से देवल तक सभी मलिकों तथा अमीरों ने उसके आधिपत्य को स्वीकार कर लिया था।"

(5) निरंकुशता प्रेमी—रजिया एक ऐसे युग की सुल्ताना थी, जिसमें स्त्री के प्रति लोगों में श्रद्धा और विश्वास नहीं था। उसके सिंहासनारूढ़ होते ही अमीरों ने उसके विरुद्ध षड्यंत्र किया, किन्तु उसने सभी अमीरों को नतमस्तक कर दिया। वास्तव में, वह प्रथम तुर्की-सुल्ताना थी, जिसने अमीरों तथा मलिकों पर राज्य की इच्छा को थोपा था।

(6) अनुशासनप्रिय—रजिया अनुशासनप्रिय थी। राज्य में अनुशासन बनाए रखने के लिए और अमीरों में फूट डालकर एक-छत्र शासन स्थापित करने के लिए रजिया ने अपनी कूटनीति से काम लिया था।

रजिया अनुशासन बनाए रखने के लिए सभी प्रकार के त्याग करने को उद्यत रहती थी। उसने अपने शासनकाल में अराजकतावादी तथा षड्यंत्रकारी तत्त्वों का दमन करने में कभी भी संकोच नहीं किया था।

निष्कर्ष—रजिया के चरित्र का विश्लेषण करने से यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि उसके चरित्र में कुछ दोष थे, परन्तु फिर भी वह एक महान् शासिका थी। उसने सम्पूर्ण शक्ति को अपने हाथ में केन्द्रित करके अपने को सर्वशक्तिमान बनाने का प्रयत्न किया। रजिया की महानता इसलिए भी उल्लेखनीय है कि उसने अपनी सफलताओं के बल पर अपने पिता इल्तुतमिश के समान प्रभावशाली सुल्तान के गुणों का परिचय दिया था। प्रो० के० ए० निजामी ने लिखा है कि, "इस बात से इनकार नहीं किया जा सकता कि वह इल्तुतमिश के उत्तराधिकारियों में सबसे श्रेष्ठ थी।" उसके सम्बन्ध में तत्कालीन इतिहासकार मिनहाज-उस-सिराज का यह कथन पूर्णतः उपयुक्त ही है कि, "रजिया बुद्धिमती, न्यायप्रिय, उदार, विद्वानों की संरक्षिका तथा योग्य शासिका थी।"

[नोट—रजिया में उपर्युक्त सभी गुण होते हुए भी उसे असफलता का सामना करना पड़ा। अतः उसके ये सभी गुण व्यर्थ सिद्ध हुए। रजिया की असफलता के कारण दीर्घ उत्तरीय प्रश्न संख्या 3 के उत्तर में देखिए।]

प्रश्न 5—बलबन के कार्यों का वर्णन कीजिए। दिल्ली सल्तनत के इतिहास में उसका क्या स्थान है?

अथवा बलबन ने दिल्ली सल्तनत के संगठन में क्या योगदान दिया ?

अथवा "बलबन दिल्ली सल्तनत के विशिष्ट शासकों में से एक था।" इस कथन की विवेचना कीजिए।

अथवा "बलबन तेरहवीं शताब्दी का आदर्श सुल्तान था।" इस कथन की पुष्टि कीजिए।

अथवा दिल्ली सल्तनत को सुदृढ़ बनाने के लिए बलबन ने कौन-कौन से कदम उठाए? *(Imp.)*

अथवा "बलबन ने नवजात मुस्लिम राज्य को आन्तरिक संघर्षों और बाह्य खतरों से रक्षित किया और उसे सुदृढ़ बनाया।" इस कथन की पुष्टि कीजिए।

अथवा "दास वंश का सबसे महान् सुल्तान बलबन था।" उसके कार्यों के आधार पर विवेचना कीजिए।

अथवा बलबन का राजा के रूप में मूल्यांकन कीजिए। *(1991)*

अथवा "बलबन के पौरुष और शक्ति के अभाव में दिल्ली सल्तनत आन्तरिक संघर्ष तथा बाह्य आक्रमणों को सहन नहीं कर पाती।" इस कथन की बलबन की कठिनाइयों तथा उन पर विजय के आधार पर समीक्षा कीजिए। *(1990, 92, 94)*

अथवा एक प्रशासक के रूप में बलबन का मूल्यांकन कीजिए। *(1991)*

अथवा सुल्तान बलबन की प्रमुख समस्याओं का वर्णन कीजिए तथा यह बताइए कि उसने उन्हें किस प्रकार सुलझाया? *(1993)*

अथवा "बलबन एक सफल शासक था।" विवेचना कीजिए। *(1994)*

अथवा बलबन के शासन प्रवन्ध का वर्णन कीजिए। *(1995)*

अथवा "बलबन ने साम्राज्य विस्तार के स्थान पर संगठन पर अधिक बल दिया।" व्याख्या कीजिए। *(1995)*

अथवा बलबन का राजा के रूप में मूल्यांकन कीजिए। *(1997)*

अथवा बलबन की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए। गुलाम वंश के इतिहास में उसका क्या स्थान है? *(1999)*

अथवा सुल्तान बलबन की शासन नीति की विवेचना कीजिए। *(1999)*

उत्तर—

सुल्तान बलबन
(1266–1286 ई०)

बलबन गुलाम वंश के शासकों में सबसे योग्य और शक्तिशाली सुल्तान था। सर वूल्जले हेग ने उसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है, "सुल्तान के रूप में बलबन का चरित्र आन्तरिक विद्रोह एवं बाह्य खतरों के विरुद्ध एक संघर्ष था। उसने तानाशाही की स्थापना की जिसका स्थायित्व उसके व्यक्तिगत चरित्र की शक्ति पर था।" इसी प्रकार लेनपूल का कथन है, "गुलाम, भिश्ती, शिकारी, सेनाध्यक्ष, राजनीतिज्ञ तथा सुल्तान

आदि विभिन्न रूपों में कार्य करने वाला बलबन दिल्ली शासकों की दीर्घ परम्परा में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण सुल्तानों में से एक है।"

बलबन का प्रारम्भिक जीवन—ग्यासुद्दीन बलबन (वास्तविक नाम बहाउद्दीन) इल्बरी कबीले का एक तुर्क था। उसका पिता दस हजार परिवारों का मुखिया (सरदार) था परन्तु युवावस्था में ही उसे मंगोलों द्वारा बन्दी बना लिया गया था और बसरा के ख्वाजा जमालुद्दीन को बेच दिया गया था। जमालुद्दीन ने उसे शिक्षित किया और 1222 ई० में उसे इल्तुतमिश को बेच दिया। इल्तुतमिश ने बलबन की योग्यता एवं विलक्षण बुद्धि देखकर उसे अपने चालीस गुलामों में सम्मिलित कर लिया। प्रारम्भ में, उसे भिश्ती का काम करना पड़ा, परन्तु शीघ्र ही वह इल्तुतमिश का 'खासबरदार' (अंगरक्षक) बन गया। इससे पूर्व रजिया के शासन काल (1236-1240 ई०) में वह 'अमीरे-शिकार' के पद पर नियुक्त हुआ। बहरामशाह के काल (1240-1242 ई०) में उसे रेवाड़ी और झाँसी की जागीरें दी गईं। उसने इन स्थानों पर अत्यन्त कुशलतापूर्वक शासन किया। बहरामशाह के बाद मसूदशाह बादशाह हुआ। उसने उसे उच्च सैनिक की उपाधि प्रदान की। जब मंगोलों ने उच्छ किले को घेरा तो बलबन ने अमीरों की फूट को समाप्त करके सेना को संगठित किया और मंगोलों को अपना घेरा उठा लेने के लिए बाध्य किया। मसूदशाह को शासक के रूप में अयोग्य जानकर उसने नासिरुद्दीन महमूद को सुल्तान बनने में सहायता प्रदान की तथा अपनी पुत्री का विवाह भी सुल्तान नासिरुद्दीन के साथ कर दिया। इसके बदले में सुल्तान नासिरुद्दीन ने सिंहासनारूढ़ होने पर उसे अनेक उपाधियों से अलंकृत किया और उसे 'नाइब-ए-मुमालिकत' (प्रधानमन्त्री) के पद पर नियुक्त कर दिया। सुल्तान नासिरुद्दीन की मृत्यु के बाद 1266 ई० में प्रतिभाशाली बलबन स्वयं दिल्ली का शासक बन गया।

बलबन की कठिनाइयाँ

(1) तुर्क अमीरों की शक्ति—जब बलबन गद्दी पर बैठा उस समय तुर्क अमीरों की शक्ति इतनी अधिक बढ़ गई थी कि वे सुल्तान को कुछ भी नहीं समझते थे।

(2) हिन्दू व राजपूतों का विद्रोह—राजपूताना, बुन्देलखण्ड तथा रुहेलखण्ड आदि क्षेत्रों में राजपूत सरदारों ने अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली थी और वे मुस्लिम शासकों के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए तत्पर थे।

बलबन की कठिनाइयाँ

(1) तुर्क अमीरों की शक्ति
(2) हिन्दू व राजपूतों का विद्रोह
(3) आर्थिक संकट
(4) चालीस गुलामों के दल की समस्या
(5) साम्राज्य में अराजकता एवं अशान्ति का वातावरण
(6) मंगोलों के आक्रमण।

(3) आर्थिक संकट—दास वंश के सुल्तान बलबन की अपेक्षा अधिक खर्चीले थे। अतः राजकोष धन से रिक्त हो गया था और बिना धन के शासन-व्यवस्था का संचालन असम्भव था।

(4) चालीस गुलामों के दल की समस्या—इल्तुतमिश के समय संगठित किए गए चहलगान (Forty) के चालीस गुलाम भी उसके लिए समस्या बन गए थे, क्योंकि इनकी महत्त्वाकांक्षा और शक्ति काफी बढ़ चुकी थी और वे चाहते थे कि सुल्तान उनके हाथ की कठपुतली बनकर रहे।

(5) साम्राज्य में अराजकता एवं अशान्ति का वातावरण—बलबन के सिंहासनारूढ़ होने के समय दिल्ली सल्तनत में चारों ओर अशान्ति एवं अराजकता का बोलबाला था। सुल्तान (नासिरुद्दीन महमूद) के सम्बन्धी और शासन के पदाधिकारी प्रान्तों और जिलों में जनता पर मनमाने अत्याचार कर रहे थे।

(6) मंगोलों के आक्रमण—मंगोलों ने भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमाओं पर निरन्तर आक्रमण करके सीमान्त प्रदेशों में अपने शासक नियुक्त कर दिए थे। अतः उसे किसी भी समय मंगोलों के आक्रमणों का सामना करना पड़ सकता था।

इस प्रकार, बलबन के समक्ष अनेक कठिनाइयाँ विद्यमान थीं तथा उसके राज्य की स्थिति बड़ी दयनीय हो चुकी थी जिसका उल्लेख करते हुए समकालीन इतिहासकार बरनी ने लिखा है, "सरकार का भय,

जो सुशासन का आधार और राज्य के यश तथा वैभव का स्रोत है, लोगों के हृदय से विलीन हो गया था और देश दुर्दशा का शिकार हो रहा था।"

प्रशासक के रूप में बलबन की सफलताएँ
(बलबन का शासन-प्रबन्ध)

बलबन के शासन-प्रबन्ध अथवा एक प्रशासक के रूप में बलबन की सफलताओं का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

(1) राजा के दैवी अधिकार के सिद्धान्त का समर्थन—बलबन बड़ा नीतिकुशल और निरंकुश सुल्तान था। वह राजा के दैवी अधिकार के सिद्धान्त का प्रबल समर्थक था। उसने लोगों पर शाही आतंक स्थापित करने और सुल्तान की शक्ति की निरंकुशता को स्थापित करने के लिए आम जनता में यह घोषणा करवाई कि, 'सुल्तान पृथ्वी पर ईश्वर का प्रतिनिधि (नियामत-ए-खुदाई) है और इसका स्थान पैगम्बर के पश्चात् है ""जनसाधारण या सरदारों को उसके कार्यों की आलोचना करने का कोई अधिकार नहीं है।"

(2) सुल्तान पद के गौरव को प्रतिष्ठित करना—बलबन ने अपने पद को अधिक सम्मानपूर्ण बनाने हेतु अनेक कार्य किए। उसने बड़ी भयंकर आकृति वाले व्यक्तियों को अपना अंगरक्षक बनाया, जो उसकी राजगद्दी के दोनों ओर हाथों में नंगी तलवारें लेकर खड़े होते थे। वह बिना शाही पोशाक के दरबार में भूलकर भी नहीं आता था। बलबन ने 'सिजदा' (भूमि पर लेटकर अभिवादन करना) और 'पैबोस' (सुल्तान के चरणों को चूमना) की रीतियाँ आरम्भ कीं। उसने अपने व्यवहार को कठोर बनाया, जिससे कि प्रजा उसकी बोली से ही भय खाए। इस सन्दर्भ में बरनी ने लिखा है, "बलबन बार-बार कहा करता था कि जो सुल्तान साम्राज्य के नियमों तथा रीतियों के अनुसार व्यवहार नहीं करता एवं उनको स्थापित नहीं करता, अपने दरबार की सुव्यवस्था की ओर ध्यान नहीं देता, समारोह में शान-शौकत का प्रदर्शन नहीं करता या जिसका व्यवहार और कथन राजकीय महानता के प्रतीक नहीं होते हैं, उसका भय जनता नहीं मानती है।"

प्रशासक के रूप में बलबन की सफलताएँ (शासन-प्रबन्ध)

(1) राजा के दैवी अधिकार के सिद्धान्त का समर्थन
(2) सुल्तान के पद के गौरव को प्रतिष्ठित करना
(3) प्रान्तों पर कठोर नियन्त्रण
(4) चालीस गुलामों के दल का विनाश
(5) उलेमाओं को राजनीति से अलग करना
(6) विद्रोहों का दमन
(7) मंगोलों के आक्रमण के विरुद्ध सुरक्षात्मक कार्य।

(3) प्रान्तों पर कठोर नियन्त्रण—बलबन ने अपने साम्राज्य के प्रान्तों पर कठोर नियन्त्रण स्थापित किया और उसने शासन के उच्च पदों पर केवल उच्च वंश के लोगों को ही नियुक्त किया।

(4) चालीस गुलामों के दल का विनाश—बलबन ने इल्तुतमिश के चालीस गुलामों के दल (चहलगान) का अत्यन्त क्रूरतापूर्वक दमन कर दिया। उसने बदायूँ के सूबेदार मलिक बरबक को कोड़ों से इतना पिटवा [illegible] कि उसकी मृत्यु हो गई। इसी प्रकार, अवध के सूबेदार हैवात खाँ को भी कोड़े लगवाए और फिर अपने चचेरे भाई शेर खाँ को जहर देकर मरवा दिया। इसी प्रकार, उसने अन्य गुलामों का भी अन्त कर दिया।

(5) उलेमाओं को राजनीति से अलग करना—उसके शासनारूढ़ होने के समय उलेमा लोग (मुल्ला, मौलवी) स्वार्थी एवं षड्यन्त्रकारी हो गए थे। वे निरन्तर राजसत्ता के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा करते थे। अतएव बलबन ने शासन-कार्यों में उनका परामर्श लेना छोड़ दिया, लेकिन फिर भी वह उनका अत्यधिक आदर करता रहा।

(6) विद्रोहों का दमन—बलबन ने राज्य की अराजकता का अन्त करने के लिए दमन-चक्र की नीति को अपनाया और अनेक विद्रोहियों का क्रूरतापूर्वक दमन किया, जो इस प्रकार हैं—

(i) दोआब के हिन्दुओं का दमन—बलबन के समय में दोआब के हिन्दू लुटेरे प्रायः दिल्ली और निकटवर्ती क्षेत्रों के व्यापारियों को दिन-दहाड़े लूट लेते थे और लोगों का अपहरण कर लेते थे। बलबन ने इन लुटेरों का दमन करने के उद्देश्य से दिल्ली के निकट के वनों को कटवा डाला। साथ ही उसने जनता की

सुरक्षा के लिए भोजपुर, पटियाली, कम्पिल तथा जलाली में सैनिक चौकियाँ स्थापित कीं और अनेक सुरक्षित दुर्ग भी बनवाए। इन दुर्गों में बर्बर अफगान सैनिक नियुक्त किए गए।

(ii) कटेहर के हिन्दुओं का दमन—उसने कटेहर के हिन्दुओं का दमन भी बड़ी क्रूरता के साथ किया। बरनी ने लिखा है, "विद्रोहियों का रक्त नाले के रूप में वह निकला। गाँवों तथा जंगलों में मुर्दों का ढेर लग गया और मुर्दों की दुर्गन्ध गंगा नदी तक पहुँच गई।"

(iii) तुगरिल बेग के विद्रोह का दमन—सुल्तान बलबन की वृद्धावस्था के समय बंगाल के सूबेदार तुगरिल बेग ने उसके विरुद्ध विद्रोह किया। सुल्तान ने कई सेनाएँ इस विद्रोह के दमन हेतु भेजीं, परन्तु उन्हें कोई विशेष सफलता नहीं मिली। अतः बलबन क्रोधित होकर स्वयं एक विशाल सेना लेकर उसके दमन हेतु पहुँचा। तुगरिल बेग अपने साथियों सहित पकड़ा गया और उसकी हत्या कर दी गई। उसने वहाँ के विद्रोहियों को भी बड़ा ही कठोर दण्ड दिया। बरनी ने लिखा है, "लखनौती के मुख्य बाजार के दोनों ओर एक-दो मील लम्बी सड़क पर लकड़ी के तख्तों की पंक्ति गाड़ी गई और उन पर तुगरिल बेग के साथियों के शरीरों को ठोक दिया गया। उसने सभी लाशों की ओर संकेत करके कहा कि यदि अब किसी ने विद्रोह किया तो उसके खानदान की भी यही दशा होगी।"

(7) मंगोलों के आक्रमण के विरुद्ध सुरक्षात्मक कार्य—बलबन ने पश्चिमोत्तर सीमाओं पर भी अत्यधिक सुदृढ़ दुर्ग निर्मित कराए और मंगोलों के विरुद्ध सुरक्षा के लिए अपने पुत्रों बुगरा खाँ और मुहम्मद के नेतृत्व में वहाँ विशाल सेना नियुक्त की। 1285 ई० में मंगोलों के आक्रमण में उसका पुत्र मुहम्मद मारा गया। शहजादा मुहम्मद की मृत्यु के शोक में 1287 ई० में बलबन की भी मृत्यु हो गई।

बलबन का मूल्यांकन

इतिहासकारों के अनुसार, बलबन एक क्रूर एवं निर्दयी शासक था, किन्तु यह मत उचित नहीं है क्योंकि जब वह सत्तारूढ़ हुआ, उस समय कुछ परिस्थितियाँ ही ऐसी थीं कि उसे क्रूरता की नीति अपनानी पड़ी। वास्तव में, अपने चरित्र और महान् उपलब्धियों के बल पर उसने निर्बल दिल्ली सल्तनत को सुदृढ़ बनाया।

बलबन के चरित्र का मूल्यांकन करते हुए डॉ० ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है कि, "बलबन एक महान् योद्धा-शासक एवं नीति-निपुण सुल्तान था। उसने घोर संकटमय स्थिति में पड़े हुए अल्पवयस्क मुस्लिम राज्य को सुरक्षित रखा और उसे नष्ट होने से बचाया, इसलिए उसका नाम मध्यकालीन भारतीय इतिहास में सदैव एक उच्च स्थान पाता रहेगा।"

इसी प्रकार, बलबन के सन्दर्भ में यह कथन भी पूर्णतया उपयुक्त ही है कि, "बलबन के पौरुष और शक्ति के अभाव में दिल्ली सल्तनत आन्तरिक संघर्ष तथा बाह्य आक्रमणों को सहन नहीं कर पाती।"

प्रश्न 6—अलाउद्दीन खिलजी की दक्षिण विजयों का संक्षेप में वर्णन कीजिए। *(1996)*

अथवा **साम्राज्य-निर्माता और एक विजेता के रूप में अलाउद्दीन खिलजी की उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिए।** *(M. Imp.)*

अथवा **"अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल से दिल्ली सल्तनत का साम्राज्यवादी युग प्रारम्भ होता है।" अलाउद्दीन की विजयों के प्रकाश में इस कथन की समालोचना कीजिए।**

अथवा **अलाउद्दीन खिलजी की विजयों का वर्णन कीजिए।** *(1992)*

अथवा **अलाउद्दीन खिलजी की दक्षिण भारतीय विजयों की समीक्षा कीजिए।** *(1996)*

अथवा **अलाउद्दीन खिलजी के दक्षिण भारतीय अभियानों का वर्णन कीजिए।** *(1999)*

उत्तर—

अलाउद्दीन खिलजी की विजयें

अलाउद्दीन खिलजी अत्यधिक महत्त्वाकांक्षी और साम्राज्यवादी सुल्तान था। वह यूनान के सिकन्दर की भाँति विजेता बनने के स्वपन देखा करता था। उसने सिकन्दर-ए-सानी की उपाधि भी धारण की थी।

'अला-उल-मुल्क' ने सुल्तान की विजय की योजना पर विनम्रतापूर्वक कहा था कि, "इस समय सिकन्दर महान् के समान विश्व-विजय की परिस्थितियाँ नहीं हैं और अब अरस्तू जैसा परामर्शदाता मिलना भी कठिन है।" तब सुल्तान अलाउद्दीन खिलजी ने पूछा कि, "तब मैं किस प्रकार आश्चर्यजनक सफलताओं का यश प्राप्त करूँगा?" उसने उत्तर दिया, "आप उत्तरी तथा दक्षिणी भारत के विशाल एवं समृद्धशाली

प्रदेशों को जीतने का प्रयत्न करें।" परिणामस्वरूप बुद्धिमान सुल्तान ने उत्तरी भारत के अनेक प्रदेशों पर विजय प्राप्त की और फिर दक्षिणी भारत के प्रदेशों पर विजय अभियान प्रारम्भ किए।

उसके सम्बन्ध में डॉ० ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है, "अपने शासनकाल को उसने (अलाउद्दीन) उस उच्चतम पराकाष्ठा पर पहुँचा दिया था जिसके कारण उसका शासन खिलजी साम्राज्यवाद या खिलजी सैनिकवाद के नाम से विख्यात हुआ।"

उत्तरी भारत की विजयें

उत्तरी भारत में अलाउद्दीन खिलजी ने निम्न विजयें प्राप्त कीं—

(1) मुल्तान व सिन्ध प्रदेशों पर विजय—अलाउद्दीन के निर्देश पर उसके सेनापति नुसरत खाँ ने 1296 ई० से 1297 ई० के मध्य मुल्तान व सिन्ध प्रदेशों पर विजय प्राप्त की।

(2) गुजरात पर विजय—इसके पश्चात् अलाउद्दीन ने गुजरात राज्य पर (1299 ई० में) विजय प्राप्त की। गुजरात का राजा कर्ण भयभीत होकर भाग गया और उसकी सुन्दर महारानी कमला देवी को अलाउद्दीन ने अपनी रानी बना लिया।

उत्तरी भारत की विजयें

(1) मुल्तान व सिन्ध प्रदेशों पर विजय
(2) गुजरात पर विजय
(3) जैसलमेर में लूटपाट
(4) रणथम्भौर पर विजय
(5) मेवाड़ पर आक्रमण
(6) अन्य विजयें।

(3) जैसलमेर में लूटपाट—उसने गुजरात जाते समय जैसलमेर को लूटा।

(4) रणथम्भौर पर विजय—अलाउद्दीन ने 1301 ई० में रणथम्भौर पर आक्रमण कर उसे जीता। रणथम्भौर के राजा राणा हम्मीरदेव युद्ध में मारे गए और राजपूत रानियों ने जौहर कर लिया।

(5) मेवाड़ पर आक्रमण—अलाउद्दीन खिलजी ने मेवाड़ के राजा रतनसिंह की महारानी पद्मिनी को प्राप्त करने के उद्देश्य से 1303 ई० में मेवाड़ पर आक्रमण किया। रानी पद्मिनी राणा के शरीर के साथ जलकर सती हो गई थी। लेकिन कुछ इतिहासकार इस घटना का खण्डन करते हैं।[1]

(6) अन्य विजयें—उसने मालवा, माण्डू, उज्जैन, चन्देरी, मारवाड़, सिवाना तथा जालौर आदि पर 1305 ई० से 1311 ई० के मध्य आक्रमण करके उन्हें भी जीत लिया।

इस प्रकार, 1311 ई० तक सम्पूर्ण उत्तरी भारत पर उसका अधिकार हो गया। उसने स्वयं को एक महान् विजेता सिद्ध कर दिया।

दक्षिण भारत की विजयें

अलाउद्दीन की दक्षिण-विजयों में उसके सेनापति मलिक काफूर का बहुत बड़ा हाथ था। अलाउद्दीन के दक्षिणी भारत पर आक्रमण करने के दो प्रमुख उद्देश्य थे—

(1) अपने साम्राज्य का विस्तार करना, तथा

(2) निरन्तर धन प्राप्त करते रहना। उसके दक्षिण भारत के विजय अभियान इस प्रकार थे—

दक्षिण भारत की विजयें

(1) देवगिरि पर आक्रमण
(2) तेलंगाना की विजय
(3) द्वारसमुद्र पर विजय
(4) मदुरा पर विजय
(5) देवगिरि पर पुनः आक्रमण।

(1) देवगिरि पर आक्रमण—एक सन्धि के अनुसार, देवगिरि के राजा रामचन्द्र देव ने 1294 ई० में एलिचपुर का क्षेत्र अलाउद्दीन को दे दिया था। लेकिन इसके पश्चात् तीन वर्षों तक उसने दिल्ली सुल्तान के पास कर नहीं भेजा। राजा रामचन्द्र ने गुजरात के राजा कर्ण और उसकी पुत्री देवल रानी को शरण भी दे रखी थी। अतः सुल्तान ने 1296 ई० में अपने सेनापति मलिक काफूर को उस पर आक्रमण करने के लिए भेजा। उसने आक्रमण से पूर्व मालवा के अल्ला-उल-मुल्क और गुजरात के अल्पखाँ का सहयोग भी लिया और राजा रामचन्द्र को बन्दी बनाकर अलाउद्दीन के पास दिल्ली भेज दिया। कहा जाता है कि अलाउद्दीन

1. डॉ० गौरी शंकर ओझा और डॉ० के० एस० लाला समकालीन इतिहासकारों ने, बरनी और अमीर खुसरो के ग्रन्थों, तारीखे फिरोजशाही व खजान-उल-फतूह के आधार पर पद्मिनी की कथा को काल्पनिक मानते हैं। दूसरी ओर मलिक मुहम्मद जायसी व राजपूत कवियों ने पद्मिनी की कथा को सत्य माना है।
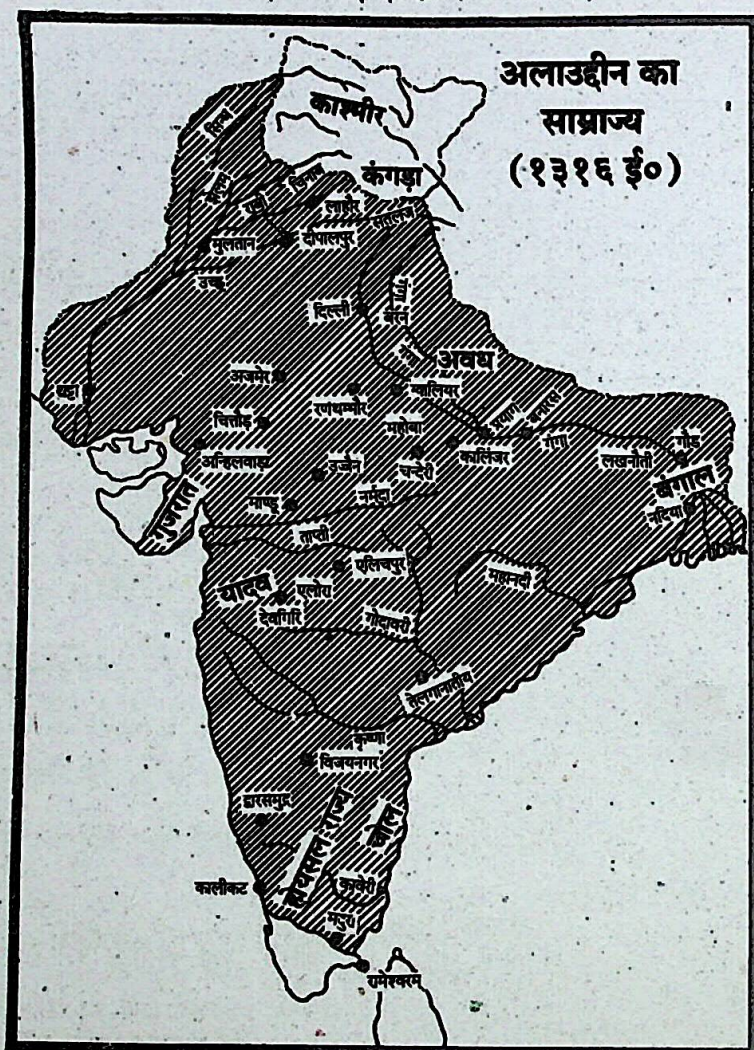
मानचित्र—अलाउद्दीन खिलजी का साम्राज्य (1316 ई० में) ।

अपने अधीनों के साथ अत्यन्त कठोर व्यवहार किया करता था, किन्तु राजा रामचन्द्र के साथ उसने अत्यन्त मधुर व्यवहार किया। उसने उसे 'राय रायन' (King of Kings) की उपाधि प्रदान की और गुजरात में नवसारी की जागीर प्रदान की। अलाउद्दीन ने उसका राज्य भी लौटा दिया। इसके बदले में राजा रामचन्द्र ने नियमित रूप से अलाउद्दीन को कर देना प्रारम्भ कर दिया।

(2) तेलंगाना की विजय—सुल्तान ने देवगिरि विजय के पश्चात् मलिक काफूर को तेलंगाना पर आक्रमण करने का आदेश दिया। वारंगल इस प्रदेश की राजधानी थी, जहाँ राजा प्रताप रुद्रदेव द्वितीय शासन करता था। मलिक काफूर ने अपनी विशाल सेना सहित इस पर अचानक आक्रमण कर दिया और रुद्रदेव को बुरी तरह पराजित कर दिया। रुद्रदेव ने मलिक काफूर से सन्धि कर ली और उसे बहुत-सा सोना, 100 हाथी व 700 घोड़े भेंट में दिए तथा साथ ही वार्षिक कर देना भी स्वीकार किया।

(3) द्वारसमुद्र पर विजय—वारंगल से असीम धन-प्राप्ति के बाद अलाउद्दीन की धन की पिपासा अत्यधिक बढ़ गई; अतः उसने 1310 ई० में मलिक काफूर को द्वारसमुद्र राज्य की विजय के लिए भेजा।

यह राज्य धन-धान्य के लिए सारे दक्षिण भारत में प्रसिद्ध था। मलिक काफूर ने देवगिरि होते हुए अचानक द्वारसमुद्र पर आक्रमण कर दिया। वहाँ का शासक वल्लात तृतीय इस आक्रमण के प्रति सचेत नहीं था। अतः उसकी पराजय हुई और उसे मलिक काफूर की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। साथ ही उसे भेंटस्वरूप पर्याप्त धन भी देना पड़ा। मलिक काफूर ने स्वयं भी लूटपाट कर खूब धन प्राप्त किया और दिल्ली वापस आ गया।

(4) मदुरा पर विजय—द्वारसमुद्र पर विजय प्राप्त करने के बाद अलाउद्दीन के आदेश पर मलिक काफूर 26 मार्च,1311 ई० को मदुरा के पाण्ड्य राज्य की ओर बढ़ा। यह राज्य सुदूर दक्षिण में स्थित था। वहाँ पर उस समय दो भाइयों—वीर पाण्ड्य और सुन्दर पाण्ड्य में राजसिंहासन के लिए संघर्ष चल रहा था। सुन्दर पाण्ड्य अलाउद्दीन के साथ दिल्ली आकर मिल गया था। अतः मलिक काफूर ने वीर पाण्ड्य पर ही आक्रमण किया। वीर पाण्ड्य राज्य छोड़कर भाग गया और मलिक काफूर ने उसके राज्य में खूब लूटपाट की। 412 हाथी एवं 5 हजार घोड़े मलिक काफूर के हाथ लगे और साथ ही भारी मात्रा में सोना, हीरे-जवाहरात भी प्राप्त हुए। इन सबको लेकर मलिक काफूर अलाउद्दीन की सेवा में 4 अप्रैल,1311 ई० को दिल्ली वापस आ गया।

(5) देवगिरि पर पुनः आक्रमण—1312 ई० में देवगिरि के राजा रामचन्द्र की मृत्यु हो गई और उसका पुत्र शंकरदेव वहाँ का शासक बना। शंकरदेव ने सिंहासनारूढ़ होते ही अलाउद्दीन को कर देना बन्द कर दिया। इससे रुष्ट होकर अलाउद्दीन ने मलिक काफूर को देवगिरि पर पुनः आक्रमण करने का आदेश दिया। 1313 ई० में मलिक काफूर ने एक विशाल सेना के साथ देवगिरि पर आक्रमण किया। दोनों की सेनाओं में घमासान युद्ध हुआ और अन्त में शंकरदेव मारा गया तथा देवगिरि पर मलिक काफूर का पूर्ण अधिकार हो गया।

इस प्रकार, अलाउद्दीन ने भाग्य और सैनिक बल के आधार पर उत्तरी और दक्षिणी भारत के विशाल साम्राज्य पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था।

उसके सन्दर्भ में यह कथन भी पूर्णतया उपयुक्त ही है कि, **"अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल से दिल्ली सल्तनत का साम्राज्यवादी युग प्रारम्भ होता है। वस्तुतः दिल्ली सल्तनत के सम्पूर्ण युग में अलाउद्दीन खिलजी निर्विवाद रूप से एक सफल शासक था।"**

प्रश्न 7—"अलाउद्दीन खिलजी एक निरंकुश और स्वेच्छाचारी सुल्तान था।" इस कथन की विवेचना कीजिए। *(V. Imp.)*

अथवा **अलाउद्दीन खिलजी के राजत्व सिद्धान्त की व्याख्या कीजिए।**

अथवा **अलाउद्दीन खिलजी के शासकीय एवं सैनिक सुधारों का विवेचनात्मक विवरण दीजिए।**

अथवा **अलाउद्दीन खिलजी के आर्थिक एवं सैनिक सुधारों का वर्णन कीजिए।**

अथवा **"अलाउद्दीन खिलजी एक जन्मजात सैनिक एवं प्रशासक था।" विवेचना कीजिए।**

अथवा **"अलाउद्दीन खिलजी का शासनकाल भारत में मुस्लिम निरंकुशता के उच्चतम विकास का द्योतक है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।** *(1993)*

अथवा **" दिल्ली सल्तनत के सम्पूर्ण युग में निर्विवाद अलाउद्दीन खिलजी एक सफल शासक था।" उपर्युक्त कथन को उसके शासन-प्रबन्ध का वर्णन करते हुए सिद्ध कीजिए।**

अथवा **"दिल्ली सल्तनत के इतिहास में अलाउद्दीन खिलजी एक सफल शासक था।" इस कथन की विवेचना कीजिए।** *(1995)*

उत्तर—

अलाउद्दीन का राजत्व सिद्धान्त

अलाउद्दीन खिलजी के राज्य-प्रबन्ध की कुछ उल्लेखनीय विशेषताएँ थीं जिनके कारण उसके शासन-प्रबन्ध का भारतीय इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसने अन्य सुल्तानों की अपेक्षा शासन की नीतियों एवं सिद्धान्तों पर अधिक गहराई से विचार किया था तभी एक विद्वान् ने लिखा है, "He was not only a great warrior but he was also a great administrator."

अलाउद्दीन खिलजी ने बलबन के राजत्व सिद्धान्त को स्वीकार किया था। उसका यह राजत्व सिद्धान्त अग्र प्रकार था—

(1) राजा का दैवी-शक्ति में विश्वास—अलाउद्दीन एक निरंकुश शासक और स्वेच्छाचारी सुल्तान था। इसलिए उसने राजा के दैवी अधिकार के सिद्धान्त का समर्थन किया। वह लोगों से कहा करता था, "राजा का कोई सम्बन्धी नहीं होता। राज्य में रहने वाला प्रत्येक व्यक्ति उसकी प्रजा अथवा सेवक है, जिसका कर्त्तव्य है कि वह अपने शासक की प्रत्येक आज्ञा का पालन करके अनुशासन बनाए रखे।" इस तरह उसने सम्राट को ईश्वर का प्रतिनिधि मानकर कठोर एवं निरंकुश प्रशासन की स्थापना की थी।

(2) धर्मनिरपेक्ष शासन—अलाउद्दीन राजनीति के क्षेत्र में मुल्लाओं तथा मौलवियों के अनुचित हस्तक्षेप और विशेषाधिकारों का प्रबल विरोधी था। उसका विश्वास था कि विधि-निर्माण एवं धार्मिक नियमों के निर्माण में कोई सम्बन्ध नहीं है। कानून बनाने का अधिकार केवल राजा को प्राप्त होता है। इसलिए वह जो कुछ भी उचित एवं जनता के हित में समझता था, उसे कर डालता था। इस प्रकार, अलाउद्दीन खिलजी ऐसा प्रथम शासक था, जिसने प्रशासन की दृष्टि से कट्टर मुसलमान होने के बाद भी एक धर्मनिरपेक्ष राज्य की स्थापना की और उलेमाओं को शासन-व्यवस्था में हस्तक्षेप करने से रोका।

अलाउद्दीन का राजत्व सिद्धान्त

(1) राजा का दैवी शक्ति में विश्वास
(2) धर्मनिरपेक्ष शासन
(3) कठोर दण्ड की व्यवस्था
(4) सुल्तान की सर्वोच्च शक्ति में विश्वास।

(3) कठोर दण्ड की व्यवस्था—अलाउद्दीन के शासनकाल में दण्ड की व्यवस्था बड़ी कठोर, परन्तु नैतिक आदर्शों से युक्त थी। उसके राज्य में अपराध करने पर अपराधी के सम्पूर्ण परिवार तथा कभी-कभी सम्पूर्ण वंश तक को समाप्त कर दिया जाता था। अंग-भंग का भी दण्ड दिया जाता था। यातनाएँ देकर अपराध स्वीकार करवाना और फिर उन्हें कैदखाने में डाल देना बहुत साधारण-सी बात होती थी। कम तौलने वाले व्यक्तियों के शरीर से उतनी ही मात्रा में माँस काट लिया जाता था, जितना वे कम तौलते थे। अलाउद्दीन की बहन के पुत्रों, बदायूँ के सूबेदार मलिक उमर और अवध के सूबेदार मंगू खाँ ने उसके विरुद्ध विद्रोह किया था। सुल्तान ने इस विद्रोह की सजा के रूप में उन्हें मृत्यु दण्ड दिया था। इस प्रकार, सुल्तान के लिए अमीर सरदार, परिवार के सदस्य और सामान्य व्यक्ति न्याय की दृष्टि से समान थे।

(4) सुल्तान की सर्वोच्च शक्ति में विश्वास—अलाउद्दीन फ्रांस के लुई चौदहवें (Louis XIV) के समान सम्राट की सर्वोच्च शक्ति में विश्वास रखता था। वह गुलामों के प्रति किसी भी प्रकार का मानवीयतापूर्ण व्यवहार करने के स्थान पर उन्हें मात्र गुलाम ही समझता था और उन्हें अपनी इच्छानुसार पदासीन अथवा पदच्युत करता था। वह शासन में उनका हस्तक्षेप भी स्वीकार नहीं करता था।

अलाउद्दीन के सैन्य सुधार

अलाउद्दीन ने अपने शासनकाल में सैन्य व्यवस्था की ओर अत्यधिक ध्यान दिया, क्योंकि उसकी शासन सत्ता 'तलवार की शक्ति' पर आधारित थी। उसने परम्परागत चली आ रही त्रुटिपूर्ण सैन्य व्यवस्था में अनेक सुधार भी किए, जो निम्न प्रकार थे—

अलाउद्दीन के सैन्य-सुधार

(1) स्थायी सेना का संगठन
(2) सैनिकों की भर्ती एवं निरीक्षण
(3) सैनिकों को नकद वेतन देने की व्यवस्था
(4) दुर्ग एवं गुप्तचर विभाग
(5) सेना का सर्वोच्च अधिकारी
(6) सैनिकों की सुख-सुविधाओं में वृद्धि।

(1) स्थायी सेना का संगठन—अलाउद्दीन ने अपनी शासन-व्यवस्था सुदृढ़ करने, मंगोल आक्रमणों को रोकने और साम्राज्य निर्माण के उद्देश्यों से एक स्थायी सेना का गठन किया था। उसकी सेना में पर्याप्त संख्या में अश्वारोही एवं पैदल योद्धा थे। इतिहासकार हिन्दू बेग फरिश्ता के अनुसार, "अलाउद्दीन खिलजी पहला शासक था, जिसने स्थायी सेना की नींव डाली। उसकी स्थायी सेना में 4,75,000 घुड़सवार थे, जो भली प्रकार सुसज्जित थे।" उसने अनेक अच्छी नस्लों के घोड़ों को खरीदा, जिससे कि सेना में बीमार व दुर्बल घोड़े न रहें, इस उद्देश्य से उसने अपनी घुड़सवार सेना में 'दाग-व्यवस्था' भी प्रचलित की थी।

(2) सैनिकों की भर्ती एवं निरीक्षण—सुल्तान स्वयं सैनिकों की भर्ती करता था, जिससे सेना में योग्य व्यक्ति ही भर्ती हों। वह सैनिकों की स्थिति का स्वयं समय-समय पर निरीक्षण करता था। सुल्तान ने रजिस्टर में सैनिकों की हुलिया लिखने की भी व्यवस्था की थी, ताकि बाहर का कोई व्यक्ति आकर किसी प्रकार की छलपूर्ण नीति को प्रयुक्त न करे और अयोग्य व्यक्ति सेना में भर्ती न हो सकें। सैन्य प्रबन्ध के लिए सेनामन्त्री—दीवान-ए-आरिज नामक वजीर (मन्त्री) की नियुक्ति की गई थी।

(3) सैनिकों को नकद वेतन देने की व्यवस्था—अलाउद्दीन ने अपने सैनिकों को नकद वेतन देने की भी व्यवस्था की थी। उससे पूर्व सैनिकों को नकद वेतन नहीं दिया जाता था, वरन् वेतन के रूप में सैनिकों को जागीरें दी जाती थीं। उसके समय में सैनिकों को 238 टका प्रति वर्ष वेतन मिलता था। जो सैनिक दो घोड़े रखता था, उसे 78 टका अतिरिक्त वेतन मिलता था।

(4) दुर्ग एवं गुप्तचर विभाग—अलाउद्दीन ने अनेक दुर्गों का निर्माण करवाया और उनमें योग्य एवं अनुभवी अधिकारियों की नियुक्ति की, जिससे सीमान्त प्रदेशों पर होने वाले मंगोलों के आक्रमणों से उसे मुक्ति मिल गई। इसके साथ ही उसने एक विशेष गुप्तचर विभाग की स्थापना भी की जो राज्य की छोटी-से-छोटी घटना एवं सरदारों तथा अमीरों के षड्यन्त्र की सूचना सुल्तान को देता था।

(5) सेना का सर्वोच्च अधिकारी—सुल्तान ने सेना में अनेक उच्चाधिकारी नियुक्त किए थे, किन्तु वह स्वयं सेना का सर्वोच्च अधिकारी था। वह स्वयं ही युद्धों में जाता था और युद्ध-स्थल में सेना का संचालन-कार्य सँभालता था।

(6) सैनिकों की सुख-सुविधाओं में वृद्धि—वह सैनिकों की सुख-सुविधाओं का बहुत ध्यान रखता था। इसके लिए उसने नियम बनाए थे और उन्हें अपने राज्य में दृढ़ता से लागू किया था। वह उनके भोजन एवं वस्त्रों की ओर पर्याप्त ध्यान देता तथा युद्ध में विजयी सैनिकों को पुरस्कार एवं उन्नति देकर उन्हें प्रोत्साहित भी करता था।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि अलाउद्दीन के सैनिक और प्रशासकीय सुधारों के परिणामस्वरूप उसके साम्राज्य की स्थिति बड़ी सुदृढ़ हो गई थी। प्रो० एस० आर० शर्मा ने लिखा है, "अलाउद्दीन की शासन-व्यवस्था ने ऐसी नींव प्रदान की, जिस पर समस्त आगामी मुस्लिम शासकों ने भारत में अपने शासन-प्रबन्ध के भवनों का निर्माण किया।" वस्तुतः यह एक निर्विवाद तथ्य है कि **अलाउद्दीन खिलजी एक जन्मजात सैनिक एवं प्रशासक था।**

(नोट—अलाउद्दीन के आर्थिक सुधारों का अध्ययन करने हेतु प्रश्न संख्या 8 का अवलोकन कीजिए।)

प्रश्न 8—अलाउद्दीन खिलजी के आर्थिक सुधारों का उल्लेख करते हुए उसकी बाजार नियन्त्रण सम्बन्धी नीतियों पर प्रकाश डालिए।

अथवा **"अलाउद्दीन खिलजी एक महान् सुधारक था।" अलाउद्दीन के आर्थिक सुधारों और नियन्त्रण के सन्दर्भ में इस कथन की पुष्टि कीजिए।**

अथवा **"अलाउद्दीन खिलजी की आर्थिक नीति उसकी साम्राज्यवादी आकांक्षाओं का प्रतिफल थी।" विवेचना कीजिए।** *(1990)*

अथवा **"अलाउद्दीन अपनी आर्थिक नीति एवं बाजार व्यवस्था के कारण प्रख्यात है।" समीक्षा कीजिए।** *(1992, 94)*

अथवा **अलाउद्दीन खिलजी के आर्थिक सुधारों का विश्लेषण कीजिए।** *(1993, 94)*

अथवा **अलाउद्दीन खिलजी की बाजार नीति पर एक निबन्ध लिखिए।** *(1994)*

अथवा **अलाउद्दीन खिलजी की बाजार नियन्त्रण-व्यवस्था का वर्णन कीजिए।** *(1995)*

अथवा **अलाउद्दीन खिलजी की आर्थिक नीति की विवेचना कीजिए।** *(1991, 97)*

उत्तर—

अलाउद्दीन की बाजार-नियन्त्रण नीति

अलाउद्दीन खिलजी सल्तनत काल के बादशाहों में अपने आर्थिक सुधारों के लिए विख्यात है। अलाउद्दीन के इन सुधारों के सम्बन्ध में इतिहासकार बरनी का कथन है कि, "अलाउद्दीन का मूल्य नियन्त्रण

शाही सैनिकों के लिए और राजकोष की स्थिति को मजबूत बनाने के लिए था।" लेकिन खैरुल मजलिस के लेखक 'नासिरुद्दीन' इस मत से सहमत नहीं हैं। उनका मत है, "अलाउद्दीन का बाजार नियन्त्रण उसकी परोपकार की भावना का परिणाम था।"

संक्षेप में, अलाउद्दीन खिलजी के बाजार नियन्त्रण की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित थीं—

(1) वस्तुओं के मूल्य निश्चित करना—सुल्तान ने दैनिक जीवन की आवश्यक वस्तुओं के मूल्य निश्चित कर दिए थे। छोटी-से-छोटी दैनिक उपभोग की वस्तुओं—सब्जी, मांस, मछली, सुई-धागा, रंग-कंघा आदि तक का मूल्य-निर्धारण भी उसके द्वारा किया गया था। दुकानदारों को वस्तुओं के मूल्य की सूची टाँगना भी अनिवार्य कर दिया गया था, जिससे कि वे किसी भी वस्तु को निश्चित मूल्य से अधिक पर बेचकर जनता एवं सैनिकों को न ठग सकें। प्रमुख खाद्यान्नों; जैसे—गेहूँ, चावल, दालों आदि के भी मूल्य निश्चित कर दिए गए थे। वस्तुओं के मूल्य में परिवर्तन सुल्तान की आज्ञा के बिना नहीं किया जा सकता था। मुद्रा के रूप में उस समय जीतल का प्रचलन था। उसने गुलामों के मूल्य भी निश्चित कर दिए थे।

(2) वस्तुओं की पूर्ति की व्यवस्था—वस्तुओं के मूल्य नियन्त्रण के बाद उसने यह सोचा कि बाजार में प्रत्येक वस्तु इतनी मात्रा में अवश्य होनी चाहिए कि वह वस्तु लोगों को उनकी आवश्यकतानुसार मिल सके। अतः उसने यह आज्ञा प्रसारित की कि सरकारी व्यापारियों के अतिरिक्त कोई अन्य व्यक्ति किसानों से अनाज नहीं खरीद सकेगा। इस अनाज को नियन्त्रित मूल्य पर (राशनिंग पद्धति से) बाजारों में बिकवाया जाता था। इसी प्रकार, उसने दैनिक जीवन की सभी आवश्यक आवश्यकताओं की पूर्ति करने की समुचित व्यवस्था की थी।

अलाउद्दीन की बाजार-नियन्त्रण नीति

(1) वस्तुओं के मूल्य निश्चित करना
(2) वस्तुओं की पूर्ति की व्यवस्था
(3) वितरण की व्यवस्था
(4) योग्य कर्मचारियों की नियुक्ति
(5) कठोर दण्ड की व्यवस्था।

(3) वितरण की व्यवस्था—दिल्ली में पृथक्-पृथक् प्रकार के बाजारों की व्यवस्था की गई थी। इन बाजारों में विभिन्न वस्तुएँ मिलती थीं। सभी व्यापारियों को, जो बाजार में सामान लाते थे, अपने नाम रजिस्टर में लिखवाने पड़ते थे। बेचने वालों को उसी मात्रा में वस्तुएँ दी जाती थीं, जितनी वस्तुओं का परमिट उन्हें मिला हुआ होता था। आम जनता को सभी वस्तुएँ सस्ते मूल्य पर प्राप्त हो जाती थीं। इस प्रकार, उसके शासनकाल में वस्तुएँ सस्ती और सरलता से उपलब्ध होती थीं।

(4) योग्य कर्मचारियों की नियुक्ति—बाजार भाव के नियन्त्रण हेतु सुल्तान ने बड़े ही योग्य एवं ईमानदार पदाधिकारियों को नियुक्त किया। बाजार का सर्वोच्च अधिकारी **'दीवान-ए-रियासत'** होता था। इसके नीचे विभिन्न प्रकार के बाजारों के लिए **'शहना-ए-मण्डी'** नामक अधिकारियों की नियुक्ति की गई थी। सबसे निम्न पद पर **'बरीद'** होता था, जो बाजार का निरीक्षण करता था और निर्धारित मूल्यों को लागू करता था।

सुल्तान के राजभवन में कुछ दास बालक होते थे, जो वेश बदलकर बाजार में वस्तुएँ खरीदने जाया करते थे। इनकी सूचनाएँ बड़ी विश्वसनीय होती थीं।

इसके अतिरिक्त, सुल्तान ने माप-तौल के निरीक्षण के लिए कुछ निरीक्षक भी नियुक्त किए थे। जो व्यापारी कम तौलते थे, दण्डस्वरूप उतना ही मांस उनके शरीर से काट लिया जाता था, इसलिए राज्य के व्यापारी बेईमानी करने का साहस नहीं करते थे।

(5) कठोर दण्ड की व्यवस्था—सुल्तान ने अपनी बाजार नीति को सफल बनाने के लिए कठोर नियमों का निर्धारण किया था। इतिहासकार बरनी ने इस ओर संकेत करते हुए लिखा है, "व्यापारी लोग 72 वर्गों में सर्वाधिक झूठे थे। दलाल क्रेता और विक्रेता दोनों को ही ठगते थे। ऊँचे मूल्यों पर माल बेचना व तौल में कम देना उनकी सामान्य आदत थी। इस छल को समाप्त करवाने और आदेशों का पालन करवाने के लिए सुल्तान ने कठोर दण्ड देने का आदेश दिया। याकूब (बाजार अधिकारी) की निर्दयता की चर्चा चारों ओर थी। वह व्यापारियों को खुलेआम कोड़े मारता था।"[1]

---

1. समकालीन इतिहासकार बरनी ने दीवाने रियासत 'याकूब' और शहना-ए-मण्डी 'मलिक मकबूल' की क्रूरताओं और बर्बरता का विस्तृत विवरण 'तारीखे फिरोजशाही' में दिया है।

बाजार नियन्त्रण का परिणाम

अलाउद्दीन की इस बाजार व्यवस्था से सुल्तान और प्रजा दोनों को ही व्यावहारिक दृष्टि से कई लाभ हुए। एक ओर प्रजा अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ खरीदकर सुखपूर्वक रहने लगी और सुल्तान के निरंकुश होते हुए भी उसकी प्रशंसा करने लगी। दूसरी ओर, राजकोष में धन की वृद्धि होने लगी जिसके परिणामस्वरूप अलाउद्दीन अपनी स्थायी एवं विशाल सेना का समुचित प्रबन्ध करने में सफल हो सका।

लेकिन इस व्यवस्था से व्यापारी एवं दलाल असन्तुष्ट रहने लगे और वे सक्रिय व्यापार के प्रति उदासीन हो गए जिससे व्यापार एवं कृषि की अवनति प्रारम्भ हो गई।

अलाउद्दीन के आर्थिक सुधार

अलाउद्दीन दिल्ली के सुल्तानों में सबसे अधिक योग्य शासक था। उसने राज्य की आर्थिक स्थिति सुधारने तथा व्यय की पूर्ति हेतु राजकोष में अधिकाधिक धन का एकत्र करना आवश्यक समझा। अतः उसने इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए निम्नलिखित आर्थिक सुधार किए—

(1) सम्पत्ति को जब्त करना—सुल्तान ने सोचा कि जिस उपाय से भी सम्भव हो, अमीरों, जागीरदारों, हिन्दू जमींदारों, कर-वसूल करने वाले अधिकारियों एवं व्यापारियों आदि से उनकी एकत्र की गई धन-सम्पत्ति को छीन कर उसे राज्य की सम्पत्ति बना दिया जाए। अतः उसने आदेश दिया कि सभी अमीर व्यक्तियों से उनकी भूमि तथा दान में दी गई समस्त भूमि जब्त कर ली जाए। फलस्वरूप सारी भूमि जब्त कर ली गई, इससे लगान न मिलने पर राज्य को जो हानि होती थी, वह समाप्त हो गई। साथ ही राजकोष में नया लगान आने से धन की वृद्धि होने लगी। इस सन्दर्भ में यह बात स्मरणीय है कि सामान्य किसानों से भूमि नहीं ली गई थी।

अलाउद्दीन के आर्थिक सुधार
(1) सम्पत्ति को जब्त करना
(2) करों में वृद्धि
(3) कर अधिकारियों पर नियन्त्रण।

(2) करों में वृद्धि—सुल्तान ने कर वसूल करने वालों को आज्ञा दी कि वे अधिक सजगता से कर वसूल करें। परिणामस्वरूप राजकोष अपार धन से भर गया। बरनी के अनुसार, "प्रचुर मात्रा में धन-सम्पत्ति अधिकतर लोगों के पास शेष न रही, केवल कुछ बड़े-बड़े पदाधिकारियों, मुल्तानियों (व्यापारियों) तथा साहुओं के पास कुछ हजार तनके (स्वर्ण-मुद्राएँ) रह गए। समस्त प्रजा विद्रोह को भूलकर पेट की चिन्ता में लग गई।" अलाउद्दीन ने गृह कर, खिराज, चराई-कर, करही-कर, जजिया, खम्स, जकात व आयात-निर्यात कर लगाकर जनसाधारण को निर्धन बना दिया और हिन्दुओं की दशा तो बड़ी ही दयनीय हो गई।

(3) कर अधिकारियों पर नियन्त्रण—अलाउद्दीन ने लगान और राजस्व वसूल करने के लिए अनेक नवीन अधिकारियों की नियुक्ति की। कर विभाग का प्रमुख अधिकारी 'दीवान-ए-मुस्तखराज' कहलाता था। इसकी अधीनता में आमिल, मुशरिफ, गुमाश्ता आदि कर्मचारी कर वसूल किया करते थे। कर अधिकारियों की रिश्वत और बेईमानी को रोकने के लिए उसने कठोर कर वसूल करने वाले अधिकारियों के वेतन में वृद्धि की और बेईमानी करने वाले अधिकारियों को कठोर दण्ड देने की व्यवस्था की।

निष्कर्ष—अलाउद्दीन की कठोर आर्थिक व्यवस्था का दुष्परिणाम यह हुआ था कि उसके द्वारा लगाए गए भारी करों के फलस्वरूप किसानों और निर्धन वर्ग की स्थिति अत्यधिक दयनीय हो गई। फिर भी अलाउद्दीन ने कर-अधिकारियों की बेईमानी और दुष्टताओं से जनता को राहत पहुँचाई थी। इसलिए कुछ विद्वानों के अनुसार, "अलाउद्दीन की आर्थिक व्यवस्था उसकी साम्राज्यवादी नीति का परिणाम था।" अथवा "अलाउद्दीन खिलजी की आर्थिक नीति उसकी साम्राज्यवादी आकांक्षाओं का प्रतिफल थी।" जो भी हो, इतना स्पष्ट है कि, "अलाउद्दीन अपनी आर्थिक नीति एवं बाजार व्यवस्था के कारण प्रख्यात है।" वह निस्सन्देह "एक महान् सुधारक था।" उसके आर्थिक सुधारों को देखते हुए इतिहासकारों ने "अलाउद्दीन को एक राजनीतिक अर्थशास्त्री माना है।"

प्रश्न 9—ग्यासुद्दीन तुगलक की मृत्यु किन परिस्थितियों में हुई ? क्या राजकुमार जूनाखाँ (बाद में मुहम्मद बिन तुगलक) इस हत्या के लिए उत्तरदायी था ? *(1999)*

उत्तर—

सुल्तान तुगलक की मृत्यु

सुल्तान ग्यासुद्दीन तुगलक की मृत्यु बड़ी ही रहस्यमय परिस्थितियों में हुई थी। जब सुल्तान तिरहुत करके लौट रहा था, मार्ग में अफगानपुर में जूनाखाँ (मुहम्मद बिन तुगलक) ने एक महल उसके स्वागत के लिए तीन दिन में बनवाया। सुल्तान उस महल में ठहरा और महल की छत गिर जाने से सुल्तान उसके नीचे दबकर मर गया। अतः इस प्रकार सुल्तान के मर जाने में जूनाखाँ का क्या हाथ था ? हाथ था या नहीं—इस प्रश्न पर इतिहासकारों में भारी मतभेद है। इस प्रश्न के सम्बन्ध में दो विचारधाराएँ प्रचलित हैं। कुछ इतिहासकार सुल्तान की मृत्यु को जूनाखाँ के षड्यन्त्र का परिणाम मानते हैं और कुछ विद्वान जूनाखाँ को निर्दोष ठहराते हैं। इस सम्बन्ध में किसी निष्कर्ष पर पहुँचने से पूर्व हमें सुल्तान की मृत्यु की घटना का विस्तृत ज्ञान प्राप्त करना अत्यन्त आवश्यक है। यह घटना इस प्रकार घटित हुई थी—

"तिरहुत विजय के उपरान्त सुल्तान तुगलकशाह, जो जूनाखाँ की संदिग्ध गतिविधियों के समाचारों और ज्योतिषियों की दिल्ली न पहुँचने की भविष्यवाणियों से बहुत रुष्ट था, बड़ी तेजी के साथ दिल्ली की ओर बढ़ा। युवराज जूनाखाँ (मुहम्मद-बिन-तुगलक या उलूक खाँ) ने सुल्तान के आगमन का समाचार पाकर अहमद आयाज द्वारा अफगानपुर (दिल्ली से पाँच-छः मील दूर) में तीन दिन के अन्दर लकड़ी का एक महल उसका स्वागत करने के लिए बनवाया। जब सुल्तान महल तक आ पहुँचा युवराज दरबारी अमीरों और कुछ अधिकारियों के साथ उसकी शुभकामनाएँ देने के लिए महल में आया। सुल्तान एक रात के लिए महल में ठहर गया। जब भोजन समाप्त हुआ और अधिकारीगण हाथ धोने के लिए बाहर निकले, तो युवराज ने सुल्तान से हाथियों की परेड देखने की प्रार्थना की। सुल्तान ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली और हाथियों की परेड प्रारम्भ हो गई। इसी समय महल की छत गिर गई और सुल्तान अपने छोटे पुत्र मुहम्मद तथा अन्य पाँच व्यक्तियों के साथ दबकर मर गया। याहिया-बिन-अहमद के अनुसार फरवरी-मार्च 1325 ई० में सुल्तान तुगलक शाह की मृत्यु हुई।"

सुल्तान तुगलकशाह की मृत्यु के सम्बन्ध में दो मत प्रचलित हैं—

(1) डॉ० आगा मेंहदी हुसैन ने समकालीन स्रोतों के अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला है कि इमारत बिजली गिरने के कारण धराशायी हुई, और जिसके नीचे सुल्तान दबकर मर गया, युवराज अपने पिता की मृत्यु के लिए उत्तरदायी नहीं था।

(2) डॉ० ईश्वरी प्रसाद, वूल्जले हेग तथा डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव आदि इतिहासकारों ने जूना खाँ को सुल्तान की मृत्यु का कारण बताया है और उसे पितृहन्ता की संज्ञा दी है।

मुस्लिम इतिहासकारों के विवरणों की आलोचनात्मक समीक्षा

किसी निश्चित निर्णय पर पहुँचने के लिए हमें उस समय के इतिहासकारों के विवरणों की आलोचनात्मक समीक्षा करनी आवश्यक है।

(1) समकालीन मुस्लिम इतिहासकार बरनी लिखता है कि, "जिस समय सुल्तान तुगलकशाह विशेष भोजन मँगवाकर भोजन कर चुका और मलिक तथा अमीर हाथ धोने के लिए बाहर निकले तो दैवी विपत्ति का वज्र पृथ्वी निवासियों पर गिरा। सायवान की छत जिसके नीचे सुल्तान बैठा था, अचानक सुल्तान के ऊपर गिर पड़ी और सुल्तान तथा पाँच-छः अन्य मनुष्य छत के नीचे दबकर स्वर्गवासी हो गए।"

(2) इब्नेबतूता का मत है कि, "राजकुमार मुहम्मद तुगलक सुल्तान की मृत्यु का कारण बना, क्योंकि राजकुमार शेख निजामुद्दीन औलिया का विशेष सम्मान करता था और उसका शिष्य भी बन चुका था। लेकिन सुल्तान को उसका यह कार्य पसन्द नहीं था। राजकुमार ने बहुत से गुलामों को खरीदकर अपार धन नष्ट किया था। सुल्तान अपने दूसरे पुत्र को अधिक प्यार करता था, जिससे मुहम्मद तुगलक को यह भय था कि कहीं वह उसे ही अपना उत्तराधिकारी न घोषित कर दे।"

(3) याहिया बिन अहमद ने बरनी के मत का समर्थन किया है, परन्तु वह बिजली गिरने का उल्लेख नहीं करता।

(4) अबुल फजल; बरनी के वर्णन के आधार पर मुहम्मद तुगलक को निर्दोष बताता है, परन्तु वह महल के जल्दी बनने तथा सुल्तान को प्रसन्न करने की उसकी लालसा को देखकर जूना खाँ पर सन्देह भी जाहिर करता है।

(5) निजामुद्दीन अहमद कहता है कि सुल्तान की मृत्यु शेख निजामुद्दीन औलिया तथा जूना खाँ के षड्यन्त्र का परिणाम थी, क्योंकि सुल्तान तथा शेख औलिया के सम्बन्ध तनावपूर्ण थे। सुल्तान ने शेख को अपने आने से पूर्व दिल्ली छोड़ने की आज्ञा दी थी। अहमद यह भी लिखता है कि अनावश्यक होते हुए भी महल का इतनी जल्दी बनवाया जाना यह सिद्ध करता है कि जूना खाँ पितृ घातक था।

निजामुद्दीन अहमद तारीख-ए-फिरोजशाही के वर्णन को सत्य नहीं मानता, क्योंकि बरनी ने यह ग्रन्थ फिरोज तुगलक के शासनकाल में पूरा किया था, जो कि मुहम्मद तुगलक का विशेष सम्मान करता था और शायद इसीलिए बरनी ने संदिग्ध वर्णन किया था।

(6) फरिश्ता और हाजी-उद-दबीर इस बात का समर्थन करते हैं कि सुल्तान ग्यासुद्दीन और शेख निजामुद्दीन औलिया के सम्बन्ध खराब थे।

(7) सन् 1593 ई० में लिखी गई हफ्त इकलीम नामक पुस्तक बिजली गिरने का कोई वर्णन नहीं करती तथा उसकी भाषा से ऐसा प्रतीत होता है कि सुल्तान की मृत्यु षड्यन्त्र का ही परिणाम थी।

(8) मुल्ला अब्दुल कादिर बदायूँनी ने तारीख-ए-मुबारकशाही और तबकात-ए-अकबरी के आधार पर इस घटना का उल्लेख किया है। वह लिखता है कि, "हमें इस तथ्य को नहीं भूलना चाहिए कि ऐसा महल जिसका निर्माण अनावश्यक था, सन्देह उत्पन्न करता है कि उलूक खाँ ने यह महल बिना नींव का बनवाया, जैसा कि बाद में अफवाह फैली।"

(9) लेकिन तारीख-ए-फरिश्ता का लेखक इस बात का खण्डन करते हुए कहता है कि यह सत्य है कि राजकुमार कुछ देर तक सुल्तान के साथ रहा और जैसे ही उसने दालान छोड़ा महल की छत गिर पड़ी, यह केवल आकस्मिक घटना थी। इसी मत को स्वीकार करके डॉ० आगा मेंहदी हुसैन मुहम्मद तुगलक को निर्दोष सिद्ध करते हैं। परन्तु आगे चलकर वह अपने ही कथन पर अविश्वास करते हुए लिखते हैं कि, "ईश्वर जानता है कि सत्य क्या है?"

(10) हुसाम खाँ लिखता है कि, "जब सुल्तान पेवेलियन में था तो उसे हाथी लाने की आज्ञा दी और जैसे ही हाथी आया, इमारत गिर पड़ी और सुल्तान मर गया।"

एक अन्य स्थान पर हुसाम खाँ शेख औलिया और ग्यासुद्दीन के तनावपूर्ण सम्बन्धों का उल्लेख करता है।

निष्कर्ष—उपर्युक्त मुस्लिम इतिहासकारों के वर्णनों के आधार पर हमें यह निष्कर्ष निकालना है कि—

(क) सुल्तान की मृत्यु किसी षड्यन्त्र का परिणाम थी अथवा

(ख) बिजली गिरने से उसकी मृत्यु हुई थी।

मुस्लिम इतिहासकारों के वर्णनों में निम्न प्रकार का विरोधाभास दृष्टिगोचर होता है—

(1) कुछ मुस्लिम इतिहासकारों के वर्णनों से ऐसा प्रतीत होता है कि शेख निजामुद्दीन औलिया को सुल्तान के दिल्ली आगमन का पूर्व ज्ञान हो चुका था।

(2) लेकिन बरनी का आलंकारिक वर्णन बड़ा सन्देह उत्पन्न करता है, क्योंकि वह लिखता है कि, "दैवी विपत्ति का वज्र पृथ्वी पर गिरा।"

परन्तु बहार टैक्स्ट (Bahar Taxt) का जो अनुवाद इलियट तथा डाउसन ने किया है, वह गलत प्रतीत होता है क्योंकि वे लिखते हैं कि, "आकाश से जमीन पर एक बिजली गिरी।"

यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि यदि बरनी बिजली गिरने से ही सुल्तान की मृत्यु को बताना चाहता, तो उसे यह लिखना चाहिए था कि, "आकाश से दुर्भाग्य की बिजली गिरी।"

इस प्रकार बरनी का आलंकारिक वर्णन एक सन्देह उत्पन्न करता है।

(3) बरनी सुल्तान की मृत्यु का वर्णन तो करता है, परन्तु वह शेख की कहानी की कोई चर्चा ही नहीं करता। यह उसके वर्णन की एक भारी कमी है।

(4) यह भी सम्भव है कि बरनी शेख निज़ामुद्दीन औलिया का शिष्य होने के कारण उसके चरित्र को स्वच्छ ही रखना चाहता हो। इसलिए उसने इस घटना से शेख को बिल्कुल अलग रखा हो।

(5) यदि बरनी ने यह अनुभव किया होता कि बिजली गिरने से ही सुल्तान की मृत्यु हुई थी तो वह कदापि अपना वर्णन आलंकारिक भाषा में न लिखता।

(6) हाजी उद-दबीर बिजली गिरने का स्पष्ट उल्लेख करता है, परन्तु उसके वर्णन करने की पूरी नकल है और उसने भी वही गलती की है जो कि इलियट ने अपने अनुवाद में की है। इसी कारण उसका वर्णन भी असंगत प्रतीत होता है।

(7) शेख निज़ामुद्दीन औलिया की जीवनी का लेखक बताता है कि बिजली गिरी थी, परन्तु वह शेख का सम्बन्धी था, इस कारण उसका कथन विश्वसनीय प्रतीत नहीं होता है। इसके अतिरिक्त वह सुल्तान द्वारा शेख को दिल्ली छोड़ने की आज्ञा का तो वर्णन करता है, किन्तु शेष कहानी का कोई वर्णन नहीं करता है। यह बात भी सन्देह का आधार रखती है।

(8) तारीख-ए-मुबारकशाही का लेखक बिन अहमद लिखता है कि सुल्तान की मृत्यु फरवरी-मार्च, 1315 ई० में हुई थी। इन महीनों में बिजली गिरना असम्भव ही है। फिर भी यदि यह मान भी लिया जाए कि बिजली गिरी थी तो उसका उल्लेख अन्य लेखकों ने क्यों नहीं किया।

इस प्रकार बिजली गिरने की बात बड़ी संदिग्ध प्रतीत होती है।

(9) जहाँ तक इब्नेबतूता के वर्णन का प्रश्न है, वह एक प्रत्यक्षदर्शी गवाह नहीं था, परन्तु यदि बिजली गिरने से ही सुल्तान की मृत्यु हुई होती तो वह उसी घटना का मनगढ़न्त वर्णन क्यों करता और यदि करता भी तो उसे बड़ी कठिनाई होती।

इब्नेबतूता जब भारत आया तो उसने शेख रुकनुद्दीन से सुल्तान की मृत्यु की कथा सुनी, जो इस घटना का प्रत्यक्षदर्शी गवाह था। शेख रुकनुद्दीन को झूठी कहानी इब्नेबतूता को सुनाने का कोई उद्देश्य भी नहीं था, क्योंकि वह मुहम्मद तुगलक से 100 ग्रामों की जागीर भी पा चुका था।

(10) बाद के लगभग सभी इतिहासकारों ने इब्नेबतूता के वर्णन को ही सही माना है तथा शेख और ग्यासुद्दीन के सम्बन्ध तनावपूर्ण थे, इस बात को भी स्वीकार किया है।

(11) गुलजार-ए-अबरार का लेखक, जिसने अपनी रचना 1611 ई० से 1613 ई० के मध्य पूरी की थी, लिखता है कि बंगाल विजय के बाद सुल्तान 725 हिजरी में शाही खेमे में आया था और शेख रुकनुद्दीन भी उसके साथ था।

इस वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि शेख रुकनुद्दीन को इस षड्यन्त्र की पूरी जानकारी थी। अतः यहाँ पर प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि जब शेख को इस षड्यन्त्र का पूर्व ज्ञान था तो उसने सुल्तान को क्यों सावधान नहीं किया, जबकि सुल्तान उसका संरक्षक था। इस प्रश्न के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि शायद शेख को ग्यासुद्दीन के शासनकाल के बाद मुहम्मद तुगलक से अधिक लाभ प्राप्त होने की आशा थी। इस बात की पुष्टि इस बात से भी हो जाती है कि मुहम्मद तुगलक ने शेख को 100 गाँवों की जागीर इनाम में दी थी।

उपर्युक्त तर्कों से दो बातें सिद्ध हो जाती हैं—

(i) शेख रुकनुद्दीन ने जो कहानी इब्नेबतूता को सुनाई थी, वह सत्य थी।

(ii) इब्नेबतूता का विवरण निष्पक्ष है, क्योंकि उसने अपना वर्णन भारत से बाहर लिखा था।

अन्त में हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि डॉ० ईश्वरी प्रसाद का मत अधिक न्यायसंगत और मानने योग्य है कि सुल्तान ग्यासुद्दीन की मृत्यु शेख निज़ामुद्दीन औलिया और जूनाखाँ के एक सुनियोजित षड्यन्त्र का परिणाम थी।

इस मत के समर्थन में हम निम्नलिखित तर्क भी दे सकते हैं—

(i) जूनाखाँ के द्वारा इतनी शीघ्रता के साथ महल बनवाया जाना एक सन्देह उत्पन्न करता है।

(ii) यदि इमारत बिजली गिरने के कारण धराशायी हुई होती तो अहमद आयाज को इस बात के लिए दण्ड दिया जाता कि उसने इतनी जल्दी ऐसी इमारत क्यों बनाई जो कि अचानक धराशायी हो गई।

(iii) भोजन के उपरान्त राजकुमार, शेख तथा अन्य अधिकारियों का बड़ी शीघ्रता के साथ दालान से बाहर निकल जाना।

(iv) जूनाखाँ ने उसी समय सुल्तान से हाथियों की परेड कराने की इच्छा क्यों प्रकट की?

(v) बरनी ने इस घटना का वर्णन आलंकारिक भाषा में क्यों किया?

(vi) मुहम्मद तुगलक के शेख की मृत्यु के बाद भी उसके शिष्यों को 12 परगने उसके मठ के निर्माण हेतु प्रदान किए।

इन तर्कों से यह सिद्ध हो जाता है कि जूनाखाँ का अपने पिता को मारने में हाथ अवश्य था। यहाँ पर एक प्रश्न यह भी उठता है कि जब जूनाखाँ ने पिता की हत्या करके बलात् गद्दी प्राप्त कर ली थी तो उसके अन्य भाइयों तथा अमीरों ने उसके इस अधिकार को बिना किसी विरोध के क्यों स्वीकार कर लिया था?

इस प्रश्न के उत्तर में यही कहा जा सकता है कि—

(i) मुहम्मद तुगलक ही अपने भाइयों में सबसे अधिक योग्य और बुद्धिमान था।

(ii) सुल्तान ग्यासुद्दीन ने उसे अपना उत्तराधिकारी पहले से ही घोषित कर रखा था।

(iii) मुहम्मद तुगलक ने अपने भाइयों को उच्च पद देकर सन्तुष्ट कर दिया था।

(iv) मुहम्मद तुगलक का विरोध न होने का एक कारण यह भी हो सकता है कि लोग लालच में आकर किसी भी व्यक्ति की आधारभूत बुराइयों को भूलकर उसका समर्थन करना प्रारम्भ कर देते हैं, क्योंकि अलाउद्दीन खिलजी ने तो खुलेआम अपने चांचा को मारकर गद्दी पर अधिकार कर लिया था और दिल्ली की जनता में धन लुटाकर समर्थन प्राप्त कर लिया था।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि मुहम्मद तुगलक अपने पिता की मृत्यु के लिए उत्तरदायी था अथवा वह पितृहन्ता था।

प्रश्न 10—मुहम्मद तुगलक की प्रमुख योजनाओं का उल्लेख कीजिए। उसकी असफलता के क्या कारण थे? *(M. Imp.)*

अथवा **मुहम्मद तुगलक की असफलताओं के कारणों की समीक्षा कीजिए।**

अथवा **मुहम्मद तुगलक की प्रमुख योजनाओं का वर्णन कीजिए।** *(1990, 94)*

अथवा **मुहम्मद तुगलक की राजधानी परिवर्तन तथा मुद्रा सुधार की योजनाओं का आलोचनात्मक वर्णन कीजिए।** *(1990, 91, 94)*

अथवा **सुल्तान मुहम्मद-बिन-तुगलक की महत्वाकांक्षी योजनाओं का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए और उनकी असफलता के कारण बताइए।** *(V. Imp.)*

अथवा **"मुहम्मद तुगलक परिस्थितियों का शिकार था।" उसकी योजनाओं के आधार पर इस कथन का परीक्षण कीजिए।** *(1995)*

अथवा **मुहम्मद तुगलक के व्यक्तित्व और कार्यों का मूल्यांकन कीजिए।**

अथवा **मुहम्मद तुगलक की असफलता के कारणों का विवेचन कीजिए।** *(1991)*

अथवा **मुहम्मद तुगलक की चार प्रमुख योजनाओं का उल्लेख कीजिए।** *(1991)*

अथवा **मुहम्मद तुगलक की योजनाओं एवं चरित्र पर प्रकाश डालिए।** *(1995)*

अथवा **मुहम्मद तुगलक की राजधानी परिवर्तन योजना पर प्रकाश डालिए तथा उसके चरित्र की समीक्षा कीजिए।** *(1996)*

अथवा **मुहम्मद तुगलक की योजनाओं की समीक्षा कीजिए।** *(1996)*

उत्तर— **मुहम्मद तुगलक की योजनाएँ**

मुहम्मद तुगलक ने अपने साम्राज्य के कल्याण हेतु जिन महत्त्वाकांक्षी योजनाओं को कार्यान्वित किया, उनका संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है—

(1) दोआब में कर-वृद्धि (1325-1326 ई०)—सुल्तान की प्रथम योजना दोआब क्षेत्र में कर की वृद्धि करना था। विभिन्न मतों के अनुसार कर में वृद्धि के उद्देश्य इस प्रकार थे—

(i) बदायूँनी तथा वूल्जले हेग के अनुसार, "दोआब की विद्रोही जनता पर नियन्त्रण स्थापित करने तथा उसे दण्डित करने के उद्देश्य से कर लगाया गया था।"

(ii) हाजी उद-दबीर के अनुसार, "सुल्तान ने रिक्त राजकोष को भरने के लिए कर लगाया था।"

उद्देश्य चाहे जो भी रहा हो, चाहे जितना कर बढ़ाया गया हो, लेकिन इस कर-वृद्धि से प्रजा को असहनीय एवं अपार कष्ट उठाने पड़े। बरनी ने इस कर-वृद्धि के दुष्परिणाम की ओर संकेत करते हुए लिखा है, "इसने न केवल देश की बरबादी की, वरन् जनता को भी अवनति की ओर अग्रसर कर दिया।"

लेकिन इस कर-वृद्धि करने में सुल्तान का कोई विशेष दोष नहीं था, क्योंकि दोआब की भूमि बहुत उपजाऊ थी और वहाँ के हिन्दू बहुत समृद्ध अवस्था में थे। दुर्भाग्यवश जब उसने कर में वृद्धि की, उसी वर्ष अकाल पड़ गया। सुल्तान के कर्मचारियों ने इस बात की चिन्ता नहीं की और बड़ी निर्दयतापूर्वक कर वसूल किया। जब वहाँ के लोग हाहाकार कर उठे, तब सुल्तान को होश आया और उसने वहाँ कर की वसूली बन्द करवा दी। साथ ही उस क्षेत्र के निवासियों को बीज, बैल, खाद आदि सुलभ कराए एवं कुएँ भी खुदवाए, लेकिन दुर्भाग्य से ये सभी उपाय व्यर्थ सिद्ध हुए। अतः इस कर-वृद्धि के परिणामों की दृष्टि से मुहम्मद तुगलक दोषी नहीं था। दुर्भाग्य के कारण ही वह अपनी इस योजना में असफल हुआ था।

> **मुहम्मद तुगलक की योजनाएँ**
> **(1) दोआब में कर-वृद्धि**
> **(2) राजधानी परिवर्तन**
> **(3) ताँबे के सिक्कों का प्रचलन**
> **(4) विजय योजनाएँ।**

(2) राजधानी परिवर्तन (1326-1327 ई०)—मुहम्मद तुगलक की दूसरी योजना राजधानी परिवर्तन की थी। उसने दक्षिण भारत में स्थित देवगिरि को अपनी राजधानी बनाने का विचार किया और उसका नाम दौलताबाद रख दिया। दिल्ली में बसे सभी लोगों को राजधानी दौलताबाद (देवगिरि) जाने और वहाँ बसने के लिए मजबूर किया गया। **इब्नेबतूता** ने सुल्तान के इस कठोर आदेश के सम्बन्ध में लिखा है कि, "सुल्तान के आदेश से खोज करने पर एक अन्धा और एक लंगड़ा व्यक्ति मिला। लंगड़े को मार दिया गया और अन्धे को गाड़ी से बाँधकर घसीटकर ले जाया गया, लेकिन दौलताबाद तक उसकी टाँग ही पहुँच सकी थी।" वहाँ उसने कर्मचारियों की सुविधा के लिए नए भवनों, सरायों, धर्मशालाओं आदि पर भारी धन व्यय किया, किन्तु उसकी यह योजना भी असफल सिद्ध हुई। 700 मील लम्बी यात्रा में अधिकांश लोग मार्ग में ही मर गए। इस दुखद स्थिति को देखकर सुल्तान ने पुनः राजधानी दौलताबाद से दिल्ली परिवर्तन करने की आज्ञा दी। इस प्रकार, दिल्ली को पुनः राजधानी बनाने में अपार धनराशि खर्च हुई और जनता को भी अपार कष्ट हुआ।

इस राजधानी परिवर्तन के पीछे उसका उद्देश्य यह रहा था कि दक्षिण के प्रदेशों पर उसका पूर्ण नियन्त्रण बना रहेगा, साथ ही उसकी राजधानी मंगोलों के आक्रमणों के खतरों से भी मुक्त बनी रहेगी। देवगिरि नगर उसके साम्राज्य के लगभग बीचो-बीच में भी स्थित था। अतः उसको राजधानी बनाने पर सम्पूर्ण साम्राज्य पर सरलता से राज्य एवं नियन्त्रण हो सकेगा, ऐसा सोचकर ही उसने राजधानी परिवर्तित की थी, किन्तु अपनी इस योजना में भी वह पूर्णतः असफल रहा। वास्तव में, उसे अपने राजकीय कार्यालय ही देवगिरि को स्थानान्तरित करने चाहिए थे, जनता का स्थानान्तरण नहीं करना चाहिए था।

(3) ताँबे के सिक्कों का प्रचलन (1329-1330 ई०)—मुहम्मद तुगलक ने 1330 ई० में सिक्कों के प्रचलन के सम्बन्ध में एक नया आदेश जारी किया। इसके अनुसार जनता को यह आदेश दिया गया कि लोग सोने-चाँदी के सिक्कों के स्थान पर उसके द्वारा चलाए गए सांकेतिक ताँबे के सिक्कों का दैनिक जीवन में प्रयोग करें। ऐसा करते समय उससे एक भूल यह हो गई थी कि उसने ताँबे के सिक्कों पर किसी प्रकार का शाही-चिह्न नहीं खुदवाया। परिणामस्वरूप लोग अपने घरों में ही ताँबे के जाली सिक्के बनाने लगे। प्रत्येक सुनार आभूषण बनाने की बजाय ताँबे के सिक्के ढालने लगा। शीघ्र ही बाजारों में नकली ताँबे के सिक्कों

की भरमार हो गई और ऐसी स्थिति उत्पन्न हो गई कि लोगों ने इन सिक्कों से वस्तु-विनिमय करने से इंकार कर दिया। जब व्यापार ठप होने लगा तब सुल्तान को चिन्ता हुई। अतः उसने इस आर्थिक विकृति को दूर करने के लिए पुनः यह आदेश जारी किया कि लोग ताँबे के सिक्कों के बदले राजकोष से सोने-चाँदी के सिक्के ले जाएँ। इस परिवर्तन से राज्य को आर्थिक दृष्टि से अत्यधिक हानि उठानी पड़ी।

कुछ लोगों का मत है कि इस योजना के लागू करने के पीछे मुख्य कारण राज्य की आर्थिक स्थिति का दुर्बल होना था, लेकिन यह मत असत्य है क्योंकि यदि ऐसा होता तो वह इतनी शीघ्र ताँबे के सिक्कों के बदले सोने-चाँदी के सिक्के कहाँ से देता। वास्तव में, इस योजना के पीछे उसका उद्देश्य सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन कर, राजकोष को संकटकाल के लिए भरना था। वह अपनी इस सांकेतिक मुद्रा की योजना में, जनता के असहयोग और शासकीय कर्मचारियों की अयोग्यता के कारण ही असफल हुआ।

(4) **विजय योजनाएँ**—मुहम्मद तुगलक एक महत्त्वाकांक्षी सुल्तान था। वह अपने साम्राज्य का विस्तार करना चाहता था। अतः सैनिकों को प्रोत्साहन देने के उद्देश्य से उसने उन्हें एक वर्ष का अग्रिम वेतन दे दिया। साथ ही 3 लाख 70 हजार सैनिकों की एक विशाल सेना संगठित कर, खुरासान (फारस) तथा चीन पर आक्रमण करने की योजना बनाई। बाद में मार्ग की कठिनाइयों का अनुमान लगाकर उसने खुरासान पर आक्रमण नहीं किया। फिर उसने चीन पर भी आक्रमण करने का विचार त्याग दिया, क्योंकि उसे इस बात का आभास हो गया था कि हिमाच्छादित हिमालय पर्वत की श्रेणियों को पार कर चीन पर आक्रमण करना सरल नहीं है। उसकी इस योजना के फलस्वरूप भी धन व जन की अपार क्षति हुई।

मुहम्मद तुगलक की असफलता के कारण

मुहम्मद तुगलक की असफलता के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

(1) मुहम्मद तुगलक परिस्थितियों का शिकार हुआ, क्योंकि उसकी सभी योजनाएँ विपरीत परिस्थितियों के कारण ही विफल हो गई थीं।

(2) मुहम्मद तुगलक का साम्राज्य काफी विशाल हो गया था, जिस पर नियन्त्रण रख पाना उसकी सामर्थ्य के बाहर था।

(3) मुहम्मद तुगलक की योजनाओं के कारण जनता में असन्तोष व विद्रोह की भावना व्याप्त हो गई थी और उसकी सैनिक शक्ति भी क्षीण हो गई थी।

(4) मुहम्मद तुगलक ने अपनी अदूरदर्शी योजनाओं के कारण राजकोष को धन से रिक्त कर दिया था।

(5) सीमान्त प्रदेशों की असुरक्षा के कारण मंगोलों के आक्रमण भी मुहम्मद तुगलक की दुर्बलता के कारण बने थे।

(6) मुहम्मद तुगलक ने उलेमा वर्ग को असन्तुष्ट करके अपने साम्राज्य में विद्रोहों को बढ़ावा दिया था।

मुहम्मद तुगलक का मूल्यांकन

निस्सन्देह मुहम्मद-बिन-तुगलक असफल शासक सिद्ध हुआ, लेकिन यह सत्य है कि वह एक विलक्षण व तीव्र बुद्धि का स्वामी एवं प्रजावत्सल सुल्तान था। डॉ० ईश्वरी प्रसाद के शब्दों में, "अपने संकल्पों, उत्तम विचारों एवं सन्तोष के सन्तुलन के बिना मुहम्मद तुगलक को सम्पूर्ण विफलता प्राप्त हुई।" सत्य तो यह है कि उसके चरित्र में अनेक प्रशंसनीय गुण थे। सर वूल्जले हेग उसके विषय में लिखते हैं, "प्रशासकीय कार्य और सैनिक-कार्य श्रेष्ठतम योग्यता का प्रमाण देते हैं, परन्तु अन्य कार्य पागलपन के कार्य हैं।" बरनी ने लिखा है कि, "सुल्तान सृष्टि का एक चमत्कार था। उसके परस्पर विरोधी गुण साधारण विवेक और ज्ञान के परे थे।" मुहम्मद तुगलक के निधन पर बरनी ने सन्तोष व्यक्त करते हुए कहा था, "सुल्तान (मुहम्मद तुगलक) को अपनी प्रजा से और प्रजा को सुल्तान से मुक्ति मिल गई है।"

(नोट—मुहम्मद तुगलक के चरित्र का अध्ययन करने हेतु दीर्घ उत्तरीय प्रश्न संख्या 11 का अवलोकन कीजिए।)

प्रश्न 11—"मुहम्मद तुगलक एक पागल व्यक्ति था।" इस कथन की समीक्षा कीजिए। *(M. Imp.)*

अथवा **मुहम्मद तुगलक के चरित्र और कार्यों का विवेचन करते हुए इस कथन पर विचार कीजिए कि "मुहम्मद तुगलक में परस्पर विरोधी गुणों का सम्मिश्रण था या वह पागल था।"** *(M. Imp.)*

अथवा **मुहम्मद-बिन-तुगलक के व्यक्तित्व का आकलन कीजिए।** *(1992)*

अथवा **"मुहम्मद तुगलक असाधारण शासक था।" इस कथन की विवेचना कीजिए।** *(1996)*

अथवा **"मुहम्मद तुगलक के चरित्र में दो परस्पर विरोधी तत्त्वों का मिश्रण था।' क्या आप इस कथन से सहमत हैं ?**

उत्तर—

मुहम्मद-बिन-तुगलक का चरित्र (1325-1351 ई०)

भारतीय इतिहास में मुहम्मद तुगलक का व्यक्तित्व सर्वाधिक विवादास्पद रहा है। कुछ विद्वानों के मतानुसार वह पागल था और कुछ इतिहासकारों के अनुसार वह पागल नहीं, वरन् बुद्धिमान एवं गुणी था। वास्तव में, उसका दोष यह था कि वह लोगों और अवसर को पहचानने की क्षमता नहीं रखता था। इसीलिए वह अपने जीवन में असफल रहा। उसकी योजनाओं को लोगों ने काल्पनिक योजनाओं की संज्ञा दी।

इस सन्दर्भ में डॉ० पी० सरन ने लिखा है, "मुहम्मद तुगलक अत्यन्त उच्च विचारों तथा विलक्षण बुद्धि वाला था। अपने विचारों के अनुसार वह साम्राज्य को हर प्रकार से आदर्श बनाने की चेष्टा करता था, किन्तु उसमें न तो अवसर को पहचानने की और न ही मानव-चरित्र को समझने की क्षमता थी। उसकी विद्वत्ता प्रायः उसके दुर्भाग्य का कारण बनी।"

मुहम्मद-बिन-तुगलक इतिहासकारों की दृष्टि में

(I) पागल व्यक्ति के रूप में

पक्ष में तर्क—मुहम्मद तुगलक को एक पागल व्यक्ति सिद्ध करने के पक्ष में निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत किए गए हैं—

(1) अंग्रेज इतिहासकारों का मत है कि, "मुहम्मद तुगलक एक पागल व्यक्ति था जिसकी योजनाओं ने देश को बरबाद कर दिया।" एलफिन्स्टन ने भी उसे 'आंशिक पागल बादशाह' कहा है।

(2) इब्नेबतूता का मत है, "मुहम्मद तुगलक अधिक दान देने तथा रक्त बहाने में आनन्द लेता था। उसके एक द्वार पर कोई भिखारी धनी होता दिखाई देता था तथा दूसरे द्वार से किसी मृत्युदण्ड पाने वाले की लाश निकलती दिखाई देती थी। फिर भी वह सबसे अधिक न्यायप्रिय एवं नम्र था। धार्मिक आचार-विचार के पालन में वह अत्यन्त कठोर था।"

(3) सुल्तान ने ताँबे के सिक्कों के बदले में राजकोष से सोने-चाँदी के सिक्के देने का आदेश देकर अपने पागलपन का ही परिचय दिया था, जबकि वह जानता था कि ताँबे की नकली मुद्राएँ असली से भी अधिक प्रचलित हैं।

(4) उसकी अनेक युद्ध योजनाएँ भी मूर्खतापूर्ण थीं।

(5) तुगलक का जिद्दी स्वभाव और आदेशों को बलपूर्वक थोपने की नीति ने उसे पागल और मूर्ख सिद्ध कर दिया था।

विपक्ष में तर्क—जो विद्वान् मुहम्मद तुगलक को पागल स्वीकार नहीं करते हैं, उनके तर्क निम्नलिखित हैं—

(1) बरनी ने लिखा है, "वह एक प्रकाण्ड विद्वान् था, जिसकी योग्यताओं से आसफ और अरस्तू जैसे लोग भी चकित हो जाते थे।"

(2) गार्डनर ब्राउन ने लिखा है, "वह पागल था, यह एक ऐसा विचार है जिसका जरा भी आभास हमें सामयिक इतिहासकारों द्वारा नहीं मिलता। यह मत कि वह कल्पनाशील था, हम नहीं मान सकते, क्योंकि उसका बहुमुखी व्यावहारिक चरित्र हमें ऐसा मानने से रोकता है।"

(3) एलफिन्स्टन ने लिखा है, "इस बात पर कभी भी दो मत नहीं हो सकते कि वह अपने समय का सबसे अधिक वाक्पटु, विद्वान् तथा चतुर सम्राट था।"

(4) डॉ० ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है, "मुस्लिम विजय से लेकर अब तक जितने भी शासक दिल्ली के सिंहासन पर बैठे, उनमें मुहम्मद-बिन-तुगलक सबसे अधिक विद्वान् व गुणवान था।"

(5) डॉ० मेंहदी हसन ने लिखा है, "एक अनुभवहीन डॉक्टर की भाँति उसने अपने साम्राज्यवादी शरीर से दूषित रक्त निकालने के लिए अनेक बार ऑपरेशन किए, किन्तु प्रत्येक ऑपरेशन में उसे असफलता मिली और बुराई आई।"

(II) विरोधी गुणों का सम्मिश्रण

कुछ इतिहासकारों के अनुसार, उसका व्यक्तित्व अनेक परस्पर विरोधी गुणों का सम्मिश्रण था। इस सन्दर्भ में कुछ मत उल्लेखनीय हैं—

(1) वह आदर्शवादी व्यक्तित्व का स्वामी अवश्य था, किन्तु उसे अपनी योग्यता एवं शक्ति पर बड़ा अहंकार था।

(2) बरनी के अनुसार, "मुहम्मद तुगलक में विभिन्न गुणों का सम्मिश्रण था। वह एक निर्दयी और अविवेकपूर्ण सुल्तान था। वह रक्त-पिपासु भी था और उदार भी। सुल्तान की शारीरिक एवं मानसिक शक्तियाँ असीम गुण सम्पन्न नहीं समझी जा सकतीं और उसकी असाधारण दयालुता अथवा उसकी सैयद व इस्लाम भक्ति, मुसलमानों को मृत्युदण्ड देने की उत्कण्ठा तथा उसकी आस्तिकता, गर्म एवं ठण्डी साँस लेने के समान प्रतीत होती हैं। वह एक ऐसा रहस्यमय व्यक्ति है, जो बुद्धि में भ्रम उत्पन्न कर देता है।" बरनी का उपर्युक्त कथन उसकी योजनाओं और कार्यों के प्रकाश में सत्य प्रतीत होता है।

(3) इतिहासकार विन्सेण्ट स्मिथ का मत है, "यद्यपि मुहम्मद तुगलक ने ऐसे कार्य किए जिनका उल्लेख करने में कलम हिचकिचाती है, तथापि उसको पूरी तरह से अन्यायी नहीं कहा जा सकता। वह विरोधी गुणों का समूह था, जैसे कि आगे चलकर जहाँगीर भी हुआ।"

(4) डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव के शब्दों में, "हमारे मध्ययुगीन इतिहास में कोई ऐसा व्यक्ति नहीं हुआ है जिसका चरित्र इतना मनोरंजक तथा विवादग्रस्त हो जितना कि मुहम्मद-बिन-तुगलक का था। वह कल्पना के जगत में उड़ा करता था।"

(5) सेवेल के मतानुसार, "मुहम्मद तुगलक शैतान और सन्त दोनों ही था।"

उपर्युक्त मतों का निष्कर्ष

मुहम्मद तुगलक वास्तव में पागल नहीं था; हाँ, उसके कुछ कार्य अवश्य मूर्खतापूर्ण थे, जिनके आधार पर एलफिन्स्टन जैसे इतिहासकारों ने उसे पागल कहा है। सुनिश्चित रूप से उसमें अनेक गुण भी विद्यमान थे। फिर भी यह सच है कि उसका चरित्र थोड़ा रहस्यपूर्ण अवश्य था, जैसा कि डॉ० आर० सी० मजूमदार ने लिखा है कि, **"वह न रक्त-पिपासु दैत्य था और न ही पागल, जैसा कुछ व्यक्तियों ने कहा है, लेकिन उसमें विरोधी तत्त्वों का मिश्रण था। उसके व्यक्तित्व का पूर्ण एवं सही ज्ञान हमें उसके कार्यों का अवलोकन करने पर प्राप्त हो जाएगा।"**

प्रश्न 12—फिरोज तुगलक की शासन-व्यवस्था और जन-हित नीति का परिचय देते हुए यह स्पष्ट कीजिए कि इन्हीं में उसकी दुर्बलता भी निहित थी। *(V. Imp.)*

अथवा **"फिरोज तुगलक एक मानवतावादी तथा हितैषी शासक था।" इस कथन की विवेचना कीजिए।**

अथवा **"फिरोज तुगलक सल्तनत काल का अकबर था।" समालोचना कीजिए।**

अथवा **फिरोज तुगलक के प्रशासनिक सुधारों का वर्णन कीजिए।** *(1995)*

अथवा **"फिरोज तुगलक एक आदर्श मुस्लिम सुल्तान था।" स्पष्ट कीजिए।** *(1997)*

अथवा **फिरोज तुगलक की सार्वजनिक उपयोगिता की योजनाओं का मूल्यांकन कीजिए।** *(1997)*

उत्तर—

फिरोज तुगलक के सुधार (1351–1388 ई०)

मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के पश्चात् उसका चचेरा भाई फिरोज तुगलक 1351 ई० में दिल्ली के सिंहासन पर आसीन हुआ। उस समय तुगलक साम्राज्य में सर्वत्र अशान्ति और अराजकता व्याप्त थी तथा आर्थिक संकटों के कारण प्रजा अपार दुःख भोग रही थी। अतः फिरोज तुगलक ने सर्वप्रथम इस ओर ध्यान दिया। उसने लोकहित सम्बन्धी अनेक सुधार करके स्वयं को अकबर का अग्रगामी बना लिया। उसके

सुधारों से हिन्दुओं तथा मुसलमानों दोनों को लाभ हुआ । फिरोज तुगलक के इन सुधारों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

(1) आर्थिक सुधार : (i) राजस्व विभाग में सुधार—फिरोज तुगलक ने सर्वप्रथम दिल्ली सल्तनत की आर्थिक दशा को ठीक करने के लिए राजस्व विभाग की स्थापना की । उसने राजस्व विभाग के अधिकारियों को यह निर्देश दिया कि वे कर संग्रह करते समय किसी भी प्रकार का अत्याचार न करें ।

(ii) कर-प्रणाली में सुधार—फिरोज तुगलक ने सिंहासन पर बैठते ही करों की व्यवस्था की ओर विशेष ध्यान दिया । मुहम्मद तुगलक के समय में करों की संख्या बहुत बढ़ गई थी । अतः उसने तत्कालीन कर प्रणाली में निम्नलिखित सुधार किए—(क) फिरोज ने सम्पूर्ण कृषि योग्य भूमि की जाँच करवाई और भूमि-कर में बहुत कमी कर दी, जिससे कृषकों ने काफी राहत अनुभव की । (ख) उसने इस्लाम के विरुद्ध लगे करों को समाप्त कर दिया । (ग) उसने खिराज, खम्स एवं जजिया तथा जकात करों को बनाए रखा और इसके साथ ही ब्राह्मणों पर भी जजिया कर लगा दिया । (घ) कर वसूली के लिए योग्य कर्मचारियों की नियुक्ति की और उनको जागीरें प्रदान की गईं, जिससे वे जनता पर अत्याचार न कर सकें । (ङ) फिरोज ने उपज का 1/10 भाग, सिंचाई कर के रूप में निर्धारित किया । (च) फिरोज ने लगभग 24 प्रकार के कष्टदायी करों को समाप्त कर दिया ।

फिरोज तुगलक के आर्थिक सुधारों के परिणामों की समीक्षा करते हुए तत्कालीन इतिहासकार शम्सेसिराज अफीफ ने लिखा है, "फिरोज के शासनकाल में किसान इतने समृद्धिशाली हो गए थे कि उनके घर में सोने-चाँदी और खाने-पीने की वस्तुओं का अभाव नहीं था ।"

(iii) कृषि सम्बन्धी सुधार—फिरोज ने कृषि की उन्नति की ओर समुचित ध्यान दिया । उसने चार बड़ी नहरें बनवाईं तथा अनेक कुएँ खुदवाए । शम्सेसिराज अफीफ के अनुसार, उसने 5 नहरों, 150 कुओं, 30 जलशालाओं तथा 50 बाँधों का निर्माण करवाया । उसने झेलम, यमुना, सतलज नदियों का जल नहरों द्वारा खेतों में पहुँचाने की व्यवस्था की । उसके कार्य की प्रशंसा करते हुए डॉ० पणिक्कर ने लिखा है, "सुल्तान का यह कृषि-प्रबन्ध उसकी दूरदर्शिता तथा उदारता की सराहनीय यादगार और उसके शासनकाल की एक महान् सफलता है ।"

फिरोज तुगलक के सुधार

(1) आर्थिक सुधार :
- (i) राजस्व विभाग में सुधार,
- (ii) कर-प्रणाली में सुधार,
- (iii) कृषि सम्बन्धी सुधार ।

(2) सैन्य-व्यवस्था में सुधार

(3) मुद्रा-पद्धति में सुधार

(4) जनहितकारी कार्य :
- (i) निर्धनों व बेकारों को सुविधाएँ
- (ii) सार्वजनिक संस्थाओं व भवन-निर्माण के कार्य,
- (iii) विद्वानों का आश्रयदाता
- (iv) निशुल्क औषधालय,
- (v) दासों का महत्त्व ।

(2) सैन्य-व्यवस्था में सुधार—फिरोज के समय में दिल्ली साम्राज्य में चारों ओर अशान्ति एवं अव्यवस्था उत्पन्न हो गई थी । अतः एक संगठित सेना के निर्माण के लिए उसने सैनिक-व्यवस्था में भी अनेक परिवर्तन किए—

(i) फिरोज ने स्थायी सैनिकों को नकद वेतन देने के स्थान पर जागीरें देने की प्रथा आरम्भ की ।

(ii) उसने अस्थायी सेना को राजकोष से नकद वेतन देना शुरू किया ।

(iii) सैनिकों के पद को वंशानुगत कर दिया गया ।

सुल्तान अपने सैनिकों के साथ उदारता का व्यवहार किया करता था, किन्तु उसकी उदारता का लोगों ने अनुचित लाभ उठाया, जिसके परिणामस्वरूप वह सैनिक दृष्टि से अपने जीवन में असफल रहा ।

(3) मुद्रा-पद्धति में सुधार—फिरोज तुगलक ने अपनी गरीब जनता की सुविधा के लिए छोटे-छोटे सिक्के चलाए । उसने इन सभी सिक्कों के ढलवाने में शुद्ध धातु का प्रयोग किया, किन्तु बेईमान कर्मचारियों के कारण उसे अपने इस कार्य में सफलता नहीं मिली ।

(4) जनहितकारी कार्य—सुल्तान ने अपनी प्रजा की भलाई के लिए अनेक सार्वजनिक कार्य किए, जिनका विवरण अग्रलिखित है—

(i) निर्धनों और बेकारों को सुविधाएँ—दरिद्रों की सहायता के लिए सुल्तान ने जो प्रबन्ध किया, वह निश्चय ही प्रशंसनीय है। प्रजा के हित का उसे इतना ध्यान था कि उसने कोतवालों से बेरोजगारों की संख्या ज्ञात की तथा उन लोगों से प्रार्थना-पत्र प्राप्त करके, उन्हें योग्यता के आधार पर काम दिलाने की व्यवस्था की। दरिद्र मुसलमानों की कन्याओं के विवाह में सहायता देने के लिए सुल्तान ने 'दीवान-ए-खैरात' (दान-विभाग) नामक एक संस्था बनाई, जो प्रत्येक प्रार्थी के मामले पर निष्पक्ष रूप से विचार करती और फिर उसे सहायतार्थ धन देने की सिफारिश करती थी।

(ii) सार्वजनिक संस्थाओं और भवन-निर्माण के कार्य—दिल्ली सल्तनत के महान् सुल्तानों में फिरोज तुगलक की गणना एक महान् निर्माणकर्त्ता के रूप में की जाती है। वास्तव में, फिरोज ने भवन-निर्माण और कलाकृतियों के जीर्णोद्धार की ओर विशेष ध्यान दिया था। उसके निर्माण-कार्यों की प्रशंसा करते हुए सर वूल्जले हेग ने लिखा है, "उसे निर्माण-कार्यों का इतना शौक था कि इस दृष्टि से वह रोमन सम्राट ऑगस्टस से यदि बढ़ा-चढ़ा नहीं तो कम-से-कम उसके समान अवश्य था।" उसने फिरोजाबाद, हिसार, फिरोज़पुर तथा जौनपुर आदि नगरों का निर्माण करवाया था। कहा जाता है कि लोकहितकारी सुल्तान फिरोज तुगलक ने अपने शासनकाल में चालीस मसजिदों, तीस विद्यालयों, बीस महलों, दो सौ नगरों, सौ सरायों, सौ औषधालयों, सौ सार्वजनिक स्नानागारों, दस कीर्ति-स्तम्भों तथा एक सौ पचास पुलों का निर्माण अथवा जीर्णोद्धार करवाया था।

(iii) विद्वानों का आश्रयदाता—सुल्तान एक महान् विद्वान् था। ऐतिहासिक दृष्टि से उसकी आत्मकथा 'फतूहाते फिरोजशाही' एक विख्यात रचना मानी जाती है। वह अपने राज्य में अनेक विद्वानों को आश्रय प्रदान किया करता था।

(iv) निशुल्क औषधालय—उसने 'दारूल उल शफा' नामक एक सार्वजनिक औषधालय खुलवाया था, जहाँ रोगियों को निःशुल्क औषधि बाँटने का प्रबन्ध किया गया था।

(v) दासों को महत्त्व—सुल्तान फिरोज तुगलक को दास रखने का बहुत शौक था। इसीलिए उसके समय में शाही दासों की संख्या 1 लाख 80 हजार तक पहुँच गई थी। फिरोज ने इन दासों के आवास, भोजन और शिक्षा आदि के प्रबन्ध के लिए एक पृथक् विभाग की स्थापना भी की थी।

उपर्युक्त सुधार कार्यों से स्पष्ट है कि फिरोज तुगलक एक मानवतावादी और जन-हितैषी सुल्तान था। सर हेनरी इलियट ने लिखा है, "वह चौदहवीं शताब्दी का अकबर था।"

प्रश्न 13—फिरोज तुगलक की धार्मिक नीति पर प्रकाश डालते हुए उसके चरित्र का मूल्यांकन कीजिए।

अथवा **फिरोज तुगलक की असफलता के कारण लिखिए।**

अथवा **" फिरोज तुगलक की नीतियाँ ही तुगलक वंश के पतन का कारण बनीं।" क्या आप सहमत हैं? सकारण उत्तर दीजिए।** *(1990)*

अथवा **तुगलक वंश के पतन में फिरोज तुगलक के दायित्व को स्पष्ट कीजिए।**

अथवा **"फिरोज तुगलक अपनी धर्मान्धता में सिकन्दर लोदी तथा औरंगजेब का अग्रगामी था।" इस कथन की समालोचना कीजिए।**

अथवा **"दिल्ली सल्तनत के पतन के लिए मुख्यतः फिरोज तुगलक ही उत्तरदायी था।" प्रकाश डालिए।** *(1990)*

अथवा **"तुगलक वंश के पतन का मुख्य कारण फिरोज तुगलक की नीतियाँ एवं निर्बल शासन था।" विवेचना कीजिए।** *(1993)*

अथवा **फिरोज तुगलक के व्यक्तित्व का मूल्यांकन कीजिए।** *(1993)*

अथवा **तुगलक साम्राज्य के पतन में फिरोज तुगलक कहाँ तक उत्तरदायी था?** *(1999)*

उत्तर—

फिरोज तुगलक की धार्मिक नीति

फिरोज तुगलक एक कट्टर सुन्नी मुसलमान शासक था। इसी कारण अनेक इतिहासकारों ने उसकी धार्मिक असहिष्णुता की नीति की कटु आलोचना की है। वास्तव में, वह कट्टर धार्मिक प्रवृत्ति का शासक था। उसने अपने शासनकाल में मौलवियों और उलेमाओं को बहुत महत्त्व दिया तथा उन्हीं के परामर्श के

अनुसार उसने जीवन-पर्यन्त अपने शासन का संचालन किया। उसने अनेक हिन्दू मन्दिरों को तुड़वाया और अनेक हिन्दुओं को मुसलमान बनने के लिए प्रेरित किया। वह पहला मुस्लिम सुल्तान था जिसने ब्राह्मणों पर भी जजिया कर लगाया और जो हिन्दू मुसलमान हो गए थे, उन्हें इस कर से मुक्त कर दिया। इतना ही नहीं, फिरोज ने हिन्दुओं के उत्सवों पर भी कठोर नियन्त्रण लगाया। उसकी धर्मान्धता का उल्लेख करते हुए डॉ० आर० सी० मजूमदार लिखते हैं, **"उसकी धार्मिक नीति का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि फिरोज अपने युग का सबसे कट्टर मुसलमान था, जो अपनी धर्मान्धता में सिकन्दर लोदी तथा औरंगजेब का अग्रगामी था।"**

तुगलक वंश के पतन का उत्तरदायित्व
(फिरोज तुगलक की असफलता के कारण)

फिरोज तुगलक की धर्मान्धता व कुछ अन्य प्रशासनिक त्रुटियाँ स्वयं फिरोज तुगलक और तुगलक वंश के पतन के लिए उत्तरदायी सिद्ध हुईं, जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(1) सैन्य संगठन की दुर्बलता—फिरोज तुगलक अत्यन्त साधारण गुणों से युक्त तथा एक धर्मान्ध शासक था। सैनिक दृष्टि से वह एक अयोग्य सुल्तान और असफल विजेता था। डॉ० ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है, "न तो वह एक योग्य सेनापति था और न दृढ़ और दूरदर्शी शासक ही था। उसने सैनिक पदों को वंशानुगत कर दिया था, जिसके कारण निर्बल एवं वृद्ध सैनिकों की संख्या पर्याप्त बढ़ गई थी।"

फिरोज तुगलक की असफलता के कारण

(1) सैन्य-संगठन की दुर्बलता
(2) धार्मिक असहिष्णुता की नीति
(3) दास प्रथा।

सेना के स्थायी सैनिकों एवं उच्च पदाधिकारियों को जागीरें मिलने से वे भोग-विलास में लिप्त हो गए और शक्ति और अवसर पाकर सुल्तान के विरुद्ध ही षड्यन्त्र रचने लगे। इसके फलस्वरूप सुल्तान की सैन्य-शक्ति क्षीण होती चली गई और दिल्ली सल्तनत का विघटन होने लगा।

(2) धार्मिक असहिष्णुता की नीति—सुल्तान फिरोज कट्टर सुन्नी मुसलमान था। वह इस्लाम धर्म का पोषक था, परन्तु वह अन्य धर्मों के प्रति उदार न था। शम्सेसिराज अफीफ ने लिखा है, "सुल्तान फिरोज ने पैगम्बर के नियमों को अपना पथ-प्रदर्शक बनाया, उसने निर्धारित सिद्धान्तों का उत्साह के साथ पालन किया और उन सब चीजों का निषेध कर दिया, जो उससें मेल नहीं खाती थीं।"

फिरोज ने हिन्दुओं के साथ-साथ शिया धर्म के अनुयायियों पर भी अनेक अत्याचार किए थे। अन्य विधर्मियों के प्रति उसकी कोई सहानुभूति न थी। उसने मन्दिरों को तुड़वाया तथा मेलों व उत्सवों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। जगन्नाथपुरी, नगरकोट तथा जाजनगर पर किए गए आक्रमण उसकी धर्मान्धता के ही परिणाम थे। फिरोज तुगलक ने ब्राह्मणों पर भी जजिया कर लगा दिया था।

(3) दास प्रथा—सुल्तान फिरोज की दास प्रथा कालान्तर में तुगलक वंश के पतन का मुख्य कारण बनी। फिरोज के दासों ने अमीरों के साथ मिलकर सल्तनत के विरुद्ध षड्यन्त्र रचना प्रारम्भ कर दिया और वे अन्ततः साम्राज्य के विनाश का कारण बन गए।

डॉ० आर० एस० त्रिपाठी ने लिखा है, "इतिहास का यह दुर्भाग्यपूर्ण तथ्य है कि जिन कार्यों ने फिरोज तुगलक को लोकप्रिय बनाया, अन्ततः वही साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी बन गए।" इसी कारण अनेक इतिहासकारों की दृष्टि में, **दिल्ली सल्तनत के पतन के लिए मुख्यतः फिरोज तुगलक ही उत्तरदायी था।**

फिरोज तुगलक का मूल्यांकन

फिरोज तुगलक के समकालीन इतिहासकार **जियाउद्दीन बरनी** एवं **शम्सेसिराज अफीफ** उसे एक आदर्श सुल्तान मानते हैं, किन्तु आधुनिक इतिहासकारों का कहना है कि, "वह एक दुर्बलचित्त, भीरु, अयोग्य तथा धर्मान्ध सुल्तान था।"

वास्तव में, उसने अपनी धर्मान्धता के कारण जनसाधारण को बहुत कष्ट दिया था। साथ ही दासों, एवं सैनिकों के प्रति अति उदारता का रुख अपनाने के कारण राज्य के कर्मचारी और सैनिक लोग बेईमान एवं

भ्रष्ट हो गए थे। अफीफ ने लिखा है कि उसने एक साधारण सैनिक को मात्र इसलिए एक टंका दिया था, जिससे कि वह अपने सैनिक अधिकारी को रिश्वत देकर अपना घोड़ा पास करवा ले। ऐसा सुल्तान किसी भी रूप में अच्छा शासक नहीं कहा जा सकता है। अतः उसकी दुर्बल प्रशासनिक नीति के कारण शासन-व्यवस्था डगमगाने लगी और उसके साम्राज्य का अन्त निकट दिखाई देने लगा।

इसमें सन्देह नहीं कि फिरोज तुगलक ने अपनी प्रजा की सुख-सुविधा के लिए अनेक प्रशंसनीय कार्य किए थे, किन्तु उसकी धर्मान्धता एवं उसकी दुर्बल शासन-नीति ने उसके समस्त लोकहितकारी कार्यों पर पानी फेर दिया। उसने अपनी योजनाओं के द्वारा राजकोष का अपार धन नष्ट किया, परन्तु फिर भी साम्राज्य का कोई हित न हो सका। उसमें मुगल सम्राट औरंगजेब की धर्मान्धता अवश्य थी, परन्तु उसमें औरंगजेब के समान अन्य चारित्रिक गुणों का पूर्ण अभाव था। उसकी उदार नीति से कर्मचारी बेईमान एवं भ्रष्ट हो गए थे। राज्य में सर्वत्र अपराध और षड्यन्त्रों का बोलबाला हो गया तथा शासन में शिथिलता उत्पन्न हो गई थी। डॉ० ईश्वरी प्रसाद के शब्दों में, **"न तो वह एक योग्य सेनापति और न दृढ़ तथा दूरदर्शी शासक ही था।"**

मोरलैण्ड ने लिखा है, "फिरोज तुगलक की मृत्यु के साथ एक युग का अवसान हो गया। कुछ ही वर्षों के भीतर साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो गया और पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध में भारत में कोई सार्वभौम शक्ति न रही। फिर भी फिरोज एक महान् निर्माता था।"

प्रश्न 14—तुगलक वंश के पतन के प्रमुख कारणों का उल्लेख कीजिए।

अथवा **तुगलक वंश के पतन के कारणों का विश्लेषण कीजिए।** *(1992)*

उत्तर—

तुगलक वंश के पतन के कारण

उत्थान एवं पतन प्रकृति का शाश्वत नियम है। फिर भी किसी विशाल साम्राज्य के पतन के कुछ विशिष्ट कारण अवश्य होते हैं। यद्यपि तुगलक साम्राज्य पूर्व-मध्यकाल में सबसे अधिक विस्तृत साम्राज्य था, तो भी कालचक्र के कारण अन्ततः तुगलक साम्राज्य का भी पतन हो गया।

वस्तुतः मुहम्मद तुगलक के समय से ही तुगलक साम्राज्य का विघटन प्रारम्भ हो गया था, लेकिन मुहम्मद तुगलक की मृत्यु के बाद फिरोज तुगलक के कुछ दोषपूर्ण कार्यों एवं नीतियों ने तुगलक वंश के पतन को अनिवार्य बना दिया।

संक्षेप में, तुगलक वंश के पतन के लिए उत्तरदायी विभिन्न कारणों को निम्नलिखित सन्दर्भों में जाना जा सकता है—

(1) मुहम्मद तुगलक की असफल नीतियाँ—तुगलक वंश के पतन के लिए एक सीमा तक स्वयं मुहम्मद तुगलक उत्तरदायी था। उसकी कुछ असफल नीतियाँ ऐसी थीं जिनके कारण तुगलक साम्राज्य को पर्याप्त हानि उठानी पड़ी और इस साम्राज्य की नींव बहुत खोखली हो गई थी। मुहम्मद तुगलक की इन नीतियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

तुगलक वंश के पतन के कारण

(1) मुहम्मद तुगलक की असफल नीतियाँ
(2) फिरोज तुगलक की दोषपूर्ण नीतियाँ
(3) अयोग्य उत्तराधिकारी
(4) अमीरों का नैतिक पतन
(5) राजपूतों का स्वदेश-प्रेम
(6) तैमूर का आक्रमण।

(i) उसने अपने साम्राज्य को उत्तर एवं दक्षिण दो विपरीत दिशाओं में बढ़ाया। अतः जब वह उत्तर में होता था, तो दक्षिण में विद्रोह होते थे और जब दक्षिण में होता था, तो उत्तर में विद्रोह होते थे। यातायात के साधनों के अभाव के कारण वह एक स्थान से दूसरे स्थान पर शीघ्र नहीं पहुँच पाता था। इसके परिणामस्वरूप धीरे-धीरे तुगलक साम्राज्य की शक्ति क्षीण होती गई।

(ii) मुहम्मद तुगलक की विशिष्ट योजनाओं के परिणामस्वरूप जनता को अपार कष्ट पहुँचा और वह विद्रोह में लिप्त हो गई। उसके समय से ही साम्राज्य में विद्रोह की क्रमबद्ध शृंखला शुरू हो गई थी।

(iii) तुगलक की अदूरदर्शिता के कारण ताँबे के सिक्कों के चलन और सेना को अग्रिम वेतन देने से उसके शासनकाल में ही राजकोष लगभग खाली हो गया था। अतः रिक्त राजकोष की स्थिति में राज्य का संचालन असम्भव था।

(iv) मुहम्मद तुगलक ने उलेमाओं का राजनीति से पूर्ण रूप से बहिष्कार कर दिया था, जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने क्रोधित होकर अनेक षड्यन्त्र रचे और साम्राज्य की शक्ति को खोखला कर दिया।

(v) तुगलक ने सीमान्त प्रदेशों की सुरक्षा की ओर भी ध्यान नहीं दिया जिसके कारण मंगोल आक्रमणकारियों को साम्राज्य पर आक्रमण करने में बड़ी सहायता मिली।

(2) फिरोज तुगलक की दोषपूर्ण नीतियाँ—फिरोज तुगलक की निम्न नीतियाँ भी इस वंश के पतन का कारण बनी थीं—

(i) फिरोज तुगलक ने जागीर-प्रथा को पुनः आरम्भ कर दिया। इससे जागीरदारों के पास पर्याप्त धन एकत्र हो गया और वे अपनी आर्थिक सम्पन्नता का अनुचित लाभ उठाकर विद्रोह करने लगे तथा इसी के फलस्वरूप सुदूर प्रदेशों के सूबेदारों ने अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली। इससे साम्राज्य की शक्ति का ह्रास होने लगा।

(ii) फिरोज अपने दासों से विशेष प्रेम करता था। उनके रहने एवं खाने की समुचित व्यवस्था हेतु उसने एक अलग विभाग भी स्थापित किया था। इसका परिणाम यह हुआ कि दास लोग अहंकारी हो गए और स्वतन्त्र सत्ता की स्थापना के लिए षड्यन्त्र रचने लगे।

(iii) फिरोज ने सैनिक पदों को भी वंशानुगत कर दिया था। इससे सेना में कुशल सैनिकों की संख्या कम और अयोग्य सैनिकों की संख्या अधिक हो गई। इसके परिणामस्वरूप उसकी सैन्य शक्ति दुर्बल हो गई थी।

(iv) फिरोज तुगलक की सर्वाधिक त्रुटिपूर्ण नीति उसकी धर्मान्धता थी। वह एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था। अतः उसने अपने धर्म-प्रचार हेतु गैर-मुस्लिम जनता एवं शिया लोगों पर अनेक अत्याचार किए, जिसके परिणामस्वरूप ये लोग कष्टों से कराह उठे और अन्त में विद्रोह करने के लिए बाध्य हुए।

फिरोज तुगलक की इन नीतियों की असफलता के कारण ही प्रायः यह कहा जाता है कि, "फिरोज तुगलक की नीतियाँ ही तुगलक वंश के पतन का कारण बनीं।"

(3) अयोग्य उत्तराधिकारी—दिल्ली के पूर्ववर्ती सुल्तानों की भाँति तुगलकों की शासन-व्यवस्था का मुख्य आधार निरंकुशवाद था। ऐसी अवस्था उस समय तक ही भली-भाँति चल सकती थी, जबकि शासन का अधिकारी कोई योग्य एवं चरित्रवान व्यक्ति हो। लेकिन तुगलक वंश के अन्तिम सुल्तान भोग-विलास में लिप्त रहने के कारण शक्तिशाली अमीरों के हाथों की कठपुतली बनते चले गए थे। ये अमीर राज-कार्यों की उपेक्षा करके अपने स्वार्थों की पूर्ति में प्रयत्नशील रहते थे। परिणाम यह हुआ कि **मलिक सरवर**, जिसे **'सुल्तान-उस-शर्क'** की उपाधि दी गई थी, जौनपुर में स्वतन्त्र शासक बन गया और उसने शर्की राजवंश की नींव डाल दी। गुजरात में जाफर खाँ ने दिल्ली से सम्बन्ध विच्छेद करके अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली। मालवा और खानदेश भी स्वतन्त्र हो गए और पंजाब में खोखर भी उपद्रव करने लगे। दूसरी ओर, योग्य मन्त्रियों के अभाव में शाही दरबार में अनेक गुट बन गए और उनमें गृह-युद्ध छिड़ गया। परिणामस्वरूप तुगलक साम्राज्य का पतन निश्चित हो गया। **वस्तुतः तुगलक वंश के विनाश का मुख्य कारण फिरोज तुगलक का निर्बल शासन ही था।**

(4) अमीरों का नैतिक पतन—तुगलक वंश के सुल्तानों के दरबार में सुखी एवं ऐश्वर्यपूर्ण जीवन-यापन करते हुए दरबार के अमीर आलसी, स्वार्थी, विलासी एवं विश्वासघाती बन गए थे और उनका नैतिक पतन भी प्रारम्भ हो गया था। वे अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए षड्यन्त्र रचने लगे, जिन्होंने तुगलक वंश को पतन की ओर अग्रसारित कर दिया।

(5) राजपूतों का स्वदेश-प्रेम—अनेक राजपूत राजा विवशता के कारण पराधीन हो गए थे, किन्तु फिर भी वे स्वतन्त्र होने के अवसर निरन्तर खोजते रहे और जब उन्होंने देखा कि तुगलक साम्राज्य की शक्ति का ह्रास होता जा रहा है, तो उन्होंने भी अपनी स्वतन्त्रता के लिए विद्रोह करने प्रारम्भ कर दिए।

(6) तैमूर का आक्रमण—समरकन्द के शासक तैमूर लंग के आक्रमण ने तुगलक साम्राज्य को पतन के कगार पर पहुँचा दिया। उसने दिल्ली में खूब लूट-पाट मचाई, गाँवों को जलाकर नष्ट कर दिया और निरपराध स्त्रियों एवं बच्चों को मौत के घाट उतार दिया। उसने दिल्ली को पाँच दिन तक लूटा और 1,00,000 कैदियों का कत्लेआम किया। इस प्रकार, छिन्न-भिन्न तुगलक साम्राज्य की अन्त्येष्टि करके वह अपने देश लौट गया। अन्ततः 1414 ई० में तुगलक साम्राज्य का नामोनिशान ही मिट गया।

प्रश्न 15—"तैमूर का आक्रमण दिल्ली सल्तनत के लिए पक्षाघात का रोग सिद्ध हुआ।" विवेचना कीजिए।

अथवा **तैमूर कौन था? उसने भारत पर क्यों आक्रमण किया? उसके आक्रमण का भारत के इतिहास पर क्या प्रभाव पड़ा?**

अथवा **तैमूर के भारतीय आक्रमण के प्रभावों का वर्णन कीजिए।** *(1991, 95)*

अथवा **तैमूर के भारत पर आक्रमण का विवरण दीजिए व इसके प्रभावों का विश्लेषण कीजिए।** *(1993)*

उत्तर—

तैमूर का परिचय

तैमूर का जन्म 1336 ई० में ट्रांस ऑक्सियाना प्रदेश के केश नामक स्थान पर हुआ था। उसके पिता का नाम अमीर तुर्गे था जो बरलास शाखा का प्रमुख था। 1369 ई० में तैमूर ने समरकन्द के सिंहासन पर अधिकार कर लिया। सिंहासन पर अधिकार करने के उपरान्त उसने ईरान, अफगानिस्तान, इराक, ख्वारिज्म आदि देशों को जीत लिया। इसके बाद उसने भारत पर आक्रमण करने की योजना बनाई।

तैमूर के भारत पर आक्रमण के उद्देश्य

तैमूर के भारत पर आक्रमण करने के निम्नलिखित उद्देश्य थे—

(1) ख्याति अर्जित करना—तैमूर अत्यधिक महत्त्वाकांक्षी था। वह भारत पर विजय प्राप्त करके ख्याति प्राप्त करना चाहता था।

(2) धन लूटना—तैमूर भारत की धन-सम्पदा की ओर भी आकर्षित हुआ था। अतः धन लूटने की लालसा से प्रेरित होकर भी उसने भारत पर आक्रमण किया।

(3) इस्लाम धर्म का प्रचार—तैमूर ने स्वयं ही यह घोषित किया था कि भारत पर आक्रमण करने का उसका उद्देश्य इस्लाम धर्म का प्रचार करना है।

तैमूर के भारत पर आक्रमण के उद्देश्य
(1) ख्याति अर्जित करना
(2) धन लूटना
(3) इस्लाम धर्म का प्रचार।

तैमूर का भारत पर आक्रमण

सन् 1398 ई० में तैमूर ने 92,000 सैनिक सहित भारत पर आक्रमण किया। उस समय दिल्ली का सुल्तान महमूद तुगलक था। उसने तैमूर का सामना किया, परन्तु वह तैमूर से परास्त होकर गुजरात की ओर भाग गया। तैमूर ने इस युद्ध से पूर्व 1 लाख युद्धबन्दियों को कत्ल करवा दिया। तैमूर ने 15 दिन तक दिल्ली को खूब लूटा। वह फिरोजाबाद, मेरठ, हरिद्वार होता हुआ और काँगड़ा तथा जम्मू को लूटता हुआ समरकन्द लौट गया। इस मध्य उसने हजारों व्यक्तियों को दास बना लिया। वह अनेक कलाकारों को भी पकड़कर अपने साथ समरकन्द ले गया। उसने खिज्र खाँ को मुल्तान, लाहौर तथा दियालपुर का शासक नियुक्त किया।

तैमूर के आक्रमण का प्रभाव

तैमूर के आक्रमण के निम्नलिखित प्रभाव पड़े—

(1) तुगलक वंश का पतन—तैमूर के भारतीय आक्रमण का सबसे घातक प्रभाव तुगलक वंश पर पड़ा। उसकी शक्ति और प्रतिष्ठा धूल में मिल गई और 1414 ई० में महमूद तुगलक की मृत्यु के पश्चात् तुगलक वंश का अन्त हो गया।

(2) दिल्ली सल्तनत का विघटन—तैमूर का आक्रमण दिल्ली सल्तनत के लिए पक्षाघात का रोग सिद्ध हुआ। दिल्ली

तैमूर के आक्रमण का प्रभाव
(1) तुगलक वंश का पतन
(2) दिल्ली सल्तनत का विघटन
(3) अकाल तथा रोगों का प्रकोप
(4) कला पर प्रभाव
(5) आर्थिक प्रभाव।

सल्तनत को ऐसा धक्का लगा कि इसके बाद उसकी स्थिति में सुधार न हो पाया। जौनपुर, मालवा, गुजरात और अन्य प्रान्त स्वतन्त्र हो गए। सम्पूर्ण भारत छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया। केन्द्रीय शक्ति पूर्णतः नष्ट हो गई तथा सर्वत्र अव्यवस्था फैल गई।

(3) अकाल तथा रोगों का प्रकोप—तैमूर ने कई नगरों तथा गाँवों को लूटा तथा उन्हें उजाड़ दिया। उसने हजारों लोगों को मार डाला जिससे चारों ओर अकाल तथा रोगों का प्रकोप छा गया।

(4) कला पर प्रभाव—तैमूर के आक्रमण से भारतीय कला और साहित्य की प्रगति अवरुद्ध हो गई। तैमूर अनेक बहुमूल्य कलाकृतियों और शिल्पियों को अपने साथ समरकन्द ले गया, किन्तु इससे भारतीय कला और शैली का विस्तार मध्य एशिया तक अवश्य हुआ।

(5) आर्थिक प्रभाव—तैमूर के आक्रमण से उत्तरी भारत की आर्थिक व्यवस्था छिन्न-भिन्न हो गई तैमूर अपने साथ भारत का बहुत-सा धन ले गया। तैमूर के आक्रमण से कृषि की व्यवस्था भी बिगड़ गई थी।

इस प्रकार, तैमूर का आक्रमण दिल्ली सल्तनत के लिए पक्षाघात का रोग सिद्ध हुआ। डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने तैमूर के आक्रमण के विषय में ठीक ही लिखा है, "भारत को जितनी क्षति और दुःख तैमूर ने पहुँचाया, उतना उससे पहले किसी आक्रमणकारी ने एक आक्रमण में नहीं पहुँचाया।"

प्रश्न 16—तेरहवीं तथा चौदहवीं शताब्दी में भारत पर हुए मंगोल आक्रमणों का वर्णन कीजिए। *(1990)*

अथवा **भारतीय इतिहास पर मंगोलों के आक्रमणों का क्या प्रभाव पड़ा? वर्णन कीजिए।** *(1990)*

अथवा **मंगोल कौन थे? सल्तनत काल में उनके आक्रमणों का विवरण दीजिए तथा उनके प्रभावों का उल्लेख कीजिए।** *(1996)*

उत्तर—

दिल्ली सुल्तानों की मंगोल नीति

भारत एक दुर्ग के समान है। इसमें प्रवेश करने का एक मात्र स्थल मार्ग उत्तर-पश्चिम से ही है। इसी मार्ग से भारत पर सिकन्दर, महमूद गजनवी तथा मुहम्मद गोरी ने आक्रमण किए थे। सल्तनत काल का आरम्भ होने के समय से ही इस सीमा से प्रविष्ट होने वाले मंगोलों के आक्रमण होने लगे थे। ख्वारिज्म के शाह ने पंजाब को अपने साम्राज्य का अंग बना लिया था। मंगोलों ने अफगानिस्तान, गजनी तथा पेशावर तक अपनी विजय-पताका फहराकर भारत पर सुनियोजित ढंग से आक्रमण करना आरम्भ कर दिया था। अतएव दिल्ली सल्तनत काल के आरम्भ से ही, मंगोलों के आक्रमण से सीमा को सुरक्षित रखने की समस्या सुल्तानों के समक्ष उत्पन्न हुई। इस समस्या को हल करने के लिए विभिन्न राजवंशों के सुल्तानों ने अपनी विभिन्न नीतियों का प्रयोग किया।

(क) दास वंश

दास वंश के शासकों के समय हुए मंगोल आक्रमणों और इन आक्रमणों को रोकने हेतु दास वंश के शासकों द्वारा किए गए प्रयासों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है—

दिल्ली सुल्तानों की मंगोल नीति

(क) दास वंश—
- (1) इल्तुतमिश का शासनकाल
- (2) रजिया का शासनकाल
- (3) रजिया के उत्तराधिकारियों का शासन काल
- (4) मंगोल सरदार हलाकू का अभियान
- (5) तैमूर खाँ का आक्रमण

(ख) खिलजी व अन्य वंश—
- (1) खिलजी शासनकाल
- (2) निर्बल सुल्तानों का काल।

(1) इल्तुतमिश का शासनकाल—दास वंश का प्रथम शासक कुतुबुद्दीन ऐबक था। अल्प समय में ही मृत्यु हो जाने के कारण वह शासन के कार्यों को भली-भाँति न देख सका। उसके उत्तराधिकारी इल्तुतमिश के शासनकाल (1221 ई०) में मंगोल नेता चंगेज खाँ, ख्वारिज्म के शाह जलालुद्दीन मगबर्नी का पीछा करता हुआ भारत की ओर आया था। शाह जलालुद्दीन ने सिन्ध को पार करके दोआब प्रदेश को अपना शरण स्थल बनाना चाहा था, किन्तु दूरदर्शी इल्तुतमिश ने शाह जलालुद्दीन को सहायता नहीं दी। अतः इल्तुतमिश ने कूटनीति से कार्य करते हुए चंगेज खाँ से शत्रुता मोल नहीं ली थी। अतः चंगेज खाँ ने सिन्धु नदी को पार नहीं किया और वह वापस लौट गया। इस प्रकार, मंगोलों की भयंकर आँधी टल गई।

(2) रजिया का शासनकाल—चंगेज खाँ के चले जाने के बाद मंगोलों ने अफगानिस्तान को केन्द्र बनाकर भारत पर आक्रमण किया। मंगोलों ने सिन्धु नदी के पार स्थित प्रदेशों पर अनेक आक्रमण किए। इन प्रदेशों ने रजिया से समझौता करना चाहा, किन्तु दूरदर्शी सुल्ताना रजिया ने तटस्थ नीति का पालन किया और अपने साम्राज्य को मंगोलों के आक्रमणों से बचाए रखा।

(3) रजिया के उत्तराधिकारियों का शासनकाल—रजिया का पतन 1240 ई० में अमीरों की दलबन्दी के कारण हुआ। उसके शासनकाल के उपरान्त 1241 ई० में मंगोल सरदार 'बहादुर ताहिर' ने लाहौर को लूटा। 1245 ई० में मुल्तान पर 'हसन कार्लूग' ने और सिन्ध पर कबीर खाँ के वंशजों ने अधिकार कर लिया। 1247 ई० में मंगोल नेता सली बहादुर ने मुल्तान को घेरकर लाहौर पर आक्रमण किया। लाहौर के अमीरों ने सली बहादुर के सामने आत्म-समर्पण कर दिया। इस प्रकार, मुल्तान व सिन्ध के प्रदेश दिल्ली सल्तनत से कुछ समय तक कट गए। 1250 ई० में इन पर पुनः दासवंशीय शासकों की विजय पताका फहराने लगी, फिर भी प्रान्तीय सूबेदारों के षड्यन्त्र मंगोलों के साहस में निरन्तर वृद्धि करते रहे।

(4) मंगोल सरदार हलाकू का अभियान—सुल्तान नासिरुद्दीन के शासनकाल में मंगोल नेता हलाकू ने दिल्ली से मित्रता बनाए रखी, किन्तु बलबन के सुल्तान होते ही मंगोलों ने भारत पर पुनः आक्रमण करने आरम्भ कर दिए। बलबन ने हलाकू के आक्रमणों को रोकने के लिए सीमान्त प्रदेशों पर छावनियों की व्यवस्था का कार्य अपने पुत्रों को सौंप दिया। उन्होंने इन प्रदेशों में मंगोलों की गतिविधियों को रोकने के लिए विशाल दुर्गों का निर्माण कराया।

(5) तैमूर खाँ का आक्रमण—1285 ई० में मंगोल सरदार तैमूर खाँ ने आक्रमण किया। इस आक्रमण में बलबन का पुत्र मुहम्मद मारा गया था।

(ख) खिलजी व अन्य वंश

खिलजी वंश तथा तुगलक वंश के शासकों के समय होने वाले मंगोल आक्रमणों का उल्लेख निम्नवत् है—

(1) खिलजी शासनकाल—अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल में मंगोलों ने बार-बार आक्रमण किए। 1299 ई० में साल्दी व कुतलुग ख्वाजा, 1303 ई० में तार्गी और 1305 ई० में अलीबेग, 1306 ई० में कूबक और 1307 ई० में इकबाल मन्दा तथा तार्बाक के नेतृत्व में मंगोलों ने आक्रमण किए, किन्तु अलाउद्दीन की विशाल सेना के सामने इन मंगोल आक्रमणकारियों को सदैव नतमस्तक होना पड़ा।

(2) निर्बल सुल्तानों का काल—अलाउद्दीन खिलजी के बाद दिल्ली सल्तनत का पतन आरम्भ हो गया। तुगलक शासकों के काल में भी मंगोलों के आक्रमणों का तांता बँधा रहा। कालान्तर में 1398 ई० में तैमूर लंग ने दिल्ली को तहस-नहस कर डाला और वहाँ भयंकर रक्तपात किया। कई महीनों तक दिल्ली उजाड़ श्मशान-सी दिखाई देती रही। अन्ततः मंगोलों के आक्रमण दिल्ली सल्तनत के विघटन का एक महत्त्वपूर्ण कारण सिद्ध हुए।

मंगोलों के आक्रमण का प्रभाव

मंगोलों के आक्रमण के निम्नलिखित प्रभाव हुए—

(1) मंगोलों के आक्रमणों को रोकने में व्यस्त रहने के कारण सुल्तान प्रशासकीय कार्यों के प्रति जागरूक न रह सके।

(2) इन्हीं आक्रमणों के कारण प्रान्तीय सूबेदार स्वतन्त्र रूप से विद्रोह करते रहे, क्योंकि सुल्तान इन मंगोल आक्रमणों को दबाने में लगे रहते थे।

(3) सुल्तानों को विवश होकर दमन नीति का आश्रय लेना पड़ा था, जिसके कारण प्रजा सुल्तानों से अप्रसन्न रही।

कुछ सुल्तानों ने सीमा नीति की उपेक्षा भी की, जिससे मंगोलों के आक्रमण निरन्तर जारी रहे और विद्रोहों की भी अधिकता रही। इतना ही नहीं, एक सुल्तान की मृत्यु पर दूसरे सुल्तान का सिंहासनारोहण तलवार के द्वारा ही सम्भव था। इन कारणों से मंगोलों को भारतीय आक्रमणों के समय कभी-कभी अपार सफलता मिलती थी, जो उन्हें भावी आक्रमण के लिए प्रेरणा देती थी।

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—बलबन की प्रारम्भिक कठिनाइयों में से किन्हीं दो कठिनाइयों का वर्णन कीजिए। *(1990)*

उत्तर—बलबन की प्रारम्भिक कठिनाइयों में निम्नलिखित दो कठिनाइयाँ मुख्य थीं—

(1) दिल्ली साम्राज्य में सर्वत्र अराजकता और अशान्ति व्याप्त थी।

(2) मंगोलों के भीषण आक्रमणों से दिल्ली सल्तनत संकट में थी।

प्रश्न 2—अलाउद्दीन खिलजी ने विद्रोहों में जो चार मुख्य कारण पाए थे, उनका वर्णन कीजिए। *(1991)*

उत्तर—अलाउद्दीन खिलजी ने विद्रोहों के निम्नलिखित चार कारण पाए थे—

(1) तुर्की अमीरों के पास धन सम्पत्ति की अधिकता।

(2) धनी अमीरों का आपसी मेलजोल।

(3) सैनिकों को जागीरें मिलना।

(4) शासन में उलेमाओं का हस्तक्षेप।

प्रश्न 3—"दिल्ली सल्तनत का शासन इस्लाम धर्म पर आधारित था।" इस कथन को स्पष्ट कीजिए।
अथवा **"दिल्ली सल्तनत का शासन धर्मोन्मुखी था।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।** *(1992)*

उत्तर—दिल्ली के मुस्लिम सुल्तानों ने धर्म पर आधारित शासन स्थापित किया था। सुल्तान को राजनीतिक व धार्मिक दोनों ही क्षेत्रों में सर्वोच्च अधिकार प्राप्त थे। सल्तनत काल का शासन कुरान व शरियत के नियमों के आधार पर संचालित होता था। सुल्तान निरंकुश व स्वेच्छाचारी होते हुए भी उलेमाओं के परामर्श से शासन किया करते थे। इस्लाम धर्म के अनुसार, सुल्तान ईश्वर का प्रतिनिधि होता था, जिसका प्रमुख उद्देश्य 'दार-उल-हरब' (काफिरों का देश) को 'दार-उल-इस्लाम' (इस्लाम देश) में परिवर्तित करना था। अतः दिल्ली सल्तनत के अन्तर्गत हिन्दुओं को मुसलमान बनने पर विशेष सुविधाएँ उपलब्ध कराना सुल्तान का प्रमुख कर्त्तव्य माना जाता था। फिरोज तुगलक द्वारा राजनीति तथा धर्म को परस्पर सम्बन्धित कर दिया गया। वह राजनीतिक तथा प्रशासनिक कार्यों में उलेमाओं का परामर्श लेता था। उसका उद्देश्य भारत में इस्लाम धर्म का प्रसार करना, हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बनाना तथा हिन्दुओं की मूर्तियों तथा मन्दिरों को नष्ट करना था। फिरोज तुगलक ने अपनी आत्मकथा फतूहाते फिरोजशाही में स्वयं लिखा है, "मैंने अपनी काफिर प्रजा को पैगम्बर का धर्म स्वीकार करने के लिए बाध्य किया और यह घोषणा की कि जो भी अपने धर्म को छोड़कर मुसलमान बन जाएगा उसे जजिया से मुक्त कर दिया जाएगा।" डॉ० आर० सी० मजूमदार के अनुसार, "फिरोज तुगलक इस युग का सबसे महान् धर्मान्ध सुल्तान था।" अतः स्पष्ट है कि दिल्ली सल्तनत का शासन धर्म सापेक्ष अथवा धर्मोन्मुखी था।

प्रश्न 4—मुहम्मद तुगलक की शासन-सम्बन्धी दो योजनाओं पर प्रकाश डालिए। *(1991, 94)*
अथवा **मुहम्मद तुगलक की किन्हीं दो योजनाओं की जानकारी दीजिए।** *(1997)*

उत्तर—मुहम्मद तुगलक की शासन-सम्बन्धी दो योजनाएँ निम्नलिखित थीं—

(1) राजधानी का परिवर्तन—सिंहासन पर आसीन होने के पश्चात् (1327 ई०) मुहम्मद तुगलक ने अपनी राजधानी को दिल्ली से देवगिरि बदल दिया, परन्तु जब दिल्ली के लोगों को वहाँ अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा, तो फिर राजधानी देवगिरि (दौलताबाद) से दिल्ली घोषित कर दी गई।

(2) ताँबे के सिक्कों का प्रचलन—सुल्तान ने सोने और चाँदी के सिक्कों के स्थान पर ताँबे के सिक्के प्रचलित कराए, परन्तु जब बाजार में जाली सिक्कों की भरमार हो गई, तो सुल्तान ने यह योजना समाप्त कर दी और ताँबे के सिक्कों को सोने-चाँदी के सिक्कों में बदल दिया।

प्रश्न 5—फिरोज तुगलक ने आर्थिक विकास के लिए क्या उपाय किए? *(1993)*

उत्तर—फिरोज ने आर्थिक विकास के लिए जनता पर कई नए कर लगाए तथा कर वसूली के लिए योग्य कर्मचारियों की नियुक्ति कर दी। उसने कृषि की उन्नति की ओर समुचित ध्यान दिया तथा चार बड़ी

नहरें खुदवाईं। गरीब जनता की सुविधा के लिए उसके द्वारा छोटे-छोटे सिक्के ढलवाए गए तथा बेरोजगारों को काम दिया गया।

प्रश्न 6—तैमूर के भारतीय आक्रमण के दो प्रमुख परिणाम लिखिए। *(1990)*

उत्तर—तैमूर के आक्रमण के दो प्रमुख परिणाम निम्नलिखित थे—

(1) तुगलक वंश पर घातक प्रहार—तैमूर के आक्रमण का सबसे प्रमुख परिणाम यह हुआ कि इससे तुगलक वंश पर घातक प्रहार हुआ और उसका पतन हो गया।

(2) अकाल तथा रोगों का प्रकोप—तैमूर ने लाखों व्यक्तियों को मौत के घाट उतार दिया। उनकी लाशों के सड़ने से महामारी फैल गई और हजारों व्यक्ति मर गए। तैमूर की लूटमार से अनेक गाँव तथा नगर उजड़ गए और वहाँ अकाल की स्थिति पैदा हो गई।

प्रश्न 7—मुहम्मद तुगलक की चार योजनाओं के नाम लिखिए। *(1991, 92)*

अथवा **सुल्तान मुहम्मद-बिन-तुगलक की शासन-सम्बन्धी चार योजनाओं का उल्लेख कीजिए।** *(1997)*

उत्तर—मुहम्मद तुगलक की चार योजनाओं के नाम हैं—

(i) राजधानी परिवर्तन की योजना, **(ii)** सांकेतिक मुद्रा की योजना, **(iii)** दोआब में कर-वृद्धि योजना तथा **(iv)** कराजल विजय की योजना।

प्रश्न 8—इल्तुतमिश की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ क्या थीं? उसने इनका निवारण किस प्रकार किया? *(1993, '96)*

उत्तर—इल्तुतमिश की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ निम्नलिखित थीं—

(i) दिल्ली साम्राज्य का विभाजन, **(ii)** राजपूत राजाओं का स्वतन्त्र हो जाना तथा **(iii)** कुतुबी अमीरों का विद्रोह।

इन कठिनाइयों के निवारण के लिए उसने गजनी के शासक एल्दौज को तराइन के युद्ध-क्षेत्र में परास्त किया तथा इसके बाद अनेक राजपूत राज्यों पर आक्रमण कर वहाँ के राजाओं को पराजित किया। कुतुबी अमीरों का दमन करने में भी उसे पर्याप्त सफलता प्राप्त हुई।

प्रश्न 9—रजिया की असफलता के दो कारणों का वर्णन कीजिए। *(1994)*

उत्तर—रजिया की असफलता के दो कारण निम्नलिखित हैं—

(1) रजिया की निरंकुशता—रजिया एक निरंकुश शासिका थी। वह राज्य के प्रभावी अमीरों के साथ भी उपेक्षापूर्ण व्यवहार करती थी। उसके उपेक्षापूर्ण व्यवहार के कारण राज्य के अमीर व सरदार उसके विरोधी हो गए।

(2) इस्लामी प्रथाओं की उपेक्षा—रजिया पुरुषों जैसी पोशाक धारण करती थी और जनता के सामने खुले दरबार में बैठकर राजकाज करती थी। वह सैन्य-संचालन भी स्वयं ही करती थी तथा घोड़े पर सवार होकर युद्ध में जाया करती थी। उसके ये सभी कार्य इस्लामी परम्पराओं के विरुद्ध थे। अतः राज्य के कट्टर मुसलमान उसके विरुद्ध संगठित हो गए।

प्रश्न 10—बलबन की किन्हीं दो उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए। *(1994)*

उत्तर—बलबन की दो उपलब्धियाँ निम्नलिखित हैं—

(1) चालीस गुलामों के दल का अन्त—बलबन ने इल्तुतमिश द्वारा नियुक्त चालीस गुलामों के दल को भंग कर दिया और इसके अनेक सदस्यों की हत्या करवा दी। अपने इस कार्य से वह तुर्की अमीरों और सरदारों पर नियन्त्रण रखने में सफल हुआ।

(2) सुल्तान के पद की प्रतिष्ठा को पुनःस्थापित करना—बलबन ने राजा के दैवी अधिकार के सिद्धान्त को अपनाकर, सुल्तान के पद की प्रतिष्ठा को पुनःस्थापित किया। इसके फलस्वरूप राज्य में व्याप्त अशान्ति और अराजकता का वातावरण समाप्त हो गया।

प्रश्न 11—फिरोज तुगलक की असफलताओं के चार प्रमुख कारण लिखिए। *(1995)*

उत्तर—फिरोज तुगलक की असफलताओं के चार प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

(1) जागीर-प्रथा को पुनः प्रारम्भ करना—फिरोज तुगलक ने जागीर-प्रथा को पुनः आरम्भ कर दिया। इससे जागीरदारों के पास पर्याप्त धन एकत्र हो गया और वे अपनी आर्थिक सम्पन्नता का अनुचित लाभ उठाकर विद्रोह करने लगे तथा सुदूर प्रदेशों के सूबेदारों ने अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली।

(2) दासों के प्रति दोषपूर्ण नीति—फिरोज अपने दासों से विशेष प्रेम करता था, उनके रहने एवं खाने की समुचित व्यवस्था हेतु उसने एक अलग विभाग स्थापित किया था। इसका परिणाम यह हुआ कि दास लोग अहंकारी हो चले और स्वतन्त्र सत्ता की स्थापना के लिए षड्यन्त्र रचने लगे।

(3) सैनिक पदों पर वंशानुगत आधार पर नियुक्ति—फिरोज ने सैनिक पदों को भी वंशानुगत कर दिया था। इससे सेना में कुशल सैनिकों की संख्या कम हो गई। इसके परिणामस्वरूप उसकी सैन्य-शक्ति दुर्बल हो गई थी।

(4) धार्मिक असहिष्णुता की नीति—फिरोज तुगलक एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था। अतः उसने अपने धर्म-प्रचार हेतु गैर-मुस्लिम जनता एवं शिया लोगों पर अनेक अत्याचार किए जिसके परिणामस्वरूप ये लोग उसके विरुद्ध विद्रोह करने के लिए बाध्य हुए।

प्रश्न 12—तुगलक वंश के पतन के चार कारण लिखिए। *(1995)*

उत्तर—तुगलक वंश के पतन के चार कारण निम्नलिखित थे—

(1) मुहम्मद तुगलक की विशिष्ट योजनाओं के परिणामस्वरूप जनता को अपार कष्ट पहुँचा और वह विद्रोह में लिप्त हो गई। उसके समय से ही साम्राज्य में विद्रोहों का प्रारम्भ हुआ।

(2) मुहम्मद तुगलक ने उलेमाओं का राजनीति से पूर्णतया बहिष्कार कर दिया था, जिसके परिणामस्वरूप उन्होंने क्रोधित होकर विनाशकारी षड्यन्त्र रचे और साम्राज्य की शक्ति को खोखला कर दिया।

(3) तुगलक ने सीमान्त प्रदेशों की सुरक्षा की ओर ध्यान नहीं दिया, जिसके कारण मंगोल आक्रमणकारियों को तुगलक साम्राज्य पर आक्रमण करने में बड़ी सहायता मिली।

(4) सुल्तान फिरोज की दासों के प्रति उदारतापूर्ण नीति कालान्तर में तुगलक वंश के पतन का मुख्य कारण बनी। फिरोज के दासों ने अमीरों के साथ मिलकर सल्तनत के विरुद्ध षड्यन्त्र रचना प्रारम्भ कर दिया और अन्ततः साम्राज्य के विनाश का कारण सिद्ध हुए।

प्रश्न 13—मुहम्मद तुगलक की राजधानी परिवर्तन योजना के पीछे दो प्रमुख उद्देश्यों का वर्णन कीजिए। *(1995)*

उत्तर—मुहम्मद तुगलक की राजधानी परिवर्तन योजना के पीछे दो प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित थे—

(1) देवगिरि को राजधानी बनाने से दक्षिण के प्रदेशों पर मुहम्मद तुगलक का पूर्ण नियन्त्रण बना रह सकता था।

(2) देवगिरि उसके साम्राज्य के लगभग मध्य में स्थित था। इस दृष्टि से उसके द्वारा घोषित नई राजधानी मंगोल-आक्रमणों के खतरों से भी मुक्त रह सकती थी।

प्रश्न 14—अलाउद्दीन खिलजी के दो आर्थिक सुधारों पर प्रकाश डालिए। *(1996)*

उत्तर—अलाउद्दीन खिलजी के दो आर्थिक सुधारों का संक्षिप्त उल्लेख निम्नवत् है—

(1) सम्पत्ति का अपहरण—सुल्तान ने अमीरों, जागीरदारों, हिन्दू जमींदारों, कर-वसूल करने वाले अधिकारियों एवं व्यापारियों आदि से उनकी एकत्र की गई धन-सम्पत्ति को छीनकर उसे राज्य की सम्पत्ति घोषित कर दिया। फलस्वरूप समस्त भूमि जब्त कर ली गई, इससे लगान न मिलने पर राज्य को जो हानि होती थी, वह समाप्त हो गई। साथ ही राजकोष में नया लगान आने से धन की वृद्धि होने लगी।

(2) करों में वृद्धि—सुल्तान ने कर वसूल करने वालों को आज्ञा दी कि वे अधिक कठोरता से कर वसूल करें; परिणामस्वरूप राजकोष की आमदनी बड़ी तेजी से बढ़ने लगी और राजकोष अपार धन से भर गया।

प्रश्न 15—मुहम्मद तुगलक ने सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन क्यों करवाया? *(1996)*

उत्तर—मुहम्मद तुगलक ने 1330 ई० में ताँबे के सिक्के प्रचलित करने से सम्बन्धित अपना आदेश जारी किया था। इन सिक्कों को प्रचलित करने का उद्देश्य राज्य की आर्थिक स्थिति को सन्तोषप्रद बनाना तथा संकटकाल के लिए राजकोष को भरना था। इस प्रकार की प्रेरणा सुल्तान को चीनी तथा ईरानी शासकों से प्राप्त हुई थी। इन शासकों ने भी अपने देश में उत्पन्न आर्थिक संकट का समाधान करने के लिए सांकेतिक मुद्रा के रूप में पीतल एवं ताँबे के सिक्कों का प्रचलन किया था।

प्रश्न 16—मंगोलों की पराजय के दो प्रमुख कारणों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—मंगोलों की पराजय के कई कारण थे, जिनमें से दो प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

(1) मंगोल सेना की निर्बलताएँ—यद्यपि मंगोल सेना संख्या में अधिक होती थी, परन्तु मंगोल सैनिक संगठित एवं नियोजित रूप में युद्ध करने की कला से अनभिज्ञ थे। उनमें धैर्य एवं सहनशीलता का भी पर्याप्त अभाव था। यही कारण है कि वे कई बार दिल्ली के समीप आकर भी, बिना युद्ध किए ही वापस लौट गए।

(2) मंगोल सेनापतियों में योग्यता का अभाव—अलाउद्दीन खिलजी के शासनकाल में भारत पर मंगोलों के जो भी आक्रमण हुए, उन सबका संचालन करने वाले सेनापतियों में युद्ध संचालन करने की योग्यता का पूर्ण अभाव था। वे अपने कुशल नेतृत्व और कूटनीति द्वारा मंगोल सेनाओं को युद्ध में सफलता प्राप्त कराने की दृष्टि से पूर्णतः अयोग्य सिद्ध हुआ।

ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों एवं व्यक्तियों पर आधारित प्रश्न

प्रश्न 1 – निम्नांकित तिथियों की ऐतिहासिक महत्ता पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) 1210 ई० *(1990, 93, 95, 99)*—इस तिथि को भारत में दिल्ली सल्तनत के संस्थापक और दास वंश के प्रथम सुल्तान कुतुबुद्दीन ऐबक की चौगान खेलते समय मृत्यु हो गई थी। ऐबक ने 1206 ई० से 1210 ई० तक सुल्तान के रूप में दिल्ली पर शासन किया था।

(2) 1211 ई०—इस तिथि को दास वंश के वास्तविक संस्थापक और योग्य सेनापति इल्तुतमिश ने ऐबक के उत्तराधिकारी आरामशाह को जूद के मैदान में पराजित करके दिल्ली सल्तनत प्राप्त की थी। आरामशाह से सत्ता छीनने के कारण इल्तुतमिश को राज्य अपहरणकर्त्ता भी कहा जाता है।

(3) 1221 ई० *(1993, 94, 96, 99)*—1221 ई० में चंगेज खाँ ख्वारिज्म के शाह जलालुद्दीन मगवर्नी का पीछा करता हुआ सिन्धु नदी के तट पर आ पहुँचा था लेकिन सुल्तान इल्तुतमिश ने जलालुद्दीन को दिल्ली में शरण न देकर मंगोलों के प्रकोप से दिल्ली सल्तनत को सुरक्षित बचा लिया था।

(4) 1236 ई० *(1990, 92, 93, 94, 95)*—इस तिथि को दास वंश के सुल्तान इल्तुतमिश की मृत्यु हुई थी और शम्सी अमीरों ने सुल्तान की इच्छा के विरुद्ध उसके अयोग्य व विलासी पुत्र रुकनुद्दीन फिरोजशाह को दिल्ली की गद्दी पर बैठा दिया था। लेकिन रुकनुद्दीन फिरोजशाह अल्प समय तक ही शासन कर सका।

(5) 1240 ई० *(1993, 95, 97, 99)*—इस तिथि को कुछ हिन्दू डाकुओं द्वारा रजिया का वध कर दिया गया।

(6) 1246 ई०—इस तिथि को दिल्ली सल्तनत की गद्दी पर बलबन ने सुल्तान अलाउद्दीन मसूदशाह को पदच्युत कर नासिरुद्दीन महमूद को बैठाया था। नासिरुद्दीन महमूद इल्तुतमिश का पुत्र था, जिसने बलबन के सहयोग से 1266 ई० तक दिल्ली पर शासन किया था।

(7) 1259 ई० *(1990)*—इस तिथि को मुस्लिम अमीरों के नेता इमादउद्दीन रेहान ने नासिरुद्दीन महमूद के प्रधानमन्त्री बलबन के विरुद्ध एक षड्यन्त्र रचा था। इस षड्यन्त्र के फलस्वरूप बलबन को प्रधानमन्त्री के पद से हटना पड़ा, लेकिन बलबन के हटते ही सल्तनत में सर्वत्र विद्रोह होने लगे और अराजकता का वातावरण उत्पन्न हो गया। अन्त में, 1260 ई० में नासिरुद्दीन महमूद ने पुनः बलबन को प्रधानमन्त्री के पद पर नियुक्त कर दिया था।

(8) 1266 ई० *(1994, 96, 99)*—इस तिथि को बहाउद्दीन बलबन सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद की मृत्यु के बाद दिल्ली के सिंहासन पर आसीन हुआ था। बलबन ने 1266 ई० से 1286 ई० तक शासन किया था। वह दास वंश का योग्यतम सुल्तान था।

(9) 1287 ई० *(1996)*—इस तिथि को सुल्तान कैकुबाद दिल्ली के सिंहासन पर आसीन् हुआ।

(10) 1290 ई० *(1988, 92, 97)*—इस तिथि को जलालुद्दीन फिरोज खिलजी ने कैकूवाद व उसके अल्पवयस्क उत्तराधिकारी को तलवार से मौत के घाट उतारकर दास वंश का अन्त कर दिया था। इस तिथि से दिल्ली सल्तनत के अन्तर्गत खिलजी वंश का शासनकाल भी प्रारम्भ होता है। इस वंश का प्रथम सुल्तान जलालुद्दीन फिरोज खिलजी था जिसने 1290 से 1296 ई० तक शासन किया था।

(11) 1294 ई० *(1993, 94, 95, 99)*—इस तिथि को अलाउद्दीन खिलजी ने देवगिरि के राजा रामचन्द्र देव पर आक्रमण किया था।

(12) 1296 ई० *(1990, 94, 95, 97, 99)*—इस तिथि को अलाउद्दीन खिलजी, जो कि कड़ा और मानिकपुर का सूबेदार था, ने अपने चाचा जलालुद्दीन फिरोज खिलजी का सिर काटकर दिल्ली की राजगद्दी प्राप्त की थी। अलाउद्दीन खिलजी ने 1296 से 1316 ई० तक शासन किया था।

(13) 1297 ई० *(1993, 97)*—इस तिथि को अलाउद्दीन खिलजी के सेनापतियों—उलुग खाँ और नुसरत खाँ ने गुजरात की राजधानी अन्हिलवाड़ा पर आक्रमण किया था। इस युद्ध में पराजित होकर गुजरात के शासक राजा कर्ण को देवगिरि के राजा रामचन्द्र के पास शरण लेनी पड़ी। राजा कर्ण की रानी कमला देवी के साथ स्वयं अलाउद्दीन ने विवाह कर लिया था।

(14) 1303 ई० *(1997)*—इस तिथि को अलाउद्दीन खिलजी ने चित्तौड़ के राजा रत्नसेन पर आक्रमण करके उसे बन्दी बना लिया था। कहा जाता है कि रत्नसेन की रानी पद्मिनी की सुन्दरता पर मोहित होकर सुल्तान् ने चित्तौड़ पर हमला किया था, लेकिन अन्त में उसे अपने लक्ष्य में सफलता प्राप्त नहीं हुई थी। पद्मिनी की कथा इतिहास का एक विवादग्रस्त प्रश्न है।

(15) 1307 ई०—इस तिथि को अलाउद्दीन खिलजी के आदेश पर सेनापति मलिक काफूर ने देवगिरि पर आक्रमण किया था और वहाँ के राजा रामचन्द्र देव को पराजित करके अपने [illegible] दिल्ली लाया था। सुल्तान ने राजा रामचन्द्र् देव को 'राय रायन' की उपाधि भी दी थी।

(16) 1311 ई०— इस तिथि को मलिक काफूर ने सुदूर दक्षिण में स्थित मदुरा राज्य पर आक्रमण किया। इस राज्य पर पाण्ड्य वंश का शासन था। मलिक काफूर ने राज्य में चल रहे दो भाइयों के गृह-युद्ध का लाभ उठाकर मदुरा को जीतकर उसे बुरी तरह लूटा था।

(17) 1316 ई० *(1990, 97, 99)*—इस तिथि को खिलजी वंश के सुल्तान अलाउद्दीन की मृत्यु हुई थी। एलफिन्स्टन का मत है कि मलिक काफूर ने ही सुल्तान को जहर देकर मार डाला था, लेकिन सुल्तान की मृत्यु के 36 दिन बाद ही मलिक काफूर भी मृत्यु को प्राप्त हुआ और कुतुबुद्दीन मुबारकशाह दिल्ली की गद्दी पर बैठा था।

(18) 1320 ई० *(1990, 93, 95, 96, 99)*—इस तिथि को गाजी मलिक ने खुसरोशाह का वध करके खिलजी वंश का अन्त कर दिया था और दिल्ली सल्तनत के अन्तर्गत तुगलक वंश की स्थापना की थी। गाजी मलिक या ग्यासुद्दीन तुगलक ने 1320 से 1325 ई० तक दिल्ली पर शासन किया था।

(19) 1325 ई० *(1990, 92, 93)*—इस तिथि को लकड़ी के महल के गिर जाने के फलस्वरूप सुल्तान ग्यासुद्दीन तुगलक की मृत्यु हुई थी। कहा जाता है कि सुल्तान की मृत्यु उसके पुत्र जूना खाँ (मुहम्मद तुगलक) और निजामुद्दीन औलिया के षड्यन्त्र का परिणाम थी। इसी तिथि को जूना खाँ मुहम्मद तुगलक के नाम से दिल्ली की गद्दी पर बैठा था, जिसे अंग्रेज इतिहासकार 'पागल बादशाह' भी कहते हैं।

(20) 1327 ई० *(1993, 97)*—इस तिथि को सुल्तान मुहम्मद तुगलक ने अपनी राजधानी दिल्ली के स्थान पर दौलताबाद (देवगिरि) बनाई थी और समस्त दिल्लीवासियों को दौलताबाद चलने का आदेश दिया था।

(21) 1329 ई० *(1999)*—इस तिथि को मंगोल नेता तरमाशीरीन ने भारत पर आक्रमण किया था। मुहम्मद तुगलक ने उसे कुछ धन देकर दिल्ली की रक्षा की थी।

(22) 1330 ई० *(1995)*—इस तिथि को मुहम्मद तुगलक ने सांकेतिक मुद्रा का प्रचलन किया था।

(23) 1333 ई०—इस तिथि को अफ्रीकी यात्री इब्नेबतूता भारत आया था। उसने मुहम्मद तुगलक के शासनकाल की प्रमुख घटनाओं और उसके चरित्र का वर्णन अपनी पुस्तक **'किताब उल रहेला'** में किया है।

(24) 1336 ई० *(1990, 94, 95, 96, 97, 99)*—इसी तिथि को विजय नगर की स्थापना हुई थी।

(25) 1345 ई० *(1994, 99)*—इस तिथि को मुहम्मद तुगलक के विरुद्ध देवगिरि की जनता ने विद्रोह किया था।

(26) 1347 ई० *(1990, 92, 93, 94, 95, 96, 99)*—इस तिथि को हसन गंगू ने दक्षिण भारत में बहमनी राज्य की स्थापना की थी। वह बहमनी वंश का प्रथम शासक था और उसकी उपाधि **अबुल मुजफ्फर अलाउद्दीन बहमनशाह** थी। इसके राज्य की राजधानी गुलबर्गा थी।

(27) 1351 ई० *(1990, 91)*—इस तिथि को सुल्तान मुहम्मद तुगलक की थट्टा (सिन्ध) नामक स्थान पर मृत्यु हो गई थी और उसका चचेरा भाई रज्जब फिरोजशाह तुगलक के नाम से दिल्ली के सिंहासन पर आसीन हुआ।

(28) 1388 ई० *(1999)*—इस तिथि को सुल्तान फिरोजशाह की मृत्यु हुई थी। इसने 1351 ई० से 1388 ई० तक दिल्ली पर शासन किया। यह **'फतूहाते फिरोजशाही'** का लेखक और महान् भवन निर्माता था।

(29) 1393 ई० *(1999)*—इस तिथि को जौनपुर में शर्की राजवंश की स्थापना हुई थी।

(30) 1398 ई० *(1990, 92, 93, 94, 95, 96, 97, 99)*—इस तिथि को तैमूर लंग ने दिल्ली पर आक्रमण किया था। उसने दिल्ली में तीन दिन तक सामूहिक कत्लेआम करवाया था और इस नगर को बुरी तरह बरबाद करके स्वदेश लौट गया था।

(31) 1398 ई०–1399 ई० *(1997)*—यह तिथि भारत पर तैमूर लंग के आक्रमण से सम्बन्धित है। तुगलक वंश के शासक नासिरुद्दीन महमूद के शासनकाल में दिसम्बर, 1398 ई० से जनवरी, 1399 ई० तक तैमूर ने दिल्ली पर आक्रमण किया और निरन्तर 15 दिन तक लूटपाट की।

(32) 1414 ई० *(1990, 93)*—इस तिथि को दिल्ली सल्तनत के अन्तर्गत खिज्रखाँ ने तुगलक वंश का अन्त करके सैयद वंश की स्थापना की थी। इस राजवंश के सुल्तानों ने 1414 से 1451 ई० तक दिल्ली पर शासन किया था।

(33) 1420 ई० *(1993, 99)*—इस तिथि को निकोलो कोन्टी नामक विदेशी यात्री इटली से भारत आया था। इसने अपनी पुस्तक में तत्कालीन भारत का विशद् वर्णन किया है।

प्रश्न 2—निम्नांकित ऐतिहासिक स्थलों पर संक्षेप में टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) लखनौती—यह स्थान सल्तनत काल में बंगाल की राजधानी था। लखनौती के बाजार में सुल्तान बलबन ने विद्रोही सूबेदार तुगरिल बेग के सहयोगियों को क्रूरतापूर्वक दण्ड दिया था। बर्नी के अनुसार ऐसा दण्ड पहले कभी नहीं दिया गया था।

(2) कालिंजर—मध्य युग में यह नगर चन्देल राजाओं की राजधानी था। कालिंजर का दुर्ग अजेय माना जाता था। दुर्गम पहाड़ी पर स्थित इस दुर्ग को विजित करने में ही 1545 ई० में शेरशाह की मृत्यु हो गई थी।

(3) देवगिरि—यह नगर महाराष्ट्र में स्थित है। सल्तनत काल में देवगिरि यादव राजाओं की राजधानी था। 1294 ई० में सर्वप्रथम अलाउद्दीन खिलजी ने इस पर विजय प्राप्त की थी। मुहम्मद तुगलक ने भी देवगिरि को अपनी राजधानी बनाया था और इसका नाम दौलताबाद रखा था।

(4) द्वारसमुद्र—यह स्थान वर्तमान कर्नाटक राज्य में स्थित है। सल्तनत काल में यह नगर होयसल राजाओं की राजधानी था। अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति मलिक काफूर ने यहाँ के राजा वीर बल्लाल

द्वितीय को पराजित करके अपार धन-सम्पत्ति हर्जाने के रूप में प्राप्त की थी। यह नगर अपने कलात्मक मन्दिरों के लिए सारे देश में प्रसिद्ध है।

(5) बदायूँ—यह स्थान उत्तर प्रदेश के रुहेलखण्ड संभाग में स्थित है। दिल्ली सुल्तानों के समय में यह एक महत्त्वपूर्ण सूबा था। फारसी का प्रकाण्ड विद्वान् और मुगल सम्राट अकबर का समकालीन इतिहासकार अब्दुल कादिर बदायूँनी की जन्मभूमि भी यही स्थान था। बदायूँ में इल्तुतमिश की बनवाई हुई जामा मस्जिद दर्शनीय है। इसकी लम्बाई 282 फीट तथा चौड़ाई 220 फीट है। यहाँ इल्तुतमिश की बनवाई ईदगाह भी दर्शनीय है। बदायूँ में सैयद वंश के अन्तिम सुल्तान अलाउद्दीन आलमशाह का मकबरा तथा यहाँ मुगलकालीन शासक इखलास खाँ का रौजा भी है। बदायूँ की छोटी ज्यारत तथा बड़ी ज्यारत भी दर्शनीय है।

(6) माण्डू—यह मध्यकाल में मालवा प्रान्त (वर्तमान मध्य प्रदेश) का महत्त्वपूर्ण नगर था। इस नगर में अनेक सुन्दर इमारतें हैं, जिनमें बाजबहादुर और रानी रूपमती का महल, हिंडोला महल, जहाजमहल, हुशंगशाह का मकबरा और जामा मसजिद दर्शनीय हैं। यह नगर खिलजियों और राजपूत शासकों की राजधानी रह चुका है।

(7) वारंगल—यह नगर आंध्र प्रदेश में स्थित है। सल्तनत काल में वारंगल काकतीय वंश के राजाओं की राजधानी था। यहाँ का दुर्ग बड़ा ही सुदृढ़ और मजबूत था। अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति मलिक काफूर ने काकतीय राजा प्रताप रुद्रदेव द्वितीय को पराजित करके इस नगर को बुरी तरह लूटा था। यह नगर अपने भव्य मन्दिरों के लिए दर्शनीय है।

(8) मदुरा *(1990)*—इसे मदुराई भी कहते हैं। यह वर्तमान तमिलनाडु राज्य में स्थित है। मध्ययुग में मदुरा पाण्ड्य वंश के राजाओं की राजधानी थी। मलिक काफूर ने इस नगर को बुरी तरह लूटा था और वहाँ के मन्दिरों को नष्ट किया था। मदुरा का मीनाक्षी मन्दिर अपनी विशालता और भव्यता के लिए सारे संसार में प्रसिद्ध है।

(9) चित्तौड़—चित्तौड़ (मेवाड़) एक ऐतिहासिक नगर है। यह मध्य काल में सिसोदिया राजपूतों की राजधानी थी। चित्तौड़ को वीरों की जन्म-भूमि कहा जाता है। राजा कुम्भा ने चित्तौड़ में कीर्ति-स्तम्भ बनवाया था। रानी पद्मिनी इसी स्थान पर सती हुई थी। गौरा और बादल भी चित्तौड़ के ही राजपूत वीर थे, जिनकी वीरगाथाएँ सारे राजस्थान में प्रचलित हैं। चित्तौड़ का दुर्ग और मन्दिर भी दर्शनीय हैं।

(10) अजमेर *(1999)*—यह ऐतिहासिक और धार्मिक नगर राजस्थान में स्थित है। प्राचीन काल में इसे 'अजयमेरू' कहा जाता था। पृथ्वीराज चौहान के समय में इस नगर में अनेक भव्य मन्दिरों व दुर्गों का निर्माण हुआ। इस नगर में स्थित शेख मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह पर लाखों यात्री प्रतिवर्ष जाते हैं और अपनी मनोकामना पूरी करते हैं। इस नगर में तारागढ़ का किला, आनासागर झील, अढाई दिन का झोंपड़ा आदि दर्शनीय इमारतें हैं।

(11) कड़ा—कड़ा इलाहाबाद के निकट स्थित था। जलालुद्दीन खिलजी के काल में बलबन का भतीजा मलिक छज्जू कड़ा का सूबेदार बना। उसके पश्चात् अलाउद्दीन खिलजी वहाँ का सूबेदार नियुक्त हुआ। यहीं से उसने देवगिरि पर आक्रमण किया। उसने जलालुद्दीन को देवगिरि से लाई सम्पत्ति देने के लिए कड़ा बुलाया था। कड़ा पहुँचने पर जलालुद्दीन गंगा में एक नौका में बैठकर अलाउद्दीन से मिला था। यहीं अलाउद्दीन के एक सैनिक ने उसका वध किया था।

(12) फतेहपुर सीकरी *(1993, 94, 95)*—आगरा से 36·8 किमी की दूरी पर सीकरी नामक एक गाँव स्थित है। इसी गाँव में शेख सलीम चिश्ती के आशीर्वाद से अकबर के पुत्र सलीम का जन्म हुआ था। अतः इस गाँव से विशेष लगाव होने के कारण अकबर ने 1569 ई० ने इस गाँव को फतेहपुर सीकरी नगर के रूप में विकसित किया। उसके आदेश से यहाँ अनेक भव्य भवनों का निर्माण भी कराया गया जिनमें दीवान-ए-खास, दीवान-ए-आम, जोधाबाई का महल, हवा महल, पंच महल आदि दर्शनीय स्थल हैं।

प्रश्न 3—निम्नांकित ऐतिहासिक व्यक्तियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) रजिया बेगम *(1990, 91, 92, 94, 96, 99)*—रजिया बेगम दास वंश के सुल्तान इल्तुतमिश की ज्येष्ठ पुत्री थी। रजिया की बुद्धिमत्ता, योग्यता और रण-कौशल को देखकर इल्तुतमिश ने उसे अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया था, किन्तु सुल्तान की मृत्यु के बाद शम्सी अमीरों ने रजिया को इस कारण से राजगद्दी पर न बैठने दिया, क्योंकि वह एक महिला थी और वे एक महिला के समक्ष नतमस्तक होने के लिए तैयार नहीं थे। लेकिन इल्तुतमिश का अयोग्य पुत्र रुकनुद्दीन फिरोजशाह अधिक समय तक शासन न कर सका और रजिया ने अपनी योग्यता से 1236 ई० में राज सिंहासन प्राप्त कर लिया। रजिया को अपने शासनकाल में अनेक षड्यन्त्रों का सामना करना पड़ा लेकिन उसने अपनी योग्यता से विरोधियों का दमन करके राज्य में शान्ति स्थापित की। रजिया बड़ी योग्य शासिका थी। वह दिल्ली की पहली तुर्क-सुल्ताना थी, जिसने अमीरों को अपने नियन्त्रण में रखा। वह मर्दाने वस्त्र पहनती थी और दरबार में स्वयं शासन का संचालन करती थी। रजिया के ये कार्य बहुत-से मुसलमानों को पसन्द नहीं थे। इसलिए उन्होंने उसे पदच्युत करने के लिए षड्यन्त्र रचना शुरू कर दिया। अप्रैल 1240 ई० में षड्यन्त्रकारियों ने उसे जेल में डाल दिया और इल्तुतमिश के तीसरे पुत्र बहराम को गद्दी पर बैठा दिया।

(2) इब्नेबतूता *(1992, 97)*—यह अफ्रीका का पर्यटक था, जो कि मुहम्मद तुगलक के शासन काल में भारत आया था। दिल्ली में आने पर उसका भव्य स्वागत हुआ। मुहम्मद तुगलक ने उसे अपनी राजसभा का सदस्य बनाया और उसे दिल्ली का काजी नियुक्त कर दिया। आठ वर्ष तक उसने इस पद पर कार्य किया। 1342 ई० में उसे राजदूत बनाकर चीन भेजा गया, परन्तु एक दुर्घटना के कारण उसे वापस लौटना पड़ा। अन्त में, दिल्ली से विभिन्न स्थानों का भ्रमण करता हुआ वह स्वदेश (अफ्रीका) लौट गया।

इब्नेबतूता ने अपनी भारत यात्रा का वृत्तान्त लिखा है, जो 'किताब-उल रहेला' के नाम से प्रसिद्ध है। यह ग्रन्थ अरबी भाषा में लिखा गया था और उसमें मुहम्मद तुगलक के शासन काल की घटनाओं का विस्तृत वर्णन किया गया है।

(3) जियाउद्दीन बरनी *(1994, 97)*—यह सल्तनत काल का सुप्रसिद्ध साहित्यकार था। जियाउद्दीन द्वारा रचित 'तारीख-ए-फिरोजशाही' एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है। इस ग्रन्थ में इल्तुतमिश के शासन काल से लेकर फिरोज तुगलक के शासनकाल के प्रारम्भिक छह वर्षों तक का क्रमबद्ध विवरण प्रस्तुत किया गया है।

(4) मलिक काफूर *(1990, 96)*—मलिक काफूर, अलाउद्दीन खिजली का महान् सेनापति एवं प्रधानमन्त्री था। वह हिन्दू था और खम्भात (गुजरात) की लूट में वह अलाउद्दीन के हाथ लगा था। उसे एक हजार दीनार देकर खरीदा गया था, इसलिए इसका नाम 'हजार दीनारी' भी पड़ गया था।

मलिक काफूर बड़ा योग्य और सुन्दर व्यक्ति था। कहते हैं कि अलाउद्दीन उसके सौन्दर्य पर मुग्ध था। अलाउद्दीन की दक्षिण विजयों में सफलता का अधिकांश श्रेय मलिक काफूर को ही है। सुल्तान के अन्तिम दिनों में मलिक काफूर दिल्ली सल्तनत का सर्वेसर्वा बन गया था। कहा जाता है कि इसने ही अलाउद्दीन खिलजी को जहर देकर मार डाला था और उसके पुत्रों को अन्धा करवा दिया था। मलिक काफूर को बाद में उसके कुकृत्यों का दण्ड मिला और मुबारकशाह ने उसे धोखे से मरवा दिया।

(5) तैमूर *(1991 93, 94, 95, 96)*—तैमूर बरलास तुर्क शाखा का एक प्रभावशाली नेता था। उसे बचपन से कुरान पढ़ने, तलवार चलाने और घोड़े पर चढ़ने का शौक था। तैमूर लंग शक्ति और तलवार का धनी था। उसने भारत पर 1398 ई० में आक्रमण करते हुए कहा था, "भारत पर आक्रमण करने का हमारा उद्देश्य काफिरों के विरुद्ध लड़ाई करना, पैगम्बर के आदेशानुसार उन्हें इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए बाध्य करना, उस देश को बहुदेववाद और अन्धविश्वास से छुटकारा दिलाना तथा मन्दिरों की मूर्तियों की तोड़-फोड़ करना है।" वस्तुतः तैमूर लंग का मूल उद्देश्य भारत की अपार सम्पत्ति एवं धन लूटना भी था। इसीलिए तैमूर ने अपने आक्रमणों के अन्तर्गत पंजाब एवं दिल्ली के आस-पास के क्षेत्रों को भी जीभरकर लूटा था। उसने दिल्ली में तीन दिन तक सामूहिक कत्लेआम करवाया था और इस कत्लेआम में एक लाख सैनिकों को भी मरवा दिया था।

तैमूर के आक्रमण के परिणामस्वरूप हिन्दू और मुस्लिमों में विनाशकारी द्वेष की भावना जाग्रत हो गई। हिन्दुओं के मन्दिरों को बहुत अधिक क्षति पहुँचाई और बहुत से हिन्दुओं को मुसलमान बना लिया गया, जिससे हिन्दू जनता की धार्मिक भावना को बहुत अधिक ठेस पहुँची। तैमूर ने भारत को बुरी तरह लूटा और यहाँ के मन्दिरों को लूटकर देश को निर्धन बना दिया।

(6) अमीर खुसरो *(1992)*—अमीर खुसरो का जन्म 1253 ई० में कस्बा पटियाली (जिला एटा) में हुआ था। उसके पिता का नाम अमीर सैफुद्दीन था। उन्होंने बलबन से लेकर मुहम्मद तुगलक तक के काल के सात सुल्तानों का काल देखा था। वे बलबन के पुत्र शहजादा मुहम्मद के साथ रहते थे। उसकी मृत्यु के पश्चात् वे दिल्ली दरबार से सम्बद्ध रहे। वे प्रसिद्ध सन्त निजामुद्दीन औलिया के शिष्य थे। उन्होंने बहुत-सी पुस्तकों की रचना की। उनके ग्रन्थों से उस काल के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन की झलक मिलती है। वे उर्दू के पहले कवि माने जाते हैं। वह फारसी के एक महान् कवि थे। वे एक महान् संगीतज्ञ भी थे। उन्हें तूताए-हिन्द कहा जाता है। उनकी कविताएँ तथा पहेलियाँ आज भी प्रसिद्ध हैं। उनका मजार दिल्ली में निजामुद्दीन औलिया की दरगाह में है।

(7) चंगेज खाँ *(1990, 94, 97)*—चंगेज खाँ मंगोल सरदार हलाकू खाँ का भतीजा था। वह बड़ा ही क्रूर तथा अत्याचारी था। चंगेज खाँ ने अपनी वीरता व शौर्य से सम्पूर्ण मध्य एशिया को रौंद डाला। उसे **'पृथ्वी का प्रकोप'** कहा जाता था। 1221 ई० में उसने भारत पर भी आक्रमण किया था, लेकिन भीषण गर्मी व इल्तुतमिश की दूरदर्शिता के कारण वह वापस लौट गया था।

(8) बलबन *(1995)*—ग्यासुद्दीन बलबन इल्बरी कबीले का तुर्क था। युवावस्था में ही उसे मंगोलों द्वारा बन्दी बना लिया गया था और बसरा के ख्वाजा जमालुद्दीन को बेच दिया गया था। जमालुद्दीन ने उसे शिक्षित किया और 1222 ई० में इल्तुतमिश को बेच दिया। इल्तुतमिश ने बलबन की योग्यता एवं विलक्षण बुद्धि देखकर उसे अपने चालीस गुलामों में सम्मिलित कर लिया। इल्तुतमिश की मृत्यु के उपरान्त रजिया, बहरामशाह, मसूदशाह और नासिरुद्दीन महमूद के शासनकाल में भी वह सल्तनत के विभिन्न महत्त्वपूर्ण पदों पर कार्य करता रहा। सुल्तान नासिरुद्दीन की मृत्यु के बाद 1266 ई० में वह दिल्ली का शासक बन गया।

बलबन को सुल्तान बनते ही अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। बलबन ने अत्यन्त योग्यता और कुशलता के साथ उनका सामना किया तथा सफलता प्राप्त की। बलबन के चरित्र और कार्यों का मूल्यांकन करते हुए डॉ० ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है, **"बलबन एक महान् योद्धा, शासक और राजनीतिज्ञ था। उसने घोर संकटमय परिस्थितियों में मुस्लिम राज्य को उसकी शैशवावस्था में नष्ट होने से बचाया। इस कारण उसे मध्यकालीन भारत के इतिहास में सदैव महान् स्थान प्राप्त रहेगा।"**

(9) मलिक मकबूल *(1999)*—मलिक मकबूल अलाउद्दीन खिलजी के सेनापति उलूग खाँ का विश्वासपात्र सेवक था। अलाउद्दीन खिलजी ने अपने बाजार-नियन्त्रण प्रबन्ध को सफल करने के लिए दिल्ली में मलिक मकबूल को शहना-ए-मण्डी (बाजार का प्रमुख अधिकारी) नियुक्त किया। मलिक मकबूल बड़ा ही कठोर तथा निर्दयी व्यक्ति था। वह बेईमान व्यापारियों तथा रिश्वतखोर कर्मचारियों को कोड़ों से पीटता था और बाजार की दैनिक रिपोर्ट सुलतान के पास भेजता था। बाजार नियन्त्रण व्यवस्था को सफल करने में मलिक मकबूल का महत्त्वपूर्ण योगदान था।

16 दिल्ली सल्तनत का विघटन (1414–1526 ई०)

[सैयद वंश, लोदी वंश—बहलोल लोदी, सिकन्दर लोदी तथा इब्राहीम लोदी एवं दिल्ली सल्तनत के पतन के कारण]

"दिल्ली सल्तनत युग का इतिहास एक लम्बा नाटक प्रस्तुत करता है, जिसमें विभिन्न राजवंशों का शीघ्रता से क्रमिक उत्थान तथा पतन हुआ, जिनकी औसत आयु लगभग सत्तर वर्ष थी।" —डॉ० मेंहदी हुसैन

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—सिकन्दर लोदी की सफलताओं व चरित्र का मूल्यांकन कीजिए। *(1990)*

अथवा 'सिकन्दर लोदी धार्मिक कट्टरता में औरंगजेब का अग्रगामी था।' समीक्षा कीजिए।

अथवा 'सिकन्दर लोदी सल्तनत का अन्तिम योग्य सुल्तान था।' इस कथन की विवेचना उसके कार्यों के आधार पर कीजिए। *(1988)*

अथवा "सिकन्दर लोदी, लोदी वंश का सबसे शक्तिशाली और महान् सुल्तान था।" इस कथन की पुष्टि कीजिए।

अथवा क्या आप इस धारणा से सहमत हैं कि सुल्तान सिकन्दर लोदी, लोदी वंश का सर्वश्रेष्ठ शासक था? *(1993)*

अथवा "सिकन्दर लोदी अपने वंश का सर्वश्रेष्ठ शासक था।" इस कथन की समीक्षा उसकी विजयों एवं चरित्र के आधार पर कीजिए। *(1996)*

अथवा सिकन्दर लोदी पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। *(1999)*

उत्तर— **सिकन्दर लोदी का शासनकाल (1489–1517 ई०)**

बहलोल लोदी की मृत्यु 1489 ई० में हुई थी। उसके निधन के पश्चात् उसके दो पुत्रों में सिंहासन के लिए युद्ध हुआ। एक दल बहलोल लोदी के तीसरे लड़के निजाम खाँ को सुल्तान बनाना चाहता था और दूसरे दल का समर्थन बहलोल लोदी के पुत्र बारबक शाह को प्राप्त था, जो जौनपुर का शासक था। इस संघर्ष में निजाम खाँ के समर्थकों को सफलता मिली और उन्होंने निजाम खाँ को सिकन्दर शाह के नाम से 1489 ई० में दिल्ली के सिंहासन पर बैठाया।

शासनकाल की मुख्य घटनाएँ
(सिकन्दर लोदी के कार्य अथवा उसकी सफलताएँ)

सिकन्दर लोदी के विभिन्न कार्यों पर आधारित सफलताओं अथवा उसके शासनकाल की मुख्य घटनाओं का संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है—

(1) **आलम खाँ का दमन**—आलम खाँ सिकन्दर शाह लोदी का चाचा था। वह सिंहासन-प्राप्ति के लिए सिकन्दर लोदी के विरुद्ध षड्यन्त्र कर रहा था। उसने सिकन्दर शाह के एक शत्रु ईसा खाँ से गठबन्धन कर लिया, क्योंकि ईसा खाँ भी अपने को दिल्ली की गद्दी का दावेदार समझता था। ईसा खाँ (बहलोल का चचेरा भाई) ने निजाम खाँ की माता से अशिष्टतापूर्ण शब्दों में कहा भी था कि सुनार की पुत्री का पुत्र सुल्तान के पद के योग्य नहीं है। सिकन्दर ने इन दोनों शत्रुओं को हटाने के लिए एक चाल चली। उसने इटावा की सूबेदारी देकर आलम खाँ को अपनी ओर मिला लिया और ईसा खाँ को युद्ध में पराजित कर दिया। ईसा खाँ अपनी पराजय से निराश होकर शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो गया।

(2) आजम हुमायूँ का दमन—आजम हुमायूँ भी सिकन्दर शाह का भतीजा होने के नाते अपने को दिल्ली के सिंहासन का अधिकारी समझता था और सिकन्दर शाह के विरुद्ध षड्यन्त्र कराने में लगा हुआ था। सिकन्दर लोदी ने इसको हराकर अपने रास्ते से हटा दिया और आजम हुमायूँ के राज्य कालपी पर अधिकार कर लिया।

सिकन्दर लोदी के शासनकाल की मुख्य घटनाएँ
- (1) आलम खाँ का दमन
- (2) आजम हुमायूँ का दमन
- (3) तातार खाँ का दमन
- (4) जौनपुर की समस्या का अन्त
- (5) आन्तरिक शान्ति के उपाय
- (6) हिन्दुओं पर अत्याचार
- (7) साम्राज्य विस्तार :
  - (i) बिहार अभियान
  - (ii) बंगाल की सन्धि
  - (iii) अन्य अभियान।

(3) तातार खाँ का दमन—सिकन्दर शाह ने अपने घोर विरोधी तातार खाँ की ओर भी ध्यान दिया और उसको भी युद्ध में पराजित किया। बाद में उसने तातार खाँ की जागीर उसे ही वापस कर दी।

(4) जौनपुर की समस्या का अन्त—जौनपुर की समस्या बहलोल लोदी के समय में भी एक प्रमुख समस्या रही थी। उसने जौनपुर के शासक हुसैनशाह को पराजित करके उसके स्थान पर अपने पुत्र बारबक शाह को जौनपुर का शासक बनाया था। सिकन्दर ने बारबक शाह से सन्धि करके जौनपुर की समस्या को हल करना चाहा, किन्तु जौनपुर के अपदस्थ शासक हुसैनशाह ने बारबक शाह को भड़काकर दोनों भाइयों की सेना को आमने-सामने लाकर खड़ा कर दिया। सिकन्दर शाह ने बारबक शाह को पराजित कर दिया और भाई होने के नाते उसे क्षमा करके पुनः जौनपुर का शासक बना रहने दिया। कालान्तर में हुसैनशाह से प्रेरित होकर उसने फिर विद्रोह कर दिया। इस बार सिकन्दर लोदी ने उसको बन्दी बना लिया और जौनपुर पर अपना आधिपत्य स्थापित करके वहाँ की शासन-व्यवस्था का संचालन अपने हाथों में ले लिया।

(5) आन्तरिक शान्ति के उपाय—सुल्तान सिकन्दर लोदी अत्यन्त ईमानदार और एक कठोर शासक था। उसने उन लोगों को कठोर दण्ड दिया था, जो सरकारी हिसाब-किताब में भ्रष्टाचार के दोषी थे। उसने गुप्तचरों की सहायता से अमीरों पर भी कठोर नियन्त्रण रखा। उसने जन-कल्याण की अनेक योजनाएँ बनाईं और आवश्यकता की सभी वस्तुओं के भाव सस्ते करवा दिए। सिकन्दर लोदी साम्राज्य में होने वाली छोटी से छोटी घटना की भी जानकारी रखता था।

(6) हिन्दुओं पर अत्याचार—सिकन्दर लोदी कट्टर मुसलमान था। उसने हिन्दुओं को यमुना के घाटों पर स्नान करने से रोक दिया था। सुल्तान ने अपनी धार्मिक कट्टरता का परिचय उस समय दिया था, जब उसने नगरकोट में ज्वालादेवी के मन्दिर की पवित्र मूर्ति को तोड़ दिया था और उसके टुकड़े-टुकड़े करके कसाइयों में बाँट दिए थे। इन टुकड़ों को कसाई मांस तौलने में बाँट के स्थान पर प्रयोग करते थे। सिकन्दर लोदी की इस धार्मिक कट्टरता के कारण ही यह कहा जाता है कि, **"सिकन्दर लोदी धार्मिक कट्टरता में औरंगजेब का अग्रगामी था।"**

(7) साम्राज्य-विस्तार—सुल्तान सिकन्दर लोदी एक महत्त्वाकांक्षी सुल्तान था। उसने अपने शासनकाल में साम्राज्य-विस्तार के लिए निम्नलिखित अभियान किए—

(i) बिहार अभियान—जौनपुर का भूतपूर्व शासक हुसैनशाह अभी भी सुल्तान के विरुद्ध बिहार के जमींदारों को भड़का रहा था। जमींदारों के नेता भीम (जुगा) को हुसैनशाह सहायता दे रहा था। सुल्तान ने राजा भीम पर आक्रमण कर दिया। उसने हुसैनशाह तथा भीम दोनों को ही पराजित करके बिहार को दिल्ली सल्तनत में मिला लिया।

(ii) बंगाल की सन्धि—बंगाल में अलाउद्दीन हुसैनशाह का शासन था। बिहार में सुल्तान सिकन्दर शाह की बढ़ती हुई शक्ति से वह भयभीत हो गया था। उसने अपने पुत्र दानियाल की अध्यक्षता में एक सेना दिल्ली की शक्ति में गतिरोध उत्पन्न करने के लिए भेज दी थी। सिकन्दरशाह लोदी ने बिना युद्ध किए ही बंगाल के शासक से सन्धि कर ली। दोनों ने एक-दूसरे को संकटकाल में सहायता देने का वचन दिया, साथ ही बंगाल के शासक अलाउद्दीन हुसैनशाह ने सुल्तान सिकन्दरशाह को यह आश्वासन भी दिया कि वह सुल्तान के विरोधियों को अपने यहाँ शरण नहीं देगा।

(iii) अन्य अभियान—सुल्तान सिकन्दर शाह ने अपने साम्राज्य-विस्तार के अभियान में 1502 ई० में धौलपुर तथा 1504 ई० में आगरा आदि स्थानों पर अपना प्रभुत्व जमाया। 1510 ई० में सिकन्दरशाह ने नागौर में विजय प्राप्त करके अपने साम्राज्य की सीमा बढ़ा ली। इसके अतिरिक्त, सिकन्दरशाह ने मन्दैला उतगिरि, नरवर और चन्देरी पर भी अपना अधिकार कर लिया था।

सिकन्दर लोदी के कार्यों एवं चरित्र का मूल्यांकन

सुल्तान सिकन्दर लोदी ने अपने शासनकाल में अमीरों का दमन किया। गुप्तचरों की सफल व्यवस्था करके उसने देश में सुख व शान्ति की स्थापना की। इसके अतिरिक्त, बिहार व जौनपुर की समस्याओं का अन्त करके भी सिकन्दरशाह ने अपने साम्राज्य में शान्ति स्थापित की थी। इस सम्बन्ध में डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने लिखा है कि, "सिकन्दर ने प्रशासन में अनुशासन ला दिया। सुल्तान तथा राजा का सम्मान, जो उत्तरकालीन तुगलकों के समय में नष्ट हो गया था, सिकन्दर ने पुनःस्थापित कर दिया था।" इसके अतिरिक्त, वह एक कुशल सेनापति भी था। सिकन्दरशाह की न्याय व्यवस्था की प्रशंसा करते हुए अब्दुल्ला ने अपनी पुस्तक **'तारीखे-दाऊदी'** में लिखा है कि, "सुल्तान सिकन्दर का न्याय इतना महान् था कि एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति की तरफ कठोरता से देख भी नहीं सकता था।" दयालु तथा लोकप्रिय होते हुए भी सुल्तान में धार्मिक कट्टरता का दोष था। इस सम्बन्ध में प्रो० एस० आर० शर्मा ने लिखा है, "सैनिक यात्राओं के दौर में जब कभी भी सम्भव हो सकता था, हिन्दू मन्दिरों को अपवित्र करना तथा तोड़ना उसका नित्य कर्म बन गया था।"

डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने सिकन्दर लोदी के चरित्र का मूल्यांकन करते हुए लिखा है, "सिकन्दर लोदी, लोदी वंश का महानतम् सुल्तान था। मध्यकालीन इतिहासकारों ने उसके चरित्र की अतिशय प्रशंसा इस प्रकार की है कि वह बहुत ही योग्य, न्यायप्रिय, उदार तथा ईश्वर से डरने वाला सुल्तान था।"

सिकन्दर की धार्मिक नीति पर प्रकाश डालते हुए डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने लिखा है कि, "शासक के रूप में सिकन्दर के चरित्र पर सबसे बड़ा कलंक उसकी धर्मान्धता थी। सैनिक अभियानों के दौरान हिन्दू मन्दिरों का विध्वंस करना और उसके स्थान पर मसजिदें खड़ी करना उसने एक नियम बना लिया था। हिन्दू धर्म को कुचलने तथा इस्लाम का उत्थान करने के लिए उसने हर सम्भव प्रयत्न किया। उसकी अधीनता में दिल्ली सल्तनत इस्लाम के प्रचार का उतना ही सक्रिय साधन बन गई, जितना कि फिरोज तुगलक के समय में थी।"

प्रश्न 2—इब्राहीम लोदी की नीति का परीक्षण कीजिए। पानीपत के युद्ध में उसकी हार के क्या कारण थे? *(1999)*

उत्तर—

इब्राहीम लोदी की नीति

लोदी वंश (1451-1526 ई०) के अन्तिम सुल्तान इब्राहीम लोदी (1517-1526 ई०) की मूर्खतापूर्ण नीति तथा दम्भी प्रवृत्ति के कारण अफगान अमीरों में भारी क्षोभ और असंतोष उत्पन्न हो गया। उसने गद्दी पर बैठते ही अफगानों के प्रति बड़ी कठोर नीति अपनाई। अपनी निरंकुश सत्ता स्थापित करने और जलाल खाँ के विद्रोह का दमन करने में उसे जो सफलता मिली, उससे उसका सिर फिर गया और उसने एक निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी शासक की भाँति आचरण करना आरम्भ कर दिया। उसने तुर्कों के राजत्व सिद्धान्त को लागू करने तथा शक्ति का केन्द्रीकरण करने का प्रयत्न किया, जिसके कारण उसे अपनी जान और गद्दी दोनों ही खो देनी पड़ीं।

इब्राहीम लोदी ने अफगानों के प्रति बड़ा दुर्व्यवहार करना प्रारम्भ कर दिया। उसने अफगानी परम्परा को त्यागकर अमीरों को दरबार में सीने पर हाथ बाँधकर खड़ा रहने के लिए बाध्य किया और उन पर कठोर रस्मो-रिवाज लागू किए। उसके इस आचरण से अमीर बहुत रुष्ट तथा असन्तुष्ट हो गए। इसी समय आजम हुमायूँ तथा उसके पुत्र फतेह को इब्राहीम ने जेल में डलवाकर अमीरों को विद्रोह करने के लिए बाध्य किया। इस्लाम खाँ के विद्रोह का दमन करके इब्राहीम पूर्णरूप से निरंकुश तथा अहंकारी सुल्तान

बन गया। फलस्वरूप बहादुर खाँ ने 'मुहम्मदशाह' की उपाधि धारण करके अपने को विहार का सुल्तान घोषित कर दिया। पंजाब के सूबेदार दौलत खाँ तथा आलम खाँ ने इब्राहीम को पद्च्युत करने के लिए बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए आमंत्रित किया। 1526 ई० में बाबर ने एक विशाल सेना के साथ भारत पर आक्रमण किया और 21 अप्रैल, 1526 ई० को पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहीम लड़ता हुआ मारा गया। उसकी मृत्यु के साथ ही भारत में दिल्ली सल्तन्त का भी अवसान हो गया।

पानीपत के युद्ध में इब्राहीम लोदी की पराजय के कारण

पानीपत के प्रथम युद्ध (1526 ई०) भारतीय इतिहास के निर्णायक युद्धों में से एक था। इस युद्ध में बाबर की विजय और इब्राहीम लोदी की हार के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

(1) अफगानों का असंतोष—इब्राहीम लोदी की कठोर व अपमानजनक नीति से अफगान सरदार बहुत असन्तुष्ट थे। दौलत खाँ और आजम खाँ ने तो बाबर को आक्रमण के लिए आमन्त्रित भी किया था। अन्य अफगान सरदार भी असन्तुष्ट होकर उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रच रहे थे।

पानीपत युद्ध में इब्राहीम लोदी की पराजय के कारण

(1) अफगानों का असंतोष
(2) इब्राहीम लोदी की अयोग्यता
(3) बाबर का व्यक्तित्व
(4) मुगल सेना का शौर्य
(5) बारूद का प्रयोग
(6) तुलगमा व्यूह रचना
(7) अफगानों का नैतिक पतन।

(2) इब्राहीम लोदी की अयोग्यता—इब्राहीम एक अनुभवहीन सेनापति था। वह युद्धभूमि में बिना किसी योजना के आगे बढ़ जाता था और कभी पीछे हट जाता था। इसके विपरीत बाबर एक वीर और अनुभवी सेनापति था।

(3) बाबर का व्यक्तित्व—बाबर का व्यक्तित्व बड़ा ही आकर्षक और प्रभावशाली था। वह अपने सैनिकों को उत्साहित करने में प्रवीण था।

(4) मुगल सेना का शौर्य—मुगल सेना शौर्ययुक्त और अनुशासित थी। मुगल सैनिक अत्यन्त वीर, साहसी एवं रणकुशल थे। वे पहले ही अनेक युद्ध लड़कर पर्याप्त अनुभव प्राप्त कर चुके थे। यही कारण था कि मुगल सेना अफगानों की सेना की तुलना में बहुत कम होते हुए भी विजयी रही।

(5) बारूद का प्रयोग—बाबर ने पहली बार पानीपत के युद्ध में बारूद का प्रयोग किया। बाबर की तोपों के समक्ष अफगान सेना भेड़-बकरियों के समान तितर-बितर हो गई।

(6) तुलगमा व्यूह रचना—बाबर ने ईरान के बहादुर सेनापति शैवानी खाँ से तुलगमा व्यूह रचना सीखी थी। यह व्यूह रचना बड़ी आक्रामक और गतिशील थी। इसके अन्तर्गत शत्रु सेना पर दो तरफ से सैनिक आक्रमण करते थे और सामने से सेना पर तोपों से प्रहार किया जाता था। इस व्यूह रचना और युद्ध-कौशल से इब्राहीम अनभिज्ञ था और यही तथ्य उसकी हार का प्रमुख कारण था।

(7) अफगानों का नैतिक पतन—अफगान सैनिकों का नैतिक पतन भी इब्राहीम की हार के लिए एक सीमा तक उत्तरदायी था।

प्रश्न 3—दिल्ली सल्तनत के पतन के कारणों की समीक्षा कीजिए। *(1990, 91, 95, 96)*

अथवा **"केन्द्रीय शासन की दुर्बलता ही दिल्ली सल्तनत के पतन का कारण बनी।" इस कथन की विवेचना कीजिए।**

अथवा **दिल्ली सल्तनत के पतन के चार प्रमुख कारणों का उल्लेख कीजिए।** *(1991)*

अथवा **दिल्ली सल्तनत के पतन के कारणों पर प्रकाश डालिए।** *(1994, 95)*

उत्तर—

दिल्ली सल्तनत के पतन के कारण

दिल्ली सल्तनत के अन्तर्गत पाँच राजवंशों ने शासन किया लेकिन सभी राजवंशों का शासन अल्पकालीन और अस्थिर रहा। दिल्ली सल्तनत के पतन के लिए निम्नलिखित कारण उत्तरदायी थे—

(1) उत्तराधिकार के नियम का अभाव—सल्तनत युग में उत्तराधिकार का कोई निश्चित नियम नहीं था। योग्य व्यक्ति अपनी वीरता और तलवार के बल पर गद्दी प्राप्त करते रहे थे। इल्तुतमिश, जलालुद्दीन

खिलजी, अलाउद्दीन खिलजी, ग्यासुद्दीन तुगलक और बहलोल लोदी ने अपनी वीरता एवं योग्यता के आधार पर ही गद्दी पर अधिकार किया था लेकिन कालान्तर में दिल्ली के सिंहासन पर बैठने वाले अयोग्य और शक्तिहीन सुल्तान दिल्ली को सुरक्षित रखने में असफल रहे।

(2) केन्द्रीय सरकार की दुर्बलता—दिल्ली सल्तनत की केन्द्रीय सरकार कानून पर आधारित न होकर सुल्तान के व्यक्तिगत शासन पर आधारित थी। सुल्तान की प्रतिभा, शक्ति, व्यक्तित्व तथा कार्यकुशलता ही केन्द्रीय शासन का आधार थी। अतः इल्तुतमिश की मृत्यु के उपरान्त रुकनुद्दीन फ़िरोज़, रजिया, बहरामशाह तथा अलाउद्दीन मसूदशाह के शासनकाल में सर्वत्र अराजकता, विश्वासघात, हत्या तथा षड्यन्त्र का साम्राज्य स्थापित हो गया। कैकूबाद की विलासिता ने शासन सत्ता को कोतवाल निजामुद्दीन के दामाद के हाथ में पहुँचा दिया। इसी प्रकार, आगे चलकर अलाउद्दीन खिलजी ने अपने चाचा जलालुद्दीन का धोखे से वध करवाया और अपना निरंकुश तथा स्वेच्छाचारी शासन स्थापित किया। अलाउद्दीन के पश्चात् दिल्ली सल्तनत का शासन उसके सेनापति मलिक काफूर के षड्यन्त्र का शिकार बन गया। बाद में, ग्यासुद्दीन तुगलक ने खुसरो को मारकर तुगलक वंश की स्थापना की। यद्यपि तुगलक वंश के काल में साम्राज्य का अत्यधिक विस्तार हो गया, परन्तु मुहम्मद तुगलक की योजनाओं तथा फिरोज तुगलक की धार्मिक नीति ने साम्राज्य को पतन के शिखर तक पहुँचा दिया। अतः केन्द्रीय शासन केवल सुल्तान की इच्छा पर आधारित होने से दिल्ली सल्तनत का पतन हो गया। डॉ० मेंहदी हुसैन के अनुसार, "दिल्ली सल्तनत में एक संविधान, एक स्थायी कार्यपालिका या न्यायपालिका की कमी थी, जिस प्रकार इंगलैण्ड में मध्यकालीन संसद थी। परिणामस्वरूप राजवंशों का द्रुतगति से उत्थान और पतन हो गया।" इसी प्रकार, यह कथन भी उचित ही है कि, "केन्द्रीय शासन की दुर्बलता ही दिल्ली सल्तनत के पतन का कारण बनी।"

दिल्ली सल्तनत के पतन के कारण

(1) उत्तराधिकार के नियम का अभाव
(2) केन्द्रीय सरकार की दुर्बलता
(3) सैनिक शासन
(4) मंगोल आक्रमण
(5) स्थायी सेना का अभाव
(6) शासन-व्यवस्था की शिथिलता
(7) धर्म-सापेक्ष राज्य
(8) दास-प्रथा
(9) हिन्दुओं और राजपूतों के विद्रोह
(10) जनता का विरोध।

(3) सैनिक शासन—दिल्ली सल्तनत के अन्तर्गत सम्पूर्ण शासन सैनिक शक्ति पर आधारित था। लेकिन बलबन और अलाउद्दीन के अतिरिक्त सभी सुल्तान सैनिक व्यवस्था को सुव्यवस्थित और सुदृढ़ बनाने में असफल रहे। फलस्वरूप सैनिक शक्ति पर आधारित दिल्ली साम्राज्य शीघ्र ही नष्ट हो गया।

(4) मंगोल आक्रमण—मंगोलों के बार-बार होने वाले आक्रमणों ने भी दिल्ली सल्तनत का पतन अवश्यम्भावी बना दिया था। डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव का मत है कि, "बार-बार होने वाले मंगोल आक्रमणों ने भी जिनका प्रारम्भ 1240 ई० में रजिया की मृत्यु के बाद हुआ, दिल्ली सल्तनत के भाग्य और नीति पर गहरा प्रभाव डाला।"

सल्तनत काल में मध्य एशिया की बर्बर मंगोल जाति ने भारत पर अनेक आक्रमण किए। बलबन के काल में मंगोलों ने उसके योग्य पुत्र शहजादा मुहम्मद को मार दिया था। अलाउद्दीन के काल में मंगोलों ने छह बार भारत पर आक्रमण किया। मुहम्मद तुगलक के काल में भी 'तरमाशीरीन' के नेतृत्व में मंगोल भारत पर चढ़ आए। इन मंगोलों के आक्रमणों ने दिल्ली सल्तनत को अत्यन्त क्षति पहुँचाई थी।

(5) स्थायी सेना का अभाव—दिल्ली सल्तनत की अपनी कोई सेना नहीं थी। संकट के समय सुल्तान अमीरों और प्रान्तीय शासकों की सेनाओं की सहायता प्राप्त करते थे, जो सुल्तान के प्रति वफ़ादार न होकर अपने मालिक की भक्त होती थी और अपने मालिक के आदेश पर प्रायः सुल्तान के विरुद्ध विश्वासघात भी कर दिया करती थी।

(6) शासन-व्यवस्था की शिथिलता—अयोग्य तथा दुर्बल सुल्तानों के समय में सल्तनत की शासन-व्यवस्था अत्यन्त शिथिल हो जाती थी और अधिकारीगण षड्यन्त्रों और कुचक्रों में लीन रहते थे।

फिरोज तुगलक की मृत्यु के पश्चात् शासन की शिथिलता का लाभ उठाकर ही तैमूर लंग ने 1398 ई० में भारत पर आक्रमण किया था। इस आक्रमण ने दिल्ली सल्तनत की जड़ें खोखली कर दीं और उसका पतन अनिवार्य कर दिया।

(7) धर्म-सापेक्ष राज्य—दिल्ली सल्तनत एक धर्म-सापेक्ष राज्य था। मुस्लिम सुल्तान कुरान, हदीस और शरियत के नियमों के अनुसार ही शासन करते थे। यह कोई बुरी बात नहीं थी। परन्तु अलाउद्दीन, फिरोज तुगलक और सिकन्दर लोदी इस्लाम धर्म की स्थापना के बहाने हिन्दुओं पर मनमाने और कठोर अत्याचार करते थे। इतना ही नहीं, उलेमाओं का भी राजनीति पर गहरा प्रभाव रहा था। ऐसी दशा में इस्लाम विरोधी व्यक्तियों ने अवसर पाकर दिल्ली सल्तनत का अन्त करने में कोई कसर न उठा रखी।

(8) दास-प्रथा—सल्तनत काल में प्रचलित दास-प्रथा भी राजवंशों के पतन का प्रमुख कारण सिद्ध हुई। सभी सुल्तानों के दास इल्तुतमिश, बलबन, मलिक काफूर के समान योग्य तथा शक्तिशाली सिद्ध न हुए। डॉ० मेंहदी हुसैन के अनुसार, "13वीं शताब्दी के पश्चात् दासों की स्थिति, चरित्र तथा महत्त्वाकांक्षाओं में भी भीषण परिवर्तन आ गया।" दासों की अयोग्यता एवं विलासता ने षड्यन्त्रों को ही प्रोत्साहन दिया। फिरोज तुगलक के शासनकाल में दासों की संख्या 1 लाख 80 हजार तक पहुँच गई और अन्ततः षड्यन्त्रकारी दास ही दिल्ली सल्तनत के पतन का प्रमुख कारण बने।

(9) हिन्दुओं और राजपूतों के विद्रोह—सल्तनत काल में हिन्दुओं तथा राजपूतों ने मुसलमानों के विरुद्ध अनेक विद्रोह किए। बलबन तथा अलाउद्दीन जैसे सुल्तानों ने तो इनके विद्रोहों को दबाने में सफलता प्राप्त कर ली, लेकिन अयोग्य और दुर्बल सुल्तान इनके विद्रोहों को दबाने में असफल रहे।

(10) जनता का विरोध—सल्तनत काल के मुस्लिम सुल्तानों ने देश की बहुसंख्यक हिन्दू जनता के साथ बड़ी कठोरता का व्यवहार किया जिससे वह उनके शासनकाल में उनकी प्रबल विरोधी बनी रही। जनता के इस असन्तोष और विरोध ने भी दिल्ली सल्तनत का पतन अनिवार्य कर दिया।

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—बहलोल लोदी पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर—बहलोल लोदी (1451–1489 ई०)—बहलोल लोदी सरहिन्द के गवर्नर इस्लाम खाँ लोदी का भतीजा था। बहलोल की प्रतिभा से प्रभावित होकर इस्लाम खाँ ने उसे अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया। अतएव इस्लाम खाँ की मृत्यु के बाद बहलोल सरहिन्द का शासक बन गया। चूँकि इन दिनों दिल्ली सल्तनत की शक्ति अत्यन्त क्षीण हो रही थी; अतः बहलोल लोदी सरहिन्द का स्वतन्त्र शासक बन गया। उसने धीरे-धीरे सम्पूर्ण पंजाब पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। जब सैयद वंश के अन्तिम शासक अलाउद्दीन आलमशाह के बदायूँ चले जाने पर दिल्ली में अव्यवस्था होने लगी, तब प्रधानमंत्री हामिद खाँ ने बहलोल को दिल्ली का सिंहासन प्राप्त करने के लिए आमन्त्रित किया। बहलोल ने तुरन्त इस आमन्त्रण को स्वीकार कर लिया और 1451 ई० में वह दिल्ली का सुल्तान बन गया। उसने एक नए राजवंश की स्थापना की जो लोदी वंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ। 1489 ई० में वह बीमार पड़ गया और उसकी मृत्यु हो गई।

प्रश्न 2—इब्राहीम लोदी पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर—इब्राहीम लोदी—सिकन्दर लोदी की मृत्यु के पश्चात् 1517 ई० में अमीर सरदारों की सहमति से उसका पुत्र इब्राहीम लोदी दिल्ली की गद्दी पर बैठा। इब्राहीम ने अपनी प्रवृत्ति के अनुसार कठोर, निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी शासन स्थापित किया। उसमें अपने पिता जैसी प्रतिभा और वीरता नहीं थी, इसलिए वह न तो लोदी साम्राज्य को सन्तोषजनक स्तर तक पहुँचा पाया और न ही अपने सामन्तों और सरदारों पर पूर्ण नियन्त्रण ही स्थापित कर पाया था। 1526 ई० में दौलत खाँ लोदी ने इब्राहीम लोदी पर आक्रमण करने के लिए बाबर को आमन्त्रित किया। पानीपत के मैदान में इब्राहीम लोदी ने बाबर से कड़ा संघर्ष किया, परन्तु वह बाबर द्वारा युद्ध में मारा गया। वस्तुतः इब्राहीम लोदी एक क्रोधी, हठी, अनुभवहीन और अदूरदर्शी सुल्तान था।

प्रश्न 3—दिल्ली सल्तनत के पतन के किन्हीं दो कारणों का उल्लेख कीजिए। *(1990, 96)*
अथवा **दिल्ली सल्तनत के पतन के चार प्रमुख कारणों का उल्लेख कीजिए।** *(1991, 94)*
अथवा **दिल्ली सल्तनत के पतन के दो मुख्य कारणों का उल्लेख कीजिए।** *(1999)*

उत्तर—दिल्ली सल्तनत के पतन के चार मुख्य कारण निम्नलिखित थे—

(1) उत्तराधिकार के नियम का अभाव, (2) दिल्ली सल्तनत पर तैमूर का आक्रमण, (3) केन्द्रीय सरकार की दुर्वलता तथा (4) स्थायी सेना का अभाव।

ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों एवं व्यक्तियों पर आधारित प्रश्न

प्रश्न 1—निम्नांकित तिथियों की ऐतिहासिक महत्ता पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर—(1) **1421 ई०**—इस तिथि को सैयद वंश के संस्थापक खिज्र खाँ की मृत्यु हुई थी। उसने 1414 ई० से लेकर 1421 ई० तक दिल्ली सल्तनत पर शासन किया था।

(2) **1434 ई०**—इस तिथि को सैयद वंश के दूसरे सुल्तान मुबारकशाह की मृत्यु हुई थी और मुहम्मदशाह गद्दी पर वैठा था। मुबारक शाह ने 1421 ई० से लेकर 1434 ई० तक शासन किया था। इसके शासनकाल की प्रमुख घटना खोखर सरदार जसरथ का विद्रोह था।

(3) **1451 ई०** *(1990, 92, 94, 96)*—इस तिथि को सैयद वंश का अन्त करके बहलोल लोदी ने सुल्तान की उपाधि धारण की थी और दिल्ली सल्तनत के अन्तर्गत लोदी वंश की स्थापना की थी। वहलोल लोदी ने दिल्ली पर 1451 ई० से 1489 ई० तक शासन किया था।

(4) **1489 ई०** *(1990, 93, 95)*—इस तिथि को वहलोल लोदी का ज्येष्ठ पुत्र निजाम खाँ सिकन्दर लोदी के नाम से दिल्ली की गद्दी पर आसीन हुआ। सिकन्दर लोदीवंश इस का सर्वश्रेष्ठ शासक था। उसनें 1489 ई० से 1517 ई० तक शासन किया था।

(5) **1504 ई०** *(1995)*—इस तिथि को सुल्तान सिकन्दर लोदी ने 'आगरा' नामक नगर की स्थापना की थी। मुगल काल में आगरा एक महत्त्वपूर्ण नगर बन गया था।

(6) **1517 ई०** *(1990, 93, 95, 97, 99)*—इस तिथि को लोदी वंश का अन्तिम सुल्तान इब्राहीम लोदी दिल्ली की गद्दी पर बैठा था। इब्राहीम लोदी ने 1517 ई० से 1526 ई० तक शासन किया था। यह दिल्ली सल्तनत का अन्तिम सुल्तान था।

(7) **1525 ई०** *(1997)*—नवम्बर, 1525 ई० में बाबर ने भारत पर पुनः आक्रमण करने का संकल्प लेकर काबुल वापस लौट गया।

(8) **1526 ई०** *(1990, 91, 92, 95, 96, 97, 99)*—इस तिथि को बाबर तथा इब्राहीम लोदी के मध्य पानीपत का प्रथम युद्ध हुआ था तथा इस युद्ध में इब्राहीम लोदी मारा गया और दिल्ली पर मुगल सरदार बाबर ने अपना अधिकार स्थापित कर लिया था।

प्रश्न 2—निम्नलिखित ऐतिहासिक स्थलों पर संक्षेप में टिप्पणी लिखिए।

उत्तर—(1) **जौनपुर** *(1990, 91, 95, 96, 99)*—इस नगर की स्थापना फिरोज तुगलक ने अपने चचेरे भाई जूनाखाँ (मुहम्मद तुगलक) के नाम पर की थी। तैमूर के आक्रमण के बाद जौनपुर शर्की वंश के प्रभुत्व में आ गया। शर्की सुल्तान ने जौनपुर में अनेक मसजिदें व भवन बनवाए। इन इमारतों में अटाला मसजिद विशेष रूप से दर्शनीय है।

(2) **गुलबर्गा**—मध्य युग में यह नगर बहमनी राजवंश की राजधानी रहा। गुलबर्गा अपने प्राकृतिक सौन्दर्य और मुस्लिम स्थापत्य कला की कलाकृतियों के लिए सम्पूर्ण देश में विख्यात है।

प्रश्न 3—निम्नलिखित ऐतिहासिक व्यक्तियों का संक्षिप्त परिचय दीजिए।

उत्तर—(1) **खिज्र खाँ**—खिज्र खाँ सैयद वंश का संस्थापक था। 1414 ई० में जब तुगलक वंश के अन्तिम सुल्तान नासिरुद्दीन महमूद की मृत्यु हो गई और दिल्ली साम्राज्य में सर्वत्र अराजकता फैल गई, खिज्र खाँ ने दिल्ली पर अधिकार करके स्वयं को सुल्तान घोषित कर दिया था। खिज्र खाँ ने कटेहर, इटावा,

बयाना, मेवात तथा बदायूँ के विद्रोह का दमन करके साम्राज्य में शान्ति की स्थापना करने में भी सफलता प्राप्त की थी। वस्तुतः खिज्र खाँ एक योग्य और प्रजापालक सुल्तान था।

(2) मुबारक शाह—मुबारकशाह खिज्र खाँ का पुत्र था। उसने 1421 ई० से 1434 ई० तक दिल्ली सल्तनत पर शासन किया। उसने भी अपने पिता के समान अनेक विद्रोहों का दमन करने में सफलता प्राप्त की थी। लेकिन वह अपने समय के प्रबल विद्रोही सरदार जसरथ (खोखर सेनापति) का पूर्णतया दमन नहीं कर पाया था। उसकी मृत्यु के लिए उसका वजीर सरवर-उल-मुल्क उत्तरदायी था, जिसने धोखे से उसका वध करवा दिया था। मुबारकशाह एक न्यायप्रिय, उदार हृदय और अनेक गुणों से सम्पन्न शासक था।

(3) मुहम्मदशाह—मुहम्मदशाह, मुबारकशाह का पुत्र और सैयद वंश का तीसरा सुल्तान था। मुहम्मदशाह एक अयोग्य व दुर्बल शासक था। उसके समय में शासन की वास्तविक सत्ता उसके वजीर सरवर-उल-मुल्क के हाथों में थी। उसके शासनकाल में अनेक विद्रोह हुए और चारों ओर अराजकता फैल गई थी। इसने 1434 ई० से 1445 ई० तक शासन किया था।

(4) अलाउद्दीन आलमशाह—यह मुहम्मदशाह का पुत्र और सैयद वंश का अन्तिम सुल्तान था। उसका वजीर हामिद खाँ बड़ा महत्त्वाकांक्षी था। हामिद खाँ के भय से सुल्तान ने बदायूँ को अपना स्थायी निवास बना लिया और वहीं 1478 ई० में उसकी मृत्यु हो गई। यह एक दुर्बल और अयोग्य सुल्तान था।

17 दक्षिण भारत के राज्य

[चालुक्य वंश, राष्ट्रकूट वंश, पल्लव वंश, चोल वंश तथा ग्राम्य शासन प्रणाली; बहमनी राज्य तथा विजय नगर राज्य]

"विजय नगर विश्व के सर्वश्रेष्ठ नगरों में से एक था, यहाँ पर जीवन की सभी वस्तुएँ एवं सुविधाएँ उपलब्ध थीं।"
—पेइज

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—दक्षिण की चालुक्य-शक्ति के उदय का विवरण दीजिए और पुलकेशियन द्वितीय के कार्यों पर प्रकाश डालिए।

अथवा **चालुक्य कौन थे? उनकी सभ्यता तथा संस्कृति के विषय में आप क्या जानते हैं?**

उत्तर—

चालुक्यों का परिचय

चालुक्यों की उत्पत्ति के विषय में विद्वानों में बहुत मतभेद है। चालुक्यों से सम्बन्धित अभिलेखों तथा 'विक्रमांक चरित' में दिए गए विवरणों के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि चालुक्यों का मूल स्थान अयोध्या था, जहाँ से उन्होंने दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। डॉ० वी० ए० स्मिथ का कहना है कि, "चालुक्य वास्तव में चपों से सम्बन्ध रखते थे और इस प्रकार उनका सम्बन्ध विदेशी गुर्जरों से था, क्योंकि चप उनकी एक शाखा थी।" स्मिथ का यह भी विचार है कि चालुक्य राजपूताना से दक्षिण की ओर गए थे। स्मिथ के विचार का खण्डन करते हुए डॉ० डी० सी० सरकार ने लिखा है कि चालुक्य एक देशीय कन्नड़ परिवार से सम्बन्धित थे, जो अपना सम्बन्ध क्षत्रियों से बताते थे। ह्वेनसांग ने भी चालुक्यों को क्षत्रिय ही माना है।

चालुक्यों की शाखाएँ

चालुक्य वास्तव में तीन कुलों से सम्बन्धित थे—

(1) वातापी के चालुक्य, (2) कल्याणी के चालुक्य तथा (3) वेंगी के पूर्वी चालुक्य।

इनका संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है—

(1) वातापी के चालुक्य—वातापी वंश का प्रथम राजा जयसिंह था। जयसिंह के विषय में हमें कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती, किन्तु इतना अवश्य है कि उसने राष्ट्रकूटों से महाराष्ट्र को छीन लिया था। जयसिंह की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र रणराज राजा बना। उसके शासन काल के विषय में कोई विशेष जानकारी प्राप्त नहीं होती है। रणराज की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र पुलकेशियन प्रथम गद्दी पर बैठा। उसका शासन काल 540 ई० के लगभग स्वीकार किया जाता है। वह वातापी वंश का वास्तविक संस्थापक था। वह एक शक्तिशाली राजा था। उसने अश्वमेध यज्ञ किया और वातापी को अपनी राजधानी बनाया। पुलकेशियन को पुराण, रामायण, महाभारत आदि का काफी ज्ञान था।

पुलकेशियन की मृत्यु के बाद उसका पुत्र कीर्तिवर्मन शासक बना। उसने कलिंग, मगध, मुद्रक, मौर्य, कदम्भ, चोलिय आदि वंशों पर विजय प्राप्त की। ऐसा प्रतीत होता है कि उसने अपने पड़ोसी राज्यों को परास्त करके तथा महाराष्ट्र, मैसूर और मद्रास आदि के प्रान्तों को जीतकर अपने साम्राज्य का विस्तार किया था। कीर्तिवर्मन का शासनकाल 566-597 ई० स्वीकार किया जाता है। उसकी मृत्यु के पश्चात् उसका छोटा भाई मंगलेश शासक बना।

ऐसा कहा जाता है कि उसने कल्चुरी शासक बुद्धराज को पराजित कर कोंकण पर अपना अधिकार कर लिया था। मंगलेश के अन्तिम दिनों में दरबार विवादों का केन्द्र बन गया था और वातापी का राज्य पतन की ओर अग्रसर हो गया था। ऐसी दशा में उसके भतीजे पुलकेशियन द्वितीय ने मंगलेश का वध कर दिया और 609 ई० में सिंहासन पर अधिकार कर लिया।

चालुक्यों की शाखाएँ

(1) वातापी के चालुक्य
(2) कल्याणी का चालुक्य वंश
(3) वेंगी के चालुक्य।

पुलकेशियन द्वितीय—पुलकेशियन द्वितीय कीर्तिवर्मन का पुत्र था। उसने 610-611 ई० में सत्ता प्राप्त की। डॉ० आर० एस० त्रिपाठी के अनुसार, पल्लव नरसिंह वर्मन ने चालुक्य राजधानी वातापी पर 642 ई० में आक्रमण कर, सम्भवतः पुलकेशियन द्वितीय का वध कर दिया था। सिंहासन पर बैठते ही उसे अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। इस समय उसके सम्मुख विद्रोही अधीनस्थ सामन्तों तथा बाह्य आक्रमणों से साम्राज्य की रक्षा करना—दो मुख्य समस्याएँ थीं। अतः पुलकेशियन द्वितीय ने अपने अधीनस्थ सामन्तों के विद्रोहों का दमन करने हेतु, कदम्बों, गंगों, मौर्यों, लाटों, मालवों, गुर्जरों तथा थानेश्वर के राजा हर्षवर्धन पर सफलतापूर्वक विजय प्राप्त करके उन्हें नतमस्तक किया। पुलकेशियन द्वितीय दक्षिण का एक महान् एवं प्रतिभाशाली राजा था। उसने कलिंग एवं कोशल जैसे शक्तिशाली राज्यों पर भी विजय प्राप्त की। इसके अतिरिक्त, उसने पिष्टपुर के राजा को परास्त किया, पल्लवराज पर आक्रमण किया तथा पुल्लुंलूर तक अपने साम्राज्य का विस्तार किया। पुलकेशियन द्वितीय की सबसे महत्त्वपूर्ण विजय उत्तर भारत के प्रसिद्ध सम्राट हर्षवर्धन के विरुद्ध थी। चोल शासकों के साथ भी उसका कई बार युद्ध हुआ।

लोहनेर अभिलेख में पुलकेशियन द्वितीय को पूर्वी व पश्चिमी समुद्रों का शासक कहा गया है, जिससे यह प्रतीत होता है कि उसका राज्य बंगाल की खाड़ी से लेकर अरब सागर तक फैला हुआ था। उसके पास एक विशाल सेना थी। उसकी सेना के विषय में ह्वेनसांग ने लिखा है कि, "देश में सैकड़ों सैनिकों के दस्ते भर्ती किए जाते थे। प्रस्थान करते समय ये सैनिक ढोल पीटते थे, युद्ध करते समय शराब का नशा करते थे तथा आगे बढ़कर सभी कुछ रौंद डालते थे।"

वातापी के चालुक्यों का पतन—पुलकेशियन द्वितीय की मृत्यु के उपरान्त उसका साम्राज्य अराजकता का शिकार हो गया तथा अनेक छोटे-छोटे भागों में विभाजित हो गया था। इन शासकों के मध्य आपसी मतभेद थे। पल्लवों से निरन्तर युद्ध व सामन्तों के विद्रोहों के कारण चालुक्यों की शक्ति क्षीण हो गई थी, जिसके फलस्वरूप 757 ई० के लगभग वातापी के चालुक्यों का पतन हो गया।

(2) कल्याणी का चालुक्य वंश—कल्याणी के चालुक्य वंश का मुख्य संस्थापक 'तैलप द्वितीय' था। उसका शासन काल 973-997 ई० था। विद्वानों का मत है कि तैलप द्वितीय वातापी वंश के अन्तिम

शासक कीर्तिवर्मन द्वितीय के चाचा के वंश से सम्बन्धित था। मालवा के परमार राजा मुंज के साथ उसका अनेक बार संघर्ष हुआ था, जिसमें तैलप की विजय हुई। तैलप द्वितीय के उपरान्त उसका पुत्र **सत्याश्रय** 997 ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ तथा उसका शासन 1008 ई० में समाप्त हुआ। सत्याश्रय के शासनकाल में चालुक्य राज्य पर चोलों का आक्रमण हुआ। सत्याश्रय की मृत्यु के उपरान्त **विक्रमादित्य पंचम** राजा बना। विक्रमादित्य पंचम को परमार राजा भोज के आक्रमण का सामना करना पड़ा था, किन्तु उसके उत्तराधिकारी जगदेव मल्ल ने इस आक्रमण को निष्फल बना दिया था। विक्रमादित्य पंचम के उपरान्त **सोमेश्वर प्रथम** (1042–1060 ई०) शासक बना। सोमेश्वर प्रथम ने अपने अनेक शत्रुओं का दमन किया। उसने कल्याणी को अपनी राजधानी घोषित किया। इसी राजधानी कल्याणी के नाम पर यह वंश **'कल्याणी के चालुक्य'** के नाम से प्रसिद्ध हुआ। सोमेश्वर प्रथम की मृत्यु के उपरान्त **विक्रमादित्य षष्ठम** 1076 ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ तथा उसने 1126 ई० तक शासन किया। उसने दक्षिण के चोल, वनवासी तथा होयसल आदि राजाओं को पराजित किया था। सौराष्ट्र के चालुक्य राजाओं के साथ भी उसका युद्ध हुआ था। परमार राजाओं के साथ उसने मैत्री सम्बन्ध स्थापित किए। उसने अनेक मन्दिरों एवं भवनों का निर्माण भी कराया। **विक्रमादित्य षष्ठम** की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी निर्बल सिद्ध हुए, जिसके कारण 1190 ई० में देवगिरि के यादवों ने चालुक्य वंश का अन्त कर दिया।

(3) वेंगी के चालुक्य—वेंगी वातापी के चालुक्यों की ही एक शाखा थी। इन्हें इतिहास में पूर्वी चालुक्यों के नाम से भी जाना जाता है। पुलकेशियन द्वितीय ने अपने भाई विष्णुवर्धन को वेंगी का शासक नियुक्त किया था, किन्तु विष्णुवर्धन के पुत्र जयसिंह ने स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की थी। उसके द्वारा स्थापित राजवंश के शासकों ने लगभग 500 वर्ष तक शासन किया। इन्द्रवर्मन, विष्णुवर्धन तृतीय, विजयादित्य प्रथम एवं विजयादित्य द्वितीय इस वंश के प्रतिभाशाली शासक थे। इन विभिन्न राजाओं ने राष्ट्रकूटों तथा पल्लवों के साथ संघर्ष किया था तथा अन्त में चोल तथा चालुक्य राज्य को कल्लोतुंग प्रथम ने एक संगठित राज्य के रूप में घोषित कर दिया। कल्लोतुंग प्रथम ने अपने चाचा विजयादित्य सप्तम को वेंगी का शासक नियुक्त किया।

चालुक्यों की सभ्यता एवं संस्कृति

चालुक्य राजाओं ने भारतीय संस्कृति के विकास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उनकी सभ्यता व संस्कृति का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

(1) राजनीतिक दशा—चालुक्य राजाओं की शासन व्यवस्था के अन्तर्गत राजा ही शासन का मूल आधार माना जाता था। राजा का पद वंशानुगत होता था। शासन कार्य को सुचारु रूप से चलाने के लिए तथा राजा की सहायता हेतु एक मन्त्रि-परिषद् की स्थापना की गई थी। इस मन्त्रि-परिषद् के सदस्यों के परामर्श के आधार पर ही राजा शासन कार्यों का सम्पादन किया करता था, फिर भी राजा स्वेच्छाचारी तथा निरंकुश होता था और राज्य की समस्त शक्तियाँ राजा में ही निहित होती थीं। राजा सेनाओं का प्रधान तथा न्याय का सर्वोच्च अधिकारी भी होता था। यद्यपि राजा स्वेच्छाचारी थे, किन्तु प्रजा के हितों का वे उचित ध्यान रखते थे।

चालुक्यों की सभ्यता एवं संस्कृति

(1) राजनीतिक दशा
(2) सामाजिक दशा
(3) आर्थिक दशा
(4) धार्मिक दशा
(5) साहित्य एवं कला की प्रगति।

(2) सामाजिक दशा—इस समय समाज में अनेक नवीन जातियों तथा उपजातियों का प्रादुर्भाव हो गया था, जिसके कारण समाज संकीर्ण विचारधाराओं से ग्रस्त होता चला जा रहा था। बाल-विवाह, सती-प्रथा आदि का समाज में प्रचलन था तथा समाज में नैतिकता का निरन्तर ह्रास हो रहा था। समाज में स्त्रियों की भी स्थिति सम्मानजनक नहीं थी।

(3) आर्थिक दशा—आर्थिक दृष्टिकोण से चालुक्य काल को उत्तम माना जा सकता है। इस समय कृषि तथा व्यापार उन्नति की ओर अग्रसर थे और राज्य की ओर से व्यापार को संरक्षण प्राप्त था। व्यापार

को सुचारु रूप से समृद्ध बनाने के लिए अनेक बन्दरगाहों एवं मण्डियों की भी समुचित व्यवस्था थी। प्रजा सुखी एवं सम्पन्न थी, जिसके कारण देश में आन्तरिक एवं बाह्य दोनों प्रकार के व्यापार का उचित विकास हुआ था।

(4) धार्मिक दशा—चालुक्य काल में ब्राह्मण धर्म की विशेष उन्नति हुई। चालुक्यों के धार्मिक जीवन में विष्णु का अधिक महत्त्व था। इस काल में बादामी, एहोल, पट्टडकल आदि स्थानों पर विभिन्न देवताओं के मन्दिरों की स्थापना की गई थी। चालुक्य नरेश स्वयं ब्राह्मण धर्म के अनुयायी थे, किन्तु साथ-साथ वे अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णु भी थे। बौद्ध एवं जैन धर्मों को भी राज्य की ओर से संरक्षण प्रदान किया जाता था, जिसके कारण ही जैन धर्म का दक्षिण भारत में काफी विस्तार हुआ तथा यह धर्म अधिक लोकप्रिय हुआ।

(5) साहित्य एवं कला की प्रगति—चालुक्य नरेश विद्या एवं कला दोनों के महान् प्रेमी थे तथा कलाकारों एवं विद्वानों को आश्रय प्रदान करते थे। एहोल, बादामी तथा पट्टडकल चालुक्य नरेशों की कला के मुख्य केन्द्र थे। बादामी में वास्तुकला को विशेष प्रोत्साहन दिया गया था। यहाँ पर पहाड़ी को काटकर बनाए गए चार मण्डप विशेष रूप से दर्शनीय हैं। पट्टडकल के मन्दिरों में एहोल व बादामी के मन्दिरों की अपेक्षा अधिक विकसित कला के दर्शन होते हैं। इन मन्दिरों में आर्य व द्रविड़ दोनों शैलियों को अपनाया गया है। ऐसा विश्वास किया जाता है कि अजन्ता तथा एलोरा की कुछ गुफाओं का निर्माण भी चालुक्यों के शासनकाल में ही किया गया था।

प्रश्न 2—राष्ट्रकूटों के विषय में आप क्या जानते हैं? उनकी राजनीतिक व सांस्कृतिक उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—

राष्ट्रकूटों का परिचय

राष्ट्रकूटों की उत्पत्ति, उनका मूल स्थान आदि आज भी विवाद के विषय बने हुए हैं। विभिन्न विद्वानों ने इस विषय पर अपने विचारों को विभिन्न प्रकार से प्रकट किया है। बर्नेल का मत है कि, "राष्ट्रकूट आन्ध्र देश के द्रविड़ रेड्डियों से सम्बन्धित थे।" श्री सी० बी० वैद्य का विश्वास है कि राष्ट्रकूट मराठों के पूर्वज थे। डॉ० भण्डारकर का कहना है कि राष्ट्रकूट तुंग नामक राजा की सन्तान थे। डॉ० अल्तेकर का मत है कि राष्ट्रकूट कर्नाटक के निवासी थे तथा रढ़िकों की सन्तान थे। राष्ट्रकूटों की भाषा कन्नड़ थी और इनका मूल स्थान लट्टलूर था।

राष्ट्रकूटों का उत्कर्ष

इतिहासकारों का मत है कि राष्ट्रकूट-वंश का प्रथम राजा इन्द्र था। इन्द्र ने चालुक्य राजकुमारी भवनागा से विवाह किया था और उसे शक्तिपूर्वक विवाह मण्डप से उठा लाया था। इसी चालुक्य राजकुमारी से 'दन्तिदुर्ग' का जन्म हुआ, जिसने राष्ट्रकूटों के वंश की महत्ता को स्थापित किया था।

राष्ट्रकूट-वंश के प्रमुख शासक

राष्ट्रकूट-वंश के प्रमुख शासक
(1) दन्तिदुर्ग प्रथम
(2) कृष्ण प्रथम
(3) गोविन्द द्वितीय
(4) ध्रुव
(5) गोविन्द तृतीय
(6) अमोघवर्ष
(7) कृष्ण द्वितीय
(8) इन्द्र तृतीय।

राष्ट्रकूट-वंश के प्रमुख शासकों व उनकी सफलताओं का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

(1) दन्तिदुर्ग प्रथम—दन्तिदुर्ग प्रथम राष्ट्रकूट-वंश का प्रथम शक्तिशाली सम्राट था। डॉ० मजूमदार के अनुसार, वह 710 ई० के लगभग शासक बना। एलोरा पत्र लेख में दन्तिदुर्ग की प्रारम्भिक तिथि 741–742 ई० दी गई है। इसके पिता का नाम इन्द्र प्रथम था तथा माता का नाम भवनागा था। उसने कांची के पल्लव राजा देवराज व कलिंग नरेश श्री शैव तथा टंक प्रदेश के राजाओं को पराजित किया था। वह ब्राह्मण धर्म का उपासक था तथा धर्म के प्रसार हेतु बहुत अधिक दान देता था। ऐसा विश्वास है कि दन्तिदुर्ग की मृत्यु 758 ई० के लगभग हुई थी।

(2) कृष्ण प्रथम—दन्तिदुर्ग पुत्रहीन था; अतः उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका चाचा **कृष्ण प्रथम,** शासक बना। उसका शासनकाल 758 से 773 ई० था। उसने चालुक्य राजा कीर्ति को पराजित करके कर्नाटक से चालुक्य शक्ति का अन्त कर दिया था। उसने गंग राजा **श्रीपुरुष,** वेंगी के चालुक्य राजा **विष्णुवर्द्धन चतुर्थ** तथा राहप्प नामक शासक को पराजित किया था। उसने कर्नाटक, कोंकण तथा हैदराबाद आदि का अपने प्रदेश में विलय कर लिया था और एलोरा में एक विशाल कैलाश मन्दिर का निर्माण कराया था।

(3) गोविन्द द्वितीय—कृष्ण प्रथम की मृत्यु के उपरान्त गोविन्द द्वितीय राजा बना। उसने विष्णुवर्द्धन चतुर्थ को पराजित किया, किन्तु राज्य का सम्पूर्ण दायित्व ध्रुव पर छोड़कर वह स्वयं भोग-विलास में लिप्त हो गया था। अतः अवसर पाकर ध्रुव ने उसे पराजित कर, सत्ता पर अपना अधिकार कर लिया। उसका शासनकाल (773 ई० से 780 ई०) के लगभग था।

(4) ध्रुव—ध्रुव ने 780 ई० में अपने बड़े भाई गोविन्द द्वितीय को हराकर सिंहासन प्राप्त किया। उसने सर्वप्रथम गंगवाड़ी (मैसूर) के शासक **शिवमार द्वितीय** को हराकर उसके राज्य पर अधिकार कर लिया। इसके उपरान्त, उसने कन्नौज के पल्लव शासक **दन्तिवर्मन** को हराकर उसे अपने अधीन कर लिया। ध्रुव ने उत्तरी भारत में उज्जैन के प्रतिहारों व बंगाल के पालों के मध्य हुए संघर्षों में भी भाग लिया और उत्तरी भारत की राजनीति में हस्तक्षेप किया। उसका प्रतिहार **राजा वत्स** से भी संघर्ष हुआ, जिसमें ध्रुव की विजय हुई। इसके उपरान्त, ध्रुव का पाल नरेश धर्मपाल से युद्ध हुआ तथा उसने धर्मपाल को हराकर उसके राज्य को छीन लिया। 793 ई० के आसपास ध्रुव की मृत्यु हो गई। ध्रुव राष्ट्रकूट वंश का एक पराक्रमी शासक था, जिसने राष्ट्रकूटों की शक्ति एवं कीर्ति में अभूतपूर्व वृद्धि की थी।

(5) गोविन्द तृतीय—ध्रुव ने अपने चार पुत्रों—**स्तम्भ, कर्क, गोविन्द** एवं **इन्द्र** में से गोविन्द को ही अपना उत्तराधिकारी घोषित किया था। अतः ध्रुव की मृत्यु के उपरान्त उसके बड़े पुत्र स्तम्भ ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया। इस युद्ध में गोविन्द की विजय हुई, किन्तु गोविन्द ने अपने बड़े भाई को क्षमा करके उसे गंगवाड़ी का शासक नियुक्त कर दिया। गोविन्द तृतीय ने पल्लव नरेश दन्तिवर्मन तथा वेंगी के चालुक्य नरेश विजयादित्य को पराजित किया था। इसके उपरान्त, उसने उत्तर-भारत की राजनीति में हस्तक्षेप किया। उसका प्रतिहारों से भी संघर्ष हुआ, जिसमें उसकी विजय हुई थी। प्रतिहारों पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त उसने उत्तरी भारत के समस्त राजाओं पर अपनी प्रभुता जमाकर, उन्हें कर देने पर विवश कर दिया तथा पुनः दक्षिण की ओर लौट गया। उसने मध्य भारत के समस्त राजाओं को भी राष्ट्रकूटों की अधीनता स्वीकार करने को विवश किया। भड़ौच के राजा को भी उसने नतमस्तक किया। 814 ई० के लगभग गोविन्द तृतीय की मृत्यु हुई। उसने गंगवाड़ी व मालवा के प्रदेशों को अपने साम्राज्य में मिलाया व हिमालय से लेकर कन्याकुमारी के मध्य स्थित अनेक राज्यों को पराजित किया। दक्षिणी व उत्तरी भारत के राज्यों ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। उसका शासनकाल 793 से 814 ई० स्वीकार किया जाता है।

(6) अमोघवर्ष—गोविन्द तृतीय की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र अमोघवर्ष सिंहासन पर बैठा। जिस समय अमोघवर्ष गद्दी पर बैठा, उस समय वह अल्पायु का ही था। अतः इस अवसर का लाभ उठाकर उसके दरबार के एक वर्ग ने, जिसका नेता वेंगी था, अमोघवर्ष को गद्दी से उतार दिया, किन्तु अपने संरक्षक कर्क के सहयोग से उसने पुनः सिंहासन प्राप्त कर लिया। अमोघवर्ष का संघर्ष प्रतिहार शासक भोज से हुआ। उसने गया के शासकों से भी युद्ध किया, किन्तु इस युद्ध में उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई। यद्यपि अमोघवर्ष ने 64 वर्ष तक शासन किया, किन्तु सैनिक दृष्टि से उसका शासन कोई सफल शासन सिद्ध नहीं हुआ। सांस्कृतिक उन्नति की दृष्टि से यह काल एक महत्त्वपूर्ण काल अवश्य था। डॉ० अल्तेकर ने अमोघवर्ष के कार्यों का मूल्यांकन करते हुए लिखा है कि, **"राज्य में शान्ति व व्यवस्था के पुनर्संस्थापक, कला एवं साहित्य के प्रेरक, अपने सिद्धान्तों पर चलने वाले व जनहित के लिए बलिदान में अपने शरीर का अंग देने से भी न चूकने वाले शासक के रूप में अमोघवर्ष का नाम अविस्मरणीय रहेगा।"** अमोघवर्ष का शासन काल 814 से 878 ई० तक था।

(7) कृष्ण द्वितीय—अमोघवर्ष की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र कृष्ण द्वितीय 878 ई० में गद्दी पर बैठा। कृष्ण द्वितीय का प्रथम संघर्ष चालुक्यों से हुआ तथा इसमें उसे पराजित होना पड़ा। प्रतिहार राजा भोज से भी उसका संघर्ष हुआ, किन्तु इसमें भी उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई। इससे स्पष्ट है कि कृष्ण द्वितीय एक निर्बल शासक था। 914 ई० में कृष्ण द्वितीय की मृत्यु हो गई।

(8) इन्द्र तृतीय—कृष्ण द्वितीय की मृत्यु के उपरान्त उसका पौत्र इन्द्र तृतीय 914 ई० में राजा बना। उसने परमार वंश के राजा उपेन्द्र को पराजित किया तथा उत्तरी भारत पर आक्रमण करके प्रतिहार वंश के शासक महीपाल को भी पराजित किया। 922 ई० के लगभग इन्द्र तृतीय की मृत्यु हो गई।

राष्ट्रकूटों का पतन

कृष्ण द्वितीय की मृत्यु के उपरान्त राष्ट्रकूट वंश में कोई भी योग्य शासक ऐसा न हुआ जो अपने पूर्वजों द्वारा की गई गौरवपूर्ण स्थिति को बनाए रख सकता। इस वंश का अन्तिम राजा कर्क द्वितीय था। 973 ई० में चालुक्य नरेश तैलप द्वितीय ने कर्क पर आक्रमण किया और उसका वध कर दिया। इस प्रकार, 215 वर्ष शासन करने के उपरान्त इस राजवंश का पूर्णतया अन्त हो गया।

राष्ट्रकूटकालीन धर्म एवं संस्कृति

राष्ट्रकूटकालीन धर्म एवं संस्कृति का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(1) शिक्षा एवं साहित्य—राष्ट्रकूट काल शैक्षिक दृष्टि से प्रगति का काल था। विभिन्न अभिलेखों से ज्ञात होता है कि इस काल में वल्लभी का बौद्ध विहार शिक्षा का एक प्रमुख केन्द्र था। राज्य की ओर से विद्यालयों में अध्यापकों की नियुक्ति की जाती थी। अमोघवर्ष के शासनकाल में कन्नड़ भाषा में रचित 'कविराज मार्ग' नामक ग्रन्थ की रचना की गई थी। अमोघवर्ष स्वयं भी उच्चकोटि का विद्वान् एवं विद्वानों का आश्रयदाता था। गुरु जिनसेन, शक्तापन, वीराचार्य, पौत्र, पम्पा, रन्ना, आदि राष्ट्रकूट युग के प्रमुख दार्शनिक, लेखक तथा कवि थे।

राष्ट्रकूटकालीन धर्म एवं संस्कृति
(1) शिक्षा एवं साहित्य
(2) धर्म
(3) कला।

(2) धर्म—इस युग में ब्राह्मण धर्म को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया गया था। ब्राह्मण धर्म के साथ-साथ शैव और वैष्णव धर्मों का भी काफी प्रचलन था। ब्रह्मा, विष्णु तथा महेश के साथ-साथ अन्य देवी-देवताओं की भी इस काल में मान्यता बढ़ गई थी। प्रसिद्ध जैन विद्वान् जिनसेन तथा गुणभद्र क्रमशः अमोघवर्ष और कृष्ण द्वितीय के गुरु रहे थे। इन्द्र तृतीय एवं इन्द्र चतुर्थ ने जैन धर्म को मान्यता प्रदान की थी। किन्तु इतना होते हुए भी यह अवश्य था कि बौद्ध सम्प्रदाय इस समय पतन की ओर उन्मुख हो रहा था।

(3) कला—कला के क्षेत्र में राष्ट्रकूट युग की कोई विशेष देन नहीं है। किन्तु फिर भी कृष्ण प्रथम के शासनकाल में एलोरा के भव्य कैलाश मन्दिर का निर्माण हुआ था, जिसे चट्टानों को कटवाकर बनवाया गया था। स्मिथ महोदय ने इस मन्दिर के विषय में लिखा है कि, "भारत के वास्तु-आश्चर्यों में यह सर्वाधिक विस्मयजनक है।"

प्रश्न 3—पल्लवों की उत्पत्ति की विवेचना कीजिए तथा उनके इतिहास का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

अथवा **"कांची के पल्लवों ने भारत को जो देन प्रस्तुत की है, वह सभी प्रकार से अद्वितीय है।" व्याख्या कीजिए।**

अथवा **पल्लव कौन थे? पल्लवों की शासन-व्यवस्था का उल्लेख कीजिए।**

उत्तर—

पल्लवों की उत्पत्ति

पल्लवों की उत्पत्ति का प्रश्न अत्यन्त विवादास्पद है। कुछ विद्वानों का मत है कि पल्लव लोग उत्तर-पश्चिम के पार्थियनों की शाखा थे, जो कालान्तर में दक्षिण भारत की ओर पलायन कर गए। किन्तु दक्षिण भारत में पल्लवों के संक्रमण का कोई प्रमाण नहीं मिलता। अतः इस मत पर विश्वास नहीं किया जा सकता। इसके साथ-साथ कुछ अन्य विद्वानों का यह भी मत है कि, "पल्लव दक्षिण भारत के आदिवासी थे और कुदम्बी, कल्लर, मरवार आदि जातियों से इनका सम्बन्ध था।" पल्लवों की उत्पत्ति के विषय में

डॉ० कृष्णस्वामी आयंगर का मत है कि, "संगम साहित्य में पल्लवों को तौंडेयर कहा गया है और उनको उन नाग राजाओं का वंशज माना जाता है, जो सातवाहन सम्राटों के सामन्त थे।" डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल ने इस विषय पर लिखा है कि, "पल्लव न तो विदेशी थे और न द्रविड़, वरन् उत्तर भारत के अभिजातकुलीन ब्राह्मण थे जिन्होंने सैनिक वृत्ति अपना ली थी और वाकाटकों की एक शाखा थे।" श्री एच० कृष्ण शास्त्री का कहना है कि, "पल्लव उस जाति से उत्पन्न हुए थे जो ब्राह्मणों तथा द्रविड़ों के सम्मिश्रण से उत्पन्न हुई थी।"

पल्लवों का उत्कर्ष

पल्लवों के प्रारम्भिक राजाओं के विषय में हमें कोई जानकारी प्राप्त नहीं होती है। इतना अवश्य है कि 325 ई० के आसपास पल्लव वंशी पूर्वी घाट पर कृष्णा व गोदावरी के मुहानों के मध्य प्रकट हुए। 350 ई० में पल्लव पूर्वी घाट पर बस गए और उन्होंने काँची नामक नगर पर अधिकार कर लिया। शिव स्कन्दवर्मन वंश के प्रारम्भिक राजाओं में अत्यन्त शक्तिशाली राजा **विष्णुगोप** था। उसके पश्चात् सिंहविष्णु शासक बना।

पल्लव वंश के प्रमुख शासक : उपलब्धियाँ अथवा कार्य

पल्लव वंश के प्रमुख शासकों और उनकी उपलब्धियों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

(1) महेन्द्र वर्मन—सिंहविष्णु की मृत्यु के उपरान्त महेन्द्र वर्मन सिंहासन पर बैठा। महेन्द्र वर्मन ने लगभग 600 ई० से 630 ई० तक शासन किया। वह अत्यन्त वीर और योग्य शासक था। पुलकेशियन द्वितीय से उसका संघर्ष हुआ था, जिसमें **पुलकेशियन द्वितीय** पल्लव राज्य के उत्तरी प्रदेशों पर अधिकार करते हुए काँची की ओर अग्रसर हुआ, किन्तु वह महेन्द्र वर्मन के प्रतिरोध के कारण कांची पर अधिकार न कर सका। ऐसा समझा जाता है कि प्रारम्भ में महेन्द्र वर्मन जैन धर्म का अनुयायी था, किन्तु कालान्तर में उसने शैव धर्म ग्रहण कर लिया था। वह एक उच्चकोटि का विद्वान् था और उसने **'विलास प्रहसन'** नामक ग्रन्थ की रचना की थी।

पल्लव वंश के प्रमुख शासक
(1) महेन्द्र वर्मन
(2) नरसिंह वर्मन प्रथम
(3) परमेश्वर वर्मन प्रथम
(4) नरसिंह वर्मन द्वितीय।

(2) नरसिंह वर्मन प्रथम—महेन्द्र वर्मन की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र नरसिंह वर्मन सिंहासन पर बैठा। उसने 630 ई० से 668 ई० तक राज्य किया। नरसिंह वर्मन के शासनकाल में भी **पुलकेशियन द्वितीय** ने पल्लवों पर आक्रमण किया, किन्तु पल्लवों ने लंका के राजा मानवर्मा की सहायता से पुलकेशियन को हरा दिया पुलकेशियन ने पुनः एक विशाल सेना के साथ बादामी पर आक्रमण किया। इस युद्ध में पुलकेशियन द्वितीय वीरगति को प्राप्त हुआ, किन्तु कुछ समय पश्चात् पुलकेशियन के पुत्र **विक्रमादित्य** ने **गंगनरेश** की सहायता से अपने खोए हुए प्रदेशों को पुनः प्राप्त कर लिया। नरसिंह वर्मन ने चोलों, चेरों, कलभ्रों, पाण्ड्यों आदि को युद्ध में पर ́जत कर दिया था। उसने काँची के निकट 'मामल्लपुरम्' बन्दरगाह को अत्यन्त वैभवशाली रूप प्रदान किया और इस स्थान पर अनेक मन्दिरों का निर्माण करवाया।

(3) परमेश्वर वर्मन प्रथम—नरसिंह वर्मन की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र **महेन्द्र वर्मन द्वितीय** (668–670 ई०) सिंहासन पर बैठा, किन्तु दो वर्ष बाद ही उसकी मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र परमेश्वर वर्मन प्रथम सिंहासन पर बैठा। उसका शासनकाल 670 ई० से 695 ई० था। **परमेश्वर वर्मन** का पाण्ड्य तथा चालुक्यों से संघर्ष हुआ। चालुक्यों ने विक्रमादित्य प्रथम के नेतृत्व में पल्लवों को पराजित करने में सफलता प्राप्त की और उन्होंने काँची पर भी अधिकार कर लिया।[1] परमेश्वर वर्मन प्रथम शैव-धर्म का पोषक था। उसने काँची में एक अत्यन्त सुन्दर शिव मन्दिर का निर्माण करवाया तथा मामल्लपुरम् में भी अनेक मन्दिरों का निर्माण कराया। 695 ई० में परमेश्वर वर्मन की मृत्यु हो गई।

(4) नरसिंह वर्मन द्वितीय—परमेश्वर वर्मन की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र **नरसिंह वर्मन द्वितीय** सिंहासन पर बैठा। उसका शासनकाल 695 ई० से 722 ई० था। नरसिंह वर्मन एक विद्याप्रेमी एवं

1. पल्लव अभिलेखों के अनुसार इस संघर्ष में पल्लवों ने चालुक्यों पर विजय पाई थी।

शान्तिप्रिय शासक था। उसके शासनकाल से सम्बन्धित किसी भी प्रकार के युद्ध का वर्णन उपलब्ध नहीं है। वह 'शिव' का भक्त था और उसने राजसिंह की उपाधि धारण की थी। उसने अपना एक राजदूत मण्डल चीन भेजा था। 722 ई० के लगभग नरसिंह वर्मन की मृत्यु हुई।

पल्लव वंश का पतन

नरसिंह वर्मन के उपरान्त पल्लव वंश का पतन प्रारम्भ हो गया। यद्यपि उसके बाद दन्तिवर्मन, नन्दि, नृपति वर्मन आदि शासक हुए, किन्तु इन सब शासकों को पाण्ड्यों से संघर्ष करना पड़ा, जिनके कारण इनकी शक्ति निरन्तर क्षीण होती गई। पल्लव वंश का अन्तिम शासक **अपराजित वर्मन** था, जिसे चोल राजा **आदित्य प्रथम** ने पराजित करके उसके राज्य पर अधिकार कर लिया।

पल्लवयुगीन सभ्यता एवं संस्कृति

पल्लव शासकों के शासनकाल में विकसित सभ्यता एवं संस्कृति का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

(1) पल्लव शासन-पद्धति—पल्लव शासन में राजा राज्य का सर्वोच्च अधिकारी होता था तथा वह कार्यपालिका व न्यायपालिका दोनों का अध्यक्ष होता था। शासन-कार्यों में परामर्श देने हेतु एक मन्त्रि-परिषद् के अन्तर्गत अनेक विषय होते थे। एक विषय में बहुत-से कोट्टम और ग्राम होते थे। पल्लव काल में स्वायत्त शासन-व्यवस्था थी। ग्रामों में ग्राम सभाएँ थीं, जिनका मुख्य कार्य मुकदमों का निर्णय करना व भूमि की नाप करवाना आदि था। पल्लवों की सैन्य-व्यवस्था सर्वश्रेष्ठ थी। सेना का अध्यक्ष सेनापति होता था। पल्लवों के पास थल एवं जल दोनों प्रकार की सेनाएँ थीं।

(2) धार्मिक दशा—पल्लव काल हिन्दू धर्म की उन्नति का युग था। इस काल में मूर्ति-पूजा, अवतारवाद, यज्ञ एवं कर्मकाण्डों का प्रचलन था। इस समय शैव धर्म का प्रचलन अधिक हुआ था। दक्षिण भारत में शक्ति-सम्प्रदाय प्रगतिशील था। यद्यपि पल्लव शासक हिन्दू धर्म के समर्थक थे, किन्तु उन्होंने बौद्ध तथा जैन धर्म को भी अपना संरक्षण प्रदान किया था।

पल्लवयुगीन सभ्यता एवं संस्कृति

(1) पल्लव शासन-पद्धति
(2) धार्मिक दशा
(3) साहित्य का विकास
(4) कला का विकास :
(i) महेन्द्र वर्मन शैली,
(ii) नरसिंह वर्मन शैली,
(iii) राजसिंह शैली,
(iv) अपराजित शैली।

(3) साहित्य का विकास—इस काल में साहित्य एवं शिक्षा के क्षेत्र में विशेष उन्नति हुई। पल्लव काल में काँची विश्वविद्यालय शिक्षा का मुख्य केन्द्र था। लगभग सभी पल्लव नरेश शिक्षा-प्रेमी थे तथा उन्होंने विद्वानों को संरक्षण प्रदान किया था। **महेन्द्र वर्मन** स्वयं उच्चकोटि का विद्वान् था तथा उसने "**मत्त विलास प्रहसन**' नामक ग्रन्थ की रचना की थी। पल्लव नरेश नरसिंह वर्मन की राजसभा में **दण्डिन्** नामक प्रसिद्ध विद्वान् रहता था। इस काल में संस्कृत भाषा के अनेक अभिलेख प्राप्त हुए हैं जिनमें उच्चकोटि की भाषा का प्रयोग किया गया। संस्कृत के साथ ही इस युग में तमिल साहित्य का भी पर्याप्त विकास हुआ था।

(4) कला का विकास—पल्लव काल उच्चकोटि की कला के लिए अत्यन्त प्रसिद्ध है। पल्लव काल में स्थापत्य और शिल्प के क्षेत्र में महान् उन्नति हुई। पल्लवकालीन वास्तुकला की निम्नलिखित चार शैलियों का विकास हुआ—

(i) महेन्द्र वर्मन शैली—इस शैली के अन्तर्गत स्तम्भयुक्त मण्डपों का निर्माण हुआ। इस शैली के अन्तर्गत ठोस चट्टानों को काटकर मन्दिर बनाए जाते थे जिनका रूप सरल होता था। इस शैली का विकास 600 ई० से 625 ई० तक हुआ।

(ii) नरसिंह वर्मन शैली—इस शैली का विकास काल 625 ई० से 675 ई० तक माना जाता है। इस शैली की स्थापना पल्लव नरेश **नरसिंह वर्मन** ने की थी। मुख्यतः नरसिंह वर्मन ने एक ही पत्थर को काटकर रथ शैली के मन्दिरों का निर्माण कराया था।

(iii) राजसिंह शैली—इस शैली का विकास काल 700 ई० से 900 ई० तक माना जाता है। इस शैली के अन्तर्गत स्वतन्त्र रूप से पाषाण खण्डों की सहायता से मन्दिरों का निर्माण किया गया। मामल्लपुरम

का मन्दिर और काँची का कैलाश मन्दिर इस शैली के अनुपम उदाहरण हैं। इस शैली की विशेषता मण्डल के सुदृढ़ स्तम्भ, शिखर, चहारदीवारी, सिंह स्तम्भ आदि हैं।

(iv) अपराजित शैली—इस शैली के अन्तर्गत स्तम्भों के शीर्ष भाग का अधिक विकास किया गया था। इस शैली में निर्मित मन्दिरों के लिंग ऊपर की ओर पतले व शिखर से गर्दन अधिक स्थूल प्रदर्शित की गई हैं। सांस्कृतिक दृष्टि से पल्लव शासकों के उपर्युक्त योगदान को देखते हुए ही प्रायः यह कहा जाता है कि "काँची के पल्लवों ने भारत को जो देन प्रस्तुत की है, वह सभी प्रकार से अद्वितीय है।"

प्रश्न 4—चोल साम्राज्य के राजनीतिक इतिहास का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

अथवा **चोल वंश के प्रमुख राजाओं तथा उनकी सभ्यता एवं संस्कृति पर प्रकाश डालिए।**

अथवा **"चोल शासकों की महानता उनकी श्रेष्ठ शासन-व्यवस्था पर नहीं, वरन् उनकी महान् कलाकृतियों पर भी आधारित थी।" इस कथन की ऐतिहासिक तथ्यों सहित व्याख्या कीजिए।** *(1990, 94)*

अथवा **"राजराज प्रथम व राजेन्द्र चोल प्रथम चोल शक्ति के प्रमुख निर्माता थे।" व्याख्या कीजिए।**

अथवा **चोल राजवंश की मुख्य उपलब्धियों का विवेचन कीजिए।** *(1996)*

उत्तर—

चोलों का परिचय

भारत में चोल वंश एक प्राचीनकालीन वंश है। महाभारत आदि ग्रन्थों में भी चोलों का वर्णन किया गया है। फिर भी चोलों के विषय में विद्वानों के मतों में पर्याप्त मतभेद है। कुछ विद्वानों ने चोलों की उत्पत्ति के विषय में अपना मत प्रकट करते हुए लिखा है कि 'चोल' शब्द की उत्पत्ति तमिल भाषा के शब्द 'चूल' से हुई है, जिसका अर्थ होता है 'पर्यटन करना'। इससे यह आशय निकलता है कि चोल एक पर्यटनशील जाति थी। इसके साथ ही कुछ विद्वान् चोल शब्द का अर्थ तमिल भाषा के शब्द 'चोलम्' से लगाते हैं, जिसका शाब्दिक अर्थ 'बाजरा' है अर्थात् चोल किसी ऐसे प्रान्त के निवासी थे, जहाँ बाजरा अधिक होता होगा। चोलों की उत्पत्ति के विषय में **डॉ० राजबली पाण्डेय** ने अपने विचार व्यक्त करते हुए लिखा है कि, "चोल, 'चूल' शब्द से बना है। चूल का शुद्ध रूप चूड़ अर्थात् सिर है। दक्षिण भारत के प्राचीन राजाओं में चोल शिरोमणि थे, इसलिए इनको चोल कहा गया। चोल संस्कृत भाषा एवं साहित्य के प्रेमी थे। अतः इससे यह भी प्रतीत होता है कि चोल वंश भी उत्तर भारत से ही दक्षिण को गया था। कुछ अभिलेखों में चोलों को सूर्यवंशी बताया गया है।"

चोल वंश के प्रमुख शासक एवं उनकी उपलब्धियाँ (चोल वंश का राजनीतिक इतिहास)

चोल वंश के प्रमुख शासकों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(1) प्रारम्भिक शासक—प्रारम्भ में चोल पल्लवों के अधीन थे। प्रारम्भिक चोल शासकों में करिकाल, नेदुयुदिकिल्ल, विजयालय व आदित्य प्रथम का उल्लेख हुआ है। ये सभी शासक पल्लवों के अधीन सामन्त थे।

चोल वंश के प्रमुख शासक

(1) प्रारम्भिक शासक
(2) आदित्य प्रथम
(3) परान्तक प्रथम
(4) अन्धकार युग
(5) राजराज प्रथम
(6) राजेन्द्र प्रथम
(7) राजाधिराज प्रथम
(8) राजेन्द्र द्वितीय
(9) वीर राजेन्द्र
(10) कुलोतुंग प्रथम।

(2) आदित्य प्रथम—आदित्य प्रथम विजयालय का पुत्र था। उसने पाण्ड्य शासक वरगुण वर्मन द्वितीय के विरुद्ध पल्लवों का साथ दिया था, जिसके फलस्वरूप उसे पल्लव शासक से अनेक प्रान्तों की प्राप्ति हुई। आदित्य प्रथम एक महत्त्वाकांक्षी शासक था। वह पल्लव शासकों से स्वतन्त्र होना चाहता था। अपने उद्देश्य की प्राप्ति हेतु उसने पल्लवों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया तथा पल्लव नरेश की हत्या कर, पल्लव राज्य पर अधिकार कर लिया। आदित्य प्रथम शिवभक्त था। उसने अनेक शिव मन्दिरों का निर्माण कराया था। **डॉ० आर० एस० त्रिपाठी** के अनुसार, उसका शासनकाल लगभग 875–907 ई० था। **डॉ० मजूमदार** ने उसका शासनकाल 871–907 ई० स्वीकार किया है।

(3) परान्तक प्रथम—आदित्य प्रथम की मृत्यु 907 ई० में हुई थी। उसकी मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र परान्तक प्रथम 907 ई० में चोल वंश के सिंहासन पर आसीन हुआ। वह भी एक महत्त्वाकांक्षी सम्राट था। उसने पाण्ड्यों को पराजित करके लंका पर आक्रमण कर दिया, किन्तु इस आक्रमण में वह सफल न हुआ। राष्ट्रकूटों से भी उसका संघर्ष हुआ, जिसमें उसने राष्ट्रकूट नरेश कृष्ण तृतीय को पराजित करके 'वीर चोल' की उपाधि धारण की। कुछ समय पश्चात् कृष्ण तृतीय ने उस पर पुनः आक्रमण किया। इस बार चोलों को काँची एवं तंजौर आदि से वंचित होना पड़ा और चोल राज्य प्रायः छिन्न-भिन्न हो गया। परान्तक प्रथम की मृत्यु 953 ई० के लगभग हुई थी।

(4) अन्धकार युग—परान्तक प्रथम की मृत्यु के उपरान्त, लगभग 30 वर्ष के आगामी इतिहास के विषय में कुछ भी ज्ञात नहीं होता है। इस काल में गन्डरादित्य, अरिंजय, सुन्दर आदित्य द्वितीय, करिकाल और उत्तम चोल आदि शासक हुए, किन्तु ये शासक निर्बल थे। अतः इन शासकों के शासनकाल में कोई महत्त्वपूर्ण उपलब्धि नहीं हुई।

(5) राजराज प्रथम—राजराज प्रथम के बचपन का नाम अरुमोलि वर्मन था। वह 985 ई० के लगभग सिंहासन पर आसीन हुआ तथा उसने राजराज की उपाधि धारण की। राजराज प्रथम ने अपने प्रयासों से चोलों के खोए हुए प्रदेशों एवं वैभव को पुनः प्राप्त करने का प्रयत्न किया। जिस समय वह सिंहासन पर बैठा, उस समय चोल साम्राज्य की स्थिति डाँवाडोल थी। सबसे पहले उसने केरल के राजाओं की नौसेना को समाप्त किया। तत्पश्चात् उसने पाण्ड्य वंश के शासक अमर भुजंग को पराजित किया तथा कोल, उदंग व कुर्ग पर अधिकार कर लिया। राजराज प्रथम ने लंका पर आक्रमण करके महिन्द पंचम की राजधानी अनुराधापुर को भी नष्ट कर दिया तथा उत्तरी लंका पर अधिकार कर लिया। उसने गंगवाड़ी, नीलम्बवड़ी, तादिंगवड़ी आदि पर आक्रमण करके उन्हें भी अपने अधिकार में ले लिया। वेंगी पर भी उसने विजय प्राप्त की तथा जराबोड़भूमि को सिंहासन से उतारकर शक्ति वर्मन को वहाँ का शासक बनाया। वेंगी पर अधिकार कर लेने से चालुक्यों एवं चोलों में संघर्ष हुआ। इस संघर्ष में राजराज प्रथम की पराजय हुई। राजराज ने अपने शासन के अन्तिम दिनों में कलिंग, लक्कद्वीप, मारद्वीप आदि पर विजय प्राप्त की। इस प्रकार, उसका साम्राज्य मद्रास प्रेसीडेन्सी के दुर्ग, मैसूर व सिंहलद्वीप के उत्तरी भाग तक विस्तृत हो गया। आन्ध्र प्रदेश पर भी उसका आधिपत्य था। राजराज प्रथम ने 1014 ई० तक शासन किया था।

राजराज प्रथम एक महान् शासक, प्रशासक एवं वीर था। उसने अपने शासन में स्थानीय स्वशासन को महत्त्व प्रदान किया तथा राज्य की समस्त भूमि को नपवाया। उसने अपने शासनकाल में ही अपने पुत्र राजेन्द्र को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया था। राजराज शैव धर्म का अनुयायी था तथा उसने तंजौर में राजराजेश्वर मन्दिर का निर्माण कराया था। उसने अन्य धर्मों के प्रति सहिष्णुता की नीति को अपनाया। विष्णु के कई मन्दिरों का निर्माण भी उसने कराया था।

(6) राजेन्द्र प्रथम—राजेन्द्र प्रथम राजराज का प्रथम पुत्र था तथा वह 1014 ई० के लगभग सिंहासन पर बैठा। वह एक पराक्रमी शासक था। उसने पश्चिमी चालुक्यों की शक्ति का विनाश किया। उसने लंका पर आक्रमण किया तथा लंका के सिंहासन पर अधिकार कर लिया। चेरों तथा पाण्ड्यों के राज्य पर भी उसने विजय प्राप्त की तथा उसे अपने राज्य का अंग बना लिया। पूर्वी चालुक्यों की शाखा के उत्तराधिकारी के प्रश्न पर उसका संघर्ष चालुक्य राजा जयसिंह द्वितीय से हुआ। इस युद्ध में राजेन्द्र प्रथम की विजय हुई। किन्तु इसी युद्ध के मध्य उसकी मृत्यु हो गई। 1021 ई० से 1025 ई० के मध्य उसने पूर्वी भारत का अभियान किया तथा एक विशाल सेना के साथ उड़ीसा होता हुआ बंगाल पहुँचा। बंगाल देश को पराजित करने के पश्चात् उसका संघर्ष गंगापार बंगाल के पालवंशीय महिपाल से हुआ। इस युद्ध में उसकी विजय हुई। 1025 ई० के लगभग राजेन्द्र प्रथम ने श्रीविजय (मलाया, सुमात्रा, जावा प्रायद्वीप आदि) पर विजय प्राप्त की तथा वहाँ के शासक विजयोतुंग वर्मन को बंदी बना लिया। जब उसने चोलों की अधीनता को स्वीकार कर लिया, तो उसे मुक्त कर दिया गया। पाण्ड्य एवं चेर शासकों ने राजेन्द्र प्रथम के विरुद्ध विद्रोह किया। राजेन्द्र प्रथम के पुत्र ने इस विद्रोह का दमन कर दिया तथा विद्रोहियों को कठोर दण्ड दिया। दिग्विजयों के साथ-साथ राजेन्द्र प्रथम निर्माण-कार्यों में भी रुचि रखता था। वह विद्याप्रेमी शासक था। उसने अनेक

विद्यालयों, भवनों, मन्दिरों तथा तालाबों का निर्माण कराया तथा गंगकोड चोलपुरम में अपनी नवीन राजधानी स्थापित की। 1044 ई० में राजेन्द्र प्रथम की मृत्यु हो गई।

राजराज प्रथम व राजेन्द्र प्रथम की इन उपलब्धियों को देखते हुए ही कुछ इतिहासकारों ने यह कहा है कि, "राजराज प्रथम व राजेन्द्र चोल प्रथम चोल शक्ति के प्रमुख निर्माता थे।"

(7) राजाधिराज प्रथम (लगभग 1044–1052 ई०)—राजेन्द्र प्रथम के उपरान्त उसका पुत्र राजाधिराज प्रथम सिंहासन पर आसीन हुआ। उसने पाण्ड्य, केरल तथा सिंहल राजाओं की शक्ति का अन्त किया और चालुक्यों की राजधानी कल्याणी पर विजय प्राप्त की। कुछ समय पश्चात् वह चालुक्य शासक सोमेश्वर से युद्ध करते हुए 1052 ई० में वीरगति को प्राप्त हुआ।

(8) राजेन्द्र द्वितीय (लगभग 1052–1063 ई०)—राजाधिराज की मृत्यु के उपरान्त उसका छोटा भाई राजेन्द्र द्वितीय राजा बना। वह जीवनपर्यन्त चालुक्यों से युद्ध करता रहा। उसने लंका के अधिकांश भाग पर अपना अधिकार बनाए रखा तथा 1063 ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

(9) वीर राजेन्द्र (लगभग 1063–1070 ई०)—राजेन्द्र द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् उसका भाई वीर राजेन्द्र प्रथम 1063 ई० में राजा बना। उसने तुंगभद्रा नदी के तट पर चालुक्य नरेश सोमेश्वर को हरा दिया। इस विजय के उपलक्ष में उसने तुंगभद्रा नदी के किनारे एक विजय-स्तम्भ का निर्माण कराया। सोमेश्वर की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र सोमेश्वर द्वितीय चालुक्यों का राजा हुआ तथा उसको भी वीर राजेन्द्र प्रथम के आक्रमणों का सामना करना पड़ा। इसी समय सोमेश्वर द्वितीय को अपने छोटे भाई के विद्रोह का भी सामना करना पड़ा। वीर राजेन्द्र ने कूटनीति का प्रयोग करते हुए सोमेश्वर द्वितीय के छोटे भाई विक्रमादित्य से अपनी लड़की का विवाह कर दिया तथा उसे चालुक्य साम्राज्य के दक्षिणी भाग का सम्राट घोषित कर दिया। वीर राजेन्द्र का लंका नरेश विजयबाहु से भी युद्ध हुआ। 1070 ई० में वीर राजेन्द्र की मृत्यु हो गई।

(10) कुलोतुंग प्रथम (लगभग 1070–1122 ई०)—वीर राजेन्द्र की मृत्यु के बाद उसका पुत्र अधिराजेन्द्र सिंहासन पर बैठा, किन्तु उसकी हत्या कर दी गई तथा उसके राज्य पर कुलोतुंग नामक पूर्वी चालुक्य ने अधिकार कर लिया। कुलोतुंग का पश्चिमी चालुक्यों से युद्ध हुआ तथा उसने पाण्ड्य शासकों एवं मालाबार के सामन्तों को पराजित करके कलिंग पर विजय प्राप्त की। वह एक कुशल प्रशासक था। 1122 ई० के लगभग कुलोतुंग की मृत्यु हो गई।

चोल वंश का पतन

कुलोतुंग प्रथम की मृत्यु के पश्चात् चोल वंश का गौरव समाप्त होता गया। कुलोतुंग के बाद राजराज तृतीय शासक हुआ, किन्तु पाण्ड्यों, काकतियों और होयसलों के उत्कर्षों के फलस्वरूप चोल साम्राज्य का शीघ्र ही पतन हो गया।

चोलों की शासन-प्रणाली

भारतीय इतिहास में चोलों की शासन-व्यवस्था का अपना विशिष्ट महत्त्व है। इनकी शासन-व्यवस्था का वर्णन इस प्रकार किया जा सकता है—

(1) राजा—चोल राजा शक्ति-सम्पन्न होते थे तथा अनेक उपाधियों को धारण किया करते थे। साधारण रूप से राजा का पद पैतृक होता था। राजा की सभा में बड़े-बड़े सामन्त तथा पदाधिकारी होते थे। शासन के समस्त क्षेत्रों पर राजा का आधिपत्य होता था तथा सेना का मुख्य सेनापति राजा ही होता था।

(2) युवराज—चोल राजा अपने जीवन में ही अपने सबसे बड़े या योग्य पुत्र को युवराज घोषित कर देते थे तथा उसे प्रशासकीय कार्यों में दक्ष भी करा देते थे।

(3) विभिन्न पदाधिकारी—राजा अपने शासन सम्बन्धी कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए राज्य में एक मन्त्रिमण्डल की व्यवस्था करता था तथा इसके साथ अनेक पदाधिकारियों की नियुक्ति भी की जाती थी। इन पदाधिकारियों को नकद वेतन देने की व्यवस्था थी तथा उन्हें राज्य की ओर से भूमि एवं सम्पत्ति प्रदान की जाती थी।

(4) साम्राज्य का विभाजन एवं स्थानीय स्वशासन—शासन को सुचारु रूप से संचालित करने के लिए समस्त साम्राज्य मण्डलों में विभाजित किया गया था। मण्डलों को कोट्टमों में और कोट्टमों को

नाडुओं में विभक्त किया जाता था। एक नाडु में अनेक कुर्रम अथवा गाँवों के समूह होते थे। कुर्रम को अनेक नगरों व गाँवों में विभाजित कर दिया गया था। मण्डल का प्रशासक शासक द्वारा नियुक्त किया जाता था। मण्डलों से लेकर ग्रामों तक स्थानीय सभाओं की व्यवस्था थी। चोल शासनकाल में ग्रामों में स्थानीय स्वशासन सभाओं की व्यवस्था की गई थी। प्रशासनिक कार्यों को सुचारु रूप से चलाने के लिए विभिन्न समितियों; जैसे—ग्राम की स्थायी समिति, तडाग समिति, कृषि समिति, उपवन समिति, न्याय समिति आदि की स्थापना की गई थी। ग्राम सभाओं के विभिन्न कार्य होते थे; जैसे—तालाबों, नहरों, कूपों आदि का प्रबन्ध करना, कर एकत्र करना, मन्दिरों की व्यवस्था, शिक्षा का प्रसार, चिकित्सा आदि की व्यवस्था करना। ग्राम-सभाएँ न्याय आदि का कार्य भी करती थीं।

चोलों की शासन-प्रणाली

(1) राजा
(2) युवराज
(3) विभिन्न पदाधिकारी
(4) साम्राज्य का विभाजन एवं स्थानीय स्वशासन
(5) न्याय-व्यवस्था
(6) आय-व्यय के स्रोत
(7) सैन्य व्यवस्था।

(5) न्याय-व्यवस्था—चोल राजाओं की न्याय-व्यवस्था भी महत्त्वपूर्ण थी। विभिन्न प्रकार के मुकदमों के निर्णय का अधिकार स्थानीय संस्थाओं को प्राप्त था। राजा न्याय का सर्वोच्च पदाधिकारी था तथा अन्तिम अपील सुनने का अधिकार भी उसे ही प्राप्त था। इस समय दण्ड-व्यवस्था कठोर नहीं थी।

(6) आय-व्यय के स्रोत—भूमि-कर, जो कि उपज का 1/3 भाग होता था, राज्य की आय का मुख्य साधन था, जिसे धन एवं अनाज दोनों रूपों में ही लिया जा सकता था। गाँव की सभाएँ भूमि-कर को एकत्र करती थीं। व्यवसायियों एवं शिल्पियों आदि से भी कर लिया जाता था। चुंगी, वन, खान आदि भी राज्य की आय के मुख्य साधन थे। राज्य से प्राप्त आय का मुख्य भाग युद्धों में व्यय किया जाता था। सार्वजनिक हितों के कार्यों; जैसे—नहरें, जलाशय, कुएँ आदि के निर्माण पर भी काफी धन व्यय किया जाता था।

(7) सैन्य व्यवस्था—चोल राजाओं की सेना को विभिन्न टुकड़ियों में विभक्त किया जाता था, जो 'कडगम' अर्थात् छावनियों में रहती थी। सैनिकों को उचित प्रशिक्षण देने की व्यवस्था थी। राजा सेना का सर्वोच्च पदाधिकारी होता था। वह युद्ध-भूमि में सेना का मार्गदर्शन करता था। सेनापति को **'महादण्डनायक'** कहा जाता था। चोल शासकों के पास नौसेना की टुकड़ियाँ भी थीं।

चोलों की सभ्यता व संस्कृति

चोलों की सभ्यता व संस्कृति का विवरण निम्नवत् है—

(1) सामाजिक दशा—चोल काल में जाति-व्यवस्था ही सामाजिक संगठन का मुख्य आधार थी। समाज में अन्तर्जातीय विवाहों का प्रचलन था। समाज में ब्राह्मणों को विशेष सम्मान प्राप्त था। स्त्रियों को भी सम्मानपूर्ण दृष्टि से देखा जाता था। सती तथा देवदासी जैसी कुप्रथाएँ चोल काल में प्रचलित थीं तथा दास-प्रथा का भी प्रचलन था।

(2) धार्मिक दशा—चोल राजा शैव धर्म के अनुयायी थे, किन्तु अन्य धर्मों के प्रति वे सहिष्णुता की नीति का पालन करते थे। इस युग में दान देने की प्रथा अधिक थी तथा यज्ञों का प्रचलन कम था।

(3) साहित्य—इस काल में तमिल साहित्य का पर्याप्त विकास हुआ। पुराणों तथा महाकाव्यों के अध्ययन से दक्षिण भारत की जनता में साहित्य के प्रति अभिरुचि बढ़ी। तमिल भाषा में अनेक कवियों एवं लेखकों ने अपनी अनेक रचनाएँ लिखीं।

चोलों की सभ्यता व संस्कृति

(1) सामाजिक दशा
(2) धार्मिक दशा
(3) साहित्य
(4) कला।

(4) कला—इस काल में कला की विशेष उन्नति हुई। चोल शासकों ने अनेक नगरों का निर्माण कराया। उनके संरक्षण में अनेक प्रासादों एवं भव्य मन्दिरों का निर्माण हुआ। मन्दिरों के विशाल प्रांगण तथा वितान इन मन्दिरों की मुख्य विशेषता है। इसके अतिरिक्त, धातु तथा पत्थर की बनी हुई इस काल की मूर्तियाँ बड़ी सुन्दर एवं प्रशंसा योग्य हैं।

चोल शासकों द्वारा सांस्कृतिक क्षेत्र में किए गए उपर्युक्त कार्यों के फलस्वरूप ही उनके सम्बन्ध में यह कहा जाता रहा है कि, "चोल शासकों की महानता उनकी श्रेष्ठ शासन व्यवस्था पर नहीं, वरन् उनकी महान् कलाकृतियों पर आधारित थी।"

प्रश्न 5—बहमनी राज्य के उत्थान तथा पतन का वर्णन कीजिए। *(1993)*

अथवा **बहमनी वंश के उत्थान एवं पतन का संक्षिप्त इतिहास लिखिए।** *(1995)*

उत्तर—

बहमनी राज्य की स्थापना

मुहम्मद बिन तुगलक के शासनकाल में सरदार इस्माइल नामक व्यक्ति ने अमीरों का समर्थन प्राप्त कर दौलताबाद पर अधिकार कर लिया और नासिरुद्दीन शाह के नाम से वहाँ का सुल्तान बन गया। वह अयोग्य था इसलिए अमीरों ने 3 अगस्त, 1347 ई० को उसके स्थान पर हसन नामक व्यक्ति को शासक बनाया। हसन अबुल मुजफ्फर बहमनशाह के नाम से सिंहासन पर आसीन हुआ। इस सन्दर्भ में फरिश्ता लिखता है कि, "हसन गंगू नामक ब्राह्मण के यहाँ नौकर था। ब्राह्मण ने उससे प्रसन्न होकर सुल्तान होने की भविष्यवाणी की थी, इसलिए हसन ने बहमनी की उपाधि धारण की थी।" कुछ विद्वानों का मत है कि यह कहानी कपोल-कल्पित है। हसन एक ईरानी वीर बहमन का वंशज था, इसलिए उसने बहमन शाह की उपाधि धारण की थी। इस प्रकार, 3 अगस्त, 1347 ई० को हसन ने बहमनी वंश के शासन की नींव डाली थी।

बहमनी वंश के मुख्य शासक : बहमनी राज्य का उत्थान

बहमनी वंश के शासकों ने 1347 ई० से 1517 ई० तक राज्य किया। इस वंश के प्रमुख शासकों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

(1) हसनशाह (1347 से 1358 ई०)—हसन बहमनी वंश का प्रथम सुल्तान था। उसने गुलबर्गा को अपनी राजधानी बनाया। उसने अपने सम्पूर्ण साम्राज्य को गुलबर्गा, दौलताबाद, बरार तथा बीदर आदि चार प्रान्तों में विभाजित किया था। प्रत्येक प्रान्त का एक सूबेदार होता था। कुछ विद्वानों का ऐसा मत है कि हसनशाह गुलबर्गा के एक सन्त गेसूदराज का भक्त था। इसी कारण उसने भी गुलबर्गा को पवित्र स्थान मानकर उसे अपनी राजधानी बनाया था। हसन ने 1358 ई० तक राज्य किया था।

(2) मुहम्मदशाह प्रथम (1358 से 1373 ई०)—हसन की मृत्यु पर उसका ज्येष्ठ पुत्र मुहम्मदशाह के नाम से सुल्तान हुआ। उसने विजय नगर तथा वारंगल के राजाओं से युद्ध किया और हिन्दुओं के मन्दिरों को तुड़वाया। उसने तेलंगाना के राजा को युद्ध में हराया था। वह अत्यन्त निर्दयी शासक था तथापि उसने अपने राज्य में अनेक सुधार किए थे। 1373 ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

बहमनी वंश के प्रमुख शासक

(1) हसनशाह
(2) मुहम्मदशाह प्रथम
(3) मुजाहिद शाह
(4) दाऊद शाह
(5) मुहम्मदशाह द्वितीय
(6) फिरोज शाह
(7) अहमद शाह
(8) अलाउद्दीन शाह द्वितीय
(9) हुमायूँ
(10) निजामशाह
(11) मुहम्मदशाह तृतीय
(12) महमूदशाह।

(3) मुजाहिद शाह (1373 से 1377 ई०)—मुहम्मद शाह की मृत्यु के बाद उसका पुत्र अलाउद्दीन मुजाहिद शाह गद्दी पर बैठा। उसके शासनकाल में विजयनगर राज्य के साथ दो बार युद्ध हुआ। इन युद्धों में उसे विजयश्री प्राप्त नहीं हुई। अन्त में उसे अयोग्य समझकर उसके चचेरे भाई दाउद ने उसे गद्दी से उतार दिया और उसकी हत्या कर दी।

(4) दाउद शाह—दाउद ने अल्पकाल तक ही राज्य किया। मई, 1378 ई० में उसका वध कर दिया गया और उसके बाद हसन का एक पौत्र मुहम्मदशाह सिंहासन पर बैठा।

(5) मुहम्मदशाह द्वितीय (1378 से 1397 ई०)—1378 ई० में दाउद की मृत्यु के बाद अमीरों ने मुहम्मदशाह को गद्दी पर बैठाया। मुहम्मदशाह द्वितीय बहमनी राज्य के संस्थापक हसनशाह का पौत्र था। वह अत्यन्त शान्तिप्रिय होने के कारण युद्धों से दूर रहा। उसने अपने पड़ोसी राज्यों से मित्रता स्थापित

की। उसके शासनकाल में एक भयंकर अकाल पड़ा था। उसने मालवा तथा गुजरात के शासकों से अनाज मँगवाकर अपनी प्रजा की आवश्यकताओं की पूर्ति की। सुल्तान मुहम्मदशाह द्वितीय अत्यन्त उदार व्यक्ति था। उसने जन-कल्याण के लिए अनेक मसजिदें बनवाईं और शिक्षण संस्थाएँ भी खुलवाईं। 1397 ई० में उसकी मृत्यु हुई। मुहम्मदशाह द्वितीय की मृत्यु के उपरान्त उसके दो पुत्र 6-6 महीने के लिए गद्दी पर बैठे, जो अत्यन्त अयोग्य सिद्ध हुए।

(6) फिरोज शाह (1398 से 1422 ई०)—मुहम्मदशाह के दोनों पुत्रों के शासन की समाप्ति पर 1398 ई० में फिरोज शाह गद्दी पर बैठा। वह हसन का एक अन्य पौत्र था। उसने ताजुद्दीन फिरोज शाह की उपाधि धारण की थी। उसके शासनकाल में हिन्दू राज्य विजय नगर के शासकों ने बहमनी राज्य को खूब लूटा। फिरोज शाह विजयनगर के शासकों का सामना करने के स्थान पर गद्दी छोड़कर भाग गया। उसकी कायरता देखकर उसके भाई अहमदशाह ने शासन की बागडोर अपने हाथों में सम्भाल ली।

(7) अहमद शाह (1422 से 1435 ई०)—1422 ई० में अहमद शाह बहमनी राज्य का सुल्तान हुआ। गद्दी पर बैठते ही उसने एक विशाल सेना लेकर विजयनगर राज्य को रौंद डाला। उसने लगभग 20 हजार स्त्रियों और बच्चों को मौत के घाट उतार दिया और विजयनगर से तीन हाथियों पर बहुमूल्य रत्न लादकर लाया। 1424 ई० में उसने वारंगल पर आक्रमण करके उसका अधिकांश भाग अपने साम्राज्य में मिला लिया। 1429 ई० में अहमद शाह ने कोंकण, गुजरात तथा मालवा आदि पर आक्रमण किए। इन आक्रमणों में उसने हिन्दुओं पर बहुत अधिक अत्याचार किए। उसने अपने शासनकाल में बीदर नामक नगर की स्थापना की थी और उसी को अपनी राजधानी बनाया था। 1435 ई० में सुल्तान अहमद शाह का स्वर्गवास हो गया।

(8) अलाउद्दीन शाह द्वितीय (1435 से 1447 ई०)—अहमद शाह की मृत्यु के उपरान्त उसका पुत्र अलाउद्दीन शाह द्वितीय के नाम से सुल्तान हुआ। वह दयालु प्रवृत्ति का था। उसके शासनकाल में अनेक युद्ध हुए। उसने विजयनगर के देवराय द्वितीय को युद्ध में हराया और उससे कर वसूल किया। उसने हिन्दू राज्य कोंकण को जीता, खान देश के आक्रमण को विफल किया तथा संगमेश्वर के राजा की पुत्री से बलपूर्वक विवाह किया। यद्यपि वह अत्यन्त विलासी सुल्तान था, फिर भी उसने बीदर में एक चिकित्सालय और अनेक विद्यालयों व मसजिदों का निर्माण करवाया था।

(9) हुमायूँ (1457 से 1461 ई०)—अलाउद्दीन के बाद हुमायूँ गद्दी पर बैठा। वह अत्यन्त क्रूर था। उसने अपने शासनकाल में महमूद गवाँ नामक एक योग्य व्यक्ति को वजीर के पद पर नियुक्त किया। उसकी क्रूरता से तंग आकर उसके किसी नौकर ने उसका वध कर दिया। उसकी मृत्यु से सभी लोग प्रसन्न हुए। उसे इतिहास में 'जालिम सुल्तान' के नाम से जाना जाता है।

(10) निजामशाह (1461 से 1463 ई०)—1461 ई० में हुमायूँ की हत्या हो जाने पर, निजामशाह, (हुमायूँ का पुत्र) आठ वर्ष की आयु में गद्दी पर बैठा। महमूद गवाँ ने उसकी माता को संरक्षिका बनाकर शासन का कार्य-भार स्वयं सम्भाला, किन्तु दुर्भाग्य से 2 वर्ष बाद ही, 1463 ई० में निजामशाह की मृत्यु हो गई।

(11) मुहम्मदशाह तृतीय (1463 से 1482 ई०)—सुल्तान निजामुद्दीन की मृत्यु के बाद उसका विलासप्रिय चाचा मुहम्मदशाह तृतीय के नाम से सुल्तान बना। उसके शासनकाल में शासन की समस्त शक्तियाँ प्रधान वजीर महमूद गवाँ के हाथों में चली गईं। प्रकृति ने भी मुहम्मदशाह का साथ नहीं दिया। 1470 ई० में एक भयंकर अकाल पड़ा जिससे राज्य की स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गई। मुहम्मदशाह स्थिर बुद्धि का सुल्तान नहीं था। उसने बहकावे में आकर मदिरा के नशे में अपने स्वामिभक्त महमूद गवाँ का वध करा दिया। इसके उपरान्त ही बहमनी सल्तनत का पतन प्रारम्भ हो गया। 1482 ई० में इस अयोग्य शासक मुहम्मदशाह की मृत्यु हो गई।

(12) महमूदशाह (1482 से 1516 ई०)—मुहम्मदशाह तृतीय की मृत्यु के उपरान्त उसके पुत्र महमूदशाह का शासनकाल प्रारम्भ हुआ। वह इतना अयोग्य निकला कि शासन की समस्त शक्ति सुल्तान के वजीर मलिक नाइब के हाथों में आ गई। कुछ समय उपरान्त सरदारों के एक षड्यन्त्र के फलस्वरूप

मलिक नाइब की हत्या हो गई। तत्पश्चात् शासन की समस्त शक्ति नए वजीर कासिम वरीद के पास आ गई। कासिम वरीद और महमूद शाह के विरुद्ध निरन्तर षड्यन्त्र चलते रहे। सुल्तान की अयोग्यता के कारण बहमनी सल्तनत पाँच भागों में विभाजित हो गई, जिन्हें निजामशाही, आदिलशाही, इमामशाही, कुतुवशाही और बरीदशाही राज्यों के नाम से पुकारा गया।

बहमनी राज्य का पतन—सुल्तान महमूद शाह की मृत्यु के पश्चात् बहमनी राज्य का अन्तिम सुल्तान कलीम उल्लाह हुआ, किन्तु महत्त्वाकांक्षी अमीर बरीद ने उससे सिंहासन छीन लिया। इस प्रकार के अयोग्य सुल्तानों की पारस्परिक वैमनस्यता के फलस्वरूप शीघ्र ही बहमनी राज्य का पतन हो गया।

प्रश्न 6—विजय नगर साम्राज्य के उत्थान और पतन पर एक निबन्ध लिखिए। *(1996)*

अथवा **"आर्थिक दृष्टि से विजय नगर राज्य अत्यधिक सम्पन्न था।" इस कथन की विवेचना कीजिए।**

अथवा **विजय नगर राज्य की शासन-व्यवस्था की मुख्य विशेषताएँ क्या थीं? वर्णन कीजिए।** *(1990, 94)*

अथवा **विजय नगर राज्य की उत्पत्ति तथा उत्कर्ष का वर्णन कीजिए।**

अथवा **विजय नगर की शासन-व्यवस्था का वर्णन कीजिए।**

अथवा **विजय नगर राज्य की प्रशासनिक व्यवस्था का विवरण दीजिए।** *(1994)*

अथवा **विजय नगर राज्य की शासन व्यवस्था का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।**

अथवा **विजय नगर की शासन व्यवस्था की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।** *(1991, 94)*

उत्तर—

विजय नगर राज्य

विजय नगर की स्थापना—विजय नगर की स्थापना का इतिहास हरिहर और बुक्का नामक दो भाइयों की कहानी से सम्बन्धित है। दोनों भाई हिन्दू थे और दोनों की अपने गुरु विद्याचरण (विद्यारण्य) के प्रति बहुत अधिक श्रद्धा थी। दोनों भाई वारंगल के राजा के यहाँ नौकर थे। जब 1323 ई० में मुसलमानों ने वारंगल पर आक्रमण किया, तो दोनों भाई रायचूर प्रदेश के 'अनेगोन्दी' शासक के यहाँ नौकर हो गए थे। मुसलमानों ने इनको बन्दी बनाया और दिल्ली भेज दिया। भाग्यवश इसी समय दक्षिण के मुसलमान राज्यों में विद्रोह की अग्नि भड़क उठी। फलस्वरूप मुहम्मद बिन तुगलक ने इन दोनों भाइयों को मुक्त कर दिया और अपना सामन्त बनाकर दक्षिण में भेज दिया। वहाँ पहुँचकर इन दोनों भाइयों ने अपने गुरु विद्याचरण के आदेश पर 'तुंगभद्रा' नदी के तट पर विद्यानगर या विजय नगर नामक नगर की स्थापना की। इस नगर की स्थापना 1336 ई० में हिन्दुओं की रक्षा करने के लिए की गई थी। हरिहर के पिता का नाम संगम था। इस कारण यह राजवंश संगम राजवंश कहलाया।

विजय नगर का उत्कर्ष—1346 ई० में होयसल वंश के प्रसिद्ध राजा बल्लाल के निधन पर हरिहर तथा बुक्का ने बल्लाल के राज्य पर अधिकार कर लिया और तुंगभद्रा के तट पर स्थित विजय नगर को ही उन्होंने अपनी राजधानी बनाया। अब उन्होंने विजय नगर राज्य का विस्तार करना आरम्भ कर दिया। उन्होंने भारत में कृष्णा नदी से लेकर दक्षिण में कावेरी नदी तक अपने साम्राज्य का विस्तार किया। अहमदनगर का राज्य विजय नगर के समीप था, अतएव अहमद नगर तथा विजय नगर में सदैव ही संघर्ष चलता रहा।

विजय नगर के विभिन्न राजवंश तथा उनके शासक

विजय नगर पर विभिन्न राजवंशों ने राज्य किया था। इनमें संगम वंश, सलुव वंश, तुलुव वंश तथा अरबिन्दु वंश के नाम उल्लेखनीय हैं। इन वंशों के शासकों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

I. संगम (यादव) वंश के प्रमुख शासक (1336–1486 ई०)

विजय नगर के संस्थापक यादव वंशज हरिहर और बुक्का थे। इनके पिता का नाम संगम था। अतः इस वंश को संगम वंश कहते थे। संगम वंश के संस्थापक हरिहर और बुक्का ने सम्राट की उपाधि धारण नहीं की थी। इस काल की मुख्य घटनाएँ अग्र प्रकार हैं—

(1) बुक्का ने मदुरा राज्य को विजित किया और हिन्दू धर्म की सुरक्षा करते हुए 'वेद-मार्ग प्रतिष्ठापक' की उपाधि धारण की। 1374 ई० में बुक्का ने चीन में अपना दूतमण्डल भेजा था। बुक्का की मृत्यु 1379 ई० में हुई।

(2) 1379 ई० में हरिहर द्वितीय सम्राट हुआ। उसने 'महाराजाधिराज' तथा 'राज-परमेश्वर' की उपाधियाँ धारण की थीं।

विजय नगर राज्य के राजवंश

I. संगम (यादव) वंश
II. सलुव वंश
III. तुलुव वंश
IV. अरबिन्दु वंश।

(3) हरिहर द्वितीय ने कनारा, मैसूर, त्रिचनापल्ली, काँची तथा चिंगल आदि प्रदेशों पर अधिकार करके अपने साम्राज्य की सीमा बढ़ाई। उसने लंका से राजस्व वसूल किया तथा गोआ को भी जीत लिया।

(4) 1404 ई० में हरिहर द्वितीय की मृत्यु के उपरान्त विरुपाक्ष प्रथम और बुक्का द्वितीय के अल्पकाल तक शासन करने के उपरान्त 1404 ई० में देवराय प्रथम विजय नगर साम्राज्य का शासक हुआ। उसने बहमनी सुल्तानों से कई बार युद्ध किए। उसकी मृत्यु 1410 ई० में हुई थी।

(5) देवराय प्रथम की मृत्यु के पश्चात् क्रमशः रामचन्द्र, विजय और देवराय द्वितीय सिंहासन पर आसीन हुए। उनके शासनकाल में सैन्य-संगठन पर विशेष बल दिया गया।

(6) देवराय द्वितीय (1419-1449 ई०) के शासनकाल में विजय नगर समृद्धि की चरम सीमा पर पहुँचा। 1449 ई० में देवराय द्वितीय की मृत्यु हो गई।

(7) देवराय द्वितीय के उत्तराधिकारी निर्बल थे। उनके शासनकाल में बहमनी नरेशों ने विजय नगर पर आक्रमण किए। संगम वंश का अन्तिम शासक विरुपाक्ष द्वितीय था। विरुपाक्ष द्वितीय को 'चन्द्रगिरि' के शक्तिशाली सामन्त नरसिंह ने पदच्युत करके, 1486 ई० में सिंहासन पर अधिकार कर लिया और सलुव वंश की नींव डाली।

II. सलुव वंश के प्रमुख शासक (1486-1505 ई०)

(1) नरसिंह सलुव ने विरुपाक्ष द्वितीय से सिंहासन पर अपना आधिपत्य स्थापित किया और बहमनी सुल्तानों तथा उड़ीसा के राजा के विरुद्ध युद्ध करके, विजित प्रान्तों पर सलुव वंश की पताका फहराई।

(2) 1505 ई० में सेनापति नरस नायक की मृत्यु हो गई और उसके पुत्र नरसिंह तुलुव ने नरसिंह सलुव के पुत्र और शासक तिश्मा की हत्या करके सिंहासन पर अधिकार कर लिया। उसने तुलुव वंश की नींव डाली।

(3) नरसिंह का निधन होते ही सेनापति नरस नायक ने उसके निर्बल उत्तराधिकारियों से शासन की सत्ता हस्तगत कर ली।

III. तुलुव वंश के प्रमुख शासक (1505-1542 ई०)

वीर नरसिंह ने एक नवीन राजवंश की नींव डाली। इस वंश को तुलुव वंश कहते हैं। इस वंश के प्रमुख राजा इस प्रकार हुए—

(i) नरसिंह तुलुव (1505-1509 ई०),
(ii) कृष्णदेवराय (1509-1530 ई०),
(iii) अच्युतराय (1530-1542 ई०),
(iv) सदाशिवराय और उसके उत्तराधिकारी (1542-1564 ई०)।

तुलुव वंश के शासनकाल की प्रमुख घटनाओं का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

(1) **साम्राज्य विस्तार**—वीर नरसिंह ने तुलुव वंश की स्थापना की थी। वह एक वीर शासक था और उसने 1505 ई० से 1509 ई० तक शासन किया था। उसके बाद 1509 ई० से 1530 ई० तक कृष्णदेवराय ने शासन किया। उसने अनेक युद्ध किए और अपने शासनकाल में अनेक विद्रोही सामन्तों का दमन किया। उसने रायचूर और दोआब पर अधिकार कर लिया था। कृष्णदेवराय ने उड़ीसा के राजा

गजपति प्रताप रुद्र एवं बहमनी राज्य के राजा मुहम्मद शाह को परास्त किया। राजा प्रताप रुद्र ने अपनी पुत्री का विवाह कृष्णदेवराय के साथ कर दिया था। कृष्णदेवराय ने उदयगिरी का दुर्ग भी जीत लिया। उसके पश्चात् उसने कोडबिन्दु तथा कोडपल्ली पर विजय प्राप्त कर ली और 1520 ई० में बीजापुर के सुल्तान को हराण तथा गुलबर्गा के दुर्ग पर आक्रमण किया। कृष्णदेवराय की इन सैनिक कार्यवाहियों के कारण, विजय नगर साम्राज्य की सीमाएँ काफी विस्तृत हो गई थीं।

(2) शत्रुओं का प्रकोप—कृष्णदेवराय के उपरान्त विजय नगर का पतन प्रारम्भ हो गया। उसके उत्तराधिकारी निर्बल और अयोग्य थे। अतः विजय नगर के चारों ओर अनेक शत्रु दिखाई देने लगे। इसी समय कृष्णदेवराय का भाई अच्युतराय गद्दी पर बैठा। वह पूर्णतः अयोग्य था। उसके समय में चारों ओर विद्रोह होने लगे। बीजापुर के सुल्तान ने रायचूर तथा मुदगल को अपने साम्राज्य में मिला लिया। अच्युतराय का उत्तराधिकारी सदाशिवराय भी निर्बल सिद्ध हुआ। फलस्वरूप शासन का समस्त कार्य प्रधानमन्त्री रामराय के हाथों में चला गया। अव दरबार में दलबन्दियों का प्रकोप हुआ। इस प्रकार, विजय नगर के निर्बल राजाओं के कारण उसका पतन आरम्भ हो गया।

(3) विजय नगर पर संयुक्त संकट—विजय नगर के प्रधानमन्त्री रामराय ने अहमद नगर तथा गोलकुण्डा के सुल्तानों से मित्रता करके बीजापुर पर आक्रमण किया, ताकि वह रायचूर तथा मुदगल के दुर्गों को पुनः प्राप्त कर सके। बीजापुर का मन्त्री अत्यन्त कुशल था। उसने विजय नगर, अहमद नगर तथा गोलकुण्डा के संघ को नष्ट कर दिया। अब एक नए संघ का निर्माण हुआ जिसमें अहमद नगर के विरुद्ध गोलकुण्डा तथा बीजापुर के सुल्तान सम्मिलित हुए। सबने मिलकर अहमद नगर पर आक्रमण किया। इस संघ का विजय नगर ही एक ऐसा राज्य था, जो हिन्दू राज्य था, अन्य सभी मुसलमान राज्य थे। इस आक्रमण में हिन्दुओं ने मुसलमानों के साथ अपमानजनक व्यवहार किया। अतएव यह संघ साम्प्रदायिक आधार पर भंग हो गया और इसी के परिणामस्वरूप अब विजय नगर के विरुद्ध मुसलमानी राज्यों ने एक संयुक्त संघ वना लिया। केवल 'बरार' का सुल्तान इस संघ का सदस्य न बन सका।

तुलुव वंश के शासनकाल की प्रमुख घटनाएँ

(1) साम्राज्य विस्तार
(2) शत्रुओं का प्रकोप
(3) विजय नगर पर संयुक्त संकट
(4) तालीकोट का युद्ध।

(4) तालीकोट का युद्ध—1565 ई० में मुस्लिम राज्यों के संघ ने संयुक्त रूप से विजय नगर पर आक्रमण किया। इस संयुक्त सेना ने विजय नगर पर दक्षिण की ओर से आक्रमण किया था। यह सेना तालीकोट के निकट विजय नगर की सेना पर आक्रमण करने के लिए रुक गई थी। विजय नगर का मन्त्री रामराय अपनी सेना लेकर तालीकोट पहुँचा। दोनों पक्षों के मध्य घमासान युद्ध हुआ। युद्ध में रामराय मारा गया और मुसलमानों ने विजय नगर को बुरी तरह से लूटा। उन्होंने असंख्य स्त्रियों, बच्चों व पुरुषों को मौत के घाट उतार दिया। इस तरह विजय नगर के वैभव का अन्त हो गया और दक्षिण में अनेक स्वतन्त्र राज्य स्थापित होने लगे।

युद्ध का परिणाम—तालीकोट के युद्ध में मुसलमानों ने संयुक्त रूप से लूटमार और नरसंहार किया था, किन्तु वे विजय नगर के अस्तित्व को पूर्ण रूप से समाप्त करने में सफल न हो सके। इसका एक महत्त्वपूर्ण कारण यह था कि तालीकोट के युद्ध के उपरान्त मुसलमानी राज्यों में पुनः ईर्ष्या के भाव उत्पन्न हो उठे और उनकी इसी निर्बलता का लाभ उठाकर विजय नगर ने अपनी खोई हुई भूमि और शक्ति को पुनः प्राप्त कर लिया।

IV. अरबिन्दु वंश एवं विजय नगर राज्य का पतन

सन् 1570 ई० में विजय नगर के प्रधानमन्त्री रामराय के भाई तिरुमाल ने वैनुगोंडा को राजधानी बनाकर विजय नगर के राजा सदाशिव से सत्ता छीन ली और विजय नगर पर राज्य करने के लिए अरबिन्दु वंश की स्थापना की। इस वंश के सभी राजा निर्बल सिद्ध हुए। अतएव मुसलमानों ने धीरे-धीरे विजय नगर को हड़प लिया और उसका अन्त कर दिया।

विजय नगर की शासन-व्यवस्था : प्रमुख विशेषताएँ

विजय नगर की शासन व्यवस्था पर आधारित प्रमुख विशेषताओं को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है—

(1) केन्द्रीय शासन—विजय नगर के शासक निरंकुश थे, किन्तु वे स्वेच्छाचारी नहीं थे। राज्य की सम्पूर्ण शक्ति राजा में केन्द्रित रहती थी, परन्तु वे प्रजा की भलाई के प्रति जागरूक रहते थे। राजा न्याय का सर्वोच्च अधिकारी होता था। राजा को परामर्श एवं सहायता देने के लिए एक मन्त्रि-परिषद् होती थी। राजा प्रान्तीय शासकों एवं अन्य राज्य-कर्मचारियों की नियुक्ति करता था। केन्द्रीय शासन में कई विभाग होते थे तथा प्रत्येक का अलग-अलग अध्यक्ष होता था।

(2) प्रान्तीय शासन—शासन की सुविधा के लिए समस्त साम्राज्य छह प्रमुख प्रान्तों में विभक्त था। प्रत्येक प्रान्त का एक नायक होता था। उस पर प्रान्त के शासन का उत्तरदायित्व होता था। वही प्रान्त की आय-व्यय का ब्यौरा राजा के सामने प्रस्तुत करता था। उसे आय का आधा भाग केन्द्रीय कोष में जमा करना पड़ता था। प्रान्तीय नायक युद्ध के समय राजा को सैनिक सहायता देते थे। प्रान्त के शासन पर केन्द्र का कठोर नियन्त्रण रहता था।

(3) स्थानीय शासन—प्रान्त नाडू (जिलों) में तथा जिले छोटी नगर-ग्राम इकाइयों में बँटे हुए थे। सबसे छोटी इकाई गाँव होते थे। गाँव में ग्राम-पंचायतों की व्यवस्था थी, जो छोटे-छोटे झगड़ों को सुलझाती एवं शान्ति बनाए रखने का कार्य करती थीं।

(4) न्याय व्यवस्था—विजय नगर राज्य में न्याय व्यवस्था पूर्ण रूप से सुसंगठित थी। इस समय देश में अनेक न्यायालय थे। सर्वोच्च न्यायालय राजा के अधीन रहता था। राजा, सर्वोच्च न्यायाधीश होता था और दण्ड-विधान कठोर था। चोरी, व्यभिचार तथा राजद्रोह के लिए मृत्युदण्ड तक की व्यवस्था थी। अंग-भंग की भी व्यवस्था थी और साधारण अपराधों के लिए अर्थदण्ड दिया जाता था। ब्राह्मणों को प्राणदण्ड नहीं दिया जाता था, इसी कारण अपराध कम होते थे। राज्य में सर्वत्र शान्ति और व्यवस्था स्थापित थी।

(5) सैन्य व्यवस्था—विजय नगर के शासकों की सैन्य व्यवस्था सुव्यवस्थित और संगठित थी। सेना चार भागों में बँटी हुई थी—घुड़सवार, हाथीसवार, पैदल और तोपखाना। सैनिकों को नकद वेतन एवं प्रशिक्षण देने की व्यवस्था थी।

विजय नगर की शासन-व्यवस्था : प्रमुख विशेषताएँ

(1) केन्द्रीय शासन
(2) प्रान्तीय शासन
(3) स्थानीय शासन
(4) न्याय व्यवस्था
(5) सैन्य व्यवस्था
(6) आय के साधन
(7) आर्थिक दशा
(8) सामाजिक दशा
(9) साहित्य एवं कला की उन्नति।

(6) आय के साधन—राज्य की आय का प्रमुख स्रोत या साधन भूमि-कर था। एक पुर्तगाली लेखक के अनुसार, किसानों से 9/10 भाग से 1/2 भाग तक उपज का लगान (भूमि-कर) के रूप में लिया जाता था। सरकार लोगों से व्यवसाय-कर, चरागाह-कर, उद्यानों तथा दस्तकारी की चीजों पर भी कर लेती थी। कर; नकद एवं उपज दोनों रूपों में लिया जाता था।

(7) आर्थिक दशा—विजय नगर राज्य की आर्थिक स्थिति काफी अच्छी थी। इसलिए राज्य में प्रत्येक व्यक्ति सुखी था और ईमानदारी का जीवन व्यतीत करता था। ईरानी यात्री अब्दुर्रज्जाक ने लिखा है कि, "राजा ही धनवान नहीं था, वरन् प्रजा भी धनवान थी। जनसाधारण भी कानों, गलों, हाथों और अंगुलियों में आभूषण पहनते थे।"

विजय नगर की आर्थिक स्थिति के सन्दर्भ में पेड्ज ने लिखा है, "विजय नगर विश्व के सर्वश्रेष्ठ नगरों में से एक था, यहाँ पर जीवन की सभी वस्तुएँ एवं सुविधाएँ उपलब्ध थीं।" इस प्रकार, यह कथन भी उचित ही है कि, "आर्थिक दृष्टि से विजय नगर राज्य अत्यधिक सम्पन्न था।"

(8) सामाजिक दशा—विजय नगर राज्य का समाज दो वर्गों में विभक्त था। एक वर्ग के लोग वैभवसम्पन्न एवं ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत कर रहे थे, तो दूसरी ओर झुग्गियों में रहने वाले लोग अति दरिद्र एवं कष्टमय जीवन के आदी थे। समाज में ब्राह्मणों को काफी सम्मान दिया जाता था। नूनीज ने विजय

नगर की सामाजिक दशा का वर्णन इस प्रकार किया है, **"स्त्री हिसाब रखने वाली, स्त्री-क्लर्क और स्त्री-अंगरक्षकों के अतिरिक्त राजदरबार में स्त्री-पहलवान, स्त्री-ज्योतिषी एवं स्त्री-भविष्यवक्ता भी थीं। लोग मांस भी खाते थे, किन्तु गाय एवं बैल का मांस वे नहीं खाते थे। समाज में अल्पायु विवाह, धनी व्यक्तियों में बहुविवाह, दहेज-प्रथा, सती-प्रथा आदि प्रथाएँ प्रचलित थीं।"**

(9) साहित्य एवं कला की उन्नति—विजय नगर राज्य के लगभग सभी राजा साहित्य-प्रेमी एवं विद्वानों को आश्रय देने वाले थे। इस राज्य में अनेक भाषाओं (तेलगु, तमिल, कन्नड़ तथा संस्कृत) में अनेक ग्रन्थों की रचना हुई। कृष्णदेव राय सबसे अधिक साहित्य-प्रेमी, विद्वान्, कवि एवं संगीतकार थे। उन्होंने अपने राज्यकाल में सभी कलाकारों को आश्रय दिया था। उन्होंने तेलगु भाषा में 'अमूक्त आत्यक्ष' नामक पुस्तक की रचना की थी। कृष्णदेव राय के शासनकाल में अनेक मन्दिरों का निर्माण भी हुआ, जो कला के सर्वश्रेष्ठ नमूनों के रूप में स्वीकार किए जाते थे। विजय नगर राज्य के शासकों द्वारा निर्मित विट्ठल स्वामी का मन्दिर तथा हजार स्तम्भों वाला मन्दिर, हिन्दू स्थापत्य-कला के अद्वितीय नमूने हैं।

विजय नगर के सम्बन्ध में अब्दुर्रज्जाक ने लिखा है, **"सम्पूर्ण विश्व में न तो ऐसा नगर देखा गया है, न सुना गया है। इस देश में चाँदी तथा ताँबे के सिक्के प्रचलित थे।"** इस राज्य के शासकों की एक विशेषता यह भी है कि यद्यपि यहाँ के सभी राजा वैष्णव मतावलम्बी रहे थे, किन्तु सभी धर्म-सहिष्णु थे। एक विद्वान् ने इस सन्दर्भ में लिखा है, **"राजा ने इतनी स्वतन्त्रता दे रखी थी कि कोई भी व्यक्ति अपनी इच्छानुसार धर्माचरण कर सकता था तथा अपने धर्म के अनुसार जीवन बिता सकता था।"**

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—बहमनी राज्य के चार प्रमुख शासकों के नाम बताइए। *(1990, 94)*

उत्तर—बहमनी राज्य के चार प्रमुख शासक निम्नलिखित थे—

(1) मुहम्मदशाह प्रथम (1358-1373 ई०), (2) फिरोजशाह (1398-1422 ई०),
(3) अहमद शाह (1422-1435 ई०), (4) निजामशाह (1461-1463 ई०)।

प्रश्न 2—बहमनी राज्य के पतन होने पर वह किन छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया था?

उत्तर—सुल्तान महमूद शाह की अयोग्यता के कारण बहमनी राज्य पाँच छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हो गया। ये राज्य थे—

(1) बरार का इमामशाही राज्य। (2) बीजापुर का आदिलशाही राज्य। (3) अहमद नगर का निजामशाही राज्य। (4) गोलकुण्डा का कुतुबशाही राज्य। (5) बरीद का बरीदशाही राज्य।

प्रश्न 3—विजय नगर साम्राज्य के पतन के कोई चार कारण बताइए। *(1993)*

उत्तर—विजय नगर साम्राज्य के पतन के चार कारण निम्नलिखित हैं—

(1) उत्तराधिकारियों के मध्य वैमनस्य की भावना।
(2) मुसलमानी सेना के संयुक्त आक्रमण।
(3) विजय नगर के प्रधानमन्त्री के भाई तिरुमाल की दूषित महत्त्वाकांक्षा।
(4) अरबिन्दु वंश के शासकों की बढ़ती हुई शक्ति।

प्रश्न 4—दक्षिण भारत के दो प्रमुख प्राचीन राज्यों का संक्षिप्त परिचय दीजिए। *(1995)*

उत्तर—(संकेत—यहाँ स्थलों पर आधारित प्रश्न संख्या 3 के अन्तर्गत दिए गए गोलकुण्डा और बीदर राज्य का विवरण दीजिए।)

प्रश्न 5—तालीकोट के युद्ध का महत्त्व समझाइए। *(1996)*

उत्तर—तालीकोट का युद्ध 1565 ई० में हुआ। इस युद्ध में मुस्लिम राज्यों की संयुक्त सेनाओं ने, विजय नगर राज्य के शासक रामराय को परास्त कर दिया। इस युद्ध में विजय नगर राज्य की पराजय के फलस्वरूप विजय नगर के वैभव का अन्त हो गया और दक्षिण में अनेक स्वतन्त्र राज्य स्थापित होने लगे। इस प्रकार, इस युद्ध के उपरान्त विजय नगर राज्य का अन्त हो गया और विजय नगर पर मुसलमानों का आधिपत्य स्थापित हो गया।

प्रश्न 6—विजय नगर के शासक कृष्णदेव राय के विषय में आप क्या जानते हैं? *(1999)*
उत्तर—ऐतिहासिक व्यक्तियों से सम्बन्धी प्रश्न 2 की टिप्पणी संख्या 9 का अध्ययन कीजिए।

ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों एवं व्यक्तियों पर आधारित प्रश्न

प्रश्न 1—निम्नलिखित ऐतिहासिक तिथियों से सम्बन्धित घटना का उल्लेख कीजिए—

उत्तर—(1) 1336 ई० *(1990, 94, 95, 96, 99)*—इस तिथि को हरिहर तथा बुक्का नामक दो भाइयों ने विजय नगर राज्य की स्थापना की थी।

(2) 1347 ई० *(1990, 92, 96)*—इस तिथि को हसन गंगू ने दौलताबाद में बहमनी राज्य की स्थापना की थी।

(3) 1481 ई० *(1994)*—इस तिथि को बहमनी राज्य के प्रधानमन्त्री महमूद गवाँ की हत्या हुई।

(4) 1488 ई०—इस तिथि को विजय नगर में सलुव वंश का साम्राज्य स्थापित हुआ था।

(5) 1509 ई० *(1996, 99)*—इस तिथि को कृष्णदेव राय का सिंहासनारोहण हुआ।

(6) 1510 ई० *(1994)*—इस तिथि को पुर्तगालियों ने बीजापुर से गोआ को छीन लिया। इसी तिथि को सिकन्दर लोदी ने नागौर पर विजय प्राप्त कर, वहाँ अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था।

(7) 1530 ई० *(1997)*—इस तिथि को विजय नगर के सर्वाधिक प्रतापी शासक कृष्णदेव राय की मृत्यु हुई।

(8) 1565 ई० *(1996, 99)*—इस तिथि को तालीकोट का युद्ध एवं विजय नगर साम्राज्य का अन्त हुआ।

प्रश्न 2—निम्नलिखित ऐतिहासिक व्यक्तियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) पुलकेशियन प्रथम *(1999)*—बादामी (वातापी) के चालुक्य राजवंश का दूसरा महान् सम्राट पुलकेशियन प्रथम एक प्रतिभाशाली और शक्तिशाली शासक था। उसने **'सत्याश्रय'** और **'रण विक्रम'** की उपाधियाँ ग्रहण की थीं। इसके अतिरिक्त, उसने **'पृथ्वीवल्लभ'** नामक विरुद (उपाधि) भी धारण की थी। उसने निकटवर्ती राज्यों पर विजय प्राप्त करके अश्वमेध यज्ञ किया था।

(2) अमोघवर्ष—राष्ट्रकूट वंश का यह महान् सम्राट 814 ई० में केवल 12 वर्ष की आयु में राजगद्दी पर आसीन हुआ था। वह जैन धर्म का अनुयायी और महालक्ष्मी का परम भक्त था। वह प्रजापालक और साहित्यकारों का आश्रयदाता था। उसकी मृत्यु 878 ई० में हुई थी।

(3) सत्याश्रय—यह कल्याणी की चालुक्य शाखा का एक शक्तिशाली राजा था। यह चोल शासक राजराज का समकालीन था। इसने 917 ई० से 1008 ई० तक शासन किया था।

(4) सिंहवर्मन—यह दक्षिण के पल्लव राजवंश का संस्थापक था। गन्टूर (पादनार तालुक) अभिलेख के अनुसार यह ब्राह्मण धर्म का अनुयायी था। इसकी राजधानी काँची थी।

(5) राजराज प्रथम—यह चोल वंश का एक शक्तिशाली राजा था। इसने चेर राजा भास्कर रविवर्मन को पराजित कर उसके जहाजी बेड़े को नष्ट कर दिया था। कहा जाता है कि इसने लंका पर भी विजय प्राप्त की थी। यह भगवान शिव का उपासक था। भारतीय इतिहास में यह एक महान् विजेता, उच्चकोटि का शासन प्रबन्धक और एक साम्राज्य-निर्माता के रूप में प्रसिद्ध है।

(6) राजेन्द्र प्रथम—यह चोल शासक राजराज प्रथम का योग्य पुत्र था। उसने चालुक्य राजा सत्याश्रय को हराया और श्रीलंका पर अपना पूर्ण प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। भारतीय इतिहास में यह पहला शासक था, जिसने देश की सीमाओं के बाहर जल-मार्ग द्वारा विदेशी शासकों को पराजित करने के लिए अपनी फौजें भेजी थीं। इनमें उसकी श्रीविजय (सुमात्रा) की विजय उल्लेखनीय है।

(7) महमूद गवाँ *(1995)*—महमूद गवाँ फारस के गवाँ नामक ग्राम का निवासी था। वह एक व्यापारी के रूप में भारत आया था और बाद में वह बहमनी राज्य के सुल्तान हुमायूँ का कृपापात्र बन गया था। सुल्तान हुमायूँ की मृत्यु के बाद महमूद गवाँ उसके अल्पवयस्क पुत्र निजामशाह का रक्षक बन गया था। अपनी प्रतिभा के बल पर महमूद गवाँ बहमनी सुल्तान मुहम्मदशाह का प्रधानमन्त्री बन गया।

महमूद गवाँ ने न केवल महत्त्वपूर्ण विजयें प्राप्त कीं, अपितु उसने शासन के क्षेत्र में अनेक महत्त्वपूर्ण सुधार भी किए थे। वह विरोधी अमीरों के एक पड्यन्त्र का शिकार होकर मारा गया। महमूद गवाँ एक योग्य प्रशासक और कला तथा साहित्य का विशेष प्रेमी था।

(8) देवराय द्वितीय—देवराय द्वितीय यादव वंश (संगम वंश) का विजय नगर का अत्यंन्त योग्य एवं शक्तिशाली शासक था। उसने सैनिक, प्रशासनिक तथा व्यापार के क्षेत्र में अनेक सुधार करके विजय नगर को अत्यन्त समृद्धशाली राज्य बना दिया। दो प्रसिद्ध यात्री, इटली का निकोलोकोण्टी तथा ईरान का अब्दुर्रज्जाक उसी के शासनकाल में विजय़ नगर आए थे। उन्होंने इस साम्राज्य की प्रशंसा में विस्तार से लिखा है।

(9) कृष्णदेव राय *(1995, 99)*—विजय नगर साम्राज्य के तुलुव वंश का सबसे महान् और शक्तिशाली राजा कृष्णदेव राय था, जिसने 1509 ई० से 1530 ई० तक शासन किया था। उसके शासन काल में विजय नगर का गौरव अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गया था। राजा कृष्णदेव राय एक महान् विजेता, दूरदर्शी प्रशासक, प्रकाण्ड विद्वान्, कलाओं का संरक्षक और साहित्यकारों का आश्रयदाता था।

प्रश्न 3—निम्न स्थानों का संक्षिप्त विवरण दीजिए—

उत्तर—(1) गोलकुण्डा—इस राज्य की स्थापना 1518 ई० में तेलंगाना के गवर्नर कुतुवशाह द्वारा की गई थी। 1687 ई० तक यह पूर्णतः स्वतन्त्र राज्य के रूप में विकसित होता रहा।

(2) वीदर—इस राज्य की स्थापना 1526 ई० में अमीर वरीद के द्वारा की गई थी। यह दक्षिण भारत का एक प्रमुख राज्य था।

18 धार्मिक सहिष्णुता का जन्म, भक्ति आन्दोलन, सूफी सम्प्रदाय तथा साहित्य व कला के क्षेत्र में इनका प्रभाव

"समाज सुधारक एवं धर्म सुधारक के रूप में कबीरदास की शिक्षाएँ बड़ी महत्त्वपूर्ण थीं।" — डॉ० ताराचन्द

"सल्तनत काल में हिन्दुओं में अनेक ऐसे धार्मिक विचारक हुए हैं, जिन्होंने भक्ति को धार्मिक महत्त्व दिया और धर्म सुधार के एक नए आन्दोलन का सूत्रपात किया जो भक्ति आन्दोलन के नाम से विख्यात हुआ।"

—डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—भक्ति आन्दोलन से आप क्या समझते हैं? मध्यकाल के प्रमुख धर्म-सुधारकों का परिचय दीजिए। मुसलमानों का इस आन्दोलन पर क्या प्रभाव पड़ा था? *(1990)*

अथवा **भक्ति आन्दोलन का संक्षिप्त विवरण दीजिए।**

अथवा **"भक्ति आन्दोलन के महान् प्रवर्तक चैतन्य महाप्रभु तथा गुरु नानक थे।" इस कथन को समझाइए।**

अथवा **भक्ति आन्दोलन का संक्षिप्त वर्णन कीजिए तथा भारतीय समाज पर इसके प्रभाव का आकलन कीजिए।**

अथवा **भक्ति आन्दोलन से आप क्या समझते हैं? इसके कम-से-कम दो प्रमुख सुधारकों का संक्षिप्त जीवन परिचय उनकी शिक्षाओं सहित दीजिए।** *(1990, 94)*

अथवा **भक्ति सम्प्रदाय के प्रमुख सन्तों के विचारों का विवरण दीजिए।** *(1991, 95)*

अथवा भक्तिकाल के प्रमुख सन्तों का विवेचन कीजिए। *(1996)*

अथवा भक्ति आन्दोलन का परिचय दीजिए। *(1994)*

अथवा भक्ति आन्दोलन के भारत के धर्म एवं समाज पर पड़ने वाले प्रभावों पर प्रकाश डालिए। *(1996)*

उत्तर—

भक्ति आन्दोलन

सल्तनत काल में अनेक साधु-सन्त और सुधारक हुए थे, जिन्होंने भक्ति भावना के विकास पर बल दिया और धर्म सुधार का एक ऐसा नया आन्दोलन चलाया जो इतिहास में भक्ति आन्दोलन के नाम से प्रसिद्ध हुआ। यद्यपि यह आन्दोलन कोई नया आन्दोलन नहीं था, वरन् इसका सूत्रपात आचार्य शंकराचार्य के समय से ही उनके द्वारा चलाए गए अद्वैतवादी दर्शन से हो चुका था। सल्तनत काल में मानव समाज का सामाजिक एवं धार्मिक स्तर बहुत गिर गया था। ऐसी विकृत दशा को देखकर अनेक समाज सुधारक सामने आए और उन्होंने समाज एवं धर्म में सुधार हेतु अनेक आन्दोलन संचालित किए। इस सम्बन्ध में जार्ज ग्रियर्सन ने लिखा है कि, "हम अपने को एक ऐसे धार्मिक आन्दोलन के समक्ष पाते हैं जो उन समस्त धार्मिक आन्दोलनों से कहीं अधिक व्यापक एवं विशाल है; जिन्हें भारत ने कभी देखा है।"

भक्ति आन्दोलन के कारण

भक्ति आन्दोलन के निम्नलिखित कारण थे—

(1) कुछ विद्वानों का कथन है कि भक्ति आन्दोलन के उदय का कारण मुस्लिम सम्पर्क का प्रभाव था। मुसलमान इस्लाम धर्म के प्रचार हेतु भरसक प्रयत्न कर रहे थे। अतः हिन्दुओं में भी स्वाभाविक रूप से अपने धर्म के प्रचार और धर्म-सुधार की भावना विकसित हुई।

(2) सल्तनत काल में नारी जाति का सामाजिक स्तर अत्यन्त निम्न कोटि का हो चला था। अतः नारी का जीवन सुधारना भी भक्ति आन्दोलन के प्रवर्तकों का एक मुख्य उद्देश्य बन गया था।

(3) हिन्दू जाति को धर्म परिवर्तन से रोकने के उद्देश्य को निर्धारित करने के फलस्वरूप भी इस आन्दोलन को पर्याप्त प्रोत्साहन मिला था।

(4) इस आन्दोलन का एक कारण यह भी था कि शंकराचार्य का 'ज्ञान-मार्ग' इतना कठिन था कि जनता उसका कोई लाभ प्राप्त नहीं कर पा रही थी।

(5) कुछ धर्मान्ध मुसलमान शासकों ने देश में अनेक मन्दिरों का अस्तित्व समाप्त कर दिया था और मूर्तियों को तोड़-फोड़ डाला था। अतः हिन्दुओं ने ईश्वर-उपासना का कोई और साधन न देखकर भक्ति-मार्ग को ही ग्रहण करना उचित समझा।

(6) इस प्रकार 'भक्ति-मार्ग' का उदय, इस्लाम तथा सूफी मत के प्रचार की प्रतिक्रिया के फलस्वरूप हुआ था तथा समाज में व्याप्त कुप्रथाओं के विरुद्ध यह एक धार्मिक प्रतिक्रिया थी।

(7) मोक्ष प्राप्ति के लिए भक्ति का आधार लेकर जो आन्दोलन चला, वही भक्ति आन्दोलन कहलाया। वस्तुतः मध्यकालीन सन्तों ने मोक्ष-प्राप्ति के लिए ही भक्ति पर अधिक बल दिया था।

भक्ति आन्दोलन की विशेषताएँ

भक्ति आन्दोलन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित थीं—

(1) भक्ति-आन्दोलन के सभी प्रवर्तक समाज में व्याप्त निरर्थक आडम्बरों के घोर विरोधी थे।

(2) भक्ति आन्दोलन के सन्तों ने कर्मकाण्डी देवी-देवताओं की मूर्तिपूजा का खण्डन किया।

(3) इन्होंने जाति-प्रथा का घोर विरोध किया।

(4) इन्होंने समाज में ऊँच-नीच और भेद-भाव का प्रबल विरोध किया।

(5) इस आन्दोलन के प्रवर्तकों का कहना था कि सच्चे हृदय से ही ईश्वर की भक्ति की जा सकती है और मोक्ष भी तभी प्राप्त किया जा सकता है।

(6) इन्होंने व्यक्तिगत चरित्र की शुद्धता पर विशेष बल दिया।

(7) इन सुधारकों ने तत्कालीन सामाजिक स्थिति में भी पर्याप्त सुधार किए।

(8) इनके द्वारा हिन्दू नारी की हीन दशा के सुधार की ओर विशेष ध्यान दिया गया था।

(9) भक्ति आन्दोलन द्वारा सामाजिक कुरीतियों को भी दूर करने का भरसक प्रयत्न किया गया था।

(10) इस आन्दोलन का जन्म दक्षिण भारत में हुआ था, परन्तु यह आन्दोलन धीरे-धीरे समस्त भारत में फैल गया था।

भक्ति आन्दोलन के प्रमुख सन्त

भक्ति आन्दोलन के प्रमुख सन्तों का संक्षिप्त परिचय निम्नवत् है—

(1) आचार्य रामानुजाचार्य—आचार्य रामानुजाचार्य का जन्म 1016 ई० में हुआ था। भक्ति आन्दोलन के प्रवर्तकों में इनका सर्वोच्च स्थान है। ये सगुण ब्रह्म के उपासक थे और इसी को वे मोक्ष-प्राप्ति का साधन बताते थे। इनके अनुयायियों की संख्या दक्षिण भारत में अधिक है।

(2) रामानन्द—रामानन्द का जन्म 14वीं शताब्दी में इलाहाबाद में हुआ था। इन्होंने उत्तर भारत में भक्ति आन्दोलन चलाया था। ये राम तथा सीता के उपासक थे। इन्होंने जनसाधारण की भाषा में लोगों को राम-भक्ति की उपासना के लिए प्रोत्साहित किया था। ये जाति-पाँति के प्रबल विरोधी थे। उनके शिष्यों में सभी जातियों के व्यक्ति थे।

भक्ति आन्दोलन के प्रमुख सन्त

(1) रामानुजाचार्य
(2) रामानन्द
(3) वल्लभाचार्य
(4) चैतन्य महाप्रभु
(5) कबीर
(6) गुरु नानक।

(3) वल्लभाचार्य—श्री वल्लभाचार्य जी का जन्म 1479 ई० में तेलंगाना प्रदेश के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। इन्होंने भारत के अनेक स्थानों का भ्रमण किया और जनता को प्रेम एवं ईश्वर-भक्ति का उपदेश दिया था। उनका कहना था कि जब मनुष्य की आत्मा सभी बन्धनों से मुक्ति पा जाती है, तो मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। उनके अनुसार, बन्धनों से छुटकारा पाने का साधन ईश्वर-भक्ति है। वे कहते थे कि सब कुछ ईश्वर को ही अर्पित कर देना चाहिए अर्थात संसार के मोह-माया से छूट जाने पर ही परम मुक्ति सम्भव है।

(4) चैतन्य महाप्रभु—चैतन्य महाप्रभु का जन्म बंगाल में 1485 ई० में **'नादिया'** नामक स्थान पर हुआ था। जिस समय युग-प्रवर्तक सन्त वल्लभाचार्य उत्तरी भारत में भक्ति आन्दोलन चला रहे थे, उसी समय भक्ति आन्दोलन के महान् सन्त चैतन्यदेव बंगाल में सगुण भक्ति मार्ग और कृष्ण की उपासना की शिक्षा दे रहे थे। उनके उपदेश का सार इस प्रकार था, "जो व्यक्ति कृष्ण की उपासना तथा अपने गुरु की सेवा करता है वह माया-जाल से मुक्त होकर कृष्ण के चरण बिन्दु को प्राप्त कर लेता है।" अन्य सन्तों की भाँति इन्होंने भी धार्मिक क्षेत्र में व्याप्त बाहरी आडम्बरों एवं जाति-प्रथा का विरोध किया। उन्होंने लोगों को आदर्श मानवीय गुणों की शिक्षा दी और ऊँच-नीच का भेदभाव समाप्त करने का उपदेश दिया। उनके कुछ अनुयायी उन्हें विष्णु का अवतार भी मानते हैं। 1533 ई० में उनकी मृत्यु हो गई थी।

चैतन्य महाप्रभु के सन्दर्भ में डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव लिखते हैं, **"चैतन्य के उपदेश और उनकी विचारधारा केवल बंगाल और उड़ीसा में ही नहीं, अपितु देश के अन्य भागों में भी जनप्रिय हो उठी। उन्होंने जो उपदेश दिए, वे सीधे जनता के हृदय में उतर गए थे।"**

(5) कबीर *(1990)*—भक्ति आन्दोलन के सन्तों में कबीरदास का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनकी जन्म-तिथि, वंश एवं मृत्यु के विषय में विद्वानों में बड़ा मतभेद है। कुछ प्रमाणों के आधार पर कहा जाता है कि इनका जन्म एक विधवा ब्राह्मणी के गर्भ से हुआ था और वह इन्हें काशी के **'लहरतारा'** नामक तालाब के किनारे पर छोड़कर चली गई थी। इनका पालन-पोषण **'नीरु-नीमा'** नामक जुलाहा दम्पति के घर में हुआ था। इन्होंने ईश्वर और अल्लाह में कोई भेद नहीं किया। इनका कहना था कि भगवान एक है। कबीर जाति-पाँति, मूर्ति-पूजा और धर्म के बाहरी आडम्बरों के प्रबल विरोधी थे। इन्होंने अपने उपदेश जनसाधारण की भाषा में दिए।

(6) गुरु नानक *(1990)*—इनका जन्म 1469 ई० में पंजाब के पास तलवंडी[1] (आधुनिक ननकाना) ग्राम में हुआ था। भारत में मुस्लिम धर्म का प्रसार और हिन्दू-मुसलमानों के मध्य उत्पन्न पारस्परिक विवादों

1. यह स्थान अब पाकिस्तान में जिला शेखपुरा में स्थित है।

को देखकर इन्होंने एक सर्वहितकारी 'सिक्ख' धर्म की स्थापना की। इस धर्म को चलाने में नानक जी का प्रमुख उद्देश्य हिन्दू एवं मुस्लिम, दोनों धर्मों का समन्वय करना था। इन्होंने कहा था कि हिन्दू एवं मुसलमानों में कोई भेद नहीं है। दोनों धर्मों के भेद को मिटाने के लिए वे मुसलमानों के प्रसिद्ध धार्मिक स्थानों मक्का और मदीना भी गए थे। उन्होंने लोगों को जाति-पाँति का भेद-भाव न करने और ऊँच-नीच का विचार न करने का उपदेश दिया था और आपस में प्रेम, त्याग एवं भाईचारे के साथ रहने की शिक्षा दी थी। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही इनके शिष्य थे।

इनके अतिरिक्त भक्ति आन्दोलन के अनेक धर्म और समाज-सुधारक सन्त हुए थे। इन्होंने हिन्दुओं तथा मुसलमानों दोनों को ही अपना शिष्य वनाया। ईश्वर की सर्वव्यापकता का उन्होंने सर्वत्र उपदेश दिया। ईश्वर के प्रति पूर्ण आत्मसमर्पण की भावना को मोक्ष का साधन बताते हुए भी उन्होंने यह कभी नहीं कहा कि ईश्वर की दृष्टि में संसार का त्याग करके संन्यास लेना आवश्यक है। इनका तो यही कहना था कि धार्मिक संन्यासी तथा भक्त एवं गृहस्थ सभी समान हैं। गुरु नानक के उपदेश 'गुरु-ग्रन्थ साहिव' में संगृहीत हैं। यह सिक्खों की पवित्र पुस्तक है।

भक्ति आन्दोलन का प्रभाव

भक्ति आन्दोलन के सन्तों ने सभी धर्मों की एकता एवं ईश्वर की भक्ति पर विशेष वल दिया है। इस आन्दोलन का जनता पर व्यापक प्रभाव पड़ा, जो इस प्रकार है—

(1) इस आन्दोलन से प्रेरित होकर बहुसंख्यक लोगों ने भक्ति-मार्ग का अनुसरण किया और सामाजिक तथा धार्मिक कर्मकाण्डों से मुक्ति प्राप्त करने का अवसर प्राप्त किया।

(2) इस आन्दोलन के फलस्वरूप हिन्दुओं का नैतिक और आध्यात्मिक विकास हुआ।

(3) इस आन्दोलन के कारण सभी धर्मों एवं जातियों में धार्मिक सहिष्णुता की भावना उत्पन्न हुई। परिणामस्वरूप देश में शान्ति, समृद्धि और सांस्कृतिक एकता का वातावरण उत्पन्न हुआ।

(4) इसके फलस्वरूप नारी की सामाजिक स्थिति में भी पर्याप्त सुधार हुआ।

(5) भक्ति आन्दोलन के कारण समाज की अनेक कुरीतियाँ समाप्त हो गईं।

(6) इससे स्थानीय एवं प्रान्तीय भाषाओं की उन्नति हुई। साथ ही प्रान्तीय भाषाओं के साहित्य में भी वृद्धि हुई।

(7) भक्ति आन्दोलन के परिणामस्वरूप शासकों के दृष्टिकोण में भी समाजोपयोगी परिवर्तन आया और उनके प्रशासन में लोकहित को महत्त्व दिया जाने लगा।

(8) दलितों के उत्थान में भी इस आन्दोलन ने महत्त्वपूर्ण सहयोग दिया।

(9) हिन्दू और मुसलमानों में भेदभाव भी बहुत कम होता चला गया और दोनों वर्गों की जनता एक-दूसरे के निकट सम्पर्क में आने लगी।

प्रश्न 2—कबीरदास के जीवन परिचय का उल्लेख करते हुए इनके समाज-सुधार के कार्यों पर प्रकाश डालिए। *(1990)*

अथवा **हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने की दिशा में समाज-सुधारक कबीर के योगदान की विवेचना कीजिए।**

अथवा **"कबीर हिन्दू-मुस्लिम एकता के समर्थक थे।" इसका विवेचन कीजिए।** *(1997, 99)*

उत्तर—

कबीर का जीवन परिचय

कबीर के जीवन-वृत्त को निश्चित करने की चेष्टा बहुत समय से चली आ रही है। लेकिन इस सम्बन्ध में अभी तक कोई सर्वमान्य जानकारी प्राप्त नहीं हो पाई है। कबीरदास के जीवन के सम्बन्ध में अनेक जनश्रुतियाँ अर्थात् किंवदंतियाँ प्रचलित हैं। उनके जन्म के सम्बन्ध में एक जनश्रुति अत्यधिक प्रसिद्ध है। कहा जाता है कि एक विधवा ब्राह्मणी की सेवा से प्रसन्न होकर स्वामी रामानन्द ने उसको पुत्रवती होने का आशीर्वाद दिया। पुत्र उत्पन्न होने पर लोक-लज्जा के भय से वह बालक को काशी के लहरतारा नामक तालाब के किनारे फेंक आई। नीरु और नीमा नामक जुलाहा दम्पति ने इस बालक को उठा लिया और इसका पालन-पोषण किया। इनके द्वारा ही इस बालक का नाम कबीर रखा गया।

विद्वानों के मत से कबीर का जन्म सम्वत् 1455 में ज्येष्ठ मास की पूर्णिमा को हुआ था। कबीर शिक्षित न थे। उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि 'मसि कागद छूयो नहीं, कलम गही नहिं हाथ'। उन्होंने सत्संग के द्वारा ही प्रत्येक धर्म की अच्छी बातें ग्रहण कर ली थीं। यही कारण है कि कबीर-पंथ में सभी धर्मों का समन्वय है।

कबीर स्वामी रामानन्द जी के शिष्य थे। एक दिन नाटकीय ढंग से गंगाजी की सीढ़ियों पर लेटकर वे स्वामी रामानन्द के शिष्य बने। लोई नामक कन्या के साथ इनका विवाह हुआ था जो अत्यधिक रूपवती और पतिपरायण थी। उनके पुत्र का नाम कमाल और पुत्री का नाम कमाली था। कमाल ने धन को ही जीवन का उद्देश्य बना लिया था। अतः कबीर उससे असन्तुष्ट रहते थे।

कबीर जुलाहे का काम करते थे और उसी से अपनी जीविका चलाते थे। ये जीवनभर आर्थिक समस्याओं में घिरे रहे और उनसे मुक्ति न पा सके। जीवन के अन्तिम दिनों में वे लोगों के अन्धविश्वास के विरोध में मगहर चले गए। लोगों की यह धारणा थी कि काशी में मृत्यु होने पर मोक्ष प्राप्त होता है और मगहर में मरने पर नरक। मगहर में ही उन्होंने सम्वत् 1575 में अपने प्राण त्याग दिए।

रैदास, नामदेव, गुरुनानक आदि इनके समकालीन सन्त थे जो इनका सम्मान करते थे। निश्छल होने के कारण उन्हें अपने विरोधियों का भी विश्वास प्राप्त था। जो उनके सामने आया वह उनसे प्रभावित हुए बिना न रहा। यही कारण है कि उन्हें हिन्दू और मुसलमान दोनों ने ही अपनाया था, दोनों ने ही उन्हें 'अपना' कहा।

धर्म और समाज-सुधार की दिशा में कबीर के कार्य

कबीर के काव्य में भी समाज का वास्तविक प्रतिबिम्ब झलकता है। उनका साहित्य तात्कालिक समाज की माँग थी। वे व्यक्ति और समाज दोनों के सुधारक थे। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का विचार है कि, "कबीरदास बहुत कुछ अस्वीकार करने का अपार साहस लेकर अवतीर्ण हुए थे। उन्होंने आजीवन सम्प्रदायवाद, बाह्याचार और बाहरी भेद-भाव पर कठोरतम आघात किया था।"

धर्म और समाज-सुधार की दिशा में कबीर के कार्य

(1) हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल
(2) बाह्य आडम्बरों का विरोध
(3) कथनी और करनी में अन्तर न रखने पर बल
(4) हिंसा का विरोध
(5) सन्त और असन्त का भेद।

(1) हिन्दू-मुस्लिम एकता पर बल—कबीर ने हिन्दू-मुस्लिम एकता पर विशेष बल दिया। उन्होंने देखा कि हिन्दू और मुसलमान परस्पर संघर्ष कर रहे थे। साथ ही वे अपने ही सम्प्रदाय में भी छोटे-बड़े के नाम पर आपस में लड़ रहे थे। मुसलमान काबा, मसजिद, पीर-पैगम्बर के नाम पर आपस में एक-दूसरे को छोटा-बड़ा समझते थे। हिन्दू भी जाति-पाँति, ऊँच-नीच की दूषित भावनाओं से ग्रस्त थे। कबीर ने एक सच्चे समाज-सुधारक की भाँति इस परिस्थिति का अवलोकन किया और स्पष्ट किया कि ईश्वर को प्राप्त करने का एकमात्र उपाय मन की पवित्रता है। उन्होंने सम्पूर्ण शक्ति और निर्भीकता के साथ समस्त बाह्याचारों का विरोध किया और मूर्ति-पूजा, तीर्थाटन, हज, नमाज आदि की निस्सारता को बार-बार समझाया—

पूजा, सेवा, नेम, व्रत गुड़ियन का-सा खेल।
जब लग पिउ परसे नहीं, तब लग संसय मेल ॥

कबीर ने हिन्दू और मुसलमानों के बीच भेद-भावों की तीव्र शब्दों में निन्दा की। उन्होंने अनुभव किया कि हिन्दू और मुसलमानों की उपासना पद्धतियों ने दोनों को अलग कर रखा है। इसलिए उन्होंने दोनों की ही आडम्बरयुक्त उपासना पद्धतियों की आलोचना की। हिन्दुओं से उन्होंने कहा—

पाहन पूजे हरि मिलैं, तो मैं पूजूँ पहार।
ताते यह चाकी भली, पीस खाय संसार ॥

इसके साथ ही उन्होंने मुसलमानों से कहा—

काँकर पाथर जोरि के, मसजिद लई चुनाय।
ता चढ़ि मुल्ला बाँग दे, क्या बहिरा हुआ खुदाय॥

वास्तव में कबीर इस भेद-भाव को मिटाकर दोनों जातियों में मेल कराना चाहते थे। समाज-सुधार की बलवती आकांक्षा, उन्हें सदैव झकझोरती रही।

(2) बाह्य आडम्बरों का विरोध—कबीर ने बाह्य आडम्बरों और मिथ्या विश्वासों का कड़ा विरोध किया। साधु-संन्यासियों द्वारा बाल मुंड़ाने, बाल बढ़ाने, गेरुआ वस्त्र पहनने, नग्न रहने आदि क्रियाओं पर कबीर ने तीव्र व्यंग्य किए हैं। बार-बार बाल मुंड़ाने वालों के सन्दर्भ में कबीर का कथन है—

केसन कहा बिगाड़िया जो मूड़े सौ बार।
मन को कहा न मूँडिए जा में विषै विकार॥

माला फेरते समय मन को एकाग्र न करने वाले प्राणियों के सम्बन्ध में कबीर के ये व्यंगपूर्ण शब्द बहुत मर्मस्पर्शी हैं—

माला फेरत जुग भया गया न मन का फेर।
कर का मनका डारि दे, मन का मनका फेर॥

कबीर ने हिन्दू तथा मुसलमान दोनों के द्वारा की जाने वाली तीर्थ-यात्रा को व्यर्थ बताया और मन की शुद्धता और विचारों की पवित्रता पर जोर दिया।

(3) कथनी और करनी में अन्तर न रखने पर बल—कबीर का विश्वास था कि जो कहो उसे पूरा करो और जितना कार्य करो उससे अधिक का वर्णन न करो । कथनी और करनी में भेद रखने वालों के वे घोर विरोधी थे—

कथनी मीठी खांड-सी, करनी बिस की लोय।
कथनी तजि करनी करे विष तै अमृत होय॥

(4) हिंसा का विरोध—कबीर हिंसा के घोर विरोधी थे। वे अहिंसा को परम धर्म स्वीकार करते थे—

बकरी पाती खात है, ताकी काढ़ी खाल।
जे नर बकरी खात हैं, ताको कौन हवाल॥

(5) सन्त और असन्त का भेद—कबीर का विचार था कि इस संसार में सन्त और असन्त की पहचान बहुत कठिन हो गई है। उनके विचार से सन्त वही है, जिसकी कोई जाति नहीं है, किन्तु उसके हृदय में ज्ञान का प्रकाश है। सन्त अपनी सज्जनता कभी नहीं छोड़ता—

सन्त न छोड़े सन्तई कोटिक मिले असन्त।
मलय भुवंगहि बेधिया सीतलता न तजन्त॥

वास्तव में, सन्त वही है जो दूसरों की विपत्ति में काम आता है—

क़बीरा संगत साधु की, हरै और की व्याधि।
संगत बुरी असाधु की, आठों पहर उपाधि॥

निष्कर्ष—इस प्रकार, कबीर ने जीवनपर्यन्त अपनी अटपटी और सधुक्कड़ी भाषा में उत्तर भारत की जनता को समाजोपयोगी शिक्षा दी। वे सुकरात के समान कड़वी बातें कहते थे, उनका विद्रोही स्वर तत्कालीन शासन-व्यवस्था और सामाजिक व्यवस्था पर तीव्रतम आघात करता था।

एक बात विशेष रूप से द्रष्टव्य है कि कबीर का दृष्टिकोण 'पर उपदेश कुशल बहुतेरे' के आदर्श पर आधारित था। वे समाज को सुधारने से पहले व्यक्ति को सुधारना चाहते थे, क्योंकि व्यक्ति-व्यक्ति से ही समाज का निर्माण होता है। इस कारण कबीर ने समाज की अपेक्षा व्यक्ति के सुधार पर अधिक बल दिया।

प्रश्न 3—सूफी सम्प्रदाय के प्रमुख सन्तों का परिचय दीजिए तथा उनके भारतीय जीवन पर प्रभावों का वर्णन कीजिए।

***अथवा* "सूफी मत ने भारतवर्ष की विचारधारा को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से एक बड़ी सीमा तक प्रभावित किया है।" इस कथन पर टिप्पणी लिखिए।**

अथवा "सूफी दर्शन इस्लाम का महान् भक्ति प्रधान दर्शन था।" समालोचना कीजिए।
अथवा किसी एक सूफी सन्त के जीवन तथा शिक्षाओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए। *(1990, 94)*
अथवा भारत में सूफी मत का परिचय दीजिए तथा इसके मुख्य सिद्धान्तों का वर्णन कीजिए। *(1992, 96)*
अथवा पूर्व-मध्यकाल में हिन्दू-मुस्लिम सांस्कृतिक समन्वय में सूफी सन्तों के योगदान का मूल्यांकन कीजिए। *(1993)*
अथवा भारत में सूफी मत के सिद्धान्तों पर प्रकाश डालिए। *(1994)*
अथवा सूफी सम्प्रदाय के भारतीय साहित्य पर प्रभाव का विश्लेषण कीजिए। *(1997)*

उत्तर—

सूफी मत का परिचय

सूफी सम्प्रदाय मुस्लिम विचारकों का वह धार्मिक संगठन है, जो भौतिक जीवन से दूर रहकर सरल और संयमित जीवन व्यतीत करने पर वल देता है। उनके जीवन का मुख्य उद्देश्य परोपकार करना और दीन-दुखियों की सेवा करना था। इस सम्प्रदाय का उदय इस्लाम धर्म से होना स्वीकार किया गया है। वस्तुतः यह हिन्दुओं की दार्शनिक विचारधारा पर आधारित भक्ति आन्दोलन से प्रभावित था। सूफी शब्द के विभिन्न अर्थ बताए गए हैं—

कुछ विचारकों का मत है कि **'सूफी'** शब्द का सम्बन्ध यूनानी शब्द **'सोफिया'** से है, जिसका अर्थ **'ज्ञान'** होता है।

एक अन्य विद्वान् के अनुसार, सूफी शब्द 'सफा' से बना है, जिसका अर्थ है 'पवित्र'।

तीसरे अर्थ के अनुसार, मुहम्मद साहब के समय मदीने की मसजिद के सम्मुख चबूतरे पर साधना करने वाले लोग 'सूफी सन्त' कहलाए।

सूफी सन्त एक ईश्वर में विश्वास करते हैं तथा सभी पदार्थ और व्यक्ति उसके अंग हैं। सूफियों के अनुसार ईश्वर एक है, सभी कुछ ईश्वर में है, उसके बाहर कुछ नहीं है और सभी कुछ त्याग कर, प्रेम के द्वारा ही ईश्वर को प्राप्त किया जा सकता है।

सूफी मत का प्रसार

बारहवीं शताब्दी के आरम्भ में भारतवर्ष में सूफियों ने पदार्पण किया था। मुख्य रूप से भारत में सूफियों के चार सम्प्रदाय सफल रहे हैं। ये निम्नलिखित हैं—

(1) सुहरावर्दी सूफी सम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय के प्रवर्तक सन्त जियाउद्दीन थे। लेकिन इसके संस्थापक शेख शिहाबुद्दीन सुहरावर्दी थे। ये बगदाद के निवासी थे। इन्होंने सिन्ध से मुल्तान तक अपने धर्म का प्रचार किया। भारत में अन्य सूफी सम्प्रदायों की अपेक्षा इस सम्प्रदाय का अच्छा प्रभाव था।

(2) चिश्ती सूफी सम्प्रदाय—भारत में इस सम्प्रदाय के संस्थापक ख्वाजा मुइनुउद्दीन चिश्ती थे। इनके उपदेशों के मुख्य केन्द्र अजमेर व दिल्ली थे। ये जाति-पाँति में विश्वास नहीं रखते थे। आपके उपदेश व सिद्धान्तों से प्रभावित होकर अनेक हिन्दू व मुसलमान संम्राट आपके शिष्य बन गए थे। इस सम्प्रदाय के सन्तों में **बख्तियार काकी, बाबा फरीद, निजामुद्दीन औलिया, अमीर खुसरो** व वियोग शृंगार रस के महाकवि **मलिक मुहम्मद जायसी** के नाम भी उल्लेखनीय हैं। हजरत निजामुद्दीन औलिया की कब्र पर आज भी हिन्दू और मुसलमान दोनों ही अपनी इच्छाओं की पूर्ति हेतु मन्नत माँगने जाते हैं। आज भी यह सम्प्रदाय भारतीयों में काफी लोकप्रिय है।

> **सूफियों के सम्प्रदाय**
> **(1) सुहरावर्दी सम्प्रदाय**
> **(2) चिश्ती सूफी सम्प्रदाय**
> **(3) कादरिया सूफी सम्प्रदाय**
> **(4) नक्शबन्दिया सूफी सम्प्रदाय।**

(3) कादरिया सूफी सम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय के संस्थापक सन्त शेख अब्दुल कादिर जिलानी थे। इन्होंने कादरिया सम्प्रदाय का बहुत प्रचार एवं प्रसार किया था। इस सम्प्रदाय के सन्त या अनुयायी सभी देशों में हैं। कादिर तेरहवीं सदी में हुए थे। इस सम्प्रदाय के प्रमुख सन्तों में **फकीर मखदूमशाह** विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। मुगल सम्राट शाहजहाँ का पुत्र **दारा शिकोह** भी कादरिया सूफी सम्प्रदाय से प्रभावित होकर इसका अनुयायी बन गया था।

(4) नक्शवन्दिया सम्प्रदाय—इस सम्प्रदाय के जन्मदाता महान् सूफी सन्त ख्वाजा बहाउद्दीन नक्शवन्दिया थे। ये तुर्की के रहने वाले थे। इस सम्प्रदाय के प्रमुख सन्त अथवा अनुयायी भारत, चीन, जावा आदि स्थानों में हैं। इस सम्प्रदाय के प्रमुख सन्तों में ख्वाजा वाकी बिल्लाह व शेख अहमद सरहिन्दी थे। भारत में इस सम्प्रदाय का व्यापक प्रचार न होने का मुख्य कारण यह था कि यह सम्प्रदाय अन्य सम्प्रदायों की अपेक्षा अधिक जटिल था।

सूफी मत के सिद्धान्त

सूफी सम्प्रदायों द्वारा समय-समय पर सूफी धर्म से सम्बन्धित जो विचार व्यक्त किए गए हैं उनमें विभिन्नता होते हुए भी काफी साम्यता है। सूफियों के प्रमुख सिद्धान्त निम्नवत् हैं—

(1) सूफियों के अनुसार व्यक्ति को केवल एक ईश्वर में विश्वास रखना चाहिए। सूफी; ईश्वर को सत्य, निर्गुण और निराकार मानते हैं।

(2) उनके अनुसार समस्त सृष्टि की रचना निराकार ईश्वर ने की है।

(3) सच्चा सूफी अपवित्रता को त्यागकर पवित्रता में विश्वास करता है।

(4) सूफियों के अनुसार, ईश्वर की सत्यता को जानना चाहिए तथा संसार में रहते हुए ही जीवन से मुक्त हो जाना चाहिए।

(5) सूफी; संगीत और गायन अर्थात् भक्ति को ईश्वर-प्राप्ति में सहायक मानते हैं।

(6) गुरु अथवा पीर को सूफियों ने विशेष महत्त्व प्रदान किया है। सूफी सन्त गुरु-शिष्य परम्परा में विश्वास करते हैं।

(7) सूफी मत के अनुसार मानव सृष्टि में सर्वश्रेष्ठ प्राणी है।

(8) सूफियों के अनुसार मनुष्य को गण्डे, ताबीज तथा चमत्कार आदि में विश्वास नहीं करना चाहिए।

(9) सूफी मत प्रेम व नैतिकता पर आधारित है।

(10) आत्मा परमात्मा का ही अंश है, यह सूफी मत का प्रमुख विश्वास है।

(11) सूफी कर्मकाण्डों में विश्वास नहीं रखते थे। ये तो ईश्वर-प्राप्ति के लिए—तौबा, खौफ, अपरिग्रह, करुणा, शुक्रगुजार होना, आशा, सन्तोष, निर्धन रहना, रिजा (ईश्वर को आत्मसमर्पण) आदि गुणों का पालन करना उपयोगी और आवश्यक समझते थे।

भारतीय संस्कृति पर सूफी मत का प्रभाव

सूफी सन्तों ने इस्लाम को भारतीयों के अनुकूल बनाया था। सूफी मत का चिश्ती सम्प्रदाय, वेदान्त दर्शन से बहुत अधिक प्रभावित था। अतः सूफी मत का हिन्दुओं पर भी व्यापक प्रभाव पड़ा। सूफी सन्तों ने जो कुछ किया, वह मानवता के लिए किया। उन्होंने हिन्दुओं के सामाजिक, धार्मिक, सांस्कृतिक और नैतिक जीवन को बहुत अधिक प्रभावित किया था। इसी कारण सूफी मत के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि, **"सूफी मत ने भारतवर्ष की विचारधारा को प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से एक बड़ी सीमा तक प्रभावित किया है।"**

सूफी सन्तों के कारण ही भारतीय समाज से जाति-पाँति का भेद-भाव समाप्त होने लगा था। सूफियों का मत था कि सब एक ही ईश्वर या अल्लाह के बन्दे हैं। अतः मानव समाज में पारस्परिक भेद-भाव नहीं होना चाहिए। अतः सूफियों के कारण भारतीय समाज में एकता की भावना जाग्रत हुई थी।

सूफियों ने भारतीयों के धार्मिक जीवन को भी अत्यधिक प्रभावित किया। इसने हिन्दुओं के धार्मिक जीवन में विभिन्नता के स्थान पर एकता को जन्म दिया। धार्मिक एकता के साथ-साथ सूफी मत ने व्यापक भक्ति भावना के प्रसार को भी प्रोत्साहन दिया। सूफी सन्तों ने हिन्दुओं की वेशभूषा को अपनाया था। इसके साथ ही अपने धर्म के सिद्धान्तों का सार भी सूफियों ने हिन्दू धर्म से ही लिया था। इसके फलस्वरूप भी भारतीय जनता पर इस्लाम धर्म के इन सूफी सन्तों का प्रभाव पड़ा।

सूफी सन्तों ने इस्लाम धर्म को पूर्ण रूप से नहीं अपनाया था। केवल वे ही उच्च विचार व सिद्धान्त उन्होंने इस्लाम धर्म से चुने थे, जो सभी धर्मों में श्रेष्ठ माने जाते थे। फिर भी इस मत के सन्दर्भ में यह कथन उचित ही है कि, **"सूफी दर्शन इस्लाम का महान् भक्ति-प्रधान दर्शन था।"**

प्रश्न 4—सल्तनत काल में साहित्य और वास्तुकला के विकास पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए। *(1996)*

अथवा सल्तनत काल में साहित्य एवं कला के विकास का वर्णन कीजिए। *(1991)*

अथवा सल्तनत काल के शासकों द्वारा निर्मित मुख्य भवनों का उल्लेख कीजिए।

अथवा सल्तनतकालीन साहित्य एवं कला पर प्रकाश डालिए। *(1994)*

अथवा सल्तनतकालीन साहित्य पर एक निबन्ध लिखिए। *(1997)*

अथवा "शिक्षा एवं साहित्य के क्षेत्र में सल्तनत काल में महत्त्वपूर्ण प्रगति हुई थी।" विवेचना कीजिए। *(1999)*

उत्तर —

सल्तनत काल में साहित्य एवं कला

सल्तनत काल में साहित्य एवं कला के विकास का संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है—

सल्तनतकालीन साहित्य—कुछ विद्वानों का कथन है कि पराधीनता के कारण इस युग में हिन्दुओं की सृजनशील प्रतिभा लुप्त हो गई और उन्होंने साहित्य, कला तथा विज्ञान के क्षेत्रों में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं की। परन्तु इस कथन में सत्यता का अंश बहुत कम है। इतना अवश्य है कि गुप्त, हर्ष तथा राजपूतों की तुलना में इस युग में **संस्कृत के स्थान पर फारसी** तथा प्रान्तीय भाषाओं में साहित्य की रचना अधिक हुई। दिल्ली के सुल्तान; जैसे—**बलबन, अलाउद्दीन** तथा **मुहम्मद तुगलक** विद्या तथा साहित्य के बहुत प्रेमी थे और विद्वानों तथा कवियों का वे अत्यधिक सम्मान करते थे। **फारस के विद्वान् अलबरूनी** ने संस्कृत भाषा का अध्ययन करके यहाँ की सभ्यता को समझा और अपने अनुभवों को **'तहकीके हिन्द'** नामक पुस्तक में लिपिबद्ध किया। महान् कवि व साहित्यकार **अमीर खुसरो** ने बलबन, जलालुद्दीन तथा अलाउद्दीन खिलजी के दरबारों की शोभा बढ़ाई। ऐसा कहा जाता है कि उन्होंने 99 ग्रन्थ लिखे थे जिनमें से प्रमुख चार **खजानुलफतूह, तुगलकनामा, नूहे सिपेहर** विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। उनके ग्रन्थों से उस समय के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन की पूर्ण झाँकी मिलती है। उन्होंने हिन्दी भाषा में अनेक अच्छी कविताएँ भी लिखी थीं।

'हसन देहलवी' सल्तनत युग के दूसरे उल्लेखनीय कवि थे। इस युग में इतिहास के कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ भी लिखे गए, जिनमें **मिनहाज-उस-सिराज की तबकात-ए-नासरी, बरनी की तारीख-ए-फिरोजशाही, शम्से-सिराज अफीफ की तारीख-ए-फिरोजशाही, हसन निजामी** की **ताजुल मासिर** अधिक प्रसिद्ध हैं। इस काल में संस्कृत में भी अनेक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे गए। 1300 ई० के लगभग **पार्थसारथी मिश्र** ने **कर्ममीमांसा** पर कई महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ लिखे। योग वैशेपिक तथा अन्य दर्शनों पर भी कई ग्रन्थों की रचना हुई। इस युग में कई सुन्दर नाटक भी लिखे गए जिनमें **जयसिंह सूरी-कृत हमीर मदमर्दन, विद्यानाथ कृत प्रताप रुद्रकल्याण तथा वामन भट्ट** रचित **'पार्वती परिणय'** अधिक प्रसिद्ध हैं। भक्ति-मार्ग के कवियों ने प्रान्तीय भाषाओं में प्रभावपूर्ण साहित्य की रचना की।

कबीर ने हिन्दी, **नानक** ने पंजाबी, **मीरा** ने राजस्थानी, **चैतन्य** ने बंगाली, **विद्यापति ठाकुर** ने मैथिली, **ज्ञानदेव** ने मराठी में सुन्दर एवं सुमधुर काव्य की रचना की। सल्तनत काल के सन्त कवियों की रचनाएँ भक्ति रस से परिपूर्ण हैं और भाव तथा भाषा दोनों की दृष्टि से इन कवियों का साहित्य उच्चकोटि का है।

सल्तनतकालीन कला—दिल्ली सुल्तानों तथा प्रान्तीय शासकों व हिन्दू राजाओं को भवन निर्माण का बहुत शौक था। इसी कारण 13वीं तथा 14वीं शताब्दियों में दिल्ली के सुल्तानों के प्रोत्साहनस्वरूप, अनेक भव्य और कलात्मक भवनों का निर्माण हुआ। इस युग की कई भव्य इमारतें आज भी सुरक्षित हैं। **कुतुबमीनार**; जिसे कुतुबुद्दीन ऐबक ने प्रारम्भ किया तथा इल्तुतमिश ने पूर्ण कराया, संसार की सर्वश्रेष्ठ मीनार है। दिल्ली के निकट स्थित **'कुव्वत-उल-इस्लाम'** मसजिद भी **कुतुबुद्दीन ऐबक** ने 26 जैन और हिन्दू मन्दिरों को तोड़कर उनकी सामग्री से बनवाई थी। कुतुबुद्दीन की बनवाई हुई अजमेर में **'अढ़ाई दिन का झोंपड़ा'** नाम की मसजिद भी एक दर्शनीय इमारत है।

अलाउद्दीन खिलजी द्वारा निर्मित **निजामुद्दीन औलिया का मकबरा** तथा **अलाई दरवाजा** इस्लामी शैली के भव्यतम नमूने हैं। खिलजी इमारतों में सजावट बहुत है। तुगलक काल की इमारतों में हम सरलता

तथा गम्भीरता पाते हैं। ग्यासुद्दीन तुगलक का मकबरा भी वास्तुकला का एक सुन्दर नमूना है। सल्तनत काल के प्रान्तीय शासकों ने भी अनेक इमारतें बनवाईं, जिनमें से अब भी बहुत-सी इमारतें विद्यमान हैं। बंगाल, जौनपुर, मालवा, गुजरात तथा बहमनी राज्यों में अनेक सुन्दर मसजिदें तथा इमारतें बनवाई गई थीं। हिन्दू राजा तथा सामन्तों की बनवाई गई इमारतों में विजय नगर के मन्दिर तथा प्रासाद अधिक प्रसिद्ध हैं। विजय नगर के राजा कृष्णदेव राय द्वारा बनवाया हुआ विट्ठल नाथ जी का मन्दिर अपने ढंग का सुन्दरतम मन्दिर था। मेवाड़ के राजा कुम्भा द्वारा बनवाया हुआ विजय स्तम्भ भी सल्तनत काल में निर्मित इमारतों में से एक है।

फर्ग्यूसन ने 15वीं शताब्दी में विकसित भारत की वास्तु-निर्माण कला को 13 भागों में विभाजित किया है। इस विभाजन का आधार उनकी ऊपरी छतों की शैली तथा वक्र रेखाओं के घुमावों का आकार ही था, जैसे बंगाल की जलवायु गुजरात व जौनपुर से भिन्न है, तो वहाँ की छतों में अधिकतर बाँसों का प्रयोग हुआ है तथा निर्धनों के मकानों की छतों पर उसी प्रकार की साधारण शैली का प्रयोग हुआ है। इस काल में निर्मित छतें दोनों ओर को ढालू होती थीं जिससे उनका पानी सुगमता से बह जाए।

इसी प्रकार, गुजरात की वास्तुकला पर प्रान्तीय प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। जौनपुर की अटाला मसजिद वहाँ के शासकों की कलात्मक रुचि का उत्कृष्ट नमूना है। मालवा में जहाज महल और हिंडोला महल भी अपने ढंग के अनोखे स्मारक हैं। इसी प्रकार, फिरोज़ तुगलक ने भी भवन-निर्माण की ओर विशेष ध्यान दिया था। उसने कई नगर बसाए तथा सैकड़ों मसजिदों और भवनों का निर्माण करवाया था।

सल्तनत काल में भारतीय स्थापत्य कला शैली और फारस की स्थापत्य कला शैली, दोनों में समन्वय स्थापित हुआ था।

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—नामदेव के विषय में आप क्या जानते हैं?

उत्तर—नामदेव—नामदेव जी भक्ति आन्दोलन के एक महान् सन्त थे। अन्धविश्वास, तीर्थयात्रा, उपवास तथा धार्मिक भेदभाव में उनकी आस्था न थी। उनका ईश्वर की एकता और भक्ति में दृढ़ विश्वास था। वे कवि भी थे। उनकी रचनाएँ हिन्दी तथा मराठी दोनों ही भाषाओं में प्राप्त होती हैं। वे आचरण व चरित्र की शुद्धता पर विशेष बल देते थे।

प्रश्न 2—सूफी मत के प्रमुख सिद्धान्त लिखो।

उत्तर—सूफी मत के प्रमुख सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

(i) गुरु का महत्त्व, (ii) ईश्वर एक है, (iii) व्यक्ति का महत्त्व, (iv) कर्म पर विश्वास, (v) सौन्दर्यानुभूति और प्रेम की भावना का विकास, (vi) भक्ति रस से परिपूर्ण संगीत एवं गायन को महत्त्व आदि।

प्रश्न 3—सल्तनतकालीन चार इमारतों के नाम लिखिए। *(1995)*

अथवा **सल्तनत काल की चार महत्त्वपूर्ण इमारतों का उल्लेख कीजिए।** *(1992)*

अथवा **दिल्ली सल्तनत युग की किन्हीं दो महत्त्वपूर्ण इमारतों का विवरण दीजिए।** *(1995)*

अथवा **सल्तनतकालीन चार प्रमुख स्मारकों का उल्लेख कीजिए।** *(1997)*

उत्तर—सल्तनतकालीन चार इमारतें निम्नलिखित हैं—

(1) कुतुबमीनार—यह मेहरौली (दिल्ली) में स्थित है। इसकी पहली मंजिल कुतुबुद्दीन ऐबक ने बनवाई थी तथा शेष मंजिलें इल्तुतमिश ने बनवाईं। यह मीनार 242 फीट ऊँची है। इसकी पाँच मंजिलों में 379 सीढ़ियाँ हैं।

(2) कुव्वतुल-इस्लाम मसजिद—इस मसजिद का निर्माण कुतुबुद्दीन ऐबक ने कराया था। यह कुतुबमीनार के निकट स्थित है। यह मसजिद लाल पत्थर की बनी है।

(3) अढ़ाई दिन का झोंपड़ा—यह मसजिद अजमेर में स्थित है। इसका निर्माण कुतुबुद्दीन ऐबक ने कराया था। इल्तुतमिश ने इसमें सात मेहराबें बनवाईं।

(4) **बदायूँ की जामा मसजिद**—इसको इल्तुतमिश ने बनवाया था। सुल्तानों द्वारा बनवाई हुई मसजिदों में यह सबसे बड़ी मसजिद है। इसकी लम्बाई 282 फीट तथा चौड़ाई 220 फीट है। यह आज भी बहुत मजबूत है।

प्रश्न 4—भक्ति आन्दोलन के किन्हीं दो सन्तों का परिचय दीजिए। *(1994)*

अथवा **भक्ति आन्दोलन के दो प्रमुख सन्तों के नाम लिखिए तथा उनकी शिक्षाओं का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।** *(1995)*

अथवा **भक्ति आन्दोलन के दो सन्तों के नाम तथा उनके उपदेश लिखिए।**

अथवा **भक्ति आन्दोलन के किन्हीं दो सुधारकों के कार्यों का उल्लेख कीजिए।** *(1997)*

उत्तर—(नोट—इस प्रश्न के उत्तर हेतु दीर्घ उत्तरीय प्रश्न संख्या 1 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।)

प्रश्न 5—किसी एक सूफी सन्त के जीवन तथा शिक्षाओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए। *(1994, 96)*

उत्तर—शेख मुईनुद्दीन चिश्ती—शेख मुईनुद्दीन चिश्ती भारत में प्रचलित सूफी धर्म से सम्बन्धित चिश्ती सम्प्रदाय के संस्थापक थे। इनका जन्म 1141 ई० में ईरान में हुआ था। इनके पिता का नाम सैयद ग्यासुद्दीन था। शेख मुईनुद्दीन बचपन से ही ईश्वर के भक्त थे। युवा होने पर, आप विभिन्न धार्मिक स्थलों का भ्रमण करते हुए भारत आ पहुँचे और अजमेर को अपना स्थायी निवास बना लिया। इनकी मजार भी अजमेर में ही बनी हुई है।

शेख मुईनुद्दीन चिश्ती ने हिन्दू-मुस्लिम एकता, बन्धुत्व, उदारता, सच्चरित्रता तथा सादगीपूर्ण जीवन पर विशेष बल दिया।

प्रश्न 6—दिल्ली सल्तनत काल के किन्हीं दो साहित्यकारों का परिचय दीजिए। *(1994, 99)*

उत्तर—दिल्ली सल्तनत काल के दो साहित्यकारों का संक्षिप्त परिचय निम्नवत् है—

(1) **अमीर खुसरो**—सल्तनत काल के कवियों एवं लेखकों में अमीर खुसरो का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। अमीर खुसरो एक कवि होने के साथ-ही-साथ ख़िलजी वंश का इतिहासकार भी था। उसने अपने ग्रन्थों में अलाउद्दीन के सैनिक अभियानों का वर्णन किया है। इन अभियानों में वह स्वयं सुल्तान के साथ रहा था। उसके द्वारा रचित प्रमुख ग्रन्थ हैं—**मिफ्ता उल फतूह, नूर सिपेहर, खजान उल फतूह तथा तुगलकनामा।**

(2) **जियाउद्दीन बरनी**—बरनी का जन्म 1285 ई० में हुआ था। उसने खिलजी तथा तुगलक वंश का शासनकाल देखा था। फिरोज तुगलक के शासनकाल में 78 वर्ष की आयु में बरनी की मृत्यु हो गई थी। बरनी को फिरोज तुगलक के दरबार में संरक्षण प्राप्त था। इन्होंने फारसी भाषा में अपनी रचनाएँ लिखीं। 'तारीख-ए-फिरोजशाही' इनके द्वारा रचित एक ऐतिहासिक ग्रन्थ है। इसमें 1359 ई० तक की ऐतिहासिक घटनाओं का वर्णन है। इसके अतिरिक्त बरनी ने 'फतवा-ए-जहाँदारी' नामक ग्रन्थ की रचना भी की।

ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों एवं व्यक्तियों पर आधारित प्रश्न

प्रश्न 1—निम्नांकित तिथियों के ऐतिहासिक महत्त्व पर टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) 1238 ई०—इस तिथि को हजरत निजामुद्दीन औलिया ने जन्म लिया था। वे बाबा फरीद के शिष्य और एक महान् सूफी सन्त थे।

(2) 1300 ई० *(1999)*—इस तिथि को भक्ति आन्दोलन के प्रमुख सन्त रामानन्द का जन्म हुआ था। वे कबीर के गुरु थे।

(3) 1425 ई० *(1990)*—इस तिथि को भक्ति आन्दोलन के प्रवर्तक और महान् समाज-सुधारक सन्त कबीरदास का जन्म हुआ था। वे निर्गुण भक्ति के उपासक और हिन्दू-मुस्लिम एकता के पोषक थे।

(4) 1469 ई० *(1990, 94, 96, 97, 99)*—इस तिथि को सिक्ख धर्म के संस्थापक गुरु नानक जी का जन्म हुआ था। वे सर्वधर्म समन्वयवादी और जाति-भेद के प्रबल विरोधी थे। वे सदाचार और चरित्र की शुद्धता पर विशेष बल देते थे।

(5) 1479 ई०—इस तिथि को सन्त वल्लभाचार्य का जन्म हुआ था। वे भक्ति आन्दोलन के एक महान् सन्त थे और भक्ति-मार्ग द्वारा ही मोक्ष-प्राप्ति की शिक्षा देते थे।

(6) 1485 ई०—इस तिथि को चैतन्य महाप्रभु का बंगाल के नादिया जिले में जन्म हुआ था। वे कृष्ण के अनन्य उपासक थे। उन्होंने ईश्वरभक्ति के साथ ही धैर्य, सहनशीलता, चारित्रिक गुणों के विकास, परस्पर सहयोग तथा उदारता आदि पर विशेष बल दिया।

प्रश्न 2—निम्नांकित ऐतिहासिक स्थलों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) अजमेर *(1990, 99)*—राजस्थान का यह नगर अपनी ऐतिहासिक कलाकृतियों के कारण सारे देश में विख्यात है। सूफी सन्त शेख मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह इसी नगर में स्थित है।

(2) तलवंडी—यह स्थान पाकिस्तान में है। इसे ननकाना साहिब कहा जाता है। यह सिक्खों का पवित्र धार्मिक स्थल है। इसी स्थान पर सिक्ख धर्म के संस्थापक गुरु नानक का जन्म हुआ था।

प्रश्न 3—निम्नांकित ऐतिहासिक व्यक्तियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) शंकराचार्य—शंकराचार्य एक महान् विद्वान् और दार्शनिक थे। इनका जन्म 778 ई० में मालावार स्थित '**कुलदी**' नामक स्थान पर हुआ था। इन्होंने संन्यास ग्रहण कर वैदिक ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया। इनको '**धर्म-हंस**' की उपाधि मिली थी। इन्होंने अद्वैतवाद का प्रचार किया और बताया कि ब्रह्म और संसार में कोई भेद नहीं है। आपने हिन्दू धर्म के प्रचार के लिए देश के चारों कोनों में चार मठों—बद्रीनाथ (उत्तर), शृंगेरी (दक्षिण), पुरी (पूर्व) और द्वारिका (पश्चिम) की स्थापना की थी।

(2) शेख मुईनुद्दीन चिश्ती—शेख मुईनुद्दीन चिश्ती भारत में सूफी धर्म के चिश्ती सम्प्रदाय के संस्थापक थे। इनका जन्म 1141 ई० में ईरान में हुआ था। इनके पिता का नाम सैयद ग्यासुद्दीन था। आप बचपन से ही ईश्वर के भक्त थे। युवा होने पर आप अनेक धार्मिक स्थलों का भ्रमण करते हुए भारत आ पहुँचे और अजमेर को अपना स्थायी निवासस्थान बना लिया। इनकी मजार अजमेर में बनी हुई है।

(3) मलिक मुहम्मद जायसी *(1997)*—मलिक मुहम्मद जायसी मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य के प्रमुख कवि थे। इनका जन्म संवत् 1549 (सन् 1492 ई०) के लगभग गाजीपुर अथवा जायसनगर में हुआ था। बाल्यकाल में ही जायसी के पिता का देहान्त हो गया और ये साधु-सन्तों की संगति में पलकर ही बड़े हुए। सूफी-सम्प्रदाय के सुप्रसिद्ध पीर शेख मोहदी आपके गुरु थे। इनकी शिक्षा के सम्बन्ध में कुछ विशेष ज्ञात नहीं हो पाया है, परन्तु इतना सुनिश्चित है कि जायसी बहुत विद्वान थे। संवत् 1599 (1542 ई०) के लगभग इनका देहान्त हो गया। अपने जीवनकाल में जायसी ने 'पद्मावत', 'अखरावट', 'आखिरी कलाम', 'चित्रलेखा', 'कराहनामा' और 'मसलानामा' आदि ग्रन्थों की रचना की। इन ग्रन्थों में 'पद्मावत' जायसी की सर्वोत्कृष्ट रचना है। प्रेम को ईश्वर का ही एक रूप सिद्ध करने वाले प्रेमाश्रयी-शाखा के प्रवर्तक जायसी की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इन्होंने मुसलमान होते हुए भी हिन्दू-कथा को अपने काव्यों का आधार बनाया।

(4) निजामुद्दीन औलिया *(1997)*—ये बाबा फ़रीद के शिष्य और एक महान सूफी सन्त थे। इनका जन्म 1238 ई० में बदायूँ में हुआ था। 1258 ई० में ये दिल्ली आ गए और दिल्ली के सुल्तानों के शासन सम्बन्धी घटनाक्रमों को निकटता से देखने का अवसर प्राप्त किया। सुल्तान मुहम्मद तुगलक इनका शिष्य था। हजरत निजामुद्दीन औलिया उदार हृदय सन्त और मानव-मात्र की एकता के सच्चे प्रतीक थे। इनकी समाधि दिल्ली में बनी हुई है।

प्राचीन भारत के प्रमुख राजवंश तथा उनके प्रमुख शासक

हर्यक वंश
(मगध 544 ई०पू०–421 ई०पू०)

1. बिम्बसार (592 ई० पू०–492 ई० पू०)
2. अजातशत्रु (कुर्णीक) (492 ई० पू०–460 ई० पू०)
3. उदायिन (उदयन) (460 ई० पू०–445 ई० पू०)

शिशुनाग वंश
(412 ई०पू०–344 ई०पू०)

1. शिशुनाग (412 ई० पू०–394 ई० पू०)
2. कालाशोक (काकवर्ण) (394 ई० पू०–366 ई० पू०)

नन्द वंश
(344 ई०पू०–322 ई०पू०)

1. महापद्मनन्द (344 ई० पू०–328 ई० पू०)
2. घनानन्द (328 ई० पू०–322 ई० पू०)

मौर्य वंश
(322 ई०पू०–184 ई०पू०)

1. चन्द्रगुप्त मौर्य (322 ई० पू०–298 ई० पू०)
2. बिन्दुसार (298 ई० पू०–273 ई० पू०)
3. अशोक महान (273 ई० पू०–232 ई० पू०) (राज्यारोहण 269 ई० पू०)

शुंग वंश
(184 ई०पू०–75 ई०पू०)

1. पुष्यमित्र शुंग (184 ई० पू०–148 ई० पू०)

कण्व वंश
(75 ई०पू०–30 ई०पू०)

सस्थापक—वासुदेव

आन्ध्र-सातवाहन वंश
(106–155 ई०)

1. गौतमी पुत्र शातकर्णी (106–130 ई०)
2. वाशिष्ठी पुत्र पुलमावी (130–155 ई०)

कुषाण वंश
(46–138 ई०)

1. कनिष्क (78–106 ई०)

गुप्त वंश
(320–550 ई०)

1. चन्द्रगुप्त प्रथम (320–335 ई०)
2. समुद्रगुप्त (335–375 ई०)
3. चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य (375–412 ई०)
4. कुमारगुप्त (412–454 ई०)
5. स्कन्दगुप्त (455–467 ई०)

वर्धन या पुष्यभूति वंश
(600–647 ई०)

1. हर्षवर्धन (606–647 ई०)

गुर्जर प्रतिहार वंश
(730–1036 ई०)

(पश्चिमी भारत)

1. नागभट्ट प्रथम (730–756 ई०)
2. वत्सराज (780–805 ई०)
3. नागभट्ट द्वितीय (805–833 ई०)
4. मिहिरभोज प्रथम (836–885 ई०)
5. महेन्द्रपाल प्रथम (885–910 ई०)
6. महीपाल (912–943 ई०)

गहड़वाल वंश
(कन्नौज, 1085–1194 ई०)

1. गोविन्दचन्द (1114–1155 ई०)
2. जयचन्द (1170–1194 ई०)

चाहमान या चौहान वंश
(दिल्ली व अजमेर, 985–1192 ई०)

1. अर्णोराज (1130–1150 ई०)
2. विग्रहराज चतुर्थ (1153–1163 ई०)

3. पृथ्वीराज तृतीय (राय पिथौरा) (1178–1192 ई०)

चन्देल वंश (बुन्देलखण्ड, नवीं शताब्दी–1203 ई०)

1. धंग (950–1008 ई०)
2. विद्याधर (1019–1029 ई०)

परमार वंश (मालवा)

1. वाक्पति मुंज (972–994 ई०)
2. भोज (1000–1015 ई०)

चालुक्य वंश (अन्हिलवाड़ा, गुजरात)

1. भीम प्रथम (1022–1064 ई०)
2. जयसिंह सिद्धराज (1094–1153 ई०)
3. कुमारपाल (1153–1172 ई०)
4. भीम द्वितीय (1178–1238 ई०)

पाल वंश (बंगाल)

1. धर्मपाल (770–810 ई०)
2. महीपाल प्रथम (988–1038 ई०)
3. रामपाल (1177–1220 ई०)

सेन वंश (बंगाल)

1. विजयसेन (1095–1158 ई०)
2. बल्लाल सेन (1158–1178 ई०)
3. लक्ष्मण सेन (1178–1205 ई०)

कार्कोटक वंश (कश्मीर)

1. ललितादित्य मुक्तापीड़ (724–760 ई०)
2. जयापीड़ विनयादित्य (770–810 ई०)

उत्पल वंश (कश्मीर)

1. अवंन्तिवर्मन (855–883 ई०)
2. शंकर वर्मन (885–902 ई०)

लोहार वंश (कश्मीर)

1. संग्रामराज (1003–1028 ई०)
2. जयसिंह (1127–1159 ई०)
(कल्हण की राजतरंगिणी पुस्तक का रचना काल)

राष्ट्रकूट वंश (मान्यखेत, बीदर)

1. ध्रुव (780–773 ई०)
2. गोविन्द तृतीय (793–814 ई०)
3. अमोघवर्ष (814–876 ई०)
4. इन्द्र तृतीय (915–927 ई०)
5. कृष्ण तृतीय (939–965 ई०)

बादामी या वातापी का चालुक्य वंश (वातापी)

1. कीर्तिवर्मन प्रथम (566–597 ई०)
2. पुलकेशियन द्वितीय (597–669 ई०)
3. विजयादित्य (696–733 ई०)

कल्याणी का चालुक्य वंश (मान्यखेत)

1. विक्रमादित्य (1076–1126 ई०)
2. सोमेश्वर तृतीय (1126–1138 ई०)

पल्लव वंश (काँची)

1. सिंह विष्णु (565–600 ई०)
2. महेन्द्र वर्मन प्रथम (600–630 ई०)
3. नरसिंह वर्मन (630–668 ई०)
4. परमेश्वर वर्मन (668–680 ई०)
5. नरसिंह वर्मन द्वितीय (680–720 ई०)

चोल वंश (तंजौर)

1. विजयालय (850–880 ई०)
2. आदित्य प्रथम (880–907 ई०)
3. राजेन्द्र प्रथम (1014–1044 ई०)
4. राजाधिराज प्रथम (1044–1052 ई०)
5. कुलोतुंग प्रथम (1070–1120 ई०)

दिल्ली सल्तनत (1206–1526 ई०)

दास वंश (1206–1290 ई०)

1. कतुबुद्दीन ऐबक (1206–1210 ई०)
2. इल्तुतमिश (1211–1236 ई०)
3. रजिया बेगम (1236–1240 ई०)
4. बलबन (1266–1287 ई०)

खिलजी वंश (1290–1320 ई०)
1. जलालुद्दीन फिरोज खिलजी (1290–1296 ई०)
2. अलाउद्दीन खिलजी (1296–1316 ई०)

तुगलक वंश (1320–1414 ई०)
1. ग्यासुद्दीन तुगलक (1320–1325 ई०)
2. मुहम्मद तुगलक (1325–1351 ई०)
3. फिरोज तुगलक (1351–1388 ई०)

सैयद वंश (1414–1451 ई०)
1. खिज्र खाँ (1414–1421 ई०)
2. मुबारकशाह (1421–1434 ई०)
3. मुहम्मदशाह (1434–1445 ई०)
4. अलाउद्दीन आलमशाह (1445–1451 ई०)

लोदी वंश (1451–1526 ई०)
1. बहलोल लोदी (1451–1489 ई०)
2. सिकन्दर लोदी (1489–1517 ई०)
3. इब्राहिम लोदी (1517–1526 ई०)

बहमनी राजवंश (1347–1527 ई०)
1. अलाउद्दीन हसन बहमनशाह (1347–1358 ई०)
2. फिरोजशाह (1397–1422 ई०)
3. अहमद प्रथम (1422–1446 ई०)
4. मुहम्मद तृतीय (1463–1482 ई०)
5. महमूद शाह (1482–1518 ई०)

विजयनगर साम्राज्य

संगम वंश (1336–1485 ई०)
1. हरिहर प्रथम (1336–1356 ई०)
2. बुक्का प्रथम (1356–1377 ई०)
3. हरिहर द्वितीय (1377–1404 ई०)
4. देवराय प्रथम (1404–1422 ई०)
5. देवराय द्वितीय (1422–1446 ई०)
6. मल्लिकार्जुन (1446–1465 ई०) (चीनी यात्री मान्हु-आन)
7. विरुपाक्ष द्वितीय (1465–1485 ई०)

सालुव वंश (1485–1505 ई०)
1. नरसिंह सालुव (1485–1505 ई०)

तुलुव वंश (1505–1570 ई०)
1. कृष्णदेव राय (1509–1529 ई०)
2. अच्युत देवराय (1529–1542 ई०) (पुर्तगाली यात्री नूनिज का आगमन)
3. सदाशिव (1542–1570 ई०) (तालीकोट का युद्ध 1565 ई०)

अरबिन्दु वंश (1570–1650 ई०)
1. तिरुमतल (1570–1586 ई०) (राजधानी वेणुगोण्डा)

● ●

इण्टरमीडिएट

भारतीय इतिहास

(1526 ई० से अब तक)

द्वितीय प्रश्न-पत्र

1
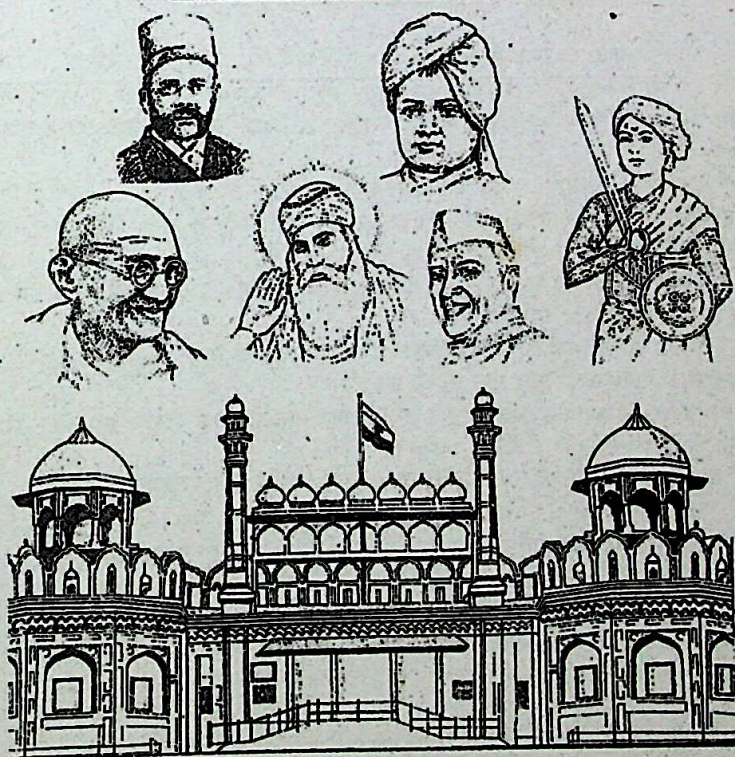
मुगल साम्राज्य की स्थापना : बाबर (1526–1530 ई०) और हुमायूँ (1530–1540, 1555–1556 ई०)

[बाबर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक दशा, बाबर की भारत विजय तथा मुगल साम्राज्य की स्थापना, बाबर का चरित्र एवं व्यक्तित्व, हुमायूँ की कठिनाइयाँ तथा उसकी असफलता के कारण, हुमायूँ का शासनकाल एवं उसके कार्य, हुमायूँ का चरित्र एवं मूल्यांकन]

"पानीपत का युद्ध लोदी वंश के लिए कैनी के युद्ध के समान था। इस युद्ध ने लोदी वंश का प्रभुत्व समाप्त कर दिया। इससे एक युग का अन्त हुआ तथा दूसरे का आविर्भाव हुआ।" —बी० एम० मजूमदार

"जैसे ही बाबर ने इस संसार की गद्दी छोड़ी और स्वर्ग में अनन्त विश्राम किया, हुमायूँ की विपत्तियों का प्रारम्भ हो गया।" —खोन्दमीर

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—बाबर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक दशा का वर्णन कीजिए। *(1993, 96)*

अथवा **"सोलहवीं शताब्दी के आरम्भ में भारत राज्यों का एक समूह था, जो किसी भी आक्रमणकारी का, जो उसे जीतने की शक्ति और इच्छा रखता हो, सरलता से शिकार हो सकता था।" इस कथन की पुष्टि कीजिए।**

अथवा **"बाबर के आक्रमण के पूर्व भारत छोटे-छोटे राज्यों का एक समूह मात्र था। देश में किसी एक सार्वभौमिक, एकछत्र राजनीतिक शक्ति का अभाव था।" इस कथन के सन्दर्भ में भारत की तत्कालीन राजनीतिक परिस्थितियों का वर्णन कीजिए।** *(1993)*

अथवा **"बाबर के आक्रमण के समय भारत में एकता का अभाव था।" इस कथन के परिप्रेक्ष्य में भारत की तत्कालीन राजनीतिक दशा का विवरण दीजिए।** *(1995)*

अथवा **"बाबर के आक्रमण के पूर्व भारत स्वतन्त्र देशी राज्यों का एक विशृंखल समूह मात्र था।" इस कथन के अनुसार तत्कालीन राजनीतिक दशा का वर्णन कीजिए।** *(1996)*

अथवा **"बाबर की भारत में सफलता का मुख्य कारण उसकी सैनिक योग्यता एवं उसके शत्रुओं की दुर्बलता थी।" इस कथन की विवेचना कीजिए।** *(1997)*

उत्तर— **बाबर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक दशा**

जिस समय मुगल शासक बाबर ने भारत पर आक्रमण किया था, उस समय भारत की राजनीतिक स्थिति बड़ी शोचनीय थी। बाबर के आक्रमण के समय भारत अनेक छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त था और वे आपसी संघर्ष में व्यस्त रहते थे। इन राज्यों में कुछ हिन्दू राज्य और कुछ मुस्लिम राज्य थे। लेनपूल ने इन राज्यों की दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति के सन्दर्भ में लिखा है, "दिल्ली का साम्राज्य छिन्न-भिन्न हो चुका था। बड़े-बड़े प्रान्तों के अपने शासक थे। छोटे जिले और यहाँ तक कि शहरों और किलों के भी अपने सरदार होते थे, जो अपने से किसी उच्चतर राजनीतिक शक्ति का प्रभुत्व नहीं मानते थे। राजा का आदेश सर्वोच्च नहीं रह गया था।"

संक्षेप में, बाबर के आक्रमण के समय भारत में निम्नलिखित स्वतन्त्र राज्य थे—

(1) दिल्ली का राज्य—जिस समय बाबर ने भारत पर आक्रमण किया था, उस समय दिल्ली राज्य का शासक इब्राहीम लोदी था। वह 1517 ई० में अपने पिता सिकन्दर लोदी की मृत्यु के पश्चात् सिंहासन पर आसीन हुआ था। उसके राज्य में दिल्ली, आगरा, दोआब तथा जौनपुर के कुछ प्रदेश ही सम्मिलित थे।

उसने अपनी अदूरदर्शिता और अहंकार के कारण अफगान अमीरों को अपना कट्टर विरोधी बना लिया था। अतः अनेक अफगान अमीरों ने विद्रोह करके अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली थी।

(2) बंगाल—बंगाल; फिरोज तुगलक के समय में स्वतन्त्र हो गया था। बाबर के समय वहाँ का स्वतन्त्र शासक नुसरतशाह था। वह एक योग्य शासक था। उसके समय में बंगाल में विशेष प्रगति हुई थी।

बाबर के आक्रमण के समय भारत की राजनीतिक दशा

(1) दिल्ली का राज्य
(2) बंगाल
(3) मालवा
(4) गुजरात
(5) मेवाड़
(6) खानदेश
(7) बहमनी राज्य
(8) विजय नगर राज्य
(9) उड़ीसा
(10) पंजाब।

(3) मालवा—बाबर के आक्रमण के समय मालवा का शासक महमूद द्वितीय था। उसके शासनकाल में उसके प्रधानमन्त्री मेदनीराय का प्रभाव बहुत अधिक बढ़ गया था। उसने अपनी इच्छा से अनेक राजपूतों को उच्च पदों पर नियुक्त किया। उसकी इस पक्षपातपूर्ण नीति से मुसलमान रुष्ट हो गए और उन्होंने गुजरात के शासक की सहायता से मेदनीराय के बढ़ते हुए प्रभाव को समाप्त कर दिया। लेकिन बाद में मेवाड़ के राणा सांगा की सहायता से उसने पुनः अपनी स्थिति सुदृढ़ कर ली। अन्त में, 1531 ई० में गुजरात के शासक बहादुरशाह ने मालवा को जीतकर अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया।

(4) गुजरात—सन् 1401 ई० में गुजरात राज्य जफर खाँ की अधीनता में एक शक्तिशाली और स्वतन्त्र राज्य बन गया था। महमूद बेगड़ा (1458-1511 ई०) गुजरात के शक्तिशाली शासकों में से एक था। उसके बाद गुजरात की गद्दी पर मुजफ्फरशाह द्वितीय आसीन हुआ। वह इब्राहीम लोदी का समकालीन था। उसका पुत्र उसकी नीति से असन्तुष्ट होकर इब्राहीम लोदी के पास चला गया था, किन्तु वह कुछ समय पश्चात् वहाँ से जौनपुर चला गया। वहीं पर उसे अपने पिता की मृत्यु का समाचार प्राप्त हुआ और वह गुजरात वापस लौट आया। वह 1526 ई० में बहादुरशाह के नाम से गद्दी पर बैठा और अपनी शक्ति का निरन्तर विस्तार करता रहा।

(5) मेवाड़—सोलहवीं शताब्दी के प्रारम्भ में मेवाड़ की गिनती राजस्थान के प्रमुख राज्यों में की जाती थी। बाबर के आक्रमण के समय मेवाड़ साम्राज्य की सम्पूर्ण जनता राणा सांगा की छत्रछाया में एक सूत्र में संगठित थी। राणा सांगा बड़ा साहसी, वीर और प्रबल योद्धा था। उसने अनेक बार मालवा और गुजरात के शासकों को युद्ध में पराजित किया था। राणा सांगा भारत में मुस्लिम राज्य समाप्त करके एक शक्तिशाली हिन्दू साम्राज्य की स्थापना करना चाहता था।

(6) खानदेश—खानदेश राज्य दक्षिण में ताप्ती नदी की घाटी में स्थित था। इस राज्य का संस्थापक राजा मलिक फारुकी था, जिसका गुजरात राज्य से सदैव संघर्ष चलता रहता था। अन्त में दोनों के मध्य एक निर्णायक युद्ध हुआ और यह राज्य गुजरात के शासक के अधिकार में चला गया। भौगोलिक दूरी के कारण खानदेश का दिल्ली की राजनीति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा।

(7) बहमनी राज्य—इस राज्य की स्थापना 1347 ई० में हसन गंगू ने की थी। यह शक्तिशाली राज्य दक्षिण में स्थित था और बहुत उन्नत अवस्था में था। बाबर के आक्रमण के समय यह राज्य पाँच भागों में बँट गया था—बरार, अहमद नगर, गोलकुण्डा, बीदर एवं बीजापुर। इस विभाजन से बहमनी राज्य की शक्ति बहुत कम हो गई थी।

(8) विजय नगर राज्य—यह दक्षिण में हिन्दुओं का एक शक्तिशाली राज्य था। बाबर के आक्रमण के समय इस राज्य का शासक कृष्णदेवराय था। यह विजय नगर के सम्राटों में सर्वाधिक योग्य, विद्यानुरागी, सुसंस्कृत एवं प्रतिभाशाली शासक था। विजय नगर राज्य का भी उत्तर भारत से कोई सम्बन्ध न था।

(9) उड़ीसा—यह एक हिन्दू राज्य था। लेकिन इसका उत्तरी भारत की राजनीति से कोई सम्बन्ध नहीं था।

मानचित्र—बाबर के आक्रमण (1526 ई०) के समय भारत की राजनीतिक दशा।

(10) पंजाब—बाबर के आक्रमण से पूर्व पंजाब के सूबेदार दौलत ख़ाँ लोदी और दिल्ली के शासक इब्राहीम लोदी एक-दूसरे के प्रबल विरोधी थे। दौलत ख़ाँ लोदी दिल्ली सल्तनत पर अपना अधिकार करना चाहता था। इसीलिए उसने काबुल के शासक बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया था।

भारत की तत्कालीन राजनीतिक दशा का वर्णन करते हुए स्वयं बाबर ने अपनी आत्मकथा 'तजुके बाबरी' में लिखा है, "हिन्दुस्तान में पाँच मुसलमान और दो हिन्दू राज्य हैं। पाँच मुस्लिम राज्यों के सभी राजा महान् और मुसलमान हैं तथा विशाल सेनाओं एवं प्रदेशों के स्वामी हैं। भूमि और सेना की दृष्टि से काफिर राजाओं में विजय नगर का राजा महान् और शक्तिशाली है। दूसरा राणा है, जिसने अपनी वीरता और तलवार द्वारा बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की है।"

निष्कर्ष—उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि बाबर के आक्रमण के समय भारत परस्पर लड़ने वाले विभिन्न राज्यों में विभक्त था। देश में कोई सार्वभौमिक सत्ता नहीं थी और सर्वोच्च शासन सत्ता के लिए परस्पर संघर्ष चल रहा था। ऐसी स्थिति में भारत किसी साहसी व शक्तिशाली बाह्य शत्रु का सामना करने में सर्वथा असमर्थ ही था अथवा वह किसी भी आक्रमणकारी का, जो उसे जीतने की शक्ति और इच्छा रखता हो, सरलता से शिकार हो सकता था। अतः इस दृष्टि से भारत की तत्कालीन राजनीतिक दशा के सन्दर्भ में यह कथन उचित ही है कि, "बाबर के आक्रमण के पूर्व भारत छोटे-छोटे राज्यों का एक समूह मात्र था। देश में किसी एक सार्वभौमिक, एकछत्र राजनीतिक शक्ति का अभाव था।"

प्रश्न 2—बाबर की विजयों पर प्रकाश डालिए। *(1999)*

अथवा **पानीपत व खानवा के युद्धों के विषय में आप क्या जानते हैं? इन युद्धों में बाबर की सफलता के क्या कारण थे?** *(M. Imp.)(1991)*

अथवा **"पानीपत का प्रथम युद्ध भारतीय इतिहास में एक निर्णायक युद्ध था।" इस कथन की पुष्टि कीजिए।**

अथवा **" बाबर मुगल साम्राज्य का संस्थापक था।" इस मत की विवेचना कीजिए।** *(1990)*

अथवा **"भारत में, पानीपत के बाद ही बाबर का वास्तविक कार्य प्रारम्भ हुआ।" खानवा युद्ध के विशेष सन्दर्भ में इस कथन की समीक्षा कीजिए।** *(V. Imp.)*

अथवा **पानीपत के प्रथम युद्ध (1526) के कारणों और परिणामों का विवेचन कीजिए।** *(1995)*

अथवा **बाबर के भारतीय युद्धों का वर्णन कीजिए और उसकी सफलता के कारण बताइए।**

अथवा **"पानीपत का प्रथम युद्ध सल्तनत काल का अन्त एवं मुगल साम्राज्य का प्रारम्भ है।" समीक्षा कीजिए।** *(1990, 92)*

अथवा **"पानीपत तथा खानवा के युद्ध भारतीय इतिहास की महत्त्वपूर्ण निर्णायक घटनाएँ थीं।" इन दोनों युद्धों के कारणों तथा परिणामों की समीक्षा कीजिए।** *(1991, 93)*

अथवा **"बाबर में उच्च कोटि की सैनिक प्रतिभा थी।" स्पष्ट कीजिए।** *(1994)*

अथवा **"पानीपत और खानवा के युद्धों के कारणों एवं परिणामों की विवेचना कीजिए।** *(1995)*

अथवा **"पानीपत के प्रथम युद्ध में बाबर की सफलता उसके कुशल रण-संचालन का वांछित फल था।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।** *(1995)*

अथवा **"एक ओर थे वैज्ञानिक युद्धकला के साधन और दूसरी ओर थे मध्यकालीन ढंग के हथियार-बन्द सैनिक।" इस कथन के प्रकाश में, पानीपत और खानवा के युद्धों में प्रयुक्त बाबर की श्रेष्ठतर युद्धकला का मूल्यांकन कीजिए।** *(1996)*

अथवा **"भारत में बाबर का आगमन अनेक दृष्टिकोणों से महत्त्वपूर्ण था।" इस कथन की विवेचना कीजिए।** *(1997)*

अथवा **भारत में मुगल साम्राज्य के संस्थापक के रूप में बाबर के योगदान का मूल्यांकन कीजिए।** *(1997)*

अथवा **"पानीपत के युद्ध से ही दिल्ली साम्राज्य बाबर के हाथ में आ गया।" इस कथन को स्पष्ट कीजिए।** *(1999)*

अथवा **बाबर की उपलब्धियों की विवेचना कीजिए।** *(1999)*

उत्तर— बाबर की भारत विजय : मुगल साम्राज्य की स्थापना

बाबर का परिचय—बाबर का पूरा नाम जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर था। उसका जन्म 24 फरवरी, 1483 ई० को फरगना में हुआ था। उसका पिता उमर शेख मिर्जा तैमूरवंशीय और माता कुतलुग निगार खानम चंगेज खाँ के वंश से सम्बन्धित थी। दुर्भाग्य से 1494 ई० में बाबर पितृहीन हो गया और उसे अपने सम्बन्धियों (अहमद मिर्जा व जहाँगीर) के कारण अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

फिर भी बाबर ने अपनी योग्यता से अपने पैतृक राज्य फरगना पर अधिकार कर लिया और उसके उपरान्त समरकन्द को भी जीत लिया। लेकिन वह अधिक समय तक इन राज्यों का स्वामी न रह सका। शीघ्र ही फरगना में उसके विरुद्ध षड्यन्त्र शुरू हो गया था। इन षड्यन्त्रों का दमन करने बाबर वहाँ गया। परन्तु जब वह फरगना पहुँचा, तभी उसके हाथ से समरकन्द निकल गया। इस दुर्भाग्यपूर्ण स्थिति में उसे

एक वर्ष तक इधर-उधर भटकना पड़ा। अन्त में, 1504 ई० में बाबर ने काबुल पर अधिकार कर लिया तथा समरकन्द पर आक्रमण करके उसे भी पुनः जीत लिया। लेकिन शीघ्र ही समरकन्द और फरगना उसके हाथ से निकल गए। अन्ततः बाबर ने मध्य एशिया से निराश होकर भारत पर आक्रमण करने का निश्चय किया।

बाबर के भारत पर प्रारम्भिक आक्रमण

काबुल का बादशाह बनने के पश्चात् बाबर भारत पर आक्रमण करने का विचार बना रहा था कि तभी एक दरबारी अमीर ने बाबर को उत्साहित करते हुए कहा, "हर वस्तु आपको दक्षिण की ओर आमन्त्रित कर रही है। ईश्वर आपको काबुल तक ले आया है और हिन्दुस्तान के मार्ग पर लाकर खड़ा कर दिया है। ईश्वर तथा मुहम्मद की आज्ञा है कि आप हिन्दुस्तान में जाकर मूर्तिपूजा का विनाश करें।"

दरबारी अमीर के इन शब्दों ने बाबर को भारत पर आक्रमण करने हेतु पूर्णतः तैयार कर दिया और उसने इस उद्देश्य से भारत की ओर प्रस्थान कर दिया। इस सन्दर्भ में उसके द्वारा किए गए प्रारम्भिक आक्रमणों की जानकारी निम्नवत् है—

(1) प्रथम आक्रमण—1519 ई० में बाबर ने सर्वप्रथम भारत के सीमान्त प्रदेशों पर आक्रमण किया और बाजौर तथा भेरा पर अपना अधिकार कर लिया। बाजौर में उसने कत्लेआम भी करवाया।

(2) द्वितीय आक्रमण—बाबर ने सितम्बर, 1519 ई० में दूसरा आक्रमण युसुफजाई जाति के विद्रोह को दबाने के उद्देश्य से किया था, किन्तु मध्य एशिया की भीषण तथा अनिश्चित परिस्थितियों के कारण उसको तुरन्त काबुल वापस लौट जाना पड़ा।

बाबर के भारत पर प्रारम्भिक आक्रमण

(1) प्रथम आक्रमण (1519 ई०)
(2) द्वितीय आक्रमण (1519 ई०)
(3) तृतीय आक्रमण (1520 ई०)
(4) चतुर्थ आक्रमण (1524 ई०)।

(3) तृतीय आक्रमण—1520 ई० में उसने भारत पर तीसरा आक्रमण किया और पुनः बाजौर व भेरा आदि को जीतता हुआ वह स्यालकोट (पंजाब) तक पहुँच गया। इस प्रकार, स्यालकोट पर भी उसका आधिपत्य स्थापित हो गया। इसी समय उसने सैयदपुर को जीतकर कन्धार पर भी आक्रमण किया। अपने पुत्र कामरान को वहाँ का सूबेदार नियुक्त करके वह काबुल लौट गया।

(4) चतुर्थ आक्रमण—बाबर ने पंजाब के शासक दौलत खाँ लोदी और इब्राहीम लोदी के चाचा आलम खाँ के निमन्त्रण पर 1524 ई० में भारत के सीमान्त प्रदेशों पर पुनः आक्रमण किया। बाबर ने इस अवसर का लाभ उठाकर पंजाब पर अपना अधिकार कर लिया और दौलत खाँ लोदी को जालन्धर तथा सुल्तानपुर के जिलों का स्वामी बना दिया। इसके पश्चात् बाबर दौलत खाँ लोदी के पुत्र दिलावर खाँ और दयालपुर आलम खाँ को सुल्तानपुर सौंपकर अपने देश काबुल वापस लौट गया।

बाबर की विजयें

भारत में अपने साम्राज्य का विस्तार और मुगल वंश की शासन सत्ता के सूत्रपात की दृष्टि से बाबर की निम्नलिखित विजयों का विशेष महत्त्व है—

(1) पानीपत का प्रथम युद्ध (21 अप्रैल, 1526 ई०)—सन् 1525 ई० में बाबर ने भारत के दिल्ली साम्राज्य पर आक्रमण करने के उद्देश्य से काबुल से प्रस्थान किया। उसके साथ एक सुसंगठित एवं विशाल सेना थी। उसकी सेना में 12,000 अश्वारोही, 8,000 अन्य प्रकार के सैनिक और बारूद की आग के गोले उगलने वाली 700 तोपें थीं। वह अपनी सेना सहित काबुल से लाहौर तक बिना किसी बाधा के पहुँच गया। पंजाब का शासक दौलत खाँ लोदी उसे रोकने में असफल रहा। बाबर ने दौलत खाँ लोदी को बन्दी बना लिया तथा कुछ दिन पश्चात् बन्दी अवस्था में ही उसकी मृत्यु हो गई थी। दूसरी ओर आलम खाँ लोदी ने स्वयं ही बाबर के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया था। इस प्रकार, बाबर पंजाब पर अपनी विजय पताका फहराकर दिल्ली की ओर अग्रसर हो गया।

दिल्ली का सुल्तान इब्राहीम लोदी बाबर के आने की सूचना पाकर अपनी एक विशाल सेनासहित उसका सामना करने के लिए चल पड़ा। बाबर अपनी आत्मकथा 'तजुके बाबरी' में लिखता है कि इब्राहीम लोदी की सेना में 1 लाख सैनिक थे। पानीपत के ऐतिहासिक मैदान में दोनों शत्रुओं की सेनाएँ आमने-सामने जाकर खड़ी हो गईं। 21 अप्रैल, 1526 ई० को प्रातः 10 बजे युद्ध आरम्भ हुआ। सारे दिन दोनों ओर के योद्धा बड़े जोश के साथ लड़ते रहे। एक बार तो ऐसा लगा कि बाबर पराजित हो जाएगा, परन्तु तोपों की मार से लोदी की सेनाएँ विचलित हो गईं। अन्त में, इब्राहीम लोदी मारा गया तथा उसकी सेना बुरी तरह पराजित होकर नष्ट हो गई। बाबर स्वयं अपनी आत्मकथा में लिखता है, **"ईश्वर की अनुकम्पा से यह कठिन कार्य मेरे लिए सरल बन गया और आधे दिन के अन्दर ही शत्रु की विशाल सेना नष्ट हो गई।"**

युद्ध के परिणाम—पानीपत का प्रथम युद्ध, भारतीय इतिहास में एक निर्णायक युद्ध सिद्ध हुआ। इस युद्ध के निम्नलिखित परिणाम हुए—

(1) इस युद्ध का सबसे महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि उसने भारत में अफगानों के लोदी वंश के साम्राज्य का अन्त कर दिया और भारत में एक नए राजवंश मुगल-वंश की स्थापना कर दी। प्रो० जाफर ने लिखा है, **"इस युद्ध से भारतीय इतिहास में एक नवीन युग का प्रादुर्भाव हुआ। लोदी वंश के स्थान पर मुगल वंश की स्थापना हुई।"** लेनपूल के मतानुसार, **"पानीपत का युद्ध दिल्ली के अफगानों के लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ और उनका राज्य व शक्ति नष्ट-भ्रष्ट हो गई।"** इसी प्रकार, इस युद्ध के सम्बन्ध में यह कथन भी पूर्णतः उपयुक्त ही है कि, **"पानीपत का प्रथम युद्ध सल्तनत काल का अन्त एवं मुगल साम्राज्य का प्रारम्भ ही है।"**

बाबर की विजयें (युद्ध)

(1) पानीपत का प्रथम युद्ध (1526 ई०)
(2) खानवा का युद्ध (1527 ई०)
(3) चन्देरी का युद्ध (1528 ई०)
(4) घाघरा का युद्ध (1529 ई०)।

(2) इस युद्ध में सैनिक शक्ति का अत्यधिक विनाश हुआ था। बाबर के अधिकारियों की गणना के अनुसार इस युद्ध में 15-16 हजार व्यक्ति मारे गए थे। परन्तु भारतीयों का अनुमान था कि 40-50 हजार व्यक्ति इस युद्ध में काम आ गए थे।

(3) इस युद्ध के परिणामस्वरूप बाबर का दिल्ली व आगरा पर अधिकार हो गया और लूट में वहुमूल्य कोहिनूर हीरा तथा अपार धन-सम्पत्ति उसके हाथ लगी थी।

(4) इस युद्ध के वाद बाबर के इधर-उधर भटकने के दिन समाप्त हो गए थे। अब उसने अपनी शक्ति को राज्य-विस्तार की ओर लगाना प्रारम्भ कर दिया था।

डॉ० ईश्वरी प्रसाद ने इस युद्ध के परिणामों के विषय में लिखा है, **"पानीपत के युद्ध ने दिल्ली के साम्राज्य को बाबर के हाथों में सौंप दिया। लोदी वंश की शक्ति चूर-चूर हो गई और भारतवर्ष की सर्वोच्च सत्ता चुगताई तुर्कों के हाथों में चली गई।"** इस प्रकार, पानीपत का प्रथम युद्ध भारत के भाग्य का निर्णायक युद्ध सिद्ध हुआ।

(2) खानवा का युद्ध (16 मार्च, 1527 ई०)—पानीपत के युद्ध में विजयश्री प्राप्त करके भी बाबर को यह आशा नहीं थी कि वह अब निश्चित रूप से दिल्ली का शासक बना रहेगा, क्योंकि उस समय मेवाड़ पर राणा साँगा, जो बड़ा वीर, साहसी और शक्तिशाली राजा था तथा उत्तरी भारत के समस्त राजपूत जिसके प्रभाव में थे, बाबर का प्रबल प्रतिरोध करने के लिए तत्पर था। अतः भारत पर अपना स्थायी साम्राज्य बनाए रखने के लिए बाबर को राणा साँगा से खानवा का निर्णायक युद्ध लड़ना पड़ा। लेनपूल के शब्दों में, **"अब बाबर को ऐसे शूरवीरों का सामना करना पड़ा, जिसकी उसने कभी कल्पना भी नहीं की थी।"**

युद्ध के कारण—बाबर और राणा साँगा के मध्य हुए खानवा के युद्ध के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

(1) मेवाड़ का शासक राणा साँगा भारत में हिन्दू राज्य की स्थापना करना चाहता था। उसका विचार था कि अन्य आक्रमणकारियों की भाँति बाबर भी लूटमार करके अपने देश वापस लौट जाएगा। लेकिन जब बाबर ने इब्राहीम लोदी को पराजित करके दिल्ली व आगरा पर अधिकार कर लिया, तब

राणा साँगा को अपनी इस भूल का पता चल गया कि उसने बाबर को इब्राहीम लोदी के दमन के लिए आमन्त्रित कर, अपने पैरों में स्वयं ही कुल्हाड़ी मार ली थी।

(2) इब्राहीम लोदी के उत्तराधिकारी महमूद लोदी ने भी बाबर से प्रतिशोध लेने के उद्देश्य से राणा साँगा को बाबर के विरुद्ध सहायता देने का वचन दिया था। इससे उत्साहित होकर राणा साँगा बाबर से युद्ध करने की तैयारी में जुट गया।

(3) इधर बाबर ने यह निश्चय कर लिया था कि अपने प्रबलतम विरोधी राणा साँगा को पराजित किए बिना उसका भारतीय साम्राज्य पर अधिक समय तक अधिकार नहीं रह सकेगा।

युद्ध की घटनाएँ—इन कारणों के फलस्वरूप मुगलों और राजपूतों के मध्य युद्ध होना निश्चित हो गया। पानीपत की विजय के पश्चात् बाबर ने कालपी और धौलपुर पर भी अधिकार कर लिया था। अन्त में वह खानवा के युद्ध-क्षेत्र में भी जा पहुँचा। शीघ्र ही राणा साँगा भी अपनी विशाल सेना सहित वहाँ पहुँच गया।

खानवा के युद्ध-क्षेत्र में राजपूतों की सेना और उनके उत्साह को देखकर बाबर के सैनिक घबरा गए। लेकिन बाबर ने उन्हें (सैनिकों को) जेहाद (इस्लाम धर्म की सुरक्षा का युद्ध) के नाम पर एक प्रभावशाली भाषण दिया, जिसके परिणामस्वरूप बाबर की सेनाओं का सोया हुआ उत्साह जाग उठा। उन्होंने कुरान की शपथ लेकर राजपूतों के विरुद्ध अन्तिम समय तक युद्ध करने का निर्णय लिया।

16 मार्च, 1527 ई० को राजपूतों के साथ बाबर का भयंकर और निर्णायक युद्ध हुआ। दोनों ओर की सेनाएँ समान टक्कर की थीं, किन्तु मुगलों के तोपखाने के कारण अन्त में राजपूतों का साहस टूट गया और राजपूत सेना विचलित हो गई। राणा साँगा युद्ध-भूमि पर घायल होकर गिर पड़ा और बाबर को इस युद्ध में पूर्ण विजय प्राप्त हुई। उसने विजयी होकर 'गाजी' की उपाधि ग्रहण की।

युद्ध के परिणाम—खानवा के युद्ध के निम्नलिखित उल्लेखनीय परिणाम हुए—

(1) खानवा के युद्ध का भारतीय इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इसने भारत के इतिहास में एक नए युग का सूत्रपात किया। इस युद्ध से उत्तरी भारत में राजपूत शक्ति का भी अन्त हो गया।

(2) बाबर ने निर्भीकता के साथ स्वयं को दिल्ली का बादशाह घोषित कर दिया।

(3) राजपूतों को इस युद्ध से विशेष क्षति पहुँची थी। लेनपूल के अनुसार, **"खानवा का युद्ध राजपूतों के लिए इतना विनाशकारी सिद्ध हुआ कि कोई बिरला ही राजपूत परिवार होगा कि जिसके श्रेष्ठ योद्धा इस युद्ध में काम न आए हों।"**

(4) डॉ० आर० पी० त्रिपाठी के अनुसार, **"खानवा युद्ध के परिणाम वास्तव में दूरगामी थे। इसने राजपूत परिसंघ तोड़ दिया। परिसंघ के टूटते ही हिन्दू सर्वोच्चता का स्वप्न भंग हो गया, जिसने उत्तरी भारत में मुस्लिम राज्यों को अत्यधिक दुविधा में डाल रखा था।"**

वस्तुतः **"पानीपत तथा खानवा के युद्ध भारतीय इतिहास की महत्त्वपूर्ण निर्णायक घटनाएँ थीं।"** इन युद्धों के उपरान्त बाबर का कार्य काफी सहज हो गया। पानीपत के युद्ध में विजय प्राप्त करने के उपरान्त भी बाबर को यह सन्देह था कि वह बहुत समय तक दिल्ली का सम्राट नहीं रह सकेगा। इसका प्रमुख कारण मेवाड़ के राणा साँगा के आक्रमण का भय था। परन्तु जब खानवा के युद्ध में राणा साँगा परास्त हो गया, तो बाबर पूर्णतः निश्चिन्त हो गया। अब अन्य शत्रुओं को नियन्त्रित कर लेना, उसे अधिक कठिन प्रतीत नहीं हुआ। इसी सन्दर्भ में यह कथन विशेष उल्लेखनीय है कि, **"भारत में पानीपत के युद्ध के बाद ही बाबर का वास्तविक कार्य प्रारम्भ हुआ।"**

(3) चन्देरी का युद्ध (29 जनवरी, 1528 ई०)—राणा साँगा को पूर्ण रूप से पराजित करने के पश्चात् बाबर ने चन्देरी के शासक मेदनीराय पर आक्रमण कर उसे भी पराजित कर दिया। चन्देरी की लूट में उसे अपार धन की प्राप्ति हुई।

(4) घाघरा का युद्ध (1529 ई०)—बाबर ने एक विशाल सेना के साथ 1529 ई० में अफगान सरदार महमूद लोदी पर आक्रमण कर उसे पराजित किया। इसके पश्चात् उसने बंगाल के सूबेदार

नुसरतशाह को भी सन्धि करने के लिए बाध्य किया। बाबर ने यह युद्ध इसलिए किया, क्योंकि महमूद लोदी (इब्राहीम लोदी का भाई) तथा बंगाल का शासक नुसरतशाह दोनों ही मिलकर बाबर के विरुद्ध षड्यन्त्र रच रहे थे।

बाबर का साम्राज्य विस्तार—बाबर ने भारत में चार निर्णायक युद्ध किए और सभी में उसकी विजय हुई। उसके साम्राज्य में बदख्शाँ, काबुल, गजनी और कन्धार प्रान्त भी सम्मिलित थे। इस प्रकार, बाबर एक ऐसा साम्राज्य-निर्माता था, जिसने मध्य एशिया की आबू नदी से लेकर भारत में सिन्धु नदी तक तथा बिहार, बंगाल एवं हिमालय से लेकर ग्वालियर तथा चन्देरी तक अपना राज्य स्थापित कर लिया था। इस प्रकार, बाबर ने भारत में लोदी वंश के शासन का अन्त करके मुगल साम्राज्य की स्थापना की।

बाबर की सफलता के कारण

भारतीयों के साथ किए गए विभिन्न युद्धों में बाबर की विजय अथवा सफलता के लिए, निम्न कारण उत्तरदायी सिद्ध हुए—

(1) उसके समय में भारत अनेक स्वतन्त्र राज्यों में विभाजित था और उनमें पारस्परिक संगठन व एकता का पूर्ण अभाव था।

(2) बाबर की सेना पूर्ण रूप से संगठित एवं प्रशिक्षित थी। राजपूतों की पराजय का कारण उन पर तोपों का विनाशकारी प्रहार था। रशब्रुक विलियम्स ने लिखा है, "मुगलों के तोपखाने ने बाबर को युद्ध में विजयी बनाने में महत्त्वपूर्ण सहायता दी थी।"

(3) बाबर स्वयं एक वीर एवं कुशल सेनानायक और महान् योद्धा था।

(4) भारतीयों की युद्ध-प्रणाली बहुत ही दोषपूर्ण थी। वे हाथियों का अधिक प्रयोग करते थे, जो प्रायः युद्ध में अपनी सेना के लिए ही घातक सिद्ध होते थे।

(5) इब्राहीम लोदी की कठोर नीति के कारण समस्त दरबारी एवं अमीर उससे नाराज रहते थे, इसलिए उन्होंने युद्ध में उसे पूर्ण रूप से सहयोग नहीं दिया।

इस प्रकार, बाबर ने खण्डित भारतीय राज्यों की दुर्बलता का लाभ उठाते हुए, अपनी महान् विजयों के आधार पर भारत में शक्तिशाली मुगल वंश की स्थापना करने में सफलता प्राप्त की। कालान्तर में बाबर के वंशजों ने लगभग 200 वर्षों तक भारत पर अपना प्रभुत्व बनाए रखा।

प्रश्न 3—बाबर के चरित्र एवं व्यक्तित्व का मूल्यांकन कीजिए।

अथवा **"बाबर की गणना एशिया के महान् सम्राटों में की जाती है।" स्मिथ के इस कथन की पुष्टि कीजिए।** ***(V. Imp.)***

अथवा **एक साम्राज्य-निर्माता के रूप में बाबर के चरित्र का मूल्यांकन कीजिए।**

अथवा **"बाबर अपने समय के राजाओं में सबसे तेजस्वी और महान् था।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं? सकारण व्याख्या कीजिए।**

अथवा **बाबर के चरित्र का मूल्यांकन कीजिए। क्या वह मुगल साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक था?** ***(1992)***

अथवा **"बाबर अपने युग के एशिया के शासकों में सबसे अधिक शानदार था और किसी भी युग के शासकों में वह उच्च स्थान पाने योग्य है।" उक्त कथन के आलोक में बाबर के व्यक्तित्व और चरित्र का मूल्यांकन कीजिए।** ***(1990)***

अथवा **"बाबर मुगल साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक था।" इस कथन के आलोक में बाबर के योगदानों का उल्लेख कीजिए।** ***(1992)***

अथवा **"बाबर एक महान् विजेता होने के अतिरिक्त एक साहित्यकार भी था।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।** ***(1994)***

उत्तर—

बाबर का मूल्यांकन

भारतीय इतिहास में बाबर का एक महत्त्वपूर्ण स्थान है। उसके गुणों की प्रशंसा करते हुए रशब्रुक विलियम्स ने लिखा है, "बाबर दृढ़-निश्चयी तथा उच्चकोटि का निर्णय करने वाला, महत्त्वाकांक्षी, विजय

प्राप्त करने की कला का ज्ञाता, शासन-कला में दक्ष, जनता का शुभचिन्तक, सैनिकों को अपनी ओर आकर्षित करने वाला न्यायप्रिय शासक था।"

डॉ० स्मिथ लिखते हैं, **"बाबर अपने युग के समस्त एशिया के बादशाहों में सबसे अधिक बुद्धिमान बादशाह था और सभी बादशाहों में एक महत्त्वपूर्ण एवं उच्च स्थान रखता था।"** वस्तुतः उसके चारित्रिक गुणों के प्रकाश में यह कथन पूर्णतः उपयुक्त है।

बाबर का चरित्र एवं व्यक्तित्व : बाबर का योगदान

बाबर का व्यक्तित्व बड़ा आकर्षक था। वह अपार शारीरिक और आत्मिक शक्ति का स्वामी था। हिन्दू बेग फरिश्ता ने उसके सम्बन्ध में लिखा है कि, **"बाबर की आकृति सुन्दर थी। वह मृदुभाषी और दृढ़ संकल्पी था। वह इतना शक्तिशाली था कि दो व्यक्तियों को अपनी बगल में दबाकर किले की दीवार पर दौड़ सकता था।"**

वह उच्चकोटि का साहित्यकार भी था। उसकी आत्मकथा तजुके बाबरी, विश्व के महान् ग्रन्थों में गिनी जाती है। इसके अतिरिक्त, बाबर प्रकृति-प्रेमी भी था।

बाबर के व्यक्तित्व एवं चरित्र की सराहना करते हुए हैवेल लिखता है, **"मुगल साम्राज्य का संस्थापक सम्राट बाबर अपने मनोरम और सुन्दर व्यक्तित्व, कलात्मक स्वभाव तथा अद्भुत चरित्र के कारण इस्लाम के इतिहास में सदा अमर रहेगा।"**

बाबर के चरित्र एवं व्यक्तित्व को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है—

(1) एक सेनापति के रूप में—बाबर वीर, अनुभवी एवं साहसी योद्धा था। उसमें आत्मविश्वास एवं धैर्य की मात्रा बहुत अधिक थी। वह एक सफल सेनापति था। इसका प्रमाण उसके द्वारा प्राप्त की गई विजयें हैं।

बाबर का चरित्र एवं व्यक्तित्व

(1) एक सेनापति के रूप में
(2) एक शासक के रूप में
(3) साम्राज्य-निर्माता के रूप में
(4) धार्मिक सम्राट के रूप में
(5) कला-प्रेमी सम्राट के रूप में

(2) एक शासक के रूप में—वह एक कुशल एवं सफल प्रशासक था। उसने किसी हिन्दू को मुसलमान बनने के लिए कभी बाध्य नहीं किया था। किसी हिन्दू मन्दिर को तोड़कर उसने मसजिद नहीं बनवाई थी और धार्मिक मामले में किसी हिन्दू को कभी फाँसी नहीं दी थी। हिन्दुओं पर शासन करने के उद्देश्य से, उसने इस प्रकार की नीति अपनाकर एक सफल कूटनीतिज्ञ प्रशासक का परिचय दिया था।

(3) साम्राज्य-निर्माता के रूप में—रशब्रुक विलियम्स और एस० एम० जाफर बाबर को एक साम्राज्य-निर्माता मानते हैं। किन्तु डॉ० सरन इसके विरुद्ध हैं, वे केवल उसे महान् विजेता ही मानते हैं।

(क) बाबर साम्राज्य-निर्माता था—बाबर ने अथक् परिश्रम और विशेष पराक्रम के बल पर भारत में मुगल साम्राज्य की नींव डाली। कालान्तर में मुगल वंश की उस मजबूत नींव पर ही उसके पौत्र अकबर ने एक विशाल साम्राज्य का निर्माण किया था।

लेनपूल ने लिखा है, **"यद्यपि बाबर साम्राज्य-निर्माता नहीं था, तथापि उसने उस भव्य भवन की आधारशिला रखी, जिसका पूर्ण निर्माण उसके पौत्र अकबर द्वारा हुआ था।"**

(ख) बाबर साम्राज्य-निर्माता नहीं था—इस मत के समर्थक निम्नलिखित तर्क प्रस्तुत करते हैं—

(i) बाबर ने पानीपत, खानवा और घाघरा के युद्धों में अपने सैनिक गुणों के कारण विजयें प्राप्त की थीं। ये विजयें उसके साम्राज्य-निर्माता होने का स्पष्ट प्रमाण नहीं कही जा सकती हैं।

(ii) उसका शासन प्रबन्ध असंगठित एवं अव्यवस्थित था। रशब्रुक विलियम्स ने उसके राज्य के सन्दर्भ में लिखा है, **"बाबर ने अपने पुत्र के लिए एक ऐसा राज्य छोड़ा था, जो केवल युद्धकालीन परिस्थितियों में ही सुसंगठित रह सकता था, शान्तिकाल के लिए वह पूर्णतया निर्बल एवं निकम्मा था।"**

(4) धार्मिक सम्राट के रूप में—वह सुन्नी धर्म का धर्म भीरू सम्राट था। वह प्रत्येक अवसर पर ईश्वर का स्मरण करता था और अपनी प्रत्येक सफलता को ईश्वर की ही अनुकम्पा मानता था।

(5) कला-प्रेमी सम्राट के रूप में—बाबर कलाप्रिय भी था। उसे बाग लगवाने का शौक था। संगीत और कविताओं से उसका विशेष प्रेम था। आगरा, ग्वालियर, सीकरी, धौलपुर तथा बयाना में उसने भव्य इमारतें बनवाई थीं। वह तुर्की भाषा का प्रकाण्ड विद्वान् था। उसने स्वयं ही अपनी आत्मकथा तजुके बाबरी लिखी थी।

इन चारित्रिक विशेषताओं के आधार पर यह स्वीकार किया जा सकता है कि बाबर एक महान् योद्धा व मुगल साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक था। डॉ० ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है, "बाबर अपने काल का सर्वश्रेष्ठ मुसलमान शासक था। वह वास्तव में ही एशिया के महान् सम्राटों में एक था।"

प्रश्न 4— हुमायूँ के शासनकाल की प्रमुख घटनाओं का वर्णन कीजिए।
अथवा **हुमायूँ और शेरखाँ के मध्य हुए युद्धों का वर्णन कीजिए।** *(V. Imp.)*
अथवा **हुमायूँ तथा शेरशाह के बीच हुए संघर्ष का वर्णन कीजिए। हुमायूँ क्यों असफल रहा?**
उत्तर—

हुमायूँ का शासनकाल

सन् 1530 ई० में हुमायूँ ने गद्दी पर बैठने के बाद कालिंजर एवं जौनपुर पर अति शीघ्र विजय प्राप्त कर ली। उसने चुनार दुर्ग पर भी घेरा डाला, किन्तु बाद में उसने शेरखाँ से सन्धि कर ली। शेरखाँ से सन्धि के पश्चात् हुमायूँ थोड़े दिनों के लिए विलासिता में लिप्त हो गया।

हुमायूँ के शासनकाल की घटनाएँ : हुमायूँ के कार्य

हुमायूँ के शासनकाल की प्रमुख घटनाएँ अथवा उसके कार्यों का संक्षिप्त उल्लेख निम्नलिखित है—

(1) बिहार तथा कन्नौज के जागीरदारों के विद्रोहों का दमन—बिहार के मुहम्मद जमां मिर्जा एवं कन्नौज के सुल्तान मिर्जा ने हुमायूँ के विरुद्ध विद्रोह कर दिया था। हुमायूँ ने इन विद्रोहों का दमन करने में सफलता प्राप्त की।

(2) बहादुरशाह से युद्ध—गुजरात का शासक बहादुरशाह बड़ा महत्त्वाकांक्षी शासक था। वह मुगलों को भारत से भगाकर स्वयं दिल्ली के तख्त पर अधिकार करने का स्वप्न देखा करता था। उसने हुमायूँ के विरोधियों—आजमखाँ लोदी एवं मुहम्मद जमान मिर्जा को अपने राज्य में शरण दी और मालवा तथा रायगढ़ राज्यों पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। इसके पश्चात् बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर भी आक्रमण कर दिया। चित्तौड़ की रानी कर्णवती ने हुमायूँ को राखी भेजकर उससे सहायता माँगी। अतएव हुमायूँ ने बहादुरशाह के राज्य पर आक्रमण कर दिया। लेकिन बहादुरशाह ने ऐसी कूटनीति से काम लिया कि हुमायूँ ने उसके राज्य पर आक्रमण रोक दिया और बहादुरशाह को बड़ी सुगमता से चित्तौड़ पर अधिकार कर लेने दिया। यद्यपि बाद में हुमायूँ ने 1535 ई० में बहादुरशाह को परास्त किया, किन्तु वह उसे पूर्ण रूप से नष्ट करने में असफल रहा।

> **हुमायूँ के शासनकाल की घटनाएँ (हुमायूँ के कार्य)**
> (1) बिहार तथा कन्नौज के जागीरदारों के विद्रोहों का दमन
> (2) बहादुरशाह से युद्ध
> (3) अस्करी का विद्रोह
> (4) शेरखाँ से संघर्ष
> (5) चौसा का युद्ध
> (6) कन्नौज का युद्ध
> (7) हुमायूँ की दयनीय स्थिति
> (8) हुमायूँ का पुनः भारत आना।

(3) अस्करी का विद्रोह—बहादुरशाह के गुजरात राज्य छोड़कर भाग जाने के पश्चात्, हुमायूँ ने अपने भाई अस्करी को वहाँ का सूबेदार नियुक्त किया, किन्तु अस्करी ने अल्प समय में ही वहाँ अपनी स्वतंत्र सत्ता स्थापित कर ली। इसी बीच जब गुजरात को पुनः प्राप्त करने के लिए बहादुरशाह ने उस पर आक्रमण किया, तो अस्करी उसका सामना करने के स्थान पर आगरा पलायन कर गया। अतः बहादुरशाह का पुनः गुजरात पर अधिकार हो गया। इधर हुमायूँ अस्करी का पीछा करने के लिए मालवा से आगरा गया, उधर अवसर का लाभ उठाकर बहादुरशाह ने मालवा पर अधिकार कर लिया। अन्त में, धूर्त अस्करी ने हुमायूँ से क्षमा माँग ली और उदार हृदय हुमायूँ ने उसे क्षमा कर दिया।

(4) शेरखाँ से संघर्ष—शेरखाँ एक महत्त्वाकांक्षी अफगान सरदार था। उसने कुछ समय तक बाबर की सेना में कार्य किया था। सन् 1528 ई० में वह बिहार के शासक की सेना में चला गया और अपनी योग्यता व दूरदर्शिता के बल पर धीरे-धीरे पूरे बिहार का स्वतन्त्र स्वामी बन गया। उसने चुनार दुर्ग पर भी अधिकार कर लिया। फिर उसने बंगाल पर आक्रमण किया और वहाँ के सूबेदार महमूदशाह को बुरी तरह परास्त किया। अब उसने हुमायूँ पर आक्रमण करने का निश्चय किया।

हुमायूँ भी शेरखाँ की बढ़ती हुई शक्ति से भयभीत था। अतः हुमायूँ ने हिन्दूबेग को शेरखाँ की गतिविधियाँ ज्ञात करने के लिए जौनपुर भेजा। लेकिन हिन्दूबेग शेरखाँ से मिल गया और उसने हुमायूँ से कहा कि वह शेरखाँ से भय न करे, क्योंकि वह तो मुगलों का मित्र है। तत्पश्चात् जब शेरखाँ ने बंगाल पर अधिकार कर लिया, उस समय बंगाल के शासक महमूदशाह की प्रार्थना पर हुमायूँ ने चुनार के दुर्ग को चारों ओर से घेर लिया। छह माह पश्चात् हुमायूँ ने चुनार के दुर्ग पर अधिकार कर लिया। लेकिन शेरखाँ की स्थिति पूर्व के समान ही दृढ़ बनी रही और रोहतासगढ़ दुर्ग पर उसका प्रभुत्व बना रहा। अन्त में, हुमायूँ और शेरखाँ में सन्धि हो गई, जिसके अनुसार बंगाल पर शेरखाँ का अधिकार हो गया और उसने मुगलों को 10 लाख रुपये प्रति वर्ष देने का वचन दिया।

लेकिन यह सन्धि स्थायी सिद्ध नहीं हुई। हुमायूँ ने शीघ्र ही बंगाल पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध में अफगान शेरखाँ पराजित हुआ और हुमायूँ ने शेरखाँ से कोसी व गंगा नदियों के मध्य का प्रदेश हथिया लिया।

(5) चौसा का युद्ध (26 जून, 1539 ई०)—सन् 1539 ई० में हुमायूँ और शेरखाँ के बीच चौसा का युद्ध हुआ। इस युद्ध के पूर्व हुमायूँ ने शेख खलील को शेरखाँ से सन्धि के लिए भेजा था, परन्तु शेरखाँ ने सन्धि करने के स्थान पर उसे रिश्वत देकर हुमायूँ की स्थिति के विषय में पूर्ण जानकारी प्राप्त कर ली। इसके बाद दोनों शत्रुओं में चौसा नामक स्थान पर भीषण युद्ध हुआ, जिसमें हुमायूँ की भयंकर पराजय हुई। हुमायूँ अपने प्राणों की रक्षा हेतु गंगा में कूद पड़ा। वह नदी में डूबने ही वाला था कि तभी सौभाग्य से एक भिश्ती ने उसे बचा लिया।

(6) कन्नौज का युद्ध (17 मई, 1540 ई०)—चौसा के युद्ध में पराजित होने के पश्चात् हुमायूँ आगरा गया। उसने शेरखाँ से सामना करने के लिए अपने भाइयों से सहायता माँगी, लेकिन उसके स्वार्थी भाइयों ने सहायता प्रदान करना अस्वीकार कर दिया। अन्त में, शेरखाँ और हुमायूँ में कन्नौज का युद्ध हुआ। इस युद्ध में भी मुगलों की पराजय हुई और हुमायूँ को अपना राज्य छोड़कर भागने के लिए विवश होना पड़ा। इसके बाद दिल्ली और आगरा पर भी शेरखाँ का अधिकार हो गया और शेरखाँ, शेरशाह सूरी के नाम से भारत का सम्राट बना।

(7) हुमायूँ की दयनीय स्थिति—शेरखाँ के भय से हुमायूँ राजस्थान के मरुस्थल में असहनीय कष्ट सहते हुए ईरान पहुँचा। ईरान के शाह से उसे सहायता अवश्य मिली, किन्तु वहाँ उसे शिया धर्म अपनाना पड़ा और साथ ही ईरान के शाह को कन्धार देने का वचन भी देना पड़ा।

ईरान के शाह की सहायता से हुमायूँ काबुल और कन्धार पर अधिकार करने में सफल रहा। सन् 1554 ई० तक हुमायूँ अपने भाइयों से भी मुक्ति पा गया और अफगानिस्तान पर भी उसका अधिकार स्थापित हो गया।

(8) हुमायूँ का पुनः भारत आना—हुमायूँ काबुल में रहकर भारतीय परिस्थितियों का ज्ञान प्राप्त करता रहा और जब उसने देखा कि दिल्ली की राजगद्दी के लिए अफगानों में उत्तराधिकार के लिए युद्ध हो रहा है, तो उसने 31 दिसम्बर, 1554 ई० को भारत पर आक्रमण कर दिया। अन्त में, मच्छीवाड़ा (मार्च, 1555 ई०) और सरहिन्द (जून, 1555 ई०) के ऐतिहासिक युद्धों में अफगानों को पराजित करके, हुमायूँ ने 23 जुलाई, 1555 ई० को दिल्ली पर पुनः अधिकार कर लिया। शीघ्र ही उसने आगरा, सम्भल एवं निकटवर्ती क्षेत्रों पर भी अधिकार करके, पुनः विशाल मुगल साम्राज्य की स्थापना करने में सफलता प्राप्त की।

(नोट— हुमायूँ की असफलता के कारणों के सम्बन्ध में दीर्घ उत्तरीय प्रश्न संख्या 5 के उत्तर का अवलोकन करें।)

प्रश्न 5—हुमायूँ की असफलता के क्या कारण थे ? प्रमाणों सहित वर्णन कीजिए। *(M. Imp.)*
अथवा "हुमायूँ जिस राज सिंहासन पर बैठा, वह फूलों की शैया न होकर काँटों की शैया थी।" इस कथन के प्रकाश में हुमायूँ की कठिनाइयों की समीक्षा कीजिए।
अथवा हुमायूँ की क्या कठिनाइयाँ थीं ? क्या वह उन पर विजय पा सका ?
अथवा हुमायूँ को अपने पिता की मृत्यु के बाद किन समस्याओं का सामना करना पड़ा ? क्या यह सत्य है कि उसकी बहुत-सी कठिनाइयों के कारण उसके भाई ही थे।
अथवा "हुमायूँ स्वयं अपना शत्रु था।" स्पष्ट कीजिए। *(V. Imp.)(1992)*
अथवा "वह (हुमायूँ) जीवन-पर्यन्त लड़खड़ाता रहा और लड़खड़ाकर ही उसकी मृत्यु हुई।" लेनपूल के इस कथन की व्याख्या कीजिए। *(M. Imp.)(1991, 94, 99)*
अथवा "हुमायूँ का जीवन असफलताओं की कहानी है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए। *(1990)*
अथवा हुमायूँ की असफलता के मुख्य कारणों की विवेचना कीजिए। *(1993)*
अथवा "स्वभाव की मृदुलता और आलस्य ही हुमायूँ की असफलता के मुख्य कारण थे।" इस कथन की विवेचना कीजिए। *(1994)*
अथवा "उसके नाम का अर्थ था 'भाग्यशाली' और किसी अभागे शासक को इससे अधिक गलत नाम कभी नहीं मिला।" इस कथन के प्रकाश में हुमायूँ की असफलताओं का परीक्षण कीजिए। *(1996)*
अथवा "हुमायूँ वीर, साहसी और धैर्यवान पुरुष था तथापि वह अपने साम्राज्य की रक्षा नहीं कर सका।" हुमायूँ की पराजय के कारणों को स्पष्ट कीजिए। *(1996)*

उत्तर—

हुमायूँ की कठिनाइयाँ (समस्याएँ)

मिर्जा जौहर (तजकिरातुल वाक्यात का लेखक) ने लिखा है कि हुमायूँ का अर्थ है 'भाग्यशाली' किन्तु सत्य यह है कि उस जैसा अभागा कोई मुगल शासक गद्दी पर आसीन नहीं हुआ। इसीलिए लेनपूल ने लिखा है, "जीवनभर लुढ़कते रहने वाले हुमायूँ ने अन्त में लुढ़ककर ही जान दे दी।" हुमायूँ अपने पिता बाबर की मृत्यु के पश्चात् 1530 ई० में दिल्ली के सिंहासन पर आसीन हुआ। इस समय उसके सामने अनेक भीषण कठिनाइयाँ विद्यमान थीं, जिनका विवरण इस प्रकार है—

(1) उत्तराधिकार के नियम का अभाव—बाबर की मृत्यु के पश्चात् दिल्ली की गद्दी के लिए संघर्ष शुरू हो गया, क्योंकि उस समय उत्तराधिकार के नियम स्पष्ट नहीं थे। इसी कारण उसके भाई कामरान, हिन्दाल और अस्करी जीवनभर उससे गद्दी हड़पने के लिए षड्यन्त्र रचते रहे। अरस्किन लिखते हैं, "उस समय एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो गई थी, जिसमें अधिकार का निर्णय तलवार ही कर सकती थी और प्रत्येक भाई अपने भाग्य का निर्णय तलवार के बल पर करने के लिए तत्पर था।"

हुमायूँ की कठिनाइयाँ

(1) उत्तराधिकार के नियम का अभाव
(2) सम्बन्धियों का विरोध
(3) अफगानों का विरोध
(4) राजपूतों के दमन की समस्या
(5) असंगठित साम्राज्य
(6) दोषपूर्ण सैन्य संगठन
(7) रिक्त राजकोष
(8) हुमायूँ का दुर्बल चरित्र।

(2) सम्बन्धियों का विरोध—उसके कुछ सम्बन्धी भी स्वयं को राजगद्दी का अधिकारी समझते थे। अतः वे भी सिंहासनारूढ़ होने के लिए निरन्तर षड्यन्त्र रच रहे थे।

(3) अफ़गानों का विरोध—बाबर के समय से ही अनेक अफ़गान सरदार महमूद लोदी (इब्राहीम लोदी का भाई) आलम खाँ, शेरखाँ तथा गुजरात का बहादुर शाह मुगलों को भारत से निकालने के लिए प्रयत्नशील थे। शेरखाँ ने तो हुमायूँ को पराजित करके भारत से बाहर भगा दिया था और वह उसके स्थान पर स्वयं शेरशाह सूरी के नाम से बादशाह बन गया था।

(4) राजपूतों के दमन की समस्या—बाबर ने खानवा के युद्ध में, राजपूत राजाओं में सबसे शक्तिशाली राजा राणा साँगा को पराजित किया था। अतः राजपूत भी अपनी पराजय का बदला लेने के लिए मुगलों के विरुद्ध षड्यन्त्र रचने में संलग्न थे।

(5) असंगठित साम्राज्य—बाबर ने जो राज्य हुमायूँ के लिए छोड़ा था, उसकी शासन व्यवस्था अत्यन्त दुर्बल थी। शान्तिकाल के लिए वह एक दुर्बल, आधारहीन और अशक्त राज्य था। इसीलिए डॉ० ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है, **"बाबर ने अपने पुत्र को जो राज्य विरासत में दिया था, वह फूलों की सेज न होकर काँटों की सेज थी।"**

(6) दोषपूर्ण सैन्य संगठन—हुमायूँ की सेना में भी अनेक दोष विद्यमान थे। उसकी सेना में अनेक जाति के लोग थे, जिसके कारण उनमें एकता और राष्ट्रीयता की भावना का पूर्ण अभाव था। इसके साथ ही उसके सैनिक उसके प्रति पूर्ण स्वामिभक्त भी न थे।

(7) रिक्त राजकोष—बाबर ने अनेक युद्ध किए, जिनके कारण उसका राजकोष रिक्त हो गया था। इतना ही नहीं, प्रत्येक विजय के पश्चात् वह अपने सैनिकों में पर्याप्त धन भी वितरित कर देता था।

(8) हुमायूँ का दुर्बल चरित्र—इन सब कठिनाइयों के साथ ही हुमायूँ के अपने कुछ चारित्रिक दोष भी थे। वह विलासी, मस्तमौला, अदूरदर्शी एवं खाने का शौकीन था। इस प्रकार, हुमायूँ स्वयं ही अपना शत्रु था।

हुमायूँ की असफलता के कारण

हुमायूँ की असफलता के निम्नलिखित कारण थे—

(1) हुमायूँ की भूलें—हुमायूँ ने कई ऐसी भूलें कीं जिनके फलस्वरूप उसको असफलता मिली। उसकी सबसे बड़ी भूल यह थी कि उसने अपने भाइयों में साम्राज्य का बँटवारा कर दिया। उसने कालिंजर पर आक्रमण करके भी भूल की। इसी प्रकार, उसने बहादुरशाह के विरुद्ध युद्ध की योजना में भी अनेक गलतियाँ कीं।

हुमायूँ की असलफता के कारण

(1) हुमायूँ की भूलें
(2) समय का दुरुपयोग
(3) शेरशाह की योग्यता
(4) हुमायूँ की चारित्रिक दुर्बलताएँ
(5) भाइयों का असहयोग
(6) हुमायूँ की आर्थिक कठिनाइयाँ

(2) समय का दुरुपयोग—हुमायूँ प्रत्येक युद्ध में विजय प्राप्त करने के पश्चात्, अपने अत्यन्त मूल्यवान समय को, आमोद-प्रमोद में ही नष्ट कर देता था।

(3) शेरशाह की योग्यता—शेरशाह हुमायूँ से अधिक योग्य, कुशल सेनानायक तथा कूटनीतिज्ञ था।

(4) हुमायूँ की चारित्रिक दुर्बलताएँ—हुमायूँ में दृढ़ संकल्प, दूरदर्शिता, कर्मठता तथा परिश्रम का अभाव था। वह अफीम का सेवन भी करता था। वह शत्रु को बिना पराजित किए ही लौट आता था।

(5) भाइयों का असहयोग—हुमायूँ के भाइयों ने उसके साथ सहयोग नहीं किया। उन्होंने हुमायूँ को सहायता देने के स्थान पर स्वयं राज्य पर अधिकार करने के प्रयत्न किए।

(6) हुमायूँ की आर्थिक कठिनाइयाँ—हुमायूँ को आर्थिक कठिनाइयों का भी सामना करना पड़ा। बाबर ने राजकोष का समस्त धन अपने मित्रों तथा सम्बन्धियों में बाँट दिया। जब हुमायूँ ने नई सेना का संगठन किया तब उसे धन की कमी महसूस हुई।

इन कारणों से वह अपने पिता द्वारा सौंपे गए राज्य पर अधिक समय तक शासन नहीं कर सका। 15 वर्षों के कठोर संघर्ष के पश्चात् 1555 ई० में वह पुनः गद्दी पर बैठा और कुछ माह के बाद वह 24 जनवरी, 1556 ई० को संध्या के समय अपने पुस्तकालय की सीढ़ियों से गिर गया। 26 जनवरी, 1556 ई० को हुमायूँ की मृत्यु हो गई। इस प्रकार, जीवनभर कठिनाइयों में लुढ़कते रहने वाले सम्राट का लुढ़ककर ही अन्त हो गया। अतः लेनपूल का यह कथन उपयुक्त ही है कि, **"हुमायूँ जीवन-पर्यन्त लड़खड़ाता रहा और लड़खड़ाकर ही उसकी मृत्यु हो गई।"** हुमायूँ के सम्बन्ध में यह कथन भी पूर्णतः सार्थक ही प्रतीत होते हैं कि, **"हुमायूँ स्वयं अपना ही शत्रु था।"** अथवा **"हुमायूँ का जीवन असफलताओं की कहानी है।"**

प्रश्न 6—हुमायूँ के जीवन तथा चरित्र का वर्णन कीजिए।

अथवा **"हुमायूँ में चारित्रिक दृढ़ता की कमी थी।" लेनपूल के इस कथन की समीक्षा कीजिए।**

उत्तर—

हुमायूँ का चरित्र एवं मूल्यांकन

हुमायूँ का पूरा नाम नासिरुद्दीन हुमायूँ था। उसका जन्म 6 मार्च, 1508 ई० को काबुल में हुआ था। वह मुगल सम्राट बाबर का ज्येष्ठ पुत्र था। उसकी माता का नाम माहम बेगम था। हुमायूँ को फारसी, तुर्की, अरबी आदि भाषाओं का पर्याप्त ज्ञान था। वह संगीत एवं सैनिक शिक्षा का भी विशिष्ट ज्ञाता था। बाबर के समय वह बदख्शाँ का सूबेदार बना और उसे हिसार-फिरोजा की जागीरें भी प्राप्त हुईं। हुमायूँ ने अपने पिता के द्वारा लड़े गए अनेक युद्धों में उनकी सहायता की थी।

हुमायूँ अपने पिता का आज्ञाकारी पुत्र और अपने भाइयों के लिए बहुत ही उदार एवं क्षमाशील भाई था। वह साहित्य और कला का विशेष प्रेमी था। वह अपना अधिकांश समय विद्वानों के साथ विचार-विमर्श करने में ही व्यतीत करता था। उसने एक पुस्तकालय का भी निर्माण करवाया और उसमें उस समय के अनेक दुर्लभ ग्रन्थों को संगृहीत कियां था। उसने शिक्षा के प्रचार हेतु दिल्ली में एक मदरसा खुलवाया और सात नक्षत्रों के नाम पर सात भवन बनवाए थे। उन सातों भवनों में सात वर्गों के लोग रहते थे। वह बड़ा दानी भी था, लेकिन अनेक अच्छे चारित्रिक गुणों के होते हुए भी उसमें दृढ़ता का अभाव था। कभी-कभी वह ढुल-मुल (शिथिल) चरित्र और साधारण व्यक्तित्व का व्यक्ति ही प्रतीत होता था। उसके चारित्रिक गुणों को निम्न सन्दर्भों में जाना जा सकता है—

हुमायूँ का चरित्र एवं मूल्यांकन

(1) परिवार-प्रेमी सम्राट
(2) वीर और साहसी
(3) सच्चा मुसलमान
(4) ज्योतिष व कर्मकाण्डों में विश्वास
(5) प्रतिभाशाली और विद्या-प्रेमी
(6) महान् उदार एवं दानी
(7) हुमायूँ के चारित्रिक दोष।

(1) परिवार-प्रेमी सम्राट—हुमायूँ अपने परिवार के प्रति अत्यधिक स्नेह रखने वाला सम्राट था। उसके भाइयों—कामरान, अस्करी, हिन्दाल ने उसे आजीवन परेशान किया। परन्तु फिर भी वह अपने भाइयों को प्रेम के वशीभूत होकर, उन्हें क्षमा करता रहा। जब उसके भाई कामरान को सरदारों ने मृत्युदण्ड का परामर्श दिया तो हुमायूँ ने कहा, "मेरी बुद्धि तो तुम्हारी बात मानती है, लेकिन मेरा हृदय नहीं मानता।" इस प्रकार वह एक दयालु और परिवार-प्रेमी शासक था।

(2) वीर और साहसी—हुमायूँ एक वीर और साहसी योद्धा था। वह युद्धों में पराजय से कभी भी विचलित नहीं होता था। उसके साहसी और धैर्यवान होने का परिचय इस तथ्य से मिलता है कि एक बार भारत से उसका साम्राज्य समाप्त हो जाने के पश्चात् उसने पुनः अपनी शक्ति का संगठन कर, भारत में मुगल वंश का शासन स्थापित कर दिया था।

(3) सच्चा मुसलमान—हुमायूँ एक सच्चा सुन्नी मुसलमान था। वह पाँचों वक्त नमाज पढ़ा करता था। उसकी पटरानी हमीदा बानो बेगम और उसका विश्वासपात्र सरदार बैरम खाँ शिया थे। हुमायूँ कट्टर इस्लाम धर्म का पोषक होते हुए भी हिन्दुओं के प्रति अमानवीय व्यवहार नहीं करता था, तथापि उसने कालिंजर के हिन्दू मन्दिरों को तुड़वाया था। अतः कट्टर मुसलमान होने के कारण वह हिन्दुओं की सहानुभूति प्राप्त नहीं कर सका था।

(4) ज्योतिष व कर्मकाण्डों में विश्वास—हुमायूँ ज्योतिष में अत्यधिक विश्वास रखता था। नक्षत्रों की गति और उनके प्रभाव में उसका पूर्ण विश्वास था। ज्योतिषशास्त्र के आधार पर उसके पदाधिकारी बारह भागों में विभक्त थे। उसने अपने सैनिकों को शनिवार को काली और मंगलवार को लाल रंग की कमीज पहनने की आज्ञा दे रखी थी। वह युद्ध आदि महत्त्वपूर्ण कार्यों का प्रारम्भ भी ज्योतिषियों के निर्देश पर ही किया करता था। इससे उसके चरित्र में दृढ़ता का अभाव हो गया था।

(5) प्रतिभाशाली और विद्या-प्रेमी—अनेक विद्वानों ने हुमायूँ को प्रतिभाशाली और साहित्य-प्रेमी बादशाह स्वीकार किया है। वह पुस्तकालय में जाकर स्वयं विभिन्न विषयों की पुस्तकों का अध्ययन किया करता था। फरिश्ता के अनुसार, **"वह बड़ा निर्भीक राजकुमार था, भूगोलशास्त्र में निपुण था और विद्वानों की संगति में उसे बड़ा आनन्द आता था।"**

(6) महान् उदार एवं दानी—हुमायूँ को एक उदार एवं दानी सम्राट के रूप में मानना न्यायोचित है। वह निर्धनों और असहायों को धन देकर उनकी सहायता करता था। उसने सदैव एक उदार शासक का परिचय दिया था। अरस्किन के अनुसार, "उसका स्वभाव दयालु, सहृदय तथा प्रेमी था। उसके आचार-विचार में विनम्रता, स्पष्टवादिता एवं आकर्षण था। वह अपने सेवकों के प्रति भी उदार था।"

(7) हुमायूँ के चारित्रिक दोष—अनेक गुण, योग्यताएँ एवं कौशल होते हुए भी, हुमायूँ में अनेक चारित्रिक दोषों का आधिक्य था। उसमें दृढ़ संकल्प का पूर्ण अभाव था तथा वह साधारण विजयों के पश्चात् भी मनोविनोद में लिप्त हो जाया करता था। उसमें दूरदर्शिता का नितान्त अभाव था। वह अत्यन्त चंचल, विचारहीन एवं परिश्रम करने में असमर्थ था। वह चापलूसी भी पसन्द करता था।

उसकी चारित्रिक दुर्बलता की ओर संकेत करते हुए लेनपूल ने ठीक ही लिखा है, **"हुमायूँ में चारित्रिक दृढ़ता की कमी थी। वह निरन्तर प्रयत्न करने में सक्षम न था तथा एक क्षण की विजय के पश्चात् ही वह हरम में चला जाता था तथा अफीम खाकर कीमती समय बरबाद करता था, जबकि उसके शत्रु दरवाजे पर खड़े होते थे।"**

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि हुमायूँ में गुणों की तुलना में अवगुण अधिक थे, इसी कारण वह जीवनपर्यन्त कठिनाइयाँ झेलता रहा और लड़खड़ाता रहा और अन्त में सीढ़ियों से लुढ़ककर ही उसकी मृत्यु हो गई।"

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—बाबर के आक्रमण के समय भारत की आर्थिक दशा का संक्षिप्त निरूपण कीजिए। *(1993)*

उत्तर—बाबर के आक्रमण से पूर्व सारा देश कई राज्यों में विभक्त था। इन राज्यों के शासकों ने अपने राज्यों की आर्थिक दशा को सुधारने के लिए कोई विशेष प्रयास नहीं किए। वे पारस्परिक युद्धों में ही अधिक संलग्न रहते थे। इन परिस्थितियों के फलस्वरूप कृषि, व्यापार और व्यवसाय की प्रगति अवरुद्ध होती चली गई। इस समय न तो इन राज्यों की प्रजा ही सम्पन्न थी और न ही राजकोषों में पर्याप्त धन था।

प्रश्न 2—बाबर के आक्रमण के समय चार महत्त्वपूर्ण राज्य कौन-कौन से थे?

उत्तर—बाबर के आक्रमण के समय चार महत्त्वपूर्ण राज्य थे—

(1) इब्राहीम लोदी द्वारा शासित दिल्ली का राज्य।

(2) महमूद द्वितीय द्वारा शासित मालवा का राज्य।

(3) राणा साँगा के अधीन मेवाड़ का राज्य।

(4) दौलत खाँ लोदी के अधीन पंजाब का राज्य।

प्रश्न 3—बाबर की भारत विजयों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

अथवा **बाबर की दो भारतीय विजयों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।** *(1996)*

उत्तर—बाबर एक महान् विजेता था। उसने भारत में निम्नलिखित राज्यों को जीता—

(1) दिल्ली साम्राज्य की विजय—बाबर ने 1526 ई० में पानीपत के मैदान में दिल्ली के शासक इब्राहीम लोदी को परास्त कर दिया। इब्राहीम वहीं मारा गया और बाबर ने दिल्ली साम्राज्य पर अधिकार कर लिया।

(2) बयाना की विजय—बाबर ने बयाना के शासक निजाम खाँ को अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया। निजाम खाँ ने बाबर को 20 लाख रुपये प्रतिवर्ष देने का वचन दिया।

(3) खानवा की विजय—बाबर ने 1527 ई० में मेवाड़ के शासक राणा साँगा को खानवा के मैदान में पराजित किया।

(4) चन्देरी पर विजय—सन् 1528 ई० में बाबर ने चन्देरी के मेदनीराय को पराजित कर चन्देरी पर भी अपना अधिकार कर लिया।

प्रश्न 4—सिंहासन पर बैठते समय हुमायूँ की चार प्रमुख कठिनाइयाँ कौन-कौन-सी थीं? *(1990)*

उत्तर—सिंहासन पर बैठते समय हुमायूँ की चार प्रमुख कठिनाइयाँ निम्नलिखित थीं—

(1) असंगठित साम्राज्य—हुमायूँ के पिता बाबर ने उसके लिए एक विशाल, परन्तु असंगठित साम्राज्य छोड़ा था। अतः उसका गठन करना हुमायूँ की प्रमुख समस्या थी।

(2) भाइयों से संघर्ष—बाबर की मृत्यु के पश्चात् सिंहासन के लिए हुमायूँ को जीवनपर्यन्त अपने भाइयों से संघर्ष करना पड़ा था।

(3) रिक्त राजकोष—बाबर ने अनेक विजयें प्राप्त करने में बहुत अधिक धन का अपव्यय करके राजकोष को रिक्त कर दिया था, जिससे हुमायूँ को शासन का संचालन करने में कठिनाई उठानी पड़ी।

(4) अफगानों के आक्रमण—हुमायूँ के शासनकाल में भी अफगान सरदार अपनी स्वतन्त्र सत्ता की स्थापना को तत्पर थे। अतः हुमायूँ को उनसे सदैव संघर्ष करना पड़ा।

प्रश्न 5—'हुमायूँ स्वयं अपना शत्रु था।' स्पष्ट कीजिए।

उत्तर—हुमायूँ एक विलासी तथा अदूरदर्शी सम्राट था। अतः अपनी असफलताओं के लिए वह स्वयं भी उत्तरदायी था। लेनपूल के शब्दों में, **"हुमायूँ जमकर काम करने वाला व्यक्ति नहीं था। क्षणिक विजयोल्लास में ही वह अन्तःपुर की विलासिता में डूब जाता था।"** उसका चरित्र प्रभावहीन और अनेक दोषों से युक्त था। शासक के रूप में वह नितान्त असफल रहा। **डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव** के शब्दों में, **"उसका स्वभाव ही उसकी असफलताओं का प्रमुख कारण था।"** अतः हुमायूँ के सम्बन्ध में यह कथन सत्य ही है कि हुमायूँ स्वयं अपना शत्रु था।

प्रश्न 6—शेरखाँ (शेरशाह) के विरुद्ध हुमायूँ की असफलता के कारण संक्षेप में लिखिए। *(1990)*

अथवा **हुमायूँ की असफलता के दो मुख्य कारण बताइए।** *(1993, 95, 97)*

उत्तर—बाबर द्वारा प्राप्त विशाल साम्राज्य को हुमायूँ ने शेरखाँ के साथ हुए चौसा व कन्नौज के युद्ध में असफल होकर खो दिया और उसे दर-दर की ठोकरें खानी पड़ीं। उसकी असफलता और पराजय निम्न कारणों पर आधारित थी—

(i) साम्राज्य का विभाजन, (ii) भाइयों का असहयोग, (iii) शेरशाह व बहादुरशाह का संयुक्त मुकाबला, (iv) समय का दुरुपयोग, (v) धन का अभाव, (vi) भाग्य की प्रतिकूलता, (vii) शेरशाह की योग्यता।

प्रश्न 7—इब्राहीम लोदी तथा राणा संग्रामसिंह की हार के दो-दो प्रमुख कारणों का उल्लेख कीजिए। *(1999)*

उत्तर—इब्राहीम लोदी तथा राणा संग्रामसिंह के हार के दो-दो प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

(1) पानीपत के प्रथम युद्ध में इब्राहीम लोदी की हार उसके अयोग्य सैन्य संचालन के कारण हुई थी।

(2) इस युद्ध में अनेक अफगानों ने लोदी का साथ न देकर उसकी पराजय को सुनिश्चित कर दिया था।

(3) मुगलों का धार्मिक जोश राणा संग्रामसिंह की हार का प्रमुख कारण था।

(4) बाबर की तुलुगमा युद्धप्रणाली ने भी राजपूती सेना को विचलित कर दिया था।

ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों एवं व्यक्तियों पर आधारित प्रश्न

प्रश्न 1—निम्नलिखित तिथियों के ऐतिहासिक महत्त्व पर टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) 1483 ई० *(1994)*—इस तिथि को मुगल वंश के संस्थापक एवं मध्य एशिया के महान् विजेता जहीरुद्दीन बाबर का फरगना में जन्म हुआ था।

(2) 1504 ई० *(1992)*—इस तिथि को बाबर ने बिना किसी युद्ध के काबुल पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। उसने काबुल के शासक के रूप में 1524 ई० तक राज्य किया था।

(3) 1508 ई० *(1994)*—इस तिथि को बाबर के पुत्र हुमायूँ का जन्म हुआ था।

(4) 1519 ई० *(1999)*—इस तिथि को बाबर ने भारत पर विजय प्राप्त करने के उद्देश्य से तीसरा आक्रमण किया था।

(5) 1525 ई०—इस तिथि को बाबर ने काबुल से भारत विजय के लिए प्रस्थान किया था और इसी वर्ष उसने पंजाब के सूबेदार दौलत खाँ को भी पराजित किया था।

(6) 1526 ई० *(1990, 91, 92, 93, 95, 96, 99)*—इस तिथि (21 अप्रैल, 1526 ई०) को पानीपत के मैदान में बाबर और इब्राहीम लोदी के मध्य युद्ध हुआ था, जिसमें बाबर को विजय प्राप्त हुई थी और इब्राहीम लोदी मारा गया था।

(7) 1527 ई० *(1990, 94, 95, 96, 97)*—इस तिथि (16 मार्च, 1527 ई०) को बाबर और मेवाड़ के राजा राणा साँगा के मध्य खानवा का भीषण युद्ध हुआ था। इस युद्ध में भी बाबर को विजय प्राप्त हुई थी तथा राजपूतों की शक्ति अत्यन्त क्षीण हो गई थी।

(8) 1528 ई० *(1997, 99)*—इस तिथि को बाबर ने चन्देरी के मेदनीराय को पराजित करके दोआब में अपनी स्थिति सुदृढ़ की थी।

(9) 1529 ई० *(1997)*—इस तिथि को घाघरा का युद्ध हुआ था। उस युद्ध में बाबर ने महमूद लोदी और बंगाल के शासक नुसरतशाह को पराजित किया था।

(10) 1530 ई० *(1990, 92, 93)*—इस तिथि को महान् विजेता और मुगल साम्राज्य के प्रथम शासक बाबर की मृत्यु हुई थी।

(11) 1533 ई० *(1999)*—इस तिथि को हुमायूँ ने यमुना के तट पर पुराने किले में 'दीनपंनाह' नामक नवीन नगर बसाने का शिलान्यास किया था।

(12) 1538 ई० *(1990, 95)*—इस तिथि को हुमायूँ ने गौड़ प्रदेश पर विजय प्राप्त की थी।

(13) 1539 ई० *(1990, 94, 96)*—इस तिथि (26 जून, 1539 ई०) को चौसा का युद्ध हुआ था। इस युद्ध में शेरखाँ (शेरशाह) ने हुमायूँ को पराजित करके उसे भागने के लिए बाध्य किया था।

(14) 1540 ई० *(1991, 93, 96, 99)*—इस तिथि को कन्नौज का युद्ध हुआ था। इस युद्ध में शेरशाह ने हुमायूँ को पराजित करके उसे भारत से निष्कासित कर दिया था और स्वयं दिल्ली तथा आगरा का शासक बन गया था।

(15) 1555 ई० *(1992, 96)*—इस वर्ष मच्छीवाड़ा और सरहिन्द का युद्ध हुआ था। इन युद्धों में हुमायूँ ने अफगानों के नेता सिकन्दर सूर को पराजित करके दिल्ली की राजगद्दी पुनः प्राप्त कर ली थी।

(16) 1556 ई० *(1990, 91, 93, 94, 96, 99)*—इस तिथि को अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटित हुई थीं, जिनमें हुमायूँ की मृत्यु, अकबर का राज्याभिषेक और पानीपत का दूसरा युद्ध विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

प्रश्न 2—निम्नलिखित ऐतिहासिक स्थलों पर संक्षेप में टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) बिलग्राम—यह स्थान उत्तर प्रदेश में कन्नौज के निकट स्थित है। सन् 1540 ई० में इसी स्थान पर शेरशाह ने हुमायूँ को पराजित किया था। इस पराजय के बाद 15 वर्षों तक हुमायूँ को निर्वासित जीवन व्यतीत करना पड़ा था।

(2) बयाना—यह स्थान दिल्ली और आगरा के मध्य स्थित है। मध्यकाल में बयाना एक समृद्धशाली क्षेत्र था और यहाँ के मुल्लाओं का दिल्ली के सुल्तानों पर विशेष प्रभाव रहता था। यहाँ की मसजिद दर्शनीय है।

(3) पानीपत—यह स्थान दिल्ली के निकट और वर्तमान हरियाणा राज्य में स्थित है। पानीपत का रणक्षेत्र भारतीय इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। पानीपत में क्रमशः 1526, 1556 और 1761 ई० में तीन निर्णायक युद्ध हुए हैं, जिन्होंने भारतीय इतिहास में एक नए युग का श्रीगणेश किया। यहाँ की प्रमुख दर्शनीय इमारतें—**बाबरी मसजिद, अबू अली कलन्दर की मजार, इब्राहीम लोदी की कब्र** आदि हैं।

(4) आगरा *(1992, 94, 95, 97)*—यह मध्य युग से ही देश का एक महत्त्वपूर्ण व्यापारिक और ऐतिहासिक नगर रहा है। बाबर और हुमायूँ के शासनकाल में इस नगर का विकास होना प्रारम्भ हुआ था। आगरा अनेक ऐतिहासिक स्मारकों से भरपूर है। मुगलकाल में इस नगर में अनेक भव्य तथा सुन्दर भवनों का निर्माण हुआ था। यहाँ का लाल किला, ताजमहल और जामा मसजिद दर्शनीय हैं।

(5) सम्भल—यह स्थान उत्तर प्रदेश के जिला मुरादाबाद के निकट स्थित है। मध्य युग में यह मुस्लिम सभ्यता व संस्कृति का प्रमुख केन्द्र था। यहाँ की मसजिदें दर्शनीय हैं।

प्रश्न 3—निम्नलिखित ऐतिहासिक व्यक्तियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) दौलतखाँ लोदी—दौलतखाँ लोदी एक अफगान सरदार था। इब्राहीम लोदी के शासन काल में वह पंजाब का सूबेदार था। इब्राहीम लोदी ने उसके पुत्र दिलावरखाँ के साथ क्रूरतापूर्ण व्यवहार किया था। इससे रुष्ट होकर दौलतखाँ लोदी ने इब्राहीम लोदी को नीचा दिखाने और अपने अपमान का बदला लेने के लिए काबुल के बादशाह बाबर को भारत पर आक्रमण करने के लिए आमन्त्रित किया था। दौलतखाँ ने सुल्तान के विरुद्ध विद्रोह भी किया था, लेकिन वह इब्राहीम लोदी के हाथों पराजित हुआ था।

(2) राणा साँगा *(1998)*—राणा साँगा का वास्तविक नाम संग्रामसिंह था। वह मेवाड़ के शासक रायमल का पुत्र था। वह 1508 ई० में मेवाड़ की राजगद्दी पर आसीन हुआ। वह अत्यन्त वीर, साहसी और महान् योद्धा था। उसने मालवा के महमूद खिलजी को पराजित किया और भिलसा, चन्देरी, सारंगपुर आदि प्रदेशों को जीतकर उन्हें अपने राज्य में मिला लिया था। उसने दो बार इब्राहीम लोदी की सेना का भी सामना किया था। राणा साँगा को 16 मार्च, 1527 ई० को खानवा के युद्ध में बाबर के हाथों पराजित होना पड़ा। इस युद्ध के फलस्वरूप उसकी शक्ति क्षीण हो गई और 1529 ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

(3) बहादुरशाह—गुजरात का शासक बहादुरशाह, मुजफ्फरशाह द्वितीय का पुत्र था। वह 1326 ई० में राजगद्दी पर आसीन हुआ था। वह एक वीर, युद्धप्रेमी, महत्त्वाकांक्षी और उदार शासक था। उसने अहमद नगर और माण्डू पर विजय प्राप्त की और खानदेश पर भी अपना नियन्त्रण स्थापित कर लिया। बहादुरशाह ने पुर्तगालियों का दमन भी किया था। मुगल सम्राट हुमायूँ के साथ बहादुरशाह का दीर्घकाल तक संघर्ष चला। बहादुरशाह ने हुमायूँ की अदूरदर्शिता का लाभ उठाकर रायसिन और चित्तौड़ पर अपना प्रभुत्व स्थापित करने में सफलता प्राप्त की। अन्ततः उसे हुमायूँ से पराजित होना पड़ा।

(4) कामरान—कामरान बाबर का पुत्र और हुमायूँ का भाई था। वह बड़ा महत्त्वाकांक्षी, धूर्त और चालाक था। बाबर की मृत्यु के पश्चात् वह काबुल और कन्धार का सूबेदार बना। अपनी महत्त्वाकांक्षा के कारण उसने जीवन-पर्यन्त हुमायूँ को परेशान किया और उसके समक्ष भीषण कठिनाइयाँ उत्पन्न कीं। अन्त में हुमायूँ ने उसे अन्धा करवा दिया था।

(5) गुलबदन बेगम—गुलबदन बेगम बाबर की पुत्री और हुमायूँ की बहन थी। वह एक विदुषी (विद्वान्) महिला थीं। उसने फारसी में 'हुमायूँनामा' नामक पुस्तक लिखी थी। हुमायूँनामा एक महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है, जिसमें बाबर के अन्तिम दिनों और हुमायूँ के शासनकाल की महत्त्वपूर्ण घटनाओं का विवरण दिया गया है।

(6) इब्राहीम लोदी *(1992)*—यह बाबर के आक्रमण के समय दिल्ली का शासक था। यह 1517 ई० में दिल्ली के सिंहासन पर आरूढ़ हुआ था। इब्राहीम लोदी का राज्य दिल्ली, जौनपुर, बिहार, बयाना, आगरा और चन्देरी तक विस्तृत था। बाबर के आक्रमण से पूर्व दिल्ली राज्य में चारों ओर अशान्ति का साम्राज्य था। इब्राहीम लोदी के हठधर्मी स्वभाव के कारण अनेक अफगान सरदार उससे रुष्ट थे। सन् 1526 ई० में पानीपत के प्रथम युद्ध में इसी इब्राहीम लोदी को बाबर ने परास्त करके भारत में मुगल वंश के शासन की स्थापना की थी।

2 सूर साम्राज्य (1540–1555 ई०) : शेरशाह सूरी (1540–1545 ई०)

[शेरशाह एवं उसका शासन-प्रबन्ध, साम्राज्य विस्तार, अकबर के अग्रगामी के रूप में शेरशाह का चरित्र एवं मूल्यांकन]

"शेरशाह के गद्दी पर बैठने पर उदार इस्लाम का वह युग प्रारम्भ हुआ, जो औरंगजेब की प्रतिक्रिया तक चलता रहा। शेरशाह की प्रशासन प्रतिभा का कार्य उसके वंश के साथ समाप्त नहीं हुआ, बल्कि वह सम्पूर्ण मुगलकाल तक चलता रहा।"
—कालिका रंजन कानूनगो

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—शेरशाह के साम्राज्य-विस्तार पर संक्षिप्त प्रकाश डालिए।

अथवा **शेरशाह की प्रमुख विजयों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।**

अथवा **शेरशाह द्वारा भारत में सूर सम्राज्य की स्थापना का वर्णन कीजिए।** *(1993)*

अथवा **"शेरशाह एक महान् साम्राज्य-निर्माता था।" इस कथन की विवेचना कीजिए।** *(1995)*

उत्तर—

शेरशाह का परिचय

शेरशाह का जन्म 1472 ई० या 1486 ई०[1] में हुआ था। उसके पितामह इब्राहीम और पिता हस्न 'सूर' कबीले से सम्बन्धित थे। शेरशाह का वास्तविक नाम फरीद था और जौनपुर के शासक ने फरीद को 'शेरखाँ' (शेर का वध करने वाला) की उपाधि दी थी। बाद में यही शेरखाँ शेरशाह के नाम से दिल्ली की गद्दी पर बैठा और भारत में सूर वंश की नींव डाली। शेरशाह अपनी वीरता, शौर्य और योग्यता के बल पर एक साधारण व्यक्ति से दिल्ली का सुल्तान बना था।

शेरशाह का साम्राज्य विस्तार
(शेरशाह एक महान् साम्राज्य-निर्माता के रूप में)

शेरशाह के साम्राज्य विस्तार से सम्बन्धित निम्नलिखित विजयों के आधार पर ही यह स्पष्ट होता है कि वह एक महान् साम्राज्य-निर्माता था—

(1) चुनारगढ़ विजय—चुनार का किला इस समय ताजखाँ नामक सेनापति के अधिकार में था, किन्तु कुछ कारणवश उसका अपने पुत्रों से संघर्ष हो गया तथा उसे अपना घर छोड़ना पड़ा। इसका लाभ शेरखाँ ने उठाया। उसने ताजखाँ की बेगम लाडमलिका से विवाह कर लिया। इस प्रकार, चुनार के किले पर उसका अधिकार हो गया तथा यहाँ से उसे बहुत-सा सोना, बहुमूल्य रत्न, मोती आदि प्राप्त हुए।

(2) हुमायूँ से सन्धि—हुमायूँ ने चुनार के दुर्ग को शेरखाँ से छीनने के लिए उसके विरुद्ध शाही सेना भेज दी। इसी समय गुजरात के शासक बहादुरशाह ने दिल्ली पर आक्रमण करने की योजना बनाई। अतः बहादुरशाह के आक्रमण को रोकने के कारण हुमायूँ, शेरखाँ के विरुद्ध अधिक ध्यान न दे सका। शेरखाँ ने भी अपनी सीमित शक्ति को देखकर चालाकी से काम लिया। उसने विनतीपूर्ण शब्दों में हुमायूँ से कहा कि, "मैं आपका स्वामिभक्त नौकर हूँ। दुर्ग तो आप किसी-न-किसी को देंगे ही अतएव इसे मेरे अधिकार में रहने दीजिए। अपनी स्वामिभक्ति के प्रमाण के लिए मैं अपने पुत्र कुतुबखाँ को आपकी सेवा में भेज रहा हूँ।" हुमायूँ शेरखाँ के इस व्यवहार से प्रसन्न हुआ तथा उसने चुनारगढ़ से अपनी सेनाओं को हटा लिया। लेकिन फिर भी हुमायूँ ने हिन्दूबेग को शेरखाँ के कार्यों पर दृष्टि रखने के लिए नियुक्त किया तथा शेरखाँ के कार्यों की रिपोर्ट भेजने का आदेश दिया। शेरखाँ अपनी शक्ति का विस्तार करता रहा तथा उसने

1. डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव और के० आर० कानूनगो में शेरशाह की जन्मतिथि के सम्बन्ध में भारी मतभेद हैं। अब्बास सरवानी ने 1472 ई० की तिथि का समर्थन किया है।

हिन्दूबेग को बहुमूल्य उपहार देकर अपनी ओर मिला लिया और हिन्दूबेग के द्वारा हुमायूँ को यह संदेश भिजवा दिया कि, **"वह शेरखाँ की ओर से कोई चिन्ता न करे।"**

(3) गौड़ तथा रोहतासगढ़ विजय—अब शेरखाँ ने अपनी शक्ति बढ़ाने के लिए बंगाल विजय का निश्चय किया तथा बंगाल के शासक महमूद पर आक्रमण कर दिया। सुल्तान महमूद ने गौड़ के दुर्ग में भागकर शरण ली। शेरखाँ ने गौड़ का घेरा डाल दिया। इधर हुमायूँ ने तुरन्त बंगाल की ओर से सेना भेज दी, किन्तु वह यह निश्चय नहीं कर पाया कि पहले चुनार पर विजय की जाए या गौड़ पर घेरा डाला जाए। हुमायूँ ने चुनार के किले पर अधिकार कर लिया। इसी बीच शेरखाँ ने रोहतास के किले पर अपना अधिकार कर लिया।

(4) बिहार तथा बंगाल पर अधिकार—शेरखाँ ने अपनी शक्ति के बल पर सम्पूर्ण बिहार पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। उसने अफगानों की सुरक्षा हेतु एक सेना बनाई तथा यह घोषणा की कि, **"मैं प्रत्येक अफगान को, जो सैनिक बनने से इंकार करेगा, मार डालूँगा।"** इस समय बंगाल के शासक नुसरतशाह की मृत्यु हो गई थी। उसके उत्तराधिकारी महमूद शाह ने बिहार विजय की सोची, किन्तु उसे शेरखाँ के हाथों सूरजगढ़ के युद्ध में परास्त होना पड़ा।

शेरशाह का साम्राज्य विस्तार
(1) चुनारगढ़ विजय
(2) हुमायूँ से सन्धि
(3) गौड़ तथा रोहतासगढ़ विजय
(4) बिहार तथा बंगाल पर अधिकार
(5) सूरजगढ़ का युद्ध
(6) हुमायूँ तथा शेरखाँ का संघर्ष
(7) शेरशाह की अन्य विजयें।

(5) सूरजगढ़ का युद्ध—शेरखाँ ने बंगाल के शासक को पूर्ण रूप से परास्त करने का विचार करते हुए बंगाल पर आक्रमण कर दिया। सन् 1534 ई० में सूरजगढ़ स्थान पर दोनों पक्षों में एक भयंकर युद्ध हुआ तथा बंगाल की सेना की पूर्ण पराजय हुई। इस युद्ध में शेरखाँ को बहुत-सी युद्ध-सामग्री हाथ लगी। अब बिहार के राज्य तथा कुछ अन्य प्रदेशों पर शेरखाँ का अधिकार हो गया। बंगाल के पराजित शासक महमूदशाह ने शेरखाँ को 13 लाख सोने के सिक्के भी दिए। प्रो० कानूनगो ने इस युद्ध का महत्त्व बताते हुए लिखा है, **"मध्ययुगीन भारत के इतिहास में इस युद्ध का अत्यधिक निर्णायक परिणाम हुआ। इसने शेरखाँ के जीवन को एक नई दिशा में मोड़ दिया।"** शेरखाँ ने अपने राज्य का विस्तार शुरू कर दिया तथा 1537 ई० में बंगाल के शासक महमूदशाह पर पुनः एक बार आक्रमण कर उसे हुमायूँ की शरण में जाने के लिए बाध्य किया।

(6) हुमायूँ तथा शेरखाँ का संघर्ष—शेरखाँ के विजय अभियानों से हुमायूँ चिन्तित हुआ तथा उसने बंगाल की ओर कूच कर दिया। 26 जून, 1539 ई० को चौसा नामक स्थान पर हुमायूँ व शेरखाँ के मध्य भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में पराजित होकर हुमायूँ ने नदी में कूदकर अपनी रक्षा की और एक भिश्ती ने हुमायूँ की जान बचाई। तत्पश्चात् हुमायूँ 17 मई, 1540 ई० को हुए कन्नौज के युद्ध में भी शेरशाह से बुरी तरह पराजित हुआ। इस युद्ध के उपरान्त ही शेरखाँ ने 'शेरशाह' की उपाधि धारण की। वह हुमायूँ का पीछा करते हुए आगरा तक आ गया। उसने अपने विश्वसनीय सरदारों को एक विशाल सेना के साथ हुमायूँ का पीछा करने के लिए भेजा तथा उन्हें यह आदेश दिया कि हुमायूँ को सिर्फ राज्य की सीमाओं से बाहर खदेड़ दिया जाए, उससे युद्ध न किया जाए। इस प्रकार, हुमायूँ को परास्त करके शेरशाह दिल्ली व आगरा के सिंहासन का स्वामी बन गया।

(7) शेरशाह की अन्य विजयें—भारत का सुल्तान बनने के पश्चात् भी शेरशाह ने अपने साम्राज्य विस्तार का निरन्तर प्रयास किया और अनेक महत्त्वपूर्ण सफलताएँ प्राप्त कीं। अपने साम्राज्य को स्थायी बनाने के उद्देश्य से उसने 1542 ई० में मालवा और रणथम्भौर पर अपना अधिकार कर लिया। सन् 1543 ई० में शेरशाह ने रायसिन के राजा पूरनमल को परास्त करके, रायसिन को भी अपने साम्राज्य का अंग बना लिया। सन् 1544 ई० में उसने मारवाड़ के राजा मालदेव को भी पराजित कर दिया। इसके उपरान्त, वह कालिंजर विजय के लिए आगे बढ़ा। 1545 ई० में उसे कालिंजर के राजा कीर्तिसिंह को परास्त करने में भी सफलता प्राप्त हो गई, परन्तु यह उसकी अन्तिम विजय सिद्ध हुई। इस युद्ध में ही तोप का एक गोला फट जाने से वह घायल हो गया और शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई।

शेरशाह की उपर्युक्त विजयों के आधार पर यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि **शेरशाह एक महान् साम्राज्य-निर्माता था।** उसने भारत में न केवल अपने साम्राज्य का विस्तार किया, वरन् साम्राज्य को स्थायी बनाने के उद्देश्य से भी अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किए।

प्रश्न 2—शेरशाह की शासन-व्यवस्था का वर्णन कीजिए। उसने अपनी प्रजा के कल्याण के लिए क्या किया? *(M. Imp.)*

अथवा **"शेरशाह सूरी एक लोक-हितकारी प्रशासक था।" उसके राज्य सम्बन्धी सिद्धान्तों के प्रकाश में इस कथन की समालोचना कीजिए।**

अथवा **"शेरशाह ने अपने शासन-प्रबन्ध में अंग्रेजों से भी अधिक बुद्धिमत्ता का परिचय दिया।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।**

अथवा **शेरशाह के भूमि प्रबन्ध, मुद्रा सुधार तथा सैनिक सुधारों का संक्षिप्त विश्लेषण कीजिए।** *(1991)*

अथवा **"शेरशाह एक विजेता से अधिक एक कुशल प्रशासक था।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं?**

अथवा **शेरशाह के भूमि-प्रबन्ध, मुद्रा सुधार तथा सैनिक सुधारों का उल्लेख कीजिए।**

अथवा **"शेरशाह उत्कृष्ट संगठनकर्त्ता तथा चतुर सेनानायक था।" विवेचना कीजिए।** *(1995)*

अथवा **"आर्थिक एवं सैनिक सुधारों की दृष्टि से शेरशाह की भारत के महान् शासकों में गणना की जा सकती है।"** *(1990)*

अथवा **शेरशाह के शासन-प्रबन्ध की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।** *(1995)*

अथवा **"शेरशाह एक उत्कृष्ट प्रशासनिक व्यवस्था का निर्माता था।" समझाइए।** *(1996)*

अथवा **शेरशाह सूरी के शासन-प्रबन्ध की व्याख्या कीजिए।** *(1997)*

अथवा **"शेरशाह एक महान् साम्राज्य-निर्माता था।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।** *(1997)*

अथवा **शेरशाह के प्रशासन के प्रमुख तत्त्वों का परीक्षण कीजिए।** *(1997)*

उत्तर—

शेरशाह

शेरशाह की गणना मध्यकालीन इतिहास के महान् शासकों में की जाती है। वह एक महान् विजेता और कुशल शासन प्रबन्धक था। डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव ने उसकी महानता के सम्बन्ध में लिखा है, "मनुष्यों के नेता के रूप में, संस्थाओं के निर्माता के रूप में, एक प्रशासक के रूप में तथा एक राजनीतिज्ञ के रूप में शेरशाह अपने पूर्ववर्ती शासकों में अग्रणी स्थान रखता है।" इसी प्रकार, कीन्स ने उसकी शासन-व्यवस्था की प्रशंसा में लिखा है, "शासन प्रबन्ध में ब्रिटिश सरकार ने भी इतनी बुद्धिमत्ता का परिचय नहीं दिया जितना कि इस पठान शासक ने।"

शेरशाह एक ऐसा शासक था जिसने स्वयं अपना साम्राज्य निर्मित किया था। वस्तुतः उसमें व्यावहारिक बुद्धि एवं कर्मशीलता के गुणों का अद्भुत समन्वय था। उसकी उपलब्धियों के प्रकाश में डॉ० रमाशंकर त्रिपाठी ने ठीक ही लिखा है, "शेरशाह इतिहास के उन महान् पुरुषों में से है, जो धूल से एकाएक पुष्पित और सम्मानित हुए और अपनी योग्यता, अपने साहस, अपनी कार्यकुशलता व सूझ तथा तलवार के बल पर ऊँचे उठ गए।"

उसकी सफलताओं एवं आदर्शों को देखकर ही यह कहा जाता है कि अकबर ने भी उससे अपने प्रशासन के लिए प्रेरणा ली थी। इस प्रकार शेरशाह सूरी, अकबर का पथ-प्रदर्शक अथवा उसका अग्रगामी रहा था।

शेरशाह का शासन-प्रबन्ध

शेरशाह के शासन-प्रबन्ध सम्बन्धी सिद्धान्त—शेरशाह का शासन-प्रबन्ध कुछ निश्चित सिद्धान्तों पर आधारित था। उसके राज्य सम्बन्धी सिद्धान्त निम्नलिखित थे—

(1) सम्पूर्ण साम्राज्य में एक समान शासन-व्यवस्था स्थापित करना।

(2) शासन में धार्मिक सहिष्णुता का वातावरण उत्पन्न करना।

(3) शासक के रूप में उसने स्वयं को न्यायप्रिय, उदार, शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित करने वाला, राजकीय आय का सदुपयोग करने वाला और सच्चा लोक-हितकारी सुल्तान सिद्ध करने का प्रयास किया था।

(4) शेरशाह का यह भी विचार था कि शासक को प्रजा का पालक होना चाहिए और उसे जनहित के कार्यों में निरन्तर संलग्न रहना चाहिए।
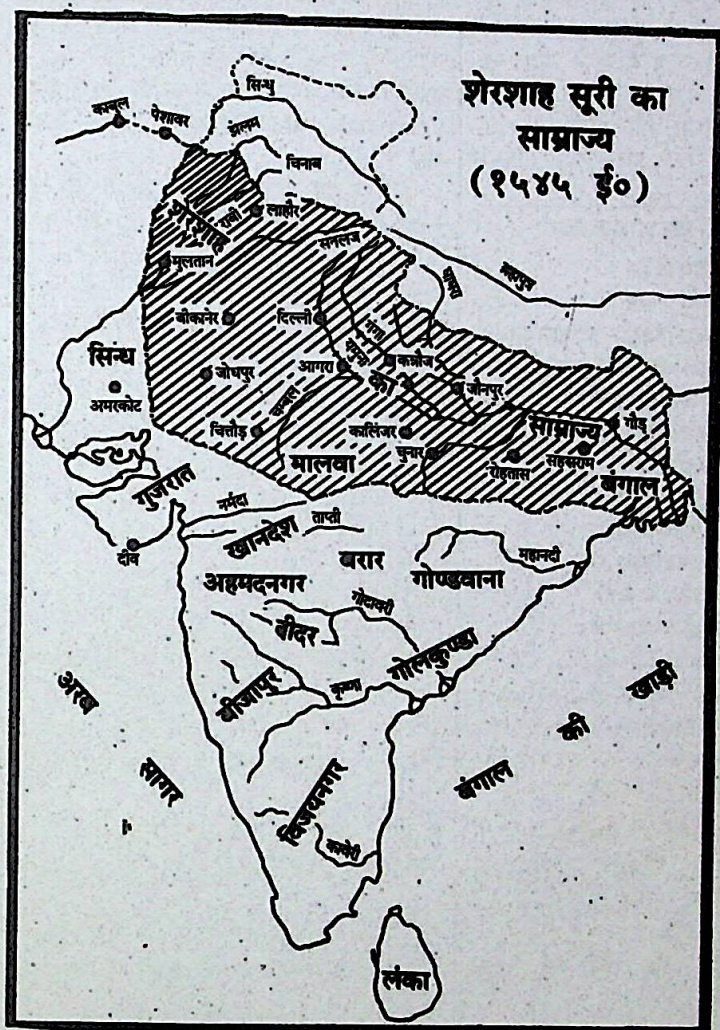
मानचित्र—शेरशाह सूरी का साम्राज्य (1545 ई०)।

(5) शासक को राज्य की कृषि एवं व्यापार की उन्नति के लिए प्रयत्न करना चाहिए।

(6) शासन-व्यवस्था में सुल्तान को अपने कर्मचारियों एवं जागीरदारों पर कठोर नियन्त्रण रखना चाहिए।

(7) शासन में भ्रष्ट अधिकारियों के लिए कठोर दण्ड की व्यवस्था होनी चाहिए।

शेरशाह के उपर्युक्त सिद्धान्त केवल वैचारिक स्तर तक ही सीमित नहीं थे, वरन् वह इन उपयोगी सिद्धान्तों का बहुत सावधानी से पालन भी करता था।

(1) केन्द्रीय शासन—शेरशाह का केन्द्रीय शासन अत्यन्त उत्तम श्रेणी का था। वह एक निरंकुश और स्वेच्छाचारी शासक के रूप में शासन का केन्द्र-बिन्दु था। शासन की समस्त शक्तियाँ सम्राट में ही

निहित रहती थीं। वह अपने को ईश्वर का प्रतिनिधि मानता था। वह अपने राज्य में उच्च पदों पर पदाधिकारियों को स्वयं नियुक्त करता था। वही प्रधान न्यायाधीश एवं प्रधान सेनापति था। उसकी आज्ञा ही कानून होती थी। यद्यपि वह एक निरंकुश शासक अवश्य था, किन्तु अत्याचारी सम्राट नहीं था।

प्रशासकीय कार्यों में सम्राट को सहयोग देने के लिए एक मन्त्रि-परिषद् होती थी। केन्द्रीय मन्त्रि-परिषद् के मुख्यमन्त्री—(i) दीवाने-वज़ारत (लगान और अर्थव्यवस्था अधिकारी), (ii) दीवाने आरिज (सेना के प्रशासन और प्रबन्ध का अधिकारी), (iii) दीवाने रसालत (विदेश मन्त्री), (iv) दीवाने इंशा (प्रशासन का रिकार्ड रखने वाला अधिकारी) आदि थे।

शेरशाह का शासन-प्रबन्ध

(1) केन्द्रीय शासन
(2) प्रान्तीय शासन
(3) सरकार (जिला) का प्रशासन
(4) परगनों का शासन-प्रबन्ध
(5) गाँव का शासन-प्रबन्ध
(6) भूमि-प्रबन्ध
(7) सैन्य संगठन
(8) गुप्तचर व्यवस्था
(9) पुलिस व्यवस्था
(10) न्याय व्यवस्था
(11) लोकहित के कार्य
(12) मुद्रा सम्बन्धी कार्य।

(2) प्रान्तीय शासन—शेरशाह के प्रान्तीय शासन के विषय में सभी विद्वान् एकमत नहीं हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार उसका सम्पूर्ण राज्य 12 प्रान्तों, तो कुछ के अनुसार 17 प्रान्तों में बँटा हुआ था। इतना सुनिश्चित है कि उसका राज्य अनेक प्रान्तों (सूबा या इक्ता) में बँटा हुआ था और प्रत्येक प्रान्त का एक अधिकारी होता था, जो अमीर या फौजदार कहलाता था। राजा का प्रान्तों पर भी कठोर नियन्त्रण रहता था। प्रान्त के अधिकारी अपने कार्यों के लिए राजा के प्रति उत्तरदायी होते थे।

(3) सरकार (जिला) का प्रशासन—प्रत्येक प्रान्त सरकारों (जिलों) में बँटा होता था। सरकार के दो प्रमुख अधिकारी **शिकदार-ए-शिकदारान** और **मुन्सिफ-ए-मुन्सिफान** होते थे। शिकदारे-शिकदारान (प्रधान शिकदार) का प्रमुख कार्य सरकार (जिले) में शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित करना और आन्तरिक विद्रोहों को दबाना होता था। मुन्सिफ न्याय सम्बन्धी कार्यों को सम्पन्न करता था। जिले (सरकार) में इन दोनों अधिकारियों को परगने के अधिकारियों का निरीक्षण करने का भी अधिकार प्राप्त होता था, परन्तु इन अधिकारियों की सहायता के लिए अनेक सहायक अधिकारी होते थे।

(4) परगनों का शासन-प्रबन्ध—शेरशाह के समय में प्रत्येक सरकार (जिला) कई परगनों में विभाजित था। परगनों का शासन-प्रबन्ध **शिकदार, अमीन, पोतदार** (खजांची) तथा **कारकुन** (लिपिक) के द्वारा होता था।

(5) गाँव का शासन-प्रबन्ध—गाँव का शासन-प्रबन्ध ग्राम पंचायतें करती थीं। प्रत्येक गाँव में **पटवारी, मुकद्दम, चौकीदार** इत्यादि राजकीय कर्मचारी होते थे। ग्राम की अपनी पंचायत होती थी, जो ग्राम में शिक्षा, सफाई, सुरक्षा, न्याय आदि का कार्य करती थी।

(6) भूमि-प्रबन्ध—शेरशाह से पहले भूमि-प्रबन्ध में अनेक दोष व्याप्त थे। अतः शेरशाह ने इन दोषों को दूर करके, अपनी नई भूमि व्यवस्था का प्रारम्भ किया था। ये सुधार एवं व्यवस्थाएँ इस प्रकार थीं—

(i) सर्वप्रथम, उसने राज्य की सम्पूर्ण भूमि सिकन्दरी गज का प्रयोग करके नपवाई। फिर भूमि की तीन श्रेणियाँ (उत्तम, मध्यम और निम्न) निश्चित कीं। भूमि-कर लेने की तीन प्रणालियाँ भी निश्चित की गईं।

तीन प्रकार के कर—(क) फसल के अनुसार लगान। (ख) लगान आदि की व्यवस्था करने वाले अधिकारियों के वेतन के लिए जरीबाना एवं महासीलाना के रूप में कर देना। (ग) पैदावार का $2\frac{1}{2}\%$ अकाल, बाढ़ आदि संकटकालीन परिस्थितियों हेतु गल्लाघरों में जमा करना।

(ii) शेरशाह किसानों पर उपज और भूमि की श्रेणी के अनुसार भूमि-कर लगाता था।

(iii) शेरशाह ने किसानों को भूमि के पट्टे दिलवाकर उन्हें भूमि का स्थायी स्वामी बना दिया। इससे जमींदारी प्रथा सम्बन्धी दोष समाप्त हो गए।

(iv) शेरशाह ने किसानों की सुविधा के लिए नकद और अनाज, दोनों ही रूपों में भूमि-कर लेने की व्यवस्था की। शीघ्र नष्ट होने वाली वस्तुओं का लगान सिक्कों (मुद्रा) के रूप में ही देना पड़ता था।

(v) शेरशाह कर एकत्र करने वाले कर्मचारियों पर कठोर नियन्त्रण रखता था और भ्रष्ट कर्मचारियों को कठोर दण्ड देता था।

(vi) शेरशाह के सैनिक अभियान के समय, किसानों की फसल को किसी भी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाई जा सकती थी।

इसके अतिरिक्त, यदि किसानों की फसल नष्ट हो जाती थी, तो शेरशाह उन्हें भूमि-कर से मुक्त कर देता था तथा उन्हें आर्थिक सहायता प्रदान करता था।

(7) सैन्य संगठन—शेरशाह का राज्य विस्तार सैनिक शक्ति पर आधारित था। अतः उसने एक विशाल एवं संगठित सेना की व्यवस्था की। उसका सैन्य संगठन और सैन्य प्रबन्ध इस प्रकार था—

(i) शेरशाह की सेना में 1 लाख 50 हजार अश्वारोही थे, जो प्रत्येक क्षण अस्त्र-शस्त्रों से सुसज्जित रहते थे। उसकी सेना में उच्च कोटि की गज-सेना तथा तोपखाना भी था।

(ii) शेरशाह की सम्पूर्ण सेना दो भागों—फौज और शाही सेना—में विभक्त थी। पहली सेना प्रान्तों और दूसरी सेना केन्द्र में सुल्तान के नियन्त्रण में रहती थी।

(iii) शेरशाह ने सैनिकों का हुलिया लिखने की व्यवस्था भी की, जिससे सैनिकों में युद्धकाल में किसी प्रकार की अव्यवस्था न हो। साथ ही घोड़े दागने की व्यवस्था भी की गई थी।

(iv) वह सैनिकों की नियुक्ति एवं निरीक्षण स्वयं ही किया करता था।

(v) सैनिकों को निश्चित वेतन नकद देने की व्यवस्था थी। यह व्यवस्था बहुत उपयोगी सिद्ध हुई थी।

(8) गुप्तचर व्यवस्था—शेरशाह ने अपने राज्य में एक संगठित गुप्तचर विभाग की स्थापना की थी। गुप्तचरों का कार्य राज्य में घूम-घूमकर छोटी-से-छोटी घटना की सूचना राजा तक पहुँचाना होता था। जो गुप्तचर सही समय पर सूचना नहीं देता था, उसे राज्य की ओर से दण्डित किया जाता था।

(9) पुलिस व्यवस्था—शेरशाह की पुलिस व्यवस्था भी अत्यन्त प्रशंसनीय थी। राज्य में पृथक् रूप से पुलिस विभाग नहीं था, वरन् सैनिक अधिकारी ही अपने क्षेत्रों में शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित करते थे और चोर-लुटेरों से जनता के जान-माल की रक्षा करते थे। गाँव के चौधरी या मुकद्दम को ही चोर या हत्यारों का पता लगाना होता था, वरना चौधरी या मुकद्दम को ही चोरी की क्षतिपूर्ति करनी पड़ती थी। हत्यारे का पता न चलने पर उसे ही मृत्युदण्ड दे दिया जाता था। शेरशाह की इस सैनिक व्यवस्था से समाज का वातावरण शान्तिमय रहता था।

(10) न्याय व्यवस्था—शेरशाह एक न्यायप्रिय शासक था। उसने अपने राज्य में दीवानी एवं फौजदारी के न्यायालयों की स्थापना की थी। अपराधियों को कठोर दण्ड दिया जाता था। उसकी कठोर दण्ड नीति की प्रशंसा में निजामुद्दीन अहमद ने अपनी पुस्तक 'तवकाते अकबरी' में लिखा है—**"शेरशाह का भय और उसकी न्यायप्रियता इतनी अधिक थी कि उसके शासनकाल में डाकू और चोर ही व्यापारियों की वस्तुओं पर निगरानी रखते थे।"**

(11) लोकहित के कार्य—शेरशाह एक प्रजापालक शासक था। उसने प्रजा की सुख-सुविधा के लिए अनेक लोकहितकारी कार्य किए, जो निम्न प्रकार हैं—

(i) सड़कों का निर्माण—शेरशाह ने यात्रियों की सुविधा के लिए अनेक सड़कों का निर्माण करवाया और सड़कों के दोनों ओर यात्रियों के विश्राम हेतु छायादार वृक्ष लगवाए।

उसके द्वारा निर्मित कराई गई सड़कों में ग्रांड ट्रंक रोड (G. T. Road) प्रमुख है। यह पेशावर से कलकत्ता तक जाती है। इसके अतिरिक्त, मुल्तान से लाहौर तक, आगरा से जोधपुर और अजमेर तक तथा आगरा से बुरहानपुर तक की सड़कें भी शेरशाह ने ही बनवाई थीं। इन सड़कों के महत्त्व को स्पष्ट करते हुए डॉ० परमात्मा सरन ने लिखा है, **"इन सड़कों का सबसे महत्त्वपूर्ण लाभ यह हुआ कि लोगों में एकता की भावना प्रबल हुई, जिससे राष्ट्र-निर्माण के कार्य को प्रोत्साहन मिला।"**

(ii) सरायों का निर्माण—शेरशाह ने यात्रियों के ठहरने एवं विश्राम करने के लिए दो-दो किलोमीटर की दूरी पर सड़कों के किनारे सरायों का निर्माण करवाया था। ये सराएँ आधुनिक डाकबंगलों से भी अधिक उपयोगी व महत्त्वपूर्ण थीं। सरकारी अधिकारियों के अतिरिक्त अनेक कमरों से युक्त इन सरायों में हिन्दू और मुसलमान, दोनों ही बिना किसी भेदभाव के ठहर सकते थे। डॉ० कानूनगो ने इन सरायों को **'राज्य की धमनियाँ'** कहा है।

शेरशाह द्वारा लोकहित के कार्य
- (i) सड़कों का निर्माण
- (ii) सरायों का निर्माण
- (iii) भवन-निर्माण
- (iv) डाक-व्यवस्था।

(iii) भवन-निर्माण—उसने अनेक भोजनालयों, चिकित्सालयों एवं मदरसों के भवनों का निर्माण करवाया था। इनके अतिरिक्त उसने अनेक भवनों और मकबरों का भी निर्माण करवाया था।

(iv) डाक-व्यवस्था—उसने डाक-विभाग की ऐसी व्यवस्था की थी जिससे कम-से-कम समय में समाचार प्राप्त हो सकें। उसने डाक-चौकियों का स्थान-स्थान पर प्रबन्ध किया। सरायों से भी डाक चौकियों का कार्य लिया जाता था। इन चौकियों से घुड़सवारों और पैदल व्यक्तियों द्वारा डाक लाई और ले जाई जाती थी।

(12) मुद्रा सम्बन्धी कार्य—शेरशाह ने मुद्रा सम्बन्धी निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण कार्य किए—

(i) उसने अनेक मिश्रित धातु के सिक्कों का प्रचलन बन्द करके विशुद्ध धातु के सिक्के चलवाए।

(ii) शेरशाह ने 23 नई टकसालों का निर्माण करवाया।

(iii) उसने कम मूल्य के सिक्के भी चलवाए।

(iv) शेरशाह द्वारा प्रचलित किए गए चाँदी के रुपये का भार 178 ग्रेन तथा ताँबे के रुपये का भार 330 ग्रेन था।

शेरशाह के इन कार्यों के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि शेरशाह न केवल एक विजेता था, वरन् उससे कहीं अधिक वह एक प्रजा-हितकारी एवं महान् शासक भी था। शेरशाह की स्थायी कीर्ति का आधार उसकी विजयें नहीं, वरन् उच्चकोटि का शासन-प्रबन्ध ही था। इसी कारण शेरशाह के सम्बन्ध में यह कहा जाता है कि, **"शेरशाह एक विजेता से अधिक कुशल प्रशासक था।"** अथवा **"शेरशाह सूरी एक लोक-हितकारी प्रशासक था।"** वस्तुतः आर्थिक और सैनिक सुधारों की दृष्टि से शेरशाह की गणना भारत के महान् सम्राटों में की जा सकती है।

प्रश्न 3—"शेरशाह अकबर का अग्रगामी था।" व्याख्या कीजिए।

अथवा **"शेरशाह की गणना मध्यकालीन भारत के महान् सम्राटों में की जाती है।" इस कथन की पुष्टि कीजिए।** ***(V. Imp.)(1994, 95)***

अथवा **"मध्यकालीन भारत के इतिहास में शेरशाह का वास्तव में एक प्रभावशाली व्यक्तित्व था।" शेरशाह की उपलब्धियों की समीक्षा करते हुए इस कथन की सार्थकता सिद्ध कीजिए।** ***(1992)***

अथवा **शेरशाह के चरित्र एवं उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिए।** ***(1993)***

अथवा **शेरशाह सूरी के व्यक्तित्व एवं उसकी विजयों का वर्णन कीजिए।** ***(1997)***

अथवा **"शेरशाह की गणना मध्यकाल के महान् शासकों में की जाती है।" इस कथन का विश्लेषण कीजिए।** ***(1997)***

उत्तर—

शेरशाह : अकबर का अग्रगामी

अधिकांश विद्वानों का यह मत है कि अकबर के गौरवशाली शासनकाल का मार्ग सूर-वंश के संस्थापक सुल्तान शेरशाह ने ही निर्धारित किया था। शेरशाह ने जिन प्रशासनिक संस्थाओं की स्थापना की, उन्हें ही आगे चलकर अकबर ने पल्लवित एवं पुष्पित किया। इसलिए शेरशाह को उसका अग्रगामी कहा जाता है। अकबर की शासन-व्यवस्था अधिक सुदृढ़ एवं स्थायी सिद्ध हुई। इसका श्रेय भी शेरशाह सूरी को ही जाता है, क्योंकि शेरशाह ने विभिन्न जटिल परिस्थितियों में स्वयं अपने विवेक के आधार पर प्रशासनिक व्यवस्था से सम्बन्धित नवीन प्रयोग किए थे, जबकि अकबर को अपने साम्राज्य की

शासन-व्यवस्था हेतु पूर्व-निर्मित पृष्ठभूमि मिल गई थी, जिसे शेरशाह ने निर्मित किया था। निम्नलिखित विवरण के आधार पर, यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि शेरशाह अकबर का अग्रगामी था—

(1) भूमि-कर प्रबन्ध—भूमि-कर के सम्बन्ध में अकबर निश्चय ही शेरशाह का ऋणी था। अकबर ने शेरशाह के भूमि-कर सम्बन्धी सुधारों से ही लाभ उठाया था। अकबर की मन्त्रि-परिषद् भी शेरशाह की मन्त्रि-परिषद् के ही अनुरूप थी। शेरशाह का विश्व के अन्य शासकों से तुलनात्मक महत्त्व बताते हुए डॉ० एस० आर० शर्मा ने लिखा है, **"यदि हम शेरशाह की तुलना सामन्तों के प्रति व्यवहार में हेनरी सप्तम से और सैनिक संगठन तथा प्रशासन की ओर अधिक ध्यान देने में फ्रेड्रिक विलियम प्रथम से, व्यावहारिक दृष्टिकोण तथा सिद्धान्तों में कौटिल्य और मैकियावली से और उदारता तथा प्रजा के शुभचिन्तन में सम्राट अशोक से करें, तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।"**

(2) उदारता एवं निष्पक्ष न्यायप्रियता—वास्तव में, शेरशाह ने जिस उदारता एवं निष्पक्ष बुद्धिमत्ता का परिचय दिया था, उसका उदाहरण अकबर से पूर्व किसी शासक ने प्रस्तुत नहीं किया था। शेरशाह ने स्वयं ही अपनी शक्ति और बुद्धि-बल के आधार पर अपने साम्राज्य का निर्माण किया था।

(3) धार्मिक सहिष्णुता—अकबर की प्रसिद्धि का एक कारण उसकी हिन्दुओं के प्रति उदार नीति थी और यह नीति भी उसने शेरशाह सूरी से ग्रहण की थी। शेरशाह ने कट्टर मुसलमान होते हुए भी हिन्दुओं के साथ उदारता का व्यवहार किया और उन्हें राज्य के उच्च पदों पर नियुक्त किया। ब्रह्मजीत गौड़ उसका प्रधान सेनापति था। इसमें सन्देह नहीं कि वह जजियाकर को समाप्त नहीं कर सका, किन्तु शेष बातों में उसका व्यवहार हिन्दुओं के प्रति न्यायपूर्ण और पक्षपातरहित था। सम्राट अकबर ने भी इन्हीं आदर्शों का अनुकरण किया था।

शेरशाह : अकबर का अग्रगामी

(1) भूमि-कर प्रबन्ध
(2) उदारता एवं निष्पक्ष न्यायप्रियता
(3) धार्मिक सहिष्णुता
(4) सैनिक प्रबन्ध।

(4) सैनिक प्रबन्ध—अकबर का सैनिक प्रबन्ध भी शेरशाह के सैनिक प्रबन्ध की ही भाँति था। घोड़ों को दागने तथा सवारों की पहचान लेखबद्ध करने की रीति, जो अकबर ने अपनाई थी, वह शेरशाह द्वारा ही प्रचलित की गई रीति थी।

अरस्किन के अनुसार, **"शेरशाह को प्रजा के संरक्षण का जितना अधिक ध्यान था, उतना अकबर के पहले अन्य किसी भी शासक को नहीं था।"**

शेरशाह के चरित्र एवं उपलब्धियों का मूल्यांकन

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि अकबर शेरशाह का ऋणी अवश्य था। शेरशाह द्वारा स्थापित प्रशासनिक व्यवस्था के आधार पर अपनी शासन-व्यवस्था स्थापित करके ही अकबर महान् मुगल बादशाह बन सका था। वास्तव में, शेरशाह की गणना मध्यकालीन भारत के महान् सम्राटों में की जाती है।

डॉ० विलियम क्रुक के अनुसार, **"शेरशाह प्रथम मुस्लिम शासक था, जिसने भारतीय साम्राज्य को जनता की इच्छा पर आधारित करने का प्रयास किया था।"**

डॉ० कानूनगो के अनुसार, **"वह अपनी प्रजा के लिए पितातुल्य था।"**

डॉ० कानूनगो ने एक अन्य स्थान पर यह भी लिखा है कि, **"शेरशाह अकबर के समान ही एक राष्ट्रीय शासक था, जिसने भारतीय राष्ट्रीयता के आधार पर साम्राज्य की स्थापना की थी।"**

(नोट—शेरशाह की विजयों के लिए दीर्घ उत्तरीय प्रश्न संख्या 1 का अवलोकन कीजिए।)

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—शेरशाह की प्रमुख विजयों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उत्तर—शेरशाह एक महान् विजेता और कुशल सेनानायक था। चार वर्ष के अल्प समय में उसने निम्नलिखित विजयें प्राप्त की थीं—

(1) मालवा—सन् 1542 ई० में शेरशाह ने मालवा के मल्लू खाँ को पराजित करके उस पर अधिकार कर लिया था।

(2) रणथम्भौर—शेरशाह ने रणथम्भौर दुर्ग पर आक्रमण करके वहाँ के शासक उस्मान खाँ को अपनी अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया था।

(3) रायसिन—सन् 1543 ई० में शेरशाह ने कूटनीति से रायसिन के राजा पूरनमल को पराजित करने में सफलता प्राप्त की थी।

(4) मारवाड़ विजय—सन् 1544 ई० में शेरशाह ने मारवाड़ (जोधपुर) के राजा मालदेव को पराजित किया था।

(5) कालिंजर विजय—सन् 1545 ई० में शेरशाह ने कालिंजर के राजा कीर्तिसिंह को पराजित किया। यह उसकी अन्तिम विजय थी, क्योंकि इसी युद्ध के दौरान तोप का गोला फटने से वह घायल हो गया था, और मृत्यु को प्राप्त हुआ था।

प्रश्न 2—शेरशाह की सफलता के चार कारण लिखिए।

उत्तर—शेरशाह की सफलता के चार कारण निम्नलिखित थे—

(1) शेरशाह एक कुशल योद्धा एवं सैनिक था।

(2) शेरशाह एक चतुर, बुद्धिमान और कुशल कूटनीतिज्ञ सेनानायक था, तभी चौसा और कन्नौज के युद्धों में हुमायूँ को हराकर उसने विजय प्राप्त की।

(3) शेरशाह अत्यन्त परिश्रमी तथा दूरदर्शी था।

(4) शेरशाह समयानुकूल नीतियों का पालन करते हुए कूटनीति का मार्ग भी अपना लेता था।

प्रश्न 3—शेरशाह सूरी के आर्थिक प्रशासन की किन्हीं दो विशेषताओं पर लघु टिप्पणी लिखिए। *(1990)*

अथवा **शेरशाह द्वारा व्यवहृत स्थानीय शासन-व्यवस्था का उल्लेख कीजिए।** *(1991)*

अथवा **शेरशाह सूरी के शासन-प्रबन्ध की दो प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।** *(1999)*

उत्तर—इसके लिए दीर्घ उत्तरीय प्रश्न संख्या 2 का उत्तर देखिए।

प्रश्न 4—शेरशाह को राष्ट्रीय सम्राट कहना कहाँ तक उचित है? *(1992)*

उत्तर—शेरशाह एक कुशल प्रशासक, धर्म-निरपेक्ष और उदार हृदय वाला सम्राट था। उसने जिस नवीन प्रशासनिक व्यवस्था की योजना बनाई, उसे समान रूप से, बिना किसी भेदभाव के सारे देश में क्रियान्वित किया। उसने अपनी अर्थव्यवस्था में भी निष्पक्ष बुद्धि का परिचय दिया। करों के निर्धारण अथवा जन-कल्याण से सम्बन्धित कार्यों में किसी भी प्रकार का भेदभाव नहीं किया गया था। न्याय अथवा नियुक्ति के मामलों में भी वह पूर्णतः पक्षपातरहित था। अतः इन आधारों पर उसे निश्चय ही राष्ट्रीय सम्राट कहा जा सकता है।

प्रश्न 5—जन-कल्याण हेतु शेरशाह द्वारा किए गए प्रशासनिक उपायों का उल्लेख कीजिए। *(1995)*

उत्तर—शेरशाह द्वारा जन-कल्याण हेतु निम्न प्रशासनिक कार्य किए गए—

(1) शेरशाह ने अपने राज्य में यात्रियों के आवागमन की सुविधा के लिए अनेक सड़कों का निर्माण करवाया और सड़कों के दोनों ओर यात्रियों के विश्राम हेतु छायादार वृक्ष भी लगवाए। उसके द्वारा निर्मित सड़कों में चार सड़कें विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं—(1) ग्राण्ड ट्रंक रोड (G. T. Road), (2) दूसरी लम्बी सड़क मुल्तान से लाहौर तक, (3) तीसरी, आगरा से बयाना तक, और (4) चौथी, आगरा से जोधपुर (चित्तौड़) तक।

(2) उसने इन लम्बी सड़कों के किनारे थोड़ी-थोड़ी दूरी पर सरायों की व्यवस्था की, जहाँ हिन्दू एवं मुसलमानों के लिए अलग-अलग प्रकार के भोजन की व्यवस्था रहती थी। राज्य में लगभग 1700 सराएँ थीं।

(3) इनके अतिरिक्त उसने अनेक भवनों, चिकित्सालयों, मकतबों और मदरसों का भी निर्माण करवाया। साथ ही वह बड़ा दानशील भी था। वह नित्य 500 अशर्फियाँ लोकहितकारी कार्यों पर व्यय करता था।

(4) शेरशाह को सुन्दर भवन बनवाने का भी शौक था। उसने रोहतास तथा दिल्ली का पुराना किला बनवाया। इसके अतिरिक्त, सहसराम में उसने एक बहुत ही सुन्दर मकबरा भी बनवाया था जिसमें मृत्यु के बाद उसे (शेरशाह को) दफनाया गया था।

प्रश्न 6—अकबर के अग्रगामी के रूप में शेरशाह का स्थान निर्धारित कीजिए। *(1994)*

उत्तर—शेरशाह को अकबर का अग्रगामी या पथ-प्रदर्शक माना जाता है। शेरशाह के अनेक कार्यों, प्रणालियों और सुधारों को कालान्तर में अकबर ने अपनाया। अकबर ने शेरशाह द्वारा प्रतिपादित राजपद के आदर्श, उसके द्वारा किए गए लोक-हितकारी कार्यों, भूमि-प्रबन्ध, नागरिक प्रशासन तथा सैनिक संगठन को मान्यता दी। इसीलिए शेरशाह को अकबर का अग्रगामी अथवा अग्रवर्ती माना जाता है।

प्रश्न 7—शेरशाह के चरित्र पर संक्षेप में प्रकाश डालिए। *(1996)*

उत्तर—

शेरशाह का चरित्र

शेरशाह एक योग्य एवं प्रतिभावान् व्यक्ति था। उसके व्यक्तित्व में एक कुशल शासक, महान् प्रशासक, सफल सेनापति एवं विजेता के गुण विद्यमान थे। वह बहुत उदार था, लेकिन कठोर नीति का समर्थक था। उसके चरित्र को निम्नलिखित आधारों पर स्पष्ट किया जा सकता है—

(1) शासक के रूप में—शेरशाह की गणना भारतीय इतिहास के महान् शासकों में की जाती है। उसने सम्पूर्ण शासन-व्यवस्था इस प्रकार की थी कि उसकी प्रजा उससे पूर्ण सन्तुष्ट रही और राज्य में भी चारों ओर शान्ति एवं सुव्यवस्था बनी रही। उसने एक योग्य शासक की तरह प्रशासन में अनेक सुधार किए, जिनके परिणाम बहुत लाभदायक सिद्ध हुए। उसने प्रत्येक परिवर्तन में प्रजा के हित का ध्यान रखा।

(2) सैनिक के रूप में—शेरशाह एक वीर योद्धा एवं कुशल सेनानायक था। वह असाधारण सैनिक प्रतिभा का स्वामी था। उसने अपनी इस प्रतिभा के कारण ही इतने बड़े साम्राज्य का निर्माण किया था। उसमें वीरता एवं साहस भी कूट-कूटकर भरा था। वह कठिन परिस्थितियों का दृढ़ता से सामना करता था।

(3) व्यक्ति के रूप में—शेरशाह में अनेक मानवीय गुण थे। वह प्रारम्भ से ही बड़ा परिश्रमी था। वह सदैव अपने कार्यों में व्यस्त रहता था। वह विद्वान् भी था और प्रजा के प्रति उदार भी। वह अपने कर्त्तव्य को कभी नहीं भूलता था। इसलिए उसने सदैव प्रजा की सुख-सुविधाओं का पूरा-पूरा ध्यान रखा। उसने सदैव निष्पक्ष न्याय का साथ दिया और धार्मिक आधार पर कभी किसी पर अत्याचार नहीं किया। वह धर्म के सम्बन्ध में अत्यन्त सहिष्णु था और हिन्दू एवं मुसलमानों के साथ समान व्यवहार करता था।

प्रश्न 8—सूर साम्राज्य के पतन के चार कारणों का उल्लेख कीजिए। *(1999)*

उत्तर—सूर साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी चार प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

(1) शेरशाह की असामयिक मृत्यु ने सूर साम्राज्य को हिला दिया।

(2) शेरशाह के उत्तराधिकारी अयोग्य और दुर्बल निकले।

(3) शेरशाह की मृत्यु के बाद अफगानों का सैन्य-संगठन शिथिल हो गया था।

(4) हुमायूँ के स्वामिभक्त सेवक और अकबर के संरक्षक बैरम खाँ ने पानीपत के द्वितीय युद्ध में विजय प्राप्त कर सूर वंश का अन्त कर दिया।

ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों एवं व्यक्तियों पर आधारित प्रश्न

प्रश्न 1—निम्नांकित तिथियों की ऐतिहासिकता पर टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) 1472 ई०—इस तिथि को सूर वंश के संस्थापक शेरशाह का जन्म हुआ था। उसका वास्तविक नाम 'फरीद' था।

(2) 1540 ई० *(1993, 94, 95, 96)*—इस तिथि को शेरशाह दिल्ली के सिंहासन पर बैठा था।

(3) 1542 ई० *(1996, 97)*—इस तिथि को शेरशाह ने मालवा पर आक्रमण किया था, जिसके शासक मल्लू खाँ (कादिरशाह) ने बिना युद्ध किए ही उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी।

(4) 1543 ई०—इस तिथि को शेरशाह ने रायसिन के राजा पूरनमल को कूटनीति से पराजित कर रायसिन पर अपना प्रभुत्व जमा लिया था।

(5) 1544 ई०—इस तिथि को शेरशाह ने मारवाड़ के शासक मालदेव को पराजित किया था। इस युद्ध में शेरशाह को लोहे के चने चाबने पड़े थे और वह यह कहने को बाध्य हुआ था कि, "मैंने एक मुट्ठीभर बाजरे के लिए हिन्दुस्तान का साम्राज्य लगभग खो दिया था।"

(6) 1545 ई० *(1994, 95, 97, 99)*—इस वर्ष शेरशाह ने कालिंजर के राजा कीर्तिसिंह को पराजित कर अभेद्य दुर्ग पर विजय प्राप्त की और इसी युद्ध में बारूद में आग लग जाने से वह बुरी तरह घायल हो गया। मई, 1545 ई० में ही उसकी मृत्यु हो गई थी।

(7) 1553 ई०—इस तिथि को शेरशाह के उत्तराधिकारी इस्लामशाह सूर की मृत्यु हुई थी।

(8) 1555 ई० *(1990, 92, 96)*—इस वर्ष हुमायूँ ने मच्छीवाड़ा और सरहिन्द के युद्धों में विजय प्राप्त करके दिल्ली पर अपना प्रभुत्व जमा लिया था। इसी वर्ष सूर वंश का साम्राज्य भी नष्ट हो गया था।

प्रश्न 2—निम्नांकित ऐतिहासिक स्थलों पर टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) कालिंजर—यह स्थान बुन्देलखण्ड में स्थित है। कालिंजर का दुर्ग बड़ा ही सुदृढ़ और अभेद्य है। यह दुर्ग एक पहाड़ी पर बना हुआ है और दर्शनीय है।

(2) चम्पानेर—यह स्थान बड़ौदा से 40 किमी दूर स्थित है। मध्यकाल में कुछ वर्षों तक इसे गुजरात की राजधानी बनने का गौरव प्राप्त हुआ। चम्पानेर का दुर्ग और मातृदेवी अम्बा का मन्दिर यहाँ के मुख्य दर्शनीय स्थल हैं।

(3) सहसराम *(1994, 97)*—यह स्थान पटना से 200 किमी दूर स्थित है। सूर वंश के संस्थापक शेरशाह का मकबरा यहाँ की प्रमुख दर्शनीय इमारत है। एक कृत्रिम झील में बना हुआ यह मकबरा अपनी सुन्दरता और उत्कृष्टता में ताजमहल के समकक्ष स्थान रखता है।

(4) चुनार *(1994)*—यह स्थान उत्तर प्रदेश के मिर्जापुर जिले में गंगा के तट पर स्थित है। यह स्थान पहले 'चरणाद्रि' के नाम से जाना जाता था। यहाँ पहाड़ी के ऊपर एक किला है, जिसके अन्दर एक मन्दिर है। इस मन्दिर को राजा विक्रमादित्य के द्वारा बनवाया हुआ माना जाता है। इसे भर्तृहरि की तपोभूमि भी बताया जाता है। शेरशाह के समय चुनार के किले पर ताजखाँ नामक सेनापति का अधिकार था, जो यहाँ हुमायूँ के सेनापति के रूप में नियुक्त था। 1531 ई० में शेरशाह ने चुनार पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया था।

प्रश्न 3—निम्नांकित ऐतिहासिक व्यक्तियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) जलाल खाँ—जलाल खाँ शेरशाह सूरी का छोटा पुत्र था । जब शेरशाह की मृत्यु हो गई, तो अफगान अमीरों ने जलाल खाँ को गद्दी पर आसीन किया। जलाल खाँ ने इस्लामशाह सूर के नाम से 1545 ई० से 1553 ई० तक शासन किया। एक शासक के रूप में जलाल खाँ ईश्वर से डरने वाला, अपनी प्रजा का रक्षक, कठोर परिश्रमी, शक्तिशाली और दृढ़ प्रशासक था, किन्तु कभी-कभी वह अभिमानी, शंकालु, प्रतिशोध लेने वाला, निर्मम, निर्दयी और क्रूर भी हो जाता था।

(2) मुहम्मद आदिलशाह—इसका वास्तविक नाम मुबारिज खाँ था। यह 1553 ई० में इस्लामशाह सूर के पुत्र फिरोज की हत्या करके दिल्ली की गद्दी पर आसीन हुआ। शासक के रूप में आदिलशाह अज्ञानी, दुराचारी और प्रशासक के गुणों से शून्य था। उसकी विलासिता और अयोग्यता का लाभ उठाकर प्रधानमन्त्री हेमू ने उससे सत्ता छीन ली थी। आदिलशाह के शासनकाल में सर्वत्र अशान्ति व अराजकता व्याप्त थी और अनेक स्थानों पर विद्रोह उठ खड़े हुए थे। इन अराजक परिस्थितियों का लाभ उठाकर ही हुमायूँ ने पुनः दिल्ली पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था। सन् 1557 ई० में आदिलशाह की मृत्यु हो गई थी।

(3) अब्बास सरवानी—यह अकबर का समकालीन था। अब्बास सरवानी ने शेरशाह के शासनकाल का विवरण अपनी पुस्तक **'तारीखे शेरशाही'** में लिपिबद्ध किया था। इस पुस्तक को **'तोहफ-ए-अकबरशाही'** भी कहते हैं। शेरशाह के शासनकाल की घटनाओं की जानकारी के लिए यह एक प्रामाणिक पुस्तक मानी जाती है।

3

मुगल साम्राज्य का विस्तार : अकबर से औरंगजेब तक (1556–1707 ई०)

[अकबर : परिचय, प्रारम्भिक उपलब्धियाँ, साम्राज्य विस्तार, राजपूत नीति, धार्मिक नीति, राष्ट्रीय शासक के रूप में, महान् सम्राट के रूप में, शासन प्रबन्ध, सैन्य संगठन, मनसबदारी प्रथा।
जहाँगीर : परिचय, उपलब्धियाँ, राजपूत नीति, नूरजहाँ एवं शासन पर उसका प्रभाव, नूरजहाँ का चरित्र।
शाहजहाँ : मध्य एशियायी नीति, मुगलकाल का स्वर्णयुग (शाहजहाँ की उपलब्धियाँ, उत्तराधिकार का युद्ध।
औरंगजेब : धार्मिक नीति, दक्षिण नीति, शिवाजी के साथ सम्बन्ध (मराठा नीति), राजपूत नीति, चारित्रिक गुण-अवगुण]

"अकबर की राजपूत नीति ने उसके शासनकाल में तथा उसके पुत्र जहाँगीर के समय में साम्राज्य की सुरक्षा के लिए सुदृढ़ आधार प्रदान किया। इस नीति के मधुर परिणाम उसके पौत्र शाहजहाँ और उसके प्रपौत्र औरंगजेब के शासनकाल में भी अपना प्रभाव प्रकट करते रहे।" —डॉ० वी०ए०स्मिथ

"औरंगजेब का जीवन एक लम्बे दुःखद जीवन की कहानी है। वह जीवनभर अमिट और अजेय भाग्य के विरुद्ध लड़ता रहा। इस दुःखद कहानी की नाटक की भाँति इतिहास में पुनरावृत्ति होती है।"—डॉ० जदुनाथ सरकार

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—अकबर के प्रारम्भिक जीवन का उल्लेख करते हुए उसकी विजयों और साम्राज्य स्थापना पर प्रकाश डालिए।

अथवा **"साम्राज्य की स्थापना बाबर ने की, लेकिन उसका विकास एवं सुदृढ़ीकरण अकबर ने किया।" इस कथन की विवेचना कीजिए।**

अथवा **अकबर का परिचय दीजिए। एक महान् विजेता के रूप में उसके कार्यों का मूल्यांकन कीजिए।**

अथवा **"अकबर मुगल साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक था।" विवेचना कीजिए।** *(1995)*

उत्तर—

अकबर का परिचय

अकबर का जन्म 1542 ई० में अमरकोट नामक स्थान पर हुआ था। उसकी माता का नाम हमीदा बानो बेगम तथा पिता का नाम हुमायूँ था। अकबर के जन्म के विषय में निजामुद्दीन अहमद ने लिखा है, "हुमायूँ के पुत्र का जन्म 5 रज्जब 949 (15 अक्टूबर, 1542 ई०) को हुआ। तार्दी बेग खाँ ने अमरकोट के निकट हुमायूँ को उसके पुत्र होने की सूचना दी थी। सम्राट ने लोगों की सलाह से बालक का नाम जलालुद्दीन अकबर रखा।" जिस समय अकबर का जन्म हुआ, उस समय हुमायूँ अनेक विपत्तियों से ग्रस्त था। वह शरणार्थी के रूप में इधर-उधर सहायता के लिए भटक रहा था। अतः वह अपनी इन विषम परिस्थितियों के कारण अकबर को पितृ-प्रेम न दे सका।

अकबर का उत्कर्ष—हुमायूँ ने पंजाब पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त अकबर को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया तथा बैरम खाँ की अध्यक्षता में उसे पंजाब और गजनी का सूबेदार बना दिया। सन् 1556 ई० में हुमायूँ की मृत्यु के पश्चात् 14 वर्ष की अल्पायु में अकबर सिंहासन पर आसीन हुआ। बैरम खाँ ने पंजाब के गुरुदासपुर जिले के निकट कलानौर नामक स्थान पर एक ईंटों का सिंहासन बनाकर राज्याभिषेक करते हुए अकबर को भारत का बादशाह घोषित कर दिया। स्मिथ ने लिखा है,

"इस संस्कार से केवल हुमायूँ के पुत्र को हिन्दुस्तान के राजसिंहासन का उत्तराधिकार प्राप्त करने की घोषणा मात्र हुई।"

अकबर की प्रारम्भिक उपलब्धियाँ

अकबर की प्रारम्भिक सफलताएँ अथवा उपलब्धियाँ निम्नलिखित थीं—

(1) पानीपत का द्वितीय युद्ध (1556 ई०)—सर्वप्रथम दिल्ली और आगरा पर अधिकार करने के लिए अकबर ने बैरम खाँ की सहायता से दिल्ली की ओर कूच कर दिया। सन् 1556 ई० में पानीपत के मैदान में अकबर की सेना का सामना वीर हिन्दू सेनापति हेमू से हुआ। इस संग्राम में पहले मुगलों की सेना के पैर उखड़ गए थे, किन्तु बाद में एक तीर हेमू की आँख में लग जाने से वह घायल हो गया तथा उसकी सेना युद्धस्थल से भाग खड़ी हुई। इस घटना से मुगलों की पराजय विजय में बदल गई। हेमू को अकबर के सम्मुख लाया गया, जहाँ बैरम खाँ ने उसका सिर काट दिया। इस प्रकार, दिल्ली और आगरा पर अकबर का अधिकार हो गया।

(2) अफगानों पर विजय—सन् 1557 ई० में अकबर ने अफगान शासक सिकन्दर सूर को परास्त कर दिया और दूसरी ओर मौहम्मदशाह आदिल भी बंगाल के साथ युद्ध करते हुए मारा गया। इस प्रकार, अकबर को अपने अफगान शत्रुओं से मुक्ति मिल गई।

(3) बैरम खाँ का पतन—बैरम खाँ बदख्शाँ का रहने वाला था। वह सदैव ही हुमायूँ व अकबर के प्रति स्वामिभक्त रहा। 1540 ई० में हुमायूँ एवं शेरशाह के मध्य हुए कन्नौज के युद्ध में बैरम खाँ को बन्दी बना लिया गया था, किन्तु वह वहाँ से भाग निकला। कठिनाइयों में वह सदैव हुमायूँ का साथी रहा तथा उसी के प्रयासों से शाह ईरान ने हुमायूँ को सहायता प्रदान की, जिससे हुमायूँ पुनः भारत में मुगल साम्राज्य की स्थापना कर सका। बैरम खाँ ने ही अकबर को दिल्ली व आगरा की विजय में सहयोग दिया तथा पंजाब, अजमेर, ग्वालियर, जौनपुर आदि प्रदेशों को मुगल साम्राज्य के अधीन किया था। यद्यपि बैरम खाँ महान् स्वामिभक्त था, किन्तु कुछ कारणों के फलस्वरूप अकबर को इस महान् स्वामिभक्त तथा अपने गुरु और संरक्षक को, राज्याधिकारों से वंचित करने का निर्णय लेना पड़ा।

> **अकबर की प्रारम्भिक उपलब्धियाँ**
> **(1) पानीपत का द्वितीय युद्ध**
> **(2) अफगानों पर विजय**
> **(3) बैरम खाँ का पतन**
> **(4) अन्तःपुर की समस्या का अन्त।**

(4) अन्तःपुर की समस्या का अन्त—बैरम खाँ की मृत्यु के पश्चात् अकबर पर उसकी धाय माता माहमअंगा का प्रभाव रहा। माहमअंगा अपने पुत्र आधम खाँ को शक्तिशाली बनाना चाहती थी। जब अकबर ने आधम खाँ को मालवा विजय के लिए भेजा, तो उसने मालवा विजय में प्राप्त लूट का माल शाही खजाने में जमा नहीं कराया। इससे अकबर बहुत क्रोधित हुआ, किन्तु इस बार माहमअंगा ने अपने पुत्र को अकबर के प्रकोप से बचा लिया। इसके पश्चात् आधम खाँ ने अकबर के एक विश्वासपात्र सेवक शमशुद्दीन अतका खाँ का वध करा दिया। उसके इस दुस्साहस से क्रोधित होकर अकबर ने आधम खाँ को किले से नीचे फेंकने का हुक्म दिया, जिससे उसकी मृत्यु हो गई। कुछ दिनों बाद अपने पुत्र के शोक में माहमअंगा की भी मृत्यु हो गई और इस प्रकार अकबर को अन्तःपुर की समस्या से छुटकारा मिल गया।

अकबर की विजयें (साम्राज्य विस्तार)
(एक विजेता के रूप में अकबर के कार्य)

एक विजेता के रूप में अकबर के कार्यों अथवा साम्राज्य-विस्तार हेतु किए गए प्रयासों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

(1) मालवा विजय—मालवा का शासक बाजबहादुर अपनी सुन्दर रानी रूपमती के साथ भोग-विलासों में लिप्त रहता था। अकबर की आज्ञा से आधम खाँ ने 1561 ई० में मालवा पर आक्रमण कर बाजबहादुर की रानियों और उसकी सम्पत्ति पर अधिकार कर लिया। इससे नाराज होकर अकबर ने आधम खाँ को ही वहाँ का सूबेदार नियुक्त कर दिया था। उसके बाद पीर मौहम्मद को मालवा का सूबेदार

बनाया गया। उसके समय में बाजबहादुर का मालवा पर पुनः अधिकार हो गया। इसी समय उजबेग सरदार अब्दुल्ला खाँ ने मालवा पर बाजबहादुर का शासन समाप्त कर दिया। बाजबहादुर इधर-उधर भटकने के पश्चात् अकबर का मनसबदार बन गया। कुछ समय के पश्चात् उजबेग सरदार अब्दुल्ला खाँ के विद्रोह करने पर अकबर ने उसके द्वारा किए गए विद्रोह को दबा दिया एवं मालवा पर पूर्णतः अपना एकाधिपत्य स्थापित कर लिया था।

(2) गोंडवाना विजय—इस समय गोंडवाना पर रानी दुर्गावती का राज्य था। वह अपने अल्पवयस्क पुत्र वीर नारायण की संरक्षिका बनकर राज्य कर रही थी। 1564 ई० में कड़ा के शासक आसफ खाँ ने दुर्गावती पर चौरागढ़ के निकट अकारण ही आक्रमण कर दिया। युद्ध में दुर्गावती बड़े साहस के साथ लड़ी, किन्तु वह वीरगति को प्राप्त हो गई। इस युद्ध में उसके राज्य को बुरी तरह लूटा गया तथा बहुमूल्य सामान मुगल सेना के हाथ लगा। इस प्रकार, गोंडवाना पर भी मुगलों का अधिकार हो गया।

(3) राजपूतों पर विजय—(अ) चित्तौड़ विजय—इस समय आमेर पर राजा बिहारी मल (भारमल) का आधिपत्य था। बिहारी मल अपने शत्रुओं के आतंक से अत्यन्त परेशान था। 1562 ई० में जब अकबर मुइउद्दीन चिश्ती की दरगाह के दर्शन हेतु अजमेर आया, तब बिहारी मल ने उससे भेंट की तथा अपनी पुत्री का विवाह अकबर के साथ कर दिया। इसके साथ-साथ उसने अपने पुत्र भगवान दास तथा पौत्र मानसिंह को सम्राट की सेवा में ही छोड़ दिया। अन्य राजपूत राजाओं ने बिहारी मल के इस कार्य का विरोध किया, जिनमें चित्तौड़ का राजा उदयसिंह प्रमुख था। इस विरोध के कारण अकबर ने चित्तौड़ पर आक्रमण कर दिया। इस समय राणा उदयसिंह मेवाड़ का शासक था। उदयसिंह एक कायर एवं अयोग्य शासक था और उसमें अकबर से मुठभेड़ करने का साहस नहीं था। अतः वह सरदार जयमल को साम्राज्य की रक्षा का भार सौंपकर उदयगिरि की पर्वत शृंखलाओं की ओर भाग गया। मुगल सेना द्वारा चित्तौड़ का घेरा बहुत समय तक चलता रहा। राजपूतों ने डटकर मुगलों का सामना किया, किन्तु अन्ततः राजपूतों की कलंकनीय हार हुई। 1568 ई० में, जब जयमल चित्तौड़ के किले की दीवार की मरम्मत करा रहा था, उस समय वह अकबर की गोली का निशाना बन गया। इस प्रकार, चित्तौड़ पर मुगलों का अधिकार स्थापित हो गया। युद्ध के समय अकबर ने यहाँ कत्लेआम भी करवाया जो भारतीय इतिहास में अकबर के चरित्र पर एक कलंकनीय धब्बा माना जाता है।

(ब) रणथम्भौर तथा कालिंजर विजय—इस समय रणथम्भौर पर सुरजन सिंह हांडा तथा कालिंजर पर रामचन्द्र का आधिपत्य था। 1569 ई० में अकबर ने इन दोनों किलों पर आक्रमण कर दिया। अकबर की विशाल सेना के सामने ये दोनों ही शासक न टिक सके और इन्होंने अकबर के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। इस प्रकार, रणथम्भौर व कालिंजर भी मुगल साम्राज्य के अन्तर्गत विलीन कर लिए गए। साथ ही अकबर की इस विजय से भयभीत होकर बीकानेर, जोधपुर, जैसलमेर आदि के शासकों ने भी आत्मसमर्पण कर दिया तथा अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली।

(स) हल्दीघाटी का युद्ध—1572 ई० में मेवाड़ के राणा उदयसिंह की मृत्यु हो गई थी। उसके पश्चात् उसका पुत्र महाराणा प्रतापसिंह मेवाड़ का शासक बना। राणाप्रताप ने चित्तौड़ गढ़ पर पुनः विजय करने का दृढ़ संकल्प किया। राणा प्रताप और अकबर की सेना के मध्य 1576 ई० में हल्दीघाटी के मैदान में घोर संग्राम हुआ। इस युद्ध में मुगलों की विजय हुई, किन्तु यह युद्ध मुगलों को सदैव याद रहा। पराजय के पश्चात् राणा प्रताप अरावली पर्वत श्रेणियों की ओर चले गए, जहाँ से उन्होंने जीवन-पर्यन्त चित्तौड़ विजय के प्रयास जारी रखे। धीरे-धीरे उन्होंने चित्तौड़ व अजमेर को छोड़कर समस्त मेवाड़ को स्वतन्त्र करा लिया था। यद्यपि उन्होंने जीवनभर अनेक कठिनाइयों का सामना किया, किन्तु वह अकबर के सामने नतमस्तक नहीं हुए। 1597 ई० में उनकी मृत्यु हो गई। मरते समय भी राणा ने अपने पुत्र अमरसिंह से कहा था कि, "मुगलों के आगे मस्तक मत झुकाना।"

(4) गुजरात विजय—इस समय गुजरात पर मुजफ्फर शाह तृतीय का शासन था। वह एक अयोग्य शासक था। वह अपने सरदारों के हाथों की कठपुतली बना हुआ था। 1572 ई० में एक सेना सहित अकबर अहमदाबाद पहुँचा, किन्तु मुजफ्फरशाह ने अकबर के समक्ष आत्मसमर्पण कर दिया। अकबर वापस लौट आया, किन्तु वापस आकर उसको पुनः गुजरात में विद्रोह की सूचना मिली। अतः अकबर पुनः गुजरात लौट
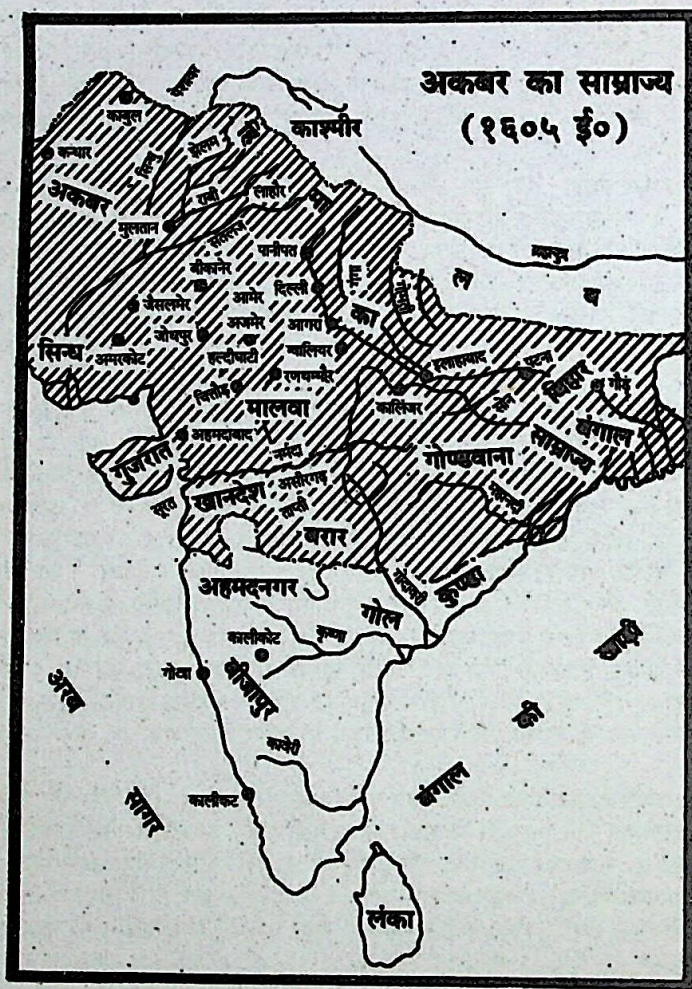
मानचित्र—अकबर का साम्राज्य (1605 ई०)।

गया। 1573 ई० में उसने गुजरात पर निर्णायक विजय प्राप्त की तथा गुजरात को मुगल साम्राज्य में विलीन कर लिया। अकबर ने काम्बे पर भी अधिकार कर लिया था। इस विजय से मुगलों को अनेक लाभ हुए। मुगलों को स्वतन्त्र समुद्री मार्ग प्राप्त हो गया तथा वे पुर्तगालियों के सम्पर्क में आ गए। इस सन्दर्भ में कैनेडी ने लिखा है, "गुजरात दक्षिण के अभियानों के लिए छलाँग मारने के लिए एक केन्द्र बन गया।"

(5) काबुल विजय—अकबर का सौतेला भाई मिर्जा हकीम यहाँ का शासक था। 1579–80 ई० में मिर्जा ने पंजाब पर अधिकार करने का प्रयत्न किया था, किन्तु अकबर ने अपने पुत्र मुराद को उसका सामना करने के लिए भेजा। मिर्जा हकीम काबुल भाग गया और उसने जीवनभर काबुल पर अधिकार बनाए रखा। 1585 ई० में मिर्जा की मृत्यु के पश्चात् काबुल को मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया तथा राजा मानसिंह को वहाँ का राज्यपाल नियुक्त कर दिया गया।

(6) कश्मीर विजय—युसुफ खाँ कश्मीर का शासक था। वह हिन्दुओं पर अत्याचार किया करता था। इस कारण राजा भगवान सिंह और कासिम खाँ ने 5,000 सैनिकों के साथ कश्मीर विजय का अभियान किया। कश्मीर नरेश ने उनके समक्ष आत्म-समर्पण कर दिया। बाद में, युसुफ खाँ के पुत्र याकूब खाँ ने भी अकबर की सेना के साथ संघर्ष किया। अन्त में याकूब खाँ भी भाग गया और 1586 ई० में कश्मीर को काबुल प्रान्त का एक अंग घोषित कर दिया गया।

(7) सिन्ध विजय—अकबर की दृष्टि में सिन्ध प्रदेश की विजय का भी विशेष महत्त्व था, क्योंकि इस विजय के पश्चात् ही वह कन्धार पर सुगमता से विजय प्राप्त कर सकता था। 1590 ई० में मिर्जा अब्दुर्रहीम को मुल्तान का गवर्नर नियुक्त किया गया तथा उसे ही सिन्ध विजय का कार्य सौंपा गया। इस समय मिर्जा जानीबेग सिन्ध का शासक था। उसने युद्ध के पश्चात् आत्म-समर्पण कर दिया।

अकबर की विजयें
(साम्राज्य विस्तार)

(1) मालवा विजय
(2) गोंडवाना विजय
(3) राजपूतों पर विजय :
  (अ) चित्तौड़ विजय
  (ब) रणथम्भौर तथा कालिंजर विजय
  (स) हल्दीघाटी का युद्ध
(4) गुजरात विजय
(5) काबुल विजय
(6) कश्मीर विजय
(7) सिन्ध विजय
(8) कन्धार विजय
(9) अहमद नगर विजय
(10) बंगाल विजय
(11) असीरगढ़ विजय
(12) पुर्तगालियों से सम्बन्ध।

(8) कन्धार विजय—हुमायूँ की मृत्यु के पश्चात् फारस के शाह ने कन्धार पर अपना अधिकार कर लिया था। 1595 ई० में किलेदार मुजफ्फर हुसैन मिर्जा के आत्म-समर्पण करने पर अकबर ने कन्धार को मुगल साम्राज्य का अंग बना लिया।

(9) अहमद नगर विजय—उत्तरी भारत पर विजय प्राप्त करने के उपरान्त अकबर ने दक्षिण भारत पर विजय का अभियान शुरू किया। इस कार्य के लिए उसने सर्वप्रथम अपने दूतों को दक्षिण की ओर इस उद्देश्य से भेजा कि वहाँ के शासक उसकी अधीनता स्वीकार कर लें, किन्तु अकबर इस योजना में असफल रहा। इसके पश्चात् अकबर ने सर्वप्रथम अहमद नगर पर आक्रमण किया। इस समय चाँदबीबी अपने भतीजे की संरक्षिका के रूप में अहमद नगर पर शासन कर रही थी। मुगलों की ओर से इस अभियान का नेतृत्व अब्दुर्रहीम व मुराद कर रहे थे। 1595 ई० में दोनों पक्षों की सेनाओं में घनघोर युद्ध हुआ, किन्तु अब्दुर्रहीम व मुराद में मतभेद हो जाने से यह अभियान सफल न हो सका। मुगलों को एक सन्धि द्वारा केवल बरार का प्रदेश ही प्राप्त हो सका। कुछ समय बाद अहमद नगर में आन्तरिक उपद्रव हो गए तथा चाँदबीबी की उसके सरदारों द्वारा हत्या कर दी गई या उसने आत्महत्या कर ली। अकबर ने स्वयं सेना लेकर 1600 ई० में बुरहानपुर पर अधिकार कर लिया और अन्त में अहमद नगर पर भी मुगलों का आधिपत्य स्थापित हो गया।

(10) बंगाल विजय—अकबर के गद्दी पर बैठने के समय बंगाल का शासक सुलेमान किरानी था। सुलेमान के शासन काल में अकबर व उसके सम्बन्ध मधुर बने रहे, किन्तु 1572 ई० में सुलेमान किरानी की मृत्यु के पश्चात् उसका पुत्र दाऊद सिंहासन पर बैठा। वह दुस्साहसी एवं जिद्दी था। उसने पटना के मुगल किले पर अधिकार कर लिया। उसके इस कार्य से अकबर रुष्ट हो गया और उसने जौनपुर के शासक दाऊद को दण्ड देने का आदेश दिया, किन्तु वह सफल न हो सका। इस पर अकबर ने राजा टोडरमल को बंगाल का सूबेदार बनाकर, दाऊद के विरुद्ध कार्यवाही करने की आज्ञा दी। 1580 ई० में टोडरमल ने बंगाल पर विजय प्राप्त करके उसे मुगल साम्राज्य का अंग बना लिया।

(11) असीरगढ़ विजय—इस समय असीरगढ़ का दुर्ग सर्वाधिक सुदृढ़ तथा अभेद्य माना जाता था। अतः अकबर ने इस किले को जीतने का अभियान शुरू किया। 6 मास तक किले की नाकेबन्दी होती रही, किन्तु इसी समय सलीम का विद्रोह हो जाने के कारण, इस पर अधिकार न किया जा सका। अन्ततः

अकबर ने कूटनीति से काम लिया तथा यहाँ के शासक मीरन बहादुर को सन्धि के बहाने बुलाकर रोक लिया तथा असीरगढ़ दुर्ग का घेरा और कड़ा कर दिया। अन्त में, जनवरी 1601 ई० में किले पर अधिकार कर लिया गया। मीरन बहादुर को ग्वालियर के किले में बन्दी बनाकर भेज दिया गया और उसके वार्षिक निर्वाह के लिए 4 हजार अशर्फियाँ वार्षिक निश्चित कर दी गईं।

(12) पुर्तगालियों से सम्बन्ध—पुर्तगालियों की अरब सागर में हलचल, भारत के सामुद्रिक व्यापार में उनका हस्तक्षेप तथा मुसलमानों के प्रति उनके अत्याचार आदि के कारण अकबर चिन्तित था। अतः उसने पुर्तगालियों का दमन करने का प्रयत्न किया, किन्तु वह असफल रहा। 1580 ई० में बीजापुर के नवाब के हाथों से गोआ निकल गया तथा पुर्तगालियों ने वहाँ समस्त मुसलमानों को मार दिया। 1582 ई० में पुर्तगालियों ने सूरत को भी लूटने का प्रयत्न किया, किन्तु मुगल सेना के वहाँ पहुँचने से वे ऐसा न कर सके। अकबर जानता था कि एक विशाल सेना की सहायता से ही वह पुर्तगालियों पर विजय प्राप्त कर सकता है, किन्तु समयाभाव के कारण वह ऐसा न कर सका।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि अकबर का साम्राज्य विस्तार उत्तर-पश्चिम में कन्धार से लेकर पूर्व में बंगाल तक, उत्तर में कश्मीर से लेकर दक्षिण में बीजापुर व गोलकुण्डा तक फैला हुआ था। उसने अपने इन समस्त विजित प्रदेशों को एक केन्द्रीय शासन व्यवस्था के अन्तर्गत संगठित कर रखा था।

सलीम का विद्रोह तथा अकबर की मृत्यु—अकबर के सबसे बड़े पुत्र का नाम सलीम था। सलीम का पुत्र खुसरो, मानसिंह का भांजा तथा प्रभावशाली अमीर अजीज कोका का दामाद था। दरबार के प्रभावशाली अमीर; अकबर के पौत्र खुसरो को सम्राट बनाना चाहते थे। इसी कारण सलीम ने अकबर के विरुद्ध विद्रोह कर दिया तथा उसने अबुल फजल की हत्या करवा दी। इससे अकबर को बहुत दुःख हुआ। सलीम ने इलाहाबाद में अपने को स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया। इसी समय अकबर की माता हमीदा बानो अधिक बीमार हो गई। अतः अकबर को विपत्तियों से घिरा देखकर सलीम ने अपनी दादी के मरने के अवसर पर आगरा आकर पिता से क्षमा-याचना की। अकबर ने उसे क्षमा कर दिया और अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। 25-26 अक्टूबर, 1605 ई० की अर्द्धरात्रि को अकबर की मृत्यु हो गई।

इस प्रकार, अकबर ने अपने अथक् प्रयासों और अपने बाहुबल से अपनी कठिनाइयों पर विजय प्राप्त की तथा एक महान् साम्राज्य की स्थापना की। अतः अकबर के सम्बन्ध में यह कथन पूर्णतया उपयुक्त ही है कि, "इस साम्राज्य की स्थापना बाबर ने की, लेकिन उसका विकास एवं सुदृढ़ीकरण अकबर ने ही किया।" वस्तुतः अकबर ही मुगल साम्राज्य का वास्तविक संस्थापक था।

प्रश्न 2—अकबर की राजपूत नीति की समीक्षा कीजिए। उसके क्या परिणाम निकले ?

अथवा **अकबर की राजपूत नीति का मूल्यांकन कीजिए।** *(1994)*

अथवा **"अकबर की राजपूत नीति ने भारत में मुगल साम्राज्य को स्थायी बना दिया।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं ?**

अथवा **अकबर की राजपूत नीति का विश्लेषण कीजिए।** *(1992, 94)*

अथवा **राजपूत राज्यों के प्रति अकबर की नीति की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए। यह नीति किस सीमा तक सफल हुई ? विवेचना कीजिए।** *(1994)*

अथवा **"अकबर के अपनी हिन्दू प्रजा, विशेषकर राजपूतों के प्रति, सद्व्यवहार के बड़े सुखद और दीर्घगामी परिणाम निकले।" इस कथन की सविस्तार पुष्टि कीजिए।** *(1996)*

अथवा **अकबर की राजपूत नीति का विवेचन कीजिए।** *(1997)*

उत्तर—

अकबर की राजपूत नीति (सुलह-कुल की नीति)

मुगल सम्राट अकबर एक बुद्धिमान एवं दूरदर्शी सम्राट था। उसने यह अनुभव कर लिया था कि भारत में राजपूतों के सहयोग के बिना स्थायी और सुदृढ़ मुगल साम्राज्य की स्थापना कर पाना असम्भव है। अकबर से पूर्व किसी भी मुस्लिम शासक ने भारतीय राजपूतों के वीरोचित गुणों को नहीं पहचाना था, जिसके परिणामस्वरूप प्रत्येक मुस्लिम शासक को राजपूतों के प्रबल प्रतिरोध का सामना करना पड़ा था।

अकबर ऐसा पहला मुसलमान शासक था, जिसने इस वीर एवं साहसी जाति के राजनीतिक एवं सैनिक महत्त्व को समझकर उसकी ओर मैत्री का हाथ बढ़ाया। अकबर की यह दूरदर्शितापूर्ण नीति उसके साम्राज्य विस्तार और एक स्थायी साम्राज्य के निर्माण में सहायक सिद्ध हुई।

अकबर की राजपूत नीति के कारणों, कार्यक्रमों और प्रभावों को निम्नलिखित सन्दर्भों में जाना जा सकता है—

(1) अकबर की राजपूत नीति को प्रभावित करने वाले कारक—मुगल सम्राट अकबर अत्यन्त बुद्धिमान और दूरदर्शी शासक था। उसकी दृष्टि में राजपूतों में अनेक गुण थे, इसीलिए अपनी महत्त्वाकांक्षा की पूर्ति हेतु उसने उनसे मित्रता करना आवश्यक समझा। अकबर की राजपूत नीति को निर्धारित करने में सहायक कारक निम्न प्रकार थे—

(i) राजपूत महान्, वीर एवं साहसी थे।

(ii) उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त प्रदेशों के विदेशी आक्रमणों से मुगल साम्राज्य की रक्षा वीर राजपूत ही कर सकते थे।

(iii) राजपूत युद्धप्रिय होते थे।

(iv) अकबर हिन्दू जनता का हृदय जीतकर राष्ट्रीय शासक बनना चाहता था।

(v) राजपूत स्वामिभक्त और विश्वासी होते थे, जबकि अकबर के अपने अमीर अविश्वसनीय और विलासी थे।

(2) अकबर के राजपूत नीति सम्बन्धी कार्य (अकबर की राजपूत नीति की प्रमुख विशेषताएँ)—अकबर ने निम्नलिखित कार्यों के आधार पर राजपूतों एवं हिन्दुओं का आत्मीय सहयोग प्राप्त किया—

(i) वैवाहिक सम्बन्ध—अकबर ने राजपूतों से मित्रता करने के लिए उनसे वैवाहिक सम्बन्ध स्थापित किए। सन् 1562 ई० में उसने आमेर के राजा बिहारी मल की पुत्री तथा भगवानदास की बहन जोधाबाई से विवाह किया। 1570 ई० में उसने जैसलमेर और जोधपुर की राजकुमारियों से विवाह सम्पन्न किए। इसी प्रकार, 1585 ई० में उसने अपने पुत्र सलीम का विवाह राजा भगवानदास की पुत्री और राजा मानसिंह की बहन मानबाई के साथ किया, जिससे शहजादे खुसरो का जन्म हुआ। इस प्रकार, इन वैवाहिक सम्बन्धों के माध्यम से उसने राजपूतों से मधुर सम्बन्ध स्थापित किए और उनका सहयोग एवं सहानुभूति प्राप्त की।

(ii) हिन्दुओं की उच्च पदों पर नियुक्ति—अकबर ने राजा बिहारी मल, भगवानदास, मानसिंह, बीरबल, टोडरमल आदि हिन्दुओं को राज्य में सम्मानपूर्ण और उच्च पदों पर नियुक्त किया। इन लोगों ने भी अकबर के साम्राज्य विस्तार एवं गृह-प्रशासन में पूरा-पूरा सहयोग दिया।

अकबर की राजपूत नीति

(1) अकबर की राजपूत नीति को प्रभावित करने वाले कारक
(2) अकबर के राजपूत नीति सम्बन्धी कार्य—
 (i) वैवाहिक सम्बन्ध
 (ii) हिन्दुओं की उच्च पदों पर नियुक्ति
 (iii) हिन्दू और मुसलमानों के प्रति समान नीति
 (iv) हिन्दू समाज में सुधार
 (v) हिन्दू राजाओं की प्रथाओं को अपनाना
(3) अकबर की राजपूत नीति के परिणाम।

(iii) हिन्दू और मुसलमानों के प्रति समान नीति—अकबर ने हिन्दू एवं मुसलमानों के प्रति शासन और धर्म के क्षेत्र में समानता का व्यवहार किया। अपने पूर्व शासकों के विपरीत उसने मुसलमानों के समान हिन्दुओं को भी जजिया और तीर्थ यात्राओं के करों से मुक्त कर दिया। स्वयं सम्राट भी हिन्दू त्योहारों—दीपावली, होली, जन्माष्टमी और वसन्त आदि को धूमधाम से अपने महल में मनाने लगा। उसने हिन्दुओं के अनेक महत्त्वपूर्ण धार्मिक ग्रन्थों का फ़ारसी में अनुवाद करवाया ताकि वह उनके धर्मों की अच्छी बातों एवं नियमों को भली-भाँति जान सके। उसने अपने साम्राज्य में सभी को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान कर रखी थी।

(iv) हिन्दू समाज में सुधार—अकबर ने हिन्दू समाज के अनेक दोषों जैसे दास-प्रथा एवं वृद्ध-विवाह को भी दूर किया। इससे भी हिन्दू समाज अकबर का विशेष आदर करने लगा था। उसने बाल-विवाह और सती-प्रथा का डटकर विरोध किया और अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन दिया। इस प्रकार, उसने हिन्दू समाज की अनेक कुप्रथाओं को दूर किया। इन कार्यों से जनता अकबर की सहयोगी बन गई और हिन्दू उसे सच्चा राष्ट्रीय सम्राट मानने लगे।

(v) हिन्दू राजाओं की प्रथाओं को अपनाना—अकबर ने भारतीय हिन्दू समाज को प्रसन्न करने के लिए हिन्दू राजाओं में प्रचलित सामाजिक प्रथाओं को भी अपना लिया। इन प्रथाओं में अकबर के द्वारा अपनाई जाने वाली मुख्य प्रथाएँ थीं—तुलादान और झरोखा दर्शन।

(3) अकबर की राजपूत नीति के परिणाम (राजपूत नीति की सफलताएँ)—अकबर की राजपूत नीति के बड़े दूरगामी परिणाम हुए, जो इस प्रकार हैं—

(i) राजपूतों के सहयोग से वह अपनी राष्ट्रीय सम्राट बनने की महत्त्वाकांक्षा और विशाल साम्राज्य की स्थापना की दिशा में सफल हुआ।

(ii) इस नीति से भारतीय इतिहास में एक नए संगठित राजनीतिक युग का प्रारम्भ हुआ। डॉ० बेनी प्रसाद के अनुसार, "इससे भारत के राजनीतिक इतिहास में एक नए युग का प्रादुर्भाव हुआ। इससे देश को प्रसिद्ध सम्राटों की एक परम्परा प्राप्त हुई और मुगल बादशाहों की चार पीढ़ियों को मध्यकालीन भारत के कुछ राजपूत सेनापतियों और राजनीतिज्ञों की सेवाएँ प्राप्त होती रहीं।"

(iii) अकबर की सुलह-कुल की नीति मुगल वंश के लिए अत्यन्त लाभकारी सिद्ध हुई। इससे मुगल साम्राज्य की नींव सुदृढ़ हुई। अकबर के उत्तराधिकारी जब तक इस नीति का अनुसरण करते रहे तब तक मुगल साम्राज्य उन्नति के शिखर की ओर अग्रसर होता रहा।

(iv) वास्तव में, अकबर के शासनकाल में जो राजनीतिक, प्रशासनिक, सामाजिक, कलात्मक और सांस्कृतिक उन्नति हुई, उसमें राजपूतों का पर्याप्त योगदान रहा था। डॉ० बेनी प्रसाद ने इस सन्दर्भ में लिखा है, "मुगलकालीन भारतीय कला की अपूर्व उन्नति का श्रेय अधिकांशतः राजपूत-मुगल सहयोग को ही है।"

(v) अकबर की 'सुलह-कुल' की नीति का सर्वश्रेष्ठ परिणाम यह भी हुआ कि भीषण नरसंहार तथा रक्तपात के वातावरण की समाप्ति हो गई और शान्ति और उन्नति के युग का सूत्रपात हुआ।

(vi) राजपूतों की सहायता से अकबर ने अपने शत्रुओं एवं विद्रोहियों का दमन किया और अपने राजनीतिक प्रभाव में वृद्धि की।

(vii) अकबर ने राजपूतों की सहायता से केवल एक विशाल साम्राज्य की स्थापना ही नहीं की, अपितु उसकी सुव्यवस्थित शासन व्यवस्था भी राजपूतों के सहयोग का ही परिणाम थी। उसने हिन्दुओं को उच्च पदों पर नियुक्त किया तथा उनकी योग्यता का पूर्ण लाभ उठाया।

डॉ० वी० ए० स्मिथ ने लिखा है कि, "अकबर की राजपूत नीति ने उसके शासन काल में तथा उसके पुत्र जहाँगीर के समय में साम्राज्य की सुरक्षा के लिए सुदृढ़ आधार प्रदान किया। इस नीति के मधुर परिणाम उसके पौत्र शाहजहाँ और उसके प्रपौत्र औरंगजेब के शासनकाल में भी अपना प्रभाव प्रकट करते रहे।" वस्तुतः अकबर की राजपूत नीति ने भारत में मुगल साम्राज्य को स्थायी बना दिया। इस सन्दर्भ में यह कथन भी पूर्णतः उपयुक्त ही है कि अकबर के अपनी हिन्दू प्रजा, विशेषकर राजपूतों के प्रति सद्व्यवहार के बड़े सुखद और दीर्घगामी परिणाम निकले।

प्रश्न 3—अकबर की धार्मिक नीति को प्रभावित करने वाले विभिन्न तत्त्वों की विवेचना कीजिए।
अथवा **"सभी धर्मों के विद्वानों के विचार-विमर्श से अकबर एक महान् धर्म-सहिष्णु सम्राट बन गया था।" समालोचना कीजिए।**
अथवा **"अकबर की महान् उपलब्धि यह थी कि उसने भिन्न-भिन्न धर्मों के समूहों को जोड़ दिया।" इस कथन के परिप्रेक्ष्य में उसकी धार्मिक नीति की समीक्षा कीजिए।**
अथवा **"अकबर धर्म के सार्वभौम सिद्धान्तों को केवल मानता ही नहीं था, बल्कि उनका पालन भी करता था।" व्याख्या कीजिए।** *(1990)*
अथवा **अकबर की धार्मिक नीति का विवेचन कीजिए।** *(1999)*

उत्तर—

अकबर की धार्मिक नीति

अकबर का न केवल भारत के इतिहास में, वरन् विश्व के इतिहास में भी विशिष्ट स्थान है। उसने धर्म के मामलों में वह महान् कार्य किया जिसे उससे पूर्व किसी मुस्लिम शासक ने शायद ही किया हो। उसने सभी धर्मों के लोगों को एक सूत्र में बाँधने का अभूतपूर्व प्रयत्न किया। वह एक धर्म-सहिष्णु सम्राट था। उसने सभी धर्मों की अच्छी बातों से अपनी प्रजा को अवगत कराया और उनमें समन्वय एवं सहयोग की भावना उत्पन्न करने का प्रयास किया। मैक्समूलर ने उसकी धार्मिक समन्वय की नीति के सम्बन्ध में लिखा है कि, **"अकबर सब धर्मों का तुलनात्मक अध्ययन करने वाला प्रथम विद्यार्थी है।"** ("Akbar is the first student of comparative religions and was deeply interested in experimentation.")

अकबर की धार्मिक नीति को प्रभावित करने वाले तत्त्व

अकबर की धार्मिक नीति को प्रभावित करने वाले तत्त्व अथवा प्रभावी कारक निम्नलिखित थे—

(1) अकबर की प्रारम्भिक धार्मिक नीति—सन् 1575 ई० तक अकबर कट्टर मुसलमान बना रहा था। वह नियमित रूप से नमाज पढ़ता था। उसने फतेहपुर सीकरी में जामा मसजिद नामक प्रसिद्ध मसजिद का निर्माण करवाया था। वह पीरों एवं उलेमाओं का बहुत आदर करता था। परन्तु फिर भी वह अन्य धर्मों के प्रति अत्यधिक उदार था। वह बचपन से ही सभी धर्मों का समान रूप से आदर करता था। बड़ा होने पर कुछ विशेष बातों तथा विभिन्न धर्मों के विचारों का उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा, जिसके कारण अकबर की धार्मिक नीति धर्म-सहिष्णुता और धर्म-समन्वय की नीति में परिवर्तित हो गई थी।

(2) माता-पिता के उदार विचारों का प्रभाव—अकबर पर अपने माता-पिता के उदार विचारों का पर्याप्त प्रभाव पड़ा। उसकी माता शिया और पिता सुन्नी मुसलमान थे। स्वयं अकबर का जन्म एक हिन्दू राजा के महल में हुआ था। उसका पिता हुमायूँ भी कुछ कारणों से शिया-धर्मावलम्वी हो गया था। हुमायूँ ने लोगों को बलपूर्वक कभी मुसलमान नहीं बनाया था। इन सब बातों का अकबर पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा।

अकबर की धार्मिक नीति को प्रभावित करने वाले तत्त्व

(1) अकबर की प्रारम्भिक धार्मिक नीति
(2) माता-पिता के उदार विचारों का प्रभाव
(3) शिक्षक का प्रभाव
(4) सूफियों का प्रभाव
(5) भक्ति आन्दोलन का प्रभाव
(6) राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं का प्रभाव
(7) विभिन्न धर्माचार्यों का प्रभाव
(8) विभिन्न धर्मग्रन्थों के ज्ञान का प्रभाव।

(3) शिक्षक का प्रभाव—अकबर के धार्मिक विचारों को उदार बनाने में उसके शिक्षक अब्दुल लतीफ का विशेष योगदान था। वह धार्मिक विश्वासों की दृष्टि से बहुत उदार था। उत्तरी भारत के अधिकांश लोग उसे सुन्नी समझते थे, जबकि वह फारस का शिया था (ऐसा कहा जाता है कि शिया लोग स्वभाव से सुन्नियों से ज्यादा उदार एवं सहिष्णु होते हैं)। अब्दुल लतीफ ने अकबर को सुलह-ए-कुल (सबसे मिलकर रहने) की शिक्षा दी थी। अतः अकबर पर अपने शिक्षक अब्दुल लतीफ और संरक्षक शिया सरदार बैरम खाँ की उदार नीति का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था।

(4) सूफियों का प्रभाव—सूफी सन्त अत्यधिक उदार एवं सहिष्णु होते थे। ये लोग बाह्य आडम्बरों में आस्था नहीं रखते थे। ये ईश्वर-भक्ति एवं चारित्रिक शुद्धता में ही विश्वास रखते थे। अकबर के दरबार में भी अनेक सूफी सन्त रहते थे। अतः उनकी स्वतन्त्र एवं उदार धार्मिक नीति का अकबर की धार्मिक नीति पर प्रभाव पड़ना स्वाभाविक ही था।

(5) भक्ति आन्दोलन का प्रभाव—अकबर का युग भारत में धार्मिक क्रान्ति का युग था। चौदहवीं एवं पन्द्रहवीं शताब्दी में भारत में अनेक धार्मिक आन्दोलन हुए थे। इन आन्दोलनों का उद्देश्य सभी धर्मों में एकता स्थापित करना था। अतः इन आन्दोलनों का भी अकबर के हृदय पर गहरा प्रभाव पड़ा था।

(6) राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं का प्रभाव—कुछ इतिहासकारों के अनुसार, उसकी धार्मिक नीति उसकी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं से भी प्रभावित थी। वह एक सुदृढ़ एवं संगठित विशाल साम्राज्य की स्थापना का स्वप्न देखता था। वह यह भी जानता था कि जब तक विभिन्न धर्मों एवं सम्प्रदायों के लोगों को एक सूत्र में नहीं बाँधा जाएगा, तब तक उसका स्वप्न पूरा होना सम्भव नहीं होगा। इसीलिए उसने धार्मिक प्रवृत्ति वाली जनता को उदार, धार्मिक नीति के आधार पर संगठित करने का प्रयत्न किया।

(7) विभिन्न धर्माचार्यों का प्रभाव—अकबर सभी धर्मों के धर्माचार्यों के प्रति अपार श्रद्धा रखता था। वह कई जैन, ईसाई, पारसी और ब्राह्मण आचार्यों के सम्पर्क में आया था। उनके विचारों से अकबर के हृदय में धर्म के सम्बन्ध में सहिष्णुता की भावना का विकास हुआ था।

(8) विभिन्न धर्मग्रन्थों के ज्ञान का प्रभाव—अकबर महान् ने विभिन्न धर्मों के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थों का गहनता से अध्ययन किया और अन्ततः वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि सभी धर्मों में अच्छी बातें होती हैं। अतः उसने सभी धर्मों से अच्छी बातें ग्रहण कर एक नया धर्म चलाने का विचार किया।

अकबर की धार्मिक नीति का विकास

अकबर की धार्मिक नीति पर आधारित कार्यों, उद्देश्यों आदि का संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है—

(1) अकबर के धर्म-सहिष्णुता सम्बन्धी कार्य—अकबर ने सभी धर्मों के अच्छे और लोक-कल्याणकारी सिद्धान्तों को अपनाया। ब्राह्मणों से प्रभावित होकर उसने माला एवं तिलक को धारण कर लिया था। इसी प्रकार, वह जैन धर्म के अहिंसा के सिद्धान्त का पालन करने लगा था और उसने रविवार के दिन पशु-वध निषिद्ध करवा दिया था। उसने ईसाई गिरजाघरों का भी निर्माण करवाया था। पारसी धर्म से प्रभावित होकर उसने अपने दरबार में हर समय अग्नि जलाए रखने का आदेश दिया था और एक सिक्ख गुरु की प्रार्थना पर उसने पंजाब की जनता को भूमि-कर से मुक्त कर दिया था। ये सभी कार्य अकबर को सच्चा 'धर्म-सहिष्णु सम्राट' सिद्ध करते हैं। **वस्तुतः सभी धर्मों के विद्वानों के साथ किए गए विचार-विमर्श से अकबर एक महान् धर्म-सहिष्णु सम्राट बन गया था।** उसने विचार-विमर्श के आधार पर निर्धारित सिद्धान्तों को व्यावहारिक दृष्टि से क्रियान्वित करने का पूर्ण प्रयास किया। अतः उसके सन्दर्भ में यह कथन भी उपयुक्त ही है कि, **"अकबर धर्म के सार्वभौम सिद्धान्तों को केवल मानता ही नहीं था, बल्कि उनका पालन भी करता था।"**

अकबर की धार्मिक नीति का विकास

(1) अकबर के धर्म-सहिष्णुता सम्बन्धी कार्य
(2) अकबर का धर्माचार्य बनना और इबादतखाने की स्थापना
(3) अकबर की धार्मिक नीति के लक्ष्य या उद्देश्य
(4) अकबर की धार्मिक नीति के परिणाम।

(2) अकबर का धर्माचार्य बनना और इबादतखाने की स्थापना—अकबर ने नवीन नए धर्म का प्रचलन किया था और इसके लिए उसे खलीफा या धर्माचार्य बनना आवश्यक था। अतः उसने 22 जून, 1579 ई० को फतेहपुर सीकरी की प्रमुख मसजिद पर चढ़कर 'खुतबा' पढ़ा। इससे अनेक मुसलमानों में आक्रोशपूर्ण असन्तोष फैलने लगा, किन्तु इसी समय फैजी एवं अबुल फजल ने एक अधिकार-पत्र तैयार कर लिया और उस पर कट्टर मुसलमानों के हस्ताक्षर करवा लिए। इस अधिकार-पत्र के अनुसार, अकबर को देश में इस्लाम सम्बन्धी विवादों में पंच-निर्णय करने का अधिकार प्राप्त हो गया।

(3) अकबर की धार्मिक नीति के लक्ष्य या उद्देश्य—अकबर की धार्मिक नीति के उद्देश्य बहुत महत्त्वपूर्ण और उपयोगी थे। ये उद्देश्य निम्न प्रकार थे—

(i) अकबर अपने राज्य में शान्ति एवं राष्ट्रीय एकता स्थापित करना चाहता था।
(ii) उसका दूसरा उद्देश्य हिन्दू-मुसलमानों को एक छत्रछाया के नीचे लाकर खड़ा करना था।
(iii) वह उलेमाओं के अनुचित प्रभाव को भी समाप्त करना चाहता था।
(iv) सभी धर्मों के उपयोगी सिद्धान्तों को जानना अकबर का जन्मजात स्वभाव था।

(4) अकबर की धार्मिक नीति के परिणाम—अकबर की इस नीति से उसके सभी उद्देश्यों की प्राप्ति हो गई। इसके साथ ही मुगल साम्राज्य दीर्घकाल तक शक्तिशाली बना रहा। लेकिन बहुत-से

मुसलमान और विद्वान् अकबर से रुष्ट हो गए। बदायूँनी ने उसे काफिर तक कहा, परन्तु अकबर अपनी इस उदार धार्मिक नीति के कारण ही एक महान् सम्राट के रूप में स्वीकार किया जाता है।

लारेंस विलियम ने उसकी धार्मिक नीति के परिणामों की विवेचना करते हुआ लिखा है कि, "उसने महानतम् कार्य यह किया था कि शासक की हैसियत से उसने विभिन्न जातियों को और विभिन्न धर्मों को मिला दिया था।"

इस प्रकार, अकबर के सम्बन्ध में यह कथन पूर्णतया संगत ही है कि, "अकबर की महान् उपलब्धि यह थी कि उसने भिन्न-भिन्न धर्मों के समूहों को जोड़ दिया था।"

प्रश्न 4—दीन-ए-इलाही के विषय में आप क्या जानते हैं? दीन-ए-इलाही के प्रमुख सिद्धान्त क्या थे?

अथवा **"अकबर के 'दीन-ए-इलाही' का मूल भाव धार्मिक सहिष्णुता थी। इस कथन की विवेचना कीजिए।"** *(1990)*

अथवा **"दीन-ए-इलाही अकबर की मूर्खता का प्रतीक था, न कि बुद्धिमत्ता का।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।** *(1993, 96)*

अथवा **"अकबर की धार्मिक नीति उसकी मूर्खता का प्रतीक थी।" व्याख्या कीजिए।** *(1999)*

उत्तर—

दीन-ए-इलाही

सन् 1582 ई० में मुगल सम्राट अकबर द्वारा प्रचलित 'दीन-ए-इलाही' धर्म का संक्षिप्त परिचय निम्नवत् है—

(1) दीन-ए-इलाही नामक एक नए धर्म की स्थापना—अकबर ने अनेक धर्मों एवं धार्मिक ग्रन्थों का गहन अध्ययन किया। वह जैन, ईसाई, पारसी, सिक्ख और ब्राह्मण आचार्यों के घनिष्ठ सम्पर्क में आया। उसने इन सभी से गहन विचार-विमर्श किया और फिर इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि सभी धर्मों में अच्छाइयाँ और बुराइयाँ दोनों ही विद्यमान हैं। अतः उसने सभी धर्मों की अच्छाइयों को संकलित करके एक नवीन धर्म दीन-ए-इलाही या 'तौहीदे इलाही' का प्रचार एवं प्रसार किया।

(2) दीन-ए-इलाही धर्म को प्रचलित करने का उद्देश्य—इस धर्म का निर्माण अकबर ने हिन्दू-मुसलमानों को एक सूत्र में बाँधने के लिए किया था। कुछ विद्वानों का यह भी विचार है कि उसकी पैगम्बर बनने की बहुत अधिक महत्त्वाकांक्षा थी। अतः इसीलिए उसने एक नवीन धर्म दीन-ए-इलाही चलाया था।

दीन-ए-इलाही
(1) दीन-ए-इलाही नामक एक नए धर्म की स्थापना
(2) दीन-ए-इलाही धर्म को प्रचलित करने का उद्देश्य
(3) दीन-ए-इलाही के सिद्धान्त
(4) दीन-ए-इलाही की आलोचना
(5) दीन-ए-इलाही धार्मिक समन्वयता का प्रतीक।

(3) दीन-ए-इलाही के सिद्धान्त—इस धर्म के प्रमुख सिद्धान्त इस प्रकार थे—

(i) ईश्वर एक है। (ii) उदारता और दानशीलता का पालन। (iii) सांसारिक वासनाओं का त्याग। (iv) उत्तम और लोक-हितकारी कार्य करने की इच्छा। (v) सबके साथ समान व्यवहार और दूसरे की इच्छाओं का आदर करना। (vi) सूर्य व अग्नि की पूजा अनिवार्य रूप से करना। (vii) मांस खाना निषिद्ध। (viii) दीन-ए-इलाही के अनुयायियों की जब आपस में भेंट हो, तो अभिवादन करते समय अल्ला हो अकबर और जल्ले जलाल हू कहना। (ix) इस धर्म का सबसे बड़ा पुजारी अथवा पैगम्बर सम्राट स्वयं था। (x) इस धर्म के अनुयायियों को जीवित रहते ही अपना मृतक भोज देना पड़ता था।

(4) दीन-ए-इलाही की आलोचना—दीन-ए-इलाही की आलोचना करते हुए वी० ए० स्मिथ ने लिखा है कि, "दीन-ए-इलाही अकबर की मूर्खता का प्रतीक था, न कि बुद्धिमत्ता का।" वस्तुतः स्मिथ का यह कथन आंशिक रूप से सत्य है, क्योंकि भारत में पहले से ही अनेक धर्म प्रचलित थे। अतः यहाँ नवीन धर्म चलाना मूर्खता ही थी, परन्तु फिर भी यह अकबर का एक महान् कार्य था। जिस उद्देश्य को लेकर उसने यह धर्म चलाया था वह बहुत महान् और पवित्र था। यह दूसरी बात है कि किन्हीं कारणोंवश उसका यह

धर्म प्रचलित नहीं हुआ। वास्तव में, यह उसकी दूरदर्शिता का प्रतीक था, मूर्खता का नहीं। उसके द्वारा प्रचलित इस धर्म का परिणाम बहुत सुखद रहा।

डॉ० ईश्वरी प्रसाद का कहना है कि, "अकबर की धार्मिक उदारता ने हिन्दुओं तथा मुसलमानों को एकता के सूत्र में आबद्ध किया और एक ऐसा आदर्श सामने रखा, जिसका यदि बाद में अनुसरण किया जाता, तो सहानुभूति तथा भ्रातृत्व में बँधे हुए एक राष्ट्रीय भारत का जन्म होता।"

अकबर के दीन-ए-इलाही की आलोचना करते हुए डॉ० स्मिथ लिखते हैं कि, "अकबर ने इस्लाम का परित्याग कर एक पाखण्ड की रचना की। वास्तव में, उसकी इच्छा दूसरा पैगम्बर बनने की थी।" यह एक आडम्बर पर आधारित प्रचार मात्र था क्योंकि दीन-ए-इलाही के कुल 18 अनुयायी थे, जिनमें केवल एक बीरबल ही हिन्दू था।" इस तरह कुछ विद्वान् इसे अकबर की पैगम्बर बनने की इच्छा और मूर्खता का ही प्रतीक मानते हैं।

(5) दीन-ए-इलाही धार्मिक समन्वयता का प्रतीक—कुछ समालोचकों के अनुसार, उसकी यह योजना मूर्खतापूर्ण न होकर महान् दूरदर्शिता की परिचायक थी। वह इस धर्म की स्थापना करके अपने मिथ्याभिमान की पूर्ति करना नहीं चाहता था और न ही वह पैगम्बर बनने का इच्छुक था। यदि दीन-ए-इलाही की स्थापना में अकबर का उद्देश्य मिथ्याभिमान की पूर्ति करना, जनता का प्रशंसा-पात्र बनना तथा धर्म का पैगम्बर होना होता, तो वह इस धर्म के प्रचार के लिए अपनी सम्पूर्ण शक्ति एवं राज्य के समस्त साधनों का प्रयोग अवश्य करता। ऐसी दशा में यह बिल्कुल असम्भव नहीं था कि इस धर्म की उन्नति व प्रचार नहीं होता, किन्तु अकबर ने ऐसा नहीं किया। उसने इस धर्म को बलपूर्वक मनवाने का भी प्रयत्न नहीं किया। अतः दीन-ए-इलाही से अकबर की विशाल हृदयता एवं सहिष्णुता का ही परिचय मिलता है।[1] सत्य तो यह प्रतीत होता है कि अकबर के 'दीन-ए-इलाही' का मूल भाव धार्मिक सहिष्णुता की भावना से ओतप्रोत था।

प्रश्न 5—"अकबर एक राष्ट्रीय शासक था।" इस कथन की समीक्षा कीजिए। *(Imp.)(1993, 95)*

अथवा **अकबर ने भारत की राष्ट्रीय एकता के लिए क्या प्रयत्न किए ?**

अथवा **भारत के राजनीतिक एकीकरण के क्षेत्र में अकबर के योगदान की व्याख्या कीजिए।** *(1994)*

अथवा **"अकबर एक राष्ट्रीय सम्राट था।" विवेचना कीजिए।** *(1991, 95, 97)*

अथवा **"अकबर एक महान् राष्ट्रीय सम्राट था।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।** *(1997)*

अथवा **"भारत में मुगल साम्राज्य के विस्तार एवं स्थायित्व के लिए अकबर द्वारा क्या प्रयास किए गए थे ? क्या वह राष्ट्रीय शासक था ?**

अथवा **"अकबर के सामाजिक एवं सैनिक सुधारों ने उसे भारत का एक राष्ट्रीय सम्राट बनाया।" स्पष्ट कीजिए।** *(1999)*

उत्तर—

अकबर एक राष्ट्रीय सम्राट के रूप में (भारत के राजनीतिक एकीकरण की दिशा में अकबर का योगदान)

अकबर को राष्ट्रीय सम्राट सिद्ध करते हुए डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव लिखते हैं, "अकबर की राजसत्ता राष्ट्रीय भावना से अनुप्राणित थी।" कर्नल मैलसेन के शब्दों में, "अकबर का महान् विचार एक सम्राट के अन्तर्गत समस्त देश की एकता स्थापित करना था।"

अकबर को निम्नलिखित आधारों पर एक राष्ट्रीय सम्राट के रूप में स्वीकार किया जाता है—

(1) हिन्दू-मुस्लिम एकता की स्थापना—शेरशाह के अतिरिक्त सभी मुसलमान शासकों की धार्मिक नीति का उद्देश्य केवल मुसलमानों को सुविधाएँ प्रदान करना, उन्हीं को मान-सम्मान देना और हिन्दुओं का दमन करना था। इससे दोनों सम्प्रदाय एक-दूसरे के कट्टर विरोधी बन गए थे, किन्तु अकबर

1. समकालीन इतिहासकारों अब्दुल कादिर बदायूँनी और निजामुद्दीन अहमद के अनुसार दीन-ए-इलाही धर्म के सदस्य केवल 18 लोग ही थे, जिनमें केवल एक हिन्दू बीरबल ही था।

ने एक विशेष धार्मिक समन्वय की नीति अपनाकर सर्वप्रथम हिन्दू-मुसलमानों को एक-दूसरे के निकट लाने का प्रयत्न किया था। वह हिन्दू रीति-रिवाजों और त्योहारों को अपनाकर एक महान् राष्ट्रीय सम्राट बन गया था।

अकबर एक राष्ट्रीय सम्राट के रूप में

(1) हिन्दू-मुस्लिम एकता की स्थापना
(2) राजनीतिक एकता की स्थापना
(3) धर्मान्धता का परित्याग
(4) धर्म-निरपेक्षता की नीति
(5) अकबर का भारतीय हिन्दू बनना।

(2) राजनीतिक एकता की स्थापना—अकबर ने राष्ट्रीय एकता स्थापित करने के उद्देश्य से सम्पूर्ण साम्राज्य में एक-सी शासन व्यवस्था, एक-से कानून, एक समान न्याय व्यवस्था एवं दण्ड-विधान की व्यवस्था की और सम्पूर्ण देश की एक राष्ट्रभाषा फारसी घोषित की थी।

डॉ० पी० सरन ने अकबर के राज्य की प्रशंसा करते हुए लिखा है, **"अकबर का साम्राज्य एक संस्कृति, एक परम्परा और एक ही राष्ट्र के सिद्धान्त पर आधारित था और यह राज्य वास्तव में एक राष्ट्रीय राज्य था।"**

(3) धर्मान्धता का परित्याग—उसने कट्टर इस्लाम धर्म का परित्याग करके एक ऐसा धर्म प्रचलित किया, जो उदार एवं समान व्यवहार पर आधारित था। वह सभी धर्मों के अनुयायियों के साथ समानता का व्यवहार करता था। उसने हिन्दुओं के धार्मिक रीति-रिवाजों को भी अपनाया था।

(4) धर्म-निरपेक्षता की नीति—उसने लोगों के साथ किसी भी क्षेत्र में धार्मिक पक्षपात नहीं किया। साथ ही उसने समस्त धर्मों के व्यक्तियों को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान कर दी। उसकी इस धर्म-निरपेक्षता की नीति से देश में राष्ट्रीय भावना का विकास हुआ। स्वर्गीय पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने इसी कारण यह लिखा है कि, **"अकबर राष्ट्रवाद का जनक था।"**

(5) अकबर का भारतीय हिन्दू बनना—अकबर के पूर्वज इच्छा रखते हुए भी भारतीय नहीं बन सके थे, परन्तु अकबर भारतीय संस्कृति, रीति-रिवाज, परम्पराओं आदि में पूर्णरूप से स्वयं को रंगने में सफल रहा था। उसने राजपूतों के साथ वैवाहिक सम्बन्ध भी बनाए। इस प्रकार, वह भारत के सांस्कृतिक वातावरण में पूर्णरूप से घुल-मिल गया था।

इस प्रकार, अकबर ने भारत में राष्ट्रीय चेतना जगाने में पूर्ण सफलता प्राप्त की। अतः वह एक राष्ट्रीय सम्राट कहलाने का सच्चा अधिकारी है। इस सन्दर्भ में डॉ० ईश्वरी प्रसाद लिखते हैं, **"शेरशाह प्रथम मुसलमान शासक था, जिसने अपने शासन का आधार शांति और प्रजा की सद्भावना को बनाया और शासन में से हिन्दू-मुसलमान के भेदभाव को निकाल दिया। अकबर ने उससे भी एक कदम आगे बढ़कर 'सुलह-ए-कुल' की नीति का अनुसरण किया, जिसने उसकी प्रजा के हृदय को प्रभावित किया तथा साम्राज्य की नींव को गहरा किया।"**

प्रश्न 6—अकबर को महान् सम्राट क्यों कहा जाता है? इतिहास में उसका स्थान निर्धारित कीजिए।
अथवा **अकबर के चरित्र का मूल्यांकन कीजिए। मध्यकालीन भारत के इतिहास में उसका क्या स्थान है?**
अथवा **"वह (अकबर) मनुष्यों का जन्मसिद्ध शासक था, जिसकी गणना इतिहास के सर्वश्रेष्ठ शासकों में होना पूर्णतया उचित एवं न्यायसंगत है।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।** ***(1990)***
अथवा **"अकबर की गणना भारत के महानतम् शासकों में की जाती है।" व्याख्या कीजिए।** ***(1992)***

उत्तर—

अकबर का चरित्र

(अकबर एक महान् सम्राट के रूप में)

अकबर को भारतीय इतिहास में ही नहीं, वरन् विश्व के इतिहास में एक उच्च और सम्मानीय स्थान प्राप्त है। कुछ विद्वान् तो उसे राष्ट्रीय सम्राट के रूप में भी स्वीकारते हैं। अकबर से पूर्व किसी मुस्लिम शासक ने अकबर के समान महान् कार्य नहीं किए थे। अकबर के समय यूरोप में अनेक शासक विभिन्न देशों में राज्य कर रहे थे, किन्तु अकबर अपने लोक-हितकारी कार्यों के कारण उन सब में अधिक प्रसिद्ध और महान् था। इस सन्दर्भ में स्मिथ ने लिखा है, **"अकबर इन सबकी अपेक्षा महान् था। वह जन्मजात नृपति (राजा) था और संसार के महानतम् सम्राटों में गिने जाने का उसको नैतिक अधिकार था। यह अधिकार उसके अद्वितीय नैसर्गिक गुणों एवं शानदार उपलब्धियों पर आधारित था।"**

इस प्रकार, अकबर अपने महान् नैतिक कार्यों के कारण एक महान् सम्राट था। उसके शासन काल में सांस्कृतिक क्षेत्र में विशेष प्रगति हुई थी। अकबर की महानता की प्रशंसा करते हुए के० टी० शाह लिखते हैं कि, "अकबर मुगलों में सर्वश्रेष्ठ और सम्भवतया यदि शक्तिशाली मौर्यों के पश्चात् से नहीं तो एक हजार वर्ष के भारतीय शासन में सबसे महान् था।"

अकबर का चरित्र (अकबर एक महान् सम्राट के रूप में)

(1) हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रयास
(2) राजनीतिक एकता की पुनर्स्थापना
(3) समानता की नीति
(4) धार्मिक स्वतन्त्रता
(5) महान् सेनानायक
(6) महान् शासक
(7) अकबर का उदार स्वभाव।

अकबर वास्तव में, भारतीय इतिहास का एक महान् सम्राट था। उसके महान् सम्राट होने में उसके चरित्र एवं व्यक्तित्व पर आधारित गुणों और कार्यों ने विशेष भूमिका निभाई थी। इनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(1) हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रयास—वह मुस्लिम शासकों में सर्वाधिक उल्लेखनीय शासक था, जिसने सही अर्थों में हिन्दू-मुसलमानों को एक-सूत्र में बाँधने के लिए व्यावहारिक कार्य किए थे। यद्यपि इससे पूर्व शेरशाह ने भी हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने का सराहनीय प्रयत्न किया था, लेकिन उसने कोई ठोस और व्यावहारिक कदम नहीं उठाया था। इसीलिए मैलसेन ने लिखा है, "अकबर हिन्दुओं तथा मुसलमानों में एकता स्थापित करने और राष्ट्रीय भावना को विकसित करने का प्रयास करने वाला प्रथम मुस्लिम सम्राट था।"

(2) राजनीतिक एकता की पुनर्स्थापना—अकबर से पूर्व भारत में राजनीतिक एकता का अस्तित्व नहीं रह गया था। अकबर ने उत्तरी और दक्षिणी भारत को जीतकर भारत में राजनीतिक एकता पुनः स्थापित की। उसने सारे देश में फारसी भाषा और सम्पूर्ण राज्य में एक ही शासन एवं न्याय व्यवस्था स्थापित की। इससे भी राजनीतिक एकता की दिशा में सफलता प्राप्त हुई।

(3) समानता की नीति—अकबर ने हिन्दू और मुसलमान, दोनों को ही अपने दरबार में बिना किसी जातिगत भेदभाव के उच्च पदों पर नियुक्त किया। उसने कभी भी जातीयता पर आधारित संकीर्ण भावना को कोई महत्त्व नहीं दिया। उसकी समानता की भावना पर आधारित नीति ने ही उसे एक महान् राष्ट्रीय सम्राट बना दिया।

(4) धार्मिक स्वतन्त्रता—अकबर धर्मान्धता की नीति को नहीं मानता था। उसके दृष्टिकोण में हिन्दू-मुसलमान सभी समान थे। इसलिए उसने हिन्दुओं पर से जजिया और तीर्थयात्रा कर हटा दिए तथा प्रत्येक वर्ग को धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की।

(5) महान् सेनानायक—अकबर एक उच्चकोटि का सेनानायक था। वह युद्ध की भीषणता, भयंकरता तथा रक्तपात से जरा भी विचलित नहीं होता था। यहाँ यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि वह जनता के उत्थान के दृष्टिकोण से ही युद्ध हेतु प्रवृत्त होता था। अकबर को सैन्य-संगठन तथा सेना के संचालन का पूर्ण ज्ञान था, इसलिए उसकी विजय पताका कभी नहीं झुकी थी।

(6) महान् शासक—अकबर एक उच्चकोटि का शासन-प्रबन्धक था। उसकी शासन-व्यवस्था मानव-समाज के कल्याण पर आधारित थी। उसने प्रचलित शासन में अनेक सुधार किए थे। उसने प्रशासन के सभी अंगों की ओर ध्यान दिया था। उसके राजस्व और न्याय विभाग के प्रबन्ध विशेष रूप से प्रशंसनीय थे।

(7) अकबर का उदार स्वभाव—अकबर का स्वभाव उदार था। वह कभी किसी से कठोरता के साथ नहीं बोलता था। वह अमीरों और सरदारों से प्रेमपूर्ण और नम्रता का व्यवहार करता था। साधारण जनता के प्रति भी वह सराहनीय व्यवहार किया करता था। वह दयालु अवश्य था, किन्तु अपराधी को कठोर-से-कठोर दण्ड देने में भी संकोच नहीं करता था। वह अपने सम्बन्धियों को बहुत महत्त्व देता था। अनेक बार वह अपराधियों को क्षमा भी कर देता था। उसने सलीम और मिर्जा हकीम को अनेक बार क्षमा किया था। वह बीरबल की मृत्यु पर बहुत रोया था और अबुल फजल की मृत्यु पर उसे अपार कष्ट हुआ था।

अकबर का इतिहास में स्थान

अकबर की गणना भारतीय इतिहास में ही नहीं, वरन् विश्व के इतिहास में भी, उसके विशिष्ट कार्यों एवं गुणों के कारण, एक महान् सम्राट के रूप में की जाती है। इतिहास में उसका स्थान निर्धारित करने के लिए हम कुछ इतिहासकारों के विचार, जो उन्होंने अकबर के कार्यों की प्रशंसा करते हुए व्यक्त किए हैं, प्रस्तुत कर सकते हैं—

(1) कर्नल मैलसेन के अनुसार—"अकबर की ख्याति उसके अमर कार्यों पर आधारित है। जब हम अकबर के कार्य-कलापों पर, उसके युग पर तथा उद्देश्य की प्राप्ति हेतु प्रयुक्त किए गए साधनों पर ध्यान देते हैं तो हमें यह विश्वास हो जाता है कि अकबर उन महान् व्यक्तियों में से था जिन्हें सर्वशक्तिमान परमात्मा राष्ट्रीय संकट के समय राष्ट्र को शान्ति तथा सहिष्णुता के मार्ग पर ले जाने के लिए भेजता है, जिस पर मानवता का कल्याण निहित है।"

(2) एडवर्ड तथा गैरेट के अनुसार—"अकबर ने विभिन्न कार्य-क्षेत्रों में अपनी योग्यता एवं प्रतिभा का परिचय दिया। वह स्वयं एक सैनिक, एक महान् सेनापति, योग्य शासन-प्रबन्धक, उदार शासक तथा उचित निर्णायक था।"

(3) प्रो० के० टी० शाह के अनुसार—"मुगलों में अकबर सबसे महान् था, और यदि मौर्यों के काल से नहीं, तो कम-से-कम एक सहस्र वर्षों तक के भारतीय शासकों में वह सबसे महान् था।"

(4) लारेंस बिनियान के अनुसार—"अकबर का सबसे महान् कार्य शासक के रूप में विभिन्न राज्यों, जातियों तथा धर्मों का एकीकरण करना था।"

संक्षेप में, हम कह सकते हैं कि अकबर की गणना विश्व के महान् सम्राटों में करना न्यायोचित है। उसमें वे सभी गुण विद्यमान थे, जो एक उच्चकोटि के सम्राट में होने चाहिए। डॉ० विन्सेन्ट स्मिथ ने उसके सम्बन्ध में उचित ही लिखा है कि, "वह मनुष्यों का जन्मजात शासक था, जिसकी गणना इतिहास के सर्वश्रेष्ठ शासकों में होनी नितान्त न्यायसंगत है। यह अधिकार निःसन्देह उसके प्राकृतिक गुणों, उसके मौलिक विचारों तथा उसकी सफलताओं पर आधारित है।"

सर वूल्जले हेग ने भी अकबर की प्रशंसा करते हुए लिखा है, "वास्तव में, अकबर भारत के महानतम् शासकों में से एक था। उसका तो युग ही एक महान् शासकों का युग था।"

प्रश्न 7— अकबर की केन्द्रीय शासन-व्यवस्था का संक्षेप में वर्णन कीजिए। *(1996)*

अथवा **"अकबर ने न केवल एक विस्तृत साम्राज्य की स्थापना की, वरन् उसने एक सुनियोजित शासन तंत्र का भी निर्माण किया।" व्याख्या कीजिए। *(1995)***

(संकेत—इस प्रश्न के उत्तर हेतु अकबर की केन्द्रीय एवं प्रान्तीय शासन-व्यवस्था का उल्लेख कीजिए। प्रान्तीय प्रशासन व्यवस्था के लिए अगला प्रश्न भी देखिए।)

उत्तर—

अकबर की केन्द्रीय शासन व्यवस्था

अकबर ने अत्यन्त संगठित केन्द्रीय शासन की स्थापना की थी। सुदृढ़ केन्द्रीय प्रशासन के परिणामस्वरूप वह एक विशाल साम्राज्य की समुचित व्यवस्था कर सका था।

अकबर के केन्द्रीय शासन की प्रमुख विशेषताएँ निम्नलिखित थीं—

(1) सर्वोच्च शक्ति-सम्पन्न सम्राट—मुगल बादशाह स्वयं ही शासनतन्त्र का सर्वोच्च अधिकारी, प्रमुख न्यायाधीश और मुख्य सेनापति होता था। वह केन्द्रीय शासन का सर्वेसर्वा होता था। वह किसी के प्रति भी अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं होता था और किसी अन्य बाह्य शक्ति का नियन्त्रण भी उस पर नहीं होता था। उसकी आज्ञा ही कानून होती थी। वह मन्त्रियों से परामर्श अवश्य लेता था, किन्तु वह उनके परामर्श को मानने के लिए बाध्य नहीं था। इस प्रकार, केन्द्रीय शासन की सम्प्रभुता राजा में बनी रहती थी। वस्तुतः मुगल शासक राजा के दैवी सिद्धान्त के समर्थक थे।

इतना होने पर भी मुगल सम्राट अकबर अन्य मुगल सम्राटों की भाँति निरंकुश या स्वेच्छाचारी नहीं था। अकबर कभी भी अपनी प्रजा पर अत्याचार नहीं करता था तथा हिन्दू-मुसलमान दोनों को ही एक समान समझता था। अकबर सदैव आम जनता के सुखों एवं सुविधाओं का पर्याप्त ध्यान रखता था। वह एक उदार और नैतिक आदर्शों का पालन करने वाला कुशल प्रशासक था।

(2) मन्त्रि-परिषद्—अकबर का साम्राज्य अत्यन्त विशाल था, जिसकी देखभाल सम्राट मात्र स्वयं ही समुचित प्रकार से नहीं कर सकता था। इसलिए उसने एक सुदृढ़ केन्द्रीय मन्त्रि-परिषद् की स्थापना की थी। इसमें अनेक मन्त्री होते थे, जो प्रशासन के विभिन्न भागों के अध्यक्ष होते थे। वे अपने विभाग के कार्यों की देखभाल करते थे और राजा के प्रति उत्तरदायी होते थे।

अकबर की केन्द्रीय शासन-व्यवस्था

(1) सर्वोच्च शक्ति-सम्पन्न सम्राट
(2) मन्त्रि-परिषद्—
  (i) दीवान
  (ii) मीर बख्शी
  (iii) खान-ए-सामा
  (iv) सदर-उस-सुदूर
  (v) अन्य सहायक मन्त्री—
    (क) मुहतसिब
    (ख) दारोगा-ए-डाक चौकी
    (ग) सूचना लेखक
    (घ) काजी-उल-कजात।

केन्द्रीय मन्त्रि-परिषद् में निम्नांकित मन्त्री होते थे—

(i) दीवान[1]—मुगल शासन में 'दीवान' का पद अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होता था, क्योंकि वह वित्त विभाग का अध्यक्ष होता था। अन्य सभी मन्त्रियों पर वही नियन्त्रण रखता था। अबुल फजल ने आइन-ए-अकबरी में लिखा है, "दीवान राजकोष की देखभाल और आय-व्यय का निरीक्षण करता था। सभी राजकीय आदेशों को क्रियान्वित करने से पूर्व इसको कार्यालयों में उनका रिकार्ड रखना पड़ता था।"

दीवान को अनेक उच्च पदों पर नियुक्तियाँ करने का अधिकार भी प्राप्त था। उसकी सहायता के लिए दो अन्य मन्त्री होते थे। प्रथम 'दीवाने खालसा' जो राज्य की सम्पूर्ण खालसा भूमि की व्यवस्था करता था तथा दूसरा 'दीवाने-जागीर' होता था, जो जागीर की भूमि की व्यवस्था करता था।

(ii) मीर बख्शी—यह दूसरा महत्त्वपूर्ण मन्त्री होता था। मीर बख्शी, मुगल सम्राट का प्रमुख सैनिक परामर्शदाता होता था। बाह्य रूप से तो वह सम्राट की निजी सेना का प्रधान सेनापति होता था, किन्तु वास्तव में वह सम्पूर्ण सेना का प्रधान सेनापति था। मीर बख्शी, सैनिकों को भर्ती करने, उन्हें अपने कार्यालय से वेतन देने, घोड़ों का निरीक्षण करने, प्रशिक्षण देने, अस्त्र-शस्त्रों और रण-सामग्री का प्रबन्ध करने आदि सम्बन्धित सभी प्रकार के कार्य करता था।

(iii) खान-ए-सामा—यह मन्त्री शाही परिवार के प्रबन्ध का अध्यक्ष होता था। शाही इमारतों, सड़कों, बागों आदि की देखभाल भी यही मन्त्री करता था। इसके अधीन 'दीवान-ए-बयूतात' नामक एक उच्च पदाधिकारी होता था। 'दीवान-ए-बयूतात'—यह मृतकों की सम्पत्ति की सुरक्षा करता था और उनका लेखा-जोखा रखता था।

(iv) सदर-उस-सुदूर—यह भी महत्त्वपूर्ण पद होता था। डॉ० एस० आर० शर्मा के अनुसार, **"सदर प्रधान न्यायाधीश, दान विभाग का प्रधान, शिक्षामन्त्री और शाही शिक्षा का अध्यक्ष होता था।"**

(v) अन्य सहायक मन्त्री : (क) मुहतसिब—यह अधिकारी तौल व माप का निरीक्षण करता था तथा इस बात की देखभाल करता था कि बाजार में दुकानदार वस्तुओं का सही मूल्य ले रहे हैं या अधिक। धर्म अधिकारी के रूप में वह जनता में नैतिक सिद्धान्तों का प्रसार करता था।

(ख) दारोगा-ए-डाक चौकी—यह अधिकारी 'शाही डाक विभाग' का प्रमुख अधिकारी होता था।

(ग) सूचना लेखक—इसका कार्य मनसबदारी के विषय में सम्राट को सूचना भेजना होता था।

(घ) काजी-उल-कुजात—यह न्याय विभाग का प्रधान अधिकारी था। न्याय कार्य के लिए स्थानीय काजियों की नियुक्ति भी यही किया करता था। मुगलकाल में काजी को असीमित अधिकार प्राप्त थे। परन्तु काजी अपने अधिकारों का दुरुपयोग करने लगे थे।

इसके अतिरिक्त केन्द्रीय शासन प्रबन्ध में कुछ और छोटे स्तर के भी अधिकारी होते थे, जिनमें टकसाल विभाग, तोपखाना, गुप्तचर विभाग आदि के अधिकारी प्रमुख थे। इस प्रकार, अकबर ने शक्तिशाली और संगठित केन्द्रीय शासन की व्यवस्था की थी। कालान्तर में उसके द्वारा अपनाई गई शासन व्यवस्था थोड़े-बहुत परिवर्तन के साथ सभी मुगल सम्राटों द्वारा अपनाई गई थी।

---

1. मुन्तखब-उत-तवारीख और आइन-ए-अकबरी के अनुसार अकबर के शासन काल में दीवान को वज़ीर कहा जाता था, जो कि वित्तमन्त्री होता था। अकबर का प्रधानमन्त्री 'वकील-उल-सल्कात' एक पृथक् अधिकारी होता था।

प्रश्न 8—अकबर की प्रान्तीय शासन-व्यवस्था की प्रमुख विशेषताओं का वर्णन कीजिए।

(V. Imp.)

उत्तर—

अकबर की प्रान्तीय शासन-व्यवस्था

अकबर एक बुद्धिमान शासक था। उसने एक संगठित और शक्तिशाली प्रान्तीय शासन की भी समुचित व्यवस्था की थी। उसकी प्रान्तीय शासन-व्यवस्था निम्न प्रकार थी—

(1) सूबेदार—अकबर ने अपने सम्पूर्ण साम्राज्य को 15 प्रान्तों में बाँट दिया था[1] और प्रत्येक प्रान्त का एक मुख्य अधिकारी नियुक्त किया था जिसे सूबेदार कहा जाता था। उसे 'नाजिम' और 'साहिबे-सूबा' भी कहा जाता था। सूबेदार को अपने प्रान्त में सम्राट के समान असीमित अधिकार प्राप्त थे।

उसकी नियुक्ति सम्राट अपनी इच्छानुसार करता था और उसे कभी भी पद से अपदस्थ कर सकता था। इस पद के लिए आयु एवं अनुभव की सीमा या अन्य कोई विशेष शर्त निश्चित नहीं थी।

सूबेदार का प्रमुख कार्य अपने प्रान्त में शान्ति एवं व्यवस्था स्थापित करना था। वह न्याय सम्बन्धी कार्य भी करता था। प्रान्तीय सेना का मुख्य सेनापति भी सूबेदार ही होता था। सूबेदार प्रति माह प्रान्त की सभी सूचनाओं को सम्राट के पास भेजता था। इतना उच्च पदाधिकारी होने पर भी वह सम्राट की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता था।

अकबर की प्रान्तीय शासन-व्यवस्था

(1) सूबेदार
(2) दीवान
(3) सदर
(4) फोतदार
(5) आमिल
(6) मीर बख्शी
(7) कोतवाल
(8) फौजदार
(9) वाकयानवीस।

(2) दीवान—सूबेदार के अतिरिक्त प्रत्येक प्रान्त में दूसरा महत्त्वपूर्ण अधिकारी दीवान होता था। इसकी नियुक्ति भी सम्राट द्वारा होती थी। यह सूबेदार के कार्यों के संचालन में सहयोग देता था। इन दोनों अधिकारियों, सूबेदार और दीवान का कार्य संयुक्त रूप से शासन का संचालन करते हुए एक-दूसरे के कार्यों पर नियन्त्रण रखना भी था।

(3) सदर—इसकी नियुक्ति भी सम्राट करता था। इस पद पर योग्य एवं धार्मिक विचारों वाले व्यक्ति ही नियुक्त किए जाते थे। सदर; सहायता विभाग और दान-विभाग का अध्यक्ष होता था। इसका कार्य अपनी इच्छानुसार धार्मिक कार्यों के लिए भूमि और धन प्रदान करना होता था।

(4) फोतदार—इसका कार्य भूमि-कर एकत्र करके राजकोष में जमा करना, किसानों को भूमि-कर की रसीद देना और रजिस्टर में करदाताओं का विवरण लिखना होता था।

(5) आमिल—आमिल का मुख्य कार्य कर एकत्र करना होता था। इसके अतिरिक्त कृषि योग्य भूमि का निरीक्षण एवं कृषि के अयोग्य भूमि को योग्य बनवाना आदि भी आमिल के ही कार्य होते थे।

(6) मीरबख्शी—इसका प्रमुख कार्य सैनिकों की भर्ती करना तथा सेना के संगठन और नियन्त्रण का उत्तरदायित्व सम्भालना था।

(7) कोतवाल—यह प्रान्तीय पुलिस विभाग का प्रधान अधिकारी होता था। प्रान्त में शान्ति एवं व्यवस्था बनाए रखने का उत्तरदायित्व भी इसी पर होता था।

(8) फौजदार—यह प्रान्त की सेना का अधिकारी होता था और सैन्य-शक्ति के आधार पर जनता को अनुशासित रखता था, इसीलिए उस समय प्रान्तों में अपराध बहुत कम होते थे।

(9) वाकयानवीस—वाकयानवीस या सूचना-लेखक का कार्य प्रान्त की समस्त सूचनाओं को गुप्त रूप से सम्राट के पास भेजना होता था। भ्रामक सूचना देने या कोई सूचना छिपा लेने पर उसे कठोर दण्ड भी दिया जाता था।

---

1. अकबर के अधीन—काबुल, पंजाब, मुल्तान, दिल्ली, आगरा, अवध, इलाहाबाद, बिहार, बंगाल, मालवा, अजमेर, गुजरात, बरार, खानदेश, अहमद नगर—पन्द्रह सूबे थे। जहाँगीर के काल में 17 शाहजहाँ के समय में 22 और औरंगजेब के काल में 21 सूबे थे।

अकबर के केन्द्रीय शासन की तुलना में प्रान्तीय शासन अधिक सुसंगठित न था। डॉ० ईश्वरी प्रसाद ने अकबर के प्रान्तीय प्रशासन की आलोचना करते हुए लिखा है, "प्रान्तीय शासन में सूबेदार की शक्ति नियन्त्रित करने के लिए पूर्ण प्रयास किया जाता था, किन्तु अधिक दूरी और आवागमन के उत्तम साधनों के न होने के कारण तथा युद्धों की अधिकता के कारण सूबेदारों को पूर्णरूप से वश में रखने में सफलता नहीं मिलती थी। रिश्वतखोरों का बाजार गर्म था, जिससे अत्याचार का प्रतिकार नहीं हो पाता था।"

स्थानीय शासन

अकबर का स्थानीय शासन निम्नवत् था—

(1) सरकारों (जिलों) का शासन—प्रत्येक प्रान्त अनेक सरकारों (जिलों) में विभाजित था। सरकार का प्रधान कर्मचारी फौजदार कहलाता था। वह जिलों में शान्ति एवं व्यवस्था बनाए रखने का कार्य करता था । इसके अतिरिक्त सरकार के महत्त्वपूर्ण अधिकारी काजी, आमिल, कोतवाल आदि होते थे।

> **स्थानीय शासन**
> (1) सरकारों (जिलों) का शासन
> (2) परगना
> (3) गाँवों का शासन।

(2) परगना—प्रत्येक जिला परगनों में बँटा होता था। परगनों के प्रमुख कर्मचारी शिकदार, आमिल, काजी और खजांची आदि होते थे। इनका अलग-अलग कार्य होता था।

(3) गाँवों का शासन—प्रत्येक परगना अनेक गाँवों से मिलकर वना था। गाँवों में मुकद्दम, पटवारी आदि अधिकारी होते थे। इन सभी के कार्य भी बँटे हुए थे।

मुगल साम्राज्य का विस्तार : अकवर से औरंगजेब तक

प्रश्न 9—अकबर की भू-राजस्व नीति का संक्षिप्त वर्णन प्रस्तुत कीजिए। *(V. Imp.) (1996)*

अथवा **अकबर के भूमि सम्बन्धी सुधारों पर एक लेख लिखिए।**

अथवा **"अकबर की राजस्व व्यवस्था प्रशंसनीय थी।" डॉ० स्मिथ के इस कथन का परीक्षण कीजिए।**

अथवा **अकबर की भू-राजस्व व्यवस्था का वर्णन कीजिए।** *(1999)*

उत्तर—

भूमि-कर व्यवस्था

अकबर ने सिंहासनारूढ़ होने के पश्चात् अपने साम्राज्य में भूमि सुधार की ओर पर्याप्त ध्यान दिया। उसने तत्कालीन भूमि-कर व्यवस्था के दोषों को दूर करने के लिए 1582 ई० में टोडरमल को राजस्व मन्त्री के रूप में दीवाने अशरफ के पद पर नियुक्त किया था। टोडरमल ने अकबर की भूमि-कर व्यवस्था में अनेक प्रशंसनीय सुधार किए थे, जो इस प्रकार हैं—

राजस्व या भूमि-कर निर्धारण की प्रणालियाँ—राजा टोडरमल ने भूमि-कर निर्धारण करने की जब्ती प्रणाली चलाई थी। यह प्रणाली बहुत उचित एवं वैज्ञानिक थी और कृषकों के लिए बहुत ही लाभदायक सिद्ध हुई थी। इस प्रणाली की विशेषताएँ इस प्रकार थीं—

(1) भूमि की नाप—जब्ती प्रणाली के अनुसार, अकबर ने सम्पूर्ण कृषि योग्य भूमि की नाप करवाई। अकबर से पूर्व भूमि नापने के लिए सन की बनी रस्सी का प्रयोग किया जाता था। इससे रस्सी के भीगने पर भूमि की नाप कम और सूखने पर अधिक हो जाती थी। इस प्रकार, भूमि की नाप-जोख में काफी अव्यवस्था होती थी। इस असुविधा से मुक्ति पाने के लिए टोडरमल ने भूमि नापने के लिए 'जरीब', जो लकड़ी या लोहे का बना होता था, का प्रयोग प्रारम्भ किया। इससे भूमि मापन में रस्सी वाले दोष समाप्त हो गए। इसके साथ ही उसने 3600 वर्ग गज़ का एक बीघा निश्चित किया।

(2) भूमि का वर्गीकरण—टोडरमल ने भूमि का वर्गीकरण उपज के आधार पर निम्न प्रकार किया—

(i) पोलज भूमि—पोलज भूमि उसे कहा जाता था, जिस पर वर्षभर जुताई-बुआई होती थी और उससे वर्षभर मुगल राज्य को कर प्राप्त होता था।

(ii) **परौती भूमि**—परौती भूमि उस भूमि को कहा जाता था, जिस पर वर्ष में कुछ महीने ही फसल उत्पन्न की जाती थी और कुछ महीने वह खाली रहती थी।

(iii) **चांचर भूमि**—जो भूमि तीन-चार वर्ष खाली पड़ी रहती थी और जिस पर कृषि नहीं होती थी, उसे चांचर भूमि कहा जाता था।

(iv) **बंजर भूमि**—वह भूमि जो सर्वाधिक निकृष्ट होती थी और कई वर्ष बिना कृषि के खाली पड़ी रहती थी, बंजर भूमि कहलाती थी।

भूमि-कर निर्धारण की प्रणालियाँ

(1) भूमि की माप
(2) भूमि का वर्गीकरण
(3) वैज्ञानिक आधार पर भूमि-कर या मालगुजारी निर्धारण
(4) कर-दर की सूचियाँ
(5) किसानों को सुविधाएँ।

(3) **वैज्ञानिक आधार पर भूमि-कर या मालगुजारी का निर्धारण**—राजा टोडरमल ने वैज्ञानिक आधार पर मालगुजारी निर्धारित की थी। उसने भूमि-कर; भूमि की उर्वरा-शक्ति के आधार पर निश्चित किया था। पोलज और परौती भूमियों की औसत उपज का 1/3 भाग लगान के रूप में वसूल किया जाता था। चांचर भूमि से प्रथम वर्ष 1/15 भाग और दूसरे वर्ष 2/15 भाग; चौथे वर्ष 1/15 भाग और पाँचवें वर्ष 1/3 भाग लगान लिया जाता था। बंजर भूमि से बहुत कम लगान लिया जाता था।

(4) **कर-दर की सूचियाँ**—अकबर कर लेने से पूर्व, कर-दर की सूचियाँ बनवाता था। इन दर-सूचियों का निर्माण; विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न फसलों के लिए पिछले दस वर्षों की औसत प्रचलित दरों के आधार पर किया जाता था। फिर उपज के अनुसार भूमि से मालगुजारी नकद रूप में वसूल की जाती थी।

(5) **किसानों को सुविधाएँ**—अकबर ने किसानों को अपनी सुविधा के अनुसार लगान नकद रूप में या अनाज के रूप में देने की छूट दी थी और फसल को किसी प्रकार से क्षति पहुँचने पर राज्य की ओर से आर्थिक सहायता देने की व्यवस्था कराई थी। निर्धन किसानों को ऋण देने की भी व्यवस्था की गई थी।

राजस्व प्रणाली की आलोचना—कुछ विद्वानों ने अकबर की राजस्व प्रणाली की प्रबल आलोचना की है। उनका मत है कि टोडरमल की राजस्व प्रणाली का उद्देश्य कृषकों का हित करना नहीं था, बल्कि राज्य की आय को किसान और सरकारी कर्मचारियों के छल-कपट से दूर रखना था।

लेकिन उपर्युक्त मत असत्य ही प्रतीत होता है। प्राप्त साक्ष्यों[1] के आधार पर यह सिद्ध होता है कि राज्य के किसान उस समय में सुखी और सम्पन्न थे। साथ ही राजकोष में धन की अपार वृद्धि भी हुई थी। किसानों का राज्य से सम्पर्क होने के कारण वे ठेकेदारों एवं जमींदारों के अत्याचारों से मुक्त हो गए थे।

अकबर की राजस्व व्यवस्था की सराहना करते हुए डॉ० वी० ए० स्मिथ ने लिखा है, "अकबर की राजस्व व्यवस्था प्रशंसनीय थी। उसके सिद्धान्त उच्च कोटि के थे और वे आदेश जो राज्य की ओर से कर्मचारियों को दिए गए थे, सन्तोषजनक थे।"

प्रश्न 10—अकबर के सैन्य-संगठन व सैनिक सुधारों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

अथवा **अकबर की मनसबदारी प्रथा क्या थी? इससे मुगल साम्राज्य को क्या लाभ और हानियाँ हुईं?**

अथवा **अकबर की मनसबदारी व्यवस्था से आप क्या समझते हैं? क्या यह व्यवस्था उसकी सैनिक शक्ति का आधार थी?** ***(1997)***

अथवा **मनसबदारी व्यवस्था के गुण-दोषों के विशेष सन्दर्भ में उसके आधारभूत तत्त्वों का विवरण दीजिए।** ***(1997)***

उत्तर—

सैन्य-संगठन

जिस समय अकबर गद्दी पर बैठा था, उस समय मुगलों की सैनिक व्यवस्था में अनेक दोष व्याप्त थे। सैनिक नियुक्तियाँ वंशानुगत और जातिगत आधार पर होती थीं। इससे सेना में अयोग्य सैनिक भर्ती

---

1. सर टॉमस रो, बर्नियर और मनूची के विवरणों से पता चलता है कि मुगल काल में भारत आर्थिक दृष्टि से अत्यधिक सम्पन्न व समृद्धशाली था।

हो जाते थे। अकबर अपने राज्य का अधिक-से-अधिक विस्तार करना चाहता था, जिसके लिए एक सुसंगठित एवं विशाल सेना की आवश्यकता थी। अतः उसने अनेक सुधार करके एक नवीन सैन्य व्यवस्था स्थापित की, जो अग्र प्रकार थी—

सेना के विभिन्न प्रकार—अकबर ने अपनी सेना में पाँच प्रकार की सेनाओं का गठन किया—(i) पैदल सेना, (ii) घुड़सवार सेना, (iii) हाथी सेना, (iv) नौ सेना, तथा (v) तोपखाना।

उसकी पैदल और घुड़सवार सेना मनसबदारी प्रणाली पर आधारित थी। अकबर ने घोड़े दागने और सैनिकों का हुलिया आदि लिखने की भी व्यवस्था की थी।

हाथी; युद्ध का सामान ढोने के लिए और युद्ध में लड़ने के लिए होते थे। ये युद्ध-क्षेत्र में शत्रुओं को अपनी सूँड से नीचे पटककर या पैरों के नीचे कुचलकर मार डालते थे।

मनसबदारी प्रथा

> **मनसबदारी प्रथा**
> (1) मनसबदारी का अर्थ
> (2) मनसबदारों की श्रेणियाँ
> (3) मनसबदारी विभाग
> (4) मनबसदारी प्रथा की विशेषताएँ
> (5) मनसबदारी प्रथा के दोष
> (6) अहदी सेना।

सन् 1571 ई० में सम्राट अकबर ने सेना का पुनर्गठन करने के लिए शाहबाज खाँ को मीरबख्शी (सैनिक पदाधिकारी) के पद पर नियुक्त किया और एक नवीन सैनिक व्यवस्था लागू की, जिसे मनसबदारी प्रथा के नाम से जाना जाता है।

(1) मनसबदारी का अर्थ—'मनसब' का अर्थ स्थान या पद विशेष से होता है। अकबर ने एक विशाल सेना संगठित की और कुछ सैनिक पदाधिकारियों को विशेष पद प्रदान किए। इन्हें ही मनसबदार कहा जाता था। प्रत्येक मनसबदार को एक निश्चित सेना रखनी पड़ती थी और उस सेना के रख-रखाव के लिए सरकार की ओर से नकद वेतन दिया जाता था।

(2) मनसबदारों की श्रेणियाँ—इस सम्बन्ध में इतिहासकार एकमत नहीं हैं। किसी के अनुसार 66, किसी के अनुसार 33 और डॉ० सरन के अनुसार 10 से 10 हजार सैनिकों की संख्या के आधार पर मनसबदारों की विभिन्न श्रेणियाँ थीं। इनमें से कुछ प्रमुख श्रेणियाँ इस प्रकार थीं—

(i) 21 से 400 सैनिकों तक के मनसबदारों को केवल मनसब कहा जाता था।

(ii) 500 से 2,500 तक के सैनिक रखने वाले मनसबदार उमरा कहलाते थे।

(iii) 3000 से अधिक सैनिकों वाले मनसबदारों को 'उमरा-ए-आजम' की पदवी दी जाती थी।

(iv) राज्य के सर्वोच्च मनसबदार को 'अमीर-उल-उमरा' कहा जाता था। इस पद पर राजवंश के या किसी अत्यन्त विश्वासपात्र व्यक्ति को ही नियुक्त किया जाता था।

(v) मनसबदारों के दो प्रधान वर्ग थे—हाजिरे-रिकाब जो दरबार में नियुक्त रहते थे तथा तैनातियाँ जो प्रान्तीय सरकारों की सेवा में रहते थे।

(3) मनसबदारी विभाग—अकबर ने मनसबदारों की नियुक्ति, वेतन, पदोन्नति तथा उन्हें पद से हटाने आदि का लेखा-जोखा रखने के लिए एक अलग विभाग की स्थापना की थी जिसे मनसबदारी विभाग कहते थे।

(4) मनसबदारी प्रथा की विशेषताएँ—मनसबदारी प्रथा की निम्नलिखित विशेषताएँ थीं—

(i) मनसबदारों की नियुक्ति, वेतन, कार्यवाही आदि सभी सम्राट की इच्छा पर निर्भर होता था।

(ii) प्रत्येक मनसबदार फौजदारी और दीवानी के सभी कार्य करता था।

(iii) मनसबदारों को घोड़े दागने और सैनिकों का हुलिया लिखना आवश्यक होता था।

(iv) मनसबदारों को समय-समय पर इनाम और पुरस्कार भी दिए जाते थे।

(v) उनके विशेष कार्यों व सेना का निरीक्षण भी किया जाता था।

(vi) प्रत्येक मनसबदार को सैनिकों की एक निश्चित संख्या रखने का आदेश दिया गया था, किन्तु वह उतनी संख्या रखने के लिए बाध्य नहीं था।

(5) मनसबदारी प्रथा के दोष—मनसबदारी प्रथा के प्रमुख दोष इस प्रकार थे—

(i) अकबर के बहुत-से मनसबदार स्वार्थी और लालची थे, जिसके कारण वे अच्छे सैनिकों की भर्ती न करके सरकारी धन को अपने पास रख लेते थे।

(ii) मनसबदारों की सेना में सैनिक नियमों के अभाव के कारण अनुशासनहीनता उत्पन्न हो गई थी।

(iii) मनसबदार घटिया किस्म के घोड़े रखते थे और अच्छे घोड़ों को खरीदने के लिए दिया गया धन स्वयं हड़प जाते थे।

(iv) सैनिकों की भर्ती में सम्राट का नियन्त्रण नहीं रहता था।

(v) बूढ़े मनसबदारों को पेंशन देने और नियुक्त मनसबदारों को अधिक वेतन देने के कारण राज्य का काफी धन व्यय हो जाता था।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि मनसबदारी व्यवस्था में गुण और दोष दोनों ही थे परन्तु तुलनात्मक रूप से दोष अधिक थे।

(6) अहदी सेना—मनसबदारों से पृथक् सम्राट अकबर ने अपनी सुरक्षा के लिए एक स्वतन्त्र सेना भी संगठित की थी। सम्राट के अंगरक्षक के रूप में कार्य करने वाली यह सेना अहदी सेना कहलाती थी। इसका प्रवन्धक दरबार का एक प्रमुख अमीर होता था। इस सेना के सैनिकों का वेतन; साधारण सैनिकों से अधिक होता था।

अकबर की सैनिक व्यवस्था का अध्ययन करने से यह स्पष्ट होता है कि उसने सैन्य व्यवस्था में कई नवीन प्रयोग किए थे। उसके सैनिक प्रबन्ध की सबसे अधिक प्रशंसनीय विशेपता यह थी कि उसने अनेक राजपूतों को भी मनसब बनाया था। राजपूत सैनिकों को भी वह भर्ती किया करता था। इस प्रकार, उसकी सेना वीर जाति के सैनिकों से सम्पन्न हो गई थी।

प्रश्न 11—जहाँगीर के शासनकाल की प्रमुख घटनाओं का उल्लेख करते हुए उसकी प्रमुख उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।

अथवा **जहाँगीर के शासनकाल की मुख्य घटनाओं का विवेचन कीजिए।** *(1999)*

उत्तर—

जहाँगीर का परिचय

अकबर ने आमेर की राजकुमारी जोधाबाई से विवाह किया था और मुस्लिम रिवाजों के आधार पर उसका नाम मरियम उज्जमानी रखा था। बहुत काल तक सम्राट अकबर निःसन्तान रहे। अन्त में, ख्वाजा मुइनुद्दीन सलीम चिश्ती नामक एक सूफी सन्त के आशीर्वाद से मरियम उज्जमानी के गर्भ से 30 अगस्त, 1569 ई० को एक पुत्र उत्पन्न हुआ, जिसका नाम सन्त की यादगार में सलीम ही रखा गया। अकबर के दो अन्य पुत्र मुराद और दनियाल भी थे, जिनकी मृत्यु बहुत पहले ही हो गई थी।

शिक्षा तथा परिवार—सलीम की शिक्षा का भार अब्दुर्रहीम खानखाना पर छोड़ा गया। उसकी देख-रेख में सलीम ने अरबी, फारसी, हिन्दी, इतिहास, भूगोल, गणित आदि का ज्ञान प्राप्त कर लिया। अकबर ने 'सलीम' का विवाह आमेर नरेश राजा भगवानदास की पुत्री 'मानबाई' के साथ किया था। इसको जहाँगीर ने शाहबेगम की उपाधि प्रदान की थी। सलीम ने कई अन्य विवाह भी किए थे।

जहाँगीर के शासनकाल की मुख्य घटनाएँ
(जहाँगीर की उपलब्धियाँ)

सम्राट जहाँगीर के शासनकाल की मुख्य घटनाओं अथवा उसकी उपलब्धियों का विवरण निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया है—

(1) विरोधियों का अन्त—अजीज कोका तथा मानसिंह दोनों ने ही सलीम का विरोध किया था। अत: आगरा के किले में 3 नवम्बर, 1605 ई० को सिंहासन पर आरूढ़ होते ही सलीम ने नुरुद्दीन मोहम्मद जहाँगीर की उपाधि धारण की और मानसिंह तथा उसके सहायक अजीज कोका के विरोध का अन्त कर दिया।

(2) सहायकों का सम्मान—सलीम ने वीरसिंह बुन्देला नामक व्यक्ति से अबुल फजल का वध कराया था, अतएव सिंहासन पर बैठते ही सम्राट ने वीरसिंह बुन्देला को तीन हजार मनसब का पद देकर सम्मानित किया। उसने अपने गुरु **अब्दुर्रहीम खानखाना** तथा नूरजहाँ के पिता **मिर्जा ग्यासबेग** को भी उच्च पदों पर आसीन किया।

(3) लोक कल्याणकारी कार्य—सम्राट जहाँगीर अत्यन्त ही कूटनीतिज्ञ शासक था। उसने अपनी लोकप्रियता बढ़ाने के लिए लोक-कल्याण से सम्बन्धित निम्नलिखित कार्य किए थे—

(i) अनेक अमीरों तथा शक्तिशाली मन्त्रियों को नए-नए पद प्रदान किए।

(ii) उसने राजमहल के बाहर एक घण्टी सोने की जंजीर में लटकवा दी जिसको बजाकर प्रत्येक व्यक्ति न्याय हेतु अपनी फरियाद सम्राट तक पहुँचा सकता था।

(iii) जहाँगीर ने हिन्दुओं पर लगे अतिरिक्त करों को हटा दिया।

(iv) समुद्र तथा खानों पर लगने वाले सभी करों को समाप्त कर दिया।

(v) उसने अपनी प्रजा को सभी धर्मों का समान रूप से पालन करने की स्वतन्त्रता प्रदान कर दी।

(vi) उसने बारह अध्यादेश जारी करके जनता के हित में अनेक सुधार किए थे।

जहाँगीर के शासनकाल की मुख्य घटनाएँ (उपलब्धियाँ)

(1) विरोधियों का अन्त
(2) सहायकों का सम्मान
(3) लोक कल्याणकारी कार्य
(4) खुसरों का विद्रोह एवं उसका दमन
(5) गुरु अर्जुनसिंह का वध
(6) खुसरो को दण्ड
(7) विजय अभियान :
 (i) मेवाड़ विजय
 (ii) अहमदनगर विजय
 (iii) कांगड़ा विजय
 (iv) कन्धार की क्षति।
(8) नूरजहाँ (मेहरुन्निसा) से विवाह
(9) दरबार की गुटबन्दी
(10) खुर्रम का विद्रोह एवं उसकी पराजय
(11) खुसरो की हत्या
(12) महावत खाँ का विद्रोह एवं उसका दमन
(13) जहाँगीर की मृत्यु।

(4) खुसरो का विद्रोह एवं उसका दमन—खुसरो जहाँगीर की रानी (राजा भगवानदास की पुत्री) मानबाई का पुत्र था। वह अजीज कोका का दामाद तथा मानसिंह का भांजा था। अकबर की मृत्यु पर वह अकबर की कब्र खोदने का बहाना करके महल से निकल गया था। वह पंजाब पहुँचा और सिक्खों के गुरु अर्जुन सिंह से मिलकर उसने जहाँगीर के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। लेकिन बाद में शाही सेना द्वारा खुसरो को बन्दी बना लिया गया।

(5) गुरु अर्जुनसिंह का वध—खुसरो का साथ देने के अपराध में सिक्खों के गुरु अर्जुन सिंह को भी गिरफ्तार किया गया और फाँसी पर लटका दिया गया। जहाँगीर के इस कार्य ने सिक्खों तथा मुगलों के बीच वैमनस्य के बीज बो दिए, जो भविष्य में मुगल सम्राट के लिए विनाशकारी सिद्ध हुए।

(6) खुसरो को दण्ड—विद्रोह करने के अपराध में जहाँगीर ने खुसरो को अन्धा करने का दण्ड दिया था। कहा जाता है कि जब खुसरो की आँख में तार चुभाए गए तो उसको असह्य वेदना हुई। अन्धा खुसरो जब पिता के सामने लाया गया, तो जहाँगीर का वात्सल्य-प्रेम उमड़ पड़ा। उसने खुसरो की आँखें ठीक कराने के आदेश दिए, किन्तु प्रयास करने पर भी उसकी केवल एक ही आँख ठीक हो सकी। कालान्तर में नूरजहाँ और शहजादा खुर्रम भी उसके विरुद्ध षड्यन्त्र रचते रहे। अन्त में, 1622 ई० में खुसरो को खुर्रम को सौंप दिया गया और शीघ्र ही खुसरो बुरहानपुर दुर्ग में कैदी अवस्था में मार दिया गया।

(7) विजय अभियान—(i) मेवाड़ विजय—राणा प्रताप की मृत्यु के पश्चात् उनका पुत्र अमरसिंह गद्दी पर बैठा था। अकबर के समय में सम्पूर्ण मेवाड़ पर विजय प्राप्त न हो सकी थी। जहाँगीर ने मेवाड़ विजय हेतु **परवेज** को भेजा, परन्तु वह सफल न हो सका। फिर **महावत खाँ** को एक विशाल सेना के साथ भेजा गया। इस बार राणा अमरसिंह पराजित हुआ, परन्तु फिर भी महावत खाँ को पूर्ण सफलता नहीं मिली। अतएव जहाँगीर ने खुर्रम को मेवाड़ विजय का कार्यभार सौंपा। राजकुमार खुर्रम के समक्ष राणा अमरसिंह ने आत्मसमर्पण कर दिया। राणा अमरसिंह का मुगल दरबार में शानदार स्वागत हुआ और उन्हें पंच हजारी मनसब का पद दे दिया गया। राणा अमरसिंह ने मेवाड़ का सिंहासन छोड़ दिया

और उनका पुत्र कर्णसिंह सिंहासन पर बैठ गया। औरंगजेब के शासनकाल तक मेवाड़ तथा मुगलों की मित्रता स्थायी रही।

(ii) अहमदनगर विजय—जिस समय अकबर दक्षिण विजय के लिए गया हुआ था, उसी समय उत्तर में उसके पुत्र सलीम ने विद्रोह कर दिया था, जिसके कारण अकबर को अपनी दक्षिण विजय अधूरी छोड़कर ही लौटना पड़ा था। उसके दक्षिण से पीठ फेरते ही मलिक अम्बर नामक वीर सैनिक ने अहमदनगर में अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित कर ली थी। उस समय बुरहानपुर में मुगल छावनी में शहजादा परवेज तथा अब्दुर्रहीम खान-खाना भी ठहरे हुए थे, किन्तु वे मलिक अम्बर के विरुद्ध सफल न हो सके। अन्त में राजकुमार खुर्रम को वहाँ पर दो बार भेजा गया। दोनों ही बार उसको अत्यधिक सफलता मिली। सन् 1617 ई० में मलिक अम्बर और खुर्रम में सन्धि हो गई; लेकिन मलिक अम्बर अधिक दिन तक सन्धि का पालन नहीं कर सका। अन्त में, 1626 ई० में मलिक अम्बर की मृत्यु हो जाने पर, अहमद नगर पर मुगलों का प्रभुत्व स्थापित हो गया।

(iii) कांगड़ा विजय—यह प्रदेश राजपूतों के अधिकार में था। लाहौर के गवर्नर मुर्तजा खाँ को कांगड़ा विजय के लिए भेजा गया था, किन्तु वह सफल न हुआ। अन्त में, खुर्रम ने कांगड़ा पर मुगल पताका फहरा दी। कांगड़ा पर यह विजय 1620 ई० में प्राप्त हुई थी।

(iv) कन्धार की क्षति—अकबर के शासनकाल में कन्धार पर मुगलों का अधिकार हो गया था। सम्राट जहाँगीर के शासनकाल में फारस के बादशाह शाह अब्बास ने कुछ ईरानियों को भड़काया, परन्तु जहाँगीर ने उनको मार भगाया। शाह अब्बास एक कूटनीतिज्ञ शासक था। उसने बहुमूल्य उपहार भेजकर जहाँगीर से अपने घनिष्ठ सम्बन्ध बना लिए। इससे जहाँगीर कन्धार से निश्चिन्त हो गया, किन्तु अवसर पाते ही शाह अब्बास ने कन्धार पर अधिकार कर लिया और कन्धार मुगलों के हाथ से निकल गया। कन्धार विजय पर शाह अब्बास ने जहाँगीर को लिखा कि, "वास्तव में, कन्धार का अधिकारी वही (शाह) था। अतएव सम्राट को कन्धार के हाथ से निकल जाने की चिन्ता नहीं करनी चाहिए।"

(8) नूरजहाँ से विवाह—नूरजहाँ का मूल नाम मेहरुन्निसा था। वह तेहरान के निवासी मिर्जा ग्यास बेग की पुत्री थी। मिर्जा ग्यासबेग मेहरुन्निसा को लेकर सम्राट अकबर के दरबार में आया था। मेहरुन्निसा का भाई आसफ खाँ भी मुगल दरबार का प्रभावशाली व्यक्ति बन गया। मेहरुन्निसा का विवाह बंगाल के गवर्नर शेर अफगन से हुआ था। एक पारस्परिक संघर्ष में शेर अफगन ने मुगलों के विरुद्ध विद्रोह किया और वह युद्ध में मारा गया। उसकी विधवा पत्नी मेहरुन्निसा मुगल दरबार की सेवा में नियुक्त अपने पिता मिर्जा ग्यासबेग तथा भाई आसफ खाँ के पास आ गई। मेहरुन्निसा को अकबर की विधवा सलीमा बेगम की सेवा में नियुक्त कर दिया गया। कुछ विद्वानों का कहना है कि मेहरुन्निसा को जहाँगीर पहले से ही चाहता था। अतएव 1611 ई० में जहाँगीर ने मेहरुन्निसा से विधिवत् विवाह कर लिया और उसको 'नूरजहाँ' की उपाधि से विभूषित किया।

(9) दरबार की गुटबन्दी—जहाँगीर के शासनकाल को नूरजहाँ के विवाह के बाद से, दरबार की गुटबन्दी का काल माना गया है। इस काल को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है—

(i) प्रथम काल (1611 ई० से 1622 ई० तक)—इस काल में नूरजहाँ ने अपने पिता ग्यासबेग अर्थात् 'एत्मातुद्दौला' अपने भाई आसफ खाँ तथा शहजादा खुर्रम से मिलकर अपना एक गुट बनाया था। इस काल में नूरजहाँ खुर्रम को प्यार करती रही और उसी को सम्राट बनाने का स्वप्न देखा करती थी। खुर्रम आसफ खाँ का दामाद भी था।

(ii) द्वितीय काल (1622 ई० से 1627 ई० तक)—इसी अवधि में नूरजहाँ की लड़की लाडली बेगम का विवाह राजकुमार शहरयार से हो गया। अब नूरजहाँ और शहरयार का एक नया गुट बन गया और उधर खुर्रम तथा आसफ खाँ का पृथक् गुट बन गया था।

(10) खुर्रम का विद्रोह एवं उसकी पराजय—जहाँगीर के सबसे बड़े लड़के का नाम खुर्रम था और नूरजहाँ के भाई आसफ खाँ की लड़की मुमताज महल का विवाह खुर्रम से हुआ था। इधर नूरजहाँ की लड़की लाडली बेगम का विवाह शहजादा शहरयार से हुआ था। नूरजहाँ शहरयार को राज्य का उत्तराधिकारी बनाने का स्वप्न देखने लगी। जहाँगीर पर नूरजहाँ का पूरा-पूरा प्रभाव भी था। उधर आसफ खाँ खुर्रम का पक्ष ले रहा था। इसी समय नूरजहाँ ने खुर्रम से छुटकारा पाने के लिए एक चाल चली। उसने जहाँगीर से

कहलवा दिया कि खुर्रम कन्धार विजय के लिए जाए, किन्तु खुर्रम ने अपने पिता के इस आदेश का पालन नहीं किया और दक्षिण में जाकर उसने जहाँगीर के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। सेनापति महावत खाँ ने उसको परास्त कर दिया। पराजित होकर उसने मलिक अम्बर की सहायता ली। अब्दुर्रहीम खानखाना भी खुर्रम के साथ मिल गया। इसकी सूचना पाकर जहाँगीर ने कहा, "उसके पिता बैरम खाँ ने मेरे आदरणीय पिता के साथ विश्वासघात किया था। अतएव अब्दुर्रहीम स्वभाव से ही गद्दार था। उसने अपने पिता का ही अनुसरण किया और बुढ़ापे में अपने धवल-यश पर कलंक का टीका लगा लिया।" जहाँगीर ने अब्दुर्रहीम खान-ख़ाना के चरित्र पर सन्देह व्यक्त करते हुए यहाँ तक कह दिया था, "भेड़िये का बच्चा भेड़िया ही होगा, चाहे उसका पालन-पोषण मनुष्यों के द्वारा ही क्यों न किया जाए।" अब क्रोधित होकर जहाँगीर ने खुर्रम को परास्त कर दिया। वह भागकर बंगाल की ओर चला गया, किन्तु शाही सेना उसके पीछे लगी रही। उसी समय खुर्रम ने आत्मसमर्पण कर दिया। अतः जहाँगीर ने उसको क्षमा कर दिया। 'खुर्रम' ने अपने पुत्र मुराद को राजधानी भेज दिया। उसने रोहतासगढ़ का किला भी सम्राट (जहाँगीर) द्वारा नियुक्त व्यक्ति को सौंप दिया और स्वयं नासिक चला गया। खुर्रम के विद्रोह के दमन में महावत खाँ तथा शाहजादा परवेज ने सम्राट की सहायता की थी।

(11) खुसरो की हत्या—खुसरो को खुर्रम के पास छोड़ दिया गया था। खुर्रम जब 1622 ई० में दक्षिण में गया, तो वह खुसरो को भी बन्दी बनाकर अपने साथ ले गया था। खुर्रम ने खुसरो को मारने का एक षड्यन्त्र रचा था। वह शिकार के बहाने बुरहानपुर की ओर चला गया। रात्रि में एक व्यक्ति ने खुसरो का दरवाजा खटखटाते हुए कहा कि मुझको सुल्तान का आदेश हुआ है कि तुमको कैद से मुक्त कर दूँ। खुसरो ने दरवाजा खोल दिया। इसी समय गला घोंटकर खुसरो का अन्त कर दिया गया। बुरहानपुर से लौटने पर खुर्रम ने सम्राट जहाँगीर को सूचित कर दिया कि, "पेट में वायु गोले की पीड़ा से खुसरो का देहान्त हो गया है।"

(12) महावत खाँ का विद्रोह एवं उसका दमन—महावत खाँ तथा शहजादा परवेज की सहायता से सम्राट ने खुर्रम के विद्रोह का दमन किया था। महावत खाँ तथा परवेज की इस मित्रता को नूरजहाँ शंका की दृष्टि से देखती थी। अतः उसने इन दोनों को अलग-अलग करने का षड्यन्त्र रचा। महावत खाँ को बंगाल का सूबेदार नियुक्त कर दिया गया और शहजादा परवेज को खुर्रम के पास दक्षिण में भेजा गया। महावत खाँ ने बंगाल जाने के लिए अपनी अनिच्छा व्यक्त की। इस पर उसको दरबार में उपस्थित होने का आदेश दिया गया। दरबार में उपस्थित होने पर महावत खाँ के साथ दुर्व्यवहार किया गया। इसी समय सम्राट जहाँगीर, नूरजहाँ तथा आसफ खाँ के साथ काबुल की ओर प्रस्थान कर रहे थे और उन्होंने झेलम नदी पर डेरा डाला हुआ था। अवसर की प्रतीक्षा में लगे महावत खाँ ने इसी समय विद्रोह कर दिया और सम्राट को बन्दी बना लिया। नूरजहाँ की सेना भी परास्त हो गई और आसफ खाँ भाग गया। नूरजहाँ चाहती तो वह भी नदी के दूसरे किनारे पर होने के कारण भाग सकती थी। लेकिन नूरजहाँ ने एक सच्ची प्रेमिका होने का परिचय देते हुए जहाँगीर के साथ बन्दी होना ही पसन्द किया। बाद में, चालाकी से नूरजहाँ ने महावत खाँ की सेना में विद्रोह करा दिया और जहाँगीर को मुक्त करा लिया। महावत खाँ घबराकर दक्षिण की ओर भाग गया। वहाँ वह (महावत खाँ) शहजादा खुर्रम से मिलकर खुर्रम को सम्राट बनाने का स्वप्न देखने लगा।

(13) जहाँगीर की मृत्यु—महावत खाँ तथा खुर्रम के मिलने से नूरजहाँ को चिन्ता हो गई। इधर जहाँगीर का स्वास्थ्य भी गिरने लगा। अन्त में, कश्मीर से लाहौर लौटते समय मार्ग में ही 28 अक्टूबर, 1627 ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

प्रश्न 12—जहाँगीर के चरित्र तथा उपलब्धियों का वर्णन कीजिए। *(1993)*

उत्तर—

जहाँगीर का चरित्र एवं व्यक्तित्व

मुहम्मद तुगलक की भाँति जहाँगीर के चरित्र के विषय में भी इतिहास एकमत नहीं हैं। कुछ इतिहासकारों का मानना है कि जहाँगीर में विरोधी गुणों का सम्मिश्रण था। डॉ० स्मिथ के शब्दों में, "जहाँगीर कोमलता, निष्ठुरता, न्याय व तरंग, मानवता तथा पशुता, बुद्धि एवं बचपन का समन्वय था।" डॉ० ईश्वरी प्रसाद के अनुसार, "मुगल इतिहास में जहाँगीर का व्यक्तित्व एक आकर्षक व्यक्तित्व है।......वह बुद्धिमान तथा राज्य की जटिल कठिनाइयों को समझने वाला था।"

जहाँगीर के चरित्र की प्रमुख विशेषताओं का विवरण निम्नवत् है—

(1) उदारता—जहाँगीर निर्धन तथा असहाय व्यक्तियों के प्रति अत्यन्त उदार होने के कारण वह उनकी सहायता के लिए सदैव तत्पर रहता था। अजमेर में उसने 500 व्यक्तियों को प्रदान किया था।

(2) परिवार प्रेमी—जहाँगीर एक अच्छा पिता, अच्छा मित्र, अच्छा पुत्र तथा प्रेमी पति था। वह अपने परिवार के सदस्यों तथा सम्बन्धियों से अत्यन्त प्रेम करता था। उसके ज्येष्ठ पुत्र खुसरो द्वारा बार-बार विद्रोह किए जाने पर जहाँगीर ने उसे मृत्युदण्ड न देकर केवल अन्धा करवा दिया था। परन्तु बाद में उसका हृदय अपने पुत्र के प्रति द्रवित हो गया। डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव के अनुसार—**"करुणा द्रवित होकर सम्राट ने अपने चिकित्सकों को खुसरो को दृष्टिदान देने की व्यवस्था करने का आदेश दिया। परन्तु वह केवल एक नेत्रदृष्टि ही प्राप्त कर सका।"** अपनी पत्नी मानबाई की मृत्यु पर शोकमग्न जहाँगीर ने अन्न-जल तक त्याग दिया था। अपनी बेगम नूरजहाँ से भी वह अत्यन्त प्रेम करता था।

जहाँगीर का चरित्र एवं व्यक्तित्व

(1) उदारता
(2) परिवार प्रेमी
(3) विद्या प्रेमी
(4) धार्मिक सहिष्णु
(5) साहित्य व कला का प्रेमी
(6) साधारण शासक
(7) व्यक्तिगत चारित्रिक दोष
(8) अकुशल सेनापति
(9) न्यायप्रिय शासक।

(3) विद्या प्रेमी—जहाँगीर फारसी और तुर्की भाषाओं में पारंगत था। इसके अतिरिक्त, हिन्दी भाषा में भी उसकी रुचि थी। वह हिन्दी में कविताएँ किया करता था।

(4) धार्मिक सहिष्णु—जहाँगीर एक धर्म सहिष्णु सम्राट था। उसने सभी धर्मावलम्बियों को धार्मिक स्वतंत्रता प्रदान की। परन्तु गुरु अर्जुनसिंह को मृत्युदण्ड देकर तथा श्वेताम्बर जैनियों के प्रति दुर्व्यवहार करके उसने जो धार्मिक असहिष्णुता का परिचय दिया, वह उसकी राजनीति का परिणाम था।

(5) साहित्य व कला का प्रेमी—जहाँगीर के शासनकाल में साहित्य व कला की विशेष उन्नति हुई। वह स्वयं विद्वान् था, तथा विद्वानों को आश्रय देता था। 'तुजुके जहाँगीरी' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ की रचना स्वयं उसी ने की थी। उसके शासनकाल में चित्रकला, संगीत आदि विविध कलाओं को प्रोत्साहन मिला। वह स्वयं एक उच्चकोटि का चित्रकार था। एतमातुद्दौला, अकबर का मकबरा, लाहौर की मसजिद आदि प्रसिद्ध भवन उसकी स्थापत्य कला के प्रति अभिरुचि के प्रतीक हैं।

(6) साधारण शासक—जहाँगीर एक साधारण शासक था। उसके शासन पर उसकी प्रिय बेगम नूरजहाँ का प्रभाव रहा। डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव के अनुसार, **"जहाँगीर मुख्यतया एक रचनात्मक राजनीतिज्ञ न था, जो महान् राज्य सुधार की योजनाएँ प्रस्तुत कर सकता।"**

(7) व्यक्तिगत चारित्रिक दोष—जहाँगीर सुरा व अफीम जैसे नशीले पदार्थों का सेवन करता था। वह अत्यन्त विलासी शासक था जिससे उसके शासन में शिथिलता आने लगी। उसके हरम में 800 स्त्रियाँ थीं।

(8) अकुशल सेनापति—प्रारम्भ में, जहाँगीर एक कुशल सेनापति था, परन्तु बाद में अनेक दुर्व्यसनों के कारण उसमें सेना का नेतृत्व करने की क्षमता कम होने लगी।

(9) न्यायप्रिय शासक—जहाँगीर का शासन उसके न्याय के लिए प्रसिद्ध है। पीड़ित व्यक्तियों को न्याय प्रदान करने के लिए उसने आगरा के दुर्ग में 60 घण्टियों वाली एक सोने की जंजीर लगवाई। इस जंजीर को खींचकर कोई भी व्यक्ति कभी भी सम्राट से न्याय माँग सकता था।

जहाँगीर के चरित्र और व्यक्तित्व के सम्बन्ध में डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव का यह कथन विशेष उल्लेखनीय है, **"उसको (जहाँगीर को) किसी भी प्रकार सेनानायकों तथा राजनीतिज्ञों की प्रथम श्रेणी में नहीं रखा जा सकता। परन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि वह एक सफल और उदार शासक था जिसे अपनी प्रजा के कल्याण का सदैव ध्यान रहता था। अन्य सभी शासकों की भाँति उसमें भी गुण व दोष विद्यमान थे।"**

(नोट—'जहाँगीर की उपलब्धियों' के लिए दीर्घ उत्तरीय प्रश्न संख्या 11 के उत्तर का भी अवलोकन करें।)

प्रश्न 13—राजपूतों के साथ जहाँगीर के सम्बन्धों पर प्रकाश डालिए।

अथवा **जहाँगीर के मेवाड़ के साथ सम्बन्धों की विवेचना कीजिए।** *(1996)*

उत्तर—

जहाँगीर के राजपूतों (मेवाड़) से सम्बन्ध

अथवा

जहाँगीर की राजपूत नीति

अकबर ने राजपूत नीति अपनाकर और अपने विजय-अभियान द्वारा अधिकांश राजपूत राज्यों पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था, तब भी वह मेवाड़ पर अपना अधिकार जमाने में असफल रहा। अतः जहाँगीर ने सम्राट बनते ही मेवाड़ को जीतने का निश्चय किया। उसने मेवाड़-विजय के लिए तीन अभियान किए—

(1) 1605 ई० में जहाँगीर ने मेवाड़ के राजा अमरसिंह के विरुद्ध शहजादा परवेज, जाफर बेग, आसफखाँ और राजा जगन्नाथ को एक विशाल सेना के साथ भेजा, परन्तु इस सेना को कोई उल्लेखनीय सफलता न मिल सकी और खुसरो के विद्रोह के कारण इसे वापस बुला लिया गया।

(2) 1608 ई० में जहाँगीर ने महावत खाँ को एक शक्तिशाली सेना देकर मेवाड़-विजय के लिए भेजा, लेकिन महावत खाँ को भी कोई विशेष सफलता न मिल सकी। इसके बाद, 1609 ई० और 1612 ई० के सैनिक-अभियान भी विफल रहे।

(3) 1613 ई० में जहाँगीर ने शहजादा खुर्रम को मेवाड़-विजय का उत्तरदायित्व सौंपा और वह अजमेर में स्वयं एक सैनिक-छावनी बनाकर रुक गया। दो वर्ष तक खुर्रम के नेतृत्व में शाही सेना और राजपूतों में संघर्ष चलता रहा। राजपूतों को दीर्घकालीन युद्धों का अनुभव नहीं था, इसलिए उनकी स्थिति निरन्तर दुर्बल होती चली गई। अन्त में, 15 फरवरी, 1615 ई० को राजा अमरसिंह ने खुर्रम से भेंट की और मुगलों तथा राजपूतों के मध्य एक सम्मानजनक सन्धि हो गई। इस सन्धि के अनुसार—

(i) राजा अमरसिंह ने मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली।

(ii) राजा अमरसिंह को मुगल दरबार में व्यक्तिगत रूप से उपस्थित न होने की स्वतन्त्रता प्रदान कर दी गई।

(iii) चित्तौड़ राजा अमरसिंह को वापस दे दिया गया।

इस प्रकार, जहाँगीर ने राजपूतों के साथ उदार नीति अपनाकर उन्हें अपना स्वामिभक्त बना लिया।

प्रश्न 14—नूरजहाँ कौन थी? नूरजहाँ ने 1611 ई० से 1627 ई० तक मुगल राजनीति में क्यों भाग लिया? *(1990)*

अथवा **"पूरे पन्द्रह वर्षों तक एक महिला मुगल साम्राज्य में सबसे अधिक प्रभावशाली थी।" इस कथन के आलोक में नूरजहाँ की राजनीतिक उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।**

अथवा **"साम्राज्य के राजनीतिक तथा प्रशासनिक कार्यों में नूरजहाँ का प्रभाव निश्चय ही हानिकारक था।" स्पष्ट कीजिए।**

अथवा **जहाँगीर के शासनकाल में नूरजहाँ का क्या प्रभाव पड़ा? उदाहरण सहित बताइए।** *(1991)*

अथवा **"जहाँगीर के शासन संचालन में नूरजहाँ वास्तविक शक्ति थी।" स्पष्ट कीजिए।** *(1994)*

अथवा **"नूरजहाँ का शासकीय अधिकार इस सीमा तक पहुँच गया था कि शासक केवल नाममात्र का ही रह गया था।" इस कथन के प्रकाश में समसामयिक राजनीति पर नूरजहाँ के प्रभाव की विवेचना कीजिए।** *(1996)*

अथवा **"जहाँगीर के शासनकाल में शासन की वास्तविक शक्ति नूरजहाँ के हाथों में थी।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।** *(1997)*

अथवा **सन् 1611 ई० से 1627 ई० तक मुगल साम्राज्य की राजनीति में नूरजहाँ की भूमिका का विवरण देते हुए उसके प्रभावों की समीक्षा कीजिए।** *(1997)*

उत्तर—

नूरजहाँ का परिचय

नूरजहाँ मिर्जा ग्यास बेग की पुत्री थी जो तेहरान का निवासी था। नूरजहाँ को बचपन में मेहरुन्निसा कहते थे। मेहरुन्निसा बहुत ही रूपवती तरुणी थी। शहजादा सलीम (जहाँगीर) उसकी लावण्यमयी सुन्दरता पर मुग्ध था और उससे विवाह करना चाहता था, लेकिन अकबर ने इसका विरोध करके 1594 ई० में सत्रह वर्ष की आयु में उसका विवाह अली कुली बेग के साथ कर दिया और उसको बंगाल में एक जागीर दे दी गई। सन् 1599 ई० में अली कुली बेग ने मेवाड़ पर आक्रमण के समय एक शेर मार दिया था। अतः उसे शहजादा सलीम ने 'शेरे अफगन' की उपाधि दी थी। शेर अफगन से मेहरुन्निसा को एक पुत्री लाडली बेगम उत्पन्न हुई थी। अली कुली बेग शाही फरमानों को नहीं मानता था। अतः शीघ्र ही उसका वध कर दिया गया। उसकी विधवा पत्नी मेहरुन्निसा को आगरा लाया गया और उसे राजमाता सलीमा बेगम की सेवा में रख दिया गया। उसके जीवन की घटनाओं और चरित्र को निम्नलिखित सन्दर्भों द्वारा जाना जा सकता है—

(1) जहाँगीर से विवाह[1]—सन् 1611 ई० में जहाँगीर ने मेहरुन्निसा से विवाह कर लिया और उसे नूरमहल की उपाधि प्रदान की, जो बाद में नूरजहाँ (संसार का प्रकाश) के नाम से प्रसिद्ध हुई। 1611 ई० से लेकर 1627 ई० तक मुगल दरबार में साम्राज्ञी नूरजहाँ एक प्रभावशाली और शक्तिशाली महिला बनी रही। अतः इस युग को 'नूरजहाँ प्रभाव युग' की संज्ञा दी जाती है। नूरजहाँ एक दूरदर्शी और प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व से सम्पन्न महिला थी। उसके सम्बन्धियों को बड़ी-बड़ी जागीरें दी गईं। वह बड़े अमीरों को भी आदेश देने लगी। यहाँ तक कि उसके नाम के सिक्के भी ढाले जाने लगे। सम्राट के नाम के साथ ही शाही आदेशों पर नूरजहाँ का नाम भी अंकित होने लगा। अन्त में, स्थिति यहाँ तक पहुँची कि जहाँगीर नाममात्र का शासक रह गया और शासन के सब कार्य नूरजहाँ के हाथ में ही आ गए। जहाँगीर ने स्वयं घोषणा कर दी कि, "मैंने सत्ता नूरजहाँ को सौंप दी है और मुझे सेर-भर शराब एवं आधा सेर गोश्त के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिए।"

नूरजहाँ का परिचय

(1) जहाँगीर से विवाह
(2) वीर और साहसी महिला
(3) प्रशासन की संचालिका
(4) नूरजहाँ का मुगल राजनीति पर प्रभाव
(5) नूरजहाँ के अन्तिम दिन।

(2) वीर और साहसी महिला—नूरजहाँ अपूर्व सुन्दरी और साहसी महिला थी। उसमें अपार शारीरिक बल था। उसने कई बार बाघ का शिकार किया था। वह जहाँगीर के लिए अपने प्राणों की बाजी लगाने को भी तैयार रहती थी। जब महावत खाँ ने जहाँगीर को बन्दी बना लिया, तब उसने अपने साहस और सूझ-बूझ का परिचय देकर सबको आश्चर्य में डाल दिया था। उसका भाई आसफ खाँ भाग गया था, लेकिन उसने अपने प्राणों की चिन्ता न करते हुए जहाँगीर के साथ बन्दी जीवन व्यतीत करना पसन्द किया था।

(3) प्रशासन की संचालिका—नूरजहाँ ने सत्रह वर्षों तक शासन की बागडोर अपने हाथों में रखी। एक साधारण परिवार में पैदा होकर, जीवन के प्रारम्भिक दिन कठिनाइयों में व्यतीत करके और विधवा होकर भी वह मुगल सम्राट की साम्राज्ञी बनी और एक विशाल साम्राज्य की संचालिका हुई।

(4) नूरजहाँ का मुगल राजनीति पर प्रभाव—जहाँगीर से विवाह होने के उपरान्त उसने सम्राट पर अपना पूर्ण नियन्त्रण स्थापित कर लिया और शासन-प्रबन्ध अपने हाथों में ले लिया। राजसिंहासन के पीछे वही वास्तविक शक्ति थी। उसने अपने पिता और भाई आसफ खाँ को उच्च पदों पर नियुक्त कराया। उसने अपनी पुत्री लाडली बेगम (जो उसके पहले पति से थी) का विवाह जहाँगीर के पुत्र शहजादा शहरयार से करके अपने प्रभुत्व में और अधिक वृद्धि कर ली। उसने अपने पिता को एतमातुद्दौला और भाई को आसफ खाँ की उपाधियों से विभूषित किया। नूरजहाँ ने बड़ी कुशलता से शासन का संचालन किया और अपने

1. नूरजहाँ और जहाँगीर के विवाह और शेर अफगन वध के सन्दर्भ में दो विरोधी मत प्रचलित हैं। उल्लेखनीय है कि केवल एक ही समकालीन इतिहासकार मोतमिद खाँ ने अपनी पुस्तक 'इकबाल-ए-जहाँगीरी' में नूरजहाँ की कहानी का विस्तृत वर्णन किया है। स्वयं जहाँगीर (तुजुके जहाँगीरी) और यूरोपीय यात्री इस मामले में मुक हैं।

पति के व्यसनों को भी कम करने का प्रयास किया। नूरजहाँ दरबारी गुटबन्दियों और षड्यन्त्रों में भी उलझ गई थी। पहले वह अपने भाई आसफ खाँ और उसके दामाद शहजादा खुर्रम (शाहजहाँ) के साथ थी। जब नूरजहाँ ने अपनी पुत्री लाडली बेगम का विवाह शहजादा शहरयार के साथ कर दिया तो वह शहरयार को मुगल बादशाह बनाने की इच्छुक हो गई। लेकिन उसके भाई आसफ खाँ ने धोखा देते हुए शहजादा खुर्रम को उत्तराधिकार के संघर्ष में विजय दिला दी और नूरजहाँ यहाँ पर पराजित हो गई। अतः जहाँगीर की मृत्यु के उपरान्त नूरजहाँ के अधिकारों की समाप्ति हो गई और शाहजहाँ ने उसके लिए उचित पेंशन नियत कर दी। वह लाहौर में अपनी विधवा पुत्री लाडली बेगम के साथ रहने लगी। इस प्रकार; साम्राज्य के राजनीतिक तथा प्रशासनिक कार्यों में नूरजहाँ का प्रभाव निश्चय ही हानिकारक था।

(5) नूरजहाँ के अन्तिम दिन—वह अपने पति की मृत्यु के बाद 18 वर्ष जीवित रही। उसका यह जीवन बड़ा सरल तथा एकान्तवास का था। 1645 ई० में उसका निधन हो गया। नूरजहाँ के चरित्र व व्यक्तित्व का मूल्यांकन करते हुए डॉ० बेनी प्रसाद ने लिखा है कि, **"नूरजहाँ प्रथम महिला थी, जिसने लगभग 15 वर्षों तक मुगल राजनीति पर अपना प्रभुत्व जमाए रखा।"** वह अत्यन्त गम्भीर, धैर्यवान् तथा अद्भुत क्षमता वाली स्त्री थी। लेकिन उसके द्वारा शासन में निरन्तर हस्तक्षेप करने की नीति से मुगल साम्राज्य को अत्यधिक क्षति पहुँची। वह अपने समक्ष किसी अन्य व्यक्ति के महत्त्व को स्वीकार नहीं करती थी। डॉ० ईश्वरी प्रसाद के अनुसार, **"नूरजहाँ के प्रभाव में जहाँगीर अत्यधिक विलासी हो गया तथा अपने पद के अनुकूल उत्तरदायित्व को भूल गया था। यदि जहाँगीर के काल को मुगल वंश के इतिहास का अपयशपूर्ण युग कहा जाए, तो इसमें नूरजहाँ का कम उत्तरदायित्व नहीं है।"**

प्रश्न 15—नूरजहाँ के चरित्र से सम्बन्धित गुण-दोषों पर संक्षिप्त प्रकाश डालिए।

अथवा **नूरजहाँ के चरित्र का वर्णन कीजिए। जहाँगीर के शासनकाल के अन्तिम वर्षों में उसकी राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं के क्या परिणाम हुए?** ***(1996)***

उत्तर—

नूरजहाँ का चरित्र

मुगल वंश के इतिहास में नूरजहाँ का योगदान अविस्मरणीय है। वह एक योग्य एवं प्रभावी व्यक्तित्व वाली महिला थी। अपने चारित्रिक गुणों के आधार पर, उसने मुगल सत्ता को अपने हाथों में केन्द्रित कर लिया और मुगल राजनीति को व्यापक रूप में प्रभावित किया।

नूरजहाँ के चारित्रिक गुण

नूरजहाँ जहाँगीर के समय बिना ताज की शासिका थी। उसके चरित्र के गुणों को निम्न संदर्भों में जाना जा सकता है—

नूरजहाँ के चारित्रिक गुण

(1) अनेक सद्गुणों से परिपूर्ण महिला
(2) साहसी
(3) पति-प्रिया
(4) लोकप्रिय नारी
(5) कुशाग्र बुद्धि
(6) कला प्रेमी
(7) कुशल राजनीतिज्ञ।

(1) अनेक सद्गुणों से परिपूर्ण महिला—नूरजहाँ कोमलता, उदारता, दानशीलता तथा सुन्दरता के गुणों से सम्पन्न महिला थी। जहाँगीर ने 1611 ई० में मेहरुन्निसा (नूरजहाँ) से विवाह किया था। उस समय उसकी उम्र 34 वर्ष की थी, किन्तु वह इतनी रूप लावण्य से भरपूर थी कि जहाँगीर उसको देखते ही उस पर मोहित हो गया था। उसके रूप-लावण्य के कारण ही जहाँगीर ने उसको **'नूरजहाँ'**, अर्थात् **'संसार का प्रकाश'** कहकर पुकारा था। वास्तव में, वह अपने समय की विश्व-सुन्दरी होने के कारण ही संसार का प्रकाश नहीं थी, वरन् उसके उदारतापूर्ण कार्य, दानशीलता की प्रवृत्ति तथा साहित्य एवं कला में विदुषी होना भी उसे संसार का प्रकाश ही सिद्ध करते हैं।

(2) साहसी—यद्यपि नूरजहाँ में सुन्दरता एवं कोमलता प्रकृति की देन थी और प्रकृति ने उसको बनाने में अपनी पूरी कारीगरी का परिचय दिया था, किन्तु इसके साथ ही उसमें निर्भीकता व साहस का भी अभाव नहीं था। उसने हाथी पर बैठकर महावत खाँ के विरुद्ध युद्ध करके अपनी निर्भीकता का परिचय दिया था।

(3) पति-प्रिया—नूरजहाँ के रूप-लावण्य के कारण जहाँगीर उस पर मुग्ध हो गया था, वह जहाँगीर की अर्द्धांगिनी तथा सर्वप्रिय रानी थी। उसको जहाँगीर ने अपने अन्तिम समय तक अद्वितीय प्यार दिया था। जहाँगीर का नूरजहाँ के प्रति अगाध प्रेम था। एक विदेशी यात्री ने उसका वर्णन करते हुए लिखा है, "जहाँगीर की एक रानी थी, जिसको वह अगाध प्रेम करता था। उससे बढ़कर वह संसार की अन्य स्त्री से प्यार नहीं करता था। प्रतिदिन राज्य के सभी प्रशासकीय कार्य उसी की मंत्रणा से चलाए जाते थे। इस महारानी को नूर-महल अथवा महल का प्रकाश कहकर पुकारा जाता था।"

(4) लोकप्रिय नारी—नूरजहाँ की लोकप्रियता का वर्णन करते हुए लेनपूल ने लिखा है कि, "वह उन लोगों के लिए उदार व न्यायप्रिय थी, जो उसकी सहायता चाहते थे। सभी संकटग्रस्त लोगों की वह शरणदायिनी थी। निर्धन व असहाय कन्याओं का विवाह उसके कोष से किया जाता था। उसने अपने जीवनकाल में लगभग पाँच सौ कन्याओं का विवाह कराया और हजारों कन्याएँ उसकी उदारता की ऋणी हैं।"

(5) कुशाग्र बुद्धि—उसकी रण-कुशलता तथा कुशाग्र-बुद्धि की छाप सभी लोगों पर थी। लेनपूल ने लिखा है, "इस फारस निवासी राजकुमारी का इतना प्रभाव था कि सम्राट जहाँगीर ने अपने सिक्कों पर अपने नाम के साथ इसका नाम भी जोड़ दिया था। इस प्रकार का उदाहरण मुस्लिम इतिहास में कम ही मिलता है।"

(6) कला प्रेमी—नूरजहाँ को कला से विशेष लगाव था। उसने किमखाब, जरी, बूटे आदि निकाल कर कला को प्रोत्साहन दिया था। आगरा का किनारी बाजार आज भी उसकी कलात्मक रुचि का साक्षी है। इस बाजार में उस समय नूरजहाँ द्वारा निकाली गई किनारियाँ रखी जाती थीं। नूरजहाँ चित्रकला में भी विशेष दक्ष थी।

(7) कुशल राजनीतिज्ञ—नूरजहाँ दृढ़-प्रतिज्ञ एवं कुशल-राजनीतिज्ञ थी। उसने जिसका पक्ष लिया उसको उन्नति की चरम सीमा पर पहुँचाया और जिसका उसने विरोध किया उसको रसातल तक पहुँचा दिया। उसने खुर्रम को 'शाहजहाँ' की उपाधि देकर प्रोत्साहित किया और चालाकी से महावत खाँ को घुटने टेकने पर विवश किया।

नूरजहाँ के चारित्रिक दोष

नूरजहाँ जितनी महान् थी उतनी ही वह चारित्रिक अवगुणों से भी वंचित नहीं थी। उसके चरित्र में निम्नलिखित अवगुण थे—

(1) स्वार्थी मलिका—नूरजहाँ को अत्यन्त स्वार्थी माना गया है। आलोचकों का कहना है कि जहाँगीर से विवाह करके उसने अपने ही परिवार वालों का भला किया था। उसने अपने पिता को 'एतमातुद्दौला' की उपाधि से विभूषित किया और अपने भाई आसफ खाँ को उच्च पद पर पहुँचाया था। उसने अपनी पुत्री लाडली बेगम को युवराज शहरयार की पत्नी बनाया। दूसरी ओर खुर्रम, खुसरो तथा महावत खाँ उसके कोप के शिकार बने। जो उसके मार्ग में आया, उसी को उसने रौंद डाला।

नूरजहाँ का चारित्रिक दोष
(1) स्वार्थी मलिका
(2) ईर्ष्यापूर्ण व्यवहार
(3) अभिमानी
(4) गुटबन्दी की नीति।

(2) ईर्ष्यापूर्ण व्यवहार—जो भी व्यक्ति नूरजहाँ का विरोध करता था, उसी को वह अपमानित करती थी। खुर्रम तथा महावत खाँ एवं उसके दामाद का अपमान नूरजहाँ के ईर्ष्यापूर्ण व्यवहार का ही एक उदाहरण है।

(3) अभिमानी—नूरजहाँ में स्त्रियोचित सद्भावना नहीं थी। साम्राज्ञी होने पर वह अभिमान के मद में चूर हो गई थी तथा अपने अभिमान के मद में नूरजहाँ ने अनेक अनुचित कार्य किए थे। उसके साम्राज्य में पनपने वाली दलबन्दी, विद्रोह तथा छल-कपट नूरजहाँ के झूले अभिमान के ही परिणाम थे।

(4) गुटबन्दी की नीति—नूरजहाँ के काल को गुटबन्दियों के आधार पर दो भागों में विभाजित किया गया है। उसके प्रभाव का प्रथम काल 1611 ई० से 1622 ई० तक माना गया है। इस काल में उसने आसफ खाँ तथा खुर्रम को मिलाकर अपना प्रथम गुट बनाया। उसके काल का द्वितीय गुट 1622 ई० से

आरम्भ हुआ जिसमें उसने अपनी पुत्री लाड़ली बेगम का विवाह राजकुमार शहरयार से कराया और परवेज तथा महावत खाँ को अलग-अलग करने का षड्यन्त्र रचा। सन् 1623 ई० में उसने प्रथम गुट को तुरन्त छोड़ दिया था। इन षड्यन्त्रों के परिणामस्वरूप साम्राज्य का पतन आरम्भ हुआ।

नूरजहाँ के चरित्र पर आधारित उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट होता है कि यद्यपि नूरजहाँ के चरित्र में अनेक महत्त्वपूर्ण गुण थे, परन्तु वह अत्यन्त स्वार्थी, अभिमानी, ईर्ष्यालु और आवश्यकता से अधिक महत्त्वाकांक्षी भी थी। उसकी दूषित राजनीतिक महत्त्वाकांक्षाओं का ही यह परिणाम था कि शीघ्र ही वह आलोचना एवं निन्दा की पात्र बन गई तथा उसके अनेक विरोधी उत्पन्न हो गए। यही नहीं उसके कार्यों के फलस्वरूप मुगल साम्राज्य का पतन भी प्रारम्भ हो गया।

प्रश्न 16—शाहजहाँ की मध्य एशियायी नीति का परीक्षण कीजिए। *(1996)*

उत्तर—

शाहजहाँ की मध्य एशियायी नीति

मुगल सम्राटों की इच्छा थी कि वे अपने पूर्वज तैमूर की राजधानी समरकंद पर अपना प्रभुत्व अवश्य स्थापित करें। लेकिन बाबर, हुमायूँ, अकबर और जहाँगीर को इस सम्बन्ध में कोई सफलता न मिल सकी। शाहजहाँ ने समरकन्द पर अपना अधिकार करने का सफल प्रयत्न अवश्य किया।

शाहजहाँ की मध्य एशियायी नीति की प्रमुख घटनाएँ इस प्रकार हैं—

(1) शाहजहाँ के समय में समरकंद पर इमामकुली का अधिकार था। सन् 1628-29 ई० में इमामकुली के भाई नजर मुहम्मद ने उजबेगों की सहायता से काबुल पर आक्रमण कर दिया, किन्तु उसे सफलता न मिल सकी। शाहजहाँ ने उसके क्षमा माँगने पर, उसके विरुद्ध कार्यवाही नहीं की।

(2) 1639 ई० में नजर मुहम्मद ने इमामकुली को हराकर समरकन्द पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। अतः शाहजहाँ का ध्यान मध्य एशिया की ओर गया। इसी बीच 1645 ई० में ख्वारिज्म में विद्रोह हो गया। नजर मुहम्मद ने अपने पुत्र अब्दुल अजीज को इसका दमन करने के लिए भेजा, परन्तु अब्दुल अजीज ने स्वयं को बुखारा का स्वतन्त्र शासक घोषित कर दिया। इसी गृह-युद्ध का लाभ उठाने के उद्देश्य से शाहजहाँ ने काबुल के सूबेदार को उजबेगों पर आक्रमण करने का आदेश दिया। मुगल सेना ने कुछ प्रदेशों को जीत लिया, किन्तु सर्दी पड़ने से वे उनके हाथ से निकल गए।

(3) इसके बाद, 1646 ई० में शाहजहाँ ने शहजादा मुराद को बल्ख पर आक्रमण करने का आदेश दिया। मुगल सेना के आगमन की सूचना पाकर नजर मुहम्मद ने अपने पुत्र अजीज से सन्धि कर ली, परन्तु उसे मुगल सेना से पराजित होकर फारस भागना पड़ा। बल्ख और बदख्शाँ पर शहजादा मुराद का अधिकार हो गया।

(4) मुराद को बल्ख का बंजर प्रदेश अधिक समय तक पसन्द नहीं आया और उसने शाहजहाँ से वापस लौटने की अनुमति माँगी और अनुमति मिलने से पहले ही वह वापस लौट आया।

(5) मुराद के लौटते ही फारस के शाह की सहायता से नजर मुहम्मद ने मुगलों के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। पहले तो शाहजहाँ ने नजर मुहम्मद से मित्रता करने का प्रयास किया, परन्तु इस कार्य में असफल होने पर उसने औरंगजेब को बल्ख भेजा। औरंगजेब ने उज्बेगों को हराकर पुनः बल्ख पर अधिकार कर लिया। लेकिन विषम जलवायु और बंजर भूमि के कारण मुगल सेना अधिक समय तक बल्ख में न टिक सकी। विवश होकर औरंगजेब को काबुल वापस लौटाना पड़ा और शाहजहाँ की मध्य एशियायी नीति सफल न हो सकी।

इस प्रकार, शाहजहाँ की मध्य एशियायी नीति मुगल साम्राज्य के लिए अहितकर सिद्ध हुई। अपार धन-जन की क्षति के बावजूद मुगलों का एक इंच भूमि पर भी अधिकार न हो सका और साम्राज्य की आर्थिक दशा शोचनीय हो गई।

प्रश्न 17—शाहजहाँ के काल को मुगल साम्राज्य का स्वर्ण-युग क्यों कहा जाता है?

अथवा **"शाहजहाँ एक महान् निर्माता था।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।** *(1991)*

अथवा **"शाहजहाँ का काल मुगल साम्राज्य का स्वर्ण-युग कहा जाता है।" स्पष्ट कीजिए।** *(1993)*

अथवा **"शाहजहाँ का काल मुगल साम्राज्य का स्वर्ण-युग था।" इस कथन की विवेचना कीजिए।** *(1990, 94)*

अथवा **"शाहजहाँ का काल स्वर्ण-युग था।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।** *(1992)*

अथवा **"शाहजहाँ मुगल शासकों में सर्वाधिक प्रतापी था।" इस कथन के आलोक में शाहजहाँ की उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिए।**

अथवा **"शाहजहाँ का शासनकाल मुगल साम्राज्य का स्वर्ण-युग था।" इस कथन के आलोक में उसकी उपलब्धियों का वर्णन कीजिए।** *(1997)*

अथवा **शाहजहाँ के शासनकाल की उपलब्धियों और असफलताओं की समीक्षा कीजिए।** *(1997)*

अथवा **"शाहजहाँ का काल मुगल शासन का स्वर्ण-युग था, पर उसमें पतन के चिन्ह भी निहित थे।" टिप्पणी लिखिए।** *(1999)*

अथवा **"शाहजहाँ का शासनकाल मुगल काल का स्वर्ण-युग था।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।** *(1999)*

उत्तर— शाहजहाँ का काल : मुगल काल का स्वर्ण-युग

शाहजहाँ के काल में देश की राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में अत्यधिक उन्नति हुई थी, इसलिए कुछ इतिहासकार (अब्दुल हमीद लाहौरी, खफी खाँ, हण्टर, लेनपूल आदि) उसके काल को मुगल काल का स्वर्ण-युग कहते हैं। लेकिन कुछ विद्वान् (बर्नियर, मनूची, फोस्टर आदि) इस मत का खण्डन करते हैं और कहते हैं कि उसके शासनकाल में अनेक प्रशासनिक बुराइयाँ और कमियाँ थीं, इसलिए उसके काल को स्वर्ण-युग नहीं कहा जा सकता है। शाहजहाँ का शासनकाल स्वर्ण-युग था या नहीं, इसके सम्बन्ध में इतिहासकारों के तर्क एवं उसके काल की विभिन्न परिस्थितियाँ इस प्रकार हैं—

स्वर्ण-युग के पक्ष में तर्क
(शाहजहाँ की उपलब्धियाँ)

शाहजहाँ का काल मुगल साम्राज्य का स्वर्ण युग था, इस कथन से जो विद्वान् सहमत हैं उनके तर्कों पर आधारित शाहजहाँकालीन परिस्थितियों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(1) विस्तृत साम्राज्य—शाहजहाँ के शासन के समय उसके साम्राज्य का विस्तार अपनी चरम सीमा तक पहुँच गया था। उसके साम्राज्य में 22 प्रान्त थे। उत्तर भारत में राजपूत राज्यों पर शाहजहाँ का आधिपत्य स्थापित हो गया था। दक्षिण भारत में अहमद नगर, बीजापुर तथा गोलकुण्डा के शासक भी उसको वार्षिक कर देने लगे थे। इसीलिए बहुत से इतिहासकारों ने उसके काल को स्वर्ण-युग कहा है।

शाहजहाँ के काल को स्वर्ण-युग कहे जाने के पक्ष में तर्क

(1) विस्तृत साम्राज्य
(2) उच्चकोटि का शासन-प्रबन्ध
(3) न्याय एवं कर्त्तव्यपरायणता का युग
(4) आन्तरिक शान्ति एवं व्यवस्था का युग
(5) सम्राट की उदारता एवं प्रजावत्सलता
(6) व्यापार की उन्नति का युग
(7) देश में समृद्धि एवं शान्ति
(8) वैभव और शान-शौकत का युग
(9) विभिन्न कलाओं की उन्नति का युग :
   (i) साहित्य
   (ii) चित्रकला एवं संगीत
   (iii) स्थापत्य कला।

(2) उच्चकोटि का शासन-प्रबन्ध—शाहजहाँ एक कुशल शासन प्रबन्धक था। उसने ऐसी शासन व्यवस्था अपनाई कि उसके राज्य की प्रजा सुख और शान्ति का अनुभव करने लगी थी। वह स्वयं शासन से सम्बन्धित कार्यों को करता और देखता था, जैसा कि मनूची ने भी लिखा है—"सम्राट प्रशासनिक कार्यों में रुचि लेता था। वह राजकीय पदों पर योग्य व्यक्तियों की नियुक्ति करता था और अपराधी सिद्ध होने पर कर्मचारियों को भी कठोर दण्ड देने में न हिचकता था।" उसका प्रधानमन्त्री सादुल्ला खाँ असाधारण योग्यता का व्यक्ति था। मुर्शिद कुली खाँ भी उसकी प्रान्तीय व्यवस्था हेतु नियुक्त एक कुशल शासन प्रवन्धक था।

(3) न्याय एवं कर्त्तव्यपरायणता का युग—शाहजहाँ एक न्यायप्रिय शासक था। वह सबके साथ निष्पक्ष न्याय किया करता था। इस सन्दर्भ में बर्नियर ने लिखा है, "शाहजहाँ इस प्रकार शासन नहीं करता

था, जैसे एक राजा अपनी प्रजा पर करता है। उसका शासन ऐसा होता था, जैसे पिता का अपने परिवार तथा पुत्रों पर होता है।" इस प्रकार, उसने अपने राज्य में न्याय की समुचित व्यवस्था की थी। न्यायाधिकारियों के ठीक प्रकार से न्याय न करने पर वह उन्हें कठोर दण्ड भी देता था।

(4) आन्तरिक शान्ति एवं व्यवस्था का युग—शाहजहाँ के युग में उल्लेखनीय शान्ति रही। कुछ छुट-पुट विद्रोह एवं आक्रमण अवश्य हुए, लेकिन उनका बड़ी सरलता से दमन कर दिया गया। आम जनता पर किसी प्रकार के कष्ट या विपत्ति नहीं आई तथा राजपूतों एवं सिक्ख या मराठों से कोई भयंकर युद्ध नहीं हुआ। टैवर्नियर ने लिखा है कि, **"उसके समय में मार्ग सुरक्षित थे तथा जनता में शान्ति और सन्तोष की भावना व्याप्त थी।"**

(5) सम्राट की उदारता एवं प्रजावत्सलता—शाहजहाँ अपनी प्रजा से अपार स्नेह रखता था और उसके साथ सन्तानतुल्य व्यवहार करता था। प्रजा को अपनी सन्तान समझकर ही वह उस पर शासन करता था। लेनपूल ने उसकी उदारता के सम्बन्ध में लिखा है, **"शाहजहाँ उदारता तथा दया के लिए विख्यात था और इसी से वह अपनी प्रजा का प्रिय बन गया था।"**

(6) व्यापार की उन्नति का युग—शाहजहाँ के काल में विदेशी व्यापार और आन्तरिक व्यापार में अत्यधिक उन्नति हुई थी। पश्चिमी एशिया के देशों को भारत से अधिक वस्तुएँ निर्यात किए जाने से व्यापारी वर्ग को पर्याप्त आय प्राप्त होने लगी थी और देश की आर्थिक स्थिति काफी सुदृढ़ हो गई थी। इस आर्थिक उन्नति और समृद्धि के फलस्वरूप मध्यम वर्ग के व्यक्ति भी बहुत वैभवशाली जीवन व्यतीत करने लगे थे।

(7) देश में समृद्धि एवं शान्ति—शाहजहाँ की संगठित शासन-व्यवस्था के कारण देश ने बहुत उन्नति की। इस संन्दर्भ में मोरलैण्ड ने लिखा है, **"शाहजहाँ का शासनकाल कृषकों के लिए शान्ति का युग था। राजस्व ठीक प्रकार से वसूल किया जाता था तथा अपराधियों को उचित दण्ड दिया जाता था। सम्राट के इन कार्यों से उसकी आय बढ़ गई थी। जिस परगने से अकबर के शासनकाल में तीन लाख की आय होती थी उससे अब दस लाख रुपया वसूल किया जाता था।"**

(8) वैभव और शान-शौकत का युग—शाहजहाँ; शान-शौकत, ऐश्वर्य और वैभव-प्रेमी सम्राट था। उसने अपनी शान-शौकत का प्रतीक **तख्तेताऊस** (मयूर-सिंहासन) बनवाया था। यह सिंहासन हीरे, मोती, पन्ने, मणिक एवं रत्नों से जड़ित था और इसके बनने में एक करोड़ से अधिक रुपये तथा सात वर्ष का समय लगा था।

(9) विभिन्न कलाओं की उन्नति का युग—शाहजहाँ के काल में ललित-कलाओं के साथ-साथ अन्य कलाओं की भी अभूतपूर्व उन्नति हुई थी। डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव के अनुसार, **"शाहजहाँ का काल केवल कला और कला में भी वास्तुकला की दृष्टि से ही स्वर्ण-युग कहा जा सकता है।"**

(i) साहित्य—शाहजहाँ के काल में साहित्य का कोष अत्यन्त समृद्ध हुआ। उसी के काल में बिहारी, सेनापति, सुन्दरदास, केशव, मतिराम एवं दादू जैसे कवि हुए, जिन्होंने अपनी कविताओं, सवैयों एवं दोहों से साहित्य की उन्नति में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इस काल में उर्दू तथा फारसी के साथ-साथ हिन्दी तथा संस्कृत साहित्य की भी रचना हुई। अतः साहित्य की दृष्टि से भी शाहजहाँ का काल स्वर्ण-युग कहा जाता है।

अब्दुल हमीद लाहौरी, मुहम्मद सालेह, इनायत खाँ, अमीन काजवीनी आदि फारसी साहित्य के विद्वान् शाहजहाँ के दरबार में ही आश्रय पाते थे।

(ii) चित्रकला एवं संगीत—शाहजहाँ चित्रकला और संगीत का भी अत्यधिक प्रेमी था। वह चित्रकारों एवं संगीतकारों को अपने राज्य में आश्रय प्रदान करता था। उसके दरबार में **पं० जगन्नाथ, जनार्दन, लालखाँ** आदि संगीतज्ञों और **चिन्तामणि, मीर हाशिम एवं अनूप** जैसे चित्रकारों को आश्रय मिला हुआ था।

(iii) स्थापत्य कला—शाहजहाँ के समय में भवन-निर्माण कला की अभूतपूर्व उन्नति हुई थी। उसके काल में निर्मित ताजमहल, मोती मसजिद, दिल्ली का लालकिला, जामा मसजिद आदि भवन स्थापत्य

कला के उत्कृष्ट नमूने हैं। शाहजहाँ द्वारा निर्मित ताजमहल की गिनती तो संसार के आश्चर्यों में की जाती है। सत्य तो यह है कि शाहजहाँ के काल की एक-एक इमारत; कला के क्षेत्र में मुगल काल को स्वर्ण-युग सिद्ध करती है।

अतः उपर्युक्त समस्त उपलब्धियों के आधार पर यह कथन सत्य प्रतीत होता है कि, "शाहजहाँ का काल मुगल साम्राज्य का स्वर्ण-युग था।" शाहजहाँ की उपलब्धियाँ निःसन्देह अभूतपूर्व थीं। वह एक ऐसा वैभवसम्पन्न तथा प्रतापी शासक था, जिसे प्रत्येक क्षेत्र में सफलता प्राप्त हुई। वास्तव में, शाहजहाँ एक महान् निर्माता था। इसीलिए उसके सन्दर्भ में यह उचित ही कहा गया है कि, "शाहजहाँ मुगल शासकों में सर्वाधिक प्रतापी था।"

स्वर्ण-युग कहे जाने के विपक्ष में तर्क

निम्न बिन्दुओं के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया है कि शाहजहाँ का युग स्वर्ण-युग नहीं था—

स्वर्णयुग कहे जाने के विपक्ष में तर्क

(1) शाहजहाँ का दोषपूर्ण व्यक्तित्व
(2) कठोर एवं निरंकुश शासक
(3) करों का भार
(4) आर्थिक संकट और विद्रोह का युग
(5) धार्मिक असहिष्णुता का युग।

(1) शाहजहाँ का दोषपूर्ण व्यक्तित्व—कुछ विद्वानों का मत है कि शाहजहाँ का व्यक्तिगत चरित्र अत्यन्त दोषपूर्ण और अनैतिक था। उसने अपने भाइयों से बलपूर्वक गद्दी प्राप्त की थी। वह अत्यन्त ही विलासी एवं भ्रष्ट सम्राट था। मुमताज महल की मृत्यु के पश्चात् तो सम्राट अति कामुक हो गया था। शाहजहाँ कला-प्रेमी एवं सुसंस्कृत व्यक्ति था, किन्तु साथ ही क्रूर, धोखेबाज और बेईमान भी था। उसकी राजनीति खोखली और सैन्य-व्यवस्था अति दुर्बल थी, जिसके परिणामस्वरूप ही शाहजहाँ के हाथ से कन्धार निकल गया था।

(2) कठोर एवं निरंकुश शासक—कुछ विद्वानों के अनुसार, उसका शासन-विधान अत्यन्त कठोर था। कभी-कभी वह निरंकुश और स्वेच्छाचारी शासक प्रतीत होता था। वह न तो प्रजा के हित की चिन्ता करता था और न ही वह दयावान था। पीटरमण्डी उसके कठोर व्यवहार के सम्बन्ध में लिखता है कि "उसने बनारस में एक ऐसे आदमी को उल्टे पैरों पेड़ पर लटका हुआ देखा था, जिसने एक मन्दिर को गिराने से इन्कार कर दिया था। अतः उसके काल को स्वर्ण-युग कैसे कहा जा सकता है।"

(3) करों का भार—शाहजहाँ ने शान-शौकत की पूर्ति हेतु जनता पर भारी कर लगाए थे और उनसे कर वसूलने में वह बड़ी क्रूरता दिखाता था। लेनपूल ने उसके द्वारा क्रूरतापूर्वक की गई कर वसूलियों के सन्दर्भ में लिखा है, "सम्राट प्रजा से धन वसूल करने में संकोच नहीं करता था। उसने भारी करों द्वारा प्रजा से इतने धन की माँग की कि करदाताओं को कर के बोझ से दबना पड़ा।"

(4) आर्थिक संकट और विद्रोह का युग—शाहजहाँ ने भवन-निर्माण तथा युद्धों आदि में अपार धन का अपव्यय किया, जिसके परिणामस्वरूप जनता को घोर आर्थिक कष्ट सहने पड़े। बाह्य एवं आन्तरिक विद्रोह के कारण साम्राज्य में शान्ति एवं व्यवस्था भी नहीं रह गई थी। बर्नियर लिखता है कि, "अमीर कारीगरों को बहुत कम मजदूरी देते थे, कभी-कभी तो कोड़े मारकर उन्हें भगा देते थे।"

(5) धार्मिक असहिष्णुता का युग—शाहजहाँ एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था। उसने शिया मुसलमानों और हिन्दुओं को बहुत सताया। उसने अनेक मन्दिर तुड़वाए और मन्दिरों का जीर्णोद्धार रुकवा दिया। न्याय करने में भी वह पक्षपात करता था। अतः जो राजा अपनी प्रजा को धर्म के नाम पर कष्ट देता हो, भला उसका काल किस आधार पर स्वर्ण-युग कहा जा सकता है।

निष्कर्ष—उपर्युक्त तर्कों के आधार पर अन्त में हम यह कह सकते हैं कि शाहजहाँ के काल में दोष कम और अच्छाइयाँ अधिक थीं। इसीलिए एलफिंस्टन लिखते हैं, "The reign of Shahjahan was the most prosperous period in Indian history."

सर वूल्जले हेग के अनुसार, "शाहजहाँ के 31 वर्षों के शासनकाल में मुगल वंश अपने वैभव और उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँच गया था।"

हण्टर के शब्दों में, "शाहजहाँ के शासनकाल में मुगल साम्राज्य अपनी शक्ति तथा उन्नति के चरमोत्कर्ष पर पहुँच गया था।"

प्रो० एस० आर० शर्मा के अनुसार, "शाहजहाँ का शासनकाल मुगल साम्राज्य का स्वर्ण-युग था, परन्तु उसमें पतन के चिह्न भी परिलक्षित होने लगे थे।" ("Shahjahan's period was a glorious period of Mughal rule, but it was not unmixed with symptoms of decay."

—Prof. S. R. Sharma)

प्रश्न 18—शाहजहाँ के पुत्रों के बीच उत्तराधिकार के युद्ध (1657-1658 ई०) का वर्णन कीजिए। इसमें औरंगजेब की सफलता के क्या कारण थे?

अथवा **शाहजहाँ के पुत्रों के उत्तराधिकार के युद्ध का वर्णन कीजिए। औरंगजेब को उसमें सफलता क्यों प्राप्त हुई?** *(1990, 94)*

अथवा **शाहजहाँ के पुत्रों के बीच उत्तराधिकार के युद्ध का वर्णन कीजिए।** *(1996)*

उत्तर—

उत्तराधिकार का युद्ध (संघर्ष)

शाहजहाँ के चार पुत्र थे—दारा, शाहशुजा, औरंगजेब तथा मुराद। शाहजहाँ दारा से बहुत प्यार करता था। उसने दारा को हिसार फीरोजा की जागीर दी, परन्तु वह शाहजहाँ के पास आगरा में ही रहता था। शाहशुजा विहार तथा बंगाल का शासक था। औरंगजेब दक्षिण का सूबेदार था और मुराद मालवा तथा गुजरात का शासक था।

सन् 1657 ई० में शाहजहाँ बीमार पड़ गया। दारा ने उसकी बीमारी के समाचार को गोपनीय रखा। अतः प्रारम्भ में राजकुमारों को शाहजहाँ के विषय में सत्यता ज्ञात न हो सकी। तीनों राजकुमार दिल्ली के सिंहासन को प्राप्त करने के लिए उत्सुक थे। अतः इनके मध्य उत्तराधिकार का युद्ध हुआ। इस युद्ध से सम्बन्धित प्रमुख घटनाएँ निम्नलिखित थीं—

(1) बहादुरपुर का युद्ध (14 फरवरी, 1658)—सर्वप्रथम शाहशुजा ने बंगाल में अपने आप को स्वतन्त्र घोषित कर दिया। वह एक सेना लेकर आगरा की ओर बढ़ा। दारा ने अपने पुत्र सुलेमान शिकोह और राजा जयसिंह को एक सेना सहित शाहशुजा का सामना करने के लिए भेजा। 1658 ई० में बनारस के निकट बहादुरपुर नामक स्थान पर दोनों सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ। शुजा परास्त हुआ और बंगाल की ओर भाग गया।

उत्तराधिकार का युद्ध (संघर्ष)

1. बहादुरपुर का युद्ध
2. धरमत का युद्ध
3. सामूगढ़ का युद्ध
4. मुराद का अन्त
5. दारा की हत्या
6. शुजा का अन्त
7. औरंगजेब की सफलता।

(2) धरमत का युद्ध (15 अप्रैल, 1658)—औरंगजेब ने मुराद से सन्धि की और उसके साथ विजय के उपरान्त साम्राज्य का विभाजन करने की बात तय की। दोनों की सेनाएँ धरमत नामक स्थान पर मिलीं। दारा ने कासिम खाँ और जसवन्त सिंह को उनका सामना करने के लिए भेजा। दोनों सेनाओं में भीषण युद्ध हुआ और अन्त में औरंगजेब की विजय हुई।

(3) सामूगढ़ का युद्ध (29 मई, 1658)—औरंगजेब मुराद के साथ चम्बल पार करके सामूगढ़ नामक स्थान पर पहुँचा। दारा भी एक सेना लेकर सामूगढ़ के मैदान में आया। दोनों सेनाओं में भयंकर युद्ध हुआ। इस युद्ध में दारा की पराजय हुई। वह भागकर आगरा पहुँच गया और अपने बच्चों को साथ लेकर दिल्ली भाग गया। औरंगजेब ने आगरा पर अधिकार कर लिया। औरंगजेब को यह भी सन्देह हुआ कि सम्राट उसकी हत्या का षड्यन्त्र रच रहा है। अतः उसने शाहजहाँ को बन्दी बना लिया।

(4) मुराद का अन्त—आगरा पर अधिकार करने के बाद औरंगजेब ने दारा का पीछा किया। इस समय मुराद भी सिंहासन-प्राप्ति के लिए अधीर हो उठा। अतः उसको औरंगजेब ने 20 लाख रुपये दिए। मथुरा के पास मुराद ने शराब के नशे में आधारहीन बातें कीं तो औरंगजेब ने उसे गिरफ्तार कर ग्वालियर

के दुर्ग में बन्द कर दिया। तीन वर्ष पश्चात् 1661 ई० में उसको एक अपराध के आरोप में मृत्युदण्ड दे दिया गया।

(5) दारा की हत्या—दारा दिल्ली से लाहौर गया। वहाँ से मुल्तान, सिन्ध होता हुआ गुजरात चला गया। अन्त में उसे बन्दी बना लिया गया। उसे दिल्ली लाया गया और 1659 ई० में उसका वध कर दिया गया।

(6) शुजा का अन्त—शुजा एक सेना के साथ आगरा की ओर बढ़ा। औरंगजेब ने उसका सामना करने के लिए सेना भेजी। औरंगज़ेब की सेना से खजुवा नामक स्थान पर शुजा पराजित हुआ। पराजित होकर वह अराकान की ओर भागा जहाँ उसका भी वध कर दिया गया।

(7) औरंगजेब की सफलता—उत्तराधिकार के युद्ध में औरंगजेब को सफलता मिली। उसकी सफलता के निम्नलिखित कारण थे—

(i) औरंगजेब एक उच्चकोटि का सेनापति था।
(ii) औरंगजेब एक महान् कूटनीतिज्ञ भी था।
(iii) औरंगजेब ने अपने तोपखाने का सफलतापूर्वक प्रयोग किया था।
(iv) कट्टर सुन्नी मुसलमानों ने औरंगजेब की सहायता की थी।
(v) दारा की सेना असंगठित थी।

प्रश्न 19—औरंगजेब की धार्मिक नीति की विवेचना कीजिए। *(1999)*

अथवा **"औरंगजेब ने अपनी धार्मिक नीति से मुगल साम्राज्य की नींव का विनाश कर दिया।" इस कथन की विवेचना कीजिए।**

उत्तर—

औरंगजेब की धार्मिक नीति

औरंगजेब की धार्मिक नीति का वर्णन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है—

(1) औरंगजेब की धार्मिक नीति के सिद्धान्त—औरंगजेब एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था। उसकी धार्मिक नीति निम्नलिखित सिद्धान्तों पर आधारित थी—

(i) औरंगजेब स्वयं को पैगम्बर का प्रतिनिधि मानता था। उसका विचार था कि, "मुझे पैगम्बर ने इस संसार में इस्लाम का प्रचार व प्रसार करने के लिए भेजा है।"
(ii) मुस्लिम प्रजा को इस्लाम के नियमों के अनुसार आचरण करने का प्रोत्साहन देना।
(iii) औरंगजेब धर्म को राजनीति से ऊँचा मानता था।
(iv) वह राजनीति में धार्मिक सिद्धान्तों को लागू करने के पक्ष में था।
(v) कट्टर सुन्नी होने के कारण वह शिया मुसलमानों और हिन्दुओं का प्रबल विरोधी था।

(2) मुसलमानों के प्रति औरंगजेब की धार्मिक नीति—औरंगजेब ने मुसलमानों के प्रति भी कठोर धार्मिक नीति अपनाई। उसकी धार्मिक नीति की प्रमुख बातें निम्नलिखित थीं—

(i) औरंगजेब ने मुस्लिमों द्वारा मनाए जा रहे इस्लाम विरोधी समस्त रीति-रिवाजों को बन्द करवा दिया।
(ii) उसने तुलादान और झरोखा दर्शन की प्रथा भी बन्द कर दी।
(iii) उसने पीरों तथा फकीरों की मजारों पर दीप जलाना व फूल चढ़ाना रुकवा दिया।
(iv) औरंगजेब ने सिक्कों पर कलमा खुदवाना बन्द कर दिया।
(v) उसने मुहर्रम मनाना निषिद्ध कर दिया।
(vi) उसने बड़े-बड़े नगरों में मुहतसिबों (धर्माधिकारियों) की नियुक्ति की, जिनका कार्य मुस्लिम जनता के धार्मिक आचरण की निगरानी करना था।
(vii) औरंगजेब ने वेश्यावृत्ति पर रोक लगा दी।
(viii) उसने संगीत और चित्रकारी पर प्रतिबन्ध लगा दिया और शाही चित्रकारों तथा संगीतकारों को दरबार से निकाल दिया।

(3) हिन्दुओं के प्रति औरंगजेब की धार्मिक नीति—औरंगजेब ने अपनी कट्टर धर्मान्धता के कारण हिन्दुओं पर नाना प्रकार के अत्याचार किए, जिनके फलस्वरूप मुगल साम्राज्य को गहरी क्षति उठानी पड़ी। एस० आर० शर्मा लिखते हैं कि, **"यदि औरंगजेब हिन्दुओं पर इतने अत्याचार न करता तो उसके सुधारवादी होने पर भी उसका शासन अपमानित होने के स्थान पर शानदार होता।"** औरंगजेब की धार्मिक नीति हिन्दुओं के प्रति निम्नवत् रही—

औरंगजेब की धार्मिक नीति
(1) औरंगजेब की धार्मिक नीति के सिद्धान्त
(2) मुसलमानों के प्रति औरंगजेब की धार्मिक नीति
(3) हिन्दुओं के प्रति औरंगजेब की धार्मिक नीति :
  (क) हिन्दुओं पर भारी कर
  (ख) हिन्दुओं पर प्रतिबन्ध
  (ग) मन्दिरों का विध्वंस
(4) औरंगजेब की धार्मिक नीति के परिणाम।

(क) हिन्दुओं पर भारी कर—सन् 1665 ई० में औरंगजेब ने यह आदेश जारी किया कि हिन्दुओं से अधिक कर वसूल किया जाए और उनको केवल पेटभर अनाज मिले, जिससे वे सेवा करने के लिए जीवित रह सकें। जदुनाथ सरकार ने लिखा है कि, **"यह कर सम्बन्धी पग न तो राजनीतिक दृष्टिकोण से ही उचित था और न ही इससे राज्य की आय में वृद्धि हुई। हिन्दू व्यापारी मुसलमानों के गठजोड़ से अपना माल मुसलमानों का माल कहकर चुंगी-कर से मुक्त करवा लेते थे, जिसके परिणामस्वरूप राज्य को भारी आर्थिक हानि उठानी पड़ी।"**

(ख) हिन्दुओं पर प्रतिबन्ध—औरंगजेब ने हिन्दू जनता के सामाजिक और धार्मिक जीवन पर निम्नलिखित प्रतिबन्ध लगा दिए—

(i) औरंगजेब ने नगरों में होली, दशहरा, दीवाली आदि त्योहारों पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

(ii) हिन्दू नदियों के तट पर न तो दाह-संस्कार कर सकते थे और न मुसलमानों के समान वस्त्र धारण कर सकते थे।

(iii) मराठों और राजपूतों को छोड़कर शेष हिन्दुओं के लिए घोड़े पर सवारी करना निषिद्ध कर दिया गया।

(iv) औरंगजेब ने हिन्दुओं को सरकारी नौकरी से वंचित कर दिया।

(v) उसने हिन्दुओं को बलात् मुसलमान बनाने का आदेश दिया।

(vi) उसने 1679 ई० में हिन्दुओं पर पुनः जजिया कर लगा दिया।

(ग) मन्दिरों का विध्वंस—सन् 1669 ई० में औरंगजेब ने देशभर में हिन्दू मन्दिरों को गिरा देने का आदेश दिया। बनारस का विश्वनाथ मन्दिर, मथुरा का केशवराय मन्दिर और काठियावाड़ का सोमनाथ मन्दिर तोड़कर नष्ट कर दिए गए। जयपुर तथा मेवाड़ के सैकड़ों मन्दिरों को धूल में मिला दिया गया और हरिद्वार तथा अयोध्या के मन्दिर भी तोड़ दिए गए। हिन्दुओं को पूजागृहों में उपासना करने से रोक दिया गया और उनके देवताओं की मूर्तियों को नष्ट कर दिया गया। मथुरा का नाम बदलकर इस्लामाबाद रखा गया।

(4) औरंगजेब की धार्मिक नीति के परिणाम—औरंगजेब की धार्मिक नीति ने निम्नांकित परिणाम हुए—

(i) औरंगजेब की धार्मिक नीति विनाशकारी थी। उसने हिन्दुओं और मुसलमानों के मतभेद को अत्यधिक बढ़ा दिया।

(ii) औरंगजेब ने अपनी धर्मान्धता के कारण राजपूतों के प्रति बड़ा कठोर व्यवहार किया, जिसका परिणाम मुगल साम्राज्य के लिए घातक सिद्ध हुआ। लेनपूल के अनुसार, **"वह जाति, जो औरंगजेब के शासनकाल के आरम्भ में साम्राज्य की दाहिनी भुजा थी, सम्राट के अनुचित कार्यों से शीघ्र ही उसकी शत्रु हो गई।"**

(iii) औरंगजेब की धार्मिक कट्टरता के कारण ही जाट, सतनामी, सिक्ख, मराठे आदि मुगल साम्राज्य के घोर शत्रु हो गए।

(iv) औरंगजेब की धर्मान्धता ने देश में भीषण विद्रोहों को जन्म दिया। सम्राट सम्पूर्ण जीवनभर इन विद्रोहों को दबाने में व्यस्त रहा, परन्तु अन्त में उसे असफलता ही प्राप्त हुई।

(v) औरंगजेब की धार्मिक नीति ने देश में राष्ट्रीय राज्य का अन्त कर दिया। के० एम० पनिक्कर के अनुसार, "1679 ई० में हिन्दुओं पर पुनः जजिया कर लगते ही राष्ट्रीय राज्य का अन्त हो गया, क्योंकि यह कर हिन्दू-मुस्लिम धर्मों के मतभेदों पर आधारित था।"

(vi) मुगल साम्राज्य का पतन लाने में औरंगजेब की धार्मिक नीति बड़ी सहायक सिद्ध हुई।

इस प्रकार औरंगजेब की धार्मिक असहिष्णुता की नीति ने हिन्दुओं, मराठों, शिया रियासतों, सिक्खों, जाटों, सतनामियों और राजपूतों का प्रवल विरोधी वना दिया और इनके विद्रोहों ने मुगल साम्राज्य की जड़ें खोखली कर दीं तथा उसका पतन निश्चित कर दिया।

प्रश्न 20—"दक्षिण के नासूर ने औरंगजेब को वरबाद कर दिया।" इस कथन की व्याख्या कीजिए। *(1990)*

अथवा **"दक्षिण न केवल उसके साम्राज्य, वरन् स्वयं उसकी (औरंगजेब) कब्र बना।" इस कथन की पुष्टि कीजिए।**

अथवा **औरंगजेव की दक्षिण-नीति का सविस्तार वर्णन कीजिए।**

अथवा **"औरंगजेव की दक्षिणी-नीति मुगल साम्राज्य के विनाश का एक प्रमुख कारण बनी।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं? सकारण व्याख्या कीजिए।** *(1990)*

अथवा **औरंगजेव की दक्षिणी नीति का वर्णन कीजिए और उसके परिणामों की विवेचना कीजिए।** *(1992)*

अथवा **मुगल साम्राज्य के पतन में औरंगजेब की दक्षिणी नीति कहाँ तक उत्तरदायी थी?** *(1996)*

अथवा **औरंगजेब की दक्षिणी नीति मुगल साम्राज्य के पतन में कहाँ तक उत्तरदायी थी?** *(1992, 93, 95)*

अथवा **"औरंगजेव की दक्षिणी नीति उसकी असफलता का प्रमुख कारण थी।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं?** *(1995)*

अथवा **"औरंगजेव की दक्षिण नीति मुगल साम्राज्य के लिए घातक थी।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।** *(1995)*

अथवा **"औरंगजेब की दक्षिणी नीति मुगल साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी थी।" इस कथन की विवेचना कीजिए।** *(1999)*

उत्तर—

औरंगजेब की दक्षिण-नीति

औरंगजेब एक महान् विजेता और महत्त्वाकांक्षी बादशाह था। वह चारों दिशाओं में अपने साम्राज्य का विस्तार करके सम्पूर्ण भारत पर अपना एकछत्र आधिपत्य स्थापित करना चाहता था। अतः भारत के उत्तरी राज्यों पर विजय प्राप्त करने के बाद उसने दक्षिण की ओर प्रस्थान किया। उसने दक्षिण भारत पर भी अपना अधिकार स्थापित करने की चेष्टा की लेकिन उसकी इस इच्छापूर्ति के मार्ग में अनेक बाधाएँ उत्पन्न हुईं। औरंगजेब ने इन बाधाओं पर विजय पाने के लिए अथक प्रयत्न किए, लेकिन अन्ततः दक्षिण-नीति उसके लिए बड़ी घातक सिद्ध हुई। स्मिथ महोदय के अनुसार, "दक्षिण में औरंगजेब के यश और शरीर दोनों की समाधि बनी।"

औरंगजेब की दक्षिण-नीति
(1) औरंगजेब की दक्षिण-नीति के उद्देश्य
(2) दक्षिण के राज्यों पर विजय :
(i) बीजापुर विजय
(ii) गोलकुण्डा विजय
(iii) मराठों से संघर्ष
(3) औरंगजेब की दक्षिण-नीति के परिणाम
(4) औरंगजेब की असफलता के कारण।

(1) औरंगजेब की दक्षिण-नीति के उद्देश्य—औरंगजेब की दक्षिण-नीति के निम्न उद्देश्य थे—

(i) औरंगजेब शिया लोगों से बहुत चिढ़ता था और वह शिया रियासतों (बीजापुर, गोलकुण्डा) को जीतकर उनका मुगल साम्राज्य में विलय करना चाहता था।

(ii) मराठों की शक्ति दक्षिण में बढ़ गई थी। मराठे मुगल साम्राज्य के लिए ही भावी खतरा बन रहे थे। अतः वह उन्हें नष्ट करना चाहता था।
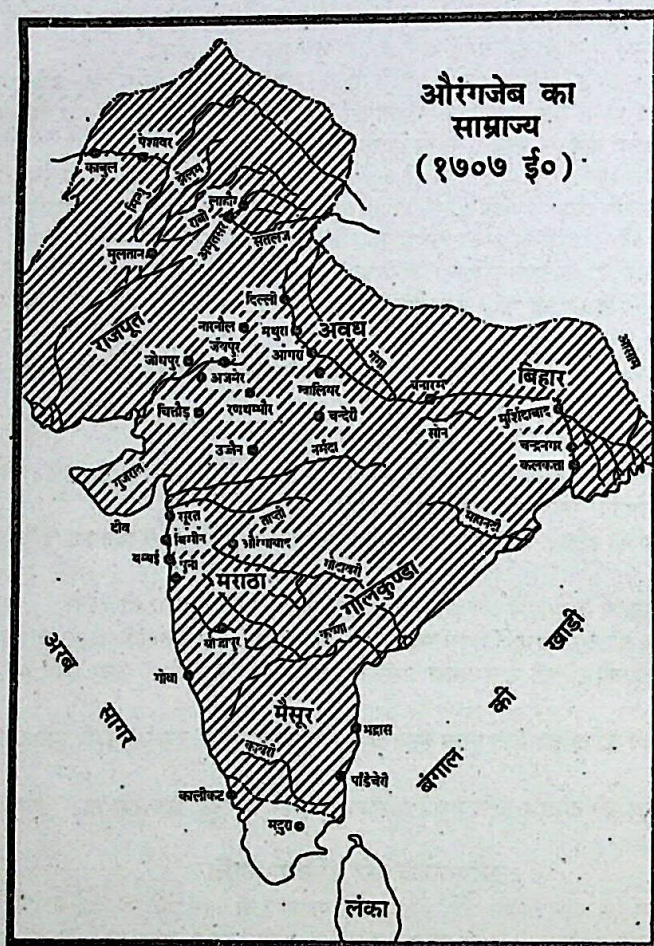
मानचित्र—औरंगजेब का साम्राज्य विस्तार (1707 ई०)।

(iii) उसे शहजादा अकबर के विद्रोह को भी कुचलना था, क्योंकि दक्षिण में अकबर ने मराठों के साथ मिलकर उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया था।

(2) दक्षिण के राज्यों पर विजय—औरंगजेब ने दक्षिण भारत के निम्नलिखित राज्य जीते—

(i) बीजापुर विजय—औरंगजेब के समय दक्षिण में बीजापुर एक शिया राज्य था। इस राज्य ने औरंगजेब के सिंहासनारूढ़ होने पर अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी थी और वार्षिक कर देना बन्द कर दिया था। इससे क्रुद्ध होकर औरंगजेब ने अपने पुत्र शाहजादा आजम को इस राज्य पर आक्रमण करने की आज्ञा दी। लेकिन बीजापुर का सुल्तान सिकन्दर अली शाह गोलकुण्डा राज्य के सहयोग से मुगलों को पराजित करने में सफल हो गया। इसके पश्चात् निरन्तर 10 वर्षों तक मुगलों और बीजापुर के मध्य संघर्ष होते रहे, किन्तु कोई निर्णायक परिणाम न निकला। अन्त में, 1685 ई० में औरंगजेब के आदेश पर आजमशाह की अध्यक्षता में बीजापुर के दुर्ग का घेरा डाला गया। गोलकुण्डा के शासक कुतुबशाह और मराठा सरदार दोनों ने मिलकर बीजापुर को सहायता दी, परन्तु आजमशाह दृढ़ता से डटा रहा। औरंगजेब

पुनः एक विशाल सेना लेकर वहाँ पहुँचा और इस बार औरंगजेब की विजय हुई। बीजापुर पर 1686 ई० में उसका पूर्ण अधिकार हो गया। बीजापुर के शासक सिकन्दर अली शाह ने आत्म-समर्पण कर औरंगजेब का मनसबदार बनना स्वीकार किया।

(ii) गोलकुण्डा विजय—औरंगजेब के समय गोलकुण्डा का शासक अबुल हसन कुतुबशाह था। 1687 ई० में शहजादे मुअज्जम ने औरंगजेब की आज्ञा से गोलकुण्डा पर आक्रमण किया। दोनों ओर की सेनाओं में 8 महीने तक जमकर संघर्ष हुआ, लेकिन मुगल सेना गोलकुण्डा पर अपना अधिकार स्थापित नहीं कर पाई। अन्त में, एक दुर्गरक्षक पठान अब्दुल गनी को भारी रिश्वत देकर दुर्ग का फाटक खुलवा लिया गया, जिससे मुगल सेना ने अन्दर घुसकर गोलकुण्डा पर अधिकार कर लिया। गोलकुण्डा का शासक अबुल हसन कुतुबशाह बन्दी बना लिया गया तथा बाद में उसे 50 हजार रुपया पेंशन दे दी गई।

(iii) मराठों से संघर्ष—औरंगजेब को मराठों ने अत्यन्त परेशान कर दिया था। मराठों में शिवाजी ऐसे सर्वप्रमुख शासक थे जो दीर्घकाल तक मुगलों से संघर्ष करते रहे। औरंगजेब को उनसे कड़ा संघर्ष करना पड़ा और मृत्युपर्यन्त तक भी वह शिवाजी को पराजित नहीं कर पाया। शिवाजी के साथ हुए युद्धों में औरंगजेब के कई सेनापति—जसवन्त सिंह, शाइस्ता खाँ आदि बहुत बुरी तरह पराजित हुए थे। 1680 ई० में शिवाजी की मृत्यु होते ही मराठा शक्ति का ह्रास होने लगा। 1689 ई० में औरंगजेब ने शिवाजी के पुत्र शम्भाजी को पराजित कर उसे बन्दी बना लिया। शम्भाजी ने औरंगजेब से मुगल शहजादी का विवाह अपने साथ करने के लिए कहा। औरंगजेब ने क्रोधित होकर शम्भाजी और उसके प्रधानमन्त्री का वध करवा दिया। इसके बाद राजाराम सिंहासनारूढ़ हुआ। औरंगजेब ने राजाराम पर आक्रमण करके रायगढ़ पर अपना अधिकार कर लिया और शम्भा जी की अर्द्धांगिनी व पुत्र साहू को बन्दी बना लिया। राजाराम किसी प्रकार भागकर जिंजी के किले में जाकर छिप गया। वहाँ औरंगजेब उसे पकड़ नहीं पाया। 1700 ई० में राजाराम की मृत्यु हो गई। राजाराम की मृत्यु के उपरान्त उसकी वीर एवं साहसी पत्नी ताराबाई ने मुगलों के विरुद्ध युद्ध जारी रखा। औरंगजेब उससे भी युद्ध करता रहा, किन्तु उसकी इच्छा पूरी नहीं हुई और 1707 ई० में दक्षिण में ही उसकी मृत्यु हो गई।

(3) औरंगजेब की दक्षिण-नीति के परिणाम—औरंगजेब दीर्घकाल तक दक्षिण में रहा और निरन्तर दक्षिण की शक्तियों से संघर्ष करता रहा, किन्तु अथक परिश्रम के बाद भी उसे वहाँ कोई विशेष सफलता प्राप्त न हो सकी। उसकी दक्षिण-नीति के निम्नलिखित परिणाम हुए—

(i) शिया राज्यों के पतन से मराठों का मुगलों पर आक्रमण करने का मार्ग प्रशस्त हो गया।

(ii) इस नीति से कृषक बहुत पीड़ित हुए।

(iii) औरंगजेब के अधिक समय तक दक्षिण में रहने के कारण उसकी केन्द्रीय व्यवस्था कमजोर होकर पतनोन्मुख हो गई जिसके परिणामस्वरूप अनेक लोगों ने विद्रोह करके मुगल साम्राज्य को बहुत आघात पहुँचाया।

(iv) दक्षिण में लम्बे समय तक युद्ध करते रहने के कारण राजकोष धन से लगभग रिक्त हो गया, जिसकी पूर्ति शीघ्र होनी सम्भव न थी।

(v) औरंगजेब दीर्घकाल तक अपनी राजधानी से अनुपस्थित रहा। अतः उसके प्रान्तीय शासक और सूबेदार मनमानी करने लगे थे। वे जनता पर अत्याचार करने व उसे लूटने लगे थे। औरंगजेब उनको नियन्त्रित करने में असमर्थ रहा।

(vi) निरन्तर युद्धों में व्यस्त रहने के कारण औरंगजेब ने साहित्य, संगीत कला आदि की उन्नति की ओर तनिक भी ध्यान नहीं दिया, जिससे इसकी दिन-पर-दिन अवनति होती चली गई। औरंगजेब ने अपने शासनकाल की स्मृतिस्वरूप कुछ भी नहीं बनवाया था।

(4) औरंगजेब की असफलता के कारण—मराठों में राष्ट्रीय भावना अत्यधिक मात्रा में थी। इसलिए उन सबने मिलकर औरंगजेब का सामना किया और उसे असफल कर दिया। शिवाजी ऐसे प्रथम हिन्दू राजा थे, जिन्होंने मुगलों की भाँति कूटनीति और शतरंजी चालों को अपनाया था। अतः साहसी और देशभक्त शिवाजी अपने सम्पूर्ण जीवन मुगलों से लोहा लेने में सफल हुए थे। इस सन्दर्भ में ग्राण्ड डफ

ने लिखा है, "औरंगजेब के दक्षिण अभियान में असफलता का मूल कारण शिवाजी की कुशल कूटनीति और वीरता थी।"

इसके अतिरिक्त, मुगल सेना के नैतिक पतन और मुगल सेनापतियों की लापरवाही एवं अयोग्यता के कारण भी औरंगजेब अपने दक्षिण अभियान में सफल न हो सका। दक्षिण अभियान वास्तव में औरंगजेब और मुगल साम्राज्य के लिए नासूर (रिसने वाला फोड़ा) बन गया था, जिसने औरंगजेब का पतन कर दिया था। इस प्रकार, औरंगजेब की दक्षिण नीति उसकी असफलता का प्रमुख कारण सिद्ध हुई। जदुनाथ सरकार के शब्दों में, **"जिस प्रकार स्पेन के नासूर ने नेपोलियन का विनाश कर दिया, उसी प्रकार दक्षिण के नासूर ने औरंगजेब का विनाश कर दिया था।"**

इसमें सन्देह नहीं है कि औरंगजेब की दक्षिण नीति मुगल साम्राज्य के लिए घातक सिद्ध हुई अथवा मुगल साम्राज्य के विनाश का प्रमुख कारण बनी और दक्षिण; न केवल उसके साम्राज्य, वरन् स्वयं उसकी (औरंगजेब) कब्र बना।

प्रश्न 21—औरंगजेब के शिवाजी के साथ सम्बन्धों की विवेचना कीजिए। *(1988)*

उत्तर—

औरंगजेब के शिवाजी के साथ सम्बन्ध

औरंगजेब, शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति को मुगल साम्राज्य के लिए अहितकर समझता था। अफजलं खाँ के वध के पश्चात् उसका यह विश्वास और भी दृढ़ हो गया। अतः उसने शिवाजी की शक्ति को समाप्त करने के लिए निम्नलिखित उपाय किए—

औरंगजेब के शिवाजी के साथ सम्बन्ध

(1) शाइस्ता खाँ को दक्षिण का सूबेदार बनाना
(2) जयसिंह को आक्रमण के लिए भेजना
(3) शिवाजी का आगरा जाना
(4) मुगलों से पुनः युद्ध।

(1) शाइस्ता खाँ को दक्षिण का सूबेदार बनाना—औरंगजेब ने 1659 ई० में शाइस्ता खाँ को, जो उसका मामू था, दिसरत का सूबेदार बनाया और शिवाजी की शक्ति को समाप्त करने का आदेश दिया। शाइस्ता खाँ ने एक शक्तिशाली सेना के साथ पूना की ओर कूच किया। दो वर्ष तक शाइस्ता खाँ और शिवाजी में युद्ध होता रहा। शाइस्ता खाँ ने शिवाजी को अपार क्षति पहुँचाई, परन्तु शिवाजी ने पूना में रात के समय उस पर अचानक आक्रमण कर दिया। इसमें शाइस्ता खाँ का पुत्र अबुलफतह मारा गया। शाइस्ता खाँ का एक अंगूठा कट गया और उसने खिड़की से कूदकर अपनी जान बचाई। औरंगजेब ने शाइस्ता खाँ को बंगाल जाने पर विवश कर दिया। सन् 1664 ई० में शिवाजी ने मुगल साम्राज्य के सबसे समृद्ध बन्दरगाह सूरत को लूटा। यहाँ से शिवाजी को अपार सम्पत्ति प्राप्त हुई। उन्होंने राजा की उपाधि भी धारण की।

(2) जयसिंह को आक्रमण के लिए भेजना—शाइस्ता खाँ के असफल हो जाने पर औरंगजेब ने आमेर नरेश जयसिंह को शिवाजी को कुचलने के लिए भेजा। जयसिंह एक अनुभवी सेनानायक तथा चतुर कूटनीतिज्ञ था। उसने महाराष्ट्र और कर्नाटक के बहुत से जमींदारों को अपनी ओर मिला लिया। शिवाजी के बहुत-से दुर्गों पर भी जयसिंह ने अधिकार कर लिया। जयसिंह ने महाराष्ट्र के अधिकांश भाग को नष्ट कर दिया और मराठों को बहुत परेशान किया। अन्त में, शिवाजी और जयसिंह की भेंट हुई और दोनों के मध्य पुरन्दर की सन्धि (1665 ई०) हो गई। सन्धि के अनुसार, शिवाजी को अपने 35 दुर्गों में से 23 दुर्ग मुगलों को देने पड़े। शिवाजी को मुगल सम्राट की सेवा और भक्ति तथा दक्षिण के युद्धों में मुगल सेना को सहयोग देने का वचन भी देना पड़ा।

(3) शिवाजी का आगरा जाना—जयसिंह के परामर्श पर शिवाजी अपने पुत्र शम्भाजी के साथ आगरा गए। दरबार में औरंगजेब ने शिवाजी को पाँच हजार मनसबदारों में स्थान दिया। जब शिवाजी ने विरोध प्रकट किया, तो उनको नजरबन्द कर दिया गया। कुछ समय बाद वे मिठाई के टोकरे में छिपकर अपने पुत्र समेत नजरबन्दी से भाग निकले और अपनी राजधानी रायगढ़ पहुँचे। कुछ समय तक शिवाजी ने वहाँ स्वास्थ्य सुधार किया। 1670 ई० में उन्होंने सूरत को दूसरी बार लूटा। उन्होंने कई दुर्गों पर भी

अधिकार कर लिया और बरार तथा खानदेश आदि मुगल प्रान्तों में लूटपाट की। इस समय उत्तर-पश्चिम में अफगानों से संघर्ष के कारण मुगल सम्राट, शिवाजी की ओर ध्यान न दे सका।

(4) मुगलों से पुनः युद्ध—सन् 1674 ई० में शिवाजी ने अपना राज्याभिषेक कराया। इसमें हुए व्यय से शिवाजी की आर्थिक स्थिति दयनीय हो गई। अतः उन्होंने मुगल सेनापति बहादुर खाँ को चकमा देकर उसके शिविर को लूट लिया। इस लूट में शिवाजी को 9 करोड़ रुपये और 200 घोड़े प्राप्त हुए।

शिवाजी ने 1677 ई० में कर्नाटक पर आक्रमण किया और तुंगभद्रा से कावेरी तक का प्रदेश अपने अधिकार में कर लिया। 1680 ई० में शिवाजी की मृत्यु हो गई।

प्रश्न 22—औरंगजेब की राजपूत नीति का वर्णन करते हुए इसके परिणामों का उल्लेख कीजिए।
अथवा **औरंगजेब के शासनकाल में मुगलों तथा राजपूतों के आपसी सम्बन्धों के इतिहास का विवरण दीजिए।** *(1994)*

उत्तर—

औरंगजेब की राजपूत नीति

औरंगजेब ने राजपूतों के प्रति अनुदार नीति अपनाई, जिसके फलस्वरूप राजपूतों में असन्तोष और विद्रोह की भावनाओं का विकास हुआ। संक्षेप में, औरंगजेब की राजपूत नीति इस प्रकार रही—

(1) राठौर राजपूतों के प्रति नीति—जोधपुर के राठौर नरेश राजा जसवन्तसिंह की मृत्यु के बाद औरंगजेब ने उसके पुत्र राजा अजीतसिंह को उसका उत्तराधिकारी स्वीकार नहीं किया और अल्पवयस्क अजीतसिंह को शाही हरम में नजरबन्द करा दिया। इससे राठौर राजपूत-सरदार औरंगजेब से असन्तुष्ट हो गए।

औरंगजेब की राजपूत नीति
(1) राठौर राजपूतों के प्रति नीति
(2) अकबर का विद्रोह
(3) मेवाड़ के प्रति नीति।

दुर्गादास राठौर ने अजीतसिंह को शाही हरम से निकाल कर जोधपुर की गद्दी पर बैठा दिया। इस पर औरंगजेब ने मारवाड़ पर आक्रमण कर दिया। राजपूत; मुगल सेना का सामना न कर सके, लेकिन दुर्गादास; अजीतसिंह को मेवाड़ ले जाने में सफल रहा। मेवाड़ के राणा ने राठौर राजपूतों का पक्ष लिया और एक सेना जोधपुर भेज दी। इससे रुष्ट होकर 1679 ई० में औरंगजेब ने मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया। राणा को पराजित होकर राजधानी छोड़नी पड़ी; किन्तु उसने मुगलों से छापामार युद्ध जारी रखा।

(2) अकबर का विद्रोह—इस बीच औरंगजेब का पुत्र शहजादा अकबर अपने पिता से विद्रोह करके राजपूतों से आकर मिल गया; लेकिन औरंगजेब ने कूटनीति से काम लेकर अकबर और राजपूतों के सम्बन्धों को तोड़ दिया। अन्त में, राजपूतों को औरंगजेब की कूटनीति का पता चल गया और दुर्गादास राठौर ने अकबर को मराठा सरदार शम्भाजी के पास पहुँचा दिया।

(3) मेवाड़ के प्रति नीति—अजीतसिंह के उत्तराधिकारी के प्रश्न पर मेवाड़ के राणा राजसिंह मुगलों के शत्रु बन गए। 1679 ई० में उन्होंने मुगलों से पराजित होने के बाद उनसे छापामार लड़ाई जारी रखी। राणा राजसिंह की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी जगतसिंह ने औरंगजेब से सन्धि कर ली। लेकिन राठौर राजपूत इस सन्धि से सन्तुष्ट नहीं थे; अतः 1698 ई० तक मुगलों और राजपूतों के मध्य युद्ध चलता रहा। औरंगजेब की मृत्यु के बाद राठौर राजपूतों ने सम्पूर्ण मारवाड़ पर अधिकार कर लिया। औरंगजेब के उत्तराधिकारी बहादुरशाह ने अजीतसिंह के साथ सन्धि कर ली और उसे जोधपुर का स्वतन्त्र शासक स्वीकार कर लिया।

औरंगजेब की राजपूत नीति के परिणाम

औरंगजेब की राजपूत नीति के परिणाम मुगल साम्राज्य के लिए सुखद सिद्ध नहीं हुए। मारवाड़ और मेवाड़ से हुए दीर्घकालीन युद्ध के कारण मुगल सेना दुर्बल हो गई और मुगल शासन को काफी क्षति उठानी पड़ी। सबसे महत्त्वपूर्ण परिणाम यह हुआ कि वीर, स्वामिभक्त और साहसी राजपूतों की सेनाओं से मुगल साम्राज्य वंचित हो गया।

प्रश्न 23—औरंगजेब के चारित्रिक गुणों का मूल्यांकन कीजिए। *(1994)*

अथवा **औरंगजेब के चरित्र पर आधारित गुणों एवं अवगुणों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।**

उत्तर—

औरंगजेब का चरित्र

औरंगजेब के चरित्र में जहाँ एक ओर अनेक महत्त्वपूर्ण गुण थे, वहीं उसमें अनेक ऐसे अवगुण भी थे, जिनके फलस्वरूप न केवल उसके विरुद्ध अनेक विद्रोह हुए, वरन् मुगल साम्राज्य का पतन भी सुनिश्चित हो गया। उसके चरित्र से सम्बन्धित विभिन्न गुणों एवं अवगुणों का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

औरंगजेब के चारित्रिक गुण

औरंगजेब के चरित्र सम्बन्धी निम्न गुण थे—

(1) साहसी व्यक्तित्व—औरंगजेब प्रारभ से ही अत्यन्त साहसी था। वह विकट परिस्थितियों का स्वयं सामना करता था तथा स्वयं सेना का संचालन करके शत्रुओं का दमन करता था। उसने एक बार कहा था, **"राज्य-विषयक मामलों में पूरा-पूरा ज्ञान रखना सरकार का मुख्य आधार-स्तम्भ है। एक क्षण की भी असावधानी दीर्घकाल तक के लिए लज्जा व अपमान का कारण बन सकती है। इसलिए सम्राट को सावधान रहना चाहिए।"**

औरंगजेब के चारित्रिक गुण

(1) साहसी व्यक्तित्व
(2) कुशल सेनापति
(3) न्यायप्रिय
(4) धर्मपरायण
(5) सादा जीवन एवं धार्मिक विचार
(6) क्रियाशील।

(2) कुशल सेनापति—उसमें उच्चकोटि की सैनिक प्रतिभा थी। विभिन्न युद्धों में उसने इस प्रतिभा का पूर्ण परिचय दिया। सम्राट बनने के बाद उसने उत्तरी व दक्षिणी राज्यों को अपने अधीन किया। यद्यपि मराठों के विरुद्ध उसे सफलता न मिली, किन्तु उसने कभी भी हृदय से हार नहीं मानी।

(3) न्यायप्रिय—वह एक न्यायप्रिय सम्राट था, जो अपने पुत्रों को भी दण्ड देने में नहीं हिचकता था। एक इतिहासकार ने लिखा है कि, **"औरंगजेब न्याय करने में अत्यन्त कुशल था। वह इतना न्यायप्रिय था कि प्रत्येक व्यक्ति उसके पास पहुँच सकता था।"** डॉ० कुरैशी ने उसकी न्यायप्रियता के विषय में लिखा है कि, **"औरंगजेब न्याय की दृष्टि से बहुत ही कुशल था, वह अपने पदाधिकारियों पर अधिक विश्वास नहीं करता था।"**

(4) धर्मपरायण—औरंगजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था। वह दिन में पाँच बार नमाज पढ़ता था तथा इस्लाम के सभी नियमों का पालन करता था। बल्ख में उजबेगों के साथ युद्ध के मैदान में घोड़े से उतरकर नमाज पढ़ने का साहस औरंगजेब ने ही दिखाया था। उसकी धर्म-परायणता इतनी बढ़ गई थी कि उसने मांस भक्षण करना छोड़ दिया था तथा उत्सवों आदि में भाग लेना भी छोड़ दिया था।

(5) सादा जीवन एवं धार्मिक विचार—वह एक धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था। दुर्व्यसनों, सुरापान, नृत्य, संगीत आदि से उसे घृणा थी। वह राजकोष को प्रजा की धरोहर मानता था। वह टोपियाँ सिलकर व कुरान की आयतें लिखकर अपनी आजीविका चलाता था। मरते समय उसने अपने पुत्रों से कहा कि उसके शरीर को सरल रीति से दफना दिया जाए।

(6) क्रियाशील—उसका विश्वास था कि व्यक्ति को कठिन-से-कठिन परिश्रम करना चाहिए, क्योंकि ऐसा न करने से ईश्वर के विरुद्ध कृतघ्नता व प्रजा के प्रति अन्याय प्रदर्शित होता है। उसने अपने पुत्रों से कहा **"सम्राट को आराम करने की इच्छा नहीं करनी चाहिए जहाँ तक हो सके उसे क्रियाशील रहना चाहिए, क्योंकि भोगविलास ही राजसत्ता के नाश का सबसे बड़ा कारण है। सम्राट की गति पानी के समान होनी चाहिए, क्योंकि एक स्थान पर पानी पड़ा-पड़ा रहने से सड़ जाता है, उसी प्रकार सम्राट एक ही स्थान पर रहता हुआ शक्तिहीन हो जाता है।"**

औरंगजेब के चारित्रिक अवगुण

औरंगजेब के चरित्र में जहाँ एक ओर अनेक गुण थे, वहीं दूसरी ओर उसके चरित्र में ऐसे अनेक अवगुण भी थे जिनके फलस्वरूप वह अपयश का भागी बना और मुगल साम्राज्य के पतन के लिए सर्वाधिक उत्तरदायी सिद्ध हुआ। इसके चारित्रिक अवगुणों का उल्लेख अग्रलिखित है—

(1) क्रूरता—औरंगजेब में दया, प्रेम, सहानुभूति एवं अन्य मानवीय गुणों का अभाव था। शम्भा जी का क्रूरतापूर्ण अन्त तथा गोविन्दसिंह के पुत्रों पर किए गए अत्याचार इस बात के ठोस प्रमाण हैं। उसने अपने पुत्र एवं पुत्रियों पर भी अत्याचार किए। उसने अपने पुत्र मुअज्जम को 8 वर्ष तक कारावास में रखा तथा अपनी पुत्री को सलीमगढ़ के दुर्ग में अपने शासनकाल के अन्तिम वर्षों तक कैद में रखा। औरंगजेब ने अपने भाई दारा शिकोह का भी बड़ी क्रूरता से अन्त करवाया।

औरंगजेब के चारित्रिक अवगुण
(1) क्रूरता
(2) धार्मिक असहिष्णुता
(3) शंकालु प्रवृत्ति
(4) कला का शत्रु।

(2) धार्मिक असहिष्णुता—औरंगजेब की धर्मपरायणता ने उसको धर्मान्ध बना दिया था। अन्य धर्मों का वह अनादर करता था और उनके अनुयायियों पर अमानुषिक अत्याचार करता था। हिन्दू व सिक्ख उसकी धार्मिक कट्टरता के विशेष लक्ष्य बने। शिया मत के मानने वाले मुसलमान राजवंशों को भी उसने नष्ट किया। उसकी धार्मिक कट्टरता के कारण ही चारों ओर उसके शत्रु उत्पन्न हो गए।

(3) शंकालु प्रवृत्ति—औरंगजेब अपने किसी भी पदाधिकारी पर विश्वास नहीं करता था। बर्नियर के अनुसार, **"औरंगजेब दुराव रखने वाला, कुटिल और कपटपूर्ण आचरण की कला में दक्ष था।"** अपने इस दुर्गुण के कारण उसने अपनी वृद्धावस्था में अनेक कष्ट भोगे। स्वयं उसके पुत्रों ने उसके विरुद्ध विद्रोह किए तथा उसे अपमानित किया।

(4) कला का शत्रु—इस्लाम धर्म का कट्टर अनुयायी होने के कारण वह मूर्तियों और चित्रों का विनाश करने में विश्वास रखता था। उसने अनेक चित्रों और मूर्तियों को नष्ट करा दिया था। जहाँगीर द्वारा निर्मित करवाई गई जयमल और फत्ता की हाथियों पर बैठी हुई सुन्दर मूर्तियों को उसने तुड़वा दिया। इस प्रकार, वह कला का शुत्र था।

संक्षेप में, वह एक सफल शासक नहीं था, क्योंकि उसकी सभी योजनाएँ असफल सिद्ध हुईं तथा अपनी धार्मिक कट्टरता, क्रूरता, सन्देहशीलता आदि अवगुणों के कारण उसने अपने पुत्रों, सम्बन्धियों एवं शुभचिन्तकों तक को भी अपना शत्रु बना लिया था।

प्रश्न 24—"मुगल साम्राज्य के पतन के लिए औरंगजेब उत्तरदायी था।" व्याख्या कीजिए। *(1992)*
अथवा **मुगल साम्राज्य के पतन के लिए औरंगजेब कहाँ तक उत्तरदायी था?**
अथवा **मुगल साम्राज्य के पतन के कारणों की समीक्षा कीजिए।** *(1994)*
अथवा **मुगल साम्राज्य के पतन के कारणों पर प्रकाश डालिए।** *(1990, 93, 94)*
अथवा **"मुगलों के पतन का उत्तरदायित्व औरंगजेब पर था।" औरंगजेब के कृत्यों के आधार पर उक्त कथन की व्याख्या कीजिए।**
अथवा **"मुगल साम्राज्य का पतन एक दीर्घकालीन ह्रासोन्मुख प्रक्रिया का परिणाम था। यह कोई आकस्मिक घटना न थी।" इस कथन के आलोक में मुगल साम्राज्य के पतन के कारणों की व्याख्या कीजिए।** *(1995)*
अथवा **"मुगल साम्राज्य के पतन औरंगजेब की दक्षिण नीति के अतिरिक्त अन्य कारणों का भी योगदान था।" इस कथन की विवेचना कीजिए।** *(1997)*

उत्तर—

मुगल साम्राज्य के पतन के कारण

औरंगजेब के समय से ही मुगल साम्राज्य के पतन के चिह्न दृष्टिगोचर होने लगे थे और उसकी मृत्यु के पश्चात् से तो मुगल साम्राज्य का बड़ी तेजी के साथ विघटन होने लगा था। अन्ततः औरंगजेब के उत्तराधिकारी सुल्तानों की अयोग्यताओं ने इस साम्राज्य की अन्त्येष्टि ही कर दी। संक्षेप में, मुगल साम्राज्य के पतन के कारण इस प्रकार थे—

(1) अयोग्य एवं दुर्बल उत्तराधिकारी—औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मुगल वंश में कोई भी योग्य शासक नहीं हुआ, जो इस वंश की गरिमा को बनाए रखते हुए अपने भारतीय साम्राज्य को बनाए रख सकने में सफल होता। बाद के अधिकांश बादशाह अयोग्य थे और वे भोग-विलास में लीन रहते थे। वे अपने

मन्त्रियों और अमीरों के हाथों के खिलौने थे। अतः अयोग्य उत्तराधिकारियों के कारण मुगल वंश का पतन निश्चित हो गया था।

(2) उत्तराधिकार के नियम का अभाव—मुगलों में उत्तराधिकार का कोई सुनिश्चित नियम नहीं था। अतः सम्राट के परिवार का कोई भी राजकुमार तथा कभी-कभी अन्य सम्बन्धी भी, उत्तराधिकारी हो सकता था। इस प्रकार, सम्राट की मृत्यु के पश्चात् बहुधा राजगद्दी के लिए राजकुमारों में गृह-युद्ध छिड़ जाते थे। इससे भी मुगल साम्राज्य की शक्ति का ह्रास होता चला गया।

मुगल साम्राज्य के पतन के कारण

(1) अयोग्य एवं दुर्बल उत्तराधिकारी
(2) उत्तराधिकार के नियम का अभाव
(3) सरदारों का नैतिक पतन
(4) निरंकुश और स्वेच्छाचारी सम्राट
(5) मुगल सेना की दुर्बलता
(6) रिक्त राजकोष
(7) जल सेना का अभाव
(8) औरंगजेब का व्यक्तिगत उत्तरदायित्व
 (i) औरंगजेब की दक्षिण-नीति
 (ii) औरंगजेब की धार्मिक असहिष्णुता की नीति
 (iii) औरंगजेब की राजपूतों के प्रति नीति
(9) मुगल साम्राज्य का अधिक विस्तृत होना
(10) यूरोपवासियों का भारत आगमन
(11) विदेशियों के आक्रमण।

(3) सरदारों का नैतिक पतन—औरंगजेब से पूर्व मुगल शासकों को मुगल सरदारों व अमीरों का पर्याप्त सहयोग मिला था जिसके परिणामस्वरूप अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ को अपने समय में मुगल साम्राज्य को स्थायी, शक्तिशाली और दृढ़ बनाने में सफलता प्राप्त हुई थी। परन्तु औरंगजेब के समय से ही इन सरदारों का नैतिक पतन प्रारम्भ हो गया था। अतः सरदारों की स्वार्थपूर्ण नीति और नैतिक पतन ने भी इस वंश का अन्त कर दिया।

(4) निरंकुश और स्वेच्छाचारी सम्राट—मुगल सम्राट निरंकुश एवं स्वेच्छाचारी होते थे। वे किसी का विरोध सहन नहीं करते थे। वे विद्रोहियों का अति-शीघ्र दमन कर देते थे। अतः ऐसे साम्राज्य को केवल शक्तिशाली और योग्य शासक ही सुरक्षित रख सकते थे। इसीलिए मुगल साम्राज्य का पतन औरंगजेब से प्रारम्भ हुआ और उसकी मृत्यु के पश्चात् सिंहासन पर बैठने वाले उत्तराधिकारियों की अयोग्यता के कारण उसका पतन और भी अधिक तीव्र गति से होता चला गया।

(5) मुगल सेना की दुर्बलता—अकबर ने अपनी सेना के प्रबन्ध में मनसबदारी प्रथा प्रचलित की थी। कालान्तर में इस मनसबदारी प्रथा में अनेक दोष उत्पन्न हो गए थे। मनसबदारों की सेना असंगठित, दुर्बल और अनुशासनहीन होती थी। मनसबदार सम्राट के प्रति स्वामिभक्त भी नहीं रह गए थे। ये आपस में ईर्ष्या करते रहते थे। इसके अतिरिक्त, विभिन्न मनसबदारों की सैन्य टुकड़ियों में सहयोग और एकता की भावना का भी अभाव हो गया था। ऐसी स्थिति में मुगल साम्राज्य का पतन अनिवार्य हो गया था।

(6) रिक्त राजकोष—शाहजहाँ के भवनों के निर्माण और औरंगजेब के दक्षिण अभियान में अत्यधिक धन व्यय हुआ था, जिससे मुगलों का राजकोष लगभग रिक्त हो गया था। कृषि, व्यापार एवं उद्योग भी बिल्कुल ठप्प हो गए थे, जिन्हें बिना धन के सुधारा नहीं जा सकता था। इस प्रकार देश की सम्पूर्ण आर्थिक व्यवस्था अस्त-व्यस्त हो गई थी।

(7) जल सेना का अभाव—किसी भी मुगल बादशाह ने जल सेना की ओर विशेष ध्यान नहीं दिया, क्योंकि उन्हें जल सेना की कोई आवश्यकता नहीं थी, जिसके फलस्वरूप वे यूरोपवासियों को भारत में घुसने से नहीं रोक सके और मराठों की शक्ति को भी नष्ट करने में सफल न हो सके।

(8) औरंगजेब का व्यक्तिगत उत्तरदायित्व—मुगल साम्राज्य के पतन में औरंगजेब का व्यक्तिगत उत्तरदायित्व भी था। मुगल वंश के पतन के लिए उत्तरदायी औरंगजेब की कुछ नीतियों को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है—

(i) औरंगजेब की दक्षिण-नीति—औरंगजेब की यह महत्त्वाकांक्षा थी कि वह दक्षिण और उत्तर के सभी राज्यों पर अपना अधिकार कर ले. इसलिए वह उत्तरी राज्यों की विजय के बाद दक्षिणी राज्यों की

ओर बढ़ा। वहाँ उसे मराठों की शक्ति और शिया राज्यों को कुचलने में 25 वर्ष व्यतीत करने पड़े, जिससे अपार जन-धन की हानि हुई। मुगल राजकोष लगभग रिक्त हो गया, साथ ही शासन-व्यवस्था भी अस्त-व्यस्त हो गई एवं राज्य में सर्वत्र अराजकता फैल गई।

(ii) औरंगजेब की धार्मिक असहिष्णुता की नीति— औरंगजेब की धार्मिक नीति पक्षपातपूर्ण थी। उसने हिन्दुओं पर जजिया और तीर्थयात्रा कर लगाए थे। श्रीराम शर्मा के अनुसार, **"औरंगजेब ने जजिया कर दो कारणों से लगाया था। प्रथम तो वह खजाने को बढ़ाना चाहता था, क्योंकि अनेक लड़ाइयों के कारण राजकोष खाली होता जा रहा था। दूसरे, वह हिन्दुओं को करों के भार से लादकर तंग करना चाहता था, जिससे वे मुसलमान बन जाएँ।"**

औरंगजेब ने हिन्दुओं को वलात् मुसलमान वनाया था। राजपूतों को छोड़कर शेष हिन्दुओं को उसने हाथी, पालकी तथा फारसी घोड़े पर बैठने के अधिकारों से वंचित कर दिया था और दीपावली तथा होली जैसे प्रसिद्ध त्योहारों को मनाने पर प्रतिवन्ध लगा दिया गया था। इस पक्षपातपूर्ण नीति का परिणाम यह हुआ कि वहुसंख्यक हिन्दू जनता मुगल-साम्राज्य की विरोधी हो उठी और मुगलों का सशक्त प्रतिरोध करने के लिए सीना तानकर खड़ी हो गई।

(iii) औरंगजेब की राजपूतों के प्रति नीति—औरंगजेब से पहले अकबर आदि शासकों ने राजपूतों के चारित्रिक गुणों को भली-भाँति समझा और उन्हें अपना मित्र बनाया, जिसके कारण उन्हें अपने साम्राज्य को शक्तिशाली एवं स्थायी बनाने में पर्याप्त सहयोग मिला था, किन्तु औरंगजेब ने अपनी धर्मान्धता के कारण भारत की सबसे शक्तिशाली राजपूत जाति की उपेक्षा की। परिणामस्वरूप वे मुगलों के शत्रु बन गए और उनके सशक्त आक्रमणों ने मुगल साम्राज्य को पतन के कगार पर पहुँचा दिया।

(9) मुगल साम्राज्य का अधिक विस्तृत होना—औरंगजेब के शासनकाल में मुगल साम्राज्य का अत्यधिक विस्तार अवश्य हुआ, लेकिन इसका परिणाम लाभकारी सिद्ध नहीं हुआ। दक्षिण की रियासतों के मुगल साम्राज्य में मिल जाने के कारण उत्तर से दक्षिण तक सारे साम्राज्य का शासन केन्द्रीय शासन-व्यवस्था द्वारा ठीक प्रकार से संचालित नहीं हो पाया। इसके परिणामस्वरूप औरंगजेब के समय से ही अनेक प्रान्तों के शासक उसके प्रति विद्रोह करके अपनी स्वतन्त्र सत्ता स्थापित करने का प्रयास करते रहे।

(10) यूरोपवासियों का भारत आगमन—17वीं शताब्दी के बाद अंग्रेज, फ्रांसीसी, पुर्तगाली आदि यूरोपवासी भारत आने लगे थे। यद्यपि शुरू में ये व्यापार करने आए थे, किन्तु भारत की दुर्बल राजनीतिक स्थिति देखकर ये राजनीति में भी हस्तक्षेप करने लगे। बाद में, इन्होंने भी मुगल साम्राज्य को समाप्त करने में अत्यधिक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

(11) विदेशियों के आक्रमण—नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली जैसे विजेताओं ने भारत की दुर्वल और अराजक स्थिति का लाभ उठाकर भारत पर भीषण आक्रमण किए, जिसके परिणामस्वरूप मुगल साम्राज्य तेजी के साथ छिन्न-भिन्न होने लगा और उसका पतन निश्चित हो गया।

उपर्युक्त विवेचन के पश्चात् हम कह सकते हैं कि **मुगल साम्राज्य के पतन के लिए औरंगजेब सबसे अधिक उत्तरदायी था। इस सम्राट ने अपने विनाश के साथ-साथ इस विशाल साम्राज्य की कब्र भी खोद डाली थी।**

प्रश्न 25—मुगलों की उत्तरी-पश्चिमी सीमा-नीति की विवेचना कीजिए। इसका क्या परिणाम हुआ था? *(1999)*

अथवा **मुगलों की दक्षिण-नीति का वर्णन कीजिए। उसके अन्तिम परिणाम क्या हुए?**

उत्तर—

मुगलों की उत्तर-पश्चिम सीमा-नीति

मुगलों की उत्तर-पश्चिम सीमा नीति के सम्बन्ध में मुगलों की नीति का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

(1) प्रारम्भिक मुगल सम्राटों की सीमा-नीति—प्रारम्भिक मुगलों की सीमा-नीति का मुख्य केन्द्र कन्धार व काबुल थे। इन्हीं दोनों प्रदेशों के लिए प्रायः युद्ध होते रहे थे। प्रथम मुगल सम्राट बाबर ने कन्धार

पर अधिकार कर लिया था। इसी प्रकार, हुमायूँ के शासनकाल में कामरान ने भी काबुल व कन्धार पर अधिकार कर लिया था। बाद में, शाह फारस की सहायता से भारत पर विजय करने के बाद फारस के शाह की ही सहायता से हुमायूँ ने कन्धार पर भी विजय प्राप्त की थी।

(2) अकबर की सीमा-नीति—अकबर ने 1584 ई० में सैन्य-शक्ति के बल पर काबुल पर अधिकार कर लिया तथा वहाँ के यूसुफ़जाई एवं उजबेग कबीलों पर भी पूर्ण अधिकार कर लिया। अकबर की शक्ति से भयभीत होकर कन्धार के शासक ने भी आत्मसमर्पण कर दिया था।

मुगलों की उत्तर-पश्चिम सीमा-नीति

1. (1) प्रारम्भिक मुगल सम्राटों की सीमा-नीति
2. (2) अकबर की सीमा-नीति
3. (3) जहाँगीर की सीमा-नीति
4. (4) शाहजहाँ की सीमा-नीति
5. (5) औरंगजेब की सीमा-नीति
6. (6) परवर्ती मुगल शासकों की सीमा-नीति।

(3) जहाँगीर की सीमा-नीति—कन्धार पर मुगलों का अधिकार हो जाने से शाह फारस का असन्तोष बढ़ गया था। जिस समय खुसरो ने जहाँगीर के विरुद्ध विद्रोह किया, उस समय शाह फारस ने कन्धार पर एक असफल आक्रमण किया। किन्तु बाद में, उसने जहाँगीर से मित्रता कर ली। जिस समय शाहजहाँ एवं नूरजहाँ का विरोध चल रहा था, उस समय शाह फारस ने पुनः विजय का प्रयास किया, किन्तु उसे सफलता नहीं मिली।

(4) शाहजहाँ की सीमा-नीति—शाहजहाँ ने अपनी कूटनीति से कन्धार के सूबेदार अली मर्दान खाँ को अपनी ओर मिला लिया तथा कन्धार पर अधिकार कर लिया। शाहजहाँ अब समरकन्द पर अधिकार करना चाहता था, किन्तु उसे सफलता नहीं मिली। इसी बीच शाह फारस ने पुनः कन्धार पर आक्रमण किया और इस प्रदेश पर अधिकार कर लिया। इधर शाहजहाँ दक्षिण विजय में लीन रहा और उधर कन्धार मुगलों के हाथों से सदैव के लिए निकल गया।

(5) औरंगजेब की सीमा-नीति—औरंगजेब के शासनकाल में यूसुफजाई कबीले ने सीमान्त प्रदेश में विद्रोह किया। उसने अनेक मुगल सैनिकों को मार दिया। औरंगजेब ने इस विद्रोह को दबाने का प्रयास किया, किन्तु विफल रहा। अन्त में, उसने यूसुफजाइयों से मित्रता की और उन्हें उच्च पद प्रदान किए। उसने अपनी कूटनीति से अनेक सीमान्त प्रदेशों से भी राजनीतिक सम्बन्ध स्थापित किए।

(6) परवर्ती मुगल शासकों की सीमा-नीति—औरंगजेब के उत्तराधिकारी अत्यन्त निर्बल थे, जिससे ईरान के शाह नादिरशाह ने 1739 ई० में भारत पर सफल आक्रमण किया। मराठों ने भी मुगल सम्राटों की निर्बलता का लाभ उठाया तथा उनके बहुत से प्रदेशों पर अधिकार कर लिया। इसी समय अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण किया तथा पानीपत के तृतीय युद्ध में मराठों व मुगलों की संयुक्त सेनाओं को पराजित किया। अन्त में, निर्बल मुगलों ने अपनी दुर्बलताओं के कारण अंग्रेजों को भारत में राज्य करने का अवसर प्रदान कर दिया।

परिणाम—मुगल अपनी उत्तर-पश्चिम सीमा-नीति में प्रायः असफल रहे, जिसमें उन्हें अपार धन-जन की हानि का सामना करना पड़ा तथा अन्त में अपने साम्राज्य को भी छोड़ना पड़ा।

मुगलों की दक्षिण-नीति

बाबर व हुमायूँ को दक्षिण विजय का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ। अतः मुगलों की दक्षिण नीति का प्रारम्भ अकबर के शासनकाल से ही प्रारम्भ होता है जिसका कि विवरण निम्नलिखित है—

(1) अकबर की दक्षिण-नीति—अकबर की दक्षिण विजय का मुख्य उद्देश्य साम्राज्य विस्तार तथा धन प्राप्त करना था। इसके साथ-साथ वह पुर्तगालियों की शक्ति का भी अन्त करना चाहता था। प्रारम्भ में, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उसने अहमद नगर, खानदेश, गोलकुण्डा, बीजापुर आदि प्रदेशों को अपनी अधीनता स्वीकार करने को कहा, किन्तु इसका कोई विशेष परिणाम न निकला। अतः उसने अहमद नगर

पर आक्रमण किया तथा चाँदबीवी की मृत्यु के बाद उसका अहमद नगर पर अधिकार हो गया। खानदेश का शासक, जिसने अकबर की अधीनता को स्वीकार कर लिया था, इस समय मृत्यु को प्राप्त हो चुका था। अतः उसके उत्तराधिकारियों ने मुगलों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया तथा पुर्तगालियों की सहायता से असीरगढ़ के दुर्ग से मुगलों के विरुद्ध मोर्चाबन्दी की। अकबर ने अपनी कूटनीति से इस दुर्ग पर अपना अधिकार कर लिया। इस प्रकार अहमद नगर, खानदेश, बरार आदि दक्षिणी प्रान्तों पर अकबर का अधिकार हो गया। उसने शहजादा दानियाल को दक्षिण का सूबेदार नियुक्त किया।

मुगलों की दक्षिण-नीति

(1) अकबर की दक्षिण-नीति
(2) जहाँगीर की दक्षिण-नीति
(3) शाहजहाँ की दक्षिण-नीति
(4) औरंगजेब की दक्षिण-नीति
(5) परवर्ती मुगल शासकों की दक्षिण-नीति।

(2) जहाँगीर की दक्षिण-नीति—जहाँगीर; मलिका नूरजहाँ तथा पुत्र शाहजहाँ के पारस्परिक मतभेदों के कारण दक्षिण में विशेष सफलता प्राप्त न कर सका। उसके शासनकाल में मलिक अम्बर नामक सरदार ने अहमद नगर में अपनी सत्ता दृढ़ की व मुगलों के विरुद्ध विद्रोह शुरू कर दिए।

(3) शाहजहाँ की दक्षिण-नीति—इस समय तक मलिक अम्बर की मृत्यु हो चुकी थी तथा दक्षिण की स्थिति शोचनीय हो गई थी। अतः शाहजहाँ ने बीजापुर व गोलकुण्डा पर आक्रमण किया तथा शहजादा औरंगजेब को वहाँ का सूबेदार बना दिया। उसने बीजापुर, गोलकुण्डा के राज्यों तथा मराठा शक्ति के दमन की ओर ध्यान दिया तथा उन्हें अपने अधीन करने का प्रयास किया। किन्तु इसी बीच शाहजहाँ की बीमारी के समाचार को सुनकर औरंगजेब को दक्षिण विजय का कार्य रोक देना पड़ा, क्योंकि इस समय उत्तराधिकार के प्रश्न पर गृहयुद्ध छिड़ गया था।

(4) औरंगजेब की दक्षिण-नीति—औरंगजेब के जीवनकाल के अन्तिम 18 वर्ष; दक्षिण की तीन शक्तियों—मराठा, बीजापुर व गोलकुण्डा राज्यों के साथ संघर्षों में ही व्यतीत हुए। उसने सैनिक बल पर बीजापुर व गोलकुण्डा पर विजय प्राप्त कर ली थी। अब वह मराठों पर भी विजय प्राप्त करना चाहता था, किन्तु इसी समय उसे शहजादे अकबर के विद्रोह का सामना करना पड़ा। इस विद्रोह में शम्भा जी ने अकबर को सहायता दी थी। अतः औरंगजेब ने शम्भा जी को युद्ध में परास्त करके उनका वध कर दिया। शम्भा जी के बाद औरंगजेब का संघर्ष राजाराम एवं ताराबाई से चलता रहा, किन्तु उसे मराठों के विरुद्ध विशेष सफलता प्राप्त न हुई और 1707 ई० में उसकी मृत्यु हो गई। यद्यपि औरंगजेब ने दक्षिण राज्यों के विरुद्ध काफी लम्बे समय तक युद्ध किए, किन्तु उसे अधिक सफलता प्राप्त न हो सकी।

(5) परवर्ती मुगल शासकों की दक्षिण-नीति—औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् बहादुरशाह शासक बना। उसने मराठों में फूट डालने के लिए शाहू को कैद से मुक्त कर दिया, जिसके कारण मराठों में गृहयुद्ध छिड़ गया, किन्तु पेशवा की शक्ति से वह युद्ध शीघ्र ही समाप्त हो गया। इसी समय मुगल दरबार में सैयद भाइयों की शक्ति बढ़ गई थी तथा उन्होंने फरुखसियर को गद्दी से उतार दिया था, जिसके कारण अराजकता बढ़ गई। मराठों ने इससे अपनी शक्ति बढ़ाकर पंजाब पर आक्रमण किया। किन्तु 1761 ई० में अहमदशाह अब्दाली ने भारत पर आक्रमण करके मराठों एवं मुगलों दोनों की शक्ति को समाप्त कर दिया।

मुगलों की दक्षिण-नीति के परिणाम

मुगलों की दक्षिण-नीति उनके लिए अधिक अहितकर सिद्ध हुई, क्योंकि इससे उन्हें अत्यधिक जन-धन की हानि का सामना करना पड़ा। इन युद्धों में विशाल सैनिक शक्ति का ह्रास हुआ। बीजापुर व गोलकुण्डा राज्यों को मुगल शासन में मिलाने से दक्षिण में मराठों को स्वतन्त्र रूप से बढ़ने का अवसर भी मिला। दक्षिण में मुगलों की असफलता के विषय पर वी० ए० स्मिथ ने लिखा है, **"दक्षिण औरंगजेब के मृत शरीर की ही कब्र नहीं थी, अपितु वह उनके साम्राज्य की भी कब्र थी।"**

प्रश्न 26—गुरु नानक का जीवन-परिचय देते हुए उनके योगदान पर प्रकाश डालिए।

अथवा **सिक्ख शक्ति के उत्थान में गुरु नानक के योगदानों पर प्रकाश डालिए।** *(1995)*

उत्तर—

गुरु नानक

जीवन-परिचय—सिक्ख धर्म के प्रणेता गुरु नानक ने भी कबीर की भाँति हिन्दू धर्म तथा इस्लाम के समन्वय का सन्देश दिया। प्राचीन धार्मिक साहित्य संग्रहों के अनुसार उनका जन्म 1526 विक्रमी संवत् वैशाख माह शुक्ल पक्ष की तृतीया अर्थात् 15 अप्रैल, 1469 ई० को तलवण्डी नामक ग्राम (आधुनिक ननकाना) में हुआ था जो लाहौर से दक्षिण-पश्चिम में 35 मील की दूरी पर, आधुनिक पश्चिमी पंजाब प्रान्त के शेखेंपुरा जिले में स्थित है। उनके पिता 'कालूचन्द' पटवारी थे और खेती भी किया करते थे। उनकी धर्मपरायण माता का नाम 'तृप्ता' था। नानक बचपन से ही शान्त एवं धार्मिक स्वभाव के व्यक्ति थे। उन्होंने पंजाबी, हिन्दी, संस्कृत तथा फारसी की शिक्षा भी प्राप्त की, परन्तु शिक्षा की अपेक्षा एकान्त चिन्तन एवं विचरण में उनका मन अधिक लगता था। प्रायः वे निकटवर्ती वनों में जाकर घण्टों तक चिन्तन किया करते थे। कुछ समय पश्चात इन्होंने अपने बहनोई सुल्तानपुर के जयसिंह के यहाँ नौकरी कर ली, परन्तु उनका इस नौकरी में मन न लगा। उनका विवाह 'सुलक्खनी' नामक कन्या से हुआ, जो अधिकतर अपने पिता के घर बटाला जिले में ही रहती थी। इनके श्रीचन्द्र और लक्ष्मीचन्द्र नामक दो पुत्र उत्पन्न हुए। श्रीचन्द्र ने अपने पिता के मार्ग का अनुसरण कर ख्याति अर्जित की और 'उदासी सम्प्रदाय' की स्थापना की।

नानक का धार्मिक जीवन सुल्तानपुर में ही प्रारम्भ हो गया था। उन्होंने अनेक स्थानों का भ्रमण एवं यात्राएँ कीं और जन-साधारण को अपनी शिक्षाओं से अवगत कराया। सम्वत् 1595 वि० आश्विन शुक्ल दशमी अर्थात् 1538 ई० में करतारपुर में उनका देहावसान हो गया।

गुरु नानक का योगदान—सिक्ख शक्ति के उत्थान में गुरु नानक का योगदान निम्न दृष्टियों से है—

(1) गुरु नानक का जन्म एक हिन्दू परिवार में हुआ था और हिन्दू समाज के अन्तर्गत ही उनका पालन-पोषण हुआ। उस समय भारत पर मुसलमानों के आक्रमण हो रहे थे, जिनका प्रभाव भारतीय जनता पर पड़ रहा था। भारतीय जनता मुसलमानों की सभ्यता एवं संस्कृति से प्रभावित हो रही थी। इस सम्बन्ध में गुरु नानक जी ने स्वयं लिखा है,

"हिन्दुओं में से कोई भी वेद शास्त्रादि को नहीं मानता, अपितु अपनी ही बड़ाई में लगा हुआ रहता है। उनके कान एवं हृदय सदा तुर्कों की धार्मिक शिक्षाओं द्वारा भरते जा रहे हैं और मुसलमान कर्मचारियों के निकट एक-दूसरे की निन्दा करके लोग सबको कष्ट पहुँचा रहे हैं। वे समझते हैं कि रसोई के लिए एक चौका लगा लेने मात्र से ही हम पवित्र बन जाएँगे।"

(2) उस समय हिन्दुओं के पथ-भ्रष्ट होने की उन्हें कोई चिन्ता नहीं थी। उन्हें दुःख तो वास्तव में यह था कि उनका नैतिक पतन हो गया था। जनता को धर्म के नाम पर धोखा देने तथा आडम्बरपूर्ण जीवन व्यतीत करने से उन्हें बहुत कष्ट होता था। उन्होंने मुस्लिम शासकों के अधीन कार्यरत हिन्दू अधिकारियों के सम्बन्ध में लिखा है,

"गौ तथा ब्राह्मणों पर 'कर' लगाते हो और धोती, टीका एवं माला जैसी वस्तुएँ धारण किए रहते हो। अरे भाई, तुम अपने घर तो पूजा पाठ करते हो और बाहर कुरान का हवाला देकर तुर्कों के साथ सम्बन्ध बनाए रखते हो। अरे, ये पाखण्ड छोड़ क्यों नहीं देते? और अपनी मुक्ति के लिए नाम स्मरण को क्यों नहीं अपनाते?"

(3) गुरु नानक ने हिन्दू-मुस्लिम दोनों धर्मों से शिक्षा प्राप्त की थी। उन्होंने अपने घर के निकटवर्ती वनों में जाकर अनेक बार एकान्त में चिन्तन एवं मनन किया था। उन्होंने साधुओं का सत्संग भी बहुत किया था। आरम्भ से ही उनकी यह धारणा बन गई थी कि धार्मिक विवाद किसी धर्म-विशेष का अनुसरण करने से नहीं, वरन् उनके मौलिक उद्देश्यों को न समझने के कारण उत्पन्न होते हैं। अतः इन विवादों को हल करने का उपाय यही है कि उस समाज में सुधार किया जाए। उन्होंने लिखा है,

"प्रत्येक धर्म किसी विशेष उद्देश्य को लेकर चला तथा कुछ दिन इसी प्रकार चलता रहा, परन्तु क्रमशः उनका मुख्य उद्देश्य विस्मृत हो गया और उसका स्थान उसके साधनों ने ले लिया। इसलिए समान उद्देश्य वाले धर्मों में भी साधनों की विभिन्नता के कारण भेद-भाव आ जाते हैं और धार्मिक युद्ध होने लगता है। इसलिए यह आवश्यक है कि हम धर्म के उद्देश्यों को समझें और अगर समझ गए तो साधनों की विभिन्नता भी हमें धोखा नहीं दे पाएगी।"

(4) नानक जी ने योगियों, संन्यासियों, शैवों, वैष्णवों, सिद्धों, पीरों तथा नाथपन्थियों की भी किसी-न-किसी रूप में आलोचना की है।

इस प्रकार, स्पष्ट है कि गुरु नानक ने पंजाब में समाज व धर्म सुधार के क्षेत्र में प्रशंसनीय कार्य किया। उनका प्रमुख उद्देश्य हिन्दू और मुस्लिम धर्म में समन्वय स्थापित करना था।

प्रश्न 27—गुरु गोविन्द सिंह का जीवन परिचय देते हुए, उनके कार्यों पर प्रकाश डालिए।

अथवा **गुरु गोविन्द सिंह के योगदान पर एक निबन्ध लिखिए।** *(1995)*

उत्तर—

गुरु गोविन्द सिंह

खालसा पंथ अथवा सिक्ख धर्म की स्थापना तथा हिन्दू धर्म की रक्षा हेतु, गुरु गोविन्द सिंह द्वारा किए गए कार्यों का विशेष महत्त्व है। वस्तुतः सिक्ख समाज का वर्तमान सामाजिक एवं धार्मिक स्वरूप उनके प्रयासों का ही परिणाम है। उनके जीवन एवं कार्यों का संक्षिप्त परिचय निम्नवत् है—

गुरु गोविन्द सिंह का जीवन परिचय—गुरु गोविन्द सिंह का जन्म 1666 ई० में पटना में हुआ था। ये नवें गुरु तेगबहादुर के ज्येष्ठ पुत्र थे। गुरु गोविन्द सिंह ने राजपूत योद्धा बज्जर सिंह से सैनिक शिक्षा प्राप्त की और मुंशी पीर मौहम्मद से फारसी का ज्ञान प्राप्त किया। जब वे 9 वर्ष के थे कि औरंगजेब ने इनके पिता गुरु तेगबहादुर को मृत्यु दण्ड दे दिया था। 1675 ई० में ये गुरु की गद्दी पर आसीन हुए। गुरु गोविन्द सिंह निर्भीक, धैर्यवान और कुशल संगठनकर्त्ता थे। 1708 ई० में गोदावरी नदी के तट पर एक पठान ने छुरे से प्रहार कर इनकी हत्या कर दी। इस प्रकार, 1708 ई० में गुरु गोविन्द सिंह का स्वर्गवास हो गया।

गुरु गोविन्द सिंह के कार्य अथवा योगदान—गुरु गोविन्द सिंह की औरंगजेब से निरन्तर शत्रुता बनी रही। इन्होंने अपने आनन्दपुर के निवास काल से ही निकटस्थ राजाओं पर आक्रमण किए एवं उल्लेखनीय विजयें प्राप्त कीं। 1699 ई० में बैसाखी पर्व पर गुरु गोविन्द सिंह ने खालसा-पंथ की स्थापना की। गुरु गोविन्द सिंह ने अपने अनुयायियों के लिए पाँच ककार अर्थात् कंघा, केश, कच्छा, कृपाण एवं कड़ा अनिवार्य बताए तथा अपने शिष्यों को पंथ के लिए सर्वस्व न्यौछावर करने की शपथ दिलाई।

उनके द्वारा प्रचलित खालसा पंथ की स्थापना से निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण परिणाम सामने आए—

(1) खालसा पंथ की स्थापना ने सिक्ख सम्प्रदाय को पूर्णतः एक सैनिक जाति के रूप में परिवर्तित कर दिया, जो आज भी अपनी वीरता के लिए प्रख्यात है।

(2) सिक्ख धर्म में गुरु नानक के समय से प्रचलित अहिंसा का स्थान शस्त्रों ने ले लिया।

(3) सिक्ख सम्प्रदाय के माध्यम से समाज में जात-पाँत, छुआ-छूत और भेदभाव समाप्त हो गए।

(4) सिक्खों में भ्रातृत्व की भावना में वृद्धि हुई और सिक्ख सम्प्रदाय एक सशक्त एवं संगठित सम्प्रदाय बन गया।

(5) इस पंथ की स्थापना के परिणामस्वरूप जनतांत्रिक व्यवस्था का विकास हुआ।

(6) गुरु की गद्दी को समाप्त कर उसे केवल एक राजनीतिक स्वरूप प्रदान कर दिया गया।

गुरु गोविन्द सिंह ने गुरु परम्परा को समाप्त कर प्रत्येक सिक्ख को नाम के आगे 'सिंह' शब्द प्रयुक्त करने का आदेश दिया। उनका कहना था कि प्रत्येक व्यक्ति को गुरु एवं ईश्वर में पूर्ण विश्वास रखना चाहिए।

गुरु गोविन्द सिंह स्वतंत्रता, देशभक्ति एवं राष्ट्रीयता को ही अपना धर्म मानते थे। हिन्दू धर्म के प्रति उनका अत्यधिक लगाव था। खालसा पंथ का संगठन भी धर्म की रक्षा के लिए ही किया गया था। ये जात-पाँत एवं भेदभाव के प्रबल विरोधी थे। इसके अतिरिक्त, इन्होंने साहित्यिक क्षेत्र में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इनकी ब्रज भाषा में लिखी कविताएँ हिन्दी साहित्य में अपना पृथक् स्थान रखती हैं। इन्होंने सिक्ख धर्म को जनसाधारण तक पहुँचाने के लिए कविता को माध्यम के रूप में प्रयुक्त किया।

इस प्रकार, सिक्ख धर्म के विकास, उत्थान एवं संगठन में गुरु गोविन्द सिंह का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। इन्होंने गुरु पद को समाप्त कर 'ग्रंथ-साहब' को ही गुरु मानने का निर्देश दिया। सिक्ख मत के अन्तर्गत आज भी यही परम्परा विद्यमान है। उनकी मृत्यु के उपरान्त भी उनकी शिक्षाओं का प्रभाव बना रहा और सिक्ख अपना नैतिक बल उन्नत कर शक्तिशाली बनते चले गए। सिक्ख समाज को हिन्दुओं ने अपनी धर्म रक्षक भुजा के रूप में स्वीकार किया और सिक्खों की संख्या में वृद्धि करने हेतु यह परम्परा चल पड़ी कि प्रत्येक हिन्दू परिवार अपने ज्येष्ठ पुत्र को खालसा पंथ की सेवा में अर्पित कर दे। आज भी पंजाब में ऐसे हिन्दू परिवार हैं, जिनका एक सदस्य सिक्ख होता है।

गुरु गोविन्द सिंह के सम्बन्ध में **कनिंघम** ने लिखा है कि, **"सिक्खों का अन्तिम धर्मगुरु अपनी आशाओं को पूर्ण होते देखने के लिए जीवित नहीं रहा, तथापि उसने मृतप्रायः जाति की सुप्त शक्तियों को झंझोड़कर जगा दिया और उसे सामाजिक स्वतंत्रता एवं जातीय स्वाभिमान प्राप्त करने की अभिलाषाओं से अनुप्राणित किया।"**

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1— पानीपत के द्वितीय युद्ध के परिणाम का संक्षिप्त विवरण दीजिए।

उत्तर—पानीपत का द्वितीय युद्ध भारतीय इतिहास का निर्णायक युद्ध था। इस युद्ध में मुगल सम्राट अकबर की विजय हुई और आदिलशाह का सेनापति हेमू मारा गया। 1556 ई० के इस युद्ध ने भारत में सूर वंश का अंत कर दिया और हेमू के राज्य को भी समाप्त कर दिया था। इस युद्ध ने भारत में मुगल साम्राज्य की पुनर्स्थापना कर दी थी। इस युद्ध की विजय का श्रेय अकबर के संरक्षक बैरम खाँ को था।

प्रश्न 2—अकबर के शासनकाल में निर्मित भवनों का उल्लेख कीजिए। इन भवनों की निर्माण शैली की क्या विशेषता थी? *(1991)*

अथवा **मुगल साम्राज्य की किन्हीं चार इमारतों का उल्लेख कीजिए।** *(1992, 99)*

उत्तर—अकबर के काल में निम्नलिखित ऐतिहासिक भवनों का निर्माण हुआ था—

(1) आगरे का लाल किला, (2) अकबरी महल, (3) जहाँगीरी महल, (4) फतेहपुर सीकरी की इमारतें, (5) बुलन्द दरवाजा, तथा (6) जोधाबाई का पंचमहल।

अकबर ने इन भवनों का निर्माण फारसी और भारतीय कला-शैलियों को समन्वित करके करवाया था।

प्रश्न 3—बैरम खाँ पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। *(1992)*

उत्तर—बैरम खाँ एक शिया सरदार था। बाबर के अन्तिम दिनों में वह मुगलों की सेवा में आया था। हुमायूँ ने बैरम खाँ की सहायता से अनेक सफलताएँ प्राप्त कीं और हुमायूँ के ईरान चले जाने के समय में भी बैरम खाँ ने उसका साथ न छोड़ा। हुमायूँ ने उसे अपने पुत्र अकबर का संरक्षक नियुक्त किया था। हुमायूँ की आकस्मिक मृत्यु के बाद बैरम खाँ ने **कलानौर (पंजाब)** में अकबर का राज्याभिषेक किया और सिकन्दरशाह सूर को पराजित करके दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। 1556 ई० के पानीपत के दूसरे युद्ध में बैरम खाँ ने हेमू को पराजित करके अकबर को मुगल साम्राज्य का अधिकारी बनाया। 1556 ई० से 1560 ई० तक बैरम खाँ मुगल साम्राज्य का सर्वेसर्वा बना रहा। अन्त में, अकबर से विरोध होने के कारण वह मक्का की यात्रा पर चला गया लेकिन मार्ग में ही एक अफगान ने उसकी हत्या कर दी। बैरम खाँ की प्रशंसा करते हुए **डॉ० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव** ने लिखा है, **"वह एक अनुभवी सैनिक और सेनानायक था। वह उच्चकोटि का राजनीतिज्ञ भी था। उसने हुमायूँ को राज्य प्राप्त करने में सहायता दी और अकबर को राजगद्दी उसने सुरक्षित स्थिति में प्रदान की।"**

प्रश्न 4—उत्तराधिकार के युद्ध (1658 ई०) पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर—मुगलों में उत्तराधिकार का कोई निश्चित नियम नहीं था। अतः जब 1657 ई० में शाहजहाँ गम्भीर रूप से बीमार पड़ गया तो उसके चारों पुत्रों—दाराशिकोह, मुराद, शाहशुजा और औरंगजेब ने गद्दी

पर अपना अधिकार करने के लिए युद्ध की तैयारियाँ प्रारम्भ कर दीं। उत्तराधिकार के युद्ध (1658 ई०) में धरमत व सामूगढ़ नामक स्थानों पर भयंकर लड़ाइयाँ हुईं। इन लड़ाइयों में शाहजहाँ के तृतीय पुत्र औरंगजेब को विजय प्राप्त हुई और औरंगजेब ने अपने पिता शाहजहाँ को बन्दी बनाकर दिल्ली के सिंहासन पर अपना अधिकार कर लिया।

प्रश्न 5—औरंगजेब ने हिन्दुओं के विरुद्ध कौन-कौन से चार कार्य किए?

उत्तर—औरंगजेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था। अतः उसने हिन्दुओं के विरुद्ध कठोर नीति अपनाई। हिन्दुओं के विरुद्ध उसके चार कार्यों का उल्लेख निम्नवत् है—

(1) **मन्दिरों को तुड़वाना**—औरंगजेब ने हिन्दुओं के अनेक मन्दिर तुड़वाए तथा उनके स्थान पर मसजिदों का निर्माण करवाया।

(2) **जजिया कर लगाना**—औरंगजेब ने हिन्दुओं पर जजिया कर लगाया तथा जो कर नहीं दे सकते थे, उन्हें मुसलमान बनना पड़ा।

(3) **सरकारी नौकरियों से हटाना**—औरंगजेब ने हिन्दुओं को सरकारी नौकरियों से भी पृथक् कर दिया।

(4) **बलपूर्वक मुसलमान बनाना**—औरंगजेब ने अनेक हिन्दुओं को बलपूर्वक मुसलमान बना दिया।

प्रश्न 6—खुसरो के विद्रोह का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

उत्तर—खुसरो जहाँगीर का सबसे बड़ा पुत्र था। वह मानसिंह का भाँजा और अजीज कोका का दामाद था। जब सलीम ने अकबर के विरुद्ध विद्रोह किया तो अकबर ने खुसरो को अपना उत्तराधिकारी बनाने का विचार किया था। परन्तु सलीम के क्षमा माँगने पर अकबर ने उसी को अपना उत्तराधिकारी घोषित कर दिया। उधर खुसरो भी सम्राट बनना चाहता था। अतः 1606 ई० में उसने जहाँगीर के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। उसने तरनतारन में सिक्खों के गुरु अर्जुनसिंह से आशीर्वाद भी प्राप्त किया। परन्तु वह लाहौर पर अधिकार करने में असफल रहा। भैरोवाल के युद्ध में उसको शाही सेनाओं ने परास्त कर दिया। वह पकड़ा गया और उसकी पलकें सिलवा दी गईं। उसके समर्थकों को भी कठोर दण्ड दिया गया।

प्रश्न 7—सिंहासनारोहण पर जहाँगीर द्वारा दिए गए बारह नियमों में से किन्हीं चार नियमों का वर्णन कीजिए।

उत्तर—सिंहासन पर बैठने के पश्चात् जहाँगीर ने बारह नियम जारी किए जिनमें से मुख्य चार नियम निम्नलिखित हैं—

(1) तमगा, मीर बहरी तथा महसूल हटा दिए गए।

(2) मद्य तथा अन्य मादक वस्तुओं के तैयार करने एवं बेचने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया।

(3) नाक या कान काटने के दण्ड को समाप्त कर दिया गया।

(4) उसने बृहस्पतिवार एवं रविवार को पशु-वध पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

प्रश्न 8—अकबर की 'सुलह-कुल' नीति से आप क्या समझते हैं?

उत्तर—अकबर ने प्रारम्भ से ही उदार तथा धार्मिक सहिष्णुता की नीति को अपनाया। उसने हिन्दुओं पर लगाए जाने वाले जजिया तथा तीर्थ-कर बन्द कर दिए। उसने हिन्दुओं के लिए सभी नौकरियों का द्वार खोल दिया। अकबर ने हिन्दुओं को उच्च सैनिक सेवा करने का सुअवसर दिया। उसने हिन्दुओं को अपना सभासद बनाकर उनको आदर-सम्मान दिया। उसने हिन्दुओं को पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की। इस प्रकार, उसने हिन्दू तथा मुसलमानों के साथ समानता का व्यवहार करके सुलह-कुल की नीति अपनाई।

प्रश्न 9—औरंगजेब की दक्षिणी-नीति के चार परिणामों का उल्लेख कीजिए। *(1991)*

उत्तर—औरंगजेब की दक्षिणी-नीति के चार परिणामों का विवरण निम्नलिखित है—

(1) दक्षिण में हुए निरन्तर युद्धों के कारण राजकोष रिक्त हो गया।

(2) दक्षिण में औरंगजेब के दीर्घकाल तक उलझे रहने के कारण प्रान्तीय शासक एवं सूबेदार निरंकुश हो गए और वे जनता पर अत्याचार करने लगे।

(3) अपनी दक्षिणी नीति के कारण औरंगजेब साहित्य, कला, संगीत आदि की ओर ध्यान न दे सका। इसके परिणामस्वरूप इनकी प्रगति रुक गई।

(4) कृषकों का शोषण होने लगा।

प्रश्न 10—औरंगजेब की असफलता के चार कारण लिखिए। *(1995)*

उत्तर—औरंगजेब की असफलता के निम्नलिखित चार कारण थे—

(1) औरंगजेब की धार्मिक नीति—औरंगजेब की असफलता का प्रमुख कारण उसकी धार्मिक नीति थी। उसकी धार्मिक नीति से हिन्दू उससे नाराज हो गए।

(2) औरंगजेब की दक्षिण-नीति—औरंगजेब ने दक्षिण भारत को जीतने के लिए 26 वर्ष निरन्तर दक्षिण में व्यतीत किए जिससे उत्तर का शासन शिथिल हो गया।

(3) औरंगजेब की राजपूतों के प्रति नीति—औरंगजेब की राजपूतों के प्रति नीति के कारण उसका मारवाड़ तथा मेवाड़ से संघर्ष हुआ और औरंगजेब ने राजपूतों की सहायता खो दी।

(4) केन्द्रीभूत शासन—औरंगजेब बड़ा ही सन्देहशील व्यक्ति था। वह किसी का विश्वास नहीं करता था। अतः उसका शासन केन्द्रीभूत हो गया, जो उसकी असफलता का कारण बना।

प्रश्न 11—औरंगजेब के चार सेनापतियों के नाम लिखिए। *(1992)*

उत्तर—औरंगजेब के चार सेनापतियों के नाम इस प्रकार हैं—

(i) हसन अली खाँ, (ii) आजम, (iii) मुअज्जम, तथा (iv) बहादुर खाँ।

प्रश्न 12—मनसबदारी प्रथा की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।

अथवा **मनसबदारी प्रथा के गुणों की व्याख्या कीजिए।** *(1994)*

उत्तर—

मनसबदारी प्रथा के गुण अथवा विशेषताएँ

मनसबदारी प्रथा के गुण अथवा विशेषताएँ निम्नलिखित थीं—

(1) मनसबदारों की नियुक्ति, वेतन, कार्यवाही आदि सभी सम्राट की इच्छा पर निर्भर होता था।

(2) प्रत्येक मनसबदार फौजदारी और दीवानी के सभी कार्य करता था।

(3) मनसबदारों को घोड़े दागने और सैनिकों का हुलिया लिखना आवश्यक होता था।

(4) मनसबदारों को समय-समय पर इनाम और पुरस्कार भी दिए जाते थे।

(5) उनके विशेष कार्यों व सेना का निरीक्षण भी किया जाता था।

(6) प्रत्येक मनसबदार को सैनिकों की एक निश्चित संख्या का आदेश दिया गया था, किन्तु वह उतनी संख्या रखने के लिए बाध्य नहीं था।

प्रश्न 13—अकबर के भूमि प्रबन्ध का उल्लेख कीजिए।

अथवा **अकबर ने भूमि व्यवस्था में क्या सुधार किए?** *(1994)*

उत्तर—**अकबर का भूमि प्रबन्ध**—मुगलकाल में साम्राज्य की आय का प्रमुख साधन भूमि-कर था। अतः अकबर ने भूमि सुधार की ओर ध्यान दिया। उसने कृषि योग्य भूमि की नाप कराई। इसके अतिरिक्त उसने भूमि के उपजाऊपन के आधार पर उसको चार भागों में विभाजित किया—(1) पोलज, (2) परौती, (3) चांचर, और (4) बंजर। उपज का एक-तिहाई भाग, भूमिकर के रूप में लिया जाता था। लगान नकद अथवा अनाज के रूप में दिया जा सकता था।

प्रश्न 14—महाराणा प्रताप की उपलब्धियों का संक्षेप में विवेचन कीजिए। *(1990)*

उत्तर : संकेत—इसी अध्याय में ऐतिहासिक व्यक्तियों पर आधारित प्रश्न संख्या 3 में से राणा प्रताप के विषय में अध्ययन कीजिए।

प्रश्न 15—अकबर के दरबार के नौ रत्नों में से चार का उल्लेख कीजिए। *(1995)*

उत्तर—अकबर के दरबार के प्रमुख सदस्य नवरत्न कहलाते थे। इनमें से चार नवरत्नों का उल्लेख अग्र प्रकार है—

(1) अबुल फजल—आप अकबर के दरबारी इतिहासकार थे। आपका जन्म 1551 ई० में आगरा में हुआ था। आपके पिता का नाम शेख मुबारक और भाई का नाम फैजी था। अबुल फजल प्रकाण्ड विद्वान्, कवि और समालोचक था। आपकी दो रचनाएँ 'अकबरनामा' और 'आइने अकबरी' ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। आपने दीन-ए-इलाही धर्म स्वीकार कर लिया था। 1601 ई० में सलीम के आदेश पर वीरसिंह बुन्देला ने आपकी हत्या कर दी थी।

(2) राजा मानसिंह—आप जयपुर के राजा भगवानदास के दत्तक पुत्र थे। आप 1562 ई० में अकबर की सेवा में आ गए थे। आप एक महान् सेनापति और वीर राजपूत थे। उन्होंने मुगल साम्राज्य को सुदृढ़ बनाने के लिए अनेक विद्रोहों का दमन किया। हल्दीघाटी, बिहार, बंगाल आदि प्रान्तों की विजयें, राजा मानसिंह के शौर्य का ही परिणाम थीं। आपको मुगल दरबार में सात हजार का मनसब प्राप्त था।

(3) बीरबल—बीरबल का वास्तविक नाम महेशदास था। वह कालपी का निवासी और भाट वर्ग से सम्बन्धित था। अपनी वाकपटुता, कविता एवं संगीत प्रेम के कारण बीरबल अकबर का नवरत्न बन गया था। अकबर बीरबल से विशेष स्नेह करता था और उसने बीरबल को दो हजार का मनसब और 'राजा' की उपाधि प्रदान की थी। अकबर और बीरबल के चुटकुले आज भी प्रसिद्ध हैं। बीरबल एक कुशल सैनिक भी था और 1586 ई० में एक सैनिक अभियान में ही उसकी मृत्यु हो गई थी।

(4) तानसेन—तानसेन ग्वालियर का निवासी था और अपने समय का सर्वश्रेष्ठ संगीतकार था। तानसेन ने प्रारम्भ में रीवा नरेश के यहाँ राजाश्रय प्राप्त किया और अपनी प्रतिभा से अपार ख्याति अर्जित की। सन् 1562 ई० में सम्राट अकबर ने तानसेन को अपने दरबार में आमन्त्रित किया। तानसेन के मधुर संगीत से अकबर इतना प्रसन्न हुआ कि उसने तानसेन को अपने दरबार के नवरत्नों में स्थान दे दिया। कहा जाता है कि तानसेन जब दीपक राग गाता था, तो दीए अपने आप जल उठते थे और जब मेघ राग गाता था तो वर्षा होने लगती थी। 1589 ई० में इस महान् संगीतज्ञ की मृत्यु हो गई थी।

प्रश्न 16—अकबर द्वारा प्रचलित दीन-ए-इलाही धर्म के प्रमुख सिद्धान्तों का उल्लेख कीजिए।
अथवा **अकबर ने दीन-ए-इलाही की चार विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।** *(1995)*

उत्तर—

दीन-ए-इलाही के सिद्धान्त
अथवा
दीन-ए-इलाही की विशेषताएँ

मुगल सम्राट अकबर ने 1582 ई० में दीन-ए-इलाही नामक एक धर्म प्रचलित किया। इसके प्रमुख सिद्धान्त अथवा विशेषताएँ निम्नवत् हैं—

(1) जीवन में उदारता और दानशीलता का अनुपालन।

(2) दुष्टकर्मियों को क्षमादान और क्रोध का नरमी से निराकरण।

(3) सांसारिक इच्छाओं का परित्याग।

(4) सांसारिक अस्तित्व के बन्धनों से मुक्ति प्राप्त करने और परलोक के लिए संचित करने के लिए इच्छा रखना और कार्य करना।

(5) अपने कर्मों के फलों पर विचार और मनन तथा भक्ति एवं ज्ञान की अभिवृद्धि।

(6) श्रेष्ठ और अद्भुत कार्य करने की इच्छा रखना।

(7) सबके साथ मन्दस्वर में कोमल वाणी, भली बात और मधुर भाषा से व्यवहार करना।

(8) अपने बन्धुओं के साथ सद्व्यवहार तथा उनकी इच्छाओं को अपनी इच्छा से अधिक महत्त्व देना।

(9) जीवन से पूर्ण विरक्त रहना एवं ईश्वर से लगाव रखना।

(10) एकेश्वरवाद में विश्वास, परमात्मा के प्रेम और उसकी भक्ति में आत्मोत्सर्ग और आत्मा का परमात्मा से संयोग।

प्रश्न 17—जहाँगीर की दक्षिण-नीति का उल्लेख कीजिए। *(1994)*
अथवा **जहाँगीर की दक्षिण-नीति का मूल्यांकन कीजिए।** *(1994)*

उत्तर—

जहाँगीर की दक्षिण-नीति

सम्राट अकबर की भाँति जहाँगीर ने भी साम्राज्यवादी नीति अपनाई। अकबर के समय में केवल खानदेश और अहमदनगर राज्य का कुछ भाग ही मुगलों के प्रभुत्व में आ सका था। अकबर की मृत्यु के बाद मलिक अम्बर ने अपनी योग्यता और वीरता से अहमदनगर को एक शक्तिशाली राज्य के रूप में परिवर्तित कर दिया था।

जहाँगीर की दक्षिण-नीति इस प्रकार रही—

(1) सर्वप्रथम जहाँगीर ने 1608 ई० में अब्दुर्रहीम खानखाना को एक विशाल सेना के साथ अहमदनगर पर विजय प्राप्त करने के लिए भेजा। कुछ समय बाद 1610 ई० में शहजादा परवेज को भी एक विशाल सेना के साथ उनकी सहायता के लिए भेजा गया। लेकिन मलिक अम्बर की वीरता व छापामार युद्ध प्रणाली ने मुगल सेना के दाँत खट्टे कर दिए।

(2) इसके बाद जहाँगीर ने 1616 ई० में खुर्रम को अहमदनगर भेजा। उसके नेतृत्व में मुगल सेना ने अहमदनगर और कुछ दुर्गों पर अधिकार कर लिया। लेकिन मुगलों की यह विजय अधिक समय तक स्थायी न रह सकी।

(3) 1620 ई० में मलिक अम्बर ने अहमदनगर और बरार का बहुत-सा भाग मुगलों से छीन लिया। इस पर जहाँगीर ने पुनः खुर्रम को दक्षिण भेजा। इस बार खुर्रम ने चारों ओर तबाही मचा दी। विवश होकर मलिक अम्बर ने 1621 ई० में मुगलों से सन्धि कर ली।

जहाँगीर की दक्षिण-नीति का विश्लेषण करने के आधार पर यह विदित होता है कि जहाँगीर को दक्षिण में विशेष सफलता प्राप्त नहीं हो सकी। उसके शासनकाल में मलिक अम्बर, उसका प्रमुख विरोधी सिद्ध हुआ। मलिक अम्बर ने जहाँगीर को दक्षिण में सफल नहीं होने दिया।

प्रश्न 18—नूरजहाँ के चरित्र पर प्रकाश डालिए।

अथवा **नूरजहाँ के चरित्र की प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।** *(1994)*

उत्तर—

नूरजहाँ का चरित्र

मध्यकालीन भारतीय इतिहास में नूरजहाँ अधिक प्रभावशाली महिला थी। नूरजहाँ अतीव सुन्दरी, सुसंस्कृत और आकर्षक महिला थी। वह बड़ी विदुषी, साहसी, महत्त्वाकांक्षी और दूरदर्शी भी थी। उसने जहाँगीर को अपने मोहपाश में बाँधकर लगभग 15 वर्षों तक मुगल राजनीति को व्यापक रूप से प्रभावित किया। एक कवयित्री के रूप में उसने अनेक रागों का आविष्कार किया। उसने अनेक नए फैशन प्रचलित किए। उदारता और दानशीलता के क्षेत्र में भी नूरजहाँ बहुत बढ़ी-चढ़ी थी। उसने लगभग 500 कन्याओं के विवाह करवाए और गरीबों, दीन-दुखियों तथा असहायों की सहायता की। कूटनीतिज्ञ के रूप में नूरजहाँ ने मुगल दरबार की राजनीति को अपने इशारे पर चलाया और एक लम्बे समय तक मुगल साम्राज्य की धुरी बनी रही।

प्रश्न 19—शाहजहाँ के शासनकाल के अन्त में उत्तराधिकार के लिए हुए गृहयुद्ध के क्या कारण थे? *(1996)*

उत्तर—शाहजहाँ के शासनकाल के अन्त में उत्तराधिकार के लिए हुए गृहयुद्ध के निम्न कारण थे—

(1) उत्तराधिकार के नियमों का अभाव—मुगल वंश में ऐसा कोई निश्चित नियम न था, जिसके अनुसार यह कहा जा सके कि एक सुल्तान के मरने के बाद दूसरा सुल्तान कौन होगा। उत्तराधिकार के नियम के अभाव में होने वाले सुल्तान का फैसला तलवार ही कर सकती थी इसलिए इस युद्ध का होना अनिवार्य था।

(2) पारिवारिक प्रेम का अभाव—शाहजहाँ के चारों पुत्र अलग-अलग स्थानों पर थे। शाहजहाँ की पुत्रियाँ भी परस्पर विद्वेष रखती थीं। दारा शिकोह सम्राट के पास था और सम्राट का विशेष कृपापात्र था। औरंगजेब दक्षिण का सूबेदार था, शुजा बंगाल का सूबेदार था तथा मुराद गुजरात व मालवा का सूबेदार था, किन्तु इन चारों पुत्रों में एक-दूसरे के प्रति शंका बनी रहती थी। यह शंका भी गृहयुद्ध का कारण बनी।

(3) मृत्यु का भय—शाहजहाँ के सभी पुत्र यह जानते थे कि मुगल वंश की परम्परा के अनुसार उनमें से जो भी सम्राट बन जाएगा, सम्राट बनते ही वह अपने शेष भाइयों को मरवा देगा। इसलिए सभी भाइयों ने रणभूमि में ही अपने भाग्य का फैसला करने का निश्चय किया था।

(4) दारा के प्रति दुर्भावना—6 सितम्बर, 1657 ई० को शाहजहाँ ने उद्घोषणा कर दी थी कि दारा साम्राज्य का उत्तराधिकारी होगा। इसलिए समस्त जनता को दारा की आज्ञा का पालन करना होगा। दारा ने शाहजहाँ से किसी को नहीं मिलने दिया व दरबार में जाने वाले समाचारों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। इससे लोगों को दारा के प्रति सन्देह हो गया और लोग यह सोचने लगे कि शाहजहाँ की मृत्यु हो गई है। इस पर दारा के सभी भाई अपनी-अपनी सेनाएँ लेकर राजधानी की ओर झपटे।

प्रश्न 20—मुगल साम्राज्य के पतन के किन्हीं चार कारणों का विश्लेषण कीजिए। *(1996)*

अथवा **मुगल साम्राज्य के पतन के चार मुख्य कारणों का उल्लेख कीजिए।** *(1996)*

उत्तर—मुगल साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी चार प्रमुख कारणों का उल्लेख निम्नवत् है—

(1) उत्तराधिकार के नियम का न होना—मुगलों में उत्तराधिकार का कोई निश्चित नियम नहीं था; इसलिए प्रत्येक शासक के पुत्रों में सिंहासन के लिए हमेशा गृहयुद्ध होता था। इससे मुगल साम्राज्य की सैनिक और आर्थिक शक्ति का दुरुपयोग होता रहा और साम्राज्य की स्थिति निरन्तर दुर्बल होती चली गई।

(2) औरंगजेब के अयोग्य उत्तराधिकारी—यद्यपि औरंगजेब एक योग्य शासक था, तो भी उसकी धर्मान्धता के कारण मुगल साम्राज्य को बहुत धक्का पहुँचा और उसके उत्तराधिकारी अयोग्य सिद्ध हुए। ऐसी स्थिति में योग्य शासक के अभाव में मुगल साम्राज्य का अस्तित्व खतरे में पड़ जाना स्वाभाविक था।

(3) राजकोष की रिक्तता—राजकोष की रिक्तता ने मुगल साम्राज्य के पतन में बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई। औरंगजेब जीवनपर्यन्त युद्धों में संलग्न रहा; अतः मुगल साम्राज्य का राजकोष लगभग रिक्त हो गया। परिणामस्वरूप मुगल साम्राज्य का पतन अवश्यम्भावी हो गया।

(4) अमीरों का चारित्रिक पतन—औरंगजेब से पूर्व लगभग सभी मुगल शासकों को अमीरों और मुगल सरदारों का पूर्ण सहयोग मिला, लेकिन औरंगजेब के समय अमीर तथा अनेक सेनापति बड़े स्वार्थी एवं अनेक प्रकार की चारित्रिक हीनताओं से ग्रस्त हो गए थे। वे अपने स्वामी अथवा साम्राज्य के प्रति कोई निष्ठा नहीं रखते थे।

प्रश्न 21—टोडरमल के भूमि सुधारों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

उत्तर—(संकेत—इसी अध्यांय के दीर्घ उत्तरीय प्रश्न संख्या 9 का उत्तर पढ़िए।)

प्रश्न 22—उत्तराधिकार के युद्ध में औरंगजेब की सफलता के क्या कारण थे?

उत्तर—उत्तराधिकार के युद्ध में औरंगजेब की सफलता के निम्न कारण थे—

(1) औरंगजेब एक कुशल एवं उच्च कोटि का सेनानायक था। उसने सेना का संचालन अत्यन्त कुशलता से किया।

(2) वह अत्यन्त कूटनीतिज्ञ और दूरदर्शी था।

(3) औरंगजेब का तोपखाना शक्तिशाली था जिसका प्रयोग उसने सफलतापूर्वक किया।

(4) कट्टर सुन्नी मुसलमानों ने औरंगजेब को सहयोग दिया।

(5) दारा की सेना का संगठन निम्न स्तर का था।

(6) उसके भाई उसकी कुटिल चाल को समझ न सके।

प्रश्न 23—क्या आप सहमत हैं कि औरंगजेब की धार्मिक नीति मुगल साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी थी? *(1997)*

उत्तर—औरंगज़ेब कट्टर सुन्नी मुसलमान था। उसने अपने राज्य में मुस्लिमों को छोड़कर अन्य सभी सम्प्रदायों के प्रति धार्मिक असहिष्णुता एवं पक्षपात की नीति अपनायी। अतः उसके समय में जाट, सतनामी, सिक्ख आदि वर्ग के लोगों ने विद्रोह कर दिया। शियाओं पर भी उसने अत्याचार किए। अतः अधिकांश जनता मुगल साम्राज्य के विरुद्ध हो गई। इस प्रकार औरंगजेब की धार्मिक नीति मुगल साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी थी।

ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों एवं व्यक्तियों पर आधारित प्रश्न

प्रश्न 1—निम्नलिखित तिथियों की ऐतिहासिक महत्ता पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) 1542 ई० *(1996)*—इस तिथि को जलालुद्दीन मुहम्मद अकबर का जन्म अमरकोट नामक स्थान पर हुआ था।

(2) 1556 ई० *(1991, 96, 99)*—यह तिथि भारतीय इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। इस वर्ष अनेक महत्त्वपूर्ण घटनाएँ हुईं। **प्रथम**, इसी वर्ष हुमायूँ बादशाह की मृत्यु हुई और कलानौर में अकबर का राज्याभिषेक किया गया। **द्वितीय**, इसी वर्ष पानीपत के मैदान में द्वितीय ऐतिहासिक युद्ध हुआ, जिसमें आदिलशाह का सेनापति हेमू मारा गया और बैरम खाँ के नेतृत्व में अकबर ने दिल्ली की सत्ता प्राप्त की। पानीपत का यह द्वितीय युद्ध भारतीय इतिहास के निर्णायक युद्धों में विशेष स्थान रखता है।

(3) 1560 ई० *(1996)*—इस तिथि को अकबर का संरक्षक बैरम खाँ एक अफगान के हाथों मृत्यु को प्राप्त हुआ था। बैरम खाँ ने 1556 ई० से 1560 ई० तक अपनी योग्यता एवं वीरता से मुगल साम्राज्य को संगठित किया था। इसी वर्ष बैरम खाँ के हाथों से सत्ता छीनकर अकबर ने माहमअंगा की अधीनता स्वीकार कर ली थी। 1560 ई० से 1564 ई० तक का काल अकबर के शासनकाल में 'पेटीकोट सरकार' के नाम से जाना जाता था।

(4) 1562 ई० *(1996)*—अकबर के शासनकाल में इस तिथि को पर्दा-शासन का अन्त हुआ।

(5) 1564 ई० *(1992, 99)*— इस वर्ष अकबर ने गोंडवाना पर विजय प्राप्त की थी। गोंडवाना की रानी दुर्गावती ने मुगल सेना से जमकर टक्कर ली थी और अपनी जन्मभूमि की रक्षा के लिए युद्ध-भूमि में अपने प्राणों का उत्सर्ग कर दिया था।

(6) 1565 ई० *(1994, 96, 97)*—23 जनवरी, 1565 को तालीकोट का सुप्रसिद्ध युद्ध हुआ। इस युद्ध में राजाराम की पराजय से दक्षिण का हिन्दू राज्य विजय नगर समाप्त हो गया।

(7) 1568 ई० *(1993, 95)*—इस तिथि को राजा अकबर ने राजा उदयसिंह को पराजित करके चित्तौड़ को अपने अधीन कर लिया था, लेकिन उसका चित्तौड़ पर अधिक समय तक प्रभुत्व स्थायी न रह सका।

(8) 1569 ई० *(1994)*—यह तिथि अकबर की रणथम्भौर और कालिंजर विजय के लिए प्रसिद्ध है।

(9) 1571 ई० *(1992, 95)*—इस तिथि को अकबर ने मनसबदारी प्रथा का सूत्रपात किया था।

(10) 1572 ई० *(1995, 96)*—इस तिथि को मेवाड़ के शासक राणा उदयसिंह की मृत्यु हुई और महाराणा प्रताप का राज्याभिषेक किया गया। यह तिथि अकबर की गुजरात विजय के लिए भी प्रसिद्ध है।

(11) 1575 ई० *(1992)*—इस तिथि को अकबर ने बंगाल पर विजय प्राप्त की।

(12) 1576 ई० *(1992, 97)*—इस तिथि को इतिहास प्रसिद्ध हल्दी घाटी का युद्ध हुआ जिसमें राणा प्रतापसिंह को मुगलों से पराजित होकर निर्वासित जीवन व्यतीत करना पड़ा था।

(13) 1579 ई० *(1997)*—इस तिथि को अकबर ने 'मजहर' नामक दस्तावेज जारी कर 'सुल्ताने-आदिल' की उपाधि धारण की।

(14) 1581 ई० *(1990)*—इस वर्ष अकबर ने अपने भाई मिर्जा हकीम को पराजित किया और उसे अपनी अधीनता स्वीकार कराई। मिर्जा हकीम की मृत्यु के पश्चात् काबुल को मुगल साम्राज्य में मिला लिया था।

(15) 1582 ई० *(1994, 96, 99)*—इस तिथि को मुगल सम्राट अकबर के द्वारा दीन-ए-इलाही धर्म के प्रचलन की घोषणा की गई थी।

(16) 1584 ई०—इस वर्ष अकबर ने गुजरात को जीतकर अपने साम्राज्य में मिला लिया था।

(17) 1585 ई०—इस तिथि को काबुल भी मुगल साम्राज्य का अंग बन गया था।

(18) 1591 ई०—इस वर्ष सिन्ध प्रान्त मुगल साम्राज्य का अंग बन गया था। सिन्ध के शासक मिर्जा जानीबेग ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली थी।

(19) 1592 ई० *(1992)*—इस वर्ष शाहजहाँ का जन्म हुआ था।

(20) 1595 ई०—इस वर्ष कन्धार का सामरिक महत्त्व का प्रान्त अकबर के अधिकार में आ गया था। उत्तरी-पश्चिमी सीमान्त क्षेत्र में अकबर की यह विजय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थी।

(21) 1597 ई० *(1995)*—इस वर्ष महाराणा प्रताप की मृत्यु हुई थी।

(22) 1600 ई० *(1991, 94, 96)*—इस वर्ष अकबर ने दक्षिण के राज्य अहमद नगर पर विजय प्राप्त की और बुरहानपुर पर अधिकार कर लिया था। ईस्ट इंडिया कम्पनी की स्थापना तथा अँग्रेजों का भारत आगमन भी इसी तिथि से प्रारम्भ हुआ।

(23) 1601 ई०—इस वर्ष अकबर ने असीरगढ़ के दुर्ग पर विजय प्राप्त की थी और इसी वर्ष में वीरसिंह बुन्देला ने अबुल फजल का वध कर दिया था।

(24) 1605 ई० *(1992, 94, 95, 96)*—इस तिथि (25-26 अक्टूबर, 1605 ई०) को अकबर महान की मृत्यु हुई थी और शहजादा सलीम जहाँगीर के नाम से मुगल साम्राज्य की गद्दी पर बैठा था।

(25) 1606 ई० *(1996)*—इस वर्ष शहजादा खुसरो ने जहाँगीर के विरुद्ध विद्रोह किया था। खुसरो जहाँगीर का पुत्र था। उसकी मृत्यु 1622 ई० में बुरहानपुर के दुर्ग में हुई थी।

(26) 1611 ई० *(1995, 97)*—इस वर्ष सम्राट जहाँगीर ने नूरजहाँ से विवाह किया था। नूरजहाँ मध्यकालीन भारतीय इतिहास की सर्वाधिक प्रभावशाली महिला थी।

(27) 1613 ई० *(1992)*—इंग्लैण्ड के शासक जेम्स प्रथम ने इसी तिथि को सर टामस-रो को मुगल सम्राट जहाँगीर के दरबार में भेजा था।

(28) 1615 ई० *(1994)*—इस वर्ष जहाँगीर ने मेवाड़ पर विजय प्राप्त की। विजय का स्वप्न अकबर ने अधूरा छोड़ा था, जिसे उसके पुत्र खुर्रम (शाहजहाँ) ने पूरा कर दिखाया। राजा अमरसिंह द्वारा मुगलों की अधीनता स्वीकार कर लेने से सम्पूर्ण राजपूताना जहाँगीर के प्रभाव में आ गया था।

(29) 1620 ई०—इस तिथि को जहाँगीर ने कांगड़ा के विख्यात दुर्ग (पंजाब) पर विजय प्राप्त की थी।

(30) 1622 ई० *(1994, 96)*—इस तिथि को खुर्रम (शाहजहाँ) ने अपने पिता जहाँगीर के विरुद्ध विद्रोह किया था। जहाँगीर ने अपने सेनापति महावत खाँ को इस विद्रोह को दबाने के लिए भेजा। खुर्रम, महावत खाँ का सामना न कर सका और शीघ्र ही परास्त हो गया।

(31) 1627 ई० *(1994)*—इस तिथि को जहाँगीर की मृत्यु हुई थी। उसने 1605 ई० से 1627 ई० तक शासन किया था।

(32) 1628 ई० *(1993)*—इस वर्ष शहज़ादा खुर्रम शाहजहाँ के नाम से मुगल साम्राज्य की गद्दी पर आसीन हुआ था। शाहजहाँ ने 1628 ई० से 1658 ई० तक शासन किया था।

(33) 1631 ई० *(1997)*—इस वर्ष शाहजहाँ की बेगम मुमताज महल की मृत्यु हुई थी। शाहजहाँ ने मुमताज महल की स्मृति में आगरा में ताजमहल का निर्माण करवाया था।

(34) 1632 ई० *(1997)*—इस तिथि को गोलकुण्डा के सुल्तान ने शाहजहाँ की अधीनता स्वीकार की थी।

(35) 1645 ई० *(1992, 94, 99)*—इस वर्ष नूरजहाँ की मृत्यु हुई थी।

(36) 1658 ई० *(1990, 91, 95, 96, 97)*—इस तिथि को शाहजहाँ के पुत्रों—दाराशिकोह, शाहशुजा, मुराद व औरंगजेब के मध्य उत्तराधिकार का युद्ध हुआ था। इस युद्ध में औरंगजेब को विजय प्राप्त हुई थी।

(37) 1665 ई० *(1999)*—इस तिथि को शिवाजी और मुगल सेनापति मिर्जा राजा जयसिंह के मध्य पुरन्दर की सन्धि (11 जून 1665 ई०) हुई थी। इस सन्धि के अनुसार शिवाजी को 23 किले औरंगजेब को देने पड़े और मुगल दरबार में उपस्थित होने का वायदा करना पड़ा।

(38) 1666 ई० *(1992)*—इस वर्ष शाहजहाँ की मृत्यु हुई थी।

(39) 1675 ई० *(1996, 99)*—इस तिथि तक औरंगजेब को पश्चिमोत्तर सीमान्त प्रदेश को नियन्त्रित करने में औरंगजेब को पूर्ण सफलता प्राप्त हो गई।

(40) 1680 ई० *(1993, 94, 95)*—इस तिथि को शिवाजी की मृत्यु हुई थी।

(41) 1687 ई०—इस तिथि को औरंगजेब ने दक्षिण के गोलकुण्डा राज्य को जीत कर मुगल साम्राज्य में मिला लिया था।

(42) 1707 ई० *(1990, 92, 94, 95, 97, 99)*—इस तिथि को आलमगीर औरंगजेब की मृत्यु हुई थी। उसने 1658 ई० से 1707 ई० तक मुगल साम्राज्य पर शासन किया था।

प्रश्न 2—निम्नांकित ऐतिहासिक स्थलों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) आगरा *(1992, 93, 94, 95, 97)*—आगरा मध्यकालीन युग से ही एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक नगर रहा है। इस नगर की स्थापना 1504 ई० में सिकन्दर लोदी ने की थी। बाद में इस नगर को मुगलों ने अपनी राजधानी बनाया। इस नगर में अनेक ऐतिहासिक इमारतें बनी हुई हैं, जिनमें आगरा का किला, ताजमहल, मोती मसजिद, एतमातुद्दौला का मकबरा आदि दर्शनीय हैं। दयालबाग और उसमें स्थित मन्दिर अपनी भव्यता व सुन्दरता के लिए विश्वभर में प्रसिद्ध हैं।

(2) फतेहपुर सीकरी *(1990, 91, 92, 93, 95, 96, 97, 99)*—आगरा से 40 किमी दूर स्थित फतेहपुर सीकरी ऐतिहासिक स्थल है। सम्राट अकबर को यह स्थान अत्यन्त प्रिय था। अकबर ने इस स्थान पर अनेक सुन्दर इमारतें बनवाई थीं, जिनमें 176 फुट ऊँचा बुलन्द दरवाजा देखने योग्य है। अन्य इमारतों में दीवान-ए-खास, दीवान-ए-आम, मरियम का महल, अबुल फजल महल, बीरबल का महल, पंच महल, हवा महल, जामा मसजिद भी दर्शनीय हैं। शेख सलीम चिश्ती का मकबरा भी फतेहपुर सीकरी की एक दर्शनीय इमारत है।

(3) चित्तौड़ *(1990, 93, 95, 97)*—राजस्थान राज्य में स्थित चित्तौड़ राजपूतों की वीरभूमि रहा है। चित्तौड़ का दुर्ग, जो कि उदयपुर से 112 किमी दूर स्थित है, अपनी सुदृढ़ता और अभेद्यता के लिए आज भी विख्यात है। इस दुर्ग का निर्माण बप्पा रावल ने करवाया था। महारानी पद्मावती और मीराबाई जैसी महिलाएँ इसी स्थान की देन थीं। चित्तौड़ का दुर्ग अब जर्जर अवस्था में है। दुर्ग में स्थित विजय स्तम्भ, कीर्ति स्तम्भ, गोकल मन्दिर, गोमुख कुण्ड, राणा कुम्भा का महल, मीरा का मन्दिर आदि इमारतें दर्शनीय हैं।

(4) हल्दी घाटी—मेवाड़ में स्थित हल्दी घाटी एक ऐतिहासिक स्थल है। 1576 ई० में इस स्थान पर मुगलों और राणा प्रतापसिंह की सेनाओं के मध्य एक भीषण युद्ध हुआ था। इस युद्ध में राणा के प्रिय घोड़े चेतक द्वारा प्रदर्शित की गई वीरता विशेष रूप से उल्लेखनीय है। चेतक ने अपने प्राणों का उत्सर्ग करके राणाप्रताप की रक्षा की थी।

(5) अलवर—यह राजस्थान में स्थित एक मुख्य नगर है, जो दिल्ली से 164 किमी दूर स्थित है। जहाँगीर ने अपने दक्षिणी अभियान के समय अलवर को अपनी प्रमुख छावनी बनाया था। अकबर का सिटी पैलेस, बहता तालाब, अजायबघर और पाण्डु स्तम्भ दर्शनीय स्थल हैं।

(6) अजमेर *(1991, 92, 93, 95)*—यह दिल्ली के निकट और राजस्थान में स्थित एक ऐतिहासिक और धार्मिक स्थल है। अजमेर में लाखों हिन्दू प्रति वर्ष पुष्करराज मन्दिर देखने जाते हैं और लाखों लोग ख्वाजा मुईनुद्दीन चिश्ती की दरगाह पर चादर चढ़ाने जाते हैं। अकबर द्वारा निर्मित अकबरी मसजिद और बुलन्द दरवाजा तथा कुतुबुद्दीन और इल्तुतमिश द्वारा बनवाया गया ढाई दिन का झोंपड़ा नामक मसजिद, अजमेर की दर्शनीय इमारतें हैं।

(7) अहमद नगर—इस नगर की स्थापना 1540 ई० में अहमद निजामशाह ने की थी। यह नगर पूना से 117 किमी की दूरी पर स्थित है तथा बहमनी राज्य का एक मुख्य नगर था। चाँदबीबी यहीं की शासिका थीं और मुगल सम्राट औरंगजेब की मृत्यु भी अहमद नगर के दुर्ग में ही हुई थी। यहाँ के दर्शनीय भवनों में आलमगीर की दरगाह, [illegible] और चाँदबीबी का मकबरा आदि प्रमुख हैं।

(8) औरंगाबाद—महाराष्ट्र राज्य में स्थित इस नगर का प्राचीन नाम 'खिड़की' है। इस नगर से कुछ किमी दूर अजन्ता और एलोरा की ऐतिहासिक गुफाएँ स्थित हैं। यहाँ की विख्यात इमारत 'बीबी का मकबरा' है, जिसे औरंगजेब ने अपनी पहली बेगम दिरास बानू की स्मृति में बनवाया था। यहाँ की अन्य इमारतों में औरंगजेब का मकबरा दर्शनीय है।

(9) गोलकुण्डा *(1992, 93)*—मध्य युग में यह नगर शिया शासकों की राजधानी था। गोलकुण्डा के सुल्तान नें 1632 ई० में शाहजहाँ की अधीनता स्वीकार कर ली थी। बाद में, 1687 ई० में औरंगजेब ने इसे जीतकर अपने साम्राज्य में मिला लिया था। इस नगर की मसजिदें व दुर्ग दर्शनीय हैं।

(10) बीजापुर—वर्तमान कर्नाटक राज्य में स्थित बीजापुर मध्य युग में शिया सुल्तानों की राजधानी था। 1686 ई० में औरंगजेब ने इसे जीतकर अपने साम्राज्य में मिला लिया था। बीजापुर का गोल गुम्बद दर्शनीय इमारत है और यह संसार का सबसे ऊँचा गुम्बद है। बीजापुर में शिया सुल्तानों के महल, मकबरे और मसजिदें भी दर्शनीय हैं।

(11) जयपुर *(1996)*—वर्तमान राजस्थान में स्थित यह नगर 1727 ई० में सवाई जयसिंह द्वितीय के द्वारा बसाया गया था। इस नगर को 'गुलाबी शहर' के नाम से सम्बोधित किया जाता है, क्योंकि यहाँ निर्मित भवनों में गुलाबी पत्थर का प्रयोग किया जाता है। इस नगर के चारों ओर आठ द्वारों वाला एक परकोटा है। इस परकोटे में 7 बड़े द्वारों का निर्माण किया गया है। हवामहल, रामबाग पैलेस, नाहरगढ़ का किला, आमेर का किला, जन्तर-मन्तर, जल महल, सिसौदिया गार्डन, गोविन्द देव का मन्दिर, रामनिवास बाग, गणेश का मन्दिर, गलताजी आदि यहाँ के प्रमुख दर्शनीय स्थल हैं।

(12) भरतपुर *(1996)*—राजस्थान के पूर्वी द्वार पर स्थित यह नगर 'राजस्थान का प्रवेश द्वार' कहा जाता है। इसका निर्माण जाट राजा सूरजमल ने कराया था। यहाँ का किला सुविख्यात है। इसके अतिरिक्त, यहाँ से 5 किमी की दूरी पर एक पक्षी अभ्यारण्य स्थित है, जहाँ साइबेरिया तक से पक्षी उड़कर आते हैं।

प्रश्न 3—निम्नांकित ऐतिहासिक व्यक्तियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) हेमू *(1994, 96)*—हेमू का वास्तविक नाम हेमचन्द्र था। वह धूसर बनिया था और अपनी योग्यता के बल पर दिल्ली के सूरवंशीय शासक मुहम्मद आदिलशाह का प्रधानमन्त्री बन गया था। हेमू अत्यन्त योग्य सेनापति और राजनीतिज्ञ था। कहा जाता है कि उसने अनेक युद्धों में विजय प्राप्त की थी। पानीपत की लड़ाई (1556 ई०) में हेमू ने मुगलों से प्रबल युद्ध किया, किन्तु आँख में तीर लग जाने से वह अपने हाथी से गिर पड़ा। बाद में, अकबर के आदेश पर उसका वध कर दिया गया।

(2) टोडरमल *(1990, 93, 94, 96, 99)*—टोडरमल जाति से खत्री थे। उनका जन्म लहरपुर (सीतापुर) में हुआ था। सर्वप्रथम वे शेरशाह के वित्तमन्त्री बने और बाद में अकबर ने उन्हें अपनी सेवा में रख लिया। टोडरमल एक योग्य अर्थशास्त्री थे। उन्होंने मुगलों की राजस्व व भूमि की व्यवस्था को वैज्ञानिक रूप प्रदान किया था। वे एक कुशल सैनिक भी थे और उनकी मृत्यु 1589 ई० में एक युद्ध में ही हुई थी। बदायूँनी ने टोडरमल को 'बेनजीर' (जिसकी तुलना न की जा सके) की संज्ञा दी थी।

(3) राजा मानसिंह *(1996)*—राजा मानसिंह जयपुर के राजा भगवानदास के दत्तक पुत्र थे। 1562 ई० में मानसिंह अकबर की सेना में आ गए। वे एक महान् सेनापति और वीर राजपूत थे। उन्होंने मुगल साम्राज्य को सुदृढ़ बनाने के लिए अनेक विद्रोहों का दमन किया। हल्दी घाटी, काबुल, बिहार, बंगाल आदि प्रान्तों की विजय मानसिंह के शौर्य का ही परिणाम थीं। आपको मुगल दरबार में 7 हजार का मनसब प्राप्त था।

(4) अबुल फजल *(1990, 92)*—अबुल फजल, अकबर के दरबार के नवरत्नों में से एक थे और दरबारी इतिहासकार थे। इनका जन्म 1551 ई० में आगरा में हुआ था। इनके पिता का नाम शेख मुबारक और भाई का नाम फैजी था। अबुल फजल प्रकाण्ड विद्वान्, कवि और समालोचक थे। इनकी दो रचनाएँ 'अकबरनामा' और 'आइने अकबरी' ऐतिहासिक दृष्टि से अत्यन्त महत्त्वपूर्ण हैं। अबुल फजल ने दीन-ए-इलाही धर्म स्वीकार कर लिया था। 1601 ई० में सलीम के आदेश पर वीरसिंह बुन्देला नामक राजपूत ने इनकी हत्या कर दी थी।

(5) बदायूँनी—अब्दुल कादिर बदायूँनी, बदायूँ का मूल निवासी और अकबर का समकालीन था। बदायूँनी कट्टर मुसलमान और फारसी का प्रकाण्ड विद्वान् था। उसने अकबर की धार्मिक नीति की कटु आलोचना की है। उसका प्रमुख ग्रन्थ **'मुन्तखब-उत-तवारीख'** अकबर के शासनकाल की घटनाओं के ज्ञान के लिए एक प्रामाणिक स्रोत है।

(6) निजामुद्दीन अहमद—निजामुद्दीन अहमद का पिता हुमायूँ का सेवक था। इसे अकबर के काल में राजाश्रय प्राप्त हुआ। इसकी प्रमुख रचना **'तबकाते अकबरी'** एक उल्लेखनीय ऐतिहासिक ग्रन्थ है।

(7) माहमअंगा—माहमअंगा अकबर की धाय माँ थी। मुगल रनिवास में इस महिला का व्यापक प्रभाव था। बैरम खाँ के पतन के लिए माहमअंगा और उनके पुत्र आधम खाँ (आदम खाँ) मुख्य रूप से उत्तरदायी थे। 1560 से 1564 ई० तक अकबर इस महिला के प्रभाव में रहा। माहमअंगा के प्रभुत्व काल को मुगल इतिहास में 'पेटीकोट सरकार' की संज्ञा दी जाती है।

(8) बीरबल—बीरबल का वास्तविक नाम महेशदास था। वह कालपी का निवासी और भाट वर्ग से सम्बन्धित था। अपनी वाक्पटुता, कविता एवं संगीत प्रेम के कारण बीरबल, अकबर का नवरत्न बन गया था। अकबर बीरबल से विशेष स्नेह करता था और उसने बीरबल को 2 हजार का मनसब और 'राजा' की उपाधि प्रदान की थी। अकबर और बीरबल के चुटकले आज भी प्रसिद्ध हैं। बीरबल एक कुशल सैनिक भी थे। 1586 ई० में एक सैनिक अभियान में ही उनकी मृत्यु हो गई थी।

(9) जहाँगीर—जहाँगीर का वास्तविक नाम सलीम था। अकबर की मृत्यु के पश्चात् सलीम जहाँगीर के नाम से मुगल सिंहासन पर आसीन हुआ। जहाँगीर ने 1611 ई० में नूरजहाँ से विवाह किया। जहाँगीर में कोमलता और निर्दयता, न्याय और चालाकी, सभ्यता व पशुता, बुद्धिमत्ता और छिछोरेपन का अद्‌भुत समन्वय था। जहाँगीर के चरित्र में अनेक दोष भी थे। वह बड़ा निर्दयी, कठोर और शराबी बादशाह था। उसने शासन की सम्पूर्ण शक्ति नूरजहाँ को सौंप दी थी। उसके शासनकाल की प्रमुख घटनाएँ—खुसरो का विद्रोह (1606 ई०) और खुर्रम का विद्रोह (1622 ई०) थीं। जहाँगीर एक प्रकाण्ड विद्वान् था। उसने अपनी आत्मकथा **'तजुके जहाँगीरी'** फारसी भाषा में लिखी थी। वह चित्रकला का प्रेमी था।

(10) राणा प्रताप *(1990, 91, 93, 94, 95, 97, 99)*—राणा प्रतापसिंह मेवाड़ के राजा उदयसिंह के पुत्र थे। आपका जन्म 9 मई, 1540 ई० को हुआ था। आपने 1572 ई० में अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् राजगद्दी सम्भाली। राजगद्दी के लिए उन्हें अपने बड़े भाई जगमल से भी संघर्ष करना पड़ा। राणा प्रताप अत्यन्त स्वाभिमानी और देशभक्त राजपूत थे। उन्हें स्वाधीनता अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय थी। अतः जब मुगल सम्राट अकबर ने उन्हें यह सन्देश भेजा कि या तो हमारी अधीनता स्वीकार कर लो, या फिर शक्तिशाली मुगल सेना से टक्कर लो, तब राणा प्रताप ने मुगलों से युद्ध करना ही उचित समझा। हल्दी घाटी के युद्ध (1576 ई०) में राणा प्रताप ने मुगलों से भीषण युद्ध किया, किन्तु सेना की कमी के कारण उन्हें पराजित होना पड़ा। राणा प्रताप ने कुछ समय तक निर्वासित जीवन व्यतीत किया और अनेक कष्ट उठाए, तथापि उन्होंने जीवनपर्यन्त अकबर की अधीनता स्वीकार नहीं की। 1597 ई० में राणा प्रताप परलोक सिधार गए। राजस्थान के इतिहास में राणा प्रतापसिंह को एक गौरवयुक्त स्थान प्राप्त है।

(11) दुर्गावती—रानी दुर्गावती भारत की एक वीर और साहसी महिला थीं। आप अकबर के समय में गोंडवाना की शासिका थीं। अपने अल्पवयस्क पुत्र नारायण राव की संरक्षिका के रूप में दुर्गावती ने मालवा और निकटवर्ती प्रदेशों पर विजय प्राप्त की थी। उसके पास एक विशाल घुड़सवार सेना थी। 1564 ई० में जब अकबर ने गोंडवाना पर आक्रमण किया, तभी मुगल सेना से युद्ध करते हुए दुर्गावती वीरगति को प्राप्त हुई। दुर्गावती एक अनुभवी सेनापति और शक्तिशाली महिला थीं।

(12) फैजी—फैजी, शेख मुबारक का पुत्र और अबुल फजल का भाई था। उसका जन्म 1549 ई० में आगरा में हुआ था। फैजी अरबी, फारसी और संस्कृत का प्रकाण्ड विद्वान् था। 1567 ई० में वह मुगल सम्राट अकबर के सम्पर्क में आया। अकबर ने फैजी की विद्वत्ता से प्रभावित होकर उसे अपने दरबार में संरक्षण प्रदान किया और 'राजकवि' की उपाधि प्रदान की। फैजी ने लगभग 100 ग्रन्थों की रचना की और संस्कृत के अनेक ग्रन्थों का अनुवाद फारसी भाषा में किया। 1595 ई० में फैजी का निधन हो गया।

(13) तानसेन—तानसेन ग्वालियर का निवासी था और अपने समय का सर्वश्रेष्ठ संगीतकार था। तानसेन ने प्रारम्भ में रीवा नरेश के यहाँ राजाश्रय प्राप्त किया और अपनी प्रतिभा से अपार ख्याति अर्जित की। 1562 ई० में सम्राट अकबर ने तानसेन को अपने दरबार में आमन्त्रित किया। तानसेन के मधुर संगीत से अकबर इतना प्रसन्न हुआ कि उसने तानसेन को अपने दरबार के नवरत्नों में स्थान दे दिया। कहा जाता है कि तानसेन जब दीपक राग गाता था, तो दीये अपने आप जल उठते थे और जब मेघ राग गाता था तो वर्षा होने लगती थी। 1589 ई० में इस महान संगीतज्ञ की मृत्यु हो गई थी।

(14) मुमताज महल *(1992, 96, 97)*—मुमताज महल का वास्तविक नाम 'अर्जुमन्द बानो' था। वह नूरजहाँ के भाई आसफ खाँ की पुत्री थी। 1612 ई० में मुमताज महल का विवाह शहजादा खुर्रम (शाहजहाँ) के साथ हुआ था। वह एक पतिव्रता और लावण्यमयी महिला थी। शाहजहाँ उससे अगाध प्रेम करता था। 7 जून, 1631 ई० को मुमताज महल की मृत्यु हो गई। उसकी मृत्यु से शाहजहाँ को बहुत दुःख हुआ और काफी दिनों तक वह शोक में डूबा रहा। उसने अपनी प्रिय पत्नी मुमताज महल (मलिका-ए-जमां) की स्मृति में ताजमहल का निर्माण करवाया और उसी में उसकी कब्र भी बनवाई।

(15) खुर्रम—खुर्रम, जहाँगीर का तीसरा पुत्र था। उसका जन्म 5 जनवरी, 1582 ई० को लाहौर में हुआ था। उसकी माता मानमती (जगत गोसाई) मारवाड़ के राणा उदयसिंह की पुत्री थी। उसका पालन-पोषण उसकी दादी सुल्ताना बेगम ने किया था। युवावस्था में खुर्रम ने मेवाड़ पर विजय प्राप्त की और दक्षिण में मलिक अम्बर को सन्धि करने के लिए बाध्य किया। कुछ समय बाद नूरजहाँ की गुटबन्दी के कारण खुर्रम ने 1622 ई० में जहाँगीर के विरुद्ध विद्रोह भी किया। अन्ततः जहाँगीर की मृत्यु के बाद 1628 ई० में खुर्रम शाहजहाँ के नाम से दिल्ली की गद्दी पर आसीन हुआ। शाहजहाँ ने 1628 ई० से 1658 ई० तक राज्य किया। 1658 ई० में हुए उत्तराधिकार युद्ध में औरंगजेब ने विजय प्राप्त की और शाहजहाँ को आगरा के किले में कैद कर दिया। इस किले में ही 1666 ई० में शाहजहाँ की मृत्यु हो गई।

शाहजहाँ बड़ा योग्य तथा सफल शासक था। उसके शासनकाल में मुगल साम्राज्य को सर्वोच्च शक्ति और शान-शौकत प्राप्त हो गई थी।

(16) खुसरो—खुसरो, जहाँगीर का पुत्र और बड़ा ही होनहार व लोकप्रिय शहजादा था। वह बड़ा ही रूपवान, बलवान और चरित्रवान भी था। अकबर उससे अत्यधिक स्नेह रखता था और उसे ही अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। लेकिन जब जहाँगीर (खुसरो का पिता) राजगद्दी पर बैठ गया, तो खुसरो को अत्यन्त निराशा हुई। जहाँगीर भी उसे सन्देह की दृष्टि से देखता था। अतः उसने खुसरो को आगरा के किले में कैद करवा दिया। 1606 ई० में खुसरो कैद से निकल भागा और उसने जहाँगीर के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। शीघ्र ही खुसरो को बन्दी बनाकर जहाँगीर के सामने लाया गया। सम्राट ने खुसरो को अन्धा करवाकर बुरहानपुर के दुर्ग में भेज दिया। 1622 ई० में शहजादा खुर्रम ने षड्यन्त्र रचकर खुसरो को मरवा दिया। इस प्रकार इस अभागे शहजादे का अन्त हुआ।

(17) महावत खाँ—महावत खाँ, जहाँगीर का एक अनुभवी वीर-सेनापति था। 1622 ई० में जब खुर्रम ने विद्रोह किया, तो नूरजहाँ ने महावत खाँ को ही उसका दमन करने के लिए भेजा था। महावत खाँ ने खुर्रम को अनेक युद्धों में पराजित करके उसे जहाँगीर से क्षमा माँगने के लिए बाध्य किया। महावत खाँ की शक्ति से आतंकित होकर नूरजहाँ ने उसे बंगाल का सूबेदार नियुक्त करवा दिया। बाद में, नूरजहाँ ने उस पर यह आरोप लगाया कि उसने राजस्व-कर शाही राजकोष में जमा करने हेतु नहीं भेजा है। इस आरोप से रुष्ट होकर महावत खाँ ने विद्रोह कर दिया और झेलम नदी के निकट जहाँगीर और नूरजहाँ को बन्दी बना लिया। सौ दिन तक महावत खाँ ने अपना प्रभुत्व बनाए रखा। बाद में, नूरजहाँ की कूटनीति के समक्ष उसे पराजित होना पड़ा। वह दक्षिण चला गया और शहजादा खुर्रम का सहयोगी बन गया।

(18) राजा भगवानदास—भगवानदास जयपुर के राजा बिहारीमल का पुत्र था। 1562 ई० में जब बिहारीमल ने अकबर की अधीनता स्वीकार कर ली, तो भगवानदास अकबर की सेवा में आ गया। अकबर ने इसकी पुत्री मानमती का विवाह जहाँगीर के साथ किया, जिससे शहजादा खुसरो उत्पन्न हुआ।

भगवानदास को अकबर के दरबार में पाँच हजार का मनसब और विशिष्ट सम्मान प्राप्त था। उसने अनेक सैनिक अभियानों में मुगलों को विजय दिलाई तथा कुछ समय तक वह पंजाब का सूबेदार भी रहा।

(19) मलिक अम्बर—मलिक अम्बर दक्षिण में अहमद नगर राज्य का एक योग्य, अनुभवी और दूरदर्शी प्रधानमन्त्री था। उसने मुगल सेनाओं से कई बार टक्कर ली और अपने राज्य को सुरक्षित बनाए रखा। मलिक अम्बर जहाँगीर का समकालीन था। 1625 ई० में मलिक अम्बर को शहजादा खुर्रम से सन्धि करने के लिए बाध्य होना पड़ा, परन्तु जब तक मलिक अम्बर जीवित रहा, तब तक अहमद नगर राज्य पर मुगलों का अधिकार न हो सका।

(20) गुरु गोविन्द सिंह *(1994, 97)*—गुरु गोविन्द सिंह सिक्खों के अन्तिम और दसवें गुरु थे। गुरु तेगबहादुर के शहीद हो जाने पर 1675 ई० में आप गुरुगद्दी पर आसीन हुए। उन्होंने सिक्खों को शक्तिशाली बनाने के लिए **'खालसा पंथ'** की नींव डाली और अपने शिष्यों को **'सिंह'** की उपाधि से विभूषित किया। उन्होंने सिक्खों को सैनिक शक्ति के रूप में परिवर्तित कर मुगलों से जमकर लोहा लिया। गुरु गोविन्द सिंह ने सिक्खों के लिए कच्छा, कड़ा, केश, कृपाण और कंघा कुल पाँच कक्चर अनिवार्य घोषित किए। 1708 ई० में उनका निधन हो गया।

(21) दारा शिकोह *(1997)*—दारा शिकोह, शाहजहाँ का ज्येष्ठ पुत्र था। वह उदार और धार्मिक विचारों का व्यक्ति था। उसने सूफी ग्रन्थों और संस्कृत ग्रन्थों पर टीकाएँ लिखी थीं। लेकिन वह उग्र प्रकृति का हठी शहजादा था। उसमें योग्य शासक और उत्तम सैनिक के गुणों का अभाव था। लेनपूल के अनुसार, **"दारा एक शीघ्र घबरा जाने वाला, अनुभूतिशील और अस्थिर व्यक्ति था। वह भावुक था और उसमें न तो अपने ऊपर, न दूसरे पर अधिकार करने की सामर्थ्य थी।"** उत्तराधिकार के लिए हुए सामूगढ़ के युद्ध में (1658 ई०) उसे औरंगजेब से पराजित होकर भागना पड़ा। बाद में, औरंगजेब ने उसका और उसके पुत्र सुलेमान शिकोह का वध करवा दिया।

(22) शाहशुजा—शाहशुजा, शाहजहाँ का दूसरा पुत्र था। उत्तराधिकार के युद्ध के समय वह बंगाल का सूबेदार था। वह आरामतलब और अत्यधिक विलासी था। वह शिया धर्म का अनुयायी था। बर्नियर के अनुसार, **"शाहशुजा चरित्र के दृष्टिकोण से अपने भाई दारा के समान ही था, किन्तु उससे वह अधिक विचारशील, दृढ़ संकल्पी, चरित्रवान और व्यवहारशील था।"** उत्तराधिकार के युद्ध में मीर जुमला ने उसे पराजित करके अराकान की ओर खदेड़ दिया, जहाँ पर स्थानीय लोगों ने उसका वध कर दिया।

(23) मुराद—मुराद, शाहजहाँ का सबसे छोटा पुत्र था। वह एक साहसी और वीर योद्धा था, तथापि वह विलासी, शराबी और बुद्धिहीन भी था। उत्तराधिकार के युद्ध में मुराद ने औरंगजेब के साथ गठबन्धन करके दारा शिकोह को पराजित किया। बाद में, औरंगजेब ने उसे गिरफ्तार करके ग्वालियर के दुर्ग में भेज दिया और दीवान अली नकी की हत्या के आरोप में उसका वध करवा दिया।

(24) जहाँआरा—जहाँआरा, शाहजहाँ की ज्येष्ठ पुत्री थी। इसे अपने भाई दारा शिकोह से विशेष प्रेम था। कहा जाता है कि शाहजहाँ भी अपनी इस पुत्री से विशेष प्रेम करता था। शाहजहाँ के अन्तिम दिनों में जहाँआरा ने उसकी बड़ी सेवा की थी।

(25) रोशनआरा—रोशनआरा, शाहजहाँ की छोटी पुत्री थी। यह बड़ी कुटिल तथा दूरदर्शी महिला थी। कहा जाता है कि उत्तराधिकार के युद्ध में औरंगजेब को विजयी बनाने का श्रेय इसी को था।

(26) बहादुरशाह—औरंगजेब का पुत्र बहादुरशाह 65 वर्ष की अवस्था में गद्दी पर आसीन हुआ था। वह अत्यन्त उदार और सीधा-सादा बादशाह था। इतिहास में उसे **'शाहे बेखबर'** (असावधान बादशाह) के नाम से जाना जाता है। उसने सिक्खों, राजपूतों और मराठों से मित्रता करने का प्रयास किया, तथापि वह योग्य बादशाह न था। 1712 ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

(27) सैयद भाई—अब्दुल्ला खाँ और हुसैन अली खाँ नामक सैयद भाइयों को इतिहास में **'शासक निर्माता' (King-maker)** के नाम से जाना जाता है। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मुगल साम्राज्य अयोग्य उत्तराधिकारियों के हाथ में चला गया। 1713 ई० से 1720 ई० तक सैयद भाइयों ने

अपनी इच्छानुसार चार मुगल बादशाहों के भाग्य का निर्णय किया और शासन सत्ता पर अपना प्रभुत्त्व जमाए रखा। 1720 ई० में सैयद भाइयों का अन्त हो गया।

(28) नादिरशाह—नादिरशाह ईरान का निवासी था। 1736 ई० में वह अपनी वीरता और योग्यता के बल पर ईरान का सम्राट बन गया। 1739 ई० में नादिरशाह ने भारत पर आक्रमण किया और मुगल बादशाह मुहम्मदशाह को पराजित करके 17 करोड़ रुपये की सम्पत्ति प्राप्त की। उसने सम्राट से कोहिनूर हीरा भी छीन लिया और ईरान लौट गया। 1747 ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

(29) अहमदशाह अब्दाली—अहमदशाह अब्दाली, नादिरशाह का सेनापति और अफगानिस्तान का सूबेदार था। नादिरशाह की मृत्यु के पश्चात् वह स्वतन्त्र शासक बन गया। अब्दाली ने 1747 ई० से 1767 ई० तक भारत पर अनेक आक्रमण किए और पंजाब को जीतकर अपार धन प्राप्त किया। पानीपत के तृतीय युद्ध (14 जनवरी, 1761 ई०) में अब्दाली; मराठों को पराजित करने में सफल हुआ। अब्दाली के आक्रमणों ने मुगल साम्राज्य को छिन्न-भिन्न कर दिया।

(30) जुल्फिकार अली—जुल्फिकार अली, मुहम्मदशाह के समय में मुगल सेना का सर्वोच्च सेनापति था। जहाँदारशाह के समय में उसकी शक्ति अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई थी। वह शासन का सर्वेसर्वा बन गया था। उसने हिन्दुओं को जजिया-कर से मुक्त कर दिया था और अम्बर के राजा जयसिंह को 'मिर्जा सवाई' की उपाधि दी थी। जुल्फिकार अली एक कुशल शासक और दूरदर्शी व्यक्ति था। उसने राजपूतों और मराठों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित किए थे।

(31) नूरजहाँ *(1992, 95, 97)*—नूरजहाँ का बचपन का नाम मेहरुन्निसा था। उसके पिता का नाम ग्यासबेग और माता का नाम असमत बेगम था। नूरजहाँ का विवाह अलीकुली खाँ (शेर अफगन) के साथ हुआ। शेर अफगन की मृत्यु के पश्चात् 1611 ई० में उसका विवाह जहाँगीर से हुआ। जहाँगीर ने उसे नूरजहाँ की उपाधि दी। नूरजहाँ ने धीरे-धीरे अपनी शक्ति में वृद्धि की और जहाँगीर पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया। जहाँगीर के नाम के साथ उसका नाम भी सिक्कों पर अंकित होने लगा। नूरजहाँ ने अपने पिता ग्यासबेग को प्रधानमन्त्री तथा भाई आसफ खाँ को खान-ए-सामा के पद पर नियुक्त कराया। उसने अलीकुली से उत्पन्न पुत्री का विवाह जहाँगीर के छोटे पुत्र शहरयार से कराया और उसको जहाँगीर के बाद सम्राट बनाने का प्रयत्न किया। इससे दरबार में दो गुट हो गए। जहाँगीर की मृत्यु पर खुर्रम (शाहजहाँ) सम्राट बना और नूरजहाँ को 2 लाख रुपया वार्षिक पेंशन स्वीकृत कर दी गई। 1645 ई० में उसकी मृत्यु हो गई।

(32) आसफ खाँ *(1996)*—आसफ खाँ, मिर्जा ग्यासबेग का पुत्र था। वह नूरजहाँ का भाई था। जहाँगीर के काल में नूरजहाँ ने उसे खान-ए-सामा के पद पर नियुक्त कराया। उसकी पुत्री अर्जुमन्द बानो बेगम (मुमताज महल) का विवाह जहाँगीर के पुत्र खुर्रम से हुआ था। जब जहाँगीर की मृत्यु हुई, तो आसफ खाँ ने खुर्रम को दक्षिण से उत्तर की ओर आने की सूचना दी। उसने खुसरो के नाबालिग पुत्र दावरबख्श को गद्दी पर बिठाया और शहरयार पर आक्रमण करके उसको परास्त किया व उसकी आँखें निकलवा लीं। इस बीच खुर्रम आगरा पहुँच गया और उसने दावरबख्श का भी वध करवा दिया।

(33) गुरु अर्जुनसिंह—गुरु अर्जुनसिंह, गुरु रामदास के पुत्र थे। वे सिक्खों के पाँचवें गुरु थे। अपने पिता की मृत्यु के पश्चात् वे गुरु की गद्दी पर आसीन हुए। उन्होंने अमृतसर में स्वर्ण मन्दिर का निर्माण कराया जो सिक्खों का सबसे बड़ा तीर्थस्थान बन गया। उन्होंने व्यक्ति पूजा के स्थान पर सामूहिक पूजा पर बल दिया। उन्होंने सिक्ख गुरुओं के उपदेशों का संकलन 'आदि ग्रन्थ' के नाम से कराया। गुरु अर्जुन ने जहाँगीर के पुत्र खुसरो को विद्रोह करने पर उसकी सहायता की। अतः जहाँगीर ने उसकी हत्या करवा दी।

(34) दुर्गादास राठौर—दुर्गादास मारवाड़ राज्य का मन्त्री था। जब औरंगजेब ने जसवंत सिंह की मृत्यु के पश्चात् उसके नवजात पुत्र को मारवाड़ का शासक नहीं बनाया और दिल्ली में अपने पास ही रख लिया तो दुर्गादास उस नवजात बालक को, जिसका नाम अजीतसिंह था, उसकी माँ सहित दिल्ली से मारवाड़ ले आया और उसे राजसिंहासन पर बिठाया। औरंगजेब ने मारवाड़ पर आक्रमण की तैयारी प्रारम्भ कर दी। इस आक्रमण का नेतृत्व औरंगजेब ने अपने पुत्र अकबर (द्वितीय) को सौंपा। दुर्गादास ने अकबर (द्वितीय)

को अपनी ओर मिला लिया और उसने मेवाड़ से भी सहायता प्राप्त की। दुर्गादास अकबर (द्वितीय) को लेकर दक्षिण में शम्भाजी के पास गया। दुर्गादास ने औरंगजेब के विरुद्ध छापामार युद्ध-प्रणाली का अनुसरण किया। तीस वर्ष के संघर्ष के पश्चात् तत्कालीन मुगल बादशाह बहादुरशाह ने जसवंत सिंह के पुत्र अजीतसिंह को मारवाड़ का शासक स्वीकार कर लिया। डॉ० ईश्वरी प्रसाद के अनुसार, "दुर्गादास का नाम राजपूतों के इतिहास में सदा अमर रहेगा।"

(35) चैतन्य महाप्रभु *(1992, 95)*—चैतन्य महाप्रभु भक्ति आन्दोलन के महान् सन्त थे। उनका जन्म 18 फरवरी, 1485 को नवद्वीप (आधुनिक नदिया) नामक स्थान पर हुआ था। चैतन्य महाप्रभु का वास्तविक नाम विश्वम्भर तथा उनके पिता का नाम जगन्नाथ मिश्र था। वे अपनी प्रारम्भिक शिक्षा के उपरान्त उच्च शिक्षा हेतु पंडित गंगादास के पास गए। वे अत्यन्त कुशाग्र बुद्धि के छात्र थे तथा उन्होंने 15 वर्ष की आयु में ही संस्कृत साहित्य, तर्कशास्त्र तथा व्याकरण पर अधिकार प्राप्त कर लिया था।

संत ईश्वरपुरी से दीक्षा लेने के उपरान्त उनके जीवन में आमूल-चूल परिवर्तन हो गया तथा वे भगवान कृष्ण के परमभक्त बन गए। उन्होंने अपना सर्वस्व कृष्णभक्ति में समर्पित कर दिया। 1510 ई० में उन्होंने संन्यास ग्रहण कर लिया तथा चैतन्य कृष्ण के नाम से प्रसिद्ध हो गए। चैतन्य ने पुरी, सोमनाथ तथा द्वारका आदि पवित्र स्थानों के दर्शन किए। चैतन्य बाह्य आडम्बरों तथा जाति अथवा धर्म पर आधारित भेदभाव के विरुद्ध थे। उन्होंने ईश्वर में पूर्ण आस्था रखने का उपदेश दिया। उनके उपदेश सरल तथा बोधगम्य थे।

4 मुगलकालीन शासन-व्यवस्था, समाज, कला एवं साहित्य

"शाहजहाँ का शासनकाल मुगलों की सम्पन्नता का स्वर्ण-युग था। यह वह युग था, जिसमें अद्भुत स्थपत्य कला की शैली का प्रादुर्भाव हुआ।" —पर्सी ब्राउन

"शाहजहाँ के काल में न केवल स्थापत्य कला, बल्कि विविध कलाओं के क्षेत्र में भी उच्च कोटि की कलाकृतियों का निर्माण हुआ था।" —वी०ए० स्मिथ

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—मुगलकालीन भारत की सामाजिक, आर्थिक तथा धार्मिक दशा का वर्णन कीजिए। *(Imp.)*

उत्तर—

मुगलकालीन भारत की सामाजिक दशा

मुगल शासकों ने भारत पर लगभग दो सौ पचास वर्षों तक शासन किया। अतः भारा के सामाजिक, आर्थिक एवं धार्मिक जीवन पर उनका व्यापक प्रभाव पड़ा। इस काल में भारत के सामाजिक क्षेत्र में जो महत्त्वपूर्ण परिवर्तन हुए उनका विवरण इस प्रकार है—

(1) सामाजिक संगठन—अबुल फजल की 'आइने अकबरी', निज़ामुद्दीन अहमद की 'तबकाते अकबरी', बर्नियर, टैवर्नियर, डी लेट, मनूची, सर टामस रो, हाकिन्स आदि यूरोपीय यात्रियों के विवरणों के आधार पर यह विदित होता है कि मुगलकाल में भारतीय समाज निम्न तीन प्रमुख वर्गों में विभक्त था—

(i) उच्च वर्ग—सम्राट के पश्चात्, समाज के उच्च वर्ग में अमीर और ऊँचे पद वाले अधिकारी सम्मिलित थे। इन्हें अधिक वेतन दिया जाता था, जिससे वे ऐश्वर्यपूर्ण जीवन व्यतीत किया करते थे। ये सुरा-सुन्दरी और विलासितापूर्ण सामग्रियों का उपयोग करते थे। अमीरों की मृत्यु के बाद उनकी सारी सम्पत्ति पर राज्य का अधिकार हो जाता था, उस पर किसी अन्य का अधिकार नहीं होता था।

(ii) मध्यम वर्ग—समाज का दूसरा वर्ग मध्यम वर्ग था। इस वर्ग के लोगों का जीवन-स्तर अधिक उच्च तो न था, लेकिन अत्यधिक गिरा हुआ भी नहीं कहा जा सकता है। ये लोग उच्च वर्ग के जीवन-स्तर का अनुकरण करने का प्रयत्न अवश्य करते थे, किन्तु सफल नहीं हो पाते थे। इस वर्ग के अन्तर्गत—राज्य, कर्मचारी, व्यापारी, चिकित्सक तथा विभिन्न प्रकार के कलाकार आदि सम्मिलित थे।

(iii) निम्न वर्ग—इस वर्ग की समाज में अत्यन्त दयनीय स्थिति थी। डॉ० जदुनाथ ने इस वर्ग की शोचनीय स्थिति का चित्रण करते हुए लिखा है, **"श्रमिकों को बहुत कम वेतन मिलता था, सामन्त तथा राजकीय अधिकारी वर्ग उनका शोषण करता था। कठिन परिश्रम के बाद इनको बहुत कम मजदूरी मिलती थी अथवा कुछ भी नहीं मिलता था। भोजन में इनको खिचड़ी के अतिरिक्त कुछ भी नहीं मिलता था। उनके घर मिट्टी के बने थे तथा घर भी छप्पर-फूँस के थे, उनके पास कुछ मिट्टी के बर्तनों तथा घास-फूँस के अतिरिक्त कुछ भी न था।"**

(2) सामाजिक कुरीतियाँ—समाज में पर्दा-प्रथा, सती-प्रथा एवं वेश्यावृत्ति प्रचलित थी। छुआछूत का बोलबाला था, जिसके कारण अछूतों की दशा दयनीय थी। इस प्रकार, मुगलकालीन भारत की सामाजिक स्थिति अच्छी नहीं थी।

मुगलकालीन भारत की आर्थिक दशा

मुगल बादशाहों ने भारतीय जनता के आर्थिक विकास की ओर पर्याप्त ध्यान दिया था। इसीलिए अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ आदि के शासनकाल में प्रजा बहुत सुखी थी। कृषकों की दशा भी अच्छी थी और उपयोग में आने वाली वस्तुएँ बहुत सस्ती और सुलभ थीं। अकबर ने कृषि की उन्नति की ओर विशेष ध्यान दिया और उसके सुधार हेतु अनेक उपयोगी परिवर्तन किए थे। अनेक इतिहासकार शाहजहाँ के शासनकाल को उन्नत आर्थिक अवस्था के कारण ही 'स्वर्ण-युग' मानते हैं।

(1) कृषि का विकास—मुगलकाल में ही नहीं, वरन् उससे पहले भी तथा आज भी भारतीयों की जीविकोपार्जन का मुख्य साधन कृषि ही रहा है। मुगलकालीन शासकों में अकबर ने कृषि की उन्नति की ओर पर्याप्त ध्यान दिया था। उसने भूमि सम्बन्धी अनेक सुधार किए थे। अन्य सम्राटों ने नहरें निकलवाईं और सिंचाई के लिए कुएँ आदि खुदवाए। अकाल पड़ जाने या फसल के नष्ट हो जाने पर कृषकों को आर्थिक सहायता भी दी जाती थी और लगान भी माफ कर दिया जाता था।

(2) उन्नत उद्योग-धन्धे—मुगलकाल में अनेक उद्योग-धन्धे भी उन्नत अवस्था में थे। सूती कपड़ों का उद्योग अपने चरमोत्कर्ष पर था। ढाका की मलमल उस समय विश्वभर में प्रसिद्ध थी। भारत की अनेक वस्तुएँ—रेशम, दरी, कालीन आदि सूरत, गोवा, चटगाँव, कोचीन आदि बन्दरगाहों से विदेशों को भेजी जाती थीं। इस प्रकार, मुगलकाल में भारत की आर्थिक स्थिति सुसम्पन्न थी और जन-जीवन अत्यधिक सुखी था।

(3) व्यापार की प्रगति—मुगलकाल में व्यापार भी उन्नत अवस्था में था। व्यापार सड़कों और नदियों दोनों मार्गों के द्वारा होता था। भारत से निर्यात की जाने वाली वस्तुओं में सूती कपड़ा प्रमुख था। इसके अतिरिक्त काली मिर्च, नील, अफीम, चीनी, शोरा, मसाले, नमक आदि महत्त्वपूर्ण वस्तुएँ भी भारत से विदेशों को भेजी जाती थीं। इस काल में फ्रांस, इटली, चीन आदि देशों से बहुत-सी आवश्यकता की वस्तुएँ आयात की जाती थीं।

मुगलकालीन भारत की धार्मिक दशा

बाबर ने अपनी हिन्दू प्रजा पर धर्म के आधार पर किसी भी प्रकार का दुर्व्यवहार नहीं किया। इसी प्रकार, हुमायूँ भी बड़े उदार स्वभाव का था। अकबर ने हिन्दू जनता पर से जजिया एवं तीर्थयात्रा-कर हटा दिए थे, लेकिन शाहजहाँ, औरंगजेब आदि बड़े असहिष्णु सम्राट रहे थे। उन्होंने हिन्दुओं पर कर लगाए, उनके मन्दिर तुड़वाए एवं विभिन्न पदों पर की जाने वाली नियुक्तियों में भेदभाव किया।

इसी कारण मुगलकाल में विकसित सामाजिक दोषों को दूर करने एवं दुःखी जनता को धार्मिक सुविधाएँ प्रदान करने के लिए अनेक भक्ति आन्दोलन हुए। भक्ति आन्दोलन से सम्बन्धित विभिन्न सन्तों ने पीड़ित जनता को भगवान की सच्चे हृदय से आराधना करने और आडम्बरों को त्यागने के उपदेश दिए और नैतिक गुणों के पालन पर विशेष बल दिया।

प्रश्न 2—मुगलकाल में साहित्य और कला के क्षेत्र में क्या प्रगति हुई ? *(V. Imp.)*

अथवा मुगलकाल में स्थापत्य कला व चित्रकला के क्षेत्र में उन्नति का वर्णन कीजिए।

अथवा "स्थापत्य कला का विकास मुगलकाल की एक उत्कृष्ट विशेषता थी।" समीक्षा कीजिए।

अथवा "मुगलकाल हिन्दी साहित्य के विकास के लिए सर्वश्रेष्ठ युग था।" इस कथन के सन्दर्भ में मुगलकाल में हिन्दी साहित्य के विकास पर प्रकाश डालिए।"

अथवा "मुगलकाल साहित्य के विकास के लिए प्रसिद्ध युग था।" इस कथन की व्याख्या कीजिए। *(1991)*

अथवा "मुगल शासक कला के संरक्षक थे।" सिद्ध कीजिए। *(1994)*

अथवा "मुगल शासक स्थापत्य कला के संरक्षक थे।" इस कथन का विवेचन कीजिए। *(1994)*

अथवा "मुगलों ने अलौकिक जीवधारियों के समान भवन-निर्माण किया और जौहरियों के समान अपनी कृतियों को सजाया।" इस कथन के आलोक में मुगल स्थापत्य की प्रमुख कलाकृतियों का वर्णन कीजिए।

अथवा "जहाँगीर के शासनकाल में ललित-कलाओं, विशेषतः चित्रकला का विकास हुआ।" समीक्षा कीजिए। *(1990, 92, 93, 94)*

अथवा "अकबर के शासनकाल में निर्मित इमारतों में हिन्दू-मुस्लिम वास्तुशैलियों का सम्मिश्रण था।" स्पष्ट कीजिए। *(1996)*

अथवा "शाहजहाँ का शासनकाल स्थापत्य कला का स्वर्ण-युग था।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।

अथवा मुगल शासन स्थापत्य कला का संरक्षक था।" इस कथन का विवेचन कीजिए।

अथवा "शाहजहाँ का शासनकाल स्थापत्य कला की उत्कृष्टता की दृष्टि से स्वर्ण-युग था।" शाहजहाँ द्वारा निर्मित भवनों का वर्णन कीजिए और उनकी उत्तमता का उल्लेख कीजिए। *(1996)*

अथवा मुगलकाल में साहित्य के विकास का विवरण दीजिए। *(1995)*

उत्तर—

मुगलकालीन साहित्य और कला

मुगलकाल में साहित्य और ललित-कलाओं की अभूतपूर्व उन्नति हुई थी। स्थापत्य कला के क्षेत्र में तो इतनी सुन्दर और भव्य इमारतों का निर्माण हुआ था कि यह युग सम्पूर्ण भारत के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

मुगलकाल में साहित्य की उन्नति

औरंगजेब के अतिरिक्त सभी मुगल शासकों के काल में विभिन्न भाषाओं के साहित्य की पर्याप्त उन्नति हुई। सभी मुगल शासकों ने हिन्दी, फारसी और संस्कृत के विभिन्न साहित्यकारों को अपने दरबार में आश्रय प्रदान किया था।

(1) बाबर और हुमायूँ के शासनकाल में साहित्य की उन्नति—बाबर स्वयं एक अच्छा विद्वान था। वह उच्चकोटि का कवि और लेखक भी था। उसने अपनी आत्मकथा 'तुजुक-ए-बाबरी' तुर्की भाषा में लिखी थी। उसकी पुत्री गुलबदन बेगम ने भी 'हुमायूँनामा' नामक ग्रन्थ की रचना की थी।

हुमायूँ भी अपने पिता के समान साहित्य का संरक्षक था। उसके समय में 'मिर्जा हैदर' ने 'तारीख-ए-रशीदी' और जौहर ने 'तजकिरातुल वाक्यात' नामक उत्कृष्ट ग्रन्थों की रचना की थी।

(2) अकबर के शासनकाल में साहित्य की उन्नति—अकबर स्वयं शिक्षित नहीं था, किन्तु साहित्य की उन्नति में उसने निम्नांकित प्रकार से पर्याप्त योगदान दिया था—

(i) अनूदित ग्रन्थ—उसने अनेक भाषाओं के विभिन्न ग्रन्थों (रामायण, अथर्ववेद, लीलावती) का फारसी में अनुवाद करवाया। उसके दरबार में अब्दुर्रहीम खानखाना, बदायूँनी, फैजी जैसे अनेक विद्वान और उच्चकोटि के अनुवादक थे।

(ii) फारसी भाषा में ग्रन्थों की रचना—अकबर के समय फारसी भाषाओं में भी कई अद्वितीय ग्रन्थों की रचना हुई। इस काल के प्रसिद्ध फारसी कवि गिजाली, उर्फी और फैजी थे।

(iii) **ऐतिहासिक ग्रन्थों की रचना**—अकबर के शासनकाल में अकबरनामा, आइने-अकबरी (अबुल फजल), मुन्तखब-उत-तवारीख (अब्दुल कादिर बदायूँनी), तारीफ़-ए-अल्फी (मुल्ला दाउद) एवं तबकात-ए-अकबरी (निजामुद्दीन अहमद) आदि ऐतिहासिक ग्रन्थों की रचना हुई थी।

(iv) **हिन्दी काव्य साहित्य**—अकबर के समकालीन दो हिन्दी कवियों—तुलसीदास और सूरदास का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इनका अकबर के दरबार से कोई सम्बन्ध नहीं था; परन्तु इनके द्वारा रचित हिन्दी काव्य के ग्रन्थ आज भी विश्व की अमूल्य निधियाँ हैं। एक विद्वान ने तो यहाँ तक लिखा है कि—"तुलसीदास के साहित्य के आधार पर ही इस काल को स्वर्ण-युग कहा जा सकता है।"

मुगलकाल में साहित्य की उन्नति

(1) बाबर और हुमायूँ के शासन-काल में साहित्य की उन्नति
(2) अकबर के शासनकाल में साहित्य की उन्नति.
(3) जहाँगीर के शासनकाल में साहित्य की उन्नति
(4) शाहजहाँ के शासनकाल में साहित्य की उन्नति
(5) औरंगजेब के शासनकाल में साहित्य की उन्नति
(6) हिन्दी साहित्य का विकास।

(3) **जहाँगीर के शासनकाल में साहित्य की उन्नति**—जहाँगीर भी साहित्य का विशेष प्रेमी था। उसने स्वयं अपनी आत्मकथा 'तुजुके जहाँगीरी' लिखी थी। उसके समय में ग्यासबेग, नकीब खाँ, अब्दुल हक देहलवी जैसे अनेक विद्वान हुए। इस काल में अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थ भी लिखे गए। इनमें इकबालनामा-ए-जहाँगीरी (मोतमिद खाँ) विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

(4) **शाहजहाँ के शासनकाल में साहित्य की उन्नति**—शाहजहाँ एक शिक्षित एवं विद्वान सम्राट था। वह विद्वानों को पर्याप्त सम्मान देता था। इसके काल में अनेक ग्रन्थों के अनुवाद, मौलिक ऐतिहासिक ग्रन्थों की रचना तथा विविध प्रकार के साहित्य की रचना हुई। इस काल के प्रमुख ग्रन्थों में बादशाहनामा (अब्दुल हमीद लाहौरी), बादशाहनामा (अमीन काजवीनी) और शाहजहाँनामा (इनायत खाँ) विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। शाहजहाँ का पुत्र दारा शिकोह प्रकाण्ड विद्वान था। उसने भी अनेक उत्कृष्ट ग्रन्थों की रचना की थी।

(5) **औरंगजेब के शासनकाल में साहित्य की उन्नति**—औरंगजेब फारसी का विद्वान था, किन्तु उसने साहित्य की अभिवृद्धि की ओर कोई रुचि नहीं दिखाई तथापि कुछ लोगों ने उसके समय में लेखन कार्य अवश्य किया। औरंगजेब के काल के ऐतिहासिक ग्रन्थों में फतवा-ए-आलमगीरी, मुन्तखब-उल-लुबाब (खफी खाँ), मासीरे आलमगीरी, खुलासत-उत-तवारीख विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

(6) **हिन्दी साहित्य का विकास**—मुगलकाल में हिन्दी साहित्य की भी पर्याप्त उन्नति हुई। विशेषकर भक्ति आन्दोलन के परिणामस्वरूप हिन्दी साहित्य प्रगति की ओर अग्रसर हुआ। 1540 ई० में हिन्दी के महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ पद्मावत की रचना मलिक मुहम्मद जायसी के कर-कमलों से हुई। इसमें जायसी ने शृंगार रस में मेवाड़ की रानी पद्मिनी का नखशिख वर्णन किया है। बीरबल, अब्दुर्रहीम खानखाना आदि विद्वान एवं कवियों ने भी हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में अभिवृद्धि की।

मुगलकाल में ही भक्ति आन्दोलन हुआ, जिसके कारण सूर, तुलसी, रसखान आदि कवियों ने धर्म और समाज सुधार पर आधारित विभिन्न ग्रन्थों की रचना की। तुलसी की रचना श्रीरामचरितमानस आज भी श्रद्धा और आदर से देखी जाती है। केशव नामक विद्वान कवि ने हिन्दी भाषा में रामचन्द्रिका, कविप्रिया, रसिकप्रिया आदि विशिष्ट ग्रन्थों की रचना की। बिहारी ने बिहारी सतसई लिखी, जो हिन्दी साहित्य में अपना अद्वितीय स्थान रखती है।

साहित्य के क्षेत्र में; मुगलकाल की उपर्युक्त प्रगति को देखते हुए यह कथन सर्वथा उपयुक्त ही प्रतीत होता है कि, "मुगलकाल हिन्दी साहित्य के विकास के लिए सर्वश्रेष्ठ तथा प्रसिद्ध युग था।"

मुगलकाल में कला की उन्नति

औरंगजेब के अतिरिक्त समस्त मुगल बादशाह कला-प्रेमी थे, जिसके कारण मुगलकाल में कलाओं की पर्याप्त उन्नति हुई। औरंगजेब ही एक ऐसा मुगल शासक था जिसने कला की उन्नति में सहयोग देना

तो दूर रहा, साहित्य एवं कला पर प्रतिबन्ध लगा रखा था। मुगल शासकों के काल में हुई कलात्मक उन्नति का विवरण इस प्रकार है—

(1) बाबर के काल में स्थापत्य कला, चित्रकला एवं संगीत कला—बाबर को स्थापत्य कला से विशेष प्रेम था। उसने आगरा, सीकरी, बयाना, ग्वालियर, अलीगढ़, धौलपुर आदि स्थानों पर अनेक निर्माण कार्य करवाए। इनमें से केवल दो छोटी मसजिदें एक पानीपत में और एक सम्भल में, आज भी विद्यमान हैं।

मुगलकाल में कला की उन्नति
(1) बाबर के काल में स्थापत्य कला, चित्रकला एवं संगीन कला
(2) हुमायूँ के शासनकाल में स्थापत्य कला, चित्रकला एवं संगीत कला
(3) अकबर के शासनकाल में स्थापत्य कला, चित्रकला एवं संगीत कला
(4) जहाँगीर के शासनकाल में स्थापत्य कला, चित्रकला एवं संगीत कला
(5) शाहजहाँ के शासनकाल में स्थापत्य कला, चित्रकला एवं संगीत कला
(6) औरंगजेब के शासनकाल में स्थापत्य कला, चित्रकला एवं संगीत कला।

बाबर चित्रकला का भी प्रेमी था। उसने हिरात में स्वयं फारसी चित्रकला का ज्ञान अर्जित किया। उसने अपनी आत्मकथा 'तुजुक-ए-बाबरी' भी चित्रित करवाई थी।

बाबर को संगीत कला का भी अच्छा ज्ञान था। उसने संगीत कला पर एक पुस्तक भी लिखी थी।

(2) हुमायूँ के शासनकाल में स्थापत्य कला, चित्रकला एवं संगीत कला—हुमायूँ की स्थापत्य कला के प्रति रुचि तो अवश्य थी, किन्तु वह सम्पूर्ण जीवन युद्धों में व्यस्त रहा। इसलिए उसके काल में निर्माण कार्य अधिक नहीं हुआ। फिर भी कुछ मसजिदों का निर्माण उसने अवश्य कराया, जिसमें एक मसजिद फतेहाबाद में आज भी है, जो कला की दृष्टि से प्रशंसनीय है।

हुमायूँ की स्थापत्य कला की तुलना में चित्रकला के प्रति अधिक रुचि थी। संयोगवश उसे फारस में इस कला के अध्ययन का अवसर भी प्राप्त हुआ। जब वह पुनः भारत आया तो अपने साथ दो फारसी चित्रकारों (मीर सैयद अली एवं ख्वाजा अब्दुल समद) को अपने साथ लेकर आया था। इनसे हुमायूँ और कालान्तर में अकबर ने चित्रकला सीखी थी।

हुमायूँ को संगीत कला से भी प्रेम था। वह बड़े प्रेम से लोगों से संगीत सुनता था। उसने अपने दरबार में अनेक संगीतज्ञों को आश्रय दे रखा था।

(3) अकबर के शासनकाल में स्थापत्य कला *(1991)*, चित्रकला एवं संगीत कला—अकबर वास्तुकला का विशेष प्रेमी था। उसके काल में इस कला ने विशेष उन्नति की। उसका शासनकाल समन्वय का काल था, इसीलिए उसने फारसी एवं भारतीय कला-शैलियों को मिश्रित करके अनेक भव्य भवनों का निर्माण करवाया। यही कारण है कि फतेहपुर सीकरी की बहुत-सी इमारतों को देखने से यह सन्देह होता है कि इनका निर्माण अकबर ने नहीं, वरन् किसी राजपूत शासक ने करवाया है। अकबर ने अपने पिता हुमायूँ का एक मकबरा दिल्ली में बनवाया था। अकबर ने फतेहपुर सीकरी में भी अनेक सुन्दर, मनोहारी भवनों का निर्माण करवाया। स्मिथ ने लिखा है कि, "फतेहपुर सीकरी के समान न तो इससे पहले कुछ बन सका और न उसके बाद कुछ बनना सम्भव है। वह पत्थरों में ढाला गया एक रोमांस है।" उसके द्वारा निर्मित करवाए गए स्मारकों में जोधाबाई का महल, बुलन्द दरवाजा, दीवान-ए-खास, पंचमहल, जामा मसजिद तथा इलाहाबाद और आगरा के दुर्ग आदि प्रमुख हैं।

अकबर की चित्रकला में भी पर्याप्त रुचि थी। इसके शासनकाल में इस कला में एक विशेष परिवर्तन यह हुआ कि इस कला की शैली पूर्णतया भारतीय हो गई। दास्ताने हमीर हमजा, चंगेजनामा, रामायण, कालियादमन, जफरनामा, रज्मनामा आदि ग्रन्थों, जो पटना की खुदाबख्श लाइब्रेरी में आज भी सुरक्षित हैं, की चित्रकारी प्रशंसनीय है। फतेहपुर सीकरी के महलों पर की गई चित्रकारी भी देखने योग्य है। उसने ख्वाजा अब्दुल समद की अध्यक्षता में एक चित्रकला विभाग भी प्रारम्भ किया था। अकबर का कहना था, "बहुत से लोग चित्रों से घृणा करते हैं, किन्तु मैं ऐसे लोगों को नापसन्द करता हूँ।" उसके दरबार में फारसी और भारतीय शैली में पारंगत अनेक उच्चकोटि के चित्रकार रहते थे।

अकबर को संगीत कला से भी पर्याप्त प्रेम था। उसने अपने शौक को पूरा करने के लिए देश-विदेश के गायक कलाकारों को अपने राज्य में एकत्र किया था। सैकड़ों वर्ष व्यतीत हो जाने पर आज भी उसके दरबार के प्रख्यात संगीतकार तानसेन का नाम लोग जानते हैं। वह अकबर के दरबार का विश्व-प्रसिद्ध गायक कलाकार था।

(4) जहाँगीर के शासनकाल में स्थापत्य कला, चित्रकला एवं संगीत कला—जहाँगीर को वास्तुकला से विशेष प्रेम नहीं था। जहाँगीर द्वारा निर्मित केवल दो महत्त्वपूर्ण इमारतें—सिकन्दरा में अकबर का मकबरा एवं सफेद संगमरमर का एतमातुद्दौला (नूरजहाँ के पिता) का मकबरा ही प्राप्त होती हैं।

जहाँगीर को चित्रकला से विशेष प्रेम था और वह चित्रकला का ज्ञाता भी था। जहाँगीर स्वयं **तुजुके जहाँगीरी** ग्रन्थ में लिखता है कि यदि एक चित्र मेरे दरबार के दो चित्रकारों द्वारा बनाया गया हो, तो मैं यह बता सकता हूँ कि अमुक चित्रकार ने मूल चेहरा और अमुक चित्रकार ने आँखें एवं भौंहें बनाई हैं। उसके काल में आगा, रजा मुराद आदि प्रसिद्ध चित्रकार थे। जहाँगीर के काल की चित्रकारी में देश-विदेश की कला-शैलियों के दर्शन होते हैं। उसके काल में अनेक हिन्दू चित्रकार भी प्रसिद्ध थे। इस प्रकार, जहाँगीर के शासनकाल में ललित-कलाओं विशेषतः चित्रकला का विकास हुआ।

जहाँगीर संगीत-प्रेमी भी था। उसके दरबार में छह प्रसिद्ध गायक कलाकारों को आश्रय मिला हुआ था, जो सम्राट एवं राज-परिवार का मनोरंजन किया करते थे।

डॉ० ए० एल० श्रीवास्तव के अनुसार, "जहाँगीर के शासनकाल में चित्रकला अपनी पराकाष्ठा के शिखर पर पहुँच गई थी।" ("Painting reached its climax under Jahangir who was the soul and the spirit of the art.")

(5) शाहजहाँ के शासनकाल में स्थापत्य कला, चित्रकला एवं संगीत कला—मुगल सम्राटों में शाहजहाँ स्थापत्य कला का सबसे अधिक प्रेमी था। उसके शासनकाल में इस कला की उन्नति पराकाष्ठा पर पहुँच गई थी। उसके द्वारा निर्मित सर्वश्रेष्ठ एवं विश्व-प्रसिद्ध कृति आगरा का ताजमहल है। ताजमहल अपने अद्वितीय सौन्दर्य के लिए सम्पूर्ण विश्व में प्रख्यात है। इसके अतिरिक्त, शाहजहाँ ने दिल्ली का लाल किला भी बनवाया था। इसके दीवान-ए-आम एवं दीवान-ए-खास सुन्दर चित्रकारी एवं नक्काशी से परिपूर्ण हैं। इसके अतिरिक्त उसने दिल्ली के लाल किले में एक करोड़ रुपये की लागत से अपना 'मयूर-सिंहासन' (तख्ते-ताऊस) बनवाया था। शाहजहाँ की आगरा की मोती-मसजिद भी स्थापत्य कला की उत्कृष्टता का एक अद्‌भुत नमूना है। शाहजहाँ ने ही दिल्ली की विशाल जामा-मसजिद भी बनवाई थी।

वास्तव में, शाहजहाँ का शासनकाल मुगलकाल की स्थापत्य कला का स्वर्ण-युग था। अलंकरण तथा सज्जा में अकबर की इमारतें बहुत पीछे रह जाती हैं। जहाँ तक सजावट का प्रश्न है, उसमें आगरा की मोती मसजिद से श्रेष्ठ कोई मसजिद नहीं है। दिल्ली की जामा-मसजिद भी स्थापत्य कला का सुन्दर नमूना है। ताजमहल की गणना तो विश्व के आश्चर्यों में की जाती है।

शाहजहाँ की चित्रकला में रुचि नहीं थी। अतः उसके शासनकाल में चित्रकला की विशेष प्रगति नहीं हुई। शाहजहाँ संगीत का प्रेमी था। उसके शासनकाल में संगीत के जो समारोह आयोजित होते थे, उनकी **टैवर्नियर** नामक फ्रांसीसी ने बहुत प्रशंसा की है।

वी० ए० स्मिथ ने लिखा है, "शाहजहाँ के शासनकाल में न केवल स्थापत्य कला, वरन् विभिन्न कलाओं के क्षेत्र में उच्चकोटि की कलाकृतियों का निर्माण हुआ था।"

(6) औरंगजेब के शासनकाल में स्थापत्य कला, संगीत कला एवं चित्रकला—औरंगजेब ने बहुत कम इमारतें बनवाईं, क्योंकि उसके पूर्वजों के द्वारा बनवाए हुए दुर्ग, महल और मसजिद पर्याप्त संख्या में विद्यमान थे। उसने औरंगाबाद के पास अपनी पत्नी रबिया-उद-दौरानी का मकबरा बनवाया था। उसने दिल्ली की जामा-मसजिद की तरह की एक मसजिद लाहौर में भी बनवाई, जिसको बादशाही मसजिद कहते हैं। इसके अतिरिक्त उसने दिल्ली के लाल किले में एक संगमरमर की मसजिद बनवाई। औरंगजेब ने संगीतज्ञों को दरबार से निकाल दिया था। ऐसा कहा जाता है कि उसके शासन काल में संगीतज्ञों ने संगीत

की एक अर्थी निकाली। औरंगजेब ने उनसे इसका कारण पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया कि, "संगीत को राज्याश्रय न मिलने के कारण उसकी मृत्यु हो गई।" इस पर औरंगजेब ने कहा, "इसको इतना गहरा गाड़ना जिससे वह पुनःजीवित न हो सके।" इस प्रकार, उसके शासनकाल में संगीत की प्रायः कब्र ही खोद दी गई। लेकिन इस युग के प्रान्तीय राजाओं ने साहित्य एवं कला के विकास में सराहनीय कार्य किया।

अतः निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि मुगलकाल; ललित-कलाओं की उन्नति के दृष्टिकोण से एक महान युग था, विशेष रूप से जहाँगीर और शाहजहाँ के काल में यह स्वर्ण-युग से कम न था। अकबर के समय में सभी प्रकार के साहित्यों की उन्नति के साथ-साथ स्थापत्य कला और चित्रकारी के क्षेत्र में भी बहुत ही सराहनीय कार्य हुए थे। विशेषकर स्थापत्य कला का विकास मुगलकाल की एक उत्कृष्ट विशेषता थी। अतः इस काल में स्थापत्य कला की उत्कृष्टता के सन्दर्भ में कहे गए ये कथन पूर्णतया उपयुक्त ही हैं कि, "मुगल शासन स्थापत्य कला का संरक्षक था।" अथवा "मुगलों ने अलौकिक जीवधारियों के समान भवन-निर्माण किया और जौहरियों के समान अपनी कृतियों को सजाया।"

प्रश्न 3— मुगल वास्तुकला की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। *(1997)*

उत्तर—

मुगलकालीन वास्तुकला (स्थापत्य कला) की प्रमुख विशेषताएँ

मुगलकाल में वास्तुकला (स्थापत्य-कला) का अभूतपूर्व विकास हुआ। औरंगजेब के अतिरिक्त शेष समस्त मुगल सम्राटों ने वास्तुकला को विशेष प्रोत्साहन दिया। वास्तव में मुगलकालीन वास्तुकला ने भारतीय स्थापत्य कला के इतिहास में एक नवीन युग का प्रादुर्भाव किया। मुगल वास्तुकला की प्रमुख विशेषताओं का संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है—

(1) मुगल वास्तुकला में विशाल गोल गुम्बद, ऊँची मीनारें, मेहराव, पतले स्तम्भ और खुले भवनों का निर्माण किया गया है।

(2) मुगल वास्तुकला पर आधारित इमारतों में प्रारम्भ में लाल पत्थर का प्रयोग किया गया तथा इमारतों को विशाल एवं दृढ़ बनाने पर ध्यान दिया गया।

(3) इस वास्तुकला के अन्तर्गत शाहजहाँ के शासनकाल से सफेद संगमरमर के पत्थरों का प्रयोग प्रारम्भ हुआ।

(4) मुगलकालीन इमारतों में अलंकरण का बाहुल्य है। इन इमारतों को नक्काशी, सोने-चाँदी के पानी के प्रयोग तथा रंगीन बेल-बूटों आदि के द्वारा अधिकाधिक सुन्दर बनाने का प्रयास किया गया है।

(5) यह विदेशी वास्तुकला जिसे हम 'मुगल वास्तुकला' अथवा 'इस्लामी स्थापत्य कला' कहते हैं, उत्तर-पश्चिम से आने वाले मुस्लिम आक्रमणकारियों के साथ भारत आई थी।

(6) इस वास्तुकला ने बाबर के समय तक भारतीय वास्तुकला पर कोई विशेष प्रभाव नहीं डाला था।

(7) मुगलकाल में इस्लामी स्थापत्यकला ने भारतीय वास्तुकला को व्यापक रूप से प्रभावित किया।

(8) वस्तुतः मुगल वास्तुकला न तो पूर्णतः विदेशी कला-शैली पर आधारित थी और न ही पूर्णतः भारतीय कला-शैली पर। यह विदेशी एवं भारतीय कला-शैलियों का समन्वित रूप थी। इस सन्दर्भ में विभिन्न विद्वानों ने अपने विचार व्यक्त किए हैं, परन्तु अधिकांश विद्वान मुगल वास्तुकला को विदेशी एवं भारतीय कला का मिश्रित रूप ही स्वीकारते हैं।

फर्ग्युसन आदि अनेक विद्वानों का मत है कि मुगलों की वास्तुकला पूर्णतः विदेशी है, परन्तु हेवेल आदि अनेक विद्वान इस कथन से सहमत नहीं हैं। उनका कथन है कि मुगल वास्तुकला में देशी और विदेशी शैलियों का सुन्दर समन्वय हुआ है। उनका यह मत भी है कि भारत में विदेशी तत्त्वों को आत्मसात करने की विलक्षण शक्ति रही है। यह सत्य है कि विदेशी शैली ने भारतीय शैली को प्रभावित किया, परन्तु यह स्वीकार करना पूर्णतः असंगत है कि भारतीय वास्तुकारों को समस्त प्रेरणा विदेशी शैली से प्राप्त हुई।

सर जॉन मार्शल के अनुसार भी, भारत जैसे विशाल तथा विषमताओं वाले देश में यह नहीं कहा जा सकता

कि भवन-निर्माण कला किसी एक ही विशिष्ट देशव्यापी शैली को लेकर स्थिर रही। विभिन्न स्थानों पर विभिन्न शैलियों का प्रयोग किया गया।

बाबर के पश्चात् भारतीय वास्तुकला पर ईरानी प्रभाव बढ़ गया और अकबर के शासनकाल तक बना रहा। परन्तु अकबर की प्रतिभा ने ईरानी आदर्श को भारतीय कला की परम्पराओं के हित में अपना लिया। अकबर के पश्चात् भारतीय तथा इस्लामी कला-शैली में इतना सुन्दर सम्मिश्रण हो गया कि भारतीय वास्तुकला के स्वतन्त्र अस्तित्व की सरलता से पहचान कर पाना कठिन हो गया।

इस प्रकार मुगल वास्तुकला इस्लामी एवं भारतीय कला के सम्मिश्रण का परिणाम थी। विभिन्न विशेषताओं से युक्त इस वास्तुकला के आधार पर मुगलकाल में ऐसी अनेक इमारतों का निर्माण हुआ, जो भारत की अमूल्य एवं अनुपम विरासत के रूप में, सम्पूर्ण विश्व को अपनी ओर आकर्षित करती रही हैं।

प्रश्न 4—शाहजहाँ द्वारा निर्मित इमारतों का उल्लेख कीजिए। *(1999)*

उत्तर—

शाहजहाँ द्वारा निर्मित इमारतें

शाहजहाँ के काल में मुगल स्थापत्य कला अपनी पराकाष्ठा पर पहुँच गई थी। विद्वानों का मत है कि शाहजहाँ का शासनकाल मुगल स्थापत्य कला का स्वर्ण-युग था। शाहजहाँ द्वारा निर्मित इमारतों का विवरण निम्न प्रकार है—

(1) आगरा के किले की इमारतें—शाहजहाँ ने अकबर द्वारा निर्मित आगरा के किले की अनेक इमारतों को तुड़वाकर उनके स्थान पर संगमरमर की इमारतें बनवाईं। उसने इन इमारतों में प्रयोग आने वाले सफेद संगमरमर को जयपुर राज्य की मकराना पहाड़ियों से मंगवाया था। शाहजहाँ ने किले में निम्नलिखित इमारतें बनवाईं—

(i) दीवान-ए-आम—सन् 1624 ई० में शाहजहाँ ने इसका निर्माण करवाया। इसका हाल तीन ओर से खुला हुआ है। इस हाल की लम्बाई 201 फीट और चौड़ाई 67 फीट है। दोहरे खम्भों की तीन पंक्तियों पर इसकी छत टिकी हुई है। इन खम्बों की संख्या 40 है। चारों ओर के मध्य में एक गैलरी है। यह इमारत सफेद संगमरमर की बनी हुई है और इसमें पियेट्रे ड्योरा (इस कलात्मक शैली में रंगीन पत्थर काटकर दीवार में जड़े जाते हैं और हीरे-जवाहरातों को भी इसी प्रकार जड़ा जाता है) का काम है।

(ii) दीवान-ए-खास—किले में यमुना नदी की ओर एक ऊँची उठी हुई छत पर दीवान-ए-खास बना हुआ है। इसमें दो विशाल हाल हैं जो संगमरमर के गलियारे से संयुक्त हैं। ये हाल स्थापत्य कला के सुन्दर एवं उत्कृष्ट नमूने हैं। इनके खम्भों और दरवाजों पर अति सुन्दर कटाव, नक्काशी तथा सजावट हुई है। इनके ऊपर फूल-पत्तियों की चित्रकारी है, जहाँ पहले जड़ाई का काम सोने से ही हो रहा था। दीवान-ए-खास के सामने एक विशाल बरामदा है, जिसमें संगमरमर का एक विशाल चबूतरा है। इस पर बैठकर शाहजहाँ जन-अदालत को चलाता था।

(iii) मच्छी भवन—यह लाल पत्थर का बना हुआ एक विशाल भवन है, जो दीवान-ए-आम के पीछे है। इसमें एक विशाल बरामदा है, जिसकी लम्बाई 180 फीट और चौड़ाई 165 फीट है। इसके चारों कोनों पर सुन्दर नक्काशीयुक्त मीनारें हैं। बरामदे में संगमरमर के अनेक तालाब हैं। अब यह भवन जीर्ण-शीर्ण अवस्था में है।

(iv) शीश महल तथा खास महल—शीशमहल, दीवान-ए-खास के नीचे स्थित है। इसकी दीवारों व दरवाजों पर काँच, सोने तथा रंगीन पत्थरों की जड़ाई है। इसमें स्नान के लिए दो जलाशय भी बने हुए हैं।

दीवान-ए-खास से लगा हुआ ऊँचाई पर यमुना की ओर खास महल है, जो शाही महल था। यह भी लाल पत्थर की बनी हुई सुन्दर इमारत है। इसका ऊपरी भाग कमरे तथा गलियारे सफेद संगमरमर के बने हुए हैं तथा इसकी दीवारों पर बहुमूल्य पत्थर जड़े हुए हैं। यमुना की तरफ इसमें दो सुनहरी बुर्जियाँ हैं जिनमें सुन्दर फूलों की सजावट तथा नक्काशी की गई है। खास महल के सामने 'अंगूरी बाग' है जिसके तीनों ओर विशाल कमरे हैं। यह महल मुगलों का हरम था। चौथी ओर संगमरमर का एक विशाल पवेलियन है। इस बाग में अनेक फव्वारे भी बने हैं।

(v) झरोखा दर्शन एवं मुसम्मन बुर्ज—खास महल और अठपहलू मीनार के मध्य में सफेद संगमरमर का झरोखा दर्शन बना हुआ है। यहाँ से मुगल सम्राट जनता को दर्शन देता था तथा यहीं जानवरों की लड़ाई देखा करता था।

मुसम्मन बुर्ज प्रारम्भ में शाह बुर्ज के नाम से प्रसिद्ध थी। यह सफेद संगमरमर का एक सुन्दर भवन है। यह चार मंजिली इमारत है। इसके मध्य में गुलाब की आकृति का एक हौज है, जिसके सामने एक झरना बना हुआ है।

(vi) नगीना और मोती मसजिद—मच्छी भवन के उत्तरी-पश्चिमी कोने पर नगीना मसजिद बनी हुई है। यह सफेद संगमरमर की बनी है लेकिन छोटी है। इस मसजिद में बेगमें नमाज पढ़ती थीं। इसके बीचोंबीच एक सुन्दर फूलों का बाग है।

मोती मसजिद आगरे की सर्वश्रेष्ठ इमारत है। यह सन् 1651 ई० में बनकर तैयार हुई थी। यह एक ऊँची छत पर बनाई गई है। **पर्सी ब्राउन** के अनुसार, "मोती मसजिद में सभी इमारती सामान उत्तम लगा है और वह बड़ी उत्तम कारीगरी के साथ बनी है। अतः यह मध्यकालीन स्थापत्य कला का एक उत्कृष्ट नमूना बन गई है।" इसमें एक सुन्दर फव्वारा तथा धूप घड़ी है। इसके निर्माण में तीस लाख रुपए व्यय हुए थे।

(2) दिल्ली का लाल किला—सन् 1638 ई० में शाहजहाँ ने दिल्ली में एक किला बनवाया जो लाल किले के नाम से प्रसिद्ध है। यह उत्तर से दक्षिण की ओर विस्तृत है और इसकी लम्बाई 3100 फीट तथा चौड़ाई 1650 फीट है। इसमें दो मुख्य दरवाजे हैं। एक पश्चिमी दीवार के मध्य में और दूसरा दक्षिण दीवार के मध्य में है। पहला द्वार मुख्य एवं सार्वजनिक लोगों के लिए था तथा दूसरा द्वार व्यक्तिगत प्रवेश के लिए था। पश्चिमी द्वार (लाहौर गेट) चौड़े वृत्ताकार खण्ड का है। किले के आन्तरिक भाग की लम्बाई 1600 फीट और चौड़ाई 1150 फीट है। इसके अन्दर शाही एवं व्यक्तिगत भवन तथा नौकरों के आवास-गृह आदि बने हुए हैं, जो उस समय की स्थापत्य कला की उत्तमता को प्रकट करते हैं।

लाल किले में निम्नलिखित मुख्य इमारतें हैं—

(i) दीवान-ए-आम—यह 150 फीट लम्बी और 70 फीट चौड़ी पत्थर की भव्य इमारत है। यह इमारत आम जनता के लिए थी, जिसमें सम्राट बैठकर आम जनता की फरियाद सुनता था। इसके बाहरी भाग में नौ मेहराबें हैं जो दोहरे खम्बे पर टिकी हुई हैं। तीन ओर का रास्ता दाँतेदार डाटों से बना है जो खम्भों पर आधारित है। इन खम्भों की कुल संख्या 40 है। इनके आन्तरिक भाग में पीछे की दीवार में एक मेहराबदार 'ताख' है जिसमें शाहजहाँ मयूर आसन पर बैठकर न्याय करता था। इस ताख की दीवार में सिंहासन के ऊपर अत्यन्त सुन्दर एवं 'पियेट्रे ड्योरा' का काम है।

(ii) दीवान-ए-खास—यह इमारत अति सुन्दर एवं भव्य है। दीवान-ए-खास में योजनाबद्ध एक खुली इमारत है। इसमें एक विशाल हॉल है, जिसकी लम्बाई 90 फीट तथा चौड़ाई 66 फीट है। इसके बाहरी भाग में 5 बराबर के वृत्तखण्डनुमा मेहराबदार रास्ते हैं तथा दूसरी ओर कुछ छोटे हैं जिनसे पर्याप्त हवा आती है। आन्तरिक भाग 15 चौड़ी विजयमालाओं में विभाजित है। इनको दाँतेदार डाटें, जो कि संगमरमर के वर्गाकार सेतुबन्धों पर आधारित हैं, विभाजित करती हैं। इसका फ़र्श सफेद संगमरमर का बना है, जिस पर फूलों से सजाए हुए सेतुबन्धों का प्रतिबिम्ब दिखलाई पड़ता है। पंक्तियों से भरपूर मेहराब स्वर्ण तथा रंगों से भरपूर हैं।

(iii) रंग महल—यह इमारत 153 फीट लम्बी तथा 69 फीट चौड़ी है। इसमें एक मुख्य हॉल तथा इसके चारों ओर के कोनों पर छोटे-छोटे कमरे हैं। यह हाल 15 विजयमालाओं में अलंकृत सेतुबन्धों द्वारा विभाजित किया गया है जो वर्गाकार 20 फीट है। यह शाहजहाँ का हरम था।

(iv) नहर-ए-बहिश्त—इस किले की प्रमुख विशेषता 'नहर-ए-बहिश्त' में है, जिसके द्वारा किले में पानी आता था। यह एक फाटक के द्वारा किले में प्रवेश करती थी, जो शाह बुर्ज के नीचे स्थित है। इससे बागों, फव्वारों, हम्माम आदि सभी को जल मिलता था। परन्तु इसका मुख्य उद्देश्य नहरों द्वारा पानी सफेद संगमरमर के फर्श के नीचे ले जाना था ताकि महल जलाशय महल में परिवर्तित हो जाए। इस महल के

फव्वारों में इसी नहर से पानी जाता था। अद्भुत स्थापत्य कला का उदाहरण इस रंग महल के फव्वारे में दिखाई देता है। रंग महल के मध्य में फर्श के अन्दर एक चपटा जलाशय है जिसके मध्य में एक उठे हुए चाँदी के गुलाब द्वारा सुगन्धित पानी निकला करता था। इस जलाशय का रूप भी विशाल कमल के समान है, जिसकी नाजुक पंक्तियाँ फ़ैली हुई हैं। वास्तव में यह उस समय की स्थापत्य कला का एक अद्भुत नमूना है।

(3) ताजमहल—आगरा का ताजमहल शाहजहाँ की सर्वोत्कृष्ट इमारत है और संसार की सर्वश्रेष्ठ इमारतों में इसकी गिनती की जाती है। कुछ समय पूर्व तक इसको विश्व के आठ आश्चर्यों में गिना जाता था। इसका निर्माण शाहजहाँ ने 1631 ई० में प्रारम्भ करवाया था और 1653 ई० में यह बनकर तैयार हुआ। इसके निर्माण पर साढ़े चार करोड़ से भी अधिक रुपया व्यय हुआ।

ताजमहल यमुना नदी के दाहिने किनारे पर स्थित है। इसे शाहजहाँ ने अपनी पत्नी अर्जुमंद-ए-बानू बेगम (मुमताज) की स्मृति में बनवाया था। स्थापत्य कला की दृष्टि से ताजमहल एक अनुपम कृति है। इसमें स्थापत्य कला सम्बन्धी विशेषता चबूतरे के ऊपर सफेद संगमरमर के बने हुए मकबरे में दृष्टिगोचर होती है। इसके पश्चिम और पूर्व में मसजिद जैसी इमारत आनुपातिक पद्धति पर बनी है, जो 'मेहमान खाना' कही जाती है। यह मकबरा 186 फीट वर्गाकार है और 108 फीट इसकी ऊँचाई है। इसके चारों कोनों पर सफेद संगमरमर की छतरियाँ हैं। मध्य में कुब्बे वाला गुम्बद है। चबूतरे के चारों ओर सफेद संगमरमर की तिमंजिली 137 फीट ऊँची मीनारें हैं। सम्पूर्ण इमारत की विशेषता इसके गुम्बद में है। इसकी बनावट जेरुसलम में बने पत्थर के गुम्बद के समान है। इसका ऊपरी भाग फारसी और निचला भाग हिन्दू कला का प्रतीक है।

(4) दिल्ली की जामा मसजिद—शाहजहाँ ने दिल्ली के लाल किले के निकट ही शाही परिवार एवं जनता के लिए एक जामा-मसजिद का निर्माण करवाया था। यह उठी हुई नींव पर निर्मित है और इसमें तीन विशाल दरवाजे हैं, जिनके ऊपर बुर्ज हैं। इन दरवाजों तक पहुँचने के लिए सीढ़ियाँ बनी हुई हैं। उत्तरी तथा दक्षिणी दरवाजों से जनता का प्रवेश होता था तथा पूर्वी दरवाजे से शाही परिवार के सदस्य जुलूस के रूप में प्रविष्ट होते थे। पूजास्थल के सामने आयताकार 325 फीट का दालान है। इसके मध्य में हाथ-पैर धोने के लिए जलाशय है। पूजास्थल 200 फीट लम्बा और 90 फीट चौड़ा है। इसके दोनों कोनों पर लम्बी चार मंजिली मीनारें हैं। इमारत में ऊपरी भाग में तीन विशाल कुब्बे वाले गुम्बद सफेद संगमरमर के बने हुए हैं। अन्दर लहरियेदार मेहराबनुमा दरवाजें हैं, जो सेतुबन्धों पर आधारित हैं। सम्पूर्ण इमारत एक भव्य एवं सुन्दर कृति है।

(5) आगरा की मसजिद—सन 1648 ई० में शाहजहाँ ने अपनी पुत्री जहाँआरा बेगम के सम्मान में एक मसजिद का निर्माण करवाया था। इस मसजिद का क्षेत्रफल दिल्ली की जामा मसजिद से आधा है। स्थापत्य कला की दृष्टि से यह उल्लेखनीय इमारत नहीं है, फिर भी यह एक भव्य इमारत है। इसकी डाटें ट्यूटरकालीन डाटों के समान हैं। इसकी मीनारें लम्बी न होने के कारण अप्रभावशाली हैं। इसकी विशेषता मेहराबों में है जो सामने की ओर चौड़ा स्थान छोड़ देने के बाद बनाई गई हैं। इसकी दीवारों के ऊपर छतरियाँ हैं। मसजिद के मध्य का सहन, बीच का जलाशय तथा उसके चारों कोनों की छतरियाँ स्थापत्य कला की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण हैं।

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—मुगलकाल के ऐतिहासिक ग्रन्थों व उनके लेखकों के नाम लिखिए।

अथवा **मुगलकाल में रचित प्रमुख इतिहास ग्रन्थों की जानकारी दीजिए।** *(1996)*

उत्तर—मुगलकाल में अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थों की रचना हुई। इन ग्रन्थों के आधार पर हमें मुगलकाल की राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक दशा की पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है,

इस प्रकार के ग्रन्थों की रचना अधिकांशतः फारसी भाषा में हुई है। मुगलकाल के प्रमुख ऐतिहासिक ग्रन्थों व उनके लेखकों के नाम निम्नलिखित हैं—

ग्रन्थ	लेखक
(1) तुजुक-ए-बाबरी	जहीरुद्दीन बाबर
(2) हुमायूँनामा	गुलबदन बेगम (हुमायूँ की बहिन)
(3) तजकिरात-उल वाक्यात	जौहर अफतावची
(4) तारीखे शेरशाही (तौहफे अकबरशाही)	अब्बास सरवानी
(5) अकबरनामा	अबुल फज़ल
(6) आइने अकबरी	अबुल फजल
(7) तबकाते अकबरी	निजामुद्दीन अहमद
(8) मुन्तखब-उत-तवारीख	अब्दुल कादिर बदायूँनी
(9) तुजुके जहाँगीरी	सम्राट जहाँगीर
(10) इकबालनामा-ए-जहाँगीरी	मौतमिद खाँ
(11) पादशाहनामा	अब्दुल हमीद लाहौरी
(12) बादशाहनामा	अमीन काजवीनी
(13) मुन्तखब-उल-लुवाब	खफी खाँ
(14) आलमगीरनामा	मौहम्मद नाजिम
(15) शाहजहाँनामा	इनायत खाँ
(16) फतुहात-ए-आलमगीरी	ईश्वरदास नागर

प्रश्न 2—मुगलकाल की प्रमुख ऐतिहासिक इमारतों व उनके निर्माताओं के नाम लिखिए।

अथवा **मुगल साम्राज्य की किन्हीं चार इमारतों का उल्लेख कीजिए।** *(1992)*

उत्तर—मुगलकाल की प्रमुख ऐतिहासिक इमारतों व उनके निर्माताओं के नाम निम्न प्रकार हैं—

निर्माता	इमारतों के नाम
(1) बाबर	(i) पानीपत की काबुली मसजिद
	(ii) सम्भल की जामा मसजिद
(2) हुमायूँ	(i) दीने पनाह
	(ii) हुमायूँ का मकबरा
(3) अकबर	(i) आगरा का लाल किला
	(ii) अकबरी महल
	(iii) जहाँगीरी महल
	(iv) फतेहपुर सीकरी की इमारतें
	(v) बुलन्द दरवाजा
	(vi) जोधाबाई का महल, पंचमहल
(4) जहाँगीर	(i) अकबर का सिकन्दरा (आगरा) का मकबरा
	(ii) एतमातुद्दौला का मकबरा
(5) शाहजहाँ	(i) आगरा के किले की कुछ इमारतें
	(ii) मोती मसजिद
	(iii) ताजमहल
	(iv) दिल्ली की जामा-मसजिद
	(v) दिल्ली का लाल किला
(6) औरंगजेब	(i) लाहौर की बादशाही मसजिद
	(ii) दिल्ली के लाल किले की मसजिद।

प्रश्न 3—जहाँगीर के शासनकाल में निर्मित भवनों का उल्लेख कीजिए। *(1995)*

उत्तर—जहाँगीर को स्थापत्य कला में विशेष रुचि नहीं थी। उसके शासनकाल में केवल दो ऐतिहासिक इमारतों का ही निर्माण कराया गया। इन दो इमारतों का उल्लेख निम्नवत् है—

(1) सिकन्दरा में अकबर का मकबरा—यह ऊँची दीवारों से घिरी, पाँच मंजिल की गुम्बदरहित इमारत है। इस मकबरे के चारों कोनों पर निर्मित चार मीनारें अत्यन्त आकर्षक हैं। इसकी सबसे ऊपर की मंजिल पूर्णतः संगमरमर के पत्थर से निर्मित है तथा इसमें हिन्दू स्थापत्य शैली पर आधारित सुन्दर जालियों का निर्माण किया गया है।

(2) एतमातुद्दौला का मकबरा—जहाँगीर की पत्नी नूरजहाँ द्वारा निर्मित यह इमारत सफेद संगमरमर की बनी हुई है। आगरे में निर्मित इस दो मंजिले मकबरे के प्रत्येक कोने पर अष्टकोणीय मीनारें बनी हुई हैं। इस इमारत का मुख्य कमरा काफी विशाल है, जिसकी दीवारों पर कुरान की आयतें उत्कीर्ण हैं।

प्रश्न 4—अकबर युग (1556-1605 ई०) के किसी एक हिंदी कवि के जीवन और रचनाओं का परिचय दीजिए। *(1996)*

उत्तर—हिन्दी साहित्य में अभिवृद्धि करने वाले सूर, तुलसी, केशव, बिहारी, रहीम आदि सुप्रसिद्ध कवि, अकबर युग की ही देन हैं। यहाँ अकबर युग के सुप्रसिद्ध कवि रहीम का जीवन परिचय और उनकी रचनाएँ दी गई हैं—

रहीम का जीवन परिचय—अब्दुर्रहीम खानखाना का जन्म 1556 ई० में हुआ था। इनके पिता का नाम बैरम खाँ था। ये अकबर के प्रसिद्ध सेनापति थे। रहीम का हिन्दी, संस्कृत, अरबी और फारसी भाषा पर पूर्ण अधिकार था। इनकी प्रतिभा से प्रभावित होकर, अकबर ने इनको कई जागीरें प्रदान की थीं। ये कृष्ण के अनन्य भक्त थे। अतः हिंदी साहित्य के प्रति इनको स्वाभाविक प्रेम था। इनके जीवन का अन्तिम काल अत्यधिक कष्टमय व्यतीत हुआ। 1627 ई० में इनकी मृत्यु हो गई।

रहीम की रचनाएँ—इनकी सुप्रसिद्ध रचनाएँ हैं—(1) रहीम-सतसई, (2) बरवै-नायिका भेद, (3) शृंगार सोरठा, (4) रास पंचाध्यायी, (5) दीवानें फारसी, (6) मदनाष्टक, (7) वाक्यात बाबरी का फारसी अनुवाद आदि।

प्रश्न 5—शाहजहाँकालीन चार चित्रकारों का नामोल्लेख कीजिए। *(1999)*

उत्तर—शाहजहाँकालीन चार प्रमुख चित्रकारों के नाम निम्नलिखित थे—

(1) मीर हसन, (2) मीर हाशिम, (3) चित्रा तथा (4) अनूप।

प्रश्न 6—मुगल वास्तुकला के उत्कृष्ट स्मारकों में से किन्हीं दो का वर्णन कीजिए। *(1996)*

अथवा **मुगलकाल के चार स्मारकों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।** *(1997)*

उत्तर—मुगल वास्तुकला के उत्कृष्ट स्मारकों का संक्षिप्त वर्णन निम्नवत् है—

(1) ताजमहल—यह आगरा में यमुना नदी के किनारे 18 फुट ऊँचे चबूतरे पर स्थित एक भव्य इमारत है। सफेद संगमरमर से निर्मित इस इमारत के चारों कोनों पर चार आकर्षक मीनारें हैं। ताजमहल के अन्दर एक ऊँचे चबूतरे पर मुमताज महल का मकबरा निर्मित है, जिसके ऊपर सुन्दर जड़ाई और नक्काशी की गई है। इमारत का गुम्बद अत्यधिक आकर्षक है। इस इमारत को शाहजहाँ ने अपनी पत्नी मुमताज महल की स्मृति में निर्मित कराया था। इसकी गणना विश्व के आश्चर्यों में की जाती थी।

(2) हुमायूँ का मकबरा—यह अकबर के शासनकाल में बनी सर्वप्रथम इमारत है। इस इमारत को अकबर की सौतेली माँ हाजी बेगम ने दिल्ली में बनवाया था। इसे निर्मित करने के लिए फारसी कलाकार मीरक मिर्जा गियास की सेवाएँ प्राप्त की गई थीं। इस इमारत पर फारसी कला का स्पष्ट प्रभाव दिखाई देता है। यह मुगलकाल में निर्मित भव्य इमारतों में से एक है। इस इमारत के ऊपर बने लम्बी गर्दन वाले गुम्बद विशेष रूप से आकर्षक हैं। वास्तुकला की दृष्टि से हुमायूँ के मकबरे की समता समरकन्द में निर्मित 'तिमूर के मकबरे' या 'बीबी खानम' के मकबरे से की जाती है।

(3) **अकबर का मकबरा**—यह जहाँगीर के समय निर्मित सर्वप्रथम इमारत है। इस इमारत का निर्माण आगरा के निकट सिकन्दरा में कराया गया था। इसकी योजना अकबर ने बनाई थी, परन्तु इसे साकार रूप जहाँगीर के द्वारा प्रदान किया गया। लगभग 1 किमी के विस्तृत क्षेत्र में फैले बगीचे के मध्य भाग में इस मकबरे का निर्माण हुआ है। पाँच मंजिल ऊँचे अकबर के मकबरे के चारों कोनों पर संगमरमर के चार गुम्बद हैं। इसका प्रवेश द्वार दक्षिण की ओर है। सबसे ऊपर की मंजिल में संगमरमर से निर्मित दीवारों से घिरा एक आँगन है, जिसमें अकबर के शासन की सराहना में 36 दोहे लिखे गए हैं। यह इस्लामी, हिन्दू, ईसाई एवं बौद्ध कला पर आधारित एक भव्य स्मारक है।

(4) **बुलन्द दरवाजा**—अकबर द्वारा निर्मित कराई गई इमारतों में बुलन्द दरवाजा को एक श्रेष्ठ कलाकृति के रूप में स्वीकार किया जाता है। अकबर ने अपनी गुजरात विजय के उपलक्ष में इस ऐतिहासिक इमारत का निर्माण कराया था। यह पृथ्वी की सतह से 176 फीट ऊँची इमारत है, जिसमें लाल बलुआ पत्थर के साथ संगमरमर का प्रयोग किया गया है। इसका निर्माण फारसी, अरबी और भारतीय कला-शैलियों के समन्वित प्रयोग पर आधारित है। इस इमारत पर किया गया नक्काशी का कार्य, किसी भी दर्शक का मन सहज ही मोह लेता है।

प्रश्न 7—शाहजहाँ द्वारा निर्मित किन्हीं चार भवनों के नाम लिखिए। *(1999)*

उत्तर—शाहजहाँ द्वारा निर्मित चार भवन निम्नलिखित हैं—

(1) ताजमहल (आगरा), (2) मोती मसजिद (आगरा), (3) लाल किला (दिल्ली) तथा (4) जामा मसजिद (दिल्ली)।

5 शिवाजी का शासन-प्रबन्ध, चरित्र एवं मूल्यांकन

[मराठा शक्ति के उदय के कारण, शिवाजी का परिचय एवं विजयें, शासन-व्यवस्था, शिवाजी का चरित्र तथा मराठों के पतन के कारण]

"शिवाजी न केवल एक साहसी व्यक्ति था, वरन् दूसरों में उत्साह उत्पन्न करने की उसमें विलक्षण शक्ति थी और वही ऐसा व्यक्ति था, जिसने एक पतित जाति को साम्राज्य तक उठा दिया। इसके अतिरिक्त शिवाजी एक महान् शासक था। उसने बहुत-सी संस्थाएँ स्थापित कीं, जो एक शताब्दी से अधिक समय तक जीवित रहीं।"

—सर रिचर्ड टेम्पिल

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—17वीं शताब्दी में मराठा शक्ति के उत्कर्ष के कारणों की विवेचना कीजिए। *(Imp.)*

उत्तर—

मराठा शक्ति के उदय के कारण

मध्य युग के अन्तिम दशक में दक्षिणी भारत में एक अजेय मराठा शक्ति का प्रादुर्भाव हुआ, जिसके नेता शिवाजी थे। डॉ० ईश्वरी प्रसाद के अनुसार, "महाराष्ट्र के इतिहास में शिवाजी का सत्तारूढ़ होना कोई अनोखी या असाधारण घटना नहीं कही जा सकती। शिवाजी की शक्ति के विकास का श्रेय जितना उनके साहस और वीरता को है, उतना ही दक्षिण भारत की विचित्र भौगोलिक परिस्थिति और उस प्रदेश के पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी के निवासियों को है, जिनके जीवन को धर्म ने एक सूत्र में बाँध दिया तथा नई उमंगों और भावनाओं से पुनःजीवित किया।" ये मराठे; भारतीय इतिहास में 'स्वराज्य-संस्थापक' तथा 'राष्ट्र-निर्माता' के रूप में प्रसिद्ध हैं। संक्षेप में, मराठों के उत्थान के अनेक कारण थे, जो अग्र प्रकार हैं—

(1) महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति—महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति ने मराठों के उत्थान में विशेष योग दिया। महाराष्ट्र चारों ओर से विन्ध्य एवं सतपुड़ा पर्वतों की पर्वतमालाओं से घिरा हुआ था। यहाँ के मार्ग बहुत ही बीहड़ थे जिनमें कोई भी अपरिचित व्यक्ति सरलता से नहीं जा सकता था। इस प्रदेश के निवासी स्वभाव से परिश्रमी एवं साहसी थे। डॉ० ईश्वरी प्रसाद ने लिखा है, **"परिश्रमी मराठे बाजरे और मक्की पर जीवन निर्वाह करते थे और छोटे-छोटे टट्टुओं पर सवार होकर शत्रुओं को विचलित कर देते थे।"**

(2) धार्मिक जागरण—महाराष्ट्र के धार्मिक जागरण ने भी मराठों के उत्थान में बड़ा सहयोग दिया था। इसी प्रकार, पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी में देशभर में हुए भक्ति आन्दोलनों ने भी यहाँ के लोगों को प्रभावित किया। तुकाराम और गुरु रामदास के प्रयत्नों के फलस्वरूप लोगों में राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न हुई, जिससे वे अपने कर्त्तव्य के प्रति अत्यधिक सजग हो गए। रानाडे लिखते हैं, **"महाराष्ट्र के लोगों को कर्त्तव्यपरायण बनाने में तथा मराठा राज्य के निर्माण में जो काम समर्थ गुरु रामदास ने किया, वह इससे पूर्व किसी भी महान् पुरुष ने नहीं किया था।"**

मराठा शक्ति के उदय के कारण

(1) महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति
(2) धार्मिक जागरण
(3) दक्षिणी राज्यों के प्रशासन में हिन्दुओं का प्रभाव
(4) राजनीतिक कारण
(5) मराठों की चारित्रिक विशेषताएँ
(6) शिवाजी का नेतृत्व।

(3) दक्षिणी राज्यों के प्रशासन में हिन्दुओं का प्रभाव—मराठों ने एक लम्बे समय तक दक्षिण में मुस्लिम राज्यों में उच्च सैनिक एवं प्रशासनिक पदों पर कार्य किया था। इससे उन्हें यह लाभ हुआ था कि वे सैनिक एवं प्रशासनिक कार्यों में दक्ष हो गए, जो कालान्तर में उनके लिए बड़ा उपयोगी सिद्ध हुआ।

(4) राजनीतिक कारण—दक्षिण में मुगलों से निरन्तर युद्ध होते रहने के कारण मराठों को अपनी शक्ति संगठित करने का बहुत अधिक समय मिल गया था। इस सन्दर्भ में डॉ० बेनी प्रसाद ने लिखा है, **"मुगलों के दक्षिणी आक्रमणों का विशेष महत्त्व यह हुआ कि उनसे मराठों को युद्ध-शिक्षा प्राप्त करने और राजनीतिक प्रभाव जमाने का अचूक अवसर प्राप्त हुआ।"**

(5) मराठों की चारित्रिक विशेषताएँ—मराठों की चारित्रिक विशेषताएँ भी उनके उत्थान में सहायक सिद्ध हुईं। उनमें अदम्य साहस, एकता, परिश्रम, कूटनीतिज्ञता एवं स्वतन्त्रता-प्रेम आदि अनेक चारित्रिक गुण विद्यमान थे। इन चारित्रिक गुणों के बल पर ही मराठों ने अपने में राष्ट्रीय-प्रेम और सुरक्षा की भावना उत्पन्न कर ली थी और उन्होंने औरंगजब की कुशल सेनाओं के दाँत खट्टे कर दिए थे। यहाँ तक कि अन्त में औरंगजेब मराठों के साथ युद्ध करते-करते ही मर गया।

(6) शिवाजी का नेतृत्व—मराठे एक छत्रछाया के नीचे एकत्र होने के लिए प्रयत्नशील थे, तभी उन्हें शिवाजी जैसे योग्य, साहसी एवं बुद्धिमान व्यक्ति का नेतृत्व प्राप्त हो गया। शिवाजी जैसे वीर और राष्ट्रीय नेता ने मराठों का नेतृत्व किया तथा परतन्त्र जीवन से मुक्ति पाने हेतु प्रेरित किया।

प्रश्न 2 – शिवाजी की प्रारम्भिक विजयों और सफलताओं का वर्णन कीजिए। ***(V. Imp.)***

अथवा **एक साम्राज्य निर्माता के रूप में शिवाजी की सफलताओं का मूल्यांकन कीजिए।**

अथवा **"शिवाजी एक महान् विजेता और कूटनीतिज्ञ थे।" उनकी विजयों के प्रकाश में इस कथन की समीक्षा कीजिए।**

अथवा **शिवाजी की सैनिक उपलब्धियों का विवरण दीजिए।** ***(1990, 92)***

अथवा **शिवाजी के जीवन चरित्र तथा उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।**

अथवा **शिवाजी की उपलब्धियों की विवेचना कीजिए।** ***(1995)***

अथवा **शिवाजी के नेतृत्व में मराठा शक्ति के उत्थान का वर्णन कीजिए।** ***(1996)***

अथवा **मराठा शक्ति के विकास में शिवाजी के योगदानों का उल्लेख कीजिए।** ***(1997)***

अथवा **जिन परिस्थितियों में शिवाजी का उत्कर्ष हुआ उनकी विवेचना कीजिए और औरंगजेब के साथ उसके सम्बन्धों पर प्रकाश डालिए।** ***(1997)***

उत्तर—

शिवाजी का परिचय

शिवाजी का जन्म 20 अप्रैल, 1627 ई० को शिवनेर के दुर्ग में हुआ था। इनके पिता शाहजी भोंसले ने अहमद नगर राज्य में नौकरी करते हुए शक्ति और सम्मान प्राप्त किया था। बाद में, वे बीजापुर के सुल्तान की सेवा में आ गए थे। शाहजी ने दो विवाह किए थे। उनकी पहली पत्नी जीजाबाई थी। ये जीजाबाई ही शिवाजी की माता थीं। शिवाजी की शिक्षा-दीक्षा माता जीजाबाई के संरक्षण में हुई। वे धार्मिक प्रवृत्ति की महिला थीं। इसीलिए उनकी इस प्रवृत्ति का शिवाजी पर गहरा प्रभाव पड़ा था। इसके अतिरिक्त, शिवाजी के गुरु दादा कोणदेव ने शिवाजी को युद्ध-विद्या में पारंगत किया और साथ ही उन्हें राजनीति की शिक्षा भी दी। युवा होने पर शिवाजी को महाराष्ट्र की वास्तविक स्थिति का ज्ञान प्राप्त हुआ और उनमें मराठों के स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की इच्छा जागृत हो उठी।

एलफिन्स्टन ने लिखा है कि, "एक शक्तिशाली मराठा सामन्त का पुत्र होकर शिवाजी ने अपना जीवन लुटेरों के एक चालाक तथा साहसी नेता के रूप में प्रारम्भ किया, जो कि एक महान् सेनानायक तथा कुशल राजनीतिज्ञ के रूप में परिपक्व अवस्था को प्राप्त हुआ।"

शिवाजी की विजयें : सफलताएँ अथवा उपलब्धियाँ

शिवाजी ने पूना की जागीर का शासक बनते ही मराठों को संगठित किया। प्रारम्भ में, शिवाजी के पास साधनों का अभाव था; इसलिए उन्होंने अपने अभियानों में कूटनीति से काम लिया। सर्वप्रथम शिवाजी ने तोरण दुर्ग को जीतकर उसका जीर्णोद्धार करवाया। इसके पश्चात् शिवाजी ने पुरन्दर, चाकन तथा कोंकण के किलों पर अधिकार कर लिया और कुछ अन्य विजयें प्राप्त कीं। शिवाजी ने विषम परिस्थितियों का साहसपूर्वक सामना किया और एक के बाद एक अनेक सफलताएँ अर्जित कीं। अन्ततः ये समस्त परिस्थितियाँ उनके उत्कर्ष के लिए आधारस्वरूप ही सिद्ध हुईं। शिवाजी के उत्कर्ष में सहायक इन परिस्थितियों अथवा उनकी उपलब्धियों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है—

(1) जावली विजय (1656 ई०)—जावली दुर्ग का शासक चन्द्रराव मोरे नामक मराठा सरदार था। चन्द्रराव मोरे शिवाजी के विरुद्ध बीजापुर राज्य से मिला हुआ था, जिसकी हत्या कराकर शिवाजी ने 1656 ई० में जावली पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया। जावली को जीतने से शिवाजी को अनेक लाभ हुए।

शिवाजी की विजयें (उपलब्धियाँ)

(1) जावली विजय
(2) कोंकण पर विजय
(3) शिवाजी और बीजापुर : अफजल खाँ का वध
(4) शिवाजी का शाइस्ता खाँ पर आक्रमण
(5) सूरत की प्रथम लूट
(6) शिवाजी और मिर्जा राजा जयसिंह (पुरन्दर की सन्धि)
(7) शिवाजी मुगल दरबार में
(8) मुगलों से सन्धि
(9) सूरत की दूसरी लूट
(10) शिवाजी की अन्य विजयें
(11) शिवाजी का राज्याभिषेक तथा गोलकुण्डा, बीजापुर एवं कर्नाटक की लूट।

(2) कोंकण पर विजय (1657 ई०)—1657 ई० में शिवाजी ने सम्पूर्ण कोंकण क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। इसी वर्ष शिवाजी ने बीजापुर के शासकों की सहायता करते हुए मुगलों के विरुद्ध उग्र संघर्ष किया। शिवाजी ने चुनार एवं अन्य दुर्गों को भी लूटा था। बाद में, जब बीजापुर के शासक ने मुगलों से सन्धि कर ली तो शिवाजी फिर बीजापुर के विरुद्ध हो गए।

(3) शिवाजी और बीजापुर : अफजल खाँ का वध (1659 ई०)—शिवाजी के बढ़ते हुए उत्पातों को रोकने के लिए बीजापुर के सुल्तान की माँ बड़ी बेगम साहिबा ने अफजल खाँ नामक एक वीर व शक्तिशाली सेनापति को भेजा। उसने दरबार में बड़े उत्साह के साथ प्रतिज्ञा की कि मैं शिवाजी को बिना लड़े ही पिंजरे में बन्द करके लाऊँगा। शिवाजी ने अफजल खाँ के दूत कृष्णा जी भास्कर से, जो अफजल खाँ द्वारा सन्धि के लिए भेजा गया था, अफजल खाँ का वास्तविक उद्देश्य जान लिया। अफजल खाँ और शिवाजी की एकान्त में मिलने की बात निश्चित हुई। प्रतापगढ़ के निकट एकान्त में मिलने पर लम्बे कद के अफजल खाँ ने शिवाजी का गला घोंटना चाहा, लेकिन्

शिवाजी ने छिपे हुए बघनखे की सहायता से अफ़जल खाँ का पेट फाड़ दिया और उसे मार दिया। अफ़जल खाँ की अनुपस्थिति में उसकी सेना मराठों के आगे न टिक न सकी और इस युद्ध में शिवाजी की जीत हुई। इस युद्ध में शिवाजी को काफी धन मिला। शिवाजी ने कोल्हापुर और पन्हाला के प्रदेश भी जीत लिए। कालान्तर में बीजापुर के शासक ने पन्हाला को शिवाजी से छीन लिया। 1662-63 ई० में शाहजी भोंसले के हस्तक्षेप से, शिवाजी तथा बीजापुर राज्य में, परस्पर संघर्ष न करने तथा मुगलों के विरुद्ध सामूहिक रूप से संघर्ष करने का समझौता हो गया।

(4) शिवाजी का शाइस्ता खाँ पर आक्रमण (1663 ई०)—शिवाजी की बढ़ती हुई शक्ति से औरंगजेब भयभीत होने लगा था; अतः 1663 ई० में उसने अपने मामा शाइस्ता खाँ को दक्षिण का सूबेदार बनाकर शिवाजी की शक्ति का अन्त करने के लिए भेजा। वह शिवाजी के अनेक प्रदेश जीतकर, पूना के दुर्ग पर अधिकार करने में सफल हो गया। एक दिन वह विश्राम करने के लिए मार्ग में रुक गया, तो रात्रि को बारात वालों के वेश में शिवाजी ने सेना के साथ अचानक शाइस्ता खाँ पर आक्रमण कर दिया। इस संघर्ष में शाइस्ता खाँ का अंगूठा कट गया और उसका पुत्र भी मारा गया। शाइस्ता खाँ को पूना छोड़कर भागना पड़ा और उसकी स्त्रियाँ गाजर-मूली की तरह काट दी गईं। इस विजय से शिवाजी का उत्साह एवं साहस काफी बढ़ गया।

(5) सूरत की प्रथम लूट (1664 ई०)—सन् 1664 ई० में शिवाजी ने सूरत बन्दरगाह पर आक्रमण किया। इस आक्रमण का उद्देश्य सूरत में लूटपाट करना ही था। सूरत की लूट से शिवाजी को लगभग एक करोड़ रुपये की धनराशि प्राप्त हुई, जिससे शिवाजी की आर्थिक स्थिति काफी सुदृढ़ हो गई।

(6) शिवाजी और मिर्जा राजा जयसिंह (पुरन्दर की सन्धि)—1665 ई० में औरंगजेब ने पुनः अपने प्रसिद्ध सेनापति मिर्जा राजा जयसिंह को एक विशाल सेना के साथ शिवाजी पर आक्रमण करने के लिए भेजा। दूसरी ओर से उसने बीजापुर, गोवा के पुर्तगालियों और जंजीरा के सिद्दियों को भी शिवाजी पर आक्रमण करने के लिए प्रेरित किया। राजा जयसिंह ने शिवाजी के दुर्गों पर कब्जा करना शुरू कर दिया। इस विषम परिस्थिति में शिवाजी को मिर्जा राजा जयसिंह की इच्छानुकूल पुरन्दर की सन्धि स्वीकार करने के लिए बाध्य होना पड़ा। यह सन्धि मिर्जा राजा जयसिंह की कूटनीतिक विजय थी।

(7) शिवाजी मुगल दरबार में (1666 ई०)—राजा जयसिंह के विशेष अनुरोध पर शिवाजी अपने पुत्र शम्भाजी के साथ औरंगजेब के दरबार में उससे भेंट के लिए उपस्थित हुए, लेकिन औरंगजेब ने उन्हें अपमानित कर बन्दी बना लिया। कुछ दिनों बाद शिवाजी अपनी बुद्धिमानी से मिठाई और फलों के टोकरों में छिपकर बन्दीगृह से भागने में सफल हो गए और सुरक्षित महाराष्ट्र पहुँच गए।

(8) मुगलों से सन्धि (1668 ई०)—जब औरंगजेब को शिवाजी के भागने की सूचना प्राप्त हुई, तो वह बहुत क्रोधित हुआ, लेकिन महाराष्ट्र में मराठों की शक्ति बहुत अधिक थी, इसलिए उसने शिवाजी से सन्धि कर लेना ही अधिक उपयुक्त समझा। शिवाजी भी कुछ कारणों से सन्धि करना चाहते थे; अतः दोनों में सन्धि हो गई। इस सन्धि से शिवाजी को स्वतन्त्र शासक के रूप में मान्यता मिल गई।

(9) सूरत की दूसरी लूट (1670 ई०)—शिवाजी ने सूरत को दूसरी बार 1670 ई० में पुनः लूटा। इस लूट में उनके हाथ 192 लाख रुपये लगे। इस लूट के प्रभाव के विषय में जदुनाथ सरकार ने लिखा है, **"सूरत की इस लूट के कारण व्यापार को भारी क्षति पहुँची और सूरत के व्यापारियों को देश के आन्तरिक भागों से माल मिलना बन्द हो गया।"**

(10) शिवाजी की अन्य विजयें—मुगल प्रदेशों पर आक्रमण करके शिवाजी ने खान देश, बरार, तेलंगाना आदि प्रदेशों को खूब लूटा और इस लूट से अपना राजकोष भर लिया। शिवाजी ने अब सलहेर, मुलहेर, पन्हाला तथा सतारा पर भी अधिकार कर लिया।

(11) शिवाजी का राज्याभिषेक तथा गोलकुण्डा, बीजापुर एवं कर्नाटक की लूट—1674 ई० में रायगढ़ के दुर्ग में बड़ी धूमधाम के साथ शिवाजी का राज्याभिषेक सम्पन्न हुआ। इस अवसर पर राजकोष का पर्याप्त धन व्यय हो गया, जिसकी पूर्ति उन्होंने गोलकुण्डा, बीजापुर तथा कर्नाटक की लूटकर की। उन्हें

केवल कर्नाटक से ही 20 लाख रुपये की वार्षिक आय होने लगी थी। सन् 1680 ई० में वीर शिवाजी का निधन हो गया। शिवाजी के उपर्युक्त कार्यों के फलस्वरूप उन्हें कभी नहीं भुलाया जा सकता है; क्योंकि उनके अथक परिश्रम एवं अदम्य साहस के कारण ही, मराठा साम्राज्य की स्थापना सम्भव हो सकी थी।

शिवाजी की उपर्युक्त विजयों अथवा साम्राज्य के प्रसार से सम्बन्धित कार्यों का अध्ययन करने के उपरान्त यह सहज ही स्पष्ट हो जाता है कि—**"शिवाजी एक महान् विजेता और कूटनीतिज्ञ थे।"**

(संकेत—औरंगजेब के साथ शिवाजी के सम्बन्धों का अध्ययन करने हेतु अध्याय 3 के दीर्घ उत्तरीय प्रश्न 21 का अवलोकन कीजिए।)

प्रश्न 3—"शिवाजी ने अपने शासन-प्रबन्ध के माध्यम से जनता में रामराज्य की स्थापना की थी।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।

अथवा **शिवाजी की शासन-व्यवस्था का विवेचन कीजिए।** *(1999)*

अथवा **शिवाजी के शासन-प्रबन्ध का संक्षेप में वर्णन कीजिए।** *(1992)*

अथवा **"शिवाजी एक कुशल शासन-प्रबन्धक थे।" विवेचना कीजिए।**

अथवा **शिवाजी के केन्द्रीय अष्ट-प्रधान मण्डल की विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।**

अथवा **"शिवाजी की शासन-व्यवस्था जनता के लिए हितकर तथा सुखदायी थी।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।** *(1995)*

अथवा **महाराजा शिवाजी के शासन-प्रबन्ध की विश्लेषणात्मक प्रस्तुति दीजिए।** *(1990)*

अथवा **शिवाजी के प्रशासन एवं व्यक्तित्व का मूल्यांकन कीजिए।** *(1992)*

अथवा **"शिवाजी एक वीर योद्धा ही नहीं, अपितु एक सफल शासक भी थे।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।** *(1993, 99)*

उत्तर—

शिवाजी की शासन-व्यवस्था

शिवाजी केवल एक वीर योद्धा एवं साम्राज्य निर्माता ही नहीं थे, वरन् एक कुशल प्रशासक भी थे। इसका प्रमाण उनकी लोक-हितकारी शासन-व्यवस्था में परिलक्षित होता है। डॉ० ईश्वरी प्रसाद ने शिवाजी की शासन-व्यवस्था की प्रशंसा इन शब्दों में की है, **"शिवाजी का शासन कुछ मामलों में तो मुगलों के शासन से भी अधिक श्रेष्ठ था।"** संक्षेप में, शिवाजी की शासन-व्यवस्था निम्न प्रकार थी—

(1) केन्द्रीय शासन—वीर शिवाजी केन्द्रीय शासन-व्यवस्था की देख-रेख स्वयं ही किया करते थे। राज्य की समस्त सर्वोच्च शक्तियाँ शिवाजी के हाथ में थीं। वे निरंकुश शासक अवश्य थे, किन्तु स्वेच्छाचारी नहीं थे। वे मन्त्रियों के परामर्श से ही शासन कार्यों को करते थे। शिवाजी की केन्द्रीय मन्त्रि-परिषद् को अष्ट-प्रधान की संज्ञा दी गई थी।

शिवाजी की शासन-व्यवस्था

- **(1) केन्द्रीय शासन**
- **(2) अष्ट-प्रधान :**
  - **(i) पेशवा**
  - **(ii) अमात्य**
  - **(iii) सेनापति**
  - **(iv) सुमन्त**
  - **(v) मन्त्री**
  - **(vi) सचिव**
  - **(vii) पण्डित राव**
  - **(viii) न्यायाधीश**
- **(3) स्थानीय शासन**
- **(4) सैन्य-व्यवस्था**
- **(5) राज्य की आय के साधन**
- **(6) न्याय-व्यवस्था।**

(2) अष्ट-प्रधान—शिवाजी ने आठ मन्त्रियों की एक मन्त्रि-परिषद् संगठित की थी। ये मन्त्री पृथक्-पृथक् रूप से अपने कार्यों का संचालन किया करते थे। ये आठ मन्त्री और उनके कार्य इस प्रकार थे—

(i) पेशवा (प्रधानमन्त्री)—इसका प्रमुख कार्य शासन की देखभाल करना और राज्य में शान्ति स्थापित करने की व्यवस्था करना था। इसके अतिरिक्त राजा की अनुपस्थिति में उसके कार्यों की देखभाल करना भी इसी का कर्त्तव्य था।

(ii) अमात्य (वित्त मन्त्री)—यह अर्थ (धन) से सम्बन्धित सभी कार्यों को सम्पन्न करता था।

(iii) सेनापति (रक्षा मन्त्री)—राजा के बाद यही सेना का सर्वोच्च अधिकारी होता था।

(iv) सुमन्त (विदेश मन्त्री)—यह राज्य का विदेश मन्त्री होता था। इसका कार्य युद्ध एवं विदेशों से सन्धियों के सम्बन्ध में राजा को परामर्श देना होता था।

(v) मन्त्री (रिकार्ड विभाग का अध्यक्ष)—इसका कार्य राजा एवं राज्य के दैनिक कार्यों और घटनाओं का विवरण रखना तथा शिवाजी की व्यक्तिगत रक्षा का प्रबन्ध करना होता था।

(vi) सचिव—यह केन्द्रीय सरकार के लेखा-विभाग का अध्यक्ष होता था और इसका कार्य सरकारी पत्रों का निरीक्षण करना, उनकी सामग्री तैयार करना तथा प्रतिलिपि तैयार करना होता था।

(vii) पण्डित राव—यह धर्म से सम्बन्धित सभी कार्यों को सम्पादित किया करता था।

(viii) न्यायाधीश—यह राजा के बाद न्याय-विभाग का सर्वोच्च अधिकारी होता था तथा फौजदारी एवं दीवानी के सभी मुकदमों को सुनता था।

(3) स्थानीय शासन—शासन-व्यवस्था सुचारु रूप से संचालित होती रहे, इसके लिए शिवाजी ने अपने सम्पूर्ण साम्राज्य को चार प्रान्तीय भागों में बाँट रखा था। प्रत्येक प्रान्त का अधिकारी शिवाजी द्वारा नियुक्त सूबेदार होता था, प्रान्तपति की सहायता के लिए भी आठ मन्त्री होते थे। प्रान्त परगनों में बँटे होते थे और परगने का अधिकारी **परगनाधीश** कहलाता था। ग्रामों में पंचायत होती थी। साधारण मुकदमों का निर्णय **पटेल** नामक अधिकारी किया करते थे।

(4) शिवाजी की सैन्य-व्यवस्था—शिवाजी का सैन्य प्रबन्ध विशिष्ट प्रकार का तथा बहुत ही उच्चकोटि का था। डॉ० ईश्वरी प्रसाद का कहना है कि, **"शिवाजी एक दक्ष सैनिक थे और सैनिक संगठन की उनमें विलक्षण क्षमता थी।"**

(i) सेना का संगठन—शिवाजी की सेना में पैदल, घुड़सवार, हाथी सेना, तोपखाना, नौसेना तथा किले आदि थे। इनकी सेना में हिन्दू और मुसलमान दोनों ही शामिल थे। शिवाजी की मृत्यु के समय उनकी स्थायी सेना में एक लाख पैदल सैनिक, एक लाख घुड़सवार (60 हजार सिलेदार +40 हजार वारगीर), एक सौ चालीस हाथी तथा अस्सी बड़ी तोपें थीं।

शिवाजी की घुड़सवार सेना में दो प्रकार के सैनिक होते थे—वारगीर और सिलेदार। वारगीरों को राज्य की ओर से वेतन, घोड़े तथा अस्त्र-शस्त्र आदि मिलते थे, लेकिन सिलेदारों को अपने घोड़ों एवं अस्त्र-शस्त्रों की व्यवस्था स्वयं करनी पड़ती थी।

(ii) दुर्गों या किलों की व्यवस्था—शिवाजी दुर्गों का महत्त्व समझते थे, इसीलिए उनके पास 250 महत्त्वपूर्ण दुर्ग थे। इनमें पर्याप्त संख्या में और सभी प्रकार की सेना रहती थी। ये दुर्ग ही मराठा शक्ति के प्रमुख केन्द्र थे। प्रत्येक दुर्ग की देखभाल के लिए वहाँ एक हवलदार, एक सूबेदार तथा एक प्रभु नामक अधिकारी होता था। इन अधिकारियों पर दुर्ग की समुचित व्यवस्था एवं रक्षा का उत्तरदायित्व था।

(iii) कठोर अनुशासन एवं युद्ध-प्रणाली—शिवाजी बहुत अनुशासनप्रिय थे। उनके युद्ध अभियानों के समग्र कोई भी सैनिक किसानों को किसी प्रकार का कष्ट नहीं दे सकता था। शत्रु पक्ष की स्त्रियों, ब्राह्मणों एवं धार्मिक पुस्तकों का सम्मान करना आवश्यक था। जो इन नियमों का उल्लंघन करता था, उसे शिवाजी स्वयं कठोर दण्ड देते थे।

शिवाजी ने सदैव छापामार युद्ध-प्रणाली को अपनाया। शिवाजी युद्ध में कूटनीति का सहारा लिया करते थे, जो उनकी सफलता का मूल मंत्र था।

(5) राज्य की आय के साधन—शिवाजी के राज्य में निम्नलिखित साधनों द्वारा आय प्राप्त की जाती थी—

(i) भूमि-कर—शिवाजी के वित्तमन्त्री ने टोडरमल की भाँति ही अपने राज्य की सम्पूर्ण भूमि की नाप-जोख करवाई और उपज का 40% राज्य-कर (लगान) निश्चित किया था। उन्होंने भूमि-कर, अनाज एवं नकद दोनों रूपों में प्राप्त करने की व्यवस्था की थी।

(ii) चौथ और सरदेशमुखी—भूमि-कर राज्य की व्यवस्था के लिए पर्याप्त नहीं होता था, इसलिए वे प्रायः पड़ोसी राज्यों को लूटते थे और उन पर चौथ और सरदेशमुखी नामक कर लगा देते थे। जे० एन० सरकार ने चौथ के अर्थ को स्पष्ट करते हुए लिखा है, **"चौथ विजित प्रदेशों से वसूल की जाती थी और उसके बदले में उस प्रदेश को बाह्य आक्रमणों से रक्षा करने का आश्वासन दिया जाता था।"**

सरदेशमुखी एक प्रकार का आय-कर (Income Tax) था। इसमें आय का दसवाँ भाग वसूल किया जाता था।

(iii) चुंगी एवं व्यवसाय-करों से भी राज्य को पर्याप्त आय होती थी।

(6) **न्याय-व्यवस्था**—शिवाजी की न्याय-व्यवस्था निष्पक्षता पर आधारित थी। ग्रामों में मुकदमों की अपील 'उच्च न्यायाधीश' के पास की जाती थी, परन्तु यहाँ भी फैसला न होने पर शिवाजी स्वयं न्याय करते थे।

शिवाजी के शासन-प्रबन्ध का अध्ययन करने से यह विदित होता है कि शिवाजी एक कुशल शासन प्रबन्धक थे। उनकी शासन-व्यवस्था जनता के लिए हितकर और सुखदायी थी। अतः उनके सम्बन्ध में कहा गया यह कथन भी पूर्णतः सत्य ही है कि, **"शिवाजी ने अपने शासन-प्रबन्ध के माध्यम से जनता में रामराज्य की स्थापना की थी।"**

(संकेत—शिवाजी के व्यक्तित्व का अध्ययन करने हेतु दीर्घ उत्तरीय प्रश्न संख्या 4 का अध्ययन कीजिए।)

प्रश्न 4—"शिवाजी भारत के महान शासक व हिन्दू स्वराज्य के संस्थापक थे।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।

अथवा **"शिवाजी हिन्दू जाति के अन्तिम रचनात्मक कार्य करने वाले योग्य व्यक्ति, शासक एवं राष्ट्र-निर्माता थे।" इस कथन के प्रकाश में शिवाजी के चरित्र तथा उपलब्धियों का उल्लेख कीजिए।** *(1991, 93)*

अथवा **शिवाजी के चरित्र का मूल्यांकन कीजिए।** *(1991)*

अथवा **शिवाजी के चरित्र और व्यक्तित्व का मूल्यांकन कीजिए।** *(1990, 91)*

अथवा **शिवाजी के जीवन-चरित्र तथा उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।**

अथवा **"शासक और व्यक्ति दोनों दृष्टियों से शिवाजी का भारत के इतिहास में विशिष्ट स्थान है।" इस कथन का परीक्षण कीजिए।** *(1995)*

उत्तर—

शिवाजी का चरित्र

शिवाजी के चरित्र में अनेक प्रशंसनीय चारित्रिक गुण विद्यमान थे। वे साहसी, धैर्यवान, नीति-निपुण, कुशल शासक और सफल सेनानायक थे। शिवाजी ने तत्कालीन समाज के लोगों में एक नई राष्ट्रीय चेतना के प्राण फूँक दिए थे। उन्होंने एक स्वतन्त्र हिन्दू राज्य स्थापित करने का अपना महान लक्ष्य निर्धारित किया था। शिवाजी की चारित्रिक विशेषताओं को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा सकता है—

(1) **कुशल प्रशासक एवं राजनीतिज्ञ**—शिवाजी एक महान् शासन-प्रबन्धक थे। उनके लोक-हितकारी प्रशासन से जनता को बहुत राहत प्राप्त हुई थी। नीतियों के संचालन में उन्होंने एक बुद्धिमान राजनीतिज्ञ का परिचय दिया था। उनके बारे में डॉ० ईश्वरी प्रसाद लिखते हैं कि, **"शिवाजी उच्चकोटि के प्रशासक और राजनीतिज्ञ थे। उन्होंने अपनी वीरता और गुणों से स्वयं को विभूषित किया था।"**

(2) **हिन्दू जाति के उद्धारक**—मध्य काल के इतिहास में शिवाजी ऐसे प्रथम भारतीय हिन्दू राजा थे, जिन्होंने मुगलों के विरुद्ध एक सशक्त हिन्दू राज्य की स्थापना की थी। शिवाजी के चरित्र में अपनी जाति की सुरक्षा की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। कुछ विद्वानों के अनुसार वे कट्टर हिन्दू, हिन्दू जाति के उद्धारक, न्यायप्रिय शासक एवं हिन्दू राष्ट्र-निर्माता थे। सर देसाई के अनुसार, **"महाराष्ट्र के प्रति शिवाजी की सबसे महान सेवा अपने बिखरे हुए देशवासियों को जातीयता प्रदान करना और अपनी सफलताओं द्वारा जाति के सम्मान तथा गौरव को बढ़ाना था।"**

(3) **धर्म-सहिष्णु सम्राट**—शिवाजी धर्म के सजग प्रहरी और संरक्षक थे, परन्तु अन्य धर्मों के प्रति भी उनके हृदय में महत्त्वपूर्ण स्थान था। शिवाजी की धार्मिक सहिष्णुता के विषय में इतिहासकार खफी खाँ

ने लिखा है, "शिवाजी ने यह नियम बनाया था कि लूट के समय उनके सैनिक मसजिदों, कुरान एवं स्त्रियों को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाएँगे।" इस प्रकार, "शासक एवं व्यक्ति दोनों रूपों में शिवाजी का इतिहास में एक विशिष्ट स्थान है।"

शिवाजी का चरित्र
(1) कुशल प्रशासक एवं राजनीतिज्ञ
(2) हिन्दू जाति के उद्धारक
(3) धर्म-सहिष्णु सम्राट
(4) महान विजेता
(5) महान कूटनीतिज्ञ।

(4) महान् विजेता—शिवाजी का स्थान भारतीय इतिहास में एक महान विजेता के रूप में भी सुरक्षित है। उन्होंने बहुत से युद्धों में अपनी छोटी-सी सेना के बल पर ही अभूतपूर्व विजयें प्राप्त की थीं। शिवाजी एक महान विजेता थे; जिन्होंने औरंगजेब जैसे शक्तिशाली शासक को भी मानसिक रूप से विचलित कर दिया था।

(5) महान् कूटनीतिज्ञ—शिवाजी कूटनीति में आचार्य चाणक्य के शिष्य कहे जा सकते हैं। अपनी कूटनीति के बल पर ही उन्होंने मुगलों से दीर्घकालीन संघर्ष किया था, बीजापुर के सेनापति अफजल खाँ का वध कर दिया था, औरंगजेब के मामा शाइस्ता खाँ को भगा दिया था तथा औरंगजेब की कैद से मिठाई-फलों के टोकरों में छिपकर भाग आए थे। कूटनीति पर आधारित इनकी छापामार युद्ध-प्रणाली के कारण ही डॉ० स्मिथ ने उन्हें 'पहाड़ी चूहा' की संज्ञा दी है।

क्या शिवाजी लुटेरे थे?

डॉ० विन्सेण्ट स्मिथ आदि कुछ इतिहासकारों का कहना है कि शिवाजी एक लुटेरे एवं डाकू थे। परन्तु इस कथन से भारतीय इतिहासकार पूर्ण रूप से सहमत नहीं हैं। उनका मत है कि शिवाजी लुटेरे नहीं थे। उनके राज्य की आय के साधन प्रारम्भ में बहुत सीमित थे। इसलिए वह राज्य की आवश्यकता-पूर्ति के लिए पड़ोसी राज्यों को कभी-कभी लूट लेते थे, लेकिन वह ऐसा कार्य पूर्ण मानवता एवं पवित्रता के साथ करते थे। इस सन्दर्भ में विन्सेण्ट स्मिथ का यह कथन भी तथ्यविहीन है कि, "शिवाजी डाकू थे और उनके द्वारा स्थापित किया हुआ राज्य डाकू राज्य था।" उनका एक ही उद्देश्य था, हिन्दू राज्य स्थापित करना। इस सन्दर्भ में उन्होंने समकालीन मुगलों जैसी ही नीति का पालन अवश्य किया था। जदुनाथ सरकार के शब्दों में, "वह भारत के अन्तिम हिन्दू राष्ट्र-निर्माता थे।" मुखर्जी के शब्दों में, "मुगल साम्राज्य के, जो उस समय अपनी कीर्ति और समृद्धि के उच्चतम शिखर पर पहुँच चुका था, खुले विरोध में हिन्दू-राज्य को स्थापित करना किसी तुच्छ प्रतिभा का काम नहीं था।"

वस्तुतः शिवाजी भारत के महान शासक व हिन्दू स्वराज्य के संस्थापक थे।

शिवाजी ने हिन्दुओं को राष्ट्रीय भावना से भरकर राजनीतिक चेतना जगाने का एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया था। जदुनाथ सरकार के अनुसार, "शिवाजी केवल मराठा राष्ट्र के निर्माता ही नहीं थे, अपितु मध्य युग के सर्वश्रेष्ठ मौलिक प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति थे।" शिवाजी के कार्यों का मूल्यांकन करते हुए एलफिन्स्टन ने लिखा है, "यद्यपि वह एक शक्तिशाली सामन्त का पुत्र था, उसने डाकुओं के एक साहसी तथा चालाक कप्तान के रूप में जीवन आरम्भ किया था, फिर भी वह एक ऐसा चरित्र छोड़ गया, जिसकी समता उसके देश का कोई अन्य व्यक्ति न कर सका।" भारत के इस अन्तिम हिन्दू राष्ट्र-निर्माता के सम्बन्ध में यह कथन भी पूर्णतः उचित ही है कि, "शिवाजी हिन्दू जाति के अन्तिम रचनात्मक कार्य करने वाले योग्य व्यक्ति, शासक एवं राष्ट्र-निर्माता थे।"

(नोट—शिवाजी की उपलब्धियों का ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रश्न संख्या 2 का उत्तर देखिए।)

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—पुरन्दर की सन्धि के विषय में आप क्या जानते हैं?

उत्तर—

पुरन्दर की सन्धि

पुरन्दर की सन्धि 1665 ई० में शिवाजी और मुगलों के मध्य हुई थी। मुगलों के सेनापति मिर्जा राजा जयसिंह के प्रभाव व शक्ति के कारण शिवाजी को यह सन्धि स्वीकार करनी पड़ी थी। इस सन्धि की प्रमुख धाराएँ अग्रलिखित थीं—

(1) शिवाजी मुगलों के जीते हुए दुर्ग व प्रदेश वापस कर देंगे।

(2) शिवाजी का आगरा जाकर मुगल दरबार में उपस्थित होना अनिवार्य नहीं होगा और शम्भाजी को दरबार में पंच हजारी मनसब पद दिया जाएगा।

प्रश्न 2—शिवाजी की सफलता के क्या कारण थे? किन्हीं चार का विवरण दीजिए।

उत्तर— शिवाजी की सफलता के चार कारण

शिवाजी की सफलता के चार कारण निम्नलिखित थे—

(1) महाराष्ट्र की भौगोलिक स्थिति—महाराष्ट्र एक पहाड़ी प्रदेश है। शिवाजी ने इस ऊबड़-खाबड़ प्रदेश का विभिन्न युद्धों से भरपूर लाभ उठाया। इसीलिए उन्हें 'पहाड़ी चूहा' कहा जाता था।

(2) राष्ट्रीय भावना—शिवाजी ने महाराष्ट्र के युवकों में राष्ट्रीय भावना जाग्रत की; अतः मराठों ने एकजुट होकर मुगलों के विरुद्ध संघर्ष छेड़ दिया था।

(3) शिवाजी की रणनीति—शिवाजी की सफलता का मुख्य रहस्य उनकी छापामार रणनीति में निहित था।

(4) शिवाजी का व्यक्तित्व—शिवाजी एक सफल विजेता, महान योद्धा, कुशल राजनीतिज्ञ एवं संगठनकर्त्ता के गुणों से विभूषित थे, जिनके कारण उन्हें विभिन्न संघर्षों में सदैव सफलता ही प्राप्त हुई।

प्रश्न 3—पानीपत के तीसरे युद्ध में मराठों की पराजय के चार कारण बताइए। *(1991, 97)*

अथवा **पानीपत के तृतीय युद्ध में मराठों की पराजय के क्या कारण थे?**

उत्तर—पानीपत के तृतीय युद्ध (1761 ई०) में अहमदशाह अब्दाली तथा मराठों में मुठभेड़ हुई, जिसमें मराठे पराजित हो गए। इस युद्ध में मराठों की पराजय के चार कारण निम्नलिखित थे—

(1) छापामार रणनीति का त्याग—शिवाजी के बाद मराठों ने अपनी परम्परागत छापामार रणनीति का परित्याग कर दिया था, जिसके कारण उनकी पराजय हुई।

(2) संयुक्त मोर्चे का अभाव—अब्दाली के विरुद्ध मराठों में हिन्दू और मुसलमानों के संयुक्त मोर्चे का अभाव था।

(3) पारस्परिक कलह—मराठे परस्पर ही संघर्ष करने में व्यस्त थे। उनकी आपसी फूट तथा लड़ाई के कारण भी अब्दाली को विजय मिली थी।

(4) राष्ट्रीयता का अभाव—शिवाजी के पश्चात् मराठा सरदारों और उनकी सेना में राष्ट्रीयता का अभाव हो गया था। अतः इस कारण भी उन्हें अब्दाली से पराजित होना पड़ा था।

प्रश्न 4—शिवाजी के 'अष्ट-प्रधान' के विषय में आप क्या जानते हैं?

उत्तर—इसी अध्याय के दीर्घ उत्तरीय प्रश्न संख्या 3 में 'अष्ट-प्रधान' नामक शीर्षक देखिए।

प्रश्न 5—पेशवा बाजीराव प्रथम कौन था?

अथवा **बाजीराव प्रथम ने किस प्रकार मराठा साम्राज्य की वृद्धि की?**

उत्तर—पेशवा बाजीराव, बालाजी विश्वनाथ का पुत्र था, जो 1720 ई० में प्रथम पेशवा बना। उसे छत्रपति शाहू ने पेशवा पद पर आसीन किया था। पेशवा बनने पर बाजीराव प्रथम ने मालवा, गुजरात तथा कर्नाटक आदि राज्यों पर विजय प्राप्त की। उसे निजाम से भी दो बार भयंकर युद्ध करना पड़ा। 1740 ई० में बाजीराव प्रथम की मृत्यु हो गई थी।

ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों एवं व्यक्तियों पर आधारित प्रश्न

प्रश्न 1—निम्नांकित तिथियों की ऐतिहासिकता पर प्रकाश डालिए—

उत्तर—(1) 1627 ई० *(1990)*—इस तिथि (20 अप्रैल, 1627 ई०) को महाराष्ट्र के महान शासक शिवाजी का जन्म शिवनेर के दुर्ग में हुआ था। शिवाजी की जन्म-तिथि विवादास्पद है। कुछ इतिहासकार उनकी जन्मतिथि 19 फरवरी, 1620 ई० बताते हैं।

(2) 1646 ई०—इस तिथि को शिवाजी ने तोरण के दुर्ग पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया था। यह शिवाजी की प्रथम महत्त्वपूर्ण विजय थी।

(3) 1648 ई०—इस तिथि को शिवाजी ने पुरन्दर के दुर्ग पर विजय प्राप्त की थी। इसी वर्ष बीजापुर के सुल्तान ने शिवाजी के पिता शाहजी भोंसले को वन्दी बना लिया था और उनकी जागीर भी छीन ली थी।

(4) 1656 ई०—इस तिथि को शिवाजी ने चन्द्राराव मोरे को पराजित करके सामरिक महत्त्व के जावली दुर्ग पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया था।

(5) 1659 ई०—इस तिथि को शिवाजी ने बीजापुरी सेनापति अफ़जल खाँ का वध कर दिया था।

(6) 1665 ई० *(1999)*—इस तिथि को शिवाजी ने मुगल सेना से पराजित होकर मिर्जा राजा जयसिंह से पुरन्दर की सन्धि की थी।

(7) 1666 ई०—इस तिथि को शिवाजी आगरा गए थे। आगरा में मुगल सम्राट औरंगजेब ने उन्हें बन्दी बना लिया था। बाद में वे चालाकी से काम लेकर कैदखाने से निकल भागे थे और महाराष्ट्र पहुँच गए थे।

(8) 1674 ई० *(1994, 95, 96)*—इस तिथि को शिवाजी का रायगढ़ में बड़ी धूमधाम के साथ राज्याभिषेक हुआ था और उन्होंने 'छत्रपति' की उपाधि धारण की थी।

(9) 1675 ई० *(1996, 99)*—शिवाजी द्वारा पश्चिमोत्तर सीमान्त का नियन्त्रण और कोल्हापुर पर आक्रमण और लूट में 1500 हून की प्राप्ति।

(10) 1680 ई०—इस तिथि को महान शिवाजी की मृत्यु हुई थी और उनका पुत्र शम्भाजी छत्रपति की गद्दी पर आसीन हुआ था।

(11) 1689 ई० *(1996)*—इस तिथि को औरंगजेब ने शिवाजी के पुत्र शम्भाजी का निर्दयतापूर्वक वध करवा दिया था। शम्भाजी की मृत्यु के बाद राजाराम मराठों का नेता बना था।

(12) 1700 ई०—इस तिथि को राजाराम की मृत्यु हुई थी और मराठों का नेतृत्व उसकी विधवा पत्नी ताराबाई ने ग्रहण कर लिया था।

(13) 1707 ई० *(1994, 95, 97, 99)*—इस तिथि को ताराबाई और शाहूजी के मध्य गृहयुद्ध हुआ था, जिसमें शाहूजी को विजय मिली थी। 1708 ई० में शाहूजी छत्रपति बन गया था।

(14) 1720 ई० *(1992, 96, 97)*—इस तिथि को बाजीराव प्रथम पेशवा हुआ था।

(15) 1739 ई० *(1994, 96, 97)*—इस तिथि को ईरान के सम्राट नादिरशाह ने दिल्ली पर आक्रमण किया था और वह अपार सम्पत्ति लूटकर ले गया था।

(16) 1752 ई० *(1997)*—इस तिथि को पेशवा बालाजी बाजीराव ने गाजीउद्दीन खाँ को परास्त किया। इसी तिथि को आसफ़जाह के तीसरे पुत्र सलाबतजंग को हैदराबाद का राजसिंहासन प्राप्त हुआ।

(17) 1757 ई० *(1992)*—इस तिथि को ही प्लासी का निर्णायक युद्ध हुआ था।

(18) 1761 ई० *(1990, 91, 94, 95, 97, 99)*—इस तिथि (14 जनवरी, 1761 ई०) को मराठों और अहमदशाह अब्दाली के मध्य पानीपत का तीसरा निर्णायक युद्ध हुआ था। इस युद्ध में मराठों की पराजय हुई थी और उन्हें अपार जन-धन की हानि उठानी पड़ी थी।

(19) 1763 ई० *(1992)*—इस तिथि को पेरिस में हुई एक सन्धि से कर्नाटक का तीसरा युद्ध समाप्त हो गया।

(20) 1764 ई० *(1992, 93, 94, 95, 96)*—यह तिथि बक्सर के ऐतिहासिक युद्ध के लिए प्रसिद्ध है। यह अंग्रेजों और बंगाल के नवाब मीर कासिम के बीच हुआ था।

(21) 1765 ई० *(1999)*—इस तिथि को अंग्रेजों और मुगल सम्राट शाहआलम द्वितीय के बीच इलाहाबाद की सन्धि हुई थी। इस सन्धि में अवध का नवाब शुजाउद्दौला भी शामिल था। इस सन्धि के फलस्वरूप अंग्रेजों को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी के अधिकार प्राप्त हो गए थे।

प्रश्न 2—निम्नलिखित ऐतिहासिक स्थलों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) शिवनेर—पूना के निकट एक पहाड़ी पर शिवनेर का दुर्ग स्थित है। इसी दुर्ग में शिवाजी का जन्म हुआ था। शिवनेर में अनेक ऐतिहासिक इमारतें दर्शनीय हैं।

(2) **रायगढ़**—महाराष्ट्र में स्थित रायगढ़ का दुर्ग दर्शनीय स्थान है। इसी दुर्ग में, 1674 ई० में, शिवाजी का राज्याभिषेक हुआ था और 1680 ई० में,इसी दुर्ग में शिवाजी ने अपने जीवन की अन्तिम साँस ली थी।

(3) **सूरत**—गुजरात में स्थित बड़ौदा से 129 किमी दूर सूरत की अनेक इमारतें व दुर्ग दर्शनीय हैं।

(4) **पूना** *(1991, 95, 96, 99)*—पूना महाराष्ट्र का महत्त्वपूर्ण नगर है और बम्बई (मुम्बई) से लगभग 200 किमी दूर स्थित है। कुछ समय तक पूना शिवाजी की राजधानी रहा था। इसी नगर में मराठा शासकों द्वारा निर्मित अनेक दर्शनीय इमारतें हैं।

प्रश्न 3—निम्नांकित ऐतिहासिक व्यक्तियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) अफजल खाँ—अफजल खाँ का वास्तविक नाम अब्दुल्ला भटारी था। वह बड़ा वीर, अनुभवी और शक्तिशाली सेनापति था। बीजापुर के सुल्तान ने उसे शिवाजी को जिन्दा या मुर्दा बन्दी बनाने का आदेश दिया। अफजल खाँ ने बीजापुर के भरे दरबार में यह शेखी मारी कि वह 'पहाड़ी चूहे' (शिवाजी) को पिंजरे में बन्द करके ले आएगा। अफजल खाँ ने शिवाजी के पास कृष्णाजी भास्कर को अपना दूत बनाकर भेजा और उनसे मिलने की इच्छा प्रकट की। शिवाजी ने इस दूत से अफजल खाँ का वास्तविक उद्देश्य जान लिया और उसी के अनुरूप उन्होंने तैयारी कर ली। प्रतापगढ़ के दुर्ग के पास अफजल खाँ और शिवाजी की भेंट हुई। इस अवसर पर पहला वार अफजल खाँ ने किया,परन्तु लोहे का कवच होने के कारण शिवाजी का बाल बाँका भी न हो सका। तुरन्त शिवाजी ने बघनखा से अफजल खाँ का पेट फाड़ दिया और बाद में कटार से उसका वध कर दिया।

(2) **शाइस्ता खाँ**—शाइस्ता खाँ औरंगजेब का मामा और दक्षिण का सूबेदार था। औरंगजेब के आदेश पर शाइस्ता खाँ ने शिवाजी पर आक्रमण किया और उनके अनेक दुर्गों को जीत लिया। वह पूना को जीतकर वहीं निवास करने लगा। 15 अप्रैल, 1663 ई० को शिवाजी ने पूना पर आक्रमण कर दिया। इस युद्ध अभियान में शाइस्ता खाँ घायल होकर भाग निकला। उससे रुष्ट होकर औरंगजेब ने उसे सूबेदार बनाकर भेज दिया।

(3) **मिर्जा राजा जयसिंह** *(1991)*—राजा जयसिंह एक वीर राजपूत और औरंगजेब की सेना के प्रमुख सेनापति थे। सम्राट के आदेश पर आपने शिवाजी को 1665 ई० में पुरन्दर की सन्धि स्वीकार करने के लिए बाध्य किया और बाद में बीजापुर पर विजय प्राप्त की। 1668 ई० में आपकी मृत्यु हो गई थी।

(4) **शम्भाजी**—शम्भाजी शिवाजी का ज्येष्ठ पुत्र था। शिवाजी की मृत्यु के बाद वह रायगढ़ की गद्दी पर आसीन हुआ। वह अपने पिता के समान योग्य और दूरदर्शी न था। वह बड़ा विलासी और प्रमादी था। उसने औरंगजेब के विद्रोही पुत्र शहजादा अकबर को शरण दी थी, लेकिन वह उसकी सहायता करने में सर्वथा विफल रहा। 1689 ई० में औरंगजेब ने उसे कैद करवा लिया और निर्दयतापूर्वक उसका वध करवा दिया।

(5) **राजाराम**—राजाराम शिवाजी का दूसरा पुत्र और शम्भाजी का सौतेला भाई था। शम्भाजी की मृत्यु के पश्चात् उसने मराठों का नेतृत्व ग्रहण किया और मुगलों से संघर्ष जारी रखा। 1707 ई० में अल्प आयु में ही राजाराम की मृत्यु हो गई।

(6) **शाहूजी**—शाहूजी शम्भाजी का पुत्र था। नवम्बर, 1689 ई० में औरंगजेब ने उसे बन्दी बनाकर आगरा के दुर्ग में छोड़ दिया। 1707 ई० में शाहूजी को कैद से मुक्ति मिली और 1708 ई० में ताराबाई को हराकर उसने छत्रपति की गद्दी प्राप्त कर ली। उसने 1750 ई० तक शासन किया। उसके शासनकाल में शासन-सत्ता पेशवाओं के हाथ में चली गई थी।

(7) **ताराबाई**—ताराबाई एक वीर व साहसी महिला थी। वह राजाराम की पत्नी थी। राजाराम की मृत्यु के पश्चात् ताराबाई ने अपने पुत्र 'शिवाजी द्वितीय' की संरक्षिका के रूप में शासन सत्ता सँभाली। 1700 से 1707 ई० तक इस वीर महिला ने मुगलों के विरुद्ध संघर्ष जारी रखा। औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् जब शाहूजी कैद से बाहर आया, तो उसने गद्दी के लिए ताराबाई के विरुद्ध गृहयुद्ध छेड़ दिया। इस गृहयुद्ध में शाहूजी की विजय प्राप्त हुई और ताराबाई की सत्ता समाप्त हो गई।

6 यूरोपीय शक्तियों का भारत में प्रवेश

[पुर्तगाली, डच, अँग्रेज तथा फ्रांसीसी]

"अठारहवीं शताब्दी में अँग्रेजों तथा फ्रांसीसियों के बीच समुद्र पार करके साम्राज्य के लिए किए गए लम्बे तथा कठिन संघर्ष के संक्षिप्त घटनाचक्र में सर्वाधिक चमत्कारी व्यक्ति डूप्ले ही था।" —अल्फ्रेड लॉयल

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—सत्रहवीं शताब्दी में भारत में यूरोपीय व्यापारिक कम्पनियों की गतिविधियों का वर्णन कीजिए। *(1994)*

उत्तर— भारत में प्रवेश करने वाले यूरोपीय व्यापारी

पन्द्रहवीं शताब्दी से लेकर सत्रहवीं शताब्दी तक भारत में व्यापार करने के उद्देश्य से पुर्तगाली, डच, फ्रांसीसी और अँग्रेज आए। इनमें डच, फ्रांसीसी और अँग्रेजों ने भारत में अपनी व्यापारिक कम्पनियों की स्थापना भी की। इन व्यापारिक कम्पनियों की गतिविधियों का संक्षिप्त वर्णन इस प्रकार है—

(1) पुर्तगाली—भारत में सर्वप्रथम पुर्तगाली आए। **वास्कोडिगामा** ने 1572 ई० में कालीकट के राजा से अनुमति लेकर भारत में व्यापार करना आरम्भ कर दिया। **अल्मीडा** (1505-1509) पुर्तगाली बस्तियों का प्रथम गवर्नर बनकर भारत आया। इसके बाद, **अल्बुकर्क** (1509-1515) ने भारत में पुर्तगाली साम्राज्य का विस्तार किया।

पुर्तगालियों के भारत आने के उद्देश्य निम्नलिखित थे—

(i) भारत से व्यापार करना।
(ii) पश्चिमी तट से अरबवासियों के व्यापार को समाप्त करना।
(iii) भारत में अपनी सत्ता स्थापित करना।
(iv) भारत में ईसाई धर्म का प्रचार करना।

(2) डच—हॉलैण्डवासी डचों ने 1602 ई० में **'डच ईस्ट इण्डिया कम्पनी'** की स्थापना की। उसने 21 वर्षों के लिए पूरब से व्यापार करने, युद्ध छेड़ने, सन्धि करने, भूमि प्राप्त करने तथा दुर्ग बनाने का अधिकार प्राप्त किया। डचों को पुर्तगालियों और अँग्रेजों से संघर्ष करना पड़ा। डच; पुर्तगालियों को हटाने में सफल रहे, परन्तु अँग्रेजों से उन्हें पराजित होना पड़ा।

भारत में प्रवेश करने वाले यूरोपीय व्यापारी
(1) पुर्तगाली
(2) डच
(3) अँग्रेज
(4) फ्रांसीसी।

भारत में डचों के निम्न दो उद्देश्य थे—

(i) व्यापार करना।
(ii) राजनीतिक सत्ता स्थापित करना।

(3) अँग्रेज—दिसम्बर, 1600 ई० में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना के बाद अँग्रेजों ने भारत से व्यापार करना प्रारम्भ किया। **कैप्टन हाकिन्स** (1611) और **सर टामस रो** (1615) ने जहाँगीर से भारत में व्यापार करने का अनुमति-पत्र प्राप्त किया। इसके उपरान्त अँग्रेजों ने पहले डचों और बाद में फ्रांसीसियों को हटाकर भारत के व्यापार पर अपना एकाधिकार स्थापित कर लिया।

भारत में इनके निम्न उद्देश्य थे—

(i) भारत के व्यापार पर एकाधिकार स्थापित करना।
(ii) भारत में अँग्रेजी सत्ता की स्थापना करना।

(iii) भारत में ईसाई धर्म का प्रचार व प्रसार करना।

(4) फ्रांसीसी—सन् 1644 ई० में 'फ्रेंच ईस्ट इण्डिया कम्पनी' की स्थापना हुई। फ्रांसीसियों ने पाण्डिचेरी (1674) और चन्द्रनगर (1690-92) में व्यापारिक कोठियाँ बनाकर भारत में व्यापार करना प्रारम्भ किया। धीरे-धीरे उन्होंने अनेक उपनिवेश स्थापित किए। सर्वप्रथम डूप्ले ने भारत में फ्रांसीसी साम्राज्य स्थापित करने का स्वप्न देखा। परिणामस्वरूप फ्रांसीसियों और अँग्रेजों के मध्य कई वार युद्ध हुआ। अन्त में, फ्रांसीसी अंग्रेजों के समक्ष पराजित हुए।

भारत में फ्रांसीसियों के निम्नलिखित उद्देश्य थे—

(i) भारत से व्यापार करके अधिक-से-अधिक धन कमाना।

(ii) भारत में फ्रांसीसी सत्ता की स्थापना करना।

इस प्रकार, सत्रहवीं शताब्दी में भारत में डच, फ्रांसीसी और अँग्रेज शक्तियों के मध्य व्यापारिक एवं साम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा पर आधारित संघर्ष का वातावरण वना रहा और अन्ततः अँग्रेजों को ही अपने लक्ष्य की प्राप्ति में सफलता मिली।

प्रश्न 2—डूप्ले की नीति की समीक्षा कीजिए और बताइए कि फ्रांसीसियों की असफलता के क्या कारण थे?

अथवा* भारत में साम्राज्य स्थापित करने में अँग्रेजों की सफलता तथा फ्रांसीसियों की विफलता के कारणों का विश्लेषण कीजिए। *(1991)

अथवा* भारत में अँग्रेजों और फ्रांसीसियों के संघर्ष में अँग्रेजों की सफलता और फ्रांसीसियों की असफलता के कारणों का विश्लेषण कीजिए। *(1991)

अथवा* अँग्रेजों और फ्रांसीसियों के बीच हुए युद्ध का संक्षिप्त वर्णन कीजिए। *(1992)

अथवा* अँग्रेजों और फ्रांसीसियों के बीच हुए कर्नाटक के संघर्ष का वर्णन कीजिए। *(1995)

अथवा* भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने में अँग्रेजों की प्रतिद्वन्द्विता के समक्ष फ्रांसीसी क्यों विफल रहे? *(1995, 96)

उत्तर—

डूप्ले का चरित्र

फ्रांस के महान सेनानायक डूप्ले की गणना विश्व के उन महान सेनानायकों और राजनीतिज्ञों में की जाती है, जिन्होंने इतिहास में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। यह तथ्य उल्लेखनीय है कि डूप्ले ने जीवन में असफल होकर भी अपार यश प्राप्त किया। उसके गुणों की प्रशंसा करते हुए थार्टन ने लिखा है, **"फ्रांसीसी गवर्नर डूप्ले भारत में अपने देश के व्यापार की उन्नति का उद्देश्य लेकर ही नहीं आया था, वरन् भारत में अपना प्रभुत्व स्थापित करने के उद्देश्य से भी आया था।"**

डूप्ले पर्याप्त विद्वान एवं गुणी था। जिस समय डूप्ले भारत आया, उसी समय दक्षिण भारत में अँग्रेजों ने भी पदार्पण किया था। फ्रांसीसी और अँग्रेज दोनों ही भारत पर अपना राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करना चाहते थे। अतः दोनों में अनेक युद्ध हुए। इसलिए इन युद्धों का नाम कर्नाटक युद्ध पड़ा। मैलेसन के कथनानुसार, **"डूप्ले एक महान प्रशासक तथा कूटनीतिज्ञ था। उसमें संगठन की महान शक्ति तथा अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए गहरी लगन थी।"**

डूप्ले के उद्देश्य और नीति

भारत में डूप्ले की व्यापार एवं साम्राज्य से सम्बन्धित नीतियों तथा अँग्रेजी शक्ति के साथ हुए संघर्ष का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(1) व्यापार सम्बन्धी नीति—प्रारम्भ में डूप्ले भी यूरोपीय लोगों की भाँति ही व्यापार का उद्देश्य लेकर भारत आया था, किन्तु थोड़े समय पश्चात् ही उसे व्यापार से अरुचि हो गई। उसको यह भी अनुभव हो गया कि अँग्रेजी व्यापार के आगे फ्रांसीसियों के व्यापार को सफल बनाना असम्भव है। अतः ऐसी स्थिति में उसने व्यापार के स्थान पर भारत में अपना साम्राज्य विस्तार करके, अपने देश को समृद्धिशाली बनाने का निश्चय किया।

(2) साम्राज्य की स्थापना सम्बन्धी नीति—डूप्ले को राजनीति से विशेष प्रेम था इसलिए उसने भारत आने पर, यहाँ की राजनीतिक स्थिति का अध्ययन, बड़े मनोयोग से किया और अन्त में वह इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि भारत पर फ्रांसीसी सत्ता बड़ी सरलतापूर्वक स्थापित की जा सकती है। इस कार्य के लिए उसने कम्पनी की 'रक्षा सेना' का प्रयोग करने की योजना बनाई।

(3) अँग्रेजों की शक्ति का दमन करना—डूप्ले अँग्रेजों का प्रबल विरोधी था। वह भारत से अपने विरोधी अँग्रेजों को निकालने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ था। उसका कथन था,

"मेरे उद्देश्यों की पूर्ति तब तक नितान्त असम्भव है जब तक कि मैं अँग्रेजों को भारत से न निकाल दूँ।"

(4) भारतीय शासकों के झगड़ों में हस्तक्षेप की नीति—डूप्ले एक दूरदर्शी कूटनीतिज्ञ था। उसने सोचा कि भारतीय राजाओं के झगड़ों में हस्तक्षेप करके एवं किसी शक्तिशाली राजा से मैत्री करके ही शक्ति प्राप्त की जा सकती है और अँग्रेजों को भारत से निकाला जा सकता है।

डूप्ले के उद्देश्य और नीति

(1) व्यापार सम्बन्धी नीति
(2) साम्राज्य की स्थापना सम्बन्धी नीति
(3) अँग्रेजों की शक्ति का दमन करना
(4) भारतीय शासकों के झगड़ों में हस्तक्षेप की नीति
(5) भारतीय सेनाओं के प्रयोग की नीति।

(5) भारतीय सेनाओं के प्रयोग की नीति—डूप्ले यह जानता था कि अँग्रेजों की तुलना में उसकी सैनिक शक्ति कमजोर है। अतः उसने भारतीय सेनाओं को यूरोपीय ढंग की सैनिक शिक्षा देनी प्रारम्भ की। परिणामस्वरूप थोड़े ही समय में उसके पास एक विशाल और प्रशिक्षित सेना तैयार हो गई।

डूप्ले की नीति के परिणाम

डूप्ले की नीति के परिणामों को निम्न दो शीर्षकों के अन्तर्गत स्पष्ट किया जा सकता है—

(i) सफलताएँ—फ्रांसीसी गवर्नर डूप्ले ने पहले मद्रास पर अपना अधिकार जमाया। इसके बाद, कर्नाटक के नवाब अनवरुद्दीन को पराजित कर उसके क्षेत्र पर अपना अधिकार किया। उसने भारतीय नरेशों के विवादों में हस्तक्षेप की नीति द्वारा हैदराबाद और कर्नाटक पर भी अपना आधिपत्य स्थापित किया। डूप्ले अपने मित्र चाँदा साहब को कर्नाटक का नवाब और मुजफ्फर जंग को हैदराबाद का सूबेदार बनाने में भी सफल हुआ था।

(ii) विफलताएँ—सन् 1751 ई॰ से डूप्ले का भाग्य दुर्भाग्य में बदल गया। इंगलैण्ड के रॉबर्ट क्लाइव की अर्काट विजय से डूप्ले की सफलताओं पर पानी फिर गया। लेकिन डूप्ले ने इसका समाचार फ्रांस की सरकार को नहीं दिया। अतः फ्रांसीसी सरकार को डूप्ले पर सन्देह हो गया और फ्रांसीसी सरकार ने 1754 ई॰ में उसे वापस बुला लिया। डूप्ले की वापसी फ्रांस के लिए बहुत हानिकारक सिद्ध हुई।

अँग्रेजों के विरुद्ध फ्रांसीसियों की पराजय के कारण

अँग्रेजों के विरुद्ध फ्रांसीसियों की पराजय के निम्न कारण थे—

(1) व्यापार की शोचनीय दशा—फ्रांसीसी व्यापार की स्थिति अँग्रेजी व्यापार की तुलना में बहुत शोचनीय थी। अँग्रेजों का अकेले बम्बई में ही इतना विस्तृत व्यापार था कि कई फ्रांसीसी बस्तियों का व्यापार मिलकर भी उसकी बराबरी नहीं कर सकता था। अँग्रेज व्यापारियों ने कभी भी व्यापार की उपेक्षा नहीं की, क्योंकि वे सोचते थे कि इसी के माध्यम से भारत में धीरे-धीरे पैर जमाना सम्भव है। इसलिए अँग्रेजों की आर्थिक स्थिति बहुत सुदृढ़ थी।

(2) दुर्बल सामुद्रिक शक्ति—इंगलैण्ड विश्व में सामुद्रिक शक्ति के मामले में अजेय था, जबकि फ्रांसीसियों ने सामुद्रिक शक्ति को विशेष महत्त्व नहीं दिया। इस कारण भी फ्रांसीसियों की पराजय हुई। फ्रांसीसी इतिहासकार मार्टिन ने लिखा है, **"नौशक्ति की दुर्बलता ही वह प्रधान कारण थी, जिसने डूप्ले की सफलता का विरोध किया।"**

इसके विपरीत, अँग्रेजों की सामुद्रिक स्थिति इतनी सुदृढ़ थी कि वे आवश्यकतानुसार कर्नाटक में यूरोप से अँग्रेजी सेनाएँ तथा बंगाल से रसद आदि भेज सकते थे। लेकिन फ्रांसीसियों को ऐसी सुविधा प्राप्त न थी।

(3) फ्रांसीसी कम्पनी पर सरकारी नियन्त्रण—अँग्रेजी कम्पनी एक व्यक्तिगत कम्पनी थी और उसकी आर्थिक स्थिति बहुत सुदृढ़ थी जबकि फ्रांसीसी कम्पनी एक सरकारी कम्पनी थी। इस कारण अपनी सहायता के लिए उसे फ्रांसीसी सरकार पर आश्रित रहना पड़ता था और फ्रांसीसी सरकार समय पर आर्थिक सहायता नहीं दे पाती थी।

अँग्रेजों के विरुद्ध फ्रांसीसियों की पराजय के कारण

(1) व्यापार की शोचनीय दशा
(2) दुर्बल सामुद्रिक शक्ति
(3) फ्रांसीसी कम्पनी पर सरकारी नियन्त्रण
(4) फ्रांसीसियों में एकता का अभाव
(5) योग्य सेनापतियों का अभाव
(6) डूप्ले द्वारा अपनी असफलताओं को छिपाना
(7) डूप्ले की फ्रांस वापसी
(8) भारतीय नरेशों की मित्रता से हानि
(9) अँग्रेजों द्वारा बंगाल की विजय
(10) फ्रांसीसियों की अपेक्षा अंग्रेजों को अधिक समृद्ध क्षेत्रों की प्राप्ति
(11) लैली का असहयोगात्मक एवं घमण्डी स्वभाव।

(4) फ्रांसीसियों में एकता का अभाव—ईस्ट इण्डिया कम्पनी के भारतीय उच्चाधिकारी उच्चकोटि के राजनीतिज्ञ और कुशल शासक थे। फ्रांसीसी कम्पनी के डूप्ले, बुसी, लैली आदि में यद्यपि अनेक गुण थे फिर भी वे अँग्रेजों के समकक्ष कुशल राजनीतिज्ञ न थे। उनमें अँग्रेज राजनीतिज्ञों क्लाइव और लारेंस जैसे कुशल संगठनकर्त्ताओं के समान कार्यक्षमता न थी। इन अधिकारियों में आपस में एकता की भावना भी नहीं थी। इस प्रकार, एकता और संगठन के अभाव के कारण फ्रांसीसियों को असफलता ही प्राप्त हुई।

(5) योग्य सेनापतियों का अभाव—फ्रांसीसी सेना में योग्य सेनापतियों का अभाव था। फ्रांसीसी सेनापति अयोग्य और रण-विद्या में अकुशल थे। इन्हें फ्रांस के मान-सम्मान की कोई चिन्ता नहीं रहती थी। इसके अतिरिक्त, अस्त्र-शस्त्रों का भी फ्रांसीसियों के पास सदैव अभाव बना रहता था।

(6) डूप्ले द्वारा अपनी असफलताओं को छिपाना—डूप्ले भारत में व्यापार की उन्नति का उद्देश्य लेकर आया था। यहाँ आकर उसने फ्रांसीसी साम्राज्य की स्थापना का विचार बना लिया, लेकिन इस विचार से उसने फ्रांसीसी सरकार और उच्च अधिकारियों को अवगत नहीं कराया। यहाँ तक कि जब उसे अपने सीमित साधनों के कारण सफलता प्राप्त नहीं हुई तब भी उसने सरकार को सूचना नहीं दी। वास्तव में, यह डूप्ले की भयंकर भूल थी जिसके कारण फ्रांसीसियों की असफलता निश्चित हो गई।

(7) डूप्ले की फ्रांस वापसी—यह फ्रांसीसी सरकार का दुर्भाग्य ही कहा जा सकता है कि उसने डूप्ले के विचारों को जानने या सम्मान देने की आवश्यकता अनुभव नहीं की और उसे ऐसे समय में फ्रांस बुला लिया, जबकि भारत में उसकी अत्यन्त आवश्यकता थी। यदि वह कुछ समय तक और रहता और फ्रांसीसी सरकार से उसे पर्याप्त सहायता मिलती तो वह भारत में फ्रांसीसी साम्राज्य की सत्ता स्थापित करने में सफल हो सकता था।

(8) भारतीय नरेशों की मित्रता से हानि—डूप्ले को चाँदा साहब की मित्रता से कोई लाभ प्राप्त नहीं हुआ। चाँदा साहब ने उसकी इच्छा के अनुसार समयानुकूल त्रिचनापल्ली पर चढ़ाई नहीं की और तंजौर की धनराशि प्राप्त करने के लिए ही संघर्ष करता रहा। परिणामस्वरूप त्रिचनापल्ली पर शीघ्र विजय प्राप्त नहीं की जा सकी। इसके पश्चात् जब चाँदा साहब ने त्रिचनापल्ली पर घेरा डाला, तो भी उसने डूप्ले की इच्छा के विरुद्ध आधी सेना अर्काट भेज दी और अन्ततः उसका कोई भी संतोषजनक फल नहीं मिला। इसके अतिरिक्त, उसका मित्र हैदराबाद का वीर सूबेदार मुजफ्फर जंग भी संघर्ष में मारा गया।

(9) अँग्रेजों द्वारा बंगाल की विजय—कर्नाटक के तृतीय युद्ध तक अँग्रेज बंगाल पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर चुके थे और बंगाल का धन, सम्पत्ति आदि सब उनके अधिकार में आ गए थे। बंगाल से प्राप्त सुविधाओं से ही मद्रास का अँग्रेज गवर्नर तीन वर्षों तक फ्रांसीसियों से सफलतापूर्वक युद्ध करता रहा था।

अन्ततः फ्रांसीसियों के साधन समाप्त हो गए और पाण्डिचेरी का पतन हो गया, जिससे फ्रांसीसियों को अँग्रेजों के विरुद्ध सहायता मिलनी वन्द हो गई। 1757 ई० में प्लासी के निर्णायक युद्ध में विजय प्राप्त हो जाने के बाद अँग्रेजों की स्थिति अत्यधिक सुदृढ़ हो गई थी।

(10) फ्रांसीसियों की अपेक्षा अँग्रेजों को अधिक समृद्ध क्षेत्रों की प्राप्ति—डूप्ले को अपनी सफलताओं के फलस्वरूप कर्नाटक और पाण्डिचेरी जैसे निर्धन प्रान्त मिले थे। इसके विपरीत, अँग्रेजों को बंगाल जैसा समृद्धशाली प्रदेश मिला, जिससे अँग्रेजों की स्थिति दिन दोगुनी रात चौगनी गति से सुदृढ़ होनी चली गई।

(11) लैली का असहयोगात्मक एवं घमण्डी स्वभाव—फ्रांसीसियों की पराजय के लिए फ्रांसीसी सेनापति लैली भी कम उत्तरदायी नहीं था। वह घमण्डी, जल्दबाज तथा क्रोधी स्वभाव का था। फलस्वरूप उसे अन्य कर्मचारियों का सहयोग प्राप्त न हो सका और भारत में फ्रांसीसी सत्ता की सम्भावना समाप्त हो गई।

इन्हीं कारणों से अँग्रेजों के समक्ष फ्रांसीसियों की पराजय हुई। भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने की प्रतियोगिता में फ्रांसीसी पराजित हो गए और अँग्रेज विजयी हुए। इस प्रकार, डूप्ले की सम्पूर्ण योजनाओं पर पानी फिर गया, तथापि अनेक कारणों से उसका नाम इतिहास में अमर रहेगा।

अल्फ्रेड लॉयल के शब्दों में, "अठारहवीं शताब्दी में अँग्रेजों तथा फ्रांसीसियों के बीच समुद्र पार के साम्राज्य के लिए किए गए लम्बे तथा कठिन संघर्ष के संक्षिप्त घटना-चक्र में सबसे अधिक चमत्कारी व्यक्ति डूप्ले ही था।"

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—भारत में पुर्तगाली शक्ति के उत्थान और पतन पर टिप्पणी लिखिए।

उत्तर— **भारत में पुर्तगाली शक्ति का उत्थान-पतन**

सर्वप्रथम पुर्तगाली नाविक वास्कोडिगामा ने भारत के समुद्री मार्ग की खोज की। 1498 ई० में वह भारत के वन्दरगाह कालीकट पर उतरा और वहाँ के राजा जमोरिन से उसने कुछ व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त कीं। इसके पश्चात् अल्बुकर्क व डीनोवा नामक पुर्तगाली भारत आए और उन्होंने कोचीन में अपनी एक व्यापारिक कोठी स्थापित की। इसके पश्चात्, अल्मीडा नामक गवर्नर के काल में पुर्तगाली शक्ति का भारत में विस्तार हुआ। 1510 ई० में अल्बुकर्क ने गोवा पर अधिकार कर लिया था। अल्बुकर्क के काल में पुर्तगालियों की शक्ति बहुत अधिक बढ़ गई थी। उसने दमन, दीव, लंका आदि स्थानों पर अपनी सत्ता स्थापित कर ली और बाद में सूरत, बेसीन, नेगापट्टम, सेण्ट हाम (मद्रास), मछलीपट्टनम तथा हुगली में भी पुर्तगाली कोठियाँ बन गईं; लेकिन फिर भी पुर्तगालियों को डचों से पराजित होना पड़ा।

प्रश्न 2—भारत में डचों के उत्थान और पतन का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उत्तर— **भारत में डचों का उत्थान-पतन**

सन् 1602 ई० में हॉलैण्ड के व्यापारियों की संयुक्त डच इण्डिया कम्पनी ने भारत में व्यापार करना प्रारम्भ किया। परन्तु कुछ समय के बाद डचों का पुर्तगालियों के साथ संघर्ष शुरू हो गया। डचों ने पुर्तगालियों को हराकर 1610 ई० में पुलीकट, 1616 ई० में सूरत, 1653 ई० में चिनसुरा, 1659 ई० में कासिम वाजार, वटाविया नगर, नेगापट्टम तथा 1663 ई० में कालीकट में अपनी बस्तियाँ स्थापित कर लीं। इस अवधि में डचों का अँग्रेजों से भी संघर्ष चलता रहा। अन्त में, 1759 ई० में डच कम्पनी अँग्रेजों से बुरी तरह पराजित होकर, भारत की राजनीति से पृथक् हो गई थी।

प्रश्न 3—कर्नाटक के युद्धों के विषय में आप क्या जानते हैं?

उत्तर : कर्नाटक के युद्ध—भारत में फ्रांसीसी व अँग्रेज शक्ति की सर्वोच्चता का निर्णय कर्नाटक के युद्धों में हुआ। कर्नाटक के तीन युद्ध हुए—पहला युद्ध 1746 से 1748 ई० तक, दूसरा कर्नाटक युद्ध 1748 से 1755 ई० तक और तीसरा कर्नाटक युद्ध 1756 से 1763 ई० तक। इन युद्धों का अन्त 1763 ई०

की पेरिस सन्धि से हुआ। इन युद्धों के अन्त में फ्रांसीसियों की हार और अँग्रेजों की विजय हुई। इसके परिणामस्वरूप भारत में अँग्रेजी साम्राज्य की स्थापना सुनिश्चित हो गई।

प्रश्न 4—फ्रांसीसियों की पराजय के चार कारण लिखिए। *(1991)*

अथवा **अँग्रेजों के विरुद्ध फ्रांसीसियों की पराजय के कोई चार कारण बताइए।** *(1994)*

अथवा **दक्षिण में आंग्ल-फ्रांसीसी संघर्षों में फ्रांसीसियों की पराजय के कोई चार कारण समझाइए।** *(1996)*

उत्तर—फ्रांसीसियों की पराजय के चार कारण इस प्रकार थे—

(1) फ्रांसीसी सरकार ने कम्पनी को पूरा समर्थन व सहयोग नहीं दिया था।

(2) फ्रांसीसी सेनानायकों में आपसी तालमेल नहीं था।

(3) फ्रांसीसी सैनिक ब्रिटिश सैनिकों की अपेक्षा कुशल नहीं थे।

(4) फ्रांसीसी सरकार ने डूप्ले को वापस बुला लिया था, जबकि उस संघर्षमय स्थिति में उसकी उपस्थिति भारत में अनिवार्य थी।

प्रश्न 5—भारत में अँग्रेजों और फ्रांसीसियों के मध्य संघर्ष के किन्हीं चार कारणों का उल्लेख कीजिए। *(1993, 95)*

उत्तर—अँग्रेजों और फ्रांसीसियों के मध्य संघर्ष के चार प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

(1) व्यापारिक प्रतिस्पर्द्धा।

(2) भारत में अपने साम्राज्यों का प्रसार करने हेतु प्रतिस्पर्धा।

(3) डूप्ले की उच्च महत्त्वाकांक्षाएँ।

(4) फ्रांसीसियों का व्यापार में असफल हो जाना।

प्रश्न 6—पुर्तगालियों की असफलता के क्या कारण थे? *(1994)*

अथवा **भारत में पुर्तगालियों की असफलता के कोई चार कारण बताइए।** *(1994)*

उत्तर—भारत में पुर्तगालियों की असफलता के निम्नलिखित कारण थे—

(1) पुर्तगाली धार्मिक दृष्टि से असहिष्णु थे। इसलिए वे भारत के हिन्दू और मुसलमान दोनों की श्रद्धा तथा सहानुभूति खो बैठे और उनका विरोध पुर्तगालियों की विफलता का कारण बना।

(2) पुर्तगालियों की व्यापार-प्रणाली भ्रष्टाचार, बेईमानी तथा लूट-खसोट पर आधारित थी।

(3) स्पेन की पुर्तगाल पर विजय हो जाने से भारत में भी पुर्तगालियों की शक्ति क्षीण हो गई।

(4) विजय नगर साम्राज्य के पतन (1565) से पुर्तगालियों के व्यापार को गहरा आघात लगा और उनकी आर्थिक दशा शोचनीय होने लगी।

(5) अल्बुकर्क के बाद पुर्तगाली शासन-व्यवस्था में अनेक दोष उत्पन्न हो गए, जिन्होंने उनकी शक्ति को क्षीण कर दिया।

ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों एवं व्यक्तियों पर आधारित प्रश्न

प्रश्न 1—निम्नांकित तिथियों के ऐतिहासिक महत्त्व पर टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) 1498 ई० *(1994, 96, 97, 99)*—इस तिथि को पुर्तगाली नाविक वास्कोडिगामा ने यूरोप और भारत के मध्य जल-मार्ग की खोज की थी। इस तिथि को वास्कोडिगामा भारत के बन्दरगाह कालीकट पर उतरा था और उसका स्वागत वहाँ के तत्कालीन शासक राजा जमोरिन ने किया था। वास्कोडिगामा प्रथम यूरोपीय व्यक्ति था, जिसने भारत भूमि पर सर्वप्रथम कदम रखा था।

(2) 1505 ई०—इस तिथि (मार्च, 1505 ई०) को अल्मीडा भारत की पुर्तगाली बस्तियों का गवर्नर बनकर भारत आया था। अल्मीडा सामुद्रिक नीति का पोषक था और भारत में पुर्तगाली साम्राज्य स्थापित करने की नीति का विरोधी था। अल्मीडा भारत में 1505 ई० से 1509 ई० तक रहा था।

(3) 1509 ई०—इस तिथि (5 नवम्बर, 1509 ई०) को अल्बुकर्क पुर्तगाली वायसराय के रूप में भारत आया था।

(4) 1515 ई०—इस तिथि (दिसम्बर, 1515 ई०) को पुर्तगाली वायसराय अल्बुकर्क की मृत्यु हो गई थी।

(5) 1592 ई०—इस तिथि को एम्सटर्डम के व्यापारियों ने पूर्वी देशों से व्यापार के लिए एक डच कम्पनी की स्थापना की थी।

(6) 1595 ई०—इस तिथि को प्रथम डच नाविक 'कोरनीलियस हाउसमैन' आशा अन्तरीप होता हुआ जावा पहुँचा था और वहाँ से बहुत-सा माल लेकर हॉलैण्ड वापस लौट गया था।

(7) 1600 ई० *(1996)*—इस तिथि (31 दिसम्बर, 1600 ई०) को इंग्लैण्ड में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना हुई थी। एक चार्टर के अनुसार, उस समय की महारानी एलिजाबेथ प्रथम ने इस कम्पनी को 15 वर्ष तक भारत व पूर्वी देशों के साथ व्यापार करने का एकाधिकार प्रदान किया था।

(8) 1603 ई०—इस तिथि को हॉलैण्डवासियों (डच) ने सर्वप्रथम भारत भूमि पर कदम रखा था।

(9) 1640 ई० *(1996)*—इस तिथि को अँग्रेजों ने मद्रास (वर्तमान में चेन्नई) नगर की स्थापना की।

(10) 1664 ई०—इस तिथि को फ्रेंच व्यापारिक कम्पनी की स्थापना हुई थी, जिसका लक्ष्य मेडागास्कर और भारत आदि देशों से व्यापार करना था।

(11) 1735 ई०—इस तिथि को ड्यूमा फ्रांसीसी बस्ती पाण्डिचेरी का गवर्नर नियुक्त हुआ था। वह बड़ा योग्य, देशभक्त, विवेकी और नीति निपुण शासक था। उसने 1735 ई० से 1742 ई० तक दक्षिण भारत में फ्रांसीसियों की धाक स्थापित कर दी थी।

(12) 1742 ई० *(1997)*—इस तिथि को डूप्ले पाण्डिचेरी का गवर्नर बनाया गया था।

(13) 1746 ई०—इस तिथि को पहला कर्नाटक युद्ध प्रारम्भ हुआ था, जो कि 1748 ई० तक होता रहा। इस युद्ध में कर्नाटक का नवाब अनवरुद्दीन डूप्ले से परास्त हुआ और डूप्ले ने पाण्डिचेरी पर अँग्रेजों को अधिकार नहीं करने दिया।

(14) 1749 ई०—इस तिथि को दूसरा कर्नाटक युद्ध शुरू हुआ था। इस युद्ध की समाप्ति 1755 ई० में हुई थी।

(15) 1751 ई०—इस तिथि को अँग्रेज सैनिक रॉबर्ट क्लाइव ने चाँदा साहब की राजधानी अर्काट पर घेरा डाला था।

(16) 1755 ई० *(1996)*—इस तिथि को डूप्ले फ्रांस वापस लौट गया था। पाण्डिचेरी की सन्धि हो जाने से कर्नाटक का युद्ध भी समाप्त हो गया था।

(17) 1756 ई० *(1999)*—इस तिथि को कर्नाटक का तीसरा युद्ध प्रारम्भ हुआ था। इस युद्ध में अँग्रेजों और फ्रांसीसियों में जमकर संघर्ष हुआ। इस युद्ध की समाप्ति 1763 ई० में हुई।

(18) 1758 ई०—इस तिथि को काउण्ट लैली फ्रांसीसी गवर्नर के रूप में भारत आया था।

(19) 1761 ई० *(1990, 91, 96, 97, 99)*—इस तिथि को अँग्रेजी सेनापति सर आयरकूट ने फ्रांसीसी बस्ती पाण्डिचेरी पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया था।

प्रश्न 2—निम्नांकित ऐतिहासिक स्थलों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) कालीकट—केरल राज्य में स्थित कालीकट एक महत्त्वपूर्ण बन्दरगाह और व्यापारिक नगर है। इसी बन्दरगाह पर 1498 ई० में पुर्तगाली नाविक वास्कोडिगामा उतरा था और राजा जमोरिन ने उसका भव्य स्वागत किया था। यहाँ का जैन मन्दिर दर्शनीय है।

(2) कोचीन—भारत के पश्चिमी तट पर स्थित कोचीन एक विशाल बन्दरगाह है और यहाँ का डॉकयार्ड विश्व के प्रमुख डॉकयार्डों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। सर्वप्रथम पुर्तगालियों ने कोचीन में अपनी व्यापारिक कोठियाँ स्थापित की थीं। बाद में, फ्रांसीसियों और अँग्रेजों ने क्रमशः इस पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। यहाँ के रोमन कैथोलिक चर्च, डच प्लेस व बोलघाटी प्लेस दर्शनीय स्थल हैं। इसी स्थान पर वास्कोडिगामा की कब्र भी बनी हुई है।

(3) **पाण्डिचेरी**—दक्षिणी भारत में स्थित पाण्डिचेरी एक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक नगर है। पाण्डिचेरी पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए पुर्तगालियों, फ्रांसीसियों और अँग्रेजों में घोर संघर्ष हुआ। अन्त में, 1816 ई० में फ्रांसीसी इस नगर पर अपना अधिकार स्थापित करने में सफल हुए। यहाँ के दर्शनीय स्थलों में तिरुवेन्द्र मन्दिर, श्री अरविन्द आश्रम और उनकी समाधि तथा वैलेनूर मन्दिर आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

(4) **मांही**—यह स्थल सत्रहवीं शताब्दी में फ्रांसीसी प्रभुत्व में था। फ्रांसीसियों ने इस स्थान पर एक विशाल चर्च बनवाया था, जो एक दर्शनीय स्मारक है।

(5) **कारीकल**—कावेरी नदी के तट पर स्थित यह नगर भी फ्रांसीसियों का प्रमुख व्यापारिक केन्द्र था। यहाँ का जाटेश्वर स्वामी का मन्दिर एक दर्शनीय स्थल है।

प्रश्न 3—निम्नांकित ऐतिहासिक व्यक्तियों का परिचय दीजिए—

उत्तर : (1) वास्कोडिगामा—वास्कोडिगामा एक साहसी पुर्तगाली नाविक था। पुर्तगाल के शासक जॉन द्वितीय के आदेश पर वह जुलाई, 1497 ई० को भारत के जलमार्ग की खोज में निकला। वास्कोडिगामा आशा अन्तरीप होता हुआ 20 मई, 1498 ई० को भारत के बन्दरगाह कालीकट पर उतरा। वहाँ के राजा जमोरिन ने उसका शानदार स्वागत किया। वास्कोडिगामा ने जमोरिन से व्यापारिक सुविधाएँ प्राप्त कीं और वहाँ से कलानौर पहुँचा। कलानौर के राजा से अनेक उपहार लेकर सितम्बर, 1499 ई० में वह लिस्बन वापस पहुँचा। वास्कोडिगामा की खोज बड़ी महत्त्वपूर्ण थी। उसने यूरोपवासियों के लिए भारत के द्वार खोल दिए और भारतीय इतिहास में एक नए युग का श्रीगणेश कर दिया।

(2) **अल्मीडा**—अल्मीडा एक पुर्तगाली सैनिक था। वह मार्च, 1505 ई० में पुर्तगाली बस्तियों के वायसराय के रूप में भारत आया था। वह सामुद्रिक नीति का समर्थक था और भारत में पुर्तगाली साम्राज्य स्थापित करने की नीति का विरोधी था। वह समुद्र पर पुर्तगालियों का प्रभुत्व स्थापित करने में सफल रहा। उसने अरबों के व्यापार को नष्ट किया और 1509 ई० में मिस्र के सुल्तान तथा भारतीय मुसलमानों की संयुक्त नौसेना को बुरी तरह पराजित किया। नवम्बर, 1509 ई० में वह पुर्तगाल लौटा, किन्तु मार्ग में ही उसकी मृत्यु हो गई।

(3) **अल्बुकर्क**—अल्बुकर्क एक महत्त्वाकांक्षी व दूरदर्शी पुर्तगाली वायसराय था। वह 1509 ई० से 1515 ई० तक भारत में पुर्तगाली साम्राज्य का विस्तार करने में संलग्न रहा। उसने आर्मूज में एक सुदृढ़ किले का निर्माण कराया तथा अदन की नाकेबन्दी करके फारस तथा नील नदी की घाटियों से होने वाले मुसलमानों के व्यापार को नष्ट कर दिया। 1511 ई० में उसने मलक्का पर पुर्तगालियों का प्रभुत्व स्थापित कर दिया। उसने गोवा को जीता और उसे अपनी राजधानी बनाया। 1515 ई० में गोवा में ही उसका निधन हो गया।

(4) **डूप्ले** *(1996, 98)*—डूप्ले एक महान सेनानायक, दूरदर्शी शासक और साम्राज्यवादी व्यक्ति था। वह 1742 ई० में फ्रांसीसी बस्तियों का गवर्नर बनकर भारत आया था। उसका मुख्य लक्ष्य भारत में फ्रांसीसी साम्राज्य की स्थापना करना था। उसने पाण्डिचेरी, चन्द्रनगर, माही, कारीकल व कालीकट पर फ्रांसीसी प्रभुत्व स्थापित किया। उसने कर्नाटक और हैदराबाद की राजनीति में खुलकर हस्तक्षेप किया, जिसके फलस्वरूप कर्नाटक के युद्ध हुए। लेकिन कुछ विशेष कारणों से डूप्ले को अँग्रेजों के विरुद्ध संघर्ष में सफलता न मिल सकी। उसकी विफलता से रुष्ट होकर, 1754 ई० में फ्रांस की सरकार ने उसे वापस बुला लिया। डूप्ले विश्व की उन महान विभूतियों में से एक था, जो असफल होकर भी अपने गुणों के कारण, कीर्ति और गौरव प्राप्त करते हैं।

(5) **लैली**—काउण्ट लैली एक वीर व साहसी फ्रांसीसी सेनापति था, लेकिन वह अत्यन्त उग्र स्वभाव का व्यक्ति था। अप्रैल, 1758 ई० में लैली भारत आया और उसने अँग्रेजों के विरुद्ध युद्ध छेड़ दिया। उसने फोर्ट सेण्ट डेविड को जीत लिया और तंजौर के राजा पर आक्रमण कर दिया, लेकिन आर्थिक संकट के कारण लैली की सफलता विफलता में परिवर्तित हो गई। अँग्रेजों की निरन्तर विजय के पश्चात्

पाण्डिचेरी, माही, जिन्जी आदि केन्द्र फ्रांसीसियों के प्रभुत्व से निकल गए। 1761 ई० में लैली को कैद करके फ्रांस भेज दिया गया, जहाँ 1763 ई० में उसे मृत्युदण्ड दे दिया गया।

(6) बुसी—बुसी एक फ्रांसीसी सेनापति था। बुसी ने मद्रास को जीतने का प्रयत्न किया, परन्तु गन्टूर के युद्ध में उसे अँग्रेजों से पराजित होना पड़ा। 1750 ई० में बुसी सर आयरकूट द्वारा बन्दी बना लिया गया और वाण्डेवाश के युद्ध के बाद बुसी का अन्त हो गया।

(7) आयरकूट—आयरकूट एक महान अँग्रेज सेनापति था। वह मद्रास के गवर्नर के अधीन था। कर्नाटक के तीसरे युद्ध में उसने अनेक स्थानों पर फ्रांसीसियों को बुरी तरह पराजित किया और 1761 ई० में पाण्डिचेरी पर अँग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित कर दिया।

(8) अनवरुद्दीन—यह कर्नाटक के नवाब का सम्बन्धी और अर्काट का नवाब था। इसने डूप्ले से मित्रता कर ली थी, लेकिन बाद में मद्रास के प्रभुत्व के प्रश्न पर वह फ्रांसीसियों का विरोधी बन गया था। 3 अगस्त, 1749 ई० को चाँदा साहब तथा मुजफ्फर जंग की संयुक्त सेनाओं ने, फ्रांसीसियों की सहायता से अनवरुद्दीन पर आक्रमण कर दिया। अम्बर के इस युद्ध में अनवरुद्दीन की पराजय हुई और वह युद्धस्थल में ही मारा गया।

(9) मुहम्मद अली—मुहम्मद अली अर्काट के नवाब अनवरुद्दीन का पुत्र था। अनवरुद्दीन की मृत्यु के पश्चात् मुहम्मद अली त्रिचनापल्ली के दुर्ग में जाकर छिप गया। चाँदा साहब ने उसे पकड़ने के लिए त्रिचनापल्ली के दुर्ग पर घेरा डाल दिया। अँग्रेजों ने अपने स्वार्थों की पूर्ति के लिए मुहम्मद अली को सहायता देने का निश्चय किया। अँग्रेजी सेना के एक नायक रॉबर्ट क्लाइव ने कूटनीति से काम लेकर चाँदा साहब की राजधानी अर्काट पर घेरा डाल दिया, फलस्वरूप चाँदा साहब को त्रिचनापल्ली से घेरा उठाना पड़ा और मुहम्मद अली अँग्रेजों की सहायता से मुक्त हो गया। बाद में, अँग्रेजों की सहायता से मुहम्मद अली कर्नाटक का नवाब बन गया और जीवनपर्यन्त उनके हाथ की कठपुतली बना रहा।

(10) चाँदा साहब—चाँदा साहब कर्नाटक के नवाब दोस्त अली का दामाद और एक महत्त्वाकांक्षी व्यक्ति था। दोस्त अली की मृत्यु के पश्चात् चाँदा साहब ने कर्नाटक की गद्दी प्राप्त करने में फ्रांसीसियों का सहयोग प्राप्त किया। उसने हैदराबाद के निजाम के पौत्र मुजफ्फर जंग से भी गठबन्धन कर लिया। तत्पश्चात् चाँदा साहब ने अनवरुद्दीन को अम्बर के युद्ध में पराजित कर दिया और उसके पुत्र को पकड़ने के लिए त्रिचनापल्ली के दुर्ग पर घेरा डाल दिया। लेकिन इसी समय जब उसे अपनी राजधानी अर्काट पर घेरा पड़ने की सूचना मिली, तो वह त्रिचनापल्ली का घेरा उठाकर अर्काट की रक्षा के लिए आया। लेकिन अँग्रेजों के समक्ष उसकी भीषण पराजय हुई और उसे तंजौर के राजा के सेनापति के घर में शरण लेनी पड़ी, परन्तु वहीं पर उसकी हत्या कर दी गई।

(11) नासिर जंग—नासिर जंग; हैदराबाद के शासक आसफशाह निजाम-उल-मुल्क का पुत्र था। निजाम की मृत्यु के पश्चात् नासिर जंग और मुजफ्फर जंग के मध्य दक्षिण की सूबेदारी के लिए गृहयुद्ध छिड़ गया। नासिर जंग ने अँग्रेजों की सहायता से मुजफ्फर जंग पर आक्रमण कर दिया। लेकिन 16 दिसम्बर, 1750 ई० को डूप्ले ने नासिर जंग को पराजित कर मुजफ्फर जंग को दक्षिण का सूबेदार बना दिया। इसी युद्ध में नासिर जंग मारा गया।

(12) मुजफ्फर जंग—मुजफ्फर जंग हैदराबाद के निजाम का पुत्र था। 21 मई, 1748 ई० को निजाम का स्वर्गवास होते ही मुजफ्फर जंग दक्षिण का सूबेदार बनने के लिए प्रयत्नशील हो गया। उसने चाँदा साहब और फ्रांसीसियों से गठबन्धन कर अगस्त, 1749 ई० में अम्बर के युद्ध में अनवरुद्दीन को पराजित किया। तत्पश्चात् डूप्ले की सहायता से वह 16 दिसम्बर, 1750 ई० को नासिर जंग को मारकर दक्षिण का सूबेदार बन गया। 5 जनवरी, 1751 ई० को उसने फ्रांसीसी सेनापति बुसी के साथ दक्षिण के लिए प्रस्थान किया, किन्तु मार्ग ही में वह एक आकस्मिक युद्ध में मारा गया।

7 अँग्रेजी कम्पनी का विस्तार : साम्राज्यवादी नीति [(क्लाइव से डलहौजी तक) (1740-1856 ई०)]

[प्लासी और बक्सर के युद्ध, लॉर्ड क्लाइव एवं उसके सुधार, इलाहाबाद की सन्धि, वारेन हेस्टिंग्स के कार्य एवं उसकी उपलब्धियाँ, हैदरअली, लॉर्ड कार्नवालिस, लॉर्ड वेलेजली, टीपू सुल्तान, महाराजा रणजीतसिंह, विलियम बैंटिक के सुधार, लॉर्ड डलहौजी]

"वेलेजली भारत के महानतम शासकों में से एक था। केवल क्लाइव, वारेन हेस्टिंग्स तथा डलहौजी ही उसकी तुलना कर सकते हैं।" —पी० ई० राबर्ट्स

"लॉर्ड विलियम बैंटिक के कार्यकाल को भारतीय सुधारों के इतिहास में प्रमुख स्थान प्राप्त है। लॉर्ड रिपन के समान ही उसकी सफलताएँ भी शान्ति के क्षेत्र में थीं।" —मार्शमैन

"एक प्रशासक के रूप में लॉर्ड डलहौजी से इंग्लैण्ड से आने वाले योग्य व्यक्तियों में से कोई भी उससे आगे निकलना तो क्या उसकी समानता भी नहीं कर पाया।" —रिचर्ड टेम्पिल

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1— प्लासी के युद्ध के कारणों और परिणामों का विवेचन कीजिए। *(1990,92)*

अथवा **1740-1856 तक अँग्रेजी कम्पनी के विस्तार की मुख्य अवस्थाओं का निरूपण कीजिए।** *(1992)*

अथवा **भारतीय इतिहास में प्लासी के युद्ध के महत्त्व का मूल्यांकन कीजिए।** *(1997)*

अथवा **"प्लासी का युद्ध भारत के इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना थी।" इस कथन के प्रकाश में प्लासी के युद्ध के महत्त्व की विवेचना कीजिए।**

(संकेत—अँग्रेजी कम्पनी के 1740 से 1756 ई० तक विस्तार हेतु अध्याय 6 (दीर्घ उत्तरीय प्रश्न 1) में वर्णित कर्नाटक युद्धों का अध्ययन कीजिए।)

उत्तर—

प्लासी का युद्ध

यद्यपि डचों, फ्रांसीसियों तथा अँग्रेजों आदि यूरोपीय जातियों की बस्तियाँ बंगाल में थीं, तथापि यहाँ अँग्रेजी बस्तियाँ सर्वाधिक समृद्ध थीं। बंगाल में सिराज-उद्-दौला के बंगाल की गद्दी पर बैठते ही उसका अँग्रेजों से विरोध आरम्भ हो गया, जिसके कारणों का विवेचन निम्न प्रकार किया जा सकता है—

प्लासी के युद्ध के कारण

प्लासी के युद्ध के लिए निम्न कारण उत्तरदायी सिद्ध हुए—

(1) सिराज-उद्-दौला का विवादग्रस्त उत्तराधिकार—अलीवर्दी खाँ के पुत्रविहीन होने के कारण उसका कोई उत्तराधिकारी नहीं था। उसके तीन पुत्रियाँ ही थीं। यद्यपि अलीवर्दी स्वयं एक योग्य, शक्तिशाली व्यक्ति था, तथापि उसके उत्तराधिकार की अनिश्चितता गहन चिन्ता का विषय थी। जब वह बीमार पड़ा तो उसने अपनी सबसे छोटी पुत्री के पुत्र सिराज-उद्-दौला को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त कर दिया। अतः 1756 ई० में अपने नाना की मृत्यु के पश्चात् सिराज-उद्-दौला बंगाल की गद्दी पर बैठा। परन्तु इसी समय उसकी चाची (ढाका की घसीटी बेगम) तथा उसका चचेरा भाई (परनियाह का शौकत जंग) गद्दी के विरोधी दावेदारों के रूप में उठ खड़े हुए। बंगाल दरबार के दरबारियों ने इन विरोधी दावेदारों का पक्ष लेकर नवाब की स्थिति को क्षीण कर दिया। अँग्रेजों ने बंगाल की समृद्ध धरती पर पहले ही से अपनी कुदृष्टि जमा रखी थी। अतः इस अनुकूल परिस्थिति से उत्साहित होकर उन्होंने नवाब की सत्ता को चुनौती देना आरम्भ कर दिया।

(2) अँग्रेजों द्वारा घसीटी बेगम का पक्ष लेना— अलीवर्दी के जीवनकाल में ही यह अफवाह फैल गई थी कि अँग्रेज घसीटी बेगम का पक्ष ले रहे हैं। यद्यपि कासिम बाजार के अँग्रेज रेजीडेंट डॉ० फोर्थ ने इस अफवाह को सत्य स्वीकार करने से मना कर दिया था तथापि इस अफवाह में पर्याप्त सत्यता थी तथा सिराज-उद्-दौला को इसका पूर्ण विश्वास था। फलतः नवाब के मन में अँग्रेजों के लिए कटु भावना उत्पन्न हो गई थी।

प्लासी के युद्ध के कारण

(1) सिराज-उद्-दौला का विवादग्रस्त उत्तराधिकार
(2) अँग्रेजों द्वारा घसीटी बेगम का पक्ष लेना
(3) कृष्णवल्लभ का मामला
(4) अँग्रेजों द्वारा किलेबन्दी
(5) नवाब का भय
(6) अँग्रेजों द्वारा व्यापारिक सुविधाओं का दुरुपयोग
(7) ड्रेक द्वारा नवाब की माँगों को ठुकराना।

(3) कृष्णवल्लभ का मामला—राजवल्लभ घसीटी बेगम की सम्पत्ति तथा जागीरों का दीवान था। बंगाल के नवाब ने इस दीवान पर बेगम की सम्पत्ति के लेखे में हेराफेरी का आरोप लगाया। इस स्थिति में दीवान ने अपने बेटे कृष्णवल्लभ को अपने परिवार तथा सारी सम्पत्ति सहित कलकत्ता भेज दिया ताकि वह अँग्रेजों की सुरक्षा प्राप्त कर सके। नवाब ने अँग्रेजों से माँग की कि वे दीवान के पुत्र को उसे सौंप दें, परन्तु वे ऐसा करने के लिए तैयार नहीं हुए। वास्तव में, वे दोनों दावेदारों के पारस्परिक तनाव का लाभ उठाना चाहते थे।

(4) अँग्रेजों द्वारा किलेबन्दी—अलीवर्दी खाँ ने अपने जीवनकाल में यूरोपीय जातियों को अपनी बस्तियों की किलेबन्दी करने की आज्ञा नहीं दी थी। परन्तु उसकी मृत्यु के पश्चात् गद्दी के लिए होने वाले झगड़ों ने यूरोपीय लोगों को अपनी बस्तियों की किलेबन्दी करने के लिए प्रोत्साहित किया। सिराज-उद्-दौला इस बात के प्रति सचेत था तथा उसने उन्हें तत्काल सम्पूर्ण किलेबन्दियाँ गिरा देने के लिए लिखा। उसने यह भी लिखा कि वह उन्हें मात्र व्यापारियों से अधिक कुछ नहीं समझता। फ्रांसीसियों ने तो उसकी आज्ञा का पालन किया परन्तु अँग्रेजों ने किलेबन्दी का काम जारी रखा। अतः यह स्वाभाविक ही था कि सिराज-उद्-दौला के मन में उनके प्रति कटुता बढ़ती।

(5) नवाब का भय—दक्षिण भारत में हो रहे आँग्ल-फ्रांसीसी संघर्ष ने भी नवाब के मन में आशंका उत्पन्न कर दी। उसे यह भय उत्पन्न हो गया था कि अँग्रेजों की कुदृष्टि उसके प्रान्त पर लगी है। इसके अतिरिक्त वह अपने प्रान्त को अँग्रेजों तथा फ्रांसीसियों के मध्य युद्धस्थल भी नहीं बनाना चाहता था। वास्तव में, अँग्रेजों की आपत्तिजनक कार्यवाहियों के कारण उसके मन में उनके प्रति प्रबल घृणा उत्पन्न हो गई थी।

(6) अँग्रेजों द्वारा व्यापारिक सुविधाओं का दुरुपयोग—अँग्रेजी ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने 1716–17 ई० में दिल्ली के सम्राट से प्राप्त व्यापारिक सुविधाओं का दुरुपयोग आरम्भ कर दिया था। व्यापारी लोग अपने निजी व्यापार को कर-मुक्त विधि से चलाने के लिए दस्तकों (पासपोर्टों) का प्रयोग करने लगे। इससे नवाब की आय को बहुत आघात पहुँचता था और भारतीय व्यापारियों के मन में ईर्ष्या उत्पन्न होती थी।

(7) ड्रेक द्वारा नवाब की माँगों को ठुकराना—यद्यपि सिराज-उद्-दौला अँग्रेजों के व्यवहार से अत्यधिक अप्रसन्न था, तथापि उसने पहले गद्दी के विरोधी दावेदारों से ही निपटने का निर्णय किया, क्योंकि उसकी सुरक्षा के लिए यही परमावश्यक था। उसने सर्वप्रथम घसीटी बेगम को अपने महलों में बुलाकर उसे समझा-बुझाकर शान्त कर दिया। इसके पश्चात् वह परनियाह के शासक शौकत जंग के विरुद्ध सेना लेकर चल पड़ा, परन्तु कठिनता से वह राजमहल ही पहुँच पाया था कि कलकत्ता के गवर्नर मि० ड्रेक का एक पत्र उसे प्राप्त हुआ। ड्रेक ने अपने पत्र में सब आरोपों और दोषों का खण्डन करते हुए, नवाब की माँगों को ठुकरा दिया। पत्र पढ़ते ही नवाब का धैर्य समाप्त हो गया तथा वह अँग्रेजों के विरुद्ध अभियान आरम्भ करने के लिए मुर्शिदाबाद की ओर लौट पड़ा।

युद्ध के परिणाम

प्लासी के युद्ध के निम्नलिखित परिणाम हुए—

(1) मीर जाफ़र को नवाब बना दिया गया।

(2) कम्पनी को निश्चित धन का कुछ भाग तो दे दिया गया तथा शेष धन छह-छह मास पश्चात् दी जाने वाली समान किश्तों में दिया जाना निश्चित हुआ।

(3) अमीचन्द को झूठी सन्धि के विषय में सूचित कर दिया गया तथा उसे कुछ भी न दिया गया।

(4) ईस्ट इण्डिया कम्पनी ने कलकत्ता में एक टकसाल खोल दी।

(5) कम्पनी को कृषकों की इच्छा के विरुद्ध 24 परगनों की जमींदारी दे दी गई।

(6) नवाब ने सूबा भर में कम्पनी को कर-मुक्त व्यापार की स्वतन्त्रता दे दी।

युद्ध का महत्त्व

प्लासी का युद्ध भारत के इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण घटना थी। यद्यपि सैनिक दृष्टि से प्लासी का युद्ध एक साधारण भिड़न्त थी, तथापि इसकी गणना भारतीय इतिहास के महत्त्वपूर्ण एवं निर्णायक युद्धों में की जाती है। यह प्रथम युद्ध था जिसमें अँग्रेजी सेनाएँ किसी भारतीय सेना के विरुद्ध मुख्य सेनाओं के रूप में लड़ीं। राजनीतिक दृष्टि से यह युद्ध विश्व-इतिहास के अति महत्त्वपूर्ण युद्धों में से एक था। इस युद्ध से अँग्रेजों की बंगाल विजय का मार्ग खुल गया जहाँ से उन्होंने केवल एक शताब्दी में ही समस्त भारत को विजित कर लिया। अतः इस युद्ध के परिणाम अत्यन्त दूरगामी सिद्ध हुए।

प्रश्न 2—बक्सर के युद्ध के क्या कारण थे? इस युद्ध के परिणामों तथा महत्त्व पर संक्षिप्त प्रकाश डालिए।

अथवा **"बक्सर के युद्ध ने प्लासी के युद्ध के कार्य को पूर्ण किया।" इस कथन की विवेचना कीजिए।**

(1994)

उत्तर—

बक्सर का युद्ध

बक्सर का युद्ध 1764 ई० में अँग्रेजों और मीर कासिम के बीच हुआ था। यह एक निर्णायक युद्ध सिद्ध हुआ था, क्योंकि इस युद्ध में अँग्रेजों की विजय हुई और बंगाल पर उनका प्रभाव स्थापित हो गया। इस विजय से प्रेरित होकर अँग्रेजों ने भारत के अन्य राज्यों में भी हस्तक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया और देखते-ही-देखते सम्पूर्ण भारत पर उनका आधिपत्य स्थापित हो गया।

बक्सर के युद्ध के कारण

बक्सर के युद्ध के कारणों का संक्षिप्त विवरण निम्न प्रकार है—

(1) मीर कासिम द्वारा अपनी सैन्य-शक्ति में वृद्धि करना—मीर कासिम अत्यधिक योग्य तथा उच्च चरित्र का व्यक्ति था। वह परनियाह तथा रंगपुर का सूबेदार रह चुका था तथा उसे राज्य प्रबन्ध का पर्याप्त अनुभव हो गया था। ज्यों ही वह गद्दी पर बैठा, उसे समृद्ध राजकोष तथा सुदृढ़ सैनिक शक्ति की आवश्यकता का अनुभव हुआ। वस्तुतः वह बंगाल के 1756 ई० के पश्चात् के सब नवाबों में से अधिक योग्य था। उसने जमींदारों को परास्त कर दिया तथा अपने प्रान्त के उन सब अधिकारियों को धन लौटाने के लिए विवश कर दिया जिन्होंने सरकारी धन का गबन किया था। उसने अपनी सेनाओं को आधुनिक पद्धति के आधार पर प्रशिक्षित करवाया तथा मुंगेर नगर में तोपें बनाने के कारखाने स्थापित किए, जहाँ उसने अब मुर्शिदाबाद के स्थान पर अपनी राजधानी स्थापित कर ली थी। यद्यपि एक उत्तम शासक के लिए ये सब कार्य प्रशंसा के योग्य थे, तथापि कम्पनी ने इन गतिविधियों को कदाचित् पसन्द न किया क्योंकि इनसे बंगाल प्रान्त पर उसके प्रभुत्व के लिए खतरा उत्पन्न हो गया।

(2) रामनारायण की हत्या—क्लाइव रामनारायण की सहायता करता रहा जो कि बिहार का डिप्टी गवर्नर था, परन्तु वानसिटार्ट उसके विरुद्ध था। इसके विपरीत, वह नवाब की नीति का समर्थक था। अतः उसने रामनारायण को मीर कासिम को सौंप दिया। मीर कासिम ने उसका समस्त धन छीनकर उसका वध

करवा दिया। इस वध के साथ ही, मीर कासिम की समस्त आन्तरिक कठिनाइयाँ समाप्त हो गईं तथा उसे ऐसा अनुभव होने लगा कि अब वह अँग्रेजों को उनकी आपत्तिजनक तथा अत्याचारपूर्ण कार्यवाहियों के लिए दण्डित करने में सक्षम है।

(3) दस्तकों का दुरुपयोग—यह पहले ही व्यक्त किया जा चुका है कि अँग्रेजों को 1716-17 ई० के शाही फरमान के फलस्वरूप स्वतन्त्र व्यापार का अधिकार प्राप्त था। परन्तु कम्पनी के कर्मचारी सदैव ही अपने निजी लाभ के लिए इस अधिकार का दुरुपयोग करते रहे थे। इसके फलस्वरूप सदैव ही नवाब की आय, भारतीय व्यापारियों तथा उद्योगपतियों को हानि होती रही थी।

बक्सर के युद्ध के कारण

(1) मीर कासिम द्वारा अपनी सैन्य-शक्ति में वृद्धि करना
(2) रामनारायण की हत्या
(3) दस्तकों का दुरुपयोग
(4) नवाब द्वारा अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा
(5) करों का हटाना।

अतः मीर कासिम का भड़कना स्वाभाविक तथा निश्चित था, क्योंकि वह न्यायोचित विधि से राज्य करना चाहता था। इस कठिनाई को मित्रतापूर्ण रीति से दूर करने के लिए नवाब द्वारा किए गए सभी प्रयत्नों का प्रत्युत्तर कम्पनी ने अपने विरोधजनक व्यवहार से दिया।

(4) नवाब द्वारा अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा—नवाब ने कम्पनी का समस्त शेष ऋण दे दिया था तथा अपनी सभी आन्तरिक कठिनाइयों को दूर कर लिया था। अतः उसने अब अँग्रेजों की विरोधजनक गतिविधियों पर गम्भीरता से आपत्ति करना आरम्भ कर दिया। उसने स्वतन्त्र शासक होने का दावा किया, परन्तु कलकत्ता के अँग्रेज अधिकारियों की कार्यवाहियाँ उसकी इस स्थिति से सर्वथा प्रतिकूल थीं। अतः दोनों में संघर्ष होना अनिवार्य हो गया।

(5) करों का हटाना—मीर कासिम ने कम्पनी के कर्मचारियों की गतिविधियों पर आपत्ति की। वैनसिटार्ट ने 1762 ई० में मुंगेर में मीर कासिम से भेंट की तथा उसके साथ एक सन्धि की। परन्तु कलकत्ता की काउंसिल ने इस सन्धि को अस्वीकार कर दिया। इस पर नवाब ने सभी करों को निरस्त करके, सभी व्यापारियों को चाहे वे यूरोपीय थे या भारतीय, एक ही स्तर पर ला खड़ा किया।

अब अंग्रेजों ने मीर कासिम से अपने लिए विशिष्ट व्यवहार की माँग की जिसे मीर कासिम ने पूर्णतः अनधिकृत चेष्टा मानते हुए अस्वीकार कर दिया। यद्यपि वानसिटार्ट तथा हेस्टिंग्ज की सहानुभूति नवाब के साथ थी, तथापि शेष सब सदस्यों ने मीर कासिम पर पहले की भाँति पुनः कर लगाने की माँग की। अतः इस कारण भी युद्ध अनिवार्य हो गया।

युद्ध के परिणाम

बक्सर के युद्ध के निम्नलिखित परिणाम हुए—

(1) अँग्रेजों ने पुराने पेन्शनर नवाब मीर जाफर को 1764 ई० में बंगाल की गद्दी पर बैठा दिया। उसे एक सन्धि के लिए विवश कर दिया गया जिसके अनुसार मीर कासिम द्वारा हटाए गए कर पुनः लगा दिए गए तथा मीर कासिम से हुए युद्ध के कारण हुई, कम्पनी की हानि की पूर्ति कर दी गई।

(2) नन्दकुमार को उसका प्रधानमन्त्री नियुक्त कर दिया गया, परन्तु शीघ्र ही उस पर विरोधी गतिविधियों तथा अवध और सम्राट-शाह आलम से गठजोड़ करने का सन्देह किया जाने लगा।

(3) मीर जाफर की 1765 ई० में मृत्यु हो गई तथा उसके दूसरे पुत्र नजम-उ-द्दौला को बंगाल की गद्दी पर बिठा दिया गया। उसे केवल अपनी शान के लिए तथा आन्तरिक शान्ति बनाए रखने के लिए सेनाएँ रखने की अनुमति दे दी गई।

(4) अंग्रेजों को प्रान्त के अधिकारियों की नियुक्ति का अधिकार प्राप्त हो गया।

(5) नन्दकुमार को बन्दी बना लिया गया तथा नवाब को मना कर दिया गया कि वह कम्पनी की आज्ञा के बिना सम्राट के किसी प्रकार की सनद प्राप्त करने की प्रार्थना न करे।

युद्ध का महत्त्व

मीर कासिम के साथ हुआ यह युद्ध अपने परिणामों में बहुत ही महत्त्वपूर्ण तथा निर्णायक सिद्ध हुआ। इससे न केवल बंगाल में अँग्रेजों का प्रभाव बढ़ा, अपितु वे उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त (वर्तमान उत्तर प्रदेश) पर भी अधिकार करने में सफल हो गए, अँग्रेजों की शक्ति में वृद्धि होने लगी तथा 1765 ई० में अवध भी अँग्रेजी प्रभाव में आ गया। बंगाल के नवाब को तो नाममात्र की स्वतन्त्रता ही प्राप्त रही। इस प्रकार, प्लासी के अधूरे कार्य को बक्सर के युद्ध ने पूरा कर दिया।

प्रश्न 3—पानीपत के तीसरे युद्ध के कारणों और परिणामों की विवेचना कीजिए।

उत्तर—

पानीपत के तीसरे युद्ध के कारण

पानीपत का तीसरा युद्ध भारतीय इतिहास की अति महत्त्वपूर्ण घटना थी। इस युद्ध के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

(1) मराठों की रोहेलों पर विजय—1751 ई० में अवध के नवाब सफदरजंग ने रोहेलों के विरुद्ध मराठों से सहायता ली। मराठों ने रोहेलखण्ड को पूर्णतः विजित कर लिया तथा वहाँ चौथ एकत्रित करनी प्रारम्भ कर दी। रोहेले अफगान अहमदशाह अब्दाली से सम्बन्ध रखते थे। अतः अब्दाली ने मराठों को सीधा करने का निश्चय कर लिया।

(2) मराठों का हिन्दू-स्वराज्य का आदर्श—बाजीराव, जो कि एक महान् पेशवा था, ने देशव्यापी हिन्दू-स्वराज्य स्थापित करने का लक्ष्य निश्चित किया था, अतः मुसलमानों का उनके विरुद्ध होना स्वभाविक था। आन्तरिक रूप से सब मुसलमान मराठों के उत्थान से ईर्ष्या करते थे। वे निरन्तर उन्हें परास्त करने की योजनाएँ बना रहे थे।

(3) बालाजी बाजीराव की अदूरदर्शिता—बालाजी बाजीराव अपने पिता के समान योग्य तथा वीर नहीं था। उसकी योजनाएँ अदूरदर्शितापूर्ण थीं तथा नीति सुविचारित नहीं थी। उसने राजपूतों, सिक्खों तथा जाटों को असन्तुष्ट कर लिया जिनके सहयोग के बिना विदेशियों को देश से निर्वासित करना सर्वथा असम्भव था। हिन्दुओं के इस पारस्परिक वैमनस्य ने अफगानों को भारत पर आक्रमण करने के लिए प्रोत्साहित कर दिया।

(4) मराठों का दिल्ली पर अधिकार—1757 ई० में मराठा सरदार रघुनाथ राव ने दिल्ली पर अधिकार करके सम्राट की नाममात्र की सत्ता भी उससे छीन ली। अब्दाली के प्रिय नजीब-उद्-दौला को अति कठोर शर्तों पर अधीनता स्वीकार करने के लिए बाध्य किया गया। अतः अब्दाली का क्रोध अनिवार्य था क्योंकि उसके अपने प्रिय प्रतिनिधि नजीब-उद्-दौला को निर्वासित कर दिया गया था। नजीब-उद्-दौला ने अब्दाली को भारत पर एक अन्य आक्रमण करने के लिए निमन्त्रित किया।

(5) मराठों का पंजाब पर अधिकार—दिल्ली पर आक्रमण करने के पश्चात् मराठा सेनापति रघुनाथ राव पंजाब की ओर अग्रसर हुआ। 1758 ई० में मराठों ने तैमूरशाह को पंजाब से निर्वासित कर दिया जो कि अब्दाली का पुत्र तथा पंजाब का वायसराय था। उन्होंने एक स्थानीय सरदार अदीना बेग खाँ को पंजाब का गवर्नर नियुक्त कर दिया। पंजाब का अभियान मराठों की भारी भूल थी। यह अभियान न केवल बहुत महँगा पड़ा, अपितु इससे अब्दाली के साथ मराठों का युद्ध अनिवार्य हो गया।

(6) अदीना बेग की मृत्यु—दुर्भाग्यवश अदीना बेग की मृत्यु उसी वर्ष हो गई तथा पंजाब में अराजकता फैल गई। पेशवा ने दत्ताजी सिन्धिया को शान्ति स्थापित करने के लिए भेजा जिसने साबाजी सिन्धिया को 1759 ई० में पंजाब का वायसराय नियुक्त कर दिया। इससे अब्दाली और क्रोधित हो गया तथा उसने एक विशाल अफगान सेना के साथ भारत की ओर प्रस्थान कर दिया।

युद्ध की घटनाएँ

अब्दाली ने पंजाब पर नवम्बर 1759 ई० में आक्रमण कर दिया तथा मराठों को पंजाब छोड़ने पर विवश कर दिया। भारतीय रोहेलों ने अब्दाली की सहायता के लिए 30,000 सैनिकों की सेना एकत्र कर ली। दत्ताजी सिन्धिया की थानेश्वर के स्थान पर पराजय हुई तथा वह दिल्ली की ओर लौट पड़ा।

अफगानों तथा मराठों में एक अन्य युद्ध 1760 ई० में बरारी घाट के स्थान पर हुआ। मराठों का सेनापति दत्ताजी सिन्धिया मारा गया तथा मराठे तितर-बितर हो गए। मल्हारराव होल्कर तथा जानकोजी सिन्धिया भी अब्दाली को अग्रसर होने से रोकने में असमर्थ रहे।

अफगानों के विरुद्ध मराठों की पराजय से पेशवा बालाजी बाजीराव भयभीत हो गया तथा उसने अपने चचेरे भाई सदाशिव राव भाऊ को अफगानों के विरुद्ध भेजने का निर्णय लिया जिसने 1760 ई० में निजाम को पराजित करके मराठों की सत्ता तथा ख्याति में वृद्धि की थी। उसने राजपूतों तथा जाटों को भी सहायता के लिए बुलाया तथा वे विशाल सेनाओं के साथ उसके साथ आ मिले थे। पेशवा ने अपने पुत्र विश्वासराव को नाम-मात्र का सेनानायक बनाकर भाऊ के साथ भेजा, यद्यपि वास्तविक सत्ता भाऊ के हाथ में ही रही। उसने दिल्ली की ओर प्रस्थान किया। भाऊ ने 22 अगस्त, 1760 ई० को दिल्ली पर अधिकार कर लिया। सम्राट को पदच्युत कर दिया गया तथा विश्वासराव को सिंहासन पर आसीन कर दिया गया। दुर्भाग्यवश भाऊ तथा जाटों के शासक सूरजमल में कुछ मतभेद उत्पन्न हो गया। फलतः जाटों ने मराठों का साथ छोड़ दिया तथा होल्कर भी पृथक् हो गया था। भाऊ ने अब पानीपत के ऐतिहासिक मैदान में अब्दाली से युद्ध करने का निश्चय किया। अब्दाली को रोहेलों, अफगानों तथा अवध के नवाब की सहायता प्राप्त हो गई। उसकी कुल सेना 60,000 थी। 7 अक्टूबर, 1760 ई० में कुँजपुर के स्थान पर मराठों और अफगानों में युद्ध हुआ तथा मराठों को सफलता प्राप्त हुई। इस सफलता से मराठों को कुछ समय के लिए रसद और धन प्राप्त हो गया था। अफगान पानीपत की ओर हट गए। मराठों नें उनका पीछा किया। परन्तु अब्दाली ने कुँजपुर की असफलता के बाद भी तुरन्त आक्रमण करने का निश्चय किया।

दोनों सेनाएँ आमने-सामने डट गईं तथा लगभग एक मास तक कोई पक्ष भी दूसरे पर आक्रमण न कर सका, यद्यपि दोनों ओर से छुटपुट हमले होते रहे। इस समय में अब्दाली मराठों की रसद काटने में सफल हो गया, अतः वे आक्रमण करने को विवश हो गए और उन्होंने 14 जनवरी, 1761 ई० को अब्दाली पर आक्रमण कर दिया। घमासान युद्ध हुआ परन्तु अहमदशाह अधिक योग्य सेनापति सिद्ध हुआ। लगभग आठ घण्टे के घमासान युद्ध के पश्चात् मराठों की पराजय हुई। सदाशिवराव भाऊ, विश्वासराव, जानकोजी सिन्धिया तथा जसवन्तराव पंवार जैसे मराठा सेनापति युद्ध में काम आए। मराठों का तोपची इब्राहीम खाँ गार्दी मारा गया तथा महादजी सिन्धिया जीवन भर के लिए लंगड़ा हो गया। इस पराजय ने मराठों की बढ़ती हुई सत्ता पर रोक लगा दी तथा पेशवा की शक्ति को भी आघात लगा। इस विनाश के शोक को सहन न कर सकने के कारण उसी वर्ष उसकी मृत्यु हो गई।

युद्ध के परिणाम

इस युद्ध के राजनीतिक परिणामों के विषय में इतिहासकार एकमत नहीं हैं, यद्यपि मराठों को इससे अत्यधिक हानि हुई। निश्चय ही यह युद्ध आधुनिक भारत के युद्धों में से भयंकरतम युद्ध था। इस युद्ध के निम्न परिणाम महत्त्वपूर्ण थे—

(1) मराठों को भारी हानि—इस युद्ध से मराठों को भारी सैन्य तथा आर्थिक हानि हुई। उनके सब बड़े-बड़े सेनापति तथा नीतिज्ञ मारे गए। डॉ० जे० एन० सरकार ने लिखा है कि, "महाराष्ट्र में ऐसा कोई भी घर नहीं था जिसमें किसी-न-किसी आदमी के लिए शोक न मनाया गया हो। अनेक घर तो ऐसे थे जिनके मुखिया या स्वामी ही मारे गए थे। नेताओं की तो एक पूरी पीढ़ी ही तलवार के एक वार से मौत के घाट उतार दी गई।" मराठा सेना नष्ट हो गई। कुछेक मराठा सरदार—महादजी सिन्धिया तथा नाना फड़नवीस आदि कठिनता से बच पाए जिन्होंने मराठों के गौरव को पुनः स्थिर किया। क्षति इतनी अधिक थी कि पेशवा इसका शोक सहन न कर सका तथा शीघ्र ही उसकी मृत्यु हो गई।

(2) मराठों की शक्ति का विनाश—इस युद्ध में हुई पराजय से मराठों की सत्ता तथा प्रसिद्धि पर अत्यधिक गहरा आघात लगा। उनकी अजेयता अतीत की एक कहानी बन गई। यह प्रभाव वास्तव में इस युद्ध का भीषणतम नैतिक कुप्रभाव था। भारतीय शासक अब मराठों की मित्रता पर विश्वास नहीं कर सकते थे।

(3) पेशवा की सत्ता पर आघात—पेशवा की सत्ता को भी तीव्र आघात लगा। मराठा संघ निर्बल पड़ गया तथा पेशवा जो कि मराठा सरदारों को आज्ञाएँ सुनाता था, अब उनके बहुमत का अनुसरण करने को बाध्य हो गया। यह वास्तव में पेशवा की सत्ता को अत्यधिक क्षति थी।

(4) हिन्दू स्वराज्य की आशा धूमिल—मराठों का देश-व्यापी हिन्दू साम्राज्य का स्वप्न भंग हो गया। इस युद्ध में मराठों के उद्देश्य पर कुठाराघात हुआ तथा विदेशियों के उद्देश्यों को प्रोत्साहन मिला।

(5) सिक्खों की शक्ति का विस्तार—इस युद्ध से पंजाब में सिक्खों को उत्थान का अवसर प्राप्त हो गया। इस युद्ध से पूर्व मराठे और मुसलमान भी इस प्रान्त में सत्ता प्राप्त करने के लिए प्रयत्न कर रहे थे। परन्तु इन दोनों की शक्ति इस युद्ध में समाप्त हो जाने से पंजाब में सिक्खों के उत्थान के लिए मार्ग खुल गया।

(6) अँग्रेजों की शक्ति में वृद्धि—इस युद्ध ने एक प्रकार से भारतीय शक्तियों के इतिहास की इतिश्री कर दी तथा विदेशी शक्तियों के उदय के लिए अवसर प्रदान कर दिया क्योंकि देशी शक्तियाँ, मराठे तथा मुसलमान निर्बल पड़ गए। पानीपत के युद्ध में अँग्रेजों की बढ़ती हुई सत्ता को वह अवसर प्रदान किया जिसकी उन्हें भारत में अपनी शक्ति में वृद्धि करने और उसे संगठित करने के लिए अत्यधिक आवश्यकता थी।

(7) मुगल वंश का पतन—इस युद्ध ने मुगल वंश को एक प्रकार से समाप्त कर दिया। यद्यपि नाम-मात्र के सम्राट लगभग एक शताब्दी तक सिंहासन पर आसीन रहे, तथापि वे सदा अन्य शक्तियों की दया पर ही जीते रहे। भारत के भाग्य का निर्णय हो गया तथा लगभग इसी समय अँग्रेजों ने बंगाल पर अपना प्रभुत्व स्थापित कर लिया।

इस प्रकार पानीपत के तृतीय युद्ध की पराजय ने पतनोन्मुख मुगल साम्राज्य के स्थान पर मराठा साम्राज्य की स्थापना के स्वप्न को भंग कर दिया और ब्रिटिश सत्ता की सर्वोच्चता का मार्ग खोल दिया।

प्रश्न 4—पानीपत के युद्ध में मराठों की पराजय के कारणों को स्पष्ट कीजिए।

अथवा **पानीपत के तृतीय युद्ध में मराठों की पराजय से उनकी शक्ति प्रायः लुप्त हो गई। इस युद्ध में उनकी पराजय के कारणों की व्याख्या कीजिए।** *(1995)*

उत्तर—

मराठों की पराजय के कारण

पानीपत का तीसरा युद्ध सम्भवतः हिन्दुओं और मुसलमानों के मध्य होने वाला भयंकर युद्ध था। इस युद्ध में मराठों की पराजय हुई तथा कुछ समय के लिए उनकी सत्ता को आघात लगा। यह पराजय कोई आकस्मिक पराजय नहीं थी, अपितु कुछ विशेष कारण इसके लिए उत्तरदायी थे। मराठों की पराजय के इन कारणों को निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है—

(1) भाऊ की दम्भी प्रवृत्ति—मराठों का सेनापति सदाशिवराव भाऊ, जो पेशवा का चचेरा भाई था, निःसन्देह बहुत वीर योद्धा था, तथापि उसकी अहंकारी और उग्र प्रकृति मराठों की पराजय के लिए विशेष सीमा तक उत्तरदायी थी। वह अभिमानी, हठी और मनमानी करने वाला व्यक्ति था। उसने मल्हारराव होल्कर के लाभदायी परामर्शों की ओर कोई ध्यान न दिया और जाट नेता सूरजमल तथा राजपूतों की भी चिन्ता न की जो उसे गुरिल्ला युद्ध का सुझाव दे रहे थे। अतः वह इन सबके पूर्ण सहयोग से वंचित हो गया। यही नहीं होल्कर तथा सूरजमल ने तो उसे अपनी सहायता प्रदान करना भी अस्वीकार कर दिया। होल्कर ने सिन्धियों का साथ भयंकर संकट के समय छोड़ दिया तथा जाटों ने मराठों को छोड़कर शत्रु से गठजोड़ कर लिया।

(2) अब्दाली की प्रशिक्षित सेना—अफगान सेना मराठा सेना की अपेक्षा उत्तम थी। यद्यपि मराठों की संख्या अत्यधिक थी तथापि उसमें अत्यधिक संख्या ऐसे सैनिकों की थी जो योद्धा नहीं थे। परन्तु अफगान सेना युद्ध-कौशल में मंझी हुई थी। मराठों की विशाल सेना भिन्न-भिन्न मराठा सरदारों द्वारा शिक्षित सैनिक दस्तों का समूह थी, अतः उनके संगठित रूप में लड़ने की सम्भावना कम थी। इसके विपरीत, अफगानों की सेना ने सदैव अब्दाली के नेतृत्व में ही युद्ध लड़े थे। इस प्रकार के नेतृत्व का मराठा सेना में अभाव था जो मराठों के लिए हानिकारक सिद्ध हुआ।

(3) **अब्दाली का कुशल सैन्य-संचालन**—अहमदशाह अब्दाली नादिरशाह के अधीन एक सैनिक तथा सेनापति के रूप में कार्य कर चुका था। वह सदाशिवराव भाऊ और विश्वासराव की अपेक्षा अधिक अनुभवी सेनापति था। मराठा नेता निःसन्देह वीर सैनिक थे, तथापि उन्हें सेनापति के कार्य का उतना अनुभव नहीं था। इसके विपरीत, अब्दाली को कुछ इतिहासकारों ने अपने समय का महानतम एशियायी सेनापति स्वीकार किया है।

(4) **शक्तिशाली अफगान नेता**—अहमदशाह अब्दाली कठोर अनुशासनप्रिय व्यक्ति था। वह युद्धभूमि में भी कभी किसी को कोई अनियमितता नहीं करने देता था। इसके अतिरिक्त उसकी सैनिक व्यवस्था तथा प्रत्येक सैनिक से सम्पर्क की नीति मुसलमानों के लिए लाभदायक सिद्ध हुई। मराठों में इन सब बातों का अभाव था। उनका प्रत्येक सरदार व्यक्तिवादी था तथा उनमें सहयोग की भावना का अभाव था। अनुशासन की भावना का यह अभाव मराठों के लिए विनाशकारी सिद्ध हुआ। अतः उनकी पराजय स्वाभाविक थी।

मराठों की पराजय के कारण

(1) भाऊ की दम्भी प्रवृत्ति
(2) अब्दाली की प्रशिक्षित सेना
(3) अब्दाली का कुशल सैन्य-संचालन
(4) शक्तिशाली अफगान नेता
(5) अब्दाली का शक्तिशाली तोपखाना
(6) सैन्य-सामग्री का अभाव
(7) मराठों द्वारा गुरिल्ला युद्ध प्रणाली का परित्याग
(8) अब्दाली को भारतीय सहायता
(9) मुसलमानों में धर्मोन्माद की भावना
(10) जाटों तथा राजपूतों का असहयोग
(11) सिक्खों की उदासीनता।

(5) **अब्दाली का शक्तिशाली तोपखाना**—मराठों का तोपखाना अब्दाली के तोपखाने की अपेक्षा निम्न-स्तर का था। उनका तोपखाना इब्राहिम खाँ गार्दी के अधीन था जिसके पास कुशल तोपची नहीं थे। इसके विपरीत, अफगान तोपों के प्रयोग में सिद्धहस्त थे। अतः वे उन मराठा सैनिकों पर शीघ्र ही छा गए जो अधिकतर तलवारों और बर्छों से ही लैस थे। अफ़गान सैनिक मराठा सैनिकों की अपेक्षा उच्च कोटि के हथियारों से युक्त थे।

(6) **सैन्य-सामग्री का अभाव**—युद्ध भूमि में सैनिकों की सैन्य-सामग्री की व्यवस्था अनिवार्य होती है। भाऊ इस कला से अभी युवक होने के कारण अनभिज्ञ था। अब्दाली बहुत चतुर सेनानायक था और वह मराठों की सैन्य-सामग्री निरस्त करने में सफल हो गया। मराठे अपने स्थान से बहुत दूर आ चुके थे तथा वहाँ से यातायात बनाए रखना और रसद प्राप्त करना उनके लिए असम्भव हो गया। इसके विपरीत, अफगानों को रुहेलखण्ड और अवध के नवाब से सैन्य-सामग्री प्राप्त होती रही। अतः मराठों की पराजय के लिए यह एक बहुत महत्त्वपूर्ण कारण सिद्ध हुआ।

(7) **मराठों द्वारा गुरिल्ला युद्ध प्रणाली का परित्याग**—मराठों ने अब तक एक स्थान पर स्थिर होकर कभी युद्ध नहीं किया था। वे सदा छापामार युद्ध ही करते थे। यदि वे युद्ध में प्राचीन प्रणाली का प्रयोग करते तो निश्चय ही उनके लिए यह लाभकारी सिद्ध होती। अफगान जमकर लड़ने में अभ्यस्त थे। अतः युद्ध में उनकी स्थिति अपेक्षाकृत श्रेष्ठ रही। मराठों का अपना देश पहाड़ी प्रदेश होने के कारण उन्हें स्थल युद्ध की शिक्षा का अवसर ही नहीं मिला था, क्योंकि ऐसे युद्ध मैदानों में हुआ करते थे।

(8) **अब्दाली को भारतीय सहायता**—रोहेलों तथा अवध के नवाब शुजाउद्दौला ने मराठों के हाथों अत्यधिक क्षति उठाई थी। अतः उन्होंने अब्दाली को निमन्त्रित करते समय उसे पूर्ण सहयोग देने का वचन दे दिया। इस सहायता से अब्दाली की सैनिक शक्ति में अत्यधिक वृद्धि हो गई। उसके भारतीय सहायकों ने उसे मराठों की युद्धकला से परिचित करवा दिया तथा वह उनका सामना करने के लिए उचित प्रबन्ध करने के योग्य हो गया।

(9) **मुसलमानों में धर्मोन्माद की भावना**—मराठों के हिन्दू-पद पादशाही के आदर्श ने मुसलमानों को भयभीत कर दिया था। उन्होंने अपने सैनिकों को इस आदर्श के विरुद्ध जेहाद छेड़ने के लिए प्रोत्साहित किया। उन्हें यह आभास हो गया था कि यदि मराठे सफल हो गए तो वे निश्चय ही उन्हें देश से निर्वासित

कर देंगे। अतः उन्होंने अब्दाली की सेना को धर्मरक्षा हेतु प्रोत्साहित किया। फलतः मुसलमानों ने पूर्ण निष्ठा से युद्ध किया तथा मराठों की पराजय हुई।

(10) जाटों तथा राजपूतों का असहयोग—बालाजी बाजीराव की अदूरदर्शितापूर्ण नीति तथा रघुनाथराव, होल्कर और सिन्धिया की सुविचारित आक्रामक नीति के अभाव के फलस्वरूप मराठे राजपूतों और जाटों का सहयोग खो बैठे। यद्यपि कुछ राजपूत और जाट इस युद्ध में सम्मिलित हुए, तथापि उन्होंने मराठों को पूर्ण रूप से सहयोग न दिया। मराठों के प्रति अन्य हिन्दू जातियों की इस दुर्भावना के फलस्वरूप भी उनकी पराजय हुई।

(11) सिक्खों की उदासीनता—पंजाब पर अब्दाली के निरन्तर आक्रमण करने के कारण उस प्रान्त के सिक्ख अफगानों के घोर शत्रु बन गए थे तथा वे इस अफगान आक्रमणकारी के विरुद्ध किसी भी शक्ति को सहायता देने के लिए तत्पर थे। परन्तु भाऊ अपनी अनुभवहीनता तथा अति-आत्मविश्वास के कारण उनकी सहायता प्राप्त न कर सका। हिन्दुओं के इस योद्धा वर्ग की सहायता अवश्य ही मराठों के लिए लाभकारी सिद्ध होती।

प्रश्न 5— क्या आप क्लाइव को भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का संस्थापक मानते हैं? *(1990)*

अथवा **बंगाल में क्लाइव ने अँग्रेजी शासन की स्थापना किस प्रकार की?**

अथवा **"रॉबर्ट क्लाइव भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का संस्थापक था।" इस कथन की पुष्टि कीजिए।**

अथवा **"क्लाइव द्वारा स्थापित बंगाल में द्वैध-शासन महान् दूरदर्शिता का परिचायक था।" इस कथन की समालोचना कीजिए।**

अथवा **"लॉर्ड क्लाइव ने ब्रिटिश साम्राज्य की आधारशिला रखी।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।** *(1992, 94)*

अथवा **जब क्लाइव दूसरी बार 1765 ई० में बंगाल का गवर्नर बना तो उसके समक्ष क्या कठिनाइयाँ थीं? उनका समाधान उसने किस प्रकार किया।**

अथवा **क्या क्लाइव को भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का संस्थापक कहना उचित होगा? अपने उत्तर के समर्थन में तर्क दीजिए।** *(1993)*

अथवा **भारत में अँग्रेजी साम्राज्य-स्थापना करने में अँग्रेजों की सफलता के क्या कारण थे?** *(1993)*

अथवा **लॉर्ड क्लाइव की सफलताओं का वर्णन कीजिए।** *(1995)*

अथवा **भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना में लॉर्ड क्लाइव के योगदान का उल्लेख कीजिए।** *(1996)*

उत्तर—

रॉबर्ट क्लाइव

औरंगजेब की मृत्यु के पश्चात् मुगल साम्राज्य का पतन बड़ी तेजी से होने लगा, जिसका लाभ उठाकर अनेक यूरोपीय जातियों ने भारत पर अपना प्रभुत्व जमाने का प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया। उनमें सबसे शक्तिशाली और सम्पन्न अँग्रेज ही थे। प्रारम्भ में, अँग्रेज भारत में व्यापार करने के उद्देश्य से आए थे। धीरे-धीरे वे भारत की राजनीतिक दुर्बलता का लाभ उठाकर व्यापारी से शासक बन गए। भारत में ब्रिटिश शासन की स्थापना का श्रेय रॉबर्ट क्लाइव को प्राप्त है।[1] प्रारम्भ में, क्लाइव 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' में एक साधारण क्लर्क था। कुछ समय पश्चात् वह कम्पनी की सेना में भर्ती हो गया। उसमें एक कुशल और दूरदर्शी सैनिक की प्रतिभा छिपी हुई थी। क्लाइव अपनी योग्यता के बल पर ही भारत में एक सैनिक से ब्रिटिश गवर्नर बना दिया गया। उसे भारत में अँग्रेजी राज्य का संस्थापक होने का गौरव प्राप्त है।

सन् 1760 ई० में क्लाइव के इंगलैण्ड वापस लौटते ही कम्पनी के सभी कर्मचारी अपने कर्त्तव्यों की उपेक्षा करने लगे। वे स्वार्थी और भ्रष्ट हो गए थे, फलस्वरूप शीघ्र ही बंगाल में अँग्रेजी साम्राज्य की स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गई। बंगाल की बिगड़ी हुई स्थिति के विषय में क्लाइव ने स्वयं बड़े दुःख के साथ कहा था, **"मैं केवल इतना कहूँगा कि अराजकता, अव्यवस्था, उत्पीड़न, भ्रष्टाचार और शोषण का ऐसा दृश्य बंगाल के अतिरिक्त न किसी देश में देखा गया है, न सुना गया और न इतने अन्यायपूर्ण तथा लोलुप ढंग से इतने लाभ प्राप्त किए गए हैं।"**

---

1. कर्नाटक के दूसरे युद्ध में क्लाइव ने अर्काट पर घेरा डालकर अँग्रेजों की पराजय को विजय में बदल दिया था। बंगाल के नवाब सिराज-उद्-दौला को प्लासी के युद्ध (1757 ई०) में पराजित कर उसने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की नींव डाली थी।

अतः कम्पनी के डायरेक्टरों ने इस विषम स्थिति को देखते हुए, 1765 ई० में लॉर्ड क्लाइव को पुनः कम्पनी की दशा में सुधार करने के लिए भारत का गवर्नर बनाकर भेजा। उसने भारत आकर अनेक सुधार किए।

रॉबर्ट क्लाइव के सुधार

क्लाइव ने निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण सुधार किए थे—

(1) प्रतिज्ञा-पत्र का प्रचलन—क्लाइव ने भ्रष्टाचार तथा घूसखोरी को समाप्त करने के उद्देश्य से प्रत्येक कर्मचारी से एक प्रतिज्ञा-पत्र भरवाया तथा उन पर यह प्रतिबन्ध लगा दिया कि वे भारतीयों से किसी प्रकार की भेंट, नजराना या उपहार नहीं लेंगे।

(2) व्यक्तिगत व्यापार पर प्रतिबन्ध—क्लाइव ने देखा कि कम्पनी के लगभग सभी कर्मचारी निजी व्यापार कर रहे हैं और कम्पनी के व्यापार को भारी क्षति पहुँचा रहे हैं। इसके साथ ही वे भारतीयों का माल बिना चुँगी के निकलवा देते हैं। अतः इन सबके सुधार हेतु कम्पनी के कर्मचारियों के निजी व्यापार करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया। इसके साथ ही क्लाइव ने कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि कर दी। उसने एक व्यापारिक संघ की भी स्थापना की, जो नमक व तम्बाकू आदि का व्यापार करता था और इसका लाभ कम्पनी के सभी अधिकारियों में विभाजित कर दिया जाता था।

रॉबर्ट क्लाइव के सुधार

(1) प्रतिज्ञा-पत्र का प्रचलन
(2) व्यक्तिगत व्यापार पर प्रतिबन्ध
(3) सैनिक सुधार
(4) क्लाइव के भारतीय शासकों से सम्बन्ध
(5) अवध के नवाब के साथ सन्धि
(6) इलाहाबाद की सन्धि
(7) बंगाल में दोहरा द्वैध शासन
(8) द्वैध शासन के लाभ।

(3) सैनिक सुधार—क्लाइव ने कम्पनी की सैनिक व्यवस्था में भी अनेक उपयोगी सुधार किए। उसने सिपाहियों को मिलने वाला दोहरा भत्ता बन्द कर दिया। इस भत्ते को बन्द करने का कारण यह था कि अँग्रेजों के प्रभुत्व से पहले बंगाल का नवाब, यह भत्ता अपने राजकोष से देता था, किन्तु अब यह धन कम्पनी को देना पड़ता था। दोहरा भत्ता देने की प्रथा केवल युद्धकाल में थी, किन्तु मीर जाफर इसे शान्तिकाल में भी देता रहा था। अतः अब क्लाइव ने इस भत्ते का कोई औचित्य नहीं समझा और इसे बन्द करवा दिया। इससे अँग्रेज सैनिकों में खलबली मच गई। लेकिन क्लाइव अपने निर्णय पर दृढ़ रहा। क्लाइव ने अधिकारियों के त्यागपत्र और विरोध की भी कोई चिन्ता नहीं की। उसके द्वारा मीर जाफर से प्राप्त 5 लाख रुपये का एक क्लाइव-कोष बनाया गया था। इस कोष से उन सैनिकों की सहायता की जाती थी, जिनका युद्ध में अंग भंग हो जाता था। क्लाइव के इन सैनिक सुधारों से सेना के अनेक गम्भीर दोष दूर हो गए थे।

(4) क्लाइव के भारतीय शासकों से सम्बन्ध—जिस समय क्लाइव दूसरी बार गवर्नर बनकर भारत आया, उस समय तक अँग्रेज बक्सर की ऐतिहासिक विजय प्राप्त कर चुके थे। 1764 ई० के बक्सर युद्ध में दिल्ली का बादशाह शाहआलम द्वितीय, बंगाल का नवाब मीर कासिम तथा अवध का नवाब शुजाउद्दौला सम्मिलित रूप से पराजित हुए थे।

अब क्लाइव के समक्ष यह प्रश्न था कि दिल्ली जीतकर ईस्ट इण्डिया कम्पनी को भारत की शासन संस्था बनाया जाए या नहीं। उसने दिल्ली पर अधिकार स्थापित करने का समयानुकूल निर्णय लिया। इसका कारण बताते हुए उसने स्वयं लिखा है, **"इससे आगे बढ़ने की योजना ऐसी अविवेकपूर्ण जान पड़ती है कि गवर्नर या उसकी काउंसिल के सदस्य कभी भी बुद्धि के रहते हुए ऐसी सलाह नहीं दे सकते, क्योंकि इससे कम्पनी के सम्पूर्ण हितों को क्षति पहुँचेगी।"**

(5) अवध के नवाब के साथ सन्धि—बक्सर के युद्ध में अवध का नवाब पराजित हो गया था। इस समय यदि क्लाइव चाहता तो अवध पर कम्पनी का अधिकार स्थापित कर सकता था, लेकिन उसने ऐसा न करके नवाब से सन्धि ही की। इस सन्धि की शर्तें इस प्रकार थीं—(क) नवाब 54 लाख रुपये कम्पनी को देगा, (ख) कम्पनी नवाब को सैनिक सहायता देगी जिसका व्यय नवाब को देना होगा, (ग) नवाब

अँग्रेजों के विरोधियों को सहायता नहीं देगा, (घ) दोनों संकट के समय एक-दूसरे की हर प्रकार से सहायता करेंगे। इस सन्धि की शर्तों से, क्लाइव की बुद्धिमत्ता एवं उच्च कोटि की दूरदर्शिता का परिचय मिलता है।

(6) मुगल सम्राट शाहआलम के साथ इलाहाबाद की सन्धि—सन् 1765 ई० में क्लाइव ने मुगल बादशाह शाहआलम के साथ इलाहाबाद की सन्धि की। इस सन्धि के अनुसार, बादशाह ने कम्पनी को बंगाल, बिहार और उड़ीसा की दीवानी या मालगुजारी वसूल करने का अधिकार दे दिया। इसके बदले में कम्पनी ने बादशाह को 26 लाख रुपये वार्षिक धन देना स्वीकार किया। इस समझौते के अनुसार कम्पनी ने कड़ा और इलाहाबाद के जिले भी सम्राट शाहआलम को दे दिए।

(7) बंगाल में दोहरा द्वैध शासन—क्लाइव ने इलाहाबाद की सन्धि के अनुसार बंगाल प्रान्त में द्वैध शासन-व्यवस्था स्थापित की। इस शासन-व्यवस्था का तात्पर्य यह था कि बंगाल, बिहार व उड़ीसा की मालगुजारी प्राप्त करने का कार्य, विदेशी मामले एवं सेना पर अधिकार तो कम्पनी का होगा तथा शेष शासन सम्बन्धी सभी कार्य नवाब स्वयं करेगा। मुहम्मद रजा खाँ को बंगाल का नायब नाजिम और सितावराय को बिहार का नायब नाजिम नियुक्त किया गया था। इन्हें पदच्युत करने का अधिकार भी कम्पनी को ही प्राप्त था। नवाब लगान वसूल कर तथा अपना खर्च काटकर शेष धन कम्पनी के खजाने में जमा कर देता था। इस प्रकार बंगाल, बिहार और उड़ीसा का शासन-प्रबन्ध नवाब और कम्पनी में बँट गया था। यह दोहरा शासन प्रबन्ध ही बंगाल का द्वैध शासन प्रबन्ध कहलाता है। 1765 से 1772 ई० तक बंगाल का द्वैध शासन चलता रहा और बाद में इसे हेस्टिंग्स ने ही समाप्त किया।

(8) द्वैध शासन के लाभ—द्वैध शासन के निम्न लाभ हुए—

(i) 1765 ई० में मुगल बादशाह शाहआलम द्वितीय से सन्धि करने के उपरान्त कम्पनी को बंगाल के निजामत और दीवानी दोनों के अधिकार प्राप्त हो गए थे। अतः कम्पनी का कार्य-भार पर्याप्त रूप से बढ़ गया था जिसे कम्पनी अकेले ही समुचित ढंग से नहीं कर सकती थी, इसलिए क्लाइव ने दोहरे शासन की व्यवस्था की। इससे कम्पनी को काम भी कम करना पड़ता था और उसका बंगाल पर पूरा-पूरा अधिकार भी बना रहा।

(ii) कम्पनी के हाथ में प्रशासन का पूरा अधिकार न रखने का बाह्य प्रदर्शन, क्लाइव की दूरदर्शिता का स्पष्ट प्रमाण था, क्योंकि यदि प्रत्यक्ष रूप से कम्पनी का पूरा अधिकार रहता तो सम्भव था कि ईर्ष्यावश विदेशी शक्तियाँ—फ्रांसीसी, डच आदि अँग्रेजों का विरोध कर, अपना अधिकार स्थापित करने का प्रयत्न करतीं।

(iii) कम्पनी का प्रमुख कार्य व्यापार करना एवं अधिकतम धनार्जन करना था, न कि शासन के विवादों में उलझना जबकि इस व्यवस्था से उसका सम्पूर्ण बंगाल पर प्रभुत्व स्थापित हो गया था।

द्वैध शासन के इन लाभों को दृष्टि में रखते हुए ही यह कहा जा सकता है कि, **"क्लाइव द्वारा स्थापित बंगाल में द्वैध-शासन महान दूरदर्शिता का परिचायक था।"**

द्वैध शासन की आलोचना—कुछ विद्वानों का कहना है कि बंगाल में क्लाइव द्वारा स्थापित द्वैध शासन अवैध था। इस शासन-प्रबन्ध में कम्पनी का उद्देश्य धन कमाना था, न कि सुव्यवस्था स्थापित करना। इस प्रकार, बंगाल की जनता के हितों की न कम्पनी को चिन्ता रह गई और न नवाब को। नवाब तो केवल पेन्शनभोक्ता ही रह गया था, उसे अपनी जनता के सुख-दुःख से कोई सम्बन्ध नहीं रह गया था। अतः द्वैध शासन व्यवस्था असफल सिद्ध हुई।

क्लाइव ब्रिटिश साम्राज्य का संस्थापक
(भारत में अँग्रेजी साम्राज्य की सफलता के कारण)

अधिकांश इतिहासकार क्लाइव को ब्रिटिश साम्राज्य का संस्थापक मानते हैं। यदि हम क्लाइव के अभूतपूर्व कार्यों का अवलोकन करें, तो यह मत सत्य प्रतीत होता है। वास्तव में, क्लाइव के परिश्रम एवं नीति-कुशलता के कारण ही भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का बीजारोपण हुआ। एल्फ्रेड के अनुसार, "भारत में

ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के लिए अँग्रेज लोग अन्य सभी लोगों की अपेक्षा क्लाइव के ही ऋणी हैं जो उत्साही, साहसी और कभी न थकने वाला व्यक्ति था।"

क्लाइव ब्रिटिश साम्राज्य का संस्थापक
(1) अर्काट की विजय
(2) प्लासी की विजय
(3) शाहआलम से सन्धि।

क्लाइव की निम्नांकित सफलताएँ उसे भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का संस्थापक सिद्ध करने के लिए पर्याप्त हैं—

(1) अर्काट की विजय—यदि क्लाइव ने अर्काट की विजय प्राप्त नहीं की होती, तो सम्भव था कि भारत में अँग्रेजों के स्थान पर फ्रांसीसियों की प्रभुता स्थापित हो जाती। अर्काट की विजय के सम्बन्ध में एक इतिहासकार ने लिखा है, **"जब फ्रांसीसी तथा चाँदा साहब, मुहम्मद अली को त्रिचनापल्ली में घेरे हुए थे और अँग्रेज किंकर्त्तव्यविमूढ़ थे उसी समय क्लाइव ने मद्रास काउंसिल का ध्यान कर्नाटक की राजधानी अर्काट पर आक्रमण करने की ओर आकर्षित किया, जिसने पासा पूर्णतया पलट दिया और वहीं से अँग्रेजों की विजय का सूत्रपात हुआ।"**

(2) प्लासी की विजय—प्लासी की विजय भी क्लाइव की विलक्षण बुद्धि और दूरदर्शिता का परिणाम थी। एक विद्वान् ने इसे युद्ध नहीं, वरन् एक प्रकार का समझौता मानते हुए लिखा है, **"यह एक समझौता था और इसकी सारी सफलता का श्रेय क्लाइव को ही दिया जाना चाहिए।"** वास्तव में, प्लासी की विजय ने ही भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना का मार्ग प्रशस्त कर दिया था।

(3) शाहआलम से सन्धि—बक्सर के युद्ध के पश्चात् क्लाइव ने मुगल सम्राट शाहआलम से इलाहाबाद की सन्धि की जिसके परिणामस्वरूप अँग्रेजी कम्पनी को भारत में एक सुदृढ़ राजनीतिक और आर्थिक आधार प्राप्त हुआ। वस्तुतः इस सन्धि ने प्लासी के अधूरे कार्य को पूरा कर दिया।

डॉ० ईश्वरी प्रसाद ने क्लाइव के कार्यों की समीक्षा करते हुए लिखा है, **"कम्पनी को एक व्यापारिक संस्था से प्रशासनिक संस्था के रूप में बदलने का सबसे अधिक श्रेय क्लाइव को ही है। क्लाइव की कार्य-प्रणाली एवं संगठन-शक्ति का ही यह फल था कि 'ईस्ट इण्डिया कम्पनी' समकालीन अन्य कम्पनियों के ऊपर अपनी प्रभुता स्थापित कर सकी।"** वास्तव में, क्लाइव की विजयें ही महान् नहीं थीं, वरन् उसके द्वारा की गई पर्याप्त सन्धियाँ और समझौते ने भी भारत में ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना करने में सहायक हुए थे। लॉर्ड मैकाले ने क्लाइव की प्रशंसा करते हुए लिखा है, **"हमारे द्वीप ने शायद ही कभी युद्ध-भूमि और विचार-भवन, दोनों ही स्थानों पर वस्तुतः उससे अधिक महान् व्यक्ति को जन्म दिया हो।"**

लॉर्ड कर्जन के शब्दों में—**"क्लाइव अँग्रेज जाति में महान् आत्मा वाला व्यक्ति था। वह उन शक्तियों में से था, जो मानव-जाति के भाग्य-निर्माण के लिए इस विश्व में अवतरित होती हैं।"**

प्रश्न 6 – इलाहाबाद की सन्धि (1765 ई०) की शर्तों का उल्लेख कीजिए। क्लाइव के द्वारा, इस सन्धि के उपरान्त, अवध राज्य को अँग्रेजी साम्राज्य में विलीन क्यों नहीं किया गया?

अथवा **इलाहाबाद की सन्धि (1765 ई०) की शर्तों का परीक्षण कीजिए।** *(1996)*

उत्तर—

इलाहाबाद की सन्धि (1765 ई०)

बक्सर के युद्ध के पश्चात् अवध कम्पनी के प्रभुत्व में आ गया। यद्यपि काउंसिल के कुछ सदस्य अवध को अँग्रेजी साम्राज्य में विलीन कर लेने के पक्ष में थे तथापि क्लाइव इसका विरोध कर रहा था। उसे अनुभव हो रहा था कि कम्पनी के साम्राज्य का इस प्रकार तीव्र गति से विस्तृत होना सुरक्षा तथा व्यवस्था के कार्य को अति कठिन बना देगा। अवध के राज्य की भौगोलिक स्थिति युद्ध की दृष्टि से अत्यधिक महत्त्वपूर्ण थी। अतः 1765 ई० में इलाहाबाद में अवध के नवाब के साथ एक सन्धि की गई जिसकी शर्तें निम्न प्रकार थीं—

(1) नवाब शुजा-उद्दौला का राज्य उसे लौटा दिया गया, परन्तु कड़ा तथा इलाहाबाद के जिले उसे नहीं दिए गए।

(2) नवाब को 50 लाख रुपया युद्धक्षति के रूप में देना पड़ा।

(3) अँग्रेजों ने नवाब को सैनिक सहायता देना स्वीकार कर लिया, परन्तु शर्त यह थी कि वह सेना का व्यय सहन करे।

(4) बनारस तथा गाजीपुर के जिलों की जमींदारी, राजा बलवन्त सिंह को दे दी गई, जो अंग्रेजों के संरक्षण में आ गया था।

(5) दोनों पक्षों में युद्ध तथा शान्तिकाल में एक-दूसरे का साथ देने की सन्धि हो गई।

(6) कम्पनी को नवाब के प्रदेश में, कर-मुक्त व्यापार करने का अधिकार प्राप्त हो गया।

इस प्रकार, अवध का राज्य एक प्रकार से अँग्रेजों पर निर्भर हो गया। अँग्रेजों ने इसके साथ सम्बन्ध बढ़ाने आरम्भ कर दिए ताकि वे इसे बफर राज्य के रूप में प्रयुक्त कर सकें। अवध के साथ हुए इस निर्णय के फलस्वरूप ही 1856 ई० में लॉर्ड डलहौजी इस राज्य को अँग्रेजी साम्राज्य में विलीन कर सका, तथापि क्लाइव ने इसे अँग्रेजी राज्य में विलीन न किया, जिसके निम्नलिखित कारण थे—

(i) कम्पनी के डायरेक्टर नए प्रदेश विजित अथवा विलीन करने के विरुद्ध थे।

(ii) प्रदेश के विस्तार से कम्पनी का ध्यान व्यापार से हटकर प्रबन्ध की ओर लग जाना स्वाभाविक था।

(iii) इसके लिए और अधिक धन की आवश्यकता थी।

(iv) इससे विरोधी यूरोपीय शक्तियों की ईर्ष्या का उत्पन्न होना निश्चित था।

(v) इससे कम्पनी के प्रदेश का मराठा प्रदेश में सीधे सम्पर्क में आ जाना निश्चित था।

(vi) कम्पनी के पास योग्य प्रबन्धकों का अभाव था।

यद्यपि क्लाइव ने अवध को अपने साम्राज्य में विलीन नहीं किया, फिर भी उसे अवध में अनेक महत्त्वपूर्ण अधिकार प्राप्त हो गए। इस प्रकार, इलाहाबाद की सन्धि के फलस्वरूप, अँग्रेजों को अपने साम्राज्यवाद का प्रसार करने की दृष्टि से, एक और महत्त्वपूर्ण सफलता प्राप्त हुई।

प्रश्न 7—भारत में वारेन हेस्टिंग्स के कार्यों का मूल्यांकन कीजिए।

***अथवा* "रॉबर्ट क्लाइव ने जिस अँग्रेजी साम्राज्य की नींव रखी थी, उस पर वारेन हेस्टिंग्स ने सुदृढ़ भवन का निर्माण किया था।" समालोचना कीजिए।** *(1990)*

***अथवा* "वारेन हेस्टिंग्स ने भारत में आंग्ल प्रशासन की आधारशिला रखी।" इस कथन के आलोक में वारेन हेस्टिंग्स द्वारा किए गए प्रशासनिक सुधारों का वर्णन कीजिए।**

***अथवा* भारत में ब्रिटिश राज्य को दृढ़ बनाने में वारेन हेस्टिंग्स के योगदान का वर्णन कीजिए।** *(1991)*

***अथवा* भारत में ब्रिटिश शासन को सुदृढ़ करने में वारेन हेस्टिंग्स के योगदानों का मूल्यांकन कीजिए।** *(1999)*

उत्तर—

वारेन हेस्टिंग्स (1772-1785 ई०)

वारेन हेस्टिंग्स प्रारम्भ में कम्पनी में एक साधारण लिपिक के पद पर कार्य करता था। धीरे-धीरे वह अपनी योग्यता एवं परिश्रम के बल पर पदोन्नति करता गया। 1772 ई० में कार्टियस के बाद वह बंगाल का गवर्नर और रेग्यूलेटिंग एक्ट पारित हो जाने के पश्चात् भारत का प्रथम गवर्नर जनरल बना। उसके सम्बन्ध में यह सत्य है कि रॉबर्ट क्लाइव ने भारत में अँग्रेजी सत्ता की नींव डाली, लेकिन इस नींव पर भवन-निर्माण का कार्य वारेन हेस्टिंग्स ने ही किया। इसका कारण यह है कि वारेन हेस्टिंग्स के आगमन के समय, बंगाल की स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। यदि वारेन हेस्टिंग्स भारत में आकर शासन सत्ता न सम्भालता और अनेक प्रशासनिक व अन्य प्रकार के सुधार न करता, तो सम्भव था कि भारत में अँग्रेजी शासन स्थायी न रह पाता। भारत के गवर्नर जनरल के पद पर रहकर वारेन हेस्टिंग्स ने 1774 से 1785 ई० तक सफलतापूर्वक कार्य किया। इस अवधि में उसने अनेक उल्लेखनीय सुधार भी किए थे।

वारेन हेस्टिंग्स की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ

जिस समय वारेन हेस्टिंग्स भारत का गवर्नर जनरल बनकर भारत आया, उस समय उसके समक्ष अनेक कठिनाइयाँ उपस्थित थीं। ये कठिनाइयाँ इस प्रकार थीं—

(1) बंगाल में अराजकता—जब वारेन हेस्टिंग्स गवर्नर जनरल बनकर भारत आया तो बंगाल में चारों ओर अराजकता और अव्यवस्था व्याप्त थी। दोहरे शासन प्रबन्ध के कारण वहाँ की जनता की ओर

न तो कम्पनी के कर्मचारी ही ध्यान दे रहे थे और न बंगाल का नवाब ही। वहाँ अकाल और महामारी का बोलवाला था। इससे बंगाल की स्थिति और अधिक दयनीय हो गई।

(2) कम्पनी के कर्मचारियों का चारित्रिक पतन— कम्पनी के कर्मचारी चारित्रिक पतन की ओर उन्मुख हो चुके थे। वे भेंट, उपहार आदि लेकर अनुचित कार्यों में संलग्न हो गए थे। इन कर्मचारियों के साथ ही भारतीय कर्मचारी भी स्वार्थी हो गए थे। यहाँ तक कि वे स्वयं भी अपने देशवासियों के प्रति दया का भाव नहीं रखते थे।

(3) धन की कमी—जिस समय वारेन हेस्टिंग्स गवर्नर जनरल बनकर भारत आया उस समय कम्पनी की आर्थिक दशा अत्यन्त शोचनीय हो चुकी थी। भ्रष्टाचार तथा अधिकारियों की लूट-खसोट के कारण कम्पनी का कोष रिक्त हो गया। अतः बिना धन के शासन-व्यवस्था का संचालन करना एक विकट समस्या थी।

(4) द्वैध शासन के दुष्परिणाम—क्लाइव द्वारा स्थापित द्वैध शासन-व्यवस्था के अब अनेक दुष्परिणाम सामने आए थे। प्रजा को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा था और व्यापार एवं कृषि आदि चौपट हो गए थे। फलतः वारेन हेस्टिंग्स को जनता के आक्रोशपूर्ण क्रोध का सामना करना पड़ रहा था।

> **वारेन हेस्टिंग्स की प्रारम्भिक कठिनाइयाँ**
> (1) बंगाल में अराजकता
> (2) कम्पनी के कर्मचारियों का चारित्रिक पतन
> (3) धन की कमी
> (4) द्वैध शासन के दुष्परिणाम
> (5) विरोधी शक्तियों की समस्या।

(5) विरोधी शक्तियों की समस्या—क्लाइव के समय में मराठों की शक्ति बहुत बढ़ गई थी। उत्तर में सिंधिया तथा दक्षिण में पेशवा माधवराव अँग्रेजी सत्ता को जमने नहीं देना चाहते थे। केवल ये दोनों साहसी शासक ही अँग्रेजों के विरुद्ध नहीं थे, वरन् हैदरअली और मुगल सम्राट भी अँग्रेजों से शत्रुता रखते थे। इन सशक्त विरोधियों के कारण भारत में अँग्रेजी सत्ता का अस्तित्व खतरे में पड़ गया था।

वारेन हेस्टिंग्स के सुधार (कार्य अथवा उपलब्धियाँ)

वारेन हेस्टिंग्स ने स्वयं को चारों ओर से कठिनाइयों से घिरा पाया, तो उसने शासन में सुधार हेतु पाँच प्रमुख सिद्धान्त निर्धारित किए। वास्तव में, उसके ये सिद्धान्त परिस्थितियों के अनुकूल थे। इन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर उसने निम्नलिखित क्षेत्रों में सुधार किए—

(1) शासन-सम्बन्धी सुधार—(i) द्वैध शासन का अन्त—हेस्टिंग्स ने सर्वप्रथम बंगाल के दोहरे शासन की व्यवस्था को समाप्त कर दिया। उसने भ्रष्ट नवाबों मुहम्मद रजा खाँ और सिताब राय से दीवानी का कार्य लेकर कम्पनी को सौंप दिया और प्रत्येक ज़िले में भारतीय कलेक्टर को हटाकर एक अँग्रेज कलेक्टर नियुक्त किया, जिसका कार्य मालगुजारी वसूल करवाना था। उसने प्रत्येक जिले में कलेक्टर की सहायता के लिए एक भारतीय दीवान भी नियुक्त किया और कई जिलों के ऊपर एक अँग्रेज कमिश्नर नियुक्त किया।

(ii) अराजकता का अन्त—वारेन हेस्टिंग्स ने भारत में शान्ति स्थापित करने का हर सम्भव प्रयत्न किया। उसने चोर-डाकुओं एवं भ्रष्ट कर्मचारियों को कठोर दण्ड दिए। उसने प्रत्येक जिलें में एक फौजदार नियुक्त किया, जिसका कार्य जमींदारों और लगान के अफसरों से मिलकर जिले में शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित करना था।

(2) मालगुजारी सम्बन्धी सुधार—वारेन हेस्टिंग्स ने मालगुजारी सम्बन्धी सुधार करना भी आवश्यक समझा, क्योंकि उसने देखा कि जमींदार लोग मालगुजारी के रूप में एक निश्चित धनराशि कम्पनी को दिया करते थे और किसानों से मनमाने ढंग से मालगुजारी वसूल करके अधिकांश धन स्वयं हड़प जाते थे। अतः उसने इस क्षेत्र में निम्नांकित सुधार किए—

(i) भूमि का पंचवर्षीय प्रबन्ध—हेस्टिंग्स ने भूमि को 5 वर्ष के ठेके पर देने की व्यवस्था की। लगान वसूली के लिए उन ठेकेदारों को नियुक्त किया जाता था, जो अधिक-से-अधिक धन देने को तैयार होते थे। इस व्यवस्था में उसने 5 वर्ष की लगान की मात्रा निश्चित कर दी। इस व्यवस्था के अनेक

दुष्परिणाम निकले। ठेकेदार अपने पाँच वर्ष के इस निश्चित काल में किसानों को खूब लूटते-खसोटते थे, लेकिन कम्पनी को एक निश्चित धनराशि ही देते थे।

(ii) राजस्व समिति की नियुक्ति—1781 ई० में उसने कलकत्ता को राजधानी बनाया और एक नवीन राजस्व समिति का निर्माण किया। इसके अतिरिक्त, उसने लगान वसूल करने का सम्पूर्ण कार्य प्रान्तीय गवर्नर को सौंप दिया।

(3) **आर्थिक सुधार**—वारेन हेस्टिंग्स ने आर्थिक स्थिति में सुधार हेतु निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण सुधार किए—

(i) उसने बंगाल के नवाब की पेंशन 32 लाख रुपये से घटाकर 16 लाख रुपये वार्षिक कर दी।

(ii) उसने मुगल बादशाह शाहआलम की 26 लाख रुपये की वार्षिक पेंशन बन्द कर दी, क्योंकि मुगल सम्राट शाहआलम ने मराठों से सम्बन्ध स्थापित कर लिए थे।

(iii) उसने कर्मचारियों की पेंशनों में कटौती कर दी।

(iv) इलाहाबाद, कड़ा और मानिकपुर के जिले मुगल सम्राट शाहआलम से वापस ले लिए गए और उन्हें 50 लाख रुपये में, अवध के नवाब को बेच दिया गया।

(v) रुहेलों के विरुद्ध अवध के नवाब की सहायता करके, उसने नवाब से 40 लाख रुपये प्राप्त किए। इसके अतिरिक्त दो लाख रुपये वारेन हेस्टिंग्स ने व्यक्तिगत रूप से भी नवाब से प्राप्त किए थे।

इस प्रकार, वारेन हेस्टिंग्स कम्पनी की आर्थिक स्थिति सुधारने में पूर्णरूप से सफल रहा। उसके मालगुजारी सम्बन्धी सुधारों से भी कम्पनी के राजकोष में धन की बहुत वृद्धि हुई थी।

वारेन हेस्टिंग्स के सुधार
(कार्य अथवा उपलब्धियाँ)

(1) शासन-सम्बन्धी सुधार
(2) मालगुजारी सम्बन्धी सुधार
(3) आर्थिक सुधार
(4) व्यापार सम्बन्धी सुधार
(5) न्याय सम्बन्धी सुधार।

(4) **व्यापार सम्बन्धी सुधार**—व्यापार के क्षेत्र में वारेन हेस्टिंग्स ने निम्नलिखित सुधार किए—

(i) **करों में कमी**—उसने अनेक करों और चुंगी में कमी कर दी। इससे व्यापार में पर्याप्त उन्नति हुई।

(ii) **व्यक्तिगत व्यापार का अन्त**—कम्पनी के कर्मचारी अपना निजी व्यापार भी करने लगे थे। इससे वे कम्पनी के व्यापार की ओर निजी व्यापार की अपेक्षा बहुत कम ध्यान देते थे। अतः वारेन हेस्टिंग्स ने निजी व्यापार पर प्रतिबन्ध लगा दिया।

(iii) **चौकियों की समाप्ति**—नवाबों ने अपने लाभ के लिए स्थान-स्थान पर व्यापार अवरोधक चौकियाँ बनवाई थीं। हेस्टिंग्स ने इन्हें बन्द कर, व्यापार को सुविधाजनक बनाया।

(iv) **बैंक की स्थापना**—व्यापारी वर्ग को आर्थिक सहायता देने अर्थात् व्यापार की उन्नति में सहायता देने के लिए उसने कलकत्ता में एक बैंक स्थापित किया।

(v) **टकसाल की स्थापना**—मुद्रा की सुरक्षित व्यवस्था करने के लिए उसने कलकत्ता में एक टकसाल की स्थापना की। इस टकसाल में निश्चित आकार तथा समान मूल्य की मुद्रा ढाली जाती थी।

(vi) **व्यापारिक सन्धियाँ**—व्यापार की वृद्धि एवं विकास के लिए उसने मिस्र, तिब्बत और भूटान-नरेशों के साथ व्यापारिक सन्धियाँ कीं, जिससे व्यापार की अत्यधिक उन्नति हुई।

(vii) **नमक और अफीम के व्यापार पर प्रतिबन्ध**—उसने नमक, पान, तम्बाकू और अफीम के व्यापार पर सरकारी नियन्त्रण अवश्य रखा, परन्तु इनका व्यापार ठेके पर उठाया गया।

(viii) **दस्तक-प्रथा को समाप्त करना**—'दस्तक-प्रथा' के कारण प्रत्येक व्यक्ति व्यापार नहीं कर सकता था। अतः वारेन हेस्टिंग्स ने उसे समाप्त कर स्वतन्त्र व्यापार के विस्तार में सहयोग दिया।

(5) **न्याय सम्बन्धी सुधार**—उसके न्याय सम्बन्धी सुधार निम्नलिखित थे—

(i) **न्यायालयों का संगठन**—जमींदारों को कुछ न्याय सम्बन्धी अधिकार प्राप्त थे, हेस्टिंग्स ने उन्हें समाप्त कर प्रत्येक जिले में एक दीवानी और फ़ौजदारी न्यायालय की स्थापना की। दीवानी अदालत

कलेक्टर के अधीन थी और फौजदारी के न्यायालय में काजी अथवा मुफ्ती; कानूनों की व्याख्या करते हुए अपराधियों को दण्ड देते थे।

(ii) न्यायाधीशों के वेतन की व्यवस्था—हेस्टिंग्स ने न्यायाधीशों का पद वैतनिक और निश्चित कर दिया। इससे पहले उन्हें वेतन के स्थान पर प्रत्येक मुकदमे के न्याय करने की फीस मिलती थी।

(iii) फौजदारों की नियुक्ति—उसने प्रत्येक जिले में अपराधियों को पकड़ने के लिए एक फौजदार की नियुक्ति की।

(iv) कानूनों का संग्रह एवं सुधार—उसने हिन्दू एवं मुस्लिम कानूनों को संकलित करवाया, जिससे किसी के साथ अन्याय न हो। उसने आवश्यकतानुसार कानून में सुधार भी किए।

(v) अपील की उच्च अदालतों की स्थापना—कलकत्ता में अपील के दो उच्च न्यायालय स्थापित किए गए। दीवानी के अपील न्यायालय का नाम **'सदर दीवानी'** और फौजदारी के न्यायालय का नाम **'सदर निजामत'** रखा गया।

बारेन हेस्टिंग्स के इन प्रशासनिक कार्यों के आधार पर यह कथन उचित ही प्रतीत होता है कि, **"वारेन हेस्टिंग्स ने भारत में आंग्ल प्रशासन की आधारशिला रखी थी।"**

वारेन हेस्टिंग्स के सुधारों का महत्त्व

हेस्टिंग्स ने भारत में अँग्रेजी साम्राज्य को सुदृढ़ ही नहीं बनाया, वरन् उसने भारतीयों को भी कष्टों से मुक्ति दिलाने के लिए प्रशंसनीय कार्य किए। इसीलिए उसका भारतीय इतिहास में अद्वितीय महत्त्व है।

सर विलियम हण्टर ने लिखा है, **"वारेन हेस्टिंग्स ने जिस नागरिक शासन-प्रणाली की नींव डाली थी, उसी पर कार्नवालिस ने एक विशाल भवन का निर्माण किया।"**

पी० ई० रॉबर्ट्स के शब्दों में, **"भारत में अँग्रेजी राज्य और कम्पनी की सुरक्षा तथा भलाई को ही वारेन हेस्टिंग्स ने अपना परम लक्ष्य बना रखा था।"**

वारेन हेस्टिंग्स ने गवर्नर जनरल का पद उस समय ग्रहण किया था जब कम्पनी की स्थिति अधर में थी तथा वह चारों ओर से शत्रुओं से घिरी हुई थी। इस विषम परिस्थिति में वारेन हेस्टिंग्स ने आवश्यकतानुसार और समयानुकूल नैतिक और अनैतिक नीतियों का आश्रय लेकर कम्पनी के लिए अति उपयोगी साम्राज्यवादी नीति का पालन किया। इस प्रकार, कम्पनी के राज्य को सुदृढ़, सुव्यवस्थित, स्थायी और शक्तिशाली बनाने में वारेन हेस्टिंग्स का योगदान क्लाइव से कहीं अधिक है, क्योंकि रॉबर्ट क्लाइव द्वारा जिस अँग्रेजी साम्राज्य की नींव रखी गई थी, उसी पर वारेन हेस्टिंग्स ने एक सुदृढ़ भवन का निर्माण किया था।

प्रश्न 8—"इसमें कोई सन्देह नहीं कि चेतसिंह तथा अवध की बेगमों के मामले में हेस्टिंग्स ने एक गैरजिम्मेदार निरंकुश शासक का आचरण किया।" उपर्युक्त दोनों मामलों में वारेन हेस्टिंग्स की भूमिका की विवेचना कीजिए।

उत्तर—हेस्टिंग्स ने अपने शासनकाल में कुछ ऐसे अन्यायपूर्ण कार्य किए जिनके कारण न केवल भारत में, वरन् इंगलैण्ड में भी उसकी बड़ी निन्दा की गई। उसके दो अन्यायपूर्ण कार्य चेतसिंह के साथ अत्याचार तथा अवध की बेगमों के साथ दुर्व्यवहार हैं, जिनका विस्तृत विवरण निम्नलिखित है—

हेस्टिंग्स के अन्यायपूर्ण कार्य
(1) चेतसिंह के साथ अत्याचार
(2) अवध की बेगमों के साथ दुर्व्यवहार।

(1) चेतसिंह के साथ अत्याचार—चेतसिंह बनारस का राजा था। 1775 ई० की सन्धि के अनुसार, वह कम्पनी की अधीनता में आ गया था। उसने कम्पनी को $22\frac{1}{2}$ लाख रुपया वार्षिक कर के रूप में देना स्वीकार कर लिया था। वारेन हेस्टिंग्स ने चेतसिंह से वार्षिक कर के अतिरिक्त 5 लाख रुपया भी माँगा जो उसने दे दिया था। अगले वर्ष फिर उससे 5 लाख रुपया माँगा जो उसने पुनः दे दिया। परन्तु जब उससे 2000 घुड़सवार माँगे गए, तो उसने उनको देने में अपनी असमर्थता प्रकट की। तब वारेन हेस्टिंग्स चेतसिंह को दण्ड देने के लिए 500 सैनिकों को लेकर बनारस पहुँचा और उसने चेतसिंह को कैद कर लिया।

इस पर चेतसिंह के सैनिकों ने विद्रोह कर दिया और वारेन हेस्टिंग्स को चुनार में शरण लेनी पड़ी। इसी समय पाकम नामक सेनापति ने हेस्टिंग्स की सहायता की और बनारस पर अधिकार कर लिया। चेतसिंह पहले ही अपना समस्त धन लेकर ग्वालियर भाग गया। हेस्टिंग्स ने चेतसिंह के भतीजे को बनारस का राजा बना दिया जिसने 40 लाख रुपये वार्षिक कम्पनी को देने का वचन दिया। हेस्टिंग्स ने चेतसिंह के साथ जो अपमानजनक व्यवहार किया उसकी इतिहासकारों ने घोर निन्दा की है।

(2) अवध की बेगमों के साथ दुर्व्यवहार—हेस्टिंग्स ने अवध की बेगमों के साथ भी दुर्व्यवहार किया। 1775 ई० में नवाब शुजाउदौला की मृत्यु हो गई। उसके पश्चात्, उसका पुत्र आसफउद्दौला नवाब बना। वह कम्पनी की सेना का खर्च न चुका सका। उस पर कम्पनी का $1\frac{1}{2}$ करोड़ रुपया ऋण हो गया। अतः उसने अपनी माँ तथा दादी से धन वसूल करने का निश्चय किया। इस निकृष्ट कार्य में उसने हेस्टिंग्स से गठबन्धन किया। हेस्टिंग्स ने एक सेना बेगमों को आतंकित करने के लिए भेजी। बेगमों के साथ बड़ा दुर्व्यवहार किया गया और उनके सारे खजाने को छीन लिया गया। कहा जाता है कि हेस्टिंग्स को भी इस निन्दनीय कार्य के लिए 10 लाख रुपये रिश्वत में मिले। हेस्टिंग्स के इस निरंकुश कार्य की भी बड़ी निन्दा की गई।

अतः इसमें कोई सन्देह नहीं कि चेतसिंह तथा अवध की बेगमों के मामले में हेस्टिंग्स ने एक गैरजिम्मेदार निरंकुश शासक का आचरण किया था।

प्रश्न 9—हैदरअली के जीवन-चरित्र तथा उपलब्धियों का विवरण दीजिए। *(Imp.) (1990)*
अथवा **हैदरअली ने मैसूर को एक शक्तिशाली राज्य किस प्रकार बनाया? स्पष्ट कीजिए।** *(1994)*
अथवा **हैदरअली के व्यक्तित्व एवं उसकी उपलब्धियों की विवेचना कीजिए।** *(1999)*

उत्तर—

हैदरअली

हैदरअली का जन्म 1722 ई० में बूँदी कोट नामक स्थान पर हुआ था। हैदरअली के पिता का नाम फतेह मुहम्मद था, जो मैसूर राज्य की सेना में फौजदार था। हैदर बड़ा ही नटखट और खेलकूद में रुचि रखने वाला नवयुवक था। वह पूर्णतः अशिक्षित था। उसे आखेट का बहुत शौक था और उसका निशाना भी उच्च कोटि का था। वह अपनी वीरता और साहस के कारण एक सैनिक से शीघ्र ही मैसूर के मन्त्री के सहयोग से, डिण्डीगल के फौजदार के पद पर पहुँच गया। कुछ दिन पश्चात् ही वह मैसूर की सेना का प्रधान सेनापति नियुक्त कर दिया गया और अपनी योग्यता और साहस के बल पर वह शीघ्र ही 1761 ई० में मैसूर राज्य का स्वामी बन गया।

हैदरअली एक साधारण सैनिक से शासक बना था। वह जानता था कि उसका मुकुट काँटों से भरा हुआ है, फूलों की कोमलता से परिपूर्ण नहीं; अतः उसने अपनी शक्ति को सुदृढ़ बनाने के लिए सर्वप्रथम साम्राज्य-प्रसार की ओर ध्यान दिया। इस दिशा में उसने निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण कार्य किए—

हैदरअली
- हैदरअली का परिचय
- प्रथम मैसूर युद्ध
- मैसूर का द्वितीय युद्ध
- हैदरअली का चरित्र और मूल्यांकन।

(1) 1763 ई० में उसने वेदनूर के सिंहासन के दो प्रतिद्वन्द्वियों के संघर्ष का लाभ उठाया और उन्हें समाप्त करके, वेदनूर को हैदरनगर की संज्ञा देकर अपने साम्राज्य में मिला लिया।

(2) वेदनूर के बाद हैदरअली ने दक्षिण कन्नड़, कालीकट आदि पर विजय प्राप्त की तथा कोचीन व पालघाट के राजाओं को भी अपने अधीन कर लिया।

(3) मराठा शक्ति उन दिनों अपनी पराकाष्ठा पर थी। अतः पेशवा माधव राव के समक्ष उसने कूटनीति से काम लिया और उनसे सन्धि कर ली। मराठों को समय-समय पर धन और जागीरें देकर उसने उन्हें निज़ाम और अँग्रेजों के साथ मिलने से रोका। उसने अँग्रेजों को कुचलने के लिए मराठा सरदार नाना फड़नवीस के साथ एक सन्धि भी की।

प्रथम मैसूर युद्ध (1767 ई०)

हैदरअली की बढ़ती हुई शक्ति से मराठा, निजाम और अँग्रेज तीनों ही बहुत चिन्तित रहते थे। अतः तीनों शक्तियों ने हैदरअली के विरुद्ध एक संघ का निर्माण करना चाहा। हैदरअली ने इस संघ को ध्वस्त करने के लिए अपने कूटनीतिक प्रयत्न प्रारम्भ कर दिए। वह मराठों को 35 लाख रुपये देकर, उन्हें अपनी ओर मिलाने में सफल हो गया। निजाम को भी उसने अपना पक्का मित्र बना लिया। अब हैदरअली का विरोध केवल विदेशी अँग्रेजों से ही रह गया था। अतः उसने उनके विरुद्ध 1767 ई० में युद्ध की घोषणा कर दी।

इस युद्ध में यद्यपि प्रारम्भिक सफलताएँ अँग्रेजों को मिलीं, परन्तु शीघ्र ही हैदरअली ने अँग्रेजों को घेर लिया और मद्रास पर प्रबल वेग के साथ आक्रमण कर दिया। अँग्रेज अपने संघ को टूटता देखकर बुरी तरह भयभीत हो गए और वे हैदरअली से सन्धि करने को बाध्य हो गए। हैदरअली और अँग्रेजों के मध्य 1769 ई० में मद्रास की सन्धि हुई। इस सन्धि के अनुसार—(क) दोनों ही पक्षों ने जीते हुए प्रदेशों को एक-दूसरे को वापस लौटा दिया। (ख) क्षतिपूर्ति के रूप में ब्रिटिश कम्पनी ने हैदरअली को बहुत-सा धन देकर प्रसन्न कर दिया। (ग) साथ ही दोनों पक्षों ने किसी अन्य शत्रु के आक्रमण करने पर एक-दूसरे की सहायता करने का विश्वास दिलाया।

मैसूर का द्वितीय युद्ध (1780 ई०)

सन् 1771 ई० में मराठों ने हैदरअली पर आक्रमण किया, तो मद्रास की सन्धि के अनुसार हैदरअली ने अँग्रेजों से सहायता की माँग की, परन्तु अँग्रेज उसकी सहायता को नहीं पहुँचे। यद्यपि हैदरअली ने मराठों से सन्धि कर ली थी और युद्ध टल गया था, तथापि अँग्रेजों के इस व्यवहार से उसके क्रोध की सीमा नहीं रही। अब वह अँग्रेजों के साथ युद्ध करने के अवसर खोजने लगा।

उसी समय अमेरिका के स्वतन्त्रता संग्राम को लेकर फ्रांस और इंगलैण्ड में संघर्ष प्रारम्भ हो गया। अँग्रेजों ने फ्रांसीसियों के साथ युद्ध में मालावार तट पर स्थित माही बन्दरगाह पर अपना अधिकार स्थापित कर लिया, जबकि मालाबार पर हैदरअली का पहले से ही अधिकार था।

उन्हीं दिनों अँग्रेजों तथा मराठों में संघर्ष छिड़ा हुआ था। अतः हैदरअली अपने शत्रुओं पर प्रबल प्रहार के लिए मराठों से जा मिला। इस संघर्ष में निजाम भी उसके साथ था।

हैदरअली की सेनाओं ने 1780 ई० में कर्नाटक पर आक्रमण करके अंग्रेजों को हरा दिया। मद्रास तथा गुंटूर से आने वाली अँग्रेजों की दोनों सेनाओं को भी पराजय का मुँह देखना पड़ा। बंगाल से जो सेना सर आयरकूट के नेतृत्व में हैदरअली के विरुद्ध आई थी, वह भी बुरी तरह पराजित हुई। अँग्रेज प्रत्येक स्थान पर बुरी तरह पराजित हुए, परन्तु दुर्भाग्यवश उसी समय वीर हैदरअली की मृत्यु हो गई। उसके पुत्र टीपू सुल्तान ने युद्ध जारी रखा और बाद में भी यह संघर्ष दो वर्ष तक चला। अन्त में दोनों पक्षों में सन्धि हो गई। 17 मार्च, 1783 ई० को हुई यह सन्धि **बंगलौर की सन्धि** के नाम से प्रसिद्ध है। इस सन्धि के अनुसार यह निश्चित हुआ कि—(1) दोनों पक्ष बन्दियों तथा विजित प्रदेशों को लौटा देंगे। (2) भविष्य में अँग्रेज मैसूर के मामले में हस्तक्षेप नहीं करेंगे। (3) मैसूर के शत्रुओं के विरुद्ध अँग्रेज मैसूर की सहायता करेंगे।

हैदरअली का चरित्र और मूल्यांकन

हैदरअली ने एक साधारण सैनिक से शासक बनकर, अपनी विलक्षण योग्यता का परिचय दिया था। वह निश्चय ही एक महान् प्रतिभा का स्वामी था। वह एक सफल शासक और सेनापति था। उसके महान् सेनापति होने का सबसे बड़ा प्रमाण यह था कि उसने सेना के बल पर ही अपने साम्राज्य को गठित किया था तथा यूरोप में अजेय माने जाने वाले अँग्रेजों को कई बार युद्ध में परास्त किया था। हैदरअली एक सफल कूटनीतिज्ञ भी था, तभी वह मराठों, निजाम और अँग्रेजों से परिस्थितियों के अनुसार सम्बन्ध स्थापित करने में पूर्ण सफल हुआ था। शासक के रूप में भी उसने केन्द्रीय शासन की स्थापना करके अपने राज्य में शान्ति और सुव्यवस्था स्थापित की थी। यही कारण है कि उसकी गणना योग्य और सफल शासकों में की जाती है।

यद्यपि हैदरअली निरक्षर था, तथापि उसमें गुणों को परखने की विलक्षण शक्ति थी। वह विलासी लोगों से घृणा करता था और चाटुकारों के लिए उसके यहाँ कोई स्थान नहीं था।

वह धार्मिक सहिष्णुता में विश्वास करता था और उसके राज्य में सभी लोगों को धार्मिक स्वतन्त्रता प्राप्त थी।

हैदरअली अपनी प्रजा का सच्चा हितैषी भी था और उसके सुख-दुःख का बहुत ध्यान रखता था। सार्वजनिक हित के कार्यों में वह विशेष रुचि लेता था। उसने मालाबार में सड़कें बनवाईं तथा बंगलौर में अनेक उपवन व बगीचे भी लगवाए थे।

प्रश्न 10—कार्नवालिस के इस्तमरारी बन्दोबस्त से आप क्या समझते हैं? उसके गुणों एवं दोषों का विवेचन कीजिए।

अथवा **"कार्नवालिस एक प्रभावी सुधारक था।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं?** *(1993)*

अथवा **लॉर्ड कार्नवालिस ने भूमि-कर व्यवस्था एवं न्याय व्यवस्था में जो सुधार किए उनका संक्षिप्त वर्णन कीजिए।**

अथवा **लॉर्ड कार्नवालिस के स्थायी भूमि प्रबन्ध के बारे में आप क्या जानते हैं? उसके गुण-दोषों का विवेचन कीजिए।**

अथवा **लॉर्ड कार्नवालिस के विभिन्न सुधारों का वर्णन कीजिए।** *(1993, 95)*

अथवा **कार्नवालिस के स्थायी भूमि प्रबन्ध के प्रमुख लक्षणों की विवेचना कीजिए।**

अथवा **लॉर्ड कार्नवालिस के सुधारों का विवरण दीजिए।** *(1990, 95)*

अथवा **"कार्नवालिस एक प्रभावी सुधारक था।" इस कथन का तर्कसंगत विवेचन कीजिए।** *(1992, 93)*

अथवा **लॉर्ड कार्नवालिस के सुधारों का विश्लेषण कीजिए।** *(1997)*

अथवा **लॉर्ड कार्नवालिस के सुधारों की व्याख्या कीजिए।** *(1997, 99)*

उत्तर—

लॉर्ड कार्नवालिस

अँग्रेज गवर्नर जनरलों में लॉर्ड कार्नवालिस को इतिहास में गौरवपूर्ण स्थान प्राप्त है। उसने भारत की शासन-व्यवस्था तथा राजस्व एवं न्याय व्यवस्था में जो सुधार किए वे अत्यन्त प्रशंसनीय एवं महत्त्वपूर्ण थे। वह अमेरिका में पराजित अवश्य हुआ था, परन्तु फिर भी वह अनेक विशिष्ट गुणों वाला व्यक्ति था। इसलिए कम्पनी के डायरेक्टरों ने उसे भारत का गवर्नर जनरल बनाकर, 1786 ई० में भारत भेजा था। उसने भारत आकर यहाँ की स्थिति का गहन अध्ययन किया, तो उसे यहाँ के शासन-प्रबन्ध की अनेक कठिनाइयों का आभास हुआ। इनमें दो समस्याएँ प्रमुख थीं—

एक, शासन व्यवस्था को सुधारने की तथा दूसरी, भारतीय जमींदारों के प्रति कृषकों की कठिनाइयों को दूर करने की।

लॉर्ड कार्नवालिस को इन दोनों कार्यों में पूर्ण सफलता प्राप्त हुई। जैसा कि इतिहासकार पी० ई० रॉबर्ट्स ने लिखा है, **"जहाँ तक आन्तरिक मामलों का प्रश्न है, कार्नवालिस से अधिक स्थायी कार्य करने वाले कम लोग थे।"**

लॉर्ड कार्नवालिस के सुधार

कार्नवालिस ने भूमि व्यवस्था, न्याय, व्यापार आदि के क्षेत्र में निम्न सुधार किए—

(1) भूमि-सम्बन्धी सुधार—कार्नवालिस के सभी सुधारों या कार्यों में उसका सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य स्थायी भूमि-प्रबन्ध था। इसका कारण यह था कि उसने जिस व्यवस्था को बंगाल में लागू किया उसका अनुसरण अन्य प्रान्तों में भी किया गया था। इस स्थायी भूमि प्रबन्ध से अँग्रेजों को बहुत अधिक लाभ हुए थे।

(i) स्थायी प्रबन्ध अथवा इस्तमरारी बन्दोबस्त—वारेन हेस्टिंग्स ने भूमि-कर के सम्बन्ध में 5 वर्ष की ठेकेदारी की व्यवस्था की थी, जिसका परिणाम यह निकला था कि जो जमींदार 5 वर्ष का ठेका लेता था, वह भूमि की उर्वरा-शक्ति की वृद्धि की ओर कोई ध्यान नहीं देता था। वह कृषकों की दीन-हीन अवस्था की भी चिन्ता नहीं करता था। वह तो ठेके की अवधि में किसानों से अधिकतम धन लूटने-खसोटने में ही

व्यस्त रहता था और कम्पनी को एक निश्चित धनराशि ही देता था। इस प्रकार, इस व्यवस्था से कुछ ही वर्षों में कृषि एवं किसानों की स्थिति अत्यन्त दयनीय हो गई थी। अतः कार्नवालिस ने इस व्यवस्था को समाप्त कर नया 'स्थायी भूमि-प्रबन्ध' या इस्तमरारी बन्दोबस्त लागू किया। इस 'स्थायी-प्रबन्ध' की मुख्य शर्तें इस प्रकार थीं—

(क) स्थायी रूप से भूमि का स्वामी जमींदारों को मानते हुए, मालगुजारी वसूल करने का काम स्थायी रूप से जमींदारों को दे दिया और कम्पनी का मालगुजारी में भाग निश्चित कर दिया।

(ख) दूसरी विशेषता यह थी कि इस नवीन व्यवस्था में लगान घटाया-बढ़ाया नहीं जा सकता था।

(ग) जमींदारों पर गाँवों में शान्ति-व्यवस्था का दायित्व डाला गया।

(घ) विशेष बात (उल्लेखनीय) यह थी कि जमींदार पट्टे के द्वारा भूमि कृषकों को देते थे और वे बिना सरकार की आज्ञा के पट्टे का लगान नहीं बढ़ा सकते थे।

(ङ) यदि जमींदार समय पर नियमित लगान नहीं देता था, तो उससे सम्पूर्ण भूमि छीनी जा सकती थी।

लॉर्ड कार्नवालिस के सुधार

(1) भूमि-सम्बन्धी सुधार :
- **(i) स्थायी प्रबन्ध अथवा इस्तमरारी बन्दोबस्त,**
- **(ii) स्थायी प्रबन्ध से लाभ,**
- **(iii) स्थायी बन्दोबस्त की त्रुटियाँ,**
- **(iv) स्थायी बन्दोबस्त का मूल्यांकन**

(2) न्याय-सम्बन्धी सुधार :
- **(i) दीवानी एवं फौजदारी अदालतों की स्थापना**
- **(ii) प्रान्तीय अदालतों की स्थापना**
- **(iii) कलेक्टरों के अधिकारों में कमी**
- **(iv) दण्ड-व्यवस्था का सरलीकरण**
- **(v) कार्नवालिस कोड**
- **(vi) वकीलों की व्यवस्था**

(3) पुलिस व्यवस्था में सुधार

(4) व्यापार-सम्बन्धी सुधार

(5) कम्पनी के मध्य सुधार।

(ii) स्थायी प्रबन्ध से लाभ—कार्नवालिस के स्थायी प्रबन्ध के निम्न लाभ हुए—

(क) इस प्रबन्ध से सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि सरकार भूमि का बार-बार बन्दोबस्त करने से बच गई तथा जमींदारों को भूमि का स्थायी स्वामी बना देने से उन्होंने कृषि की उन्नति के लिए प्रचुर प्रयत्न किए, जिसके परिणामस्वरूप बंगाल शीघ्र ही एक धनी एवं समृद्धशाली प्रान्त बन गया था।

(ख) कृषि की उन्नति से व्यापार की भी उन्नति होने लगी।

(ग) ब्रिटिश साम्राज्य को जमींदारों का प्रबल समर्थन प्राप्त हो गया।

(घ) जमींदारों को इस व्यवस्था से विशेष लाभ हुआ। वे सदैव के लिए भूमि के स्वामी बन गए थे।

(ङ) सरकार को एक निश्चित धनराशि लगान के रूप में मिलने लगी, जिससे उसे अपना बजट आदि बनाने में विशेष सुविधा होने लगी।

स्थायी प्रबन्ध के सम्बन्ध में मार्शल ने लिखा है कि, "यह निर्भीकता, वीरता तथा बुद्धिमत्ता की योजना थी।"

इसी प्रकार पी० ई० रॉबर्ट्स ने लिखा है, "कम्पनी को भी स्थायी प्रबन्ध से कई लाभ हुए। अब वह बार-बार बन्दोबस्त के झंझटों से मुक्त हो गई। बार-बार प्रबन्ध करने में भी धन बहुत खर्च करना पड़ता था।"

(iii) स्थायी बन्दोबस्त की त्रुटियाँ—कार्नवालिस का स्थायी भूमि-प्रबन्ध पूर्णरूप से त्रुटिरहित नहीं था, उसमें निम्न कमियाँ थीं—

(क) भूमि के स्थायी स्वामी हो जाने के कारण जमींदार निडर होकर किसानों से अधिकतम लगान वसूल करते थे, जिससे किसानों की स्थिति और भी शोचनीय होती चली गई।

(ख) इस इस्तमरारी बन्दोबस्त में कम्पनी की हानि हुई, क्योंकि कार्नवालिस ने लगान की दर निश्चित कर दी थी अतः अधिक लगान मिलने पर वह कम्पनी को नहीं, वरन् जमींदारों को प्राप्त होता था।

(ग) जमींदारों ने अपनी भूमि ठेकेदारों को देनी शुरू कर दी। वे लोग भूमि की उन्नति की ओर ध्यान नहीं देते थे, जिससे कृषि की निरन्तर अवनति होती चली गई।

(घ) ज़मींदार अकर्मण्य और विलासी होकर तथा भूमि-प्रबन्ध अपने कारिन्दों पर छोड़कर बड़े-बड़े नगरों में बस गए थे। ये कारिन्दे और ठेकेदार कृषकों पर मनमाने अत्याचार किया करते थे।

(iv) स्थायी बन्दोबस्त का मूल्यांकन—लॉर्ड कार्नवालिस के इस्तमरारी बन्दोबस्त के विषय में विद्वानों एवं इतिहासकारों में पर्याप्त मतभेद है। कुछ के अनुसार इससे लाभ हुए, तो कुछ के अनुसार हानियाँ। आर० सी० दत्त ने लिखा है, **"यदि किसी राष्ट्र की समृद्धि और सम्पन्नता को बुद्धिमत्ता तथा सफलता का मापदण्ड समझा जाए तो लॉर्ड कार्नवालिस का स्थायी प्रबन्ध सबसे बुद्धिमत्तापूर्ण और सबसे सफल कार्य कहा जाएगा, जो भारत की ब्रिटिश सरकार ने किया था।"**

पी० ई० रॉबर्ट्स के शब्दों में, **"इस्तमरारी बन्दोबस्त ने ब्रिटिश सरकार को लोकप्रियता और स्थायित्व प्रदान किया और बंगाल को सबसे धनी और फलता-फूलता प्रदेश बनाने में सहायता की।"**

इसके विपरीत, अनेक पाश्चात्य विद्वानों ने अधिकांशतः स्थायी प्रबन्ध के दोषों की ओर ही संकेत किया है।

बैवरिज (Beveriege) ने भी स्थायी प्रबन्ध के दोषों का उल्लेख करते हुए लिखा है, **"स्थायी प्रबन्ध का सबसे बुरा प्रभाव किसानों पर पड़ा और उन्हें बहुत हानि हुई। उनके अधिकारों की रक्षा की समुचित व्यवस्था नहीं की गई और जमींदारों के अत्याचारों से उनकी रक्षा करने का कोई प्रयत्न नहीं किया गया।"**

इसी प्रकार, होम्स (Homes) ने लिखा है कि, **"स्थायी प्रबन्ध निराशामय भूल थी।" (The permanent settlement was a sad blunder.)**

(2) न्याय-सम्बन्धी सुधार—जब लॉर्ड कार्नवालिस गवर्नर जनरल बनकर भारत आया तो उसने यहाँ शासन और न्याय की स्थिति को अत्यधिक दोषपूर्ण पाया था। अतः उसने इस व्यवस्था में अनेक सुधार किए। यद्यपि उसके ये सुधार दोषों से मुक्त नहीं थे, तथापि इनमें उसकी बुद्धिमत्ता का परिचय अवश्य मिलता है। उसके ये सुधार इस प्रकार थे—

(i) दीवानी एवं फौजदारी अदालतों की स्थापना—उसने दीवानी मुकदमों के फैसले सुनाने के लिए प्रत्येक जिले में जिला जज के निरीक्षण में दीवानी अदालतें खोलीं। अब जिले में दीवानी का सबसे छोटा न्यायालय मुंसिफ का न्यायालय होता था, जो 50 रुपये तक की धनराशि के मुकदमे सुनता था। जिला जज की ही देख-रेख में फौजदारी न्यायालय भी खोले गए।

(ii) प्रान्तीय अदालतों की स्थापना—जिला न्यायालयों के ऊपर कलकत्ता, ढाका, पटना और मुर्शिदाबाद में प्रान्तीय न्यायालय खोले गए। इन न्यायालयों द्वारा 100 रुपये तक के मामलों के विषय में दिया गया निर्णय अन्तिम होता था। फौजदारी के मुकदमे भी इन्हीं न्यायालयों में सुने जाते थे। इन न्यायालयों के जज अपने क्षेत्र में घूम-घूमकर भी मुकदमों को सुलझाते थे। इन प्रान्तीय न्यायालयों में तीन अँग्रेज जज होते थे तथा इनकी सहायता के लिए हिन्दू तथा मुस्लिम कानूनों के विशेषज्ञ होते थे। इन्हें 'दौरा-न्यायालय' कहते थे।

(iii) कलेक्टरों के अधिकारों में कमी—कार्नवालिस के भारत आने से पूर्व कलेक्टर को दो काम करने पड़ते थे—जिले का भूमि-कर वसूल करना और दीवानी अदालत का निरीक्षण करना।

कार्नवालिस ने इस व्यवस्था में परिवर्तन करके कलेक्टर के पास केवल लगान वसूली का कार्य ही रहने दिया, न्याय सम्बन्धी अधिकार उससे छीन लिया गया। न्याय-कार्य करने के लिए प्रत्येक जिले में एक पृथक् न्यायाधीश की नियुक्ति की गई, जिसे **जिला जज** कहा जाता था।

(iv) दण्ड-व्यवस्था का सरलीकरण—उसने कठोर दण्डों में परिवर्तन कर दिया और उसने यह नियम भी बनाया कि सरकारी कार्यों के लिए किसी भी अधिकारी के विरुद्ध न्यायालय में मुकदमा चलाया जा सकता है।

(v) कार्नवालिस कोड—उसने उस समय तक प्रचलित समस्त कानूनों को एकत्र करके एक **सिविल कोड** का निर्माण किया, जिसे **'कार्नवालिस कोड'** कहा गया। इस कोड में न्याय, पुलिस, राजस्व

आदि सभी विषयों से सम्बन्धित कानून संगृहीत किए गए। इस कोड के बनने से न्याय के क्षेत्र में निष्पक्ष निर्णय होने लगे।

(vi) वकीलों की व्यवस्था—कार्नवालिस ने कानूनों के ज्ञाता वकीलों की प्रथा का प्रचलन भी किया। ये न्यायालय में निष्पक्ष होकर कानूनों की व्याख्या करते थे।

कार्नवालिस की यह न्याय-व्यवस्था पूर्णतया दोषरहित नहीं कही जा सकती है। इसमें प्रमुख दोष यह था कि यह व्यवस्था बहुत जटिल तथा भारतीय परिस्थितियों के लिए अनुपयुक्त थी। इस सन्दर्भ में जे० एस० मिल ठीक ही कहते हैं, **"इस सिद्धान्त के अनुसार, सुलभ और सुगम न्याय सरकार के लिए उचित परन्तु प्रजा के लिए अनुचित समझा गया।"**

(3) पुलिस व्यवस्था में सुधार—कार्नवालिस ने शान्ति एवं सुव्यवस्था स्थापित करने के उद्देश्य से पुलिस व्यवस्था में भी अनेक उपयोगी परिवर्तन किए। प्रत्येक जिले को अनेक छोटी इकाइयों (थानों) में बाँटा गया और वहाँ पर थानेदार नियुक्त किए गए। थानेदार या दरोगा को पर्याप्त अधिकार प्राप्त थे, जिनका दुरुपयोग वे भोली-भाली जनता को लूटने और तंग करने में करते थे।

(4) व्यापार सम्बन्धी सुधार—कार्नवालिस ने व्यापार के क्षेत्र में भी अनेक सुधार किए, जो इस प्रकार थे—

(i) उसने भारतीय जुलाहों तथा अन्य कारीगरों के हितों की रक्षार्थ यह कानून बना दिया कि भारतीय कारीगर उतना ही काम करने के लिए बाध्य होंगे जितने काम के रुपए उन्हें पेशगी दे दिए जाएँगे।

(ii) उसने 'बोर्ड ऑफ ट्रेड' के सदस्यों की संख्या 11 से घटाकर 5 कर दी और उनको कलकत्ता काउंसिल के नियन्त्रण में कर दिया गया।

(iii) कार्नवालिस से पूर्व कम्पनी के कर्मचारियों को माल खरीदने का ठेका दिया जाता था। उसने इसको बन्द करके यह अधिकार भारतीय व्यापारियों व कारीगरों को दे दिया। कम्पनी के कर्मचारी अब एजेण्टों का कार्य करते थे। उसने यह आदेश भी दिया कि व्यापारियों के साथ किसी भी प्रकार का अन्याय न किया जाए।

(5) कम्पनी के मध्य सुधार—कार्नवालिस के समय कम्पनी के अधिकारियों और कर्मचारियों में रिश्वत तथा घूसखोरी का बाजार गर्म था। कम्पनी के अधिकारी खुल्लम-खुल्ला भेंट, उपहार, नजराना आदि लिया करते थे। कार्नवालिस ने यह अनुभव किया कि कम्पनी के सेवकों का वेतन कम है और उनकी आर्थिक स्थिति भी उत्तम नहीं है, इसलिए वे अनैतिक कार्य करने के लिए बाध्य होते हैं। अतः उसने कंम्पनी के कर्मचारियों के वेतन में वृद्धि कर उनको कर्त्तव्यपरायण बनाने की दिशा में भी महत्त्वपूर्ण कार्य किए। उसने भारतीयों को अयोग्य समझते हुए, उन्हें 500 पौण्ड वार्षिक वेतन वाली नौकरियों से वंचित कर दिया।

वस्तुतः कार्नवालिस ने जो चमत्कारिक सुधार किए, वे सभी सुधार अपने ब्रिटिश राष्ट्रहित को ध्यान में रखकर ही किए थे, इसलिए इनसे ब्रिटिश शासन को तो लाभ हुआ, लेकिन भारतीयों की स्थिति में कोई विशेष सुधार नहीं हुआ। इस प्रकार, उसने ही भारत में मृतप्रायः ब्रिटिश शासन को जीवनदान दिया, जिसके परिणामस्वरूप उसने लगभग सौ वर्ष तक भारत में राज्य किया और अपने देश को धन-धान्य से परिपूर्ण किया।

लॉर्ड कार्नवालिस का मूल्यांकन

कार्नवालिस की गणना भारत के सफल गवर्नर जनरलों में की जाती है। वह बड़े ही पवित्र आचरण वाला व्यक्ति था और उसका नैतिक स्तर बहुत ही ऊँचा था। डॉ० मजूमदार के शब्दों में, **"कार्नवालिस ने शासन के प्रस्तुत और बिखरे हुए अंशों को एक विशाल प्रणाली के रूप में संगठित किया। पहले हल्की तथा अस्थिर जान पड़ने वाली बातों को उसने गुरुता और स्थिरता प्रदान की। उसने आधुनिक भारतीय विधान की नींव रखी।"** उसके इस महान् व्यक्तित्व का प्रभाव, कम्पनी के प्रशासन के लिए उपयोगी सिद्ध हुआ। कम्पनी के शासन में जो भ्रष्टाचार व्याप्त था, उसको दूर करने में वह काफी सीमा तक सफल रहा। इस प्रकार, कम्पनी के राज्य को संगठित करने में उसका बड़ा योगदान था।

प्रश्न 11— वेलेजली की नीति और कार्यों पर प्रकाश डालते हुए उसकी राजनीतिक उपलब्धियों का मूल्यांकन कीजिए। *(V. Imp.)*

अथवा **सहायक सन्धि प्रथा से आप क्या समझते हैं? लॉर्ड वेलेजली ने उसे किस प्रकार क्रियान्वित किया?**

अथवा **वेलेजली की सहायक सन्धि की शर्तों का उल्लेख कीजिए।** *(1990)*

अथवा **"वेलेजली की बुद्धिमत्तापूर्ण सहायक सन्धि भारतीय राज्यों को हड़पने की चाल थी।" समालोचना कीजिए।**

अथवा **"यदि क्लाइव ने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को जन्म दिया और वारेन हेस्टिंग्स ने गम्भीर कठिनाइयों से इसकी रक्षा की, तो वेलेजली को इस बात का श्रेय दिया जा सकता है कि उसने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के नैतिक और राजनीतिक दायित्व को समझा।" पी० ई० रॉबर्ट्स के इस कथन की व्याख्या कीजिए।**

अथवा **"वेलेजली की सहायक सन्धि का तात्कालिक उद्देश्य ब्रिटिश शासन को भारत में सर्वशक्तिमान बनाना था।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।**

अथवा **वेलेजली की सहायक सन्धि की प्रमुख विशेषताओं तथा गुण-दोषों का उल्लेख कीजिए।**

अथवा **वेलेजली की सहायक सन्धि का मूल्यांकन कीजिए।** *(1992)*

अथवा **लॉर्ड वेलेजली की सहायक सन्धि की शर्तों और परिणामों पर प्रकाश डालिए।** *(1995)*

अथवा **वेलेजली की सहायक सन्धि व्यवस्था के गुण-दोष समझाइए।** *(1996)*

अथवा **"लॉर्ड वेलेजली भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार करने के लिए दृढ़संकल्प था।" इस कथन की पुष्टि उसकी नीति और राजनीतिक कार्यकलापों का उल्लेख करते हुए स्पष्ट रूप से कीजिए।** *(1996)*

अथवा **लॉर्ड वेलेजली के कार्यों का मूल्यांकन कीजिए।** *(1999)*

उत्तर— लॉर्ड वेलेजली के आगमन से पूर्व भारत की राजनीतिक दशा

लॉर्ड वेलेजली 1798 ई० में भारत में गवर्नर जनरल बनकर आया। उस समय यहाँ की राजनीतिक स्थिति अत्यन्त जटिल थी। अनेक छोटे-छोटे राज्यों के मध्य संघर्ष होते रहने के कारण उनकी स्थिति अत्यन्त दयनीय थी, किन्तु वेलेजली जैसे चतुर गवर्नर जनरल ने इन परिस्थितियों का गहनता से अध्ययन कर शीघ्र ही इस स्थिति पर नियन्त्रण कर लिया और ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार का कार्य प्रारम्भ कर दिया। उसके आगमन के समय भारत की तत्कालीन राजनीतिक दशा इस प्रकार थी—

(1) मुगल साम्राज्य की स्थिति—जिस समय वेलेजली भारत आया, उस समय पश्चिम में मुगल साम्राज्य पूर्णरूप से पतनोन्मुख हो चुका था। शाहआलम द्वितीय नाममात्र का बादशाह रह गया था। वह शक्तिहीन होने के कारण अँग्रेजों से बचने के लिए मराठों के संरक्षण में चला गया था। अफगानिस्तान का शासक जमानशाह भी मुगल सम्राट को अपने हाथों की कठपुतली बनाना चाहता था।

(2) मराठा राज्य—उत्तर एवं मध्य भारत में मराठों का अधिकार बना हुआ था। ग्वालियर में सिन्धिया, बड़ौदा, गायकवाड़, नागपुर में भोंसला तथा इन्दौर में होल्कर वंश का शासन था। यद्यपि मराठों का साम्राज्य अत्यन्त विस्तृत था, किन्तु किसी एक सर्वोच्च शासक के न होने के कारण, इन सभी राज्यों में आन्तरिक विद्रोह हो रहे थे।

लॉर्ड वेलेजली के आगमन से पूर्व भारत की राजनीतिक दशा

(1) मुगल साम्राज्य की स्थिति
(2) मराठा राज्य
(3) निजाम की स्थिति
(4) मैसूर की स्थिति
(5) पंजाब की स्थिति
(6) अवध
(7) कर्नाटक
(8) फ्रांसीसी
(9) कुछ अन्य छोटे-छोटे राज्य
(10) अफगानिस्तान की समस्या।

(3) निजाम की स्थिति—हैदराबाद का निजाम भी इस समय अँग्रेजों से बहुत अधिक रुष्ट था और उनका सामना करने के लिए फ्रांसीसी सहायता से अपनी सेना को नए ढंग से संगठित कर रहा था।

(4) मैसूर की स्थिति—मैसूर का शासक टीपू सुल्तान था। उसकी शक्ति भी समाप्त हो चुकी थी, परन्तु फिर भी वह अँग्रेजों का कट्टर शत्रु था। अतः उसने भी अँग्रेजों से मोर्चा लेने के लिए फ्रांस से सहायता लेनी चाही, किन्तु वह अपने इस उद्देश्य की प्राप्ति में असफल रहा।

(5) पंजाब की स्थिति—पंजाब में महाराजा रणजीतसिंह के नेतृत्व में सिक्ख जाति उन्नति कर रही थी। उन्होंने लाहौर तक अपना अधिकार जमा लिया था, किन्तु वे इतने शक्तिशाली न थे कि अँग्रेजों का सामना कर सकते।

(6) अवध—वेलेजली के समय अवध का शासक सआदत अली था। उसकी विलासिता के कारण उसका राज्य पतन के गर्त में डूब गया था। उसके राज्य में पर्याप्त असन्तोष एवं अराजकता थी। यद्यपि यह राज्य कम्पनी के राज्य की पश्चिमी सीमा से मिला हुआ था, तो भी अँग्रेजों को इसकी कमजोर स्थिति के कारण इससे किसी प्रकार का भय नहीं था।

(7) कर्नाटक—कर्नाटक का शासक भी उस समय तक शक्तिहीन हो गया था, किन्तु वह टीपू सुल्तान से मिलकर अँग्रेजों का विरोध अवश्य करना चाहता था।

(8) फ्रांसीसी—फ्रांसीसी अँग्रेजों के पुराने दुश्मन थे, क्योंकि वे भी भारत में अपना प्रभुत्व स्थापित करना चाहते थे। अतः इस समय उन्होंने प्रतिशोध लेने के उद्देश्य से विभिन्न भारतीय नरेशों के यहाँ नौकरियाँ कर लीं और उनकी सेना को यूरोपीय ढंग से सैनिक प्रशिक्षण देना प्रारम्भ कर दिया।

(9) कुछ अन्य छोटे-छोटे राज्य—राजपूतों के इन दिनों कुछ और छोटे-छोटे राज्य विद्यमान थे; किन्तु ये सभी शक्तिहीन हो चुके थे। राजपूताना के इन राज्यों से मरहठे चौथ तथा सरदेशमुखी कर वसूल करते रहते थे।

(10) अफगानिस्तान की समस्या—इन राज्यों के अतिरिक्त, वेलेजली के सामने एक प्रमुख समस्या अफगानिस्तान की भी थी। वहाँ का शासक जमानशाह किसी भी समय भारत पर आक्रमण कर सकता था। अतः सीमाओं की सुरक्षा का प्रश्न भी उसके सामने बना हुआ था।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि जिस समय वेलेजली गवर्नर जनरल बनकर भारत आया, उस समय भारत की राजनीतिक स्थिति ब्रिटिश साम्राज्य के अस्तित्व के लिए अत्यन्त घातक थी। अतः वेलेजली ने एक विशेष नीति अपनाकर ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार करना प्रारम्भ कर दिया।

वेलेजली की शासन नीति

लॉर्ड वेलेजली ने अपनी अँग्रेज जाति की चालाकी और धूर्तता की नीति का अनुसरण करते हुए तत्कालीन परिस्थिति के अनुसार दो नीतियाँ अपनाईं जो परस्पर विरोधी थीं। एक नीति आक्रमण की एवं दूसरी सन्धि की थी। एक विद्वान् ने वेलेजली की नीति को चालाक और चापलूस लोमड़ी की नीति कहकर पुकारा है। उसके दो उद्देश्य थे—प्रथम, भारत से फ्रांसीसियों को निकालकर भगा देना एवं दूसरा, येन-केन-प्रकारेण भारत में ब्रिटिश शक्ति को सुदृढ़ बनाना।

अपने इन्हीं उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु उसने 'सहायक सन्धि' की नीति का अनुसरण किया।

वेलेजली की सहायक सन्धि

वेलेजली की सहायक सन्धि का अर्थ, शर्तें, लाभ तथा हानियों आदि का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(1) सहायक सन्धि का अर्थ—वेलेजली ने ब्रिटिश साम्राज्य की शक्ति का विस्तार करने हेतु एक विशेष नीति अपनाई जिसे इतिहास में 'सहायक सन्धि' के नाम से जाना जाता है। इस सन्धि का उद्देश्य बचे-खुचे शक्ति-सम्पन्न भारतीय नरेशों को इस स्थिति में पहुँचाना था कि वे अँग्रेजी राज्य की अधीनता स्वीकार करने के लिए स्वयं ही विवश हो जाएँ।

किन्तु कुछ विद्वानों का मत है कि यह उसकी अपनी मौलिक नीति नहीं थी, वरन् मराठों की नीति का संशोधित रूप था। जैसा कि रानाडे महोदय ने लिखा है, "सहायक सन्धि मराठों द्वारा चलाई गई थी। यह सरदेशमुखी और चौथ का सुसंगठित रूप है। 'सरदेशमुखी' और 'चौथ' देने वाले प्रदेशों की मराठे आक्रमणकारियों से रक्षा करते थे।" इसी प्रकार की नीति लॉर्ड वेलेजली ने भी अपनाई थी।

वेलेजली की सहायक सन्धि

(1) सहायक सन्धि का अर्थ
(2) सहायक सन्धि की शर्तें
(3) सहायक सन्धि और देशी राज्य
(4) सहायक सन्धि से हानियाँ
(5) सहायक सन्धि से लाभ।

(2) सहायक सन्धि की शर्तें *(1991)*—इस सहायक सन्धि को अपनाने वाले राजाओं को सन्धि की निम्नलिखित शर्तें स्वीकार करनी पड़ती थीं—

(i) सन्धि करने वाले राज्य कम्पनी को अपनी सर्वोच्च शक्ति मानते थे।

(ii) भारतीय राजा अँग्रेजों की आज्ञा के बिना यूरोप की किसी अन्य जाति के व्यक्ति को अपने यहाँ नौकरी नहीं दे सकते थे।

(iii) सन्धि करने वाले देशी राज्यों को अपने यहाँ अँग्रेज सेना रखनी पड़ती थी, जिसका व्यय उन्हें ही वहन करना पड़ता था। कम्पनी इस सेना का उपयोग अपने व्यक्तिगत युद्धों और संघर्षों के लिए भी कर सकती थी।

(iv) सन्धि करने वाले राजाओं को बिना अँग्रेजों की आज्ञा के किसी भी राज्य से सन्धि या युद्ध करने की स्वतन्त्र अनुमति नहीं थी।

(v) दो देशी राजाओं के मध्य विवाद होने पर, अँग्रेज बीच-बचाव का कार्य करते थे और उनका निर्णय मानना आवश्यक था।

(vi) इन शर्तों को मानने वाले राजाओं को आन्तरिक एवं बाह्य आक्रमणों से सुरक्षित रखने का उत्तरदायित्व अँग्रेजों ने अपने ऊपर ले लिया था।

(vii) सहायक सन्धि करने वाले देशी राज्य को अपने दरबार में एक अँग्रेज रेजीडेंट भी रखना पड़ता था। वह शासन के कार्यों में परामर्श दिया करता था।

(3) सहायक सन्धि और देशी राज्य—लॉर्ड वेलेजली की इस सन्धि से कम्पनी को अत्यधिक लाभ हुआ। इस सन्धि ने ब्रिटिश साम्राज्य की जड़ें भारत में अच्छी तरह मजबूत कर दीं। उसने ब्रिटिश राज्य को एक संगठित साम्राज्य में परिवर्तित कर दिया।

एक विद्वान् ने लिखा है, **"साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का होने के कारण उसने देशी नरेशों पर यह नीति बरबस थोपी थी और उनके राज्य को अँग्रेजी सत्ता में विलय कर लिया था।"**

(i) निजाम से सन्धि—कम्पनी ने खरदा के युद्ध में मराठों के विरुद्ध निजाम को सहायता देने का वचन दिया था, किन्तु फिर भी युद्ध के समय कम्पनी ने सहायता नहीं दी। इससे खरदा में निजाम की पराजय हुई। वह शक्तिहीन हो गया और उसने 1798 ई० में सहायक सन्धि स्वीकार कर ली।

(ii) वेलेजली और मराठे—इस समय मराठा शक्ति क्षीण हो रही थी। **दौलतराव सिन्धिया, जसवन्तराव होल्कर, पेशवा बाजीराव द्वितीय** आदि मराठे राजाओं के मध्य संघर्ष चल रहा था। इस संघर्ष में पेशवा बुरी तरह पराजित हो गया था। अतः पेशवा ने अँग्रेजों से सहायता माँगी। इस अवसर का लाभ उठाकर वेलेजली ने तुरन्त उसे सहायक सन्धि स्वीकार करने के लिए बाध्य कर दिया।

इस सन्धि के परिणामस्वरूप 26 लाख रुपये वार्षिक आय के साथ-साथ कुछ जिले सहायक सेना का व्यय वहन करने के लिए कम्पनी को प्राप्त हुए।

सन् 1803 ई० में वेलेजली ने नागपुर के भोंसले राजा और सिन्धिया को मराठा युद्ध में पराजित करके, उन्हें सहायक सन्धि मानने के लिए विवश किया। 1804 ई० में तृतीय मराठा युद्ध में होल्कर को कुछ युद्धों में हराकर, वेलेजली ने उससे भी अपनी शर्तें स्वीकार करवा लीं। इस प्रकार, मराठों की शक्ति का अन्त हो गया।

(iii) अवध राज्य—1801 ई० में वेलेजली ने अवध के नवाब को सहायक सन्धि मानने के लिए विवश किया। अतः अवध में सहायक सेना रख दी गई जिसके खर्चे के लिए लॉर्ड वेलेजली ने उससे उसका आधा राज्य ले लिया। परिणामस्वरूप वहाँ अराजकता फैल गई। वेलेजली के इस निन्दनीय कार्य की सभी इतिहासकारों ने आलोचना की है।

(iv) मैसूर राज्य—टीपू सुल्तान मैसूर के तृतीय युद्ध में हुई अस्त-व्यस्त स्थिति को सुधारने में लगा हुआ था। वह फ्रांस, अफगानिस्तान तथा अरब के शासकों से सन्धियाँ करने हेतु प्रयत्नशील था, इसलिए अँग्रेजों से युद्ध होना निश्चित हो गया था। 1799 ई० में मैसूर के चतुर्थ युद्ध में पराजित होकर टीपू ने श्रीरंगपट्टम दुर्ग में शरण ली थी। वहाँ हुए भयंकर युद्ध में दुर्ग के फाटक पर टीपू मारा गया। वेलेजली

ने उससे पहले के हिन्दू शासक को सन्धि के लिए तैयार कर, विभाजित मैसूर राज्य उसे दे दिया। इस प्रकार, कम्पनी मैसूर की शक्ति के भय से मुक्त हो गई।

(v) अन्य राज्य—इन राज्यों के अतिरिक्त वेलेजली ने अनेक छोटे-छोटे राज्यों के शासकों को पेंशन आदि देकर उनके राज्यों को पूर्णरूप से अपने अधिकार में ले लिया। कर्नाटक, तंजौर, सूरत और फर्रुखाबाद के राज्य, पेंशन आदि देकर पूर्णरूप से ब्रिटिश राज्य में मिला लिए गए थे।

इस प्रकार, वेलेजली ने भारत में ब्रिटिश सत्ता की स्थिति को सुदृढ़ बनाया और ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार किया।

(4) सहायक सन्धि से भारतीय राज्यों को हानियाँ (सहायक सन्धि के दोष)—इस सन्धि से कम्पनी को अत्यधिक लाभ हुआ, लेकिन देशी राज्यों एवं आम भारतीय जनता को उससे बहुत हानियाँ हुईं, जो इस प्रकार हैं—

(i) देशी राजाओं का अपने राज्य पर कोई राजनीतिक अधिकार नहीं रह गया था। वे अब नाममात्र के राजा रह गए थे।

(ii) कम्पनी की सेना का व्यय इन्हीं राजाओं को देना पड़ता था।

(iii) अँग्रेजी सेना रखने की विवशता के कारण भारतीय राजाओं को भारतीय सैनिकों को अपनी सेना की नौकरी से निकालना पड़ा। ऐसे सैनिक बेरोजगार होकर अँग्रेजों के शत्रु बन गए।

(iv) जब देशी राजाओं की आर्थिक स्थिति दयनीय होने लगी, तो उन्होंने जनता पर अधिक कर लगाने शुरू कर दिए, जिससे जनता को भी अनेक कष्टों का सामना करना पड़ा। इतना ही नहीं, राज्य की सुरक्षा की जिम्मेदारी से मुक्त होकर उन्होंने स्वयं को भोग-विलास में डुबो दिया, जिससे उनका नैतिक पतन हो गया।

(5) सहायक सन्धि से लाभ—सहायक सन्धि से अँग्रेजों को निम्न लाभ हुए—

(i) इस सन्धि द्वारा कम्पनी को आर्थिक एवं राजनीतिक दोनों लाभ पर्याप्त मात्रा में हुए और भारत में कम्पनी की सर्वोच्च सत्ता स्थापित हो गई।

(ii) सहायक सन्धि द्वारा भारत के राज्यों से अन्य यूरोपीय जातियों का प्रभाव समाप्त कर दिया गया। इससे फ्रांसीसियों का प्रभाव पूर्णतया समाप्त हो गया।

(iii) वेलेजली ने मराठों की शक्ति का विनाश कर तथा मुगल बादशाह शाहआलम को कम्पनी के संरक्षण में लाकर, कम्पनी की प्रतिष्ठा और गौरव में वृद्धि की।

लॉर्ड वेलेजली का मूल्यांकन

लॉर्ड वेलेजली एक साम्राज्यवादी शासक था, इसलिए उसने उचित-अनुचित का विचार त्यागकर भारत में कम्पनी साम्राज्य का विस्तार किया। उसने अनेक देशी शासकों से बलपूर्वक सहायक सन्धि स्वीकार करवाई। उसने ब्रिटिश साम्राज्य को उस स्थिति पर पहुँचा दिया, जहाँ वह भविष्य में सैकड़ों वर्षों तक शक्तिशाली और स्थायी राज्य रह सकता था। वस्तुतः **"वेलेजली की बुद्धिमत्तापूर्ण सहायक सन्धि भारतीय राज्यों को हड़पने की चाल थी और वेलेजली की इस सहायक सन्धि का तात्कालिक उद्देश्य ब्रिटिश शासन को भारत में सर्वशक्तिमान बनाना था।"**

लॉर्ड वेलेजली के कार्यों का महत्त्व स्पष्ट करते हुए डॉ० स्मिथ ने लिखा है कि, **"लॉर्ड वेलेजली ने कम्पनी को एक व्यापारिक संस्था से भारत की सर्वोच्च शासक-शक्ति के रूप में परिवर्तित करने के कार्य को सम्भव किया इसलिए उसे वारेन हेस्टिंग्स, लॉर्ड हेस्टिंग्स तथा डलहौजी की श्रेणी में रखा जाता है और उसकी गणना भारत में ब्रिटिश-साम्राज्य के निर्माताओं में की जाती है।"**

वेलेजली के सम्बन्ध में पी० ई० रॉबर्ट्स का यह कथन भी उल्लेखनीय है कि, **"यदि क्लाइव ने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य को जन्म दिया और वारेन हेस्टिंग्स ने गम्भीर कठिनाइयों से इसकी रक्षा की तो वेलेजली को इस बात का श्रेय दिया जा सकता है कि उसने भारत में ब्रिटिश साम्राज्य के नैतिक और राजनीतिक दायित्व को समझा।"**

प्रश्न 12 – टीपू सुल्तान के चरित्र पर प्रकाश डालते हुए अँग्रेजों के साथ उसके सम्बन्धों को स्पष्ट कीजिए।

अथवा **टीपू सुल्तान के चरित्र और व्यक्तित्व का मूल्यांकन प्रस्तुत कीजिए।** *(1996)*

उत्तर—

टीपू सुल्तान का चरित्र एवं व्यक्तित्व

मैसूर के शासक हैदरअली की मृत्यु 1782 ई० में हो जाने के उपरान्त उसका पुत्र टीपू सुल्तान उत्तराधिकारी बना। वह 1782 ई० से 1799 ई० तक मैसूर का सुल्तान रहा। वह एक योग्य पिता का योग्य पुत्र था। उसके चरित्र एवं व्यक्तित्व को निम्न सन्दर्भों में स्पष्ट किया जा सकता है—

(1) साहसी योद्धा एवं कुशल सेनानायक—टीपू एक साहसिक योद्धा तथा कुशल सेनानायक था। उसने अनेक युद्धों में अंग्रेजों का अदम्य साहस तथा बहादुरी से सामना किया। उसने अपनी सेना को यूरोपीय शैली पर गठित किया।

(2) सफल कूटनीतिज्ञ—टीपू एक कुशल राजनीतिज्ञ भी था। अँग्रेजों को भारत से भगाने के लिए वह निरन्तर प्रयत्नशील रहा। उसने अँग्रेजों और फ्रांसीसियों की फूट का लाभ उठाकर फ्रांसीसियों से गठबन्धन किया और फ्रांसीसी सैनिकों को मैसूर राज्य की सेना में भर्ती किया। उसने अँग्रेजों के विरुद्ध काबुल, टर्की, अरब और मॉरीशस में अपने दूत भेजे और उनसे सहायता प्राप्त करने का यथासंभव प्रयास किया।

टीपू सुल्तान का चरित्र एवं व्यक्तित्व

(1) साहसी योद्धा एवं कुशल सेनानायक
(2) सफल कूटनीतिज्ञ
(3) लोकप्रिय प्रशासक
(4) धर्मसहिष्णु शासक
(5) देशभक्त।

(3) लोकप्रिय प्रशासक—टीपू एक लोकप्रिय शासक था। उसने अपनी प्रजा की भौतिक उन्नति के लिए अनवरत रूप से प्रयास किया। उसने प्रशासन के क्षेत्र में सुधार किए और सेना, व्यापार, तोल-माप, मुद्रा आदि के प्रबन्ध में उपयुक्त परिवर्तन लाने का प्रयास किया। उसने राजकीय उद्योग बेगार के आधार पर चलाए। उसने पाश्चात्य परम्पराओं को भारतीय प्रजा पर लागू करने का प्रयत्न किया। उसके शासन में प्रत्येक विभाग का एक अलग अधिकारी था। शासन में मंत्री अथवा वजीर का पद नहीं था। टीपू ने पूरे साम्राज्य को प्रान्तों में बाँट दिया था। उसने देशी व अन्तर्देशीय व्यापार का विकास किया। उसकी व्यापारिक नीति का मुख्य उद्देश्य सरकार को देश की प्रमुख संस्था बनाना तथा राजकीय कोष को भरना था।

(4) धर्मसहिष्णु शासक—यद्यपि टीपू एक कट्टर सुन्नी मुसलमान था और उसने बहुत-से हिन्दुओं को मुसलमान बनाया था, परन्तु फिर भी वह हिन्दुओं के प्रति काफी सहिष्णु था। उसने हिन्दू मन्दिरों को विशाल धनराशि प्रदान की और अपने सिक्कों पर शिव-पार्वती के चित्र अंकित करवाए। वह स्वयं प्रतिदिन रंगनाथ मन्दिर में दर्शनों हेतु जाता था। बाउरिंग ने लिखा है कि, **"मृत्यु के पहले जब टीपू को अपना पतन निश्चित दिखाई देने लगा, तो उसने ब्राह्मणों से मंत्र उच्चारित करवाए और प्रार्थना की। उसने पूर्निया और कृष्णराव जैसे हिन्दुओं को राज्य के महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्त कर रखा था।"**

(5) देशभक्त—टीपू सुल्तान एक सच्चा देशभक्त था। उसमें देश-प्रेम की भावना कूट-कूट कर भरी हुई थी। उसने किसी अन्य राज्य के विरुद्ध कभी भी लोभवश अँग्रेजों का साथ नहीं दिया। इस दृष्टि से उसका चरित्र मराठा और हैदराबाद के निजाम से भी कहीं अधिक श्रेष्ठ था। यह देश का दुर्भाग्य ही था कि मराठा तथा निजाम ने टीपू के साथ सहयोग नहीं किया अन्यथा भारत का इतिहास किसी और ही ढंग से लिखा जाता।

संक्षेप में, टीपू एक प्रभावशाली सुल्तान था। वह एक सुयोग्य सेनानायक, प्रतिभाशाली शासक और महान देशभक्त था। वह विदेशी सत्ता के अधीन रहकर शासन करने के लिए तैयार नहीं था। इसलिए उसने अपनी मातृभूमि के लिए एक साधारण सैनिक की भाँति लड़ते हुए मरना उचित समझा। वस्तुतः टीपू जब तक जीवित रहा, अँग्रेजों अथवा किसी भी अन्य शक्ति के समक्ष नतमस्तक नहीं हुआ।

प्रश्न 13—सिक्ख राज्य के उत्कर्ष में महाराजा रणजीतसिंह के योगदान को स्पष्ट कीजिए। *(1994)*

अथवा **महाराजा रणजीतिसिंह ने सिक्खों को एक सैनिक जाति के रूप में किस प्रकार परिवर्तित किया?** *(1992)*

उत्तर— सिक्ख राज्य के उत्कर्ष में रणजीतसिंह का योगदान

महाराजा रणजीतसिंह की गणना, भारत के महान सम्राटों में की जाती है। सिक्खों को संगठित कर उन्हें सैनिक जाति के रूप में परिवर्तित करने में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। उन्होंने अपने शासनकाल में इतनी अधिक लोकप्रियता प्राप्त की थी कि उसकी मृत्यु के 50 वर्ष उपरान्त भी पंजाब की जनता प्रत्येक अवसर पर उनका स्मरण करती थी। इतिहासकार रैपल ग्रिफिथ के अनुसार, **"यद्यपि उनकी मृत्यु के उपरान्त आधी शताब्दी बीत चुकी है तब भी उनके साम्राज्य में उनका नाम एक पारिवारिक शब्द के समान है, उनके चित्र अभी भी धनी एवं निर्धनों के घर में देखे जा सकते हैं।"**

जिस समय रणजीतसिंह ने अपना राजनीतिक जीवन प्रारम्भ किया, उस समय पंजाब की सिक्ख मिसलें प्रायः परस्पर झगड़ती रहती थीं। पंजाब विभाजित और असंगठित क्षेत्र था। किन्तु रणजीतसिंह ने अपनी विलक्षण प्रतिभा और सैन्य-कुशलता के आधार पर विभाजित और असंगठित क्षेत्रों को बिना किसी विशेष रक्तपात और क्रूरता के एक विशाल साम्राज्य में परिणत कर दिया। उनको किसी विद्वान ने 'छोटा नेपोलियन' उचित ही कहा है।

रणजीतसिंह की एक महत्त्वपूर्ण देन, भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा को सुरक्षात्मक बना देना था। उसने पेशावर तथा कश्मीर पर अधिकार करके, इन क्षेत्रों को भारत में मिल जाने का अवसर प्रदान किया। संभवतः रणजीतसिंह के प्रयत्नों के अभाव में उत्तर पश्चिमी सीमा क्षेत्र भारत के नियंत्रण से निकल गया होता। इस प्रकार, रणजीतसिंह ने अप्रत्यक्ष रूप में, अँग्रेज साम्राज्य को एक संगठित क्षेत्र प्रदान किया, जिसे जीतने में अँग्रेजों को बहुत अधिक कठिनाई हुई।

रणजीतसिंह ने गुरु गोविन्दसिंह के अधूरे कार्य को पूरा किया। उन्होंने सिक्खों में आत्म-विश्वास उत्पन्न किया। उन्हें संगठित करके सैनिक विजयों के आधार पर एक शक्तिशाली विशाल सिक्ख राज्य की स्थापना करना, रणजीतसिंह का ही कार्य था। इसके लिए रणजीतसिंह को सैनिक प्रशासन में अनेक महत्त्वपूर्ण सुधार लागू करने पड़े। उन्होंने एलॉर्ड वेंचुरी, कोर्ट गार्डनट और एविटेबिल जैसे योग्य एवं निष्ठावान् यूरोपियन सेनानायकों को अपनी सेना में नियुक्त किया और उनके द्वारा सिक्ख सेना को प्रशिक्षित करवाया। यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि उन्होंने यूरोपियन सैनिक अधिकारियों को अपने प्रति निष्ठावान् बने रहने के लिए विवश किया।

अपने राजनीतिक कौशल तथा सिक्खों की पारस्परिक ईर्ष्या और द्वेष का लाभ उठाकर, उन्होंने एक संगठित सिक्ख राज्य की स्थापना की। एक चतुर राजनीतिज्ञ के समान उन्हें यह बात भी भली-भाँति ज्ञात थी कि अंग्रेजों के साथ युद्ध करना अपने लिए तथा अपने साम्राज्य के लिए संकट उत्पन्न करना है। इसी कारण उन्होंने जीवनपर्यन्त कभी भी अँग्रेजों से सीधी टक्कर नहीं ली। उन्होंने अमृतसर की सन्धि का पर्याप्त लाभ उठाया तथा अपने राज्य का जमरूद के किले तक विस्तार कर लिया।

रणजीतसिंह ने अकाली दल व सिक्खों का संगठन किया। अशिक्षित होते हुए भी वह महान् साहित्य प्रेमी थे और विद्वानों को दरबार में पूर्ण सम्मान प्रदान करते थे। उन्होंने साहित्य व इतिहास की पुस्तकों की रचना भी करवाई। धर्म के प्रति वह विशेष रूप से निष्ठावान् थे। 'वाहे गुरुजी का खालसा' उनका युद्धघोष था। वह सैनिकों में उत्साह का संचार कर देते थे और अपने आपको खालसा पंथ का प्रथम सेवक कहा करते थे।

एक कुशल सेनापति और महान् साम्राज्य-निर्माता होने के साथ-साथ, रणजीतसिंह एक कुशल प्रशासक भी थे। उसने पंजाब में व्याप्त अराजकता की स्थिति को समाप्त करके वहाँ शान्ति तथा सुशासन की स्थापना की। उन्होंने केन्द्रीय तथा प्रान्तीय शासन-प्रबन्ध को सुव्यवस्थित किया, न्याय तथा राजस्व के प्रबन्ध में अनेक सुधार किए और सैन्य-व्यवस्था को पूर्ण रूप से सुदृढ़ किया।

प्रश्न 13—सिक्ख राज्य के उत्कर्ष में महाराजा रणजीतसिंह के योगदान को स्पष्ट कीजिए। *(1994)*

अथवा **महाराजा रणजीतिसिंह ने सिक्खों को एक सैनिक जाति के रूप में किस प्रकार परिवर्तित किया?** *(1992)*

उत्तर— सिक्ख राज्य के उत्कर्ष में रणजीतसिंह का योगदान

महाराजा रणजीतसिंह की गणना, भारत के महान सम्राटों में की जाती है। सिक्खों को संगठित कर उन्हें सैनिक जाति के रूप में परिवर्तित करने में उनका महत्त्वपूर्ण योगदान रहा। उन्होंने अपने शासनकाल में इतनी अधिक लोकप्रियता प्राप्त की थी कि उसकी मृत्यु के 50 वर्ष उपरान्त भी पंजाब की जनता प्रत्येक अवसर पर उनका स्मरण करती थी। इतिहासकार रैपल ग्रिफिथ के अनुसार, **"यद्यपि उनकी मृत्यु के उपरान्त आधी शताब्दी बीत चुकी है तब भी उनके साम्राज्य में उनका नाम एक पारिवारिक शब्द के समान है, उनके चित्र अभी भी धनी एवं निर्धनों के घर में देखे जा सकते हैं।"**

जिस समय रणजीतसिंह ने अपना राजनीतिक जीवन प्रारम्भ किया, उस समय पंजाब की सिक्ख मिसलें प्रायः परस्पर झगड़ती रहती थीं। पंजाब विभाजित और असंगठित क्षेत्र था। किन्तु रणजीतसिंह ने अपनी विलक्षण प्रतिभा और सैन्य-कुशलता के आधार पर विभाजित और असंगठित क्षेत्रों को विना किसी विशेष रक्तपात और क्रूरता के एक विशाल साम्राज्य में परिणत कर दिया। उनको किसी विद्वान ने 'छोटा नेपोलियन' उचित ही कहा है।

रणजीतसिंह की एक महत्त्वपूर्ण देन, भारत की उत्तर-पश्चिमी सीमा को सुरक्षात्मक बना देना था। उसने पेशावर तथा कश्मीर पर अधिकार करके, इन क्षेत्रों को भारत में मिल जाने का अवसर प्रदान किया। संभवतः रणजीतसिंह के प्रयत्नों के अभाव में उत्तर पश्चिमी सीमा क्षेत्र भारत के नियंत्रण से निकल गया होता। इस प्रकार, रणजीतसिंह ने अप्रत्यक्ष रूप में, अँग्रेज साम्राज्य को एक संगठित क्षेत्र प्रदान किया, जिसे जीतने में अँग्रेजों को बहुत अधिक कठिनाई हुई।

रणजीतसिंह ने गुरु गोविन्दसिंह के अधूरे कार्य को पूरा किया। उन्होंने सिक्खों में आत्म-विश्वास उत्पन्न किया। उन्हें संगठित करके सैनिक विजयों के आधार पर एक शक्तिशाली विशाल सिक्ख राज्य की स्थापना करना, रणजीतसिंह का ही कार्य था। इसके लिए रणजीतसिंह को सैनिक प्रशासन में अनेक महत्त्वपूर्ण सुधार लागू करने पड़े। उन्होंने एलॉर्ड वेंचुरी, कोर्ट गार्डनट और एविटेबिल जैसे योग्य एवं निष्ठावान् यूरोपियन सेनानायकों को अपनी सेना में नियुक्त किया और उनके द्वारा सिक्ख सेना को प्रशिक्षित करवाया। यह एक उल्लेखनीय तथ्य है कि उन्होंने यूरोपियन सैनिक अधिकारियों को अपने प्रति निष्ठावान् बने रहने के लिए विवश किया।

अपने राजनीतिक कौशल तथा सिक्खों की पारस्परिक ईर्ष्या और द्वेष का लाभ उठाकर, उन्होंने एक संगठित सिक्ख राज्य की स्थापना की। एक चतुर राजनीतिज्ञ के समान उन्हें यह बात भी भली-भाँति ज्ञात थी कि अंग्रेजों के साथ युद्ध करना अपने लिए तथा अपने साम्राज्य के लिए संकट उत्पन्न करना है। इसी कारण उन्होंने जीवनपर्यन्त कभी भी अँग्रेजों से सीधी टक्कर नहीं ली। उन्होंने अमृतसर की सन्धि का पर्याप्त लाभ उठाया तथा अपने राज्य का जमरूद के किले तक विस्तार कर लिया।

रणजीतसिंह ने अकाली दल व सिक्खों का संगठन किया। अशिक्षित होते हुए भी वह महान् साहित्य प्रेमी थे और विद्वानों को दरबार में पूर्ण सम्मान प्रदान करते थे। उन्होंने साहित्य व इतिहास की पुस्तकों की रचना भी करवाई। धर्म के प्रति वह विशेष रूप से निष्ठावान् थे। 'वाहे गुरूजी का खालसा' उनका युद्धघोष था। वह सैनिकों में उत्साह का संचार कर देते थे और अपने आपको खालसा पंथ का प्रथम सेवक कहा करते थे।

एक कुशल सेनापति और महान् साम्राज्य-निर्माता होने के साथ-साथ, रणजीतसिंह एक कुशल प्रशासक भी थे। उसने पंजाब में व्याप्त अराजकता की स्थिति को समाप्त करके वहाँ शान्ति तथा सुशासन की स्थापना की। उन्होंने केन्द्रीय तथा प्रान्तीय शासन-प्रबन्ध को सुव्यवस्थित किया, न्याय तथा राजस्व के प्रबन्ध में अनेक सुधार किए और सैन्य-व्यवस्था को भली-भाँति सुसंगठित किया।

एक कट्टर सिक्ख के समान रणजीतसिंह, धार्मिक नियमों का पालन करना अपना परम कर्त्तव्य समझते थे। वह अपनी व्यस्तता के उपरान्त भी गुरु ग्रंथ साहिब का पाठ नित्य प्रति सुनते थे। वह अपने आपको खालसा पंथ का सेवक समझते थे और उसी के नाम पर अपना प्रत्येक कार्य करते थे। अपनी प्रत्येक विजय के उपरान्त वह दरबार साहिब में जाकर भेंट चढ़ाते थे। उन्होंने अमृतसर की चुंगी से होने वाली आय का कुछ भाग, दरबार-साहिब के कड़ाह प्रसाद के लिए निर्धारित किया हुआ था।

इस प्रकार, रणजीतसिंह एक साहसी, दूरदर्शी, धर्मनिष्ठ एवं जन्मजात शासक थे। ग्रिफिथ के अनुसार, "वह महान् थे, क्योंकि उनमें वे सभी गुण, जिनके अभाव में सबसे बड़ी सफलता प्राप्त नहीं की जा सकती, विशाल मात्रा में पाए जाते हैं।"

डॉ० सिन्हा ने उसकी सराहना करते हुए लिखा है, "वह भारत का एक ऐसा शासक था, जो अपनी प्रजा के सभी वर्गों से हार्दिक सहायता और सहयोग प्राप्त कर सका, जो उत्तर-पश्चिमी सीमा प्रान्त को अफगानिस्तान के बलवान अफगानों से तथा अन्य कठिनाइयों से बचाकर एक स्वतन्त्र एवं सफल राज्य स्थापित कर सका, जो एक ऐसी सेना संगठित कर सका, जिसने शत्रुओं की आँखें खोल दीं, जो भारतीय जातीयता को शक्ति तथा दृढ़ता प्रदान कर सका। इस प्रकार के शासक का नाम भारत के इतिहास में स्वर्ण अक्षरों में लिखा जाएगा।"

प्रश्न 14—अँग्रेजों के विरुद्ध मराठों की असफलता के कारणों का विश्लेषण कीजिए। *(1990, 92)*

अथवा **मराठा शक्ति के ह्रास और पतन के क्या कारण थे?** *(1991, 93)*

अथवा **मराठा शक्ति के पतन के कारणों की विवेचना कीजिए।** *(1992)*

अथवा **मराठों के पतन के कारणों पर प्रकाश डालिए।** *(1994, 95)*

उत्तर—

मराठों के पतन के कारण
(अँग्रेजों के विरुद्ध मराठों की असफलता के कारण)

किसी साम्राज्य का पतन कोई अकस्मात् तथा अप्रत्याशित घटना नहीं होती। वास्तविक पतन अथवा विघटन के पर्याप्त समय पूर्व ही इसके चिह्न दृष्टिगोचर होने लगते हैं। इसी प्रकार, मराठा साम्राज्य के विघटन का आरम्भ भी इसके अन्तिम विनाश से बहुत पहले हो गया था। बालाजी बाजीराव के समय में ही विघटनकारी शक्तियाँ सिर उठाने लगी थीं। ये शक्तियाँ निरन्तर बल पकड़ती गईं तथा उसकी मृत्यु के पश्चात् पचास वर्ष में ही मराठों का पतन हो गया। मराठों के इस पतन के कारणों का विवेचन इस प्रकार से किया जा सकता है—

(1) शिवाजी के दुर्बल और अयोग्य उत्तराधिकारी—मराठा साम्राज्य के संस्थापक छत्रपति शिवाजी एक प्रतिभाशाली तथा सफल सेनानायक थे। उनके अधीन मराठा साम्राज्य की शक्ति निरन्तर बढ़ती ही चली गई। दुर्भाग्य से उनका पुत्र शम्भाजी तथा पौत्र शाहू बहुत निर्बल तथा अयोग्य व्यक्ति सिद्ध हुए। उन्हीं की अयोग्यता के कारण राज्य की वास्तविक शक्ति पेशवा के हाथ में चली गई। यद्यपि पहले दो पेशवा बहुत योग्य थे, तथापि उनके पश्चात् के पेशवा अयोग्य सिद्ध हुए तथा उनके शासनकाल में विघटनकारी शक्तियाँ जोर पकड़ती गईं।

(2) पेशवा के पद का वंशानुगत होना—शाहू के राज्य में पेशवा का पद पैतृक हो गया था और दुर्भाग्य से दूसरे पेशवा के पश्चात् सिंहासन पर आसीन होने वाले सब पेशवा अयोग्य सिद्ध हुए थे। यदि पद पैतृक न होता तो योग्य पात्र अवश्य आगे आते और मराठा संघ को विघटित होने से बचा लेते।

(3) पानीपत का तीसरा युद्ध—जब मराठा शक्ति अपनी चरम सीमा पर थी, तो इसे 1761 ई० में पानीपत के युद्ध में एक विनाशकारी धक्का लगा। यद्यपि मराठों ने थोड़े ही समय में अपनी शक्ति को पुनः प्राप्त कर लिया, तथापि योग्य व्यक्तियों के अभाव की पूर्ति फिर भी न हो सकी। लगभग सभी योग्य कूटनीतिज्ञ तथा सेनानायक इस युद्ध में मारे गए। पेशवा का संघ के सदस्यों पर नियन्त्रण निर्बल पड़ गया तथा आपसी मतभेद उत्पन्न हो गए। इसके अतिरिक्त, अँग्रेजों को अपनी स्थिति को सुदृढ़ करने का अवसर मिल गया क्योंकि उनके विरोधियों—मुसलमानों तथा मराठों की शक्ति क्षीण हो चुकी थी।

(4) सुदृढ़ केन्द्रीय शक्ति का अभाव—पेशवा के नेतृत्व में मराठों में ऐसी कोई प्रभावशाली केन्द्रीय शक्ति नहीं थी जो कि सब मराठा सरदारों को राष्ट्रीय उद्देश्य के प्रति बाँधे रखती। मराठा संघ न तो पूर्णतः राज्य ही था तथा न ही एक संघ। यह कुछ सरदारों का ऐसा संगठन था जो किसी क्षण भी विघटित हो सकता था। संघ के सदस्य पूना सरकार के प्रति नाममात्र की श्रद्धा रखते थे। केन्द्रीय शक्ति का यह अभाव भी मराठा साम्राज्य के विघटन का कारण बना।

(5) मराठा सरदारों में मतभेद—मराठा संघ के सदस्य तथा अन्य राजनीतिज्ञों में आपसी मतभेद रहता था। वे सदा एक-दूसरे के 'आपसी अविश्वास तथा स्वार्थपरता' के कारण षड्यन्त्र करते रहते थे। पूना दरबार में तथा अन्तिम पेशवा पर अपना प्रभाव जमाने के उद्देश्य से, सिंधिया तथा होल्कर में हुए संघर्ष ने अँग्रेजों को हस्तक्षेप करने का अवसर दे दिया। इसी समय से मराठों का वास्तविक पतन आरम्भ हो गया।

(6) शोचनीय आर्थिक दशा—मराठा साम्राज्य के पतन का एक मुख्य कारण इसकी असन्तोषजनक आर्थिक व्यवस्था भी थी। महाराष्ट्र की भूमि अधिक उपजाऊ न होने के कारण मराठों ने उद्योग और व्यापार की उन्नति की ओर ध्यान नहीं दिया। राज्य की आय का मुख्य स्रोत चौथ और सरदेशमुखी आदि कर तथा समय-समय पर की जाने वाली लूट थी। राज्य की स्थायी आय का कोई प्रबन्ध नहीं था। इस प्रकार, उत्तम आर्थिक व्यवस्था के बिना कोई साम्राज्य भला कैसे खड़ा रह सकता था?

(7) जागीर-प्रथा—शिवाजी ने जागीर-प्रथा को बन्द कर दिया था, परन्तु राजाराम प्रथम के अधीन इस प्रथा को पुनः प्रारम्भ कर दिया गया। पेशवाओं ने भी इसे प्रोत्साहन दिया। यह प्रथा मराठा साम्राज्य के लिए एक प्रमुख विघटनकारी कारक सिद्ध हुई। जागीरदार लोग अपने निजी हितों के लिए राष्ट्रीय उद्देश्यों और आदर्शों की आहुति देने लगे। मराठा संघ के सदस्य स्वयं भी पहले जागीरदार ही थे जिन्होंने बाद में अपनी जागीरों को राज्यों का रूप दे दिया।

अँग्रेजों के विरुद्ध मराठों की असफलता के कारण

(1) शिवाजी के दुर्बल और अयोग्य उत्तराधिकारी
(2) पेशवा के पद का वंशानुगत होना
(3) पानीपत का तीसरा युद्ध
(4) सुदृढ़ केन्द्रीय शक्ति का अभाव
(5) मराठा सरदारों में मतभेद
(6) शोचनीय आर्थिक दशा
(7) जागीर-प्रथा
(8) छापामार (गुरिल्ला) युद्ध प्रणाली का परित्याग
(9) राष्ट्रीय आदर्श का अभाव
(10) मराठों की कूटनीतिक अयोग्यता
(11) मराठों का चारित्रिक पतन
(12) सहायक सन्धि
(13) तोपखाने का अभाव
(14) अँग्रेजों की शक्तिशाली नौसेना
(15) अँग्रेजों की कुशल गुप्तचर व्यवस्था।

(8) छापामार (गुरिल्ला) युद्ध-प्रणाली का परित्याग—मराठों ने अपनी उस युद्ध-प्रणाली का त्याग कर दिया जिसके बल पर उन्होंने मुगलों पर गौरवपूर्ण विजयें प्राप्त की थीं। साम्राज्य के विस्तार के कारण मराठों को शत्रु से आमने-सामने युद्ध करने की प्रणाली को अपनाना पड़ा जिसमें वे निपुण नहीं थे। वे कभी भी ऐसे युद्ध-क्षेत्र का चुनाव न कर सके जो उनकी छापामार युद्ध-प्रणाली के लिए उपयुक्त हो। अँग्रेजों ने मराठों की निर्बलता को भाँप लिया था तथा वे सदैव ऐसे युद्ध क्षेत्र चुनते थे जहाँ मराठों को आमने-सामने युद्ध करना पड़ता था। इसी कारण वे सदैव परास्त हो जाते थे।

(9) राष्ट्रीय आदर्श का अभाव—शिवाजी तथा उसके पश्चात् बाजीराव प्रथम द्वारा स्थापित किए हिन्दू-पद-पादशाही के आदर्श की उत्तरवर्ती मराठों ने अवहेलना कर दी। वे मराठा राज्य के संकुचित आदर्श को अपनाए रहे जिसके फलस्वरूप दूसरे हिन्दू उनसे विमुख हो गए। मराठों ने जाटों और राजपूतों को लूटा और उन पर चौथ और सरदेशमुखी आदि कर लगा दिए। पानीपत के युद्ध में मराठा शक्ति के विनाश का एक मुख्य कारण सूरजमल जाट आदि दूसरे हिन्दुओं की मराठों के प्रति विमुखता ही थी। अतः मराठों के आदर्श का संकुचित हो जाना उनके पतन का एक सबल कारण बना।

(10) मराठों की कूटनीतिक अयोग्यता—मराठे इतने योग्य कूटनीतिज्ञ नहीं थे जितने कि अँग्रेज। यद्यपि नाना फड़नवीस तथा महादजी सिंधिया के अधीन मराठों ने अपने आपको सँभाले रखा, तथापि उनकी अपेक्षा अँग्रेज कहीं उत्तम कूटनीतिज्ञ थे। दौलतराव सिंधिया तथा जसवन्त राव होल्कर आदि उत्तरवर्ती मराठों में कूटनीति का सर्वथा अभाव था। अतः वे अँग्रेजों की राजनीतिक चतुरता का शिकार हो गए। टीपू के विरुद्ध अँग्रेजों की सहायता करना मराठों की एक भयानक भूल थी, क्योंकि इसके फलस्वरूप अँग्रेज अपने एक प्रबल शत्रु से मुक्ति पाने में सफल हो गए। बाद में भी मराठे आपसी सहयोग पर आधारित कूटनीतिक लाभों के महत्त्व को न समझ सके तथा अँग्रेजों ने उन्हें एक-एक करके परास्त कर दिया।

(11) मराठों का चारित्रिक पतन—उत्तरवर्ती मराठों के चारित्रिक पतन ने भी मराठा साम्राज्य के विनाश में महत्त्वपूर्ण योग दिया। उन्होंने उच्च नैतिक आदर्शों का परित्याग कर दिया। इसके फलस्वरूप मराठा सेना का पतन हो गया। सैनिकों में विलासिता घर कर गई। मुगलों के पतन से भी मराठों ने कोई शिक्षा न ली। मराठा सैनिक; युद्ध-क्षेत्र में भी अपनी पत्नियों को साथ ले जाने लगे। शिवाजी के समय यह घोर अपराध था, जिसके लिए मृत्युदण्ड दिया जाता था, परन्तु उत्तरवर्ती पेशवाओं के अधीन यह एक परम्परा बन गई थी।

(12) सहायक सन्धि—लॉर्ड वेलेजली द्वारा प्रारम्भ की गई सहायक सन्धि ने भी मराठों के पतन में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। इस सन्धि के अधीन की गई बेसीन की सन्धि मराठा स्वतन्त्रता का बड़े सस्ते दामों पर किया गया सौदा थी। इस सन्धि के फलस्वरूप अँग्रेज अपनी सेनाओं को भारतीय शासकों के व्यय पर रख सकते थे। अतः वेलेजली की नीति ने भारतीय शक्तियों को क्षीण कर दिया। मराठों पर उसका विशेष प्रभाव हुआ, क्योंकि वे अँग्रेजों के सबसे भयानक शत्रु माने जाते थे।

(13) तोपखाने का अभाव—तोपखाना अँग्रेजी सेना का एक अनिवार्य अंग था। मराठे उनका सामना नहीं कर सकते थे, जब तक कि उनकी सेना में तोपखाना न हो, परन्तु तोपखाने की प्राप्ति के लिए वे यूरोपियनों पर निर्भर थे। इसके अतिरिक्त, तोपखाने का प्रयोग भी केवल प्रशिक्षित व्यक्ति ही कर सकते थे अतः मराठों को यूरोपियन लोगों को अपनी सेना में रखना पड़ता था। फलतः मराठा सेना का यह अंग पूर्णतः यूरोपीय लोगों के अधीन ही रहा। अतः यह अंग अपूर्ण और अयोग्य रहा और मराठे अँग्रेजों के उत्तम तथा विकसित तोपखाने का सामना करने में असमर्थ रहे। इस प्रकार, मराठे अपनी **'सुरक्षा के अति सबल साधन के लिए'** विदेशियों पर निर्भर थे।

(14) अँग्रेजों की शक्तिशाली नौसेना—अँग्रेज सम्भवतः विश्व की श्रेष्ठतम् नौसैनिक शक्ति थे जबकि मराठों के पास नाममात्र की नौसेना थी। अँग्रेज आवश्यकता पड़ने पर इंग्लैण्ड से सेनाएँ, रसद और शस्त्र ला सकते थे तथा मराठे अपनी निर्बल जल-शक्ति के कारण उन्हें नहीं रोक सकते थे। इस प्रकार, मराठों की निर्बल नौसेना ने भी उनकी अन्तिम पराजय में अपना योगदान दिया।

(15) अँग्रेजों की कुशल गुप्तचर व्यवस्था—अँग्रेजों की गुप्तचर व्यवस्था बहुत उत्तम थी। वे मराठों की योजनाओं का पहले से ही पता लगा लेते थे। वे उनकी निर्बलताओं का परिचय प्राप्त कर लेते थे तथा उनके षड्यन्त्रों के सफल होने से पूर्व ही उनकी सूचना प्राप्त कर लेते थे। अतः अँग्रेज मराठों से टक्कर लेने और उनकी गतिविधियों को विफल करने के लिए समय पर पूर्ण तैयारी कर लेते थे और उसके उपरान्त ही मराठों के विरुद्ध युद्ध छेड़ देते थे। अँग्रेजों ने उत्तम जासूसी के उद्देश्य से भारतीय भाषाओं का ज्ञान प्राप्त कर लिया था, परन्तु इसके विपरीत मराठों को अँग्रेजी का ज्ञान नहीं था तथा उनकी गुप्तचर व्यवस्था भी असन्तोषजनक थी।

प्रश्न 15—नेपाल युद्ध (1814-1816 ई०) के कारण और परिणामों का विवेचन कीजिए।

उत्तर—

नेपाल युद्ध का कारण

सन् 1801 ई० में अवध के नवाब से गोरखपुर जिला, कम्पनी के राज्य में मिल जाने के कारण कम्पनी और नेपाल की सीमा एक-दूसरे से मिल गई थी। आरम्भ में, अँग्रेजों ने नेपाल से व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास किया, किन्तु वे ऐसा करने में सफल न हो सके। उधर जब नेपाल ने साम्राज्यवादी नीति का अनुसरण किया, तो कम्पनी और नेपाल में संघर्ष अनिवार्य होता जा रहा था। 1804 ई० में

गोरखपुर, चम्पारन और पूर्णिया की सीमा पर छोटे-छोटे झगड़े आरम्भ हो गए, परन्तु कम्पनी उन दिनों युद्ध करना नहीं चाहती थी; अतः उस समय संघर्ष टल गया।

अँग्रेजों की तटस्थ नीति के कारण गोरखों ने अवध और बंगाल की सीमा पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। उन्होंने 1814 ई० में बस्ती जिले के निकट शिवराम और बुटवल पर अधिकार कर लिया। लॉर्ड हेस्टिंग्स ने इन दोनों स्थानों को पुनः छीन लिया और गोरखों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी।

गोरखा युद्ध (1814-1816 ई०)

कम्पनी की 34 हजार सेना ने गोरखा राज्य पर आक्रमण कर दिया। युद्ध में गोरखों ने अपूर्व साहस, वीरता तथा युद्ध-कौशल का परिचय दिया। अतः आरम्भ में अँग्रेजों को सफलता नहीं मिली और उन्हें कई स्थानों पर पराजित होना पड़ा, यहाँ तक कि अँग्रेज सेनापति जिलेप्सी इस युद्ध में मारा गया। इसके बाद, जनरल आक्टरलोनी की सेना के प्रहारों को गोरखे न रोक सके। 1815 ई० में गोरखा सेनापति अमरसिंह थापा परास्त हो गया और अँग्रेजों ने गोरखों के मलाऊ दुर्ग पर अधिकार कर लिया। अब आक्टरलोनी नेपाल की राजधानी काठमाण्डू की ओर बढ़ा। गोरखों को अब विजय की आशा न रही थी। अतः उनकी ओर से सन्धि के प्रयास किए जाने लगे।

नेपाल युद्ध के परिणाम

इस युद्ध के निम्नलिखित परिणाम हुए—

(1) दोनों पक्षों में सिंगौली की सन्धि हो गई।

(2) गोरखों से अँग्रेजों को कुमायूँ और गढ़वाल के साथ-साथ हिमालय की तराई का विस्तृत क्षेत्र प्राप्त हुआ।

(3) गोरखों ने सिक्किम के प्रदेश पर अपना अधिकार छोड़ दिया।

(4) गोरखों ने नेपाल की राजधानी काठमाण्डू में एक अँग्रेज रेजीडेण्ट रखना स्वीकार किया।

(5) अँग्रेजी राज्य की सीमाएँ हिमाचल पर्वत तक विस्तृत हो गईं।

(6) अँग्रेजों को शिमला, नैनीताल, अल्मोड़ा, रानीखेत आदि रमणीक स्थान प्राप्त हो गए।

(7) अँग्रेजों को अपनी सेना के लिए वीर, साहसी तथा स्वामिभक्त गोरखे प्राप्त होने लगे।

प्रश्न 16—लॉर्ड विलियम बैंटिंक के शासकीय, शैक्षिक तथा सामाजिक सुधारों का वर्णन कीजिए।

अथवा **विलियम बैंटिंक के सुधारों पर प्रकाश डालिए।** *(1990, 99)*

अथवा **"लॉर्ड विलियम बैंटिंक का शासनकाल सामाजिक सुधारों के सन्दर्भ में एक महत्त्वपूर्ण समय था।" इस कथन को स्पष्ट कीजिए।**

अथवा **"लॉर्ड विलियम बैंटिंक यह कभी नहीं भूला कि शासन का लक्ष्य शासितों की प्रसन्नता है।" उक्त कथन के प्रकाश में उसके सुधारों का संक्षिप्त विवरण दीजिए।** *(1990)*

अथवा **लॉर्ड विलियम बैंटिंक के सामाजिक तथा प्रशासकीय सुधारों का मूल्यांकन कीजिए।** *(1994)*

अथवा **लॉर्ड विलियम बैंटिंक के शासन-सुधारों का विस्तृत वर्णन कीजिए।** *(1996)*

अथवा **विलियम बैंटिंक के सामाजिक और शैक्षिक सुधारों का वर्णन कीजिए।** *(1997)*

उत्तर—

लॉर्ड विलियम बैंटिंक

किसी भी जाति के लोग समान प्रवृत्ति, समान रुचि और एक-से स्वभाव के नहीं होते। अँग्रेज लोग भी इस नियम के अपवाद नहीं थे। जहाँ एक ओर अनेक अँग्रेज अधिकारियों ने भारतीयों के साथ अन्यायपूर्ण व्यवहार किए, वहीं विलियम बैंटिंक जैसे व्यक्ति ने भारत में सुधारों का एक नया युग प्रारम्भ किया था। विलियम बैंटिंक 1828 ई० में गवर्नर जनरल बनकर भारत आया था। बैंटिंक प्रथम गवर्नर जनरल था, जिसने अँग्रेज होते हुए भी भारतीयों की शोचनीय दशा की ओर ध्यान दिया। उसके हृदय में मानवता के प्रति अपने कर्त्तव्य निर्वाह की महान् भावना निहित थी। जैसा कि पी० ई० रॉबर्ट्स ने लिखा है, **"उसने इस सिद्धान्त पर कार्य किया कि प्रजा के हित का ध्यान केवल प्रमुख ही नहीं, वरन् भारत में अँग्रेजों का सबसे मूल कर्त्तव्य है।"**

विलियम बैंटिंक शान्ति की नीति का समर्थक था। उसका विचार था कि भारतीय नरेशों एवं प्रजा के साथ नम्रता का व्यवहार करके ही उनके हृदय में अँग्रेजी शासन के प्रति सम्मान की भावना उत्पन्न की जा सकती है और इस भावना के विकसित होने पर ही ब्रिटिश साम्राज्य का अस्तित्व सुरक्षित एवं स्थायी रह सकता है।

लॉर्ड विलियम बैंटिंक के सुधार

लॉर्ड विलियम बैंटिंक के महत्त्वपूर्ण सुधार निम्नलिखित थे—

(1) प्रशासनिक सुधार—(i) भारतीयों की उच्च पदों पर नियुक्तियाँ—लॉर्ड कार्नवालिस ने अनेक कारणों से केवल अँग्रेजों को ही ऊँचे पदों पर नियुक्त किया था, लेकिन बैंटिंक ने अँग्रेजों के समान भारतीयों को भी उनकी योग्यता के आधार पर ऊँचे पदों पर नियुक्त किया। इससे लोगों में अँग्रेजी साम्राज्य के प्रति आदर-भाव उत्पन्न हुआ। भारतीयों को कम्पनी कम वेतन दिया करती थी, उनके अन्य भत्ते भी कम ही थे अतः इससे कम्पनी और भारतीयों दोनों को ही लाभ हुआ। भारतीय अब डिप्टी कलेक्टर और डिप्टी मजिस्ट्रेट जैसे पदों पर नियुक्त होने लगे थे।

लॉर्ड विलियम बैंटिंक के सुधार

(1) प्रशासनिक सुधार :
- (i) भारतीयों की उच्च पदों पर नियुक्तियाँ
- (ii) न्याय-व्यवस्था में सुधार।

(2) सामाजिक सुधार :
- (i) सती-प्रथा का अन्त
- (ii) ठगी का अन्त
- (iii) मानव-बलि का अन्त
- (iv) दास-प्रथा का अन्त
- (v) विचाराभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता
- (vi) धर्म-परिवर्तन की सुविधा।

(3) शैक्षिक सुधार

(4) आर्थिक सुधार :
- (i) रैयतवाड़ी प्रथा लागू करना
- (ii) वेतन में कटौती
- (iii) भत्तों में कमी
- (iv) न्याय विभाग के खर्चों में कटौती
- (v) अफीम पर नियन्त्रण
- (vi) शेष मालगुजारी की वसूली
- (vii) माफी की भूमि का अधिग्रहण
- (viii) व्यापार में सुधार।

(ii) न्याय-व्यवस्था में सुधार—जिस समय बैंटिंक गवर्नर जनरल बनकर भारत आया, उस समय देश की न्याय व्यवस्था बड़ी खराब थी और न्याय-प्राप्ति में काफी समय लग जाता था। अतः उसने इस क्षेत्र में अनेक सुधार किए। ये सुधार इस प्रकार थे—

(क) उसने प्रान्तीय दौरा-अपील के न्यायालय को समाप्त कर दिया।

(ख) आगरा में एक दीवानी तथा फौजदारी अपील का उच्च न्यायालय स्थापित किया गया।

(ग) इलाहाबाद में सदर दीवानी और सदर निजामत उच्च अदालतें स्थापित कीं।

(घ) उसने कलेक्टर और मजिस्ट्रेट के पदों को मिलाकर एक कर दिया।

(ङ) उसने कमिश्नरों की नियुक्ति की, जो कई जिलों का प्रशासन देखते थे।

(च) भारतीय जनता की सुविधा के लिए न्यायालयों का सारा काम स्थानीय भाषा में करने की व्यवस्था की गई। इससे पूर्व न्यायालयों में फारसी-भाषा ही प्रयुक्त होती थी।

(छ) बैंटिंक ने बंगाल में जूरी-प्रथा भी प्रारम्भ की।

(ज) इलाहाबाद में 'बोर्ड ऑफ रेवेन्यू' की स्थापना की गई।

(झ) शारीरिक व कष्टदायक दण्डों को बन्द कर दिया गया और कोड़े लगवाने की प्रथा को भी समाप्त कर दिया गया।

(2) सामाजिक सुधार—जिस समय लॉर्ड विलियम बैंटिंक भारत आया, यहाँ की सामाजिक स्थिति अत्यन्त विकृत रूप धारण कर चुकी थी। उसमें अनेकानेक बुराइयाँ उत्पन्न हो चुकी थीं। इन सभी कुरीतियों को बैंटिंक ने बड़े साहस एवं बुद्धिमत्ता के साथ अनेक सुधारों के द्वारा दूर किया। उसके सामाजिक सुधार अग्र प्रकार थे—

(i) सती-प्रथा का अन्त—इस प्रथा के अनुसार, पति के मरने पर उसकी स्त्री को भी जीवित जला दिया जाता था। इस प्रथा का बंगाल में तो बहुत ही अधिक प्रचार था। यह प्रथा इस सीमा तक भयंकर थी कि जो स्त्री सती नहीं भी होना चाहती थी, उसे भी बलपूर्वक पति के शव के साथ जीवित जला दिया जाता था। अतः बैंटिंक ने 1829 ई० में इस प्रथा को गैर-कानूनी घोषित कर दिया। साथ ही ऐसा करने वाली स्त्री को या ऐसा करने के लिए बाध्य करने वालों को भी दण्डित करने की घोषणा कर दी।

(ii) ठगी का अन्त—जिस समय बैंटिंक गवर्नर जनरल बनकर भारत आया उस समय उत्तरी भारत में ठगों का बोलबाला था। व्यापारिक तथा धनवान लोगों को ठग परेशान करते और कष्ट देते थे। ये राह चलते यात्रियों को भी लूट लेते थे। इसलिए आवागमन असुरक्षित एवं असुविधापूर्ण हो गया था।

बैंटिंक ने इनका दमन करने के लिए एक अलग विभाग खोला और कर्नल स्लीमैन को ठगों का दमन करने का दायित्व सौंपा गया। लगभग 3,000 ठग पकड़े गए, जिनमें से अधिकांश को फाँसी लगवा दी गई और शेष को देश से निकाल दिया गया।

(iii) मानव-बलि का अन्त—उस समय भारत में कुछ लोग अपनी कार्यसिद्धि के लिए तथा कुछ लोग देवी को प्रसन्न करने के लिए बालकों और पुरुषों की बलि देते थे। बैंटिंक ने इस प्रथा को निषिद्ध घोषित कर दिया।

(iv) दास-प्रथा का अन्त—बैंटिंक ने भारत में प्राचीन काल से प्रचलित दास-प्रथा को 1832 ई० में समाप्त कर दिया।

(v) विचाराभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता—उसने 1835 ई० में भारतीयों को पत्र-पत्रिकाओं द्वारा अपने विचार व्यक्त करने की स्वतन्त्रता दे दी, साथ ही सम्पादकों को भी समाचार छापने के सम्बन्ध में स्वतन्त्र कर दिया। उसने एक बार स्वयं कहा था, **"मेरी सम्मति में ऐसा कोई भी विषय नहीं जिस पर प्रेस विचार-विमर्श नहीं कर सकता।"**

(vi) धर्म-परिवर्तन की सुविधा—हिन्दुओं में परम्परागत नियम के अनुसार, धर्म परिवर्तन करने वाला व्यक्ति पैतृक सम्पत्ति से वंचित हो जाता था। बैंटिंक ने यह नया नियम बनाया कि हिन्दुओं तथा मुसलमानों के उत्तराधिकार के नियम सिर्फ इन धर्मों के अनुयायियों के लिए ही लागू होंगे। जो लोग ईसाई धर्म स्वीकार करेंगे, वे पैतृक अधिकार से वंचित नहीं होंगे।

(3) शैक्षिक सुधार—कम्पनी के प्रबन्धकों द्वारा, भारतीय जनता को शिक्षित करने के लिए 1 लाख रुपया प्रति वर्ष खर्च करना निश्चित हुआ था, लेकिन यह समस्या सामने आई कि भारतीयों को शिक्षा देने के लिए किस भाषा को माध्यम बनाया जाए। लॉर्ड मैकाले अँग्रेजी भाषा को माध्यम बनाने का समर्थक था, लेकिन कुछ अँग्रेज संस्कृत, बंगला या हिन्दी को माध्यम बनाने के पक्ष में थे। अन्त में, यह समस्या विलियम बैंटिंक के सम्मुख भी रखी गई। इस समस्या के समाधान हेतु एक कमेटी बनाई गई। कमेटी का अध्यक्ष लॉर्ड मैकाले को बनाया गया। लॉर्ड मैकाले ने अँग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाने के अनेक लाभ बताए। अतः 1835 ई० में लॉर्ड मैकाले का अँग्रेजी में शिक्षा देने का प्रस्ताव पारित हो गया। इसके पश्चात् कलकत्ता में एक मेडिकल कॉलेज, आगरा में एक कॉलेज तथा कुछ अन्य स्थानों पर भी कॉलेज खोले गए।

मैकाले की जीत अवश्य हुई, लेकिन परिणाम आशा के विपरीत निकला। भारतीय शिक्षा प्रणाली तो उन्नत अवस्था में न पहुँच सकी, परन्तु अँग्रेजी शिक्षा पढ़ने से भारतीयों में राष्ट्रीयता की चेतना अवश्य उत्पन्न हो गई।

(4) आर्थिक सुधार—जिस समय बैंटिंक गवर्नर जनरल बनकर भारत आया, उस समय तक कम्पनी की आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो चुकी थी। अतः उसने कम्पनी की आर्थिक स्थिति को सुधारने के लिए अनेक कार्य किए। इन कार्यों के फलस्वरूप कम्पनी की आर्थिक स्थिति सुधर गई और बजट में भी बचत होने लगी। उसके द्वारा किए गए आर्थिक सुधार निम्नलिखित थे—

(i) रैयतवाड़ी प्रथा लागू करना—बैंटिंक ने संयुक्त प्रान्त में भूमि का तीसवर्षीय बन्दोबस्त कराया और मद्रास में नवीन 'रैयतवाड़ी प्रथा' लागू की। इस रैयतवाड़ी प्रथा के अनुसार किसान सीधे ही

सरकारी खजाने में लगान जमा किया करते थे। किसानों को इससे राहत मिली, साथ ही कम्पनी की आय में वृद्धि हुई।

(ii) वेतन में कटौती—बैंटिंक से पूर्व कम्पनी के कर्मचारियों को अधिक वेतन मिलता था। बैंटिंक ने इस वेतन को अधिक मानकर, सभी असैनिक पदाधिकारियों के वेतन में कमी कर दी। अतः वेतनों में कमी से प्रशासनिक विभाग का व्यय बहुत कम हो गया।

(iii) भत्तों में कमी—सैनिक विभाग के अतिरिक्त उसने सभी विभागों के पदाधिकारियों के भत्तों को समाप्त कर दिया। इससे भी कम्पनी की आर्थिक स्थिति में अपेक्षित सुधार हुआ।

(iv) न्याय विभाग के खर्चों में कटौती—उसने अपील और दौरा करने वाले न्यायालय को समाप्त कर दिया, इससे भी कंम्पनी के व्यय में पर्याप्त कमी हुई।

(v) अफीम पर नियन्त्रण— बैंटिंक ने अफीम के व्यापार पर अपना नियन्त्रण स्थापित किया और मालवा में उत्पन्न होने वाली अफीम को व्यापारियों को ठेके पर बेचा। इससे कम्पनी को अधिकतम लाभ प्राप्त हुआ।

(vi) शेष मालगुजारी की वसूली—बैंटिंक ने मालगुजारी से सम्बन्धित कागजातों की जाँच कराई और जिन लोगों ने कई वर्षों से मालगुजारी नहीं दी थी, उनसे कठोरतापूर्वक मालगुजारी वसूल करवाई। लगान वसूल करने आदि की जहाँ समुचित व्यवस्था नहीं थी वहाँ उसने लगान वसूली की समुचित व्यवस्था की। इससे कम्पनी के आर्थिक ढाँचे में अपेक्षित सुधार हुआ।

(vii) माफी की भूमि का अधिग्रहण—अनेक देशी नरेशों ने बहुत-सी भूमि लोगों के कार्यों से प्रसन्न होकर उन्हें दे दी थी। इसे ही माफी की भूमि कहा जाता था, क्योंकि राजा इस भूमि से लगान नहीं लेते थे। इसलिए बैंटिंक ने लोगों से ऐसी भूमि छीन ली। इससे कम्पनी की आय में लगभग 39 लाख रुपये की वृद्धि हो गई, लेकिन इससे जनता में अत्यधिक असन्तोष व्याप्त हो गया।

(viii) व्यापार में सुधार—बैंटिंक ने पंजाब के राजा रणजीतसिंह और सिन्ध के अमीरों से व्यापारिक सन्धियाँ कीं, जिससे अँग्रेजों को सिन्ध तथा सतलज नदियों से स्वतन्त्रतापूर्वक व्यापार करने का अधिकार प्राप्त हो गया। इस नवीन व्यापार से भी कम्पनी की आय में बहुत वृद्धि हुई थी।

लॉर्ड विलियम बैंटिंक का मूल्यांकन

विलियम बैंटिंक के सुधारों के रूप में किए गए कार्यों पर दृष्टि डालने से यह मानना पड़ता है कि वह वास्तव में उच्चकोटि का सुधारक और कुशल शासक था। उसके सुधारों के परिणामस्वरूप ही भारतवासियों में स्वतन्त्रता की भावना उत्पन्न हुई थी।

लॉर्ड मैकाले ने बैंटिंक के सम्बन्ध में ठीक ही लिखा है, **"बैंटिंक इस बात को कभी नहीं भूला कि सरकार का लक्ष्य शासितों की प्रसन्नता है। यह वही बैंटिंक है जिसने कठोर प्रथाओं को दूर किया, जिसने लज्जाजनक भेदों को मिटाया, जिसने लोकमत की अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता प्रदान की और जिसको सदैव यह ध्यान रहता था कि वह भारतीय जनता के बौद्धिक और नैतिक चरित्र को ऊँचा उठाए।"**

वास्तव में, जितनी सरलता से उसने भारतीयों के हृदय में ब्रिटिश साम्राज्य के प्रति सम्मान की भावना उत्पन्न कर दी, उसमें कोई अन्य गवर्नर जनरल अभी तक सफल नहीं हो पाया था।

लॉर्ड विलियम बैंटिंक का सात वर्ष का शासनकाल भारत में **'सुधारों का काल'** के नाम से विख्यात है। वह लोक-हित के लिए कार्य करने वाला शासक था। एक विद्वान् ने लिखा है, **"विलियम बैंटिंक को अपने सुधारों के कारण भारत का ग्लैडस्टन कहा जाता है।"**

डॉ० ईश्वरी प्रसाद के अनुसार, **"उसके (विलियम बैंटिंक के) सारे सुधार यद्यपि आर्थिक दृष्टि से किए गए थे, परन्तु उसके अधीनस्थ प्रदेशों की प्रजा को भी कम लाभ नहीं हुआ। उसने पतनोन्मुख शासन-तन्त्र में नए जीवन का संचार किया था।"**

बैंटिंक द्वारा किए गए उपर्युक्त सुधारों के परिप्रेक्ष्य में यह कथन पूर्णतः उचित ही है कि, **"लॉर्ड विलियम बैंटिंक यह कभी नहीं भूला कि शासन का लक्ष्य शासितों की प्रसन्नता है।"**

प्रश्न 16—लॉर्ड डलहौजी ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार में कहाँ तक सफल हुआ?
अथवा **लॉर्ड डलहौजी की राज्य अपहरण नीति या गोद-निषेध सिद्धान्त के विषय में आप क्या जानते हैं? इस नीति के क्या परिणाम हुए?**
अथवा **"लॉर्ड डलहौजी साम्राज्यवादी नीतियों का पोषक था।" इस कथन की समीक्षा कीजिए।**
अथवा **लॉर्ड डलहौजी की 'अपहरण की नीति' की विवेचना कीजिए। इसके क्या परिणाम हुए।** *(1993)*
अथवा **"लॉर्ड डलहौजी की अपहरण नीति एक लज्जास्पद प्रकरण थी।" विवेचना कीजिए।** *(1995)*
अथवा **"लॉर्ड डलहौजी की नीति ने भारत में असन्तोष की वृद्धि की।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं?** *(1994)*

उत्तर—

लॉर्ड डलहौजी (1848-1856 ई०)

लॉर्ड डलहौजी जनवरी, 1848 ई० में गवर्नर जनरल बनकर भारत आया। वह एक प्रबल साम्राज्यवादी था। उसकी तीव्र अभिलाषा थी कि वह देशी राज्यों को समाप्त करके भारत में अँग्रेजी राज्य का विस्तार करे, चाहे इसके लिए उसे कितनी भी अनैतिकता का मार्ग क्यों न अपनाना पड़े। अतः उसने अपनी अभिलाषा की पूर्ति हेतु तीन नीतियों का अनुसरण किया—(क) युद्ध की नीति, (ख) राज्य हड़पने की नीति तथा (ग) कुशासन का आरोप लगाकर राज्यों का अपहरण।

(क) युद्ध की नीति

उसने युद्ध की नीति द्वारा निम्नलिखित राज्यों को ब्रिटिश सांम्राज्य में मिलाया—

(1) पंजाब—जिस समय लॉर्ड डलहौजी भारत आया, उस समय पंजाब की स्थिति ब्रिटिश साम्राज्य के प्रतिकूल थी। सिक्ख लोग अँग्रेजों को बड़ी घृणा की दृष्टि से देखा करते थे। वे अँग्रेजों से बहुत असन्तुष्ट थे। प्रथम सिक्ख युद्ध के बाद तो वे अँग्रेजों से और भी अधिक घृणा करने लगे थे। कुछ अन्य कारणों के फलस्वरूप भी सिक्खों और अँग्रेजों में 1848-49 में द्वितीय सिक्ख युद्ध हुआ था। इसमें सिक्खों की पराजय हुई। लॉर्ड डलहौजी ने पंजाब को भी ब्रिटिश राज्य में मिला लिया और राजा दिलीप सिंह को 50 हजार पौण्ड वार्षिक पेन्शन देकर इंगलैण्ड भेज दिया। पंजाब का प्रशासन चलाने के लिए तीन कमिश्नरों की एक विशिष्ट समिति बना दी गई। इससे कम्पनी को यह लाभ हुआ कि इसकी पश्चिमी सीमा सुरक्षित हो गई।

(2) सिक्किम—नेपाल और भूटान के बीच में एक छोटा-सा राज्य सिक्किम अनिश्चिततापूर्ण स्थिति में था। पंजाब के बाद डलहौजी ने इस राज्य पर आक्रमण कर दिया और 1849 ई० में इसे अँग्रेजी साम्राज्य में सम्मिलित कर लिया।

(3) बर्मा—सिक्किम के बाद उसकी दृष्टि बर्मा पर गई। इस समय बर्मा में भी अनिश्चयपूर्ण स्थिति थी। 1852 ई० में बर्मा का द्वितीय युद्ध हुआ। इस युद्ध में 'मर्दबान्' एवं सम्पूर्ण बर्मा पर अँग्रेजों का अधिकार हो गया। अँग्रेजों ने बर्मा के नगर रंगून को खूब लूटा। बर्मा के निचले भाग और 'पीगू' को भी डलहौजी ने अँग्रेजी साम्राज्य में मिला लिया।

> **लॉर्ड डलहौजी की साम्राज्य विस्तार की नीतियाँ**
> **(क) युद्ध की नीति—**
> (1) पंजाब
> (2) सिक्किम
> (3) बर्मा।
> **(ख) राज्य हड़पने की नीति—**
> (1) सतारा
> (2) झाँसी
> (3) नागपुर
> (4) अन्य छोटे-छोटे राज्य।
> **(ग) कुशासन का आरोप लगाकर राज्यों का अपहरण—**
> (1) बरार
> (2) अवध।

(ख) राज्य हड़पने की नीति

डलहौजी साम्राज्यवादी शासक था। अतः वह साम्राज्य विस्तार करने में उचित-अनुचित पर विचार नहीं करता था। उसने अपनी इच्छा पूर्ण करने के लिए एक 'गोद-निषेध' नियम बनाकर अनेक राज्यों का अपहरण किया। 'गोद-निषेध' नियम का यह अर्थ था कि कोई भी भारतीय राजा सन्तानहीन होने पर ब्रिटिश सरकार की आज्ञा के बिना किसी को उत्तराधिकारी बनाने के लिए गोद नहीं ले सकता था।

सन्तानहीन राजाओं की मृत्यु के पश्चात् उनके राज्य पर कम्पनी का अधिकार माना जाता था। डलहौजी ने अपनी इस गोद निषेध नीति से निम्न राज्यों को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया था—

(1) सतारा—सन् 1848 ई० में सतारा के राजा की मृत्यु हो गई। उसके कोई सन्तान नहीं थी। मृत्यु से पूर्व उसने एक बालक को विधान एवं रीतियों द्वारा बिना अँग्रेजी रेजीडेण्ट की स्वीकृति के गोद ले लिया था। डलहौजी ने अपने नियमानुसार गोद लिए हुए व्यक्ति को उत्तराधिकारी स्वीकार नहीं किया तथा सतारा को ब्रिटिश राज्य में मिला लिया। उसका यह कार्य बहुत ही अनुचित था।

(2) झाँसी—सन् 1853 ई० में झाँसी के गंगाधर राव की मृत्यु हो गई। उसने मृत्यु से पूर्व कम्पनी सरकार से आज्ञा लेकर दामोदर राव नामक बालक को गोद लिया था, लेकिन डलहौजी ने दामोदर राव को अवैध घोषित कर दिया तथा रानी लक्ष्मीबाई को हटाकर झाँसी का भी ब्रिटिश साम्राज्य में विलय कर लिया।

(3) नागपुर—सन् 1854 ई० में नागपुर के राजा राघोजी की मृत्यु हुई। वे भी निःसन्तान थे। उन्होंने अपनी जीवन-लीला की समाप्ति के समय एक बालक को गोद लेने के लिए कम्पनी को लिखा। उनकी मृत्यु से पूर्व कम्पनी का उत्तर नहीं आया और वे अपनी पत्नी को यशवन्तराव को गोद लेने की आज्ञा देकर स्वर्गवासी हो गए। परन्तु यशवन्तराव को नागपुर का शासक स्वीकार नहीं किया गया और नागपुर को भी कम्पनी के साम्राज्य में मिला लिया गया।

(4) अन्य छोटे-छोटे राज्य—उपर्युक्त राज्यों के अतिरिक्त डलहौजी ने इस नियम के आधार पर सम्भलपुर, जैतपुर, बाघात तथा उदयपुर जैसे चार छोटे राज्यों का भी अँग्रेजी साम्राज्य में विलय कर लिया।

(ग) कुशासन का आरोप लगाकर राज्यों का अपहरण

अनेक राज्यों को अनैतिक ढंग से ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लेने के बाद भी डलहौजी की इच्छा तृप्त नहीं हुई। उसने कुछ राज्यों पर यह आरोप लगाया कि वहाँ का शासन ठीक ढंग से नहीं चल पा रहा है, जिससे वहाँ जनता बहुत दुःखी एवं परेशान है और इन राज्यों की जनता की भलाई के लिए वहाँ पर कम्पनी का शासन आवश्यक है। यह आरोप लगाकर उसने निम्नलिखित राज्यों पर अँग्रेजी सत्ता का अधिकार स्थापित कर दिया—

(1) बरार—डलहौजी के समय बरार प्रान्त में प्रतिदिन हिन्दू-मुस्लिमों के विवाद होते रहते थे, जिससे वहाँ शान्ति नहीं रहती थी। अतः वहाँ शान्ति स्थापित करने का बहाना बनाकर एक अँग्रेजी सेना निजाम के व्यय पर रखी गई, लेकिन निजाम इस व्यय को समय से नहीं दे पाता था। अतः डलहौजी ने पुनः निजाम को बहकाकर उसके बरार राज्य को ब्रिटिश साम्राज्य में मिला लिया।

(2) अवध—डलहौजी के समय अवध राज्य में भी शासन-व्यवस्था अस्त-व्यस्त थी। अतः डलहौजी ने अवध के नवाब वाजिदअली शाह को शासन-व्यवस्था ठीक करने की आज्ञा दी, लेकिन उसने ध्यान नहीं दिया। अतः डलहौजी ने उससे स्वेच्छा से राज्य देने को कहा, लेकिन वाजिदअली शाह नहीं माना। परिणामस्वरूप उसके राज्य पर सेना द्वारा बलपूर्वक अधिकार कर लिया गया। नवाब वाजिदअली शाह को कलकत्ता भेज दिया गया और उसके महलों को खूब लूटा गया। 13 फरवरी, 1856 ई० की एक घोषणा के अनुसार अवध का राज्य कम्पनी के राज्य में मिला लिया गया।

इस प्रकार, हम देखते हैं कि डलहौजी ने ब्रिटिश साम्राज्य का अत्यधिक विस्तार किया। डलहौजी ने अनेक पेन्शनों तथा विशेष पदों की भी समाप्ति कर दी थी। पेशवा बाजीराव द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् उसके दत्तक पुत्र नाना साहब की पेन्शन भी समाप्त कर दी गई थी। कर्नाटक तथा तंजौर के नवाबों की मृत्यु के पश्चात् उनके दत्तक पुत्रों को भी नवाब की उपाधियाँ नहीं दी गई थीं। इस प्रकार डलहौजी ने निन्दनीय कूटनीति का सहारा लेते हुए ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार किया था। वह निस्सन्देह साम्राज्यवादी नीतियों का पोषक था। अतः उसके सम्बन्ध में यह कथन उचित ही है कि, **"लॉर्ड डलहौजी साम्राज्यवादी नीतियों का पोषक था।"**

डलहौजी की इस राज्य हड़प नीति का परिणाम बहुत भयंकर सिद्ध हुआ। ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार के कारण जनसामान्य में चारों ओर असन्तोष फैल गया, जो 1857 ई० की जन-क्रान्ति के रूप में प्रस्फुटित हुआ।

प्रश्न 18— लॉर्ड डलहौजी के प्रमुख सुधारों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

अथवा **"लॉर्ड डलहौजी आधुनिक भारत के निर्माताओं में से एक था।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं?** *(1993, 94)*

अथवा **लॉर्ड डलहौजी के शासन सम्बन्धी सुधारों का उल्लेख कीजिए।**

अथवा **"लॉर्ड डलहौजी ने भारत का आधुनिकीकरण किया।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं?**

अथवा **लॉर्ड डलहौजी के प्रशासकीय सुधारों की विवेचना कीजिए।** *(1990, 92)*

अथवा **लॉर्ड डलहौजी के शासन सुधारों और उनके महत्त्व का वर्णन कीजिए।** *(1991)*

अथवा **"लॉर्ड डलहौजी ने अपने प्रशासनिक सुधारों के द्वारा भारत में ब्रिटिश शासन की नींव सुदृढ़ एवं दीर्घस्थायी बनाई।" इस कथन की व्याख्या कीजिए।** *(1996)*

उत्तर—

लॉर्ड डलहौजी के सुधार

लॉर्ड डलहौजी एक साम्राज्यवादी प्रशासक ही नहीं था, अपितु वह एक महान् सुधारक और दूरदर्शी गवर्नर जनरल भी था। साम्राज्य विस्तार के साथ-साथ उसने भारत में अनेक सुधार भी किए थे। इसी कारण उसे आधुनिक भारत के निर्माताओं में एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। उसके सुधारों का विवरण निम्नवत् है—

(1) सार्वजनिक कार्य—डलहौजी ने डाक-विभाग में सुधार करके उसे बहुत उपयोगी बनाया। उसने एक सार्वजनिक निर्माण विभाग की स्थापना की, जिसका कार्य सड़कों, पुलों एवं नहरों आदि का निर्माण करना था। उसने बड़ी-बड़ी नहरों का निर्माण करवाया। डलहौजी ने रेल व तार की भी व्यवस्था की थी, जिसके परिणामस्वरूप 1853 ई० में भारत में सर्वप्रथम रेल चलाई गई। उसके समय में तीन विश्वविद्यालयों की भी स्थापना हुई। इसके अतिरिक्त, डलहौजी ने वुड की योजना के अनुसार बहुत से एंग्लो-वर्नाक्यूलर स्कूल भी खुलवाए थे।

लॉर्ड डलहौजी के सुधार

(1) सार्वजनिक कार्य
(2) सैनिक सुधार
(3) व्यावसायिक सुधार
(4) सामाजिक सुधार।

(2) सैनिक सुधार—डलहौजी साम्राज्यवादी प्रवृत्ति का व्यक्ति था। चूँकि साम्राज्य-विस्तार के लिए सुसंगठित एवं विशाल सेना की आवश्यकता पड़ती है, इसलिए उसने सैन्य व्यवस्था में भी आमूल-चूल परिवर्तन किए। भारतीय सैनिकों से कोई खतरा पैदा न हो इसीलिए उसने भारतीय सैनिकों की टुकड़ियों को दूर-दूर भेज दिया। मेरठ को उसने सेना का केन्द्र और शिमला को फौजी छावनी का केन्द्र बनाया।

(3) व्यावसायिक सुधार—व्यावसायिक सुधार करने का डलहौजी का प्रमुख उद्देश्य, ब्रिटिश पूँजी का भारतीय बाजारों में निवेश करना था। अतः उसने स्वतन्त्र व्यापार के सिद्धान्त को अपनाकर सभी बन्दरगाहों को सबके लिए खोल दिया था। इससे अँग्रेज व्यापारियों ने अत्यधिक लाभ कमाया था।

(4) सामाजिक सुधार—डलहौजी ने सामाजिक और धार्मिक क्षेत्र में दो क्रान्तिकारी कानून पारित किए थे। प्रथम कानून 1850 ई० में पारित करके उसने किसी भी प्रकार का धर्म परिवर्तन करने वालों के लिए व्यवस्था की थी कि उन्हें पैतृक सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जा सकेगा। साथ ही उसने 1855 ई० में एक विधान के द्वारा विधवा-विवाह को कानूनी घोषित किया था। डलहौजी के इन सुधारों से भारतीय जनता में आक्रोशपूर्ण असन्तोष की लहर व्याप्त हो गई थी।

लॉर्ड डलहौजी का मूल्यांकन

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि लॉर्ड डलहौजी ने अपने सात वर्ष के कार्यकाल में जन-कल्याण के ही अनेकानेक कार्य नहीं किए, वरन् उसने ब्रिटिश सरकार के लिए भी कई उपयोगी कार्य किए। इसी कारण उसको भारतीय एवं ब्रिटिश इतिहास दोनों में ही महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। यद्यपि भारत में उसने जो कुछ सुधार किए, उसके मूल में भी ब्रिटिश सरकार को परोक्ष रूप से लाभ पहुँचाने की इच्छा थी, किन्तु भाग्यवश परिणाम भारतीयों के पक्ष में ही निकले।

लॉर्ड कर्जन के अनुसार, "डलहौजी ने भारत पर ऐसा चिह्न छोड़ा, जो उससे पूर्ववर्ती किसी से भी अपेक्षाकृत कम महत्त्व का नहीं था। उसने ऐसी प्रसिद्धि प्राप्त की, जो वारेन हेस्टिंग्स से कुछ ही कम थी।" इंग्लैण्ड में आज भी उसके कार्यों की भूरि-भूरि प्रशंसा की जाती है। डलहौजी के विभिन्न सुधारों ने भारत के नवनिर्माण में पर्याप्त योगदान दिया। इसलिए आधुनिक भारत के निर्माताओं में उसे एक महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त है। उसे भारत का आधुनिकीकरण करने का श्रेय उचित ही दिया जाता है। उसके सन्दर्भ में यह कथन भी पूर्णतः न्यायसंगत ही है कि, **"लॉर्ड डलहौजी ने अपने प्रशासनिक सुधारों के द्वारा, भारत में ब्रिटिश शासन की नींव सुदृढ़ एवं दीर्घस्थायी बनाई।"**

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—प्लासी के युद्ध के विषय में आप क्या जानते हैं? *(1990)*

उत्तर—प्लासी का युद्ध—प्लासी का युद्ध 1757 ई० में बंगाल के नवाब सिराज-उद्-दौला और अँग्रेजों के बीच हुआ था। इस युद्ध में अँग्रेज सेनापति रॉबर्ट क्लाइव ने कूटनीति और धोखेबाजी से काम लेकर सिराज-उद्-दौला के सेनापति मीर जाफर को अपनी ओर मिला लिया था। परिणामस्वरूप इस युद्ध में सिराज-उद्-दौला की पराजय हुई और वह रणक्षेत्र में ही मारा गया। प्लासी का युद्ध भारतीय इतिहास में निर्णायक युद्ध सिद्ध हुआ। इस युद्ध के बाद बंगाल पर अँग्रेजों का प्रभुत्व स्थापित हो गया और मीर जाफर अँग्रेजों के हाथों की कठपुतली बन गया था।

प्रश्न 2—मीर जाफर कौन था?

उत्तर—मीर जाफर—भारत के इतिहास में मीर जाफर को देशद्रोही के रूप में जाना जाता है। वह बंगाल के नवाब सिराज-उद्-दौला का सेनापति था। प्लासी के युद्ध में उसने नवाब के साथ विश्वासघात करके अँग्रेजों का साथ दिया। इसके बदले में अँग्रेजों ने उसे कुछ समय के लिए बंगाल का नवाब बना दिया था, लेकिन 1760 ई० में अँग्रेजों ने मीर जाफर को गद्दी से हटाकर उसके दामाद मीर कासिम को बंगाल का नवाब बना दिया और उसे कलकत्ता के किले में नजरबन्द कर दिया। इस प्रकार, उसे अपने विश्वासघात का दुष्परिणाम भोगना पड़ा। बक्सर के युद्ध के पश्चात् उसे फिर बंगाल का नवाब बनाया गया, परन्तु 15 जनवरी, 1765 ई० को उसकी मृत्यु हो गई।

प्रश्न 3—रणजीतसिंह पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। *(1990, 91)*

उत्तर—रणजीतसिंह—रणजीतसिंह का जन्म 13 नवम्बर, 1780 ई० को हुआ था। उनके पिता महासिंह सिक्खों के एक मिस्ल के नेता थे और उनकी माता राजकौर जींद सरदार गनपतसिंह की कन्या थी। 1792 ई० में जब रणजीतसिंह केवल 12 वर्ष के थे, तब उनके पिता की मृत्यु हो गई और उनकी माता उनकी संरक्षिका बनी। रणजीतसिंह को उचित शिक्षा प्राप्त नहीं हो सकी। वह स्वभाव से हठी और उग्र थे। केवल 17 वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने शासन करना प्रारम्भ कर दिया था। 1797 ई० में अफगानिस्तान के शासक जमानशाह ने रणजीतसिंह को लाहौर का गवर्नर बना दिया था। धीरे-धीरे रणजीत सिंह ने गौरवशाली पंजाब में अपने स्वतन्त्र राज्य की स्थापना कर ली थी।

रणजीतसिंह ने अपनी प्रतिभा और बाहुबल से सिक्खों को संगठित करके शक्तिशाली सिक्ख राष्ट्र की स्थापना की थी। वह सम्पूर्ण पंजाब पर अपना एकछत्र शासन स्थापित करना चाहते थे। यद्यपि अँग्रेजों की कूटनीति तथा हस्तक्षेप के कारण उन्हें अपने लक्ष्य में पूर्ण सफलता प्राप्त न हो सकी, तथापि उनके द्वारा किया गया सिक्ख-राष्ट्र के निर्माण का कार्य अत्यन्त सराहनीय था।

प्रश्न 4—राजा चेतसिंह पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। *(1999)*

उत्तर—राजा चेतसिंह—राजा चेतसिंह बनारस का राजा था। वह अवध के नवाब शुजाउद्दौला के अधीन राज्य करता था। राजा चेतसिंह ने दुष्ट नवाब के विरुद्ध ब्रिटिश कम्पनी से सहायता माँगी थी। 1775 ई० में वारेन हेस्टिंग्स ने चेतसिंह के राज्य को कम्पनी के नियन्त्रण में कर लिया। कालान्तर में चेतसिंह और वारेन हेस्टिंग्स के बीच संघर्ष हुआ और चेतसिंह को अपना राज्य छोड़कर ग्वालियर भागना पड़ा।

प्रश्न 5—कार्नवालिस के किन्हीं दो सुधारों का वर्णन कीजिए। *(1999)*

उत्तर—कार्नवालिस के निम्नलिखित दो सुधार बहुत महत्त्वपूर्ण हैं—

(1) भूमि-सम्बन्धी सुधार—कार्नवालिस से पूर्व वारेन हेस्टिंग्स ने पंचवर्षीय प्रबन्ध किया था, जो बहुत असन्तोषजनक था, क्योंकि ठेकेदार किसानों से मनमाना लगान वसूल करते थे। अतः कार्नवालिस ने भूमि का स्थायी प्रबन्ध कर दिया।

(2) योग्यता के आधार पर नियुक्ति—कार्नवालिस से पूर्व, कम्पनी के कर्मचारियों की नियुक्ति सिफारिश के आधार पर होती थी। कार्नवालिस ने योग्यता के आधार पर नियुक्तियाँ कीं, जिससे शासन में कार्य-कुशलता उत्पन्न हो गई।

प्रश्न 6—स्थायी प्रबन्ध के लाभों का वर्णन कीजिए। *(1996)*

अथवा **'स्थायी बन्दोबस्त' की चार प्रमुख विशेषताएँ बताइए।** *(1997)*

उत्तर—स्थायी प्रबन्ध के लाभ—स्थायी प्रबन्ध की प्रमुख विषेषताएँ एवं लाभ निम्नलिखित हैं—

(1) इस व्यवस्था का सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि सरकार बार-बार भूमि-कर निश्चित करने और वसूल करने के झंझट से बच गई।

(2) ज़मींदारों को स्थायी स्वामी बना देने से उन्होंने कृषि की उन्नति के लिए बहुत प्रयत्न किया, जिससे बंगाल शीघ्र ही एक समृद्धशाली प्रान्त बन गया।

(3) कम्पनी की आय में वृद्धि हो गई।

(4) ब्रिटिश साम्राज्य को जमींदारों का समर्थन प्राप्त हो गया।

(5) कृषि की उन्नति से व्यापार की भी स्थिति सुधर गई।

(6) कम्पनी की स्थिति में दृढ़ता आ गई। पी० ई० रॉबर्ट के शब्दों में—"स्थायी भूमि-प्रबन्ध ने ब्रिटिश शासन को भारत में लोकप्रिय और स्थायी बनाया।"

प्रश्न 7—लॉर्ड वेलेजली की सहायक सन्धि की किन्हीं चार शर्तों का उल्लेख कीजिए। *(1994)*

अथवा **वेलेजली की सहायक सन्धि की नीति क्या थी?**

अथवा **लॉर्ड वेलेजली की सहायक सन्धि की किन्हीं चार धाराओं का उल्लेख कीजिए।** *(1991)*

अथवा **सहायक सन्धि के चार मुख्य प्रावधानों का उल्लेख कीजिए।** *(1996)*

अथवा **सहायक सन्धि की मुख्य शर्तों का उल्लेख कीजिए।**

उत्तर—

सहायक सन्धि के प्रावधान अथवा शर्तें

लॉर्ड वेलेजली ने देशी रियासतों को ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाने के लिए एक नई नीति अपनाई, जो इतिहास में 'सहायक सन्धि' के नाम से जानी जाती है। सहायक सन्धि की शर्तें इस प्रकार थीं—

(1) सहायक सन्धि स्वीकार करने वाले राज्य को कम्पनी का आधिपत्य स्वीकार करना पड़ता था।

(2) उस राज्य को अपने खर्चे पर एक अँग्रेजी सेना रखनी पड़ती थी।

(3) ऐसा राजा कम्पनी की अनुमति के बिना किसी से युद्ध या सन्धि नहीं कर सकता था।

(4) वे अपने राज्य में किसी अन्य यूरोपीय को नहीं रख सकते थे।

(5) उन्हें अपनी राजधानी में कम्पनी का एक रेजीडेण्ट रखना पड़ता था।

(6) कम्पनी सरकार इन सब शर्तों के बदले में उस राज्य की सुरक्षा करने का वचन देती थी।

प्रश्न 8—बक्सर का युद्ध किनके बीच हुआ और इस युद्ध का भारतीय इतिहास में क्या महत्त्व है? *(1994)*

उत्तर—बक्सर का युद्ध (1764 ई०) अँग्रेजों और मीर कासिम के बीच हुआ था। इस युद्ध में मीर कासिम को मुगल सम्राट शाहआलम द्वितीय और अवध के नवाब शुजाउद्दौला का सहयोग प्राप्त हुआ।

बक्सर के युद्ध का महत्त्व—बक्सर के युद्ध में अँग्रेजों की विजय हुई। मीर कासिम को पराजित होकर भागना पड़ा और शाहआलम द्वितीय अँग्रेजों की शरण में आ गया। बक्सर के युद्ध का भारतीय इतिहास में अत्यधिक महत्त्व है। इसने प्लासी के युद्ध के अधूरे कार्य को पूरा कर दिया। डॉ० आर० सी० दत्ता के अनुसार, "प्लासी के युद्ध की अपेक्षा बक्सर का युद्ध अपने परिणामों में अधिक निर्णायक था।"

प्रश्न 9—वारेन हेस्टिंग्स के न्यायिक सुधार क्या थे ? *(1992)*

उत्तर—वारेन हेस्टिंग्स के न्यायिक सुधार निम्नलिखित थे—

(1) न्यायिक व्यवस्था में सुधार हेतु उसने प्रत्येक जिले में एक दीवानी और फौजदारी न्यायालय की स्थापना की।

(2) न्यायाधीशों का पद वैतनिक और निश्चित कर दिया गया।

(3) अपराधियों को पकड़ने के लिए प्रत्येक जिले में फौजदार नियुक्त किए गए।

(4) कानून में आवश्यक सुधार किए गए।

प्रश्न 10—सहायक सन्धि के चार प्रभावों का उल्लेख कीजिए। *(1992, 93, 95, 97)*

उत्तर—सहायक सन्धि के चार प्रभाव निम्नलिखित थे—

(1) देशी राजा अब नाममात्र के राजा रह गए।

(2) कम्पनी की सेना का व्यय राजाओं को ही देना पड़ा।

(3) अनेक भारतीय सैनिक बेरोजगार हो गए।

(4) भारत में अन्य यूरोपीय जातियों का प्रभाव सदा के लिए समाप्त हो गया।

प्रश्न 11—लॉर्ड डलहौजी के द्वारा किए गए किन्हीं दो सुधारों का वर्णन कीजिए।

उत्तर—लॉर्ड डलहौजी ने निम्नलिखित दो महत्त्वपूर्ण सुधार किए—

(1) रेल, तार तथा डाक की व्यवस्था—भारत में रेल, तार और डाक की व्यवस्था सर्वप्रथम डलहौजी ने ही प्रारम्भ की। 1853 ई॰ में बम्बई से थाना तक प्रथम रेलवे लाइन का निर्माण हुआ। इसके पश्चात्, अन्य रेलवे लाइनें बिछाई गईं। डलहौजी ने कलकत्ता से पेशावर और बम्बई से मद्रास का तार द्वारा सम्पर्क स्थापित किया। उसने दो पैसे के खत (Post-card) का प्रचलन भी किया।

(2) सार्वजनिक निर्माण विभाग (P.W.D.) की स्थापना—डलहौजी ने प्रत्येक प्रेसीडेन्सी में एक सार्वजनिक निर्माण विभाग की स्थापना की। इसका अध्यक्ष एक मुख्य अभियन्ता होता था। इस विभाग का कार्य सड़कें, पुल आदि बनवाना तथा नहरें खुदवाना था।

प्रश्न 12—कर्नाटक के द्वितीय युद्ध के क्या कारण थे ? *(1992)*

उत्तर—कर्नाटक के द्वितीय युद्ध के प्रमुख कारण इस प्रकार थे—

(1) अँग्रेजों द्वारा मराठों के विरुद्ध हैदरअली को सहायता प्रदान न करना।

(2) मालाबार पर अँग्रेजों का अधिकार स्थापित होना।

(3) निजाम और मराठों द्वारा हैदरअली को अँग्रेजों के विरुद्ध सैनिक सहायता देना।

प्रश्न 13—बक्सर के युद्ध के क्या कारण थे ? *(1992, 93)*

उत्तर—बक्सर के युद्ध के निम्न कारण थे—

(1) मीर कासिम के द्वारा राजधानी परिवर्तन।

(2) मीर कासिम के विरुद्ध अँग्रेजों का षड्यन्त्र।

(3) मीर कासिम के द्वारा बन्दूक बनाने का कारखाना खोला जाना।

(4) मीर कासिम के द्वारा अपनी सैनिक-शक्ति में वृद्धि करना।

प्रश्न 14—विलियम बैंटिक द्वारा किए गए किन्हीं दो सुधारों का वर्णन कीजिए। *(1996, 97)*

उत्तर—विलियम बैंटिक द्वारा किए गए प्रमुख दो सुधार निम्नलिखित हैं—

(1) सामाजिक सुधार—तत्कालीन भारतीय समाज में सती प्रथा, बलि प्रथा, दास प्रथा आदि अनेक सामाजिक कुरीतियाँ व्याप्त थीं। विलियम बैंटिक ने कानून बनाकर इन कुप्रथाओं का अन्त कर दिया।

(2) प्रशासनिक सुधार—उच्च पदों पर केवल अँग्रेजों की ही नियुक्ति की जाती थी, भारतीयों की नहीं। इसके अतिरिक्त भारतीयों के वेतन व भत्ते भी कम थे। विलियम बैंटिक के प्रशासनिक सुधारों के कारण योग्यतानुसार भारतीयों की भी उच्च पदों पर नियुक्ति होने लगी तथा उनके वेतन व भत्तों में भी वृद्धि हो गई।

प्रश्न 15—सिगरौली सन्धि की शर्तें क्या थीं? *(1999)*

उत्तर—गोरखा युद्ध (1814-1816 ई०) का अन्त सिगरौली की सन्धि से हुआ। मार्च 1816 ई० में गोरखों ने पराजित होकर अँग्रेजों के साथ यह सन्धि की। इस सन्धि की प्रमुख शर्तें निम्नलिखित थीं—

(1) इस सन्धि के अनुसार गोरखों ने तराई का सारा प्रदेश और कुमायूँ तथा गढ़वाल के जिले अँग्रेजों को दे दिए।

(2) गोरखों ने अपनी राजधानी काठमाण्डू में एक अँग्रेजी रेजीडेण्ट रखना स्वीकार किया, परन्तु शर्त यह भी रख दी गई कि वह गोरखों के आन्तरिक मामलों में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगा।

(3) गोरखों ने अँग्रेजों को यह भी वचन दिया कि बिना अँग्रेजों की स्वीकृति के किसी यूरोपियन को अपने यहाँ नौकरी नहीं देंगे।

भारतीय इतिहास में सिगरौली की सन्धि का बहुत महत्त्व है, क्योंकि इस सन्धि के बाद ईस्ट इण्डिया कम्पनी के राज्य की सीमा हिमालय पर्वत तक पहुँच गई।

प्रश्न 16—लॉर्ड क्लाइव की प्रमुख उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए। *(1997)*

उत्तर—

लॉर्ड क्लाइव की प्रमुख उपलब्धियाँ

लॉर्ड क्लाइव को भारत में ब्रिटिश साम्राज्य का संस्थापक माना जाता है। उसकी प्रमुख उपलब्धियाँ निम्नलिखित थीं—

(1) अर्काट की विजय—क्लाइव ने कर्नाटक की राजधानी अर्काट पर आक्रमण करके वहाँ अपना अधिकार स्थापित कर लिया। यदि क्लाइव ने अर्काट पर विजय प्राप्त नहीं की होती तो यह सम्भव था कि भारत में अँग्रेजों के स्थान पर फ्रांसीसियों की प्रभुसत्ता स्थापित हो जाती।

(2) प्लासी की विजय—क्लाइव ने 1757 ई० में सिराजुद्दौला को परास्त करके मीर जाफर को बंगाल की गद्दी पर आसीन कर दिया। इस प्रकार क्लाइव ने बंगाल पर एक प्रकार से अपना स्वामित्व स्थापित कर लिया। प्लासी के युद्ध में उसकी विजय ने भारत में अँग्रेजी साम्राज्य की आधारशिला रख दी।

(3) शाह आलम से सन्धि—बक्सर के युद्ध के उपरान्त क्लाइव ने मुगल सम्राट शाह आलम से इलाहाबाद की सन्धि की जिसके परिणामस्वरूप भारत में अँग्रेजी कम्पनी को एक सुदृढ़ राजनीतिक एवं आर्थिक आधार प्राप्त हुआ। वस्तुतः इस सन्धि ने प्लासी के अधूरे कार्य को पूरा किया।

(4) प्रशासन एवं सेना सम्बन्धी सुधार—क्लाइव ने कम्पनी की नौकरियों में कई उल्लेखनीय सुधार किए। इन सुधारों के फलस्वरूप कम्पनी में व्याप्त भ्रष्टाचार कम हो गया और कर्मचारियों के सन्तोष में वृद्धि हुई। उसने युद्ध के समय तत्काल सैनिक सहायता उपलब्ध कराने हेतु सेना को तीन भागों में बाँट दिया तथा युद्ध के समय सैनिकों को दोहरा भत्ता देने की व्यवस्था की।

इस प्रकार क्लाइव ने अपनी उल्लेखनीय उपलब्धियों के आधार पर भारत में ऐसे ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना की जिसका अस्तित्व लगभग 200 वर्षों तक रहा।

ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों एवं व्यक्तियों पर आधारित प्रश्न

प्रश्न 1—निम्नांकित तिथियों के ऐतिहासिक महत्त्व पर टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) 1609 ई० *(1997)*—इस तिथि को अँग्रेज राजदूत हाकिन्स मुगल सम्राट जहाँगीर के दरबार में पहुँचा था और सम्राट जहाँगीर ने हाकिन्स का स्वागत करते हुए उसे भारत में व्यापार करने की अनेक सुविधाएँ प्रदान की थीं।

(2) 1714 ई० *(1996)*—इस तिथि को बालाजी विश्वनाथ द्वारा पेशवा वंश के शासन की नींव डाली गई थी।

(3) 1720 ई० *(1996)*—इस तिथि को पेशवा वंश के शासक बालाजी विश्वनाथ की मृत्यु हो गई तथा बाजीराव प्रथम पेशवा पद पर आसीन हुआ।

(4) 1756 ई० *(1999)*—इस तिथि को बंगाल के नवाब अलीवर्दी खाँ की मृत्यु हुई थी और उसका दामाद सिराज-उद्-दौला बंगाल का नवाब बना था।

(5) 1757 ई० *(1994)*—इस तिथि को प्लासी का ऐतिहासिक युद्ध हुआ था। इस युद्ध में अँग्रेजों की विजय और सिराजुद्दौला की पराजय हुई थी।

(6) 1760 ई० *(1997)*—इस तिथि को मीर जाफर के स्थान पर मीर कासिम बंगाल का नवाब बना था।

(7) 1764 ई० *(1992, 95, 96, 97, 99)*—इस तिथि को बक्सर का निर्णायक युद्ध हुआ था। इस युद्ध में एक ओर मीर कासिम, अवध का नवाब शुजाउद्दौला और मुगल सम्राट शाह आलम द्वितीय थे तथा दूसरी ओर अँग्रेज थे।

(8) 1765 ई० *(1994, 99)*—इस तिथि को अँग्रेजों और मुगल सम्राट शाह आलम द्वितीय के मध्य इलाहाबाद की सन्धि हुई थी।

(9) 1767 ई० *(1997)*—इस तिथि को अँग्रेजों व हैदरअली के मध्य प्रथम मैसूर युद्ध हुआ।

(10) 1769 ई० *(1997)*—इस तिथि को अंग्रेजों व हैदरअली के मध्य मद्रास की सन्धि हुई तथा इसी तिथि को बंगाल में भयानक अकाल पड़ा।

(11) 1770 ई० *(1993, 95, 97)*—इस वर्ष बंगाल में भीषण अकाल पड़ा था।

(12) 1772 ई० *(1996)*—इस तिथि को वारेन हेस्टिंग्स गवर्नर जनरल बनकर भारत में आया था। वह 1772 ई० से 1785 ई० तक भारत में रहा।

(13) 1773 ई० *(1993, 96, 97)*—इस तिथि को रेग्यूलेटिंग एक्ट पारित हुआ था। इस एक्ट के अनुसार ईस्ट इण्डिया कम्पनी पर ब्रिटिश सरकार का नियन्त्रण स्थापित किया गया था।

(14) 1774 ई० *(1999)*—इस तिथि को आधुनिक भारत के निर्माता राजा राममोहन राय का जन्म हुआ था।

(15) 1775 ई० *(1999)*—इस तिथि को प्रथम मराठा युद्ध हुआ। पुरन्दर की सन्धि तथा नन्दकुमार को मृत्युदण्ड भी इसी तिथि से सम्बन्धित घटनाएँ हैं।

(16) 1776 ई० *(1995, 97)*—इस तिथि को मराठा सरदार नाना फड़नवीस और वारेन हेस्टिंग्स के मध्य पुरन्दर की ऐतिहासिक सन्धि हुई थी।

(17) 1780 ई०—इस तिथि को मैसूर का द्वितीय युद्ध हुआ था।

(18) 1782 ई० *(1996)*—इस तिथि को मराठा सरदार महोदाजी सिन्धिया के प्रयास से मराठों और अँग्रेजों के मध्य सालबाई की सन्धि हुई थी। हैदरअली की मृत्यु भी इसी तिथि को हुई थी।

(19) 1784 ई० *(1995, 97)*—इस तिथि को 'पिट्स इण्डिया एक्ट' पारित हुआ।

(20) 1792 ई० *(1990, 92)*—इस तिथि को टीपू सुल्तान और अँग्रेजों के मध्य श्रीरंगपट्टम की सन्धि हुई थी, जिसके परिणामस्वरूप मैसूर के अधिकांश भाग पर कम्पनी का नियन्त्रण स्थापित हो गया था।

(21) 1799 ई० *(1993, 95, 96, 99)*—इस तिथि को मैसूर का चतुर्थ युद्ध हुआ था।

(22) 1800 ई० *(1994, 99)*—इस तिथि को मराठा सरदार नाना फड़नवीस की मृत्यु हुई थी। इसके अतिरिक्त, इसी तिथि को भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी की स्थापना भी हुई थी।

(23) 1802 ई० *(1999)*—इस तिथि को लॉर्ड वेलेजली ने मराठा पेशवा बाजीराव द्वितीय के साथ बेसीन की सन्धि की थी। इस सन्धि के अनुसार पेशवा ने अँग्रेजों की सहायक सन्धि की सभी शर्तों को स्वीकार किया था।

(24) 1803 ई० *(1994)*—इस तिथि को मराठा सरदार दौलतराव सिन्धिया और अँग्रेजों के मध्य सुर्जी अर्जुनगाँव की सन्धि हुई थी। इस सन्धि के परिणामस्वरूप सिन्धिया अँग्रेजों के नियन्त्रण में आ गया था।

(25) 1804 ई० *(1992)*—इस तिथि को अँग्रेजी सेनाओं द्वारा मराठा सरदार होल्कर के राज्य पर आक्रमण किया गया था।

(26) 1805 ई०—इस वर्ष देवगाँव और सुर्जी अर्जुनगाँव की सन्धि हुई तथा लॉर्ड कार्नवालिस की मृत्यु हुई।

(27) 1809 ई० *(1999)*—इस तिथि को अंग्रेजों और सिक्खों के मध्य अमृतसर की सन्धि हुई थी।

(28) 1816 ई०—इस तिथि को गोरखों और अँग्रेजों के मध्य सिगरौली की सन्धि हुई थी। इस सन्धि के अनुसार कुमायूँ तथा गढ़वाल के प्रदेश अँग्रेजों को प्राप्त हुए थे और नेपाल के शासक ने काठमाण्डू में अँग्रेज रेजीडेण्ट रखना स्वीकार कर लिया था।

(29) 1824 ई० *(1999)*—इस तिथि को आर्य समाज के संस्थापक स्वामी दयानन्द का जन्म टंकारा (गुजरात) नामक स्थान पर हुआ था।

(30) 1826 ई० *(1995, 99)*—इस तिथि को ब्रह्मा (बर्मा) के राजा और अँग्रेजों के मध्य यांडबू की सन्धि हुई थी। इस सन्धि के अनुसार अराकान व तनासरिम के प्रदेश ब्रिटिश कम्पनी को प्राप्त हुए थे, मनीपुर को स्वतन्त्र मान लिया गया था और ब्रह्मा के राजा को जैन्तिया, कछार एवं आसाम में हस्तक्षेप न करने का वचन देना पड़ा था।

(31) 1828 ई० *(1992, 97)*—इस तिथि को लॉर्ड विलियम बैंटिंक भारत का गवर्नर जनरल बनाया गया।

(32) 1829 ई० *(1992, 94, 95, 97, 99)*—इस तिथि को हैदराबाद के निजाम की मृत्यु हुई।

(33) 1833 ई०—इस वर्ष विलियम बैंटिंक ने पंजाब के महाराजा रणजीतसिंह के साथ सन्धि की।

(34) 1839 ई०—इस वर्ष पंजाब के महाराजा रणजीतसिंह की मृत्यु हुई।

(35) 1846 ई०—इस तिथि को सिक्खों और अँग्रेजों के मध्य लाहौर की सन्धि हुई थी। इस सन्धि के अनुसार पंजाब का राज्य दिलीप सिंह को लौटा दिया गया और लालसिंह को मन्त्री तथा राजमाता जिन्दाकौर को राजा दिलीप सिंह की संरक्षिका बनाया गया। सर हेनरी लारेन्स को पंजाब में ब्रिटिश रेजीडेण्ट नियुक्त किया गया और वहाँ पर एक ब्रिटिश सेना भी रख दी गई।

(36) 1848 ई० *(1992, 93)*—इस तिथि को लॉर्ड डलहौजी गवर्नर जनरल बनकर भारत आया था। वह एक साम्राज्यवादी गवर्नर जनरल था। वह इतिहास में अपने 'गोद-निषेध सिद्धान्त' के कारण प्रसिद्ध है।

(37) 1854 ई० *(1994)*—इस वर्ष लॉर्ड डलहौजी ने सतारा व झाँसी को अँग्रेजी साम्राज्य में मिला लिया।

(38) 1856 ई० *(1992, 97)*—इस तिथि को अवध के राज्य को लॉर्ड डलहौजी द्वारा अँग्रेजी साम्राज्य में मिला लिया गया।

(39) 1861 ई० *(1995, 96)*—इस तिथि को भारतीय परिषद नियम—फौजदारी और दीवानी कार्य संहिता तथा भारतीय उच्च न्यायालय अधिनियम पारित हुआ था।

प्रश्न 2—निम्नांकित ऐतिहासिक स्थलों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) कलकत्ता *(1995)*—कलकत्ता भारत का सबसे विशाल महानगर और पश्चिम बंगाल की वर्तमान राजधानी है। इस नगर का ऐतिहासिक महत्त्व रहा है। अँग्रेजों ने सर्वप्रथम इसी नगर में अपनी व्यापारिक कोठी बनाई थी और इसी नगर की किलेबन्दी के प्रश्न पर सिराज-उद्-दौला और अँग्रेजों के मध्य प्लासी का युद्ध हुआ था। काफी समय तक कलकत्ता अँग्रेजी साम्राज्य की राजधानी भी रहा था। इस नगर की अनेक इमारतें व स्मारक दर्शनीय हैं, जिनमें विक्टोरिया मैमोरियल, काली मन्दिर, जैन मन्दिर, राजभवन, शहीद मीनार, जियोलॉजिकल व बॉटनिकल गार्डन, चौरंगी और हावड़ा ब्रिज प्रमुख हैं।

(2) हैदराबाद *(1994, 95, 96, 99)*—इस नगर की स्थापना सोलहवीं शताब्दी में मुहम्मद कुली कुतुबशाह ने की थी। यहाँ का शासक निजाम कहलाता था और दक्षिण भारत की राजनीति में उसका सक्रिय

योगदान रहता था। यहाँ की जामा मसजिद, गोलकुण्डा का दुर्ग, सालार जंग का संग्रहालय और चारमीनार दर्शनीय स्मारक हैं। वर्तमान में हैदराबाद आन्ध्र प्रदेश की राजधानी है।

(3) इन्दौर *(1996)*—यह मध्य प्रदेश में स्थित होल्कर राजाओं की राजधानी थी। यहाँ का छतरी बाग और काँच का मन्दिर दर्शनीय स्थल हैं।

(4) श्रीरंगपट्टम *(1996)*—यह तमिलनाडु के त्रिचनापल्ली जिले में स्थित है। यहाँ श्रीरंगनाथ का भव्य मन्दिर है। 266 बीघे में निर्मित यह मन्दिर, महाकाव्य काल से ही एक पवित्र स्थान माना जाता रहा है। श्रीरंगपट्टम; टीपू सुल्तान की राजधानी थी। वह स्वयं प्रतिदिन श्रीरंगनाथ के मन्दिर में विष्णु जी की मूर्ति के दर्शनों हेतु जाया करता था। टीपू और अँग्रेजों के मध्य हुए, तीसरे मैसूर युद्ध के उपरान्त, 1792 ई० में, इसी स्थान पर श्रीरंगपट्टम की सन्धि हुई थी।

प्रश्न 3—निम्नांकित ऐतिहासिक व्यक्तियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) अलीवर्दी खाँ—यह बंगाल के नवाब शुजाउद्दौला के अधीन बिहार का सूबेदार था। 1740 ई० में इसने शुजाउद्दौला के उत्तराधिकारी सरफराज खाँ को पराजित करके बंगाल, बिहार और उड़ीसा पर अपना स्वतन्त्र अधिकार स्थापित कर लिया था। मुगल सम्राट मुहम्मद शाह ने भी अलीवर्दी खाँ को बंगाल का शासक स्वीकार कर लिया था। उसका मराठा सरदार रघुजी भोंसले से भयंकर संघर्ष हुआ, जिसमें पराजित होकर अलीवर्दी खाँ को मराठों से सन्धि करने पड़ी। अलीवर्दी खाँ यूरोपीय व्यापारियों को सन्देह की दृष्टि से देखता था। उसने अपने जीवनकाल में अँग्रेजों और फ्रांसीसियों को चन्द्रनगर और कलकत्ता में किलेबन्दी करने की अनुमति नहीं दी। अलीवर्दी खाँ ने 1752 ई० में सिराज-उद्-दौला को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया और 1756 ई० में उसकी मृत्यु हो गई थी।

(2) सिराज-उद्-दौला *(1996)*—सिराज-उद्-दौला अलीवर्दी खाँ का दोहित था। वह 1756 ई० में बंगाल का नवाब बना। वह एक अदूरदर्शी, हठी और विलासी शासक था। उसमें राजनीतिक प्रतिभा का सर्वथा अभाव था। गद्दी पर आसीन होते ही सिराज-उद्-दौला को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। उस समय अँग्रेज और फ्रांसीसी भारत में अपनी राजनीतिक सत्ता स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील थे। सिराज-उद्-दौला ने अँग्रेजों और फ्रांसीसियों को किलेबन्दी न करने का आदेश दिया। फ्रांसीसियों ने उसकी आज्ञा मानकर किलेबन्दी करनी बन्द कर दी, परन्तु अँग्रेजों ने उसके आदेश की अवहेलना करके किलेबन्दी करनी जारी रखी। इससे क्रोधित होकर सिराज-उद्-दौला ने जून, 1756 ई० में कासिम बाजार और कलकत्ता में कम्पनी की कोठी व दुर्ग पर अधिकार कर लिया। इस अपमान का बदला लेने के लिए अँग्रेजों ने सिराज-उद्-दौला पर आक्रमण कर दिया। प्लासी के युद्ध (1757 ई०) में मीर जाफर की गद्दारी के फलस्वरूप सिराज-उद्-दौला की पराजय हुई और वह युद्धभूमि में ही मारा गया।

(3) मीर कासिम—मीर कासिम मीर जाफर का दामाद था। 1760 ई० में अँग्रेजों ने मीर जाफर को गद्दी से उतारकर मीर कासिम को बंगाल का नवाब बनाया। मीर कासिम एक देशभक्त और योग्य शासक था। उसे अँग्रेजों के हाथ की कठपुतली बनना स्वीकार न था। उसने अनेक आर्थिक सुधार करके राजकोष धन से भर दिया और अँग्रेजों के नियन्त्रण से मुक्त रहने के लिए, उसने अपनी राजधानी मुर्शिदाबाद से बदलकर मुंगेर बना ली। उसने सेना का पुनर्गठन करके, मुंगेर में गोला-बारूद बनाने का एक कारखाना भी स्थापित किया। उसके कार्यों से सशंकित होकर अँग्रेजों ने मीर कासिम के विरुद्ध षड्यन्त्र रचना प्रारम्भ कर दिया। अन्त में, मीर कासिम और अँग्रेजों के मध्य 1764 ई० में बक्सर का युद्ध हुआ। सेनापतियों के विश्वासघात के परिणामस्वरूप इस युद्ध में मीर कासिम की पराजय हुई और उसे इलाहाबाद की ओर भागना पड़ा। अन्त में, 12 वर्ष का निर्वासित जीवन व्यतीत करने के बाद मीर कासिम की मृत्यु हो गई।

(4) नन्दकुमार—राजा नन्दकुमार एक बंगाली ब्राह्मण था। वह सिराज-उद्-दौला और मीर जाफर के शासनकाल में उच्च पदों पर आसीन रह चुका था। उसने वारेन हेस्टिंग्स की अधीनता में भी काम किया था। बाद में गवर्नर जनरल की काउंसिल के एक सदस्य क्लेवरिंग के उकसाने पर नन्दकुमार ने वारेन हेस्टिंग्स पर यह आरोप लगाया कि उसने मीर जाफर की विधवा मुन्नी बेगम से उसे नाबालिग नवाब की

संरक्षिका बनाने के बदले में ढाई लाख रुपये की रिश्वत ली है। वारेन हेस्टिंग्स ने अपने अपमान का बदला लेने के लिए नन्दकुमार पर जालसाजी का मुकदमा चलवाया और न्यायालय से उसे प्राणदण्ड दिलवा दिया।

(5) राजा चेतसिंह—राजा चेतसिंह बनारस का शासक था। बनारस का राज्य अवध के नवाब के अधीन था। राजा चेतसिंह ने अवध के नवाब के नियंत्रण से मुक्त होने के लिए वारेन हेस्टिंग्स को कई बार लाखों रुपये दिए, लेकिन वारेन हेस्टिंग्स ने चेतसिंह पर आक्रमण करके उसके साथ बड़ा दुर्व्यवहार किया। अन्त में, चेतसिंह को बनारस छोड़कर ग्वालियर में शरण लेनी पड़ी।

(6) टीपू सुल्तान *(1994, 99)*—टीपू सुल्तान मैसूर के शासक हैदरअली का वीर पुत्र था। हैदरअली की मृत्यु के पश्चात् वह मैसूर की गद्दी पर आसीन हुआ। वह अत्यन्त योग्य सैनिक, प्रशासक और उच्चकोटि का सेनापति था। उसने अपनी सेना का यूरोपीयकरण करके अनेक बार अँग्रेजों को पराजित किया, लेकिन अन्त में चौथे मैसूर युद्ध में वह वीरगति को प्राप्त हुआ। उसके द्वारा प्रशासन में अनेक सुधार किए गए। उसने नवीन कैलेण्डर प्रणाली लागू की और नए सिक्के ढलवाए। उसे साहित्य से विशेष प्रेम था। उसने एक विशाल पुस्तकालय भी बनवाया था, जिसमें सभी विषयों की दुर्लभ पुस्तकें संगृहीत थीं।

(7) लॉर्ड मैकाले *(1993)*—भारतीयों को शिक्षित करने के लिए लॉर्ड बैंटिक के द्वारा एक समिति का गठन किया गया था। इस समिति का प्रमुख उद्देश्य यह सुनिश्चित करना था कि भारतीयों को किस माध्यम से शिक्षा प्रदान की जाए। लॉर्ड मैकाले इसी समिति का अध्यक्ष था, जो भारतीयों की भाषाओं और यहाँ की संस्कृति को घोर उपेक्षा की दृष्टि से देखता था। वह भारतीयों को अँग्रेजी भाषा के माध्यम से शिक्षित करने का पक्षपाती था।

(8) नाना फड़नवीस *(1994, 95)*—नाना फड़नवीस एक वीर मराठा सरदार था। वह बड़ा दूरदर्शी और सफल कूटनीतिज्ञ था। वह जब तक जीवित रहा, मराठों की एकता के लिए प्रयत्नशील रहा। 1772 ई० में उसने राघोबा के विरुद्ध पेशवा माधवराव द्वितीय का पक्ष लेकर अँग्रेजों से प्रबल संघर्ष किया और उनके छक्के छुड़ा दिए। नाना फड़नवीस की मृत्यु के बाद मराठों की एकता छिन्न-भिन्न हो गई।

(9) पेशवा बालाजी विश्वनाथ—बालाजी विश्वनाथ मराठों का प्रथम पेशवा था । उसने 1713 ई० से 1720 ई० तक सफलतापूर्वक शासन किया। उसने मराठा साम्राज्य विस्तार की नीति को प्रारम्भ किया और मराठा सरदारों को संगठित करके शक्तिशाली मराठा संघ का निर्माण किया। पेशवा बालाजी विश्वनाथ कुशल सेनानी और दक्ष कूटनीतिज्ञ था।

(10) पेशवा बाजीराव प्रथम—बालाजी की मृत्यु के पश्चात् पेशवा बाजीराव प्रथम मराठा पेशवा के पद पर आसीन हुआ। वह बड़ा वीर, साहसी और योग्य प्रशासक तथा महान् विजेता था। उसने मालवा और गुजरात पर विजय प्राप्त की और निजाम को नतमस्तक किया। उसने अपनी अनेक विजयों में नर्मदा व चम्बल नदी तक मराठा साम्राज्य का विस्तार कर दिया। पेशवा बाजीराव अपने समय का अत्यन्त दक्ष घुड़सवार और कुशल राजनीतिज्ञ था। उसकी कूटनीतिज्ञता एवं रणकुशलता के कारण अनेक इतिहासकार उसे मराठा साम्राज्य का द्वितीय संस्थापक मानते हैं।

(11) पेशवा बालाजी बाजीराव—बाजीराव की मृत्यु के उपरान्त, 1740 ई० में उसका पुत्र बालाजी पेशवा बना। वह भी अत्यन्त योग्य तथा प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति था। उसने आन्तरिक विवादों का समाधान करके मालवा और बुन्देलखण्ड पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। उसने दक्षिणी भारत में निजाम को परास्त करके मराठों की धाक जमा दी। पेशवा ने राजस्थान के कोटा, बूँदी, जयपुर आदि राज्यों को अपने अधीन कर लिया। उसने दोआब पर भी आक्रमण किया और दिल्ली पर अपना अधिकार कर लिया। अब मुगल सम्राट मराठों के संरक्षण में आ गया। इसी समय 1761 ई० में अहमदशाह अब्दाली और मराठों के मध्य पानीपत का तीसरा युद्ध हुआ। इस युद्ध में मराठों को धन और जन की अपार क्षति उठानी पड़ी। पेशवा का पुत्र विश्वासराव और भाई सदाशिवराव भाऊ युद्ध भूमि में ही मारे गए। इस आघात को पेशवा सहन न कर सका और 1761 ई० में ही उसका भी निधन हो गया।

(12) हैदरअली *(1992, 94, 97)*—(संकेत—इस प्रश्न के उत्तर हेतु दीर्घ उत्तरीय प्रश्न संख्या 8 का उत्तर देखिए।)

(13) विलियम बैंटिक *(1992, 93, 97)*—यह 1828 ई० में भारत का गवर्नर जनरल बनकर भारत आया था। यह ऐसा प्रथम गवर्नर जनरल था जिसने अपने सुधारों के द्वारा भारतीयों के हृदय में अपना स्थान बनाया। वह 1935 ई० तक भारत में रहा था।

(14) सूरजमल *(1996)*—यह जाटों का सुप्रसिद्ध नेता था, जिसने भरतपुर (राजस्थान) में जाटों के स्वतन्त्र राज्य की स्थापना की थी। 1753 ई० में मराठा शासक रघुनाथ राव ने भरतपुर पर आक्रमण किया था। इस युद्ध में सूरजमल की पराजय हुई और उसे मराठों को चौथ और सरदेशमुखी कर देने के लिए विवश होना पड़ा। कालान्तर में 1761 ई० में हुए पानीपत के तृतीय युद्ध में सूरजमल ने मराठों की सहायता नहीं की थी। 1761 ई० में कर्नल लेक ने भरतपुर पर आक्रमण किया था। राजा सूरजमल के नेतृत्व में जाटों ने कर्नल लेक की सेना का वीरतापूर्वक सामना किया और उसे भरतपुर के दुर्ग पर अधिकार करने में सफल नहीं होने दिया।

(15) जसवन्तराव होल्कर *(1996)*—यह एक मराठा शासक था जिसने अँग्रेजों के साथ हुए संघर्षों में अत्यधिक वीरता का प्रदर्शन किया था। जसवन्तराव होल्कर इन्दौर का शासक था। 1811 ई० में उसकी मृत्यु हो गई और मल्हारराव होल्कर इन्दौर का शासक बना।

8 कम्पनी की शासन नीति एवं वैधानिक विकास (1773-1857 ई०)

[रेग्यूलेटिंग एक्ट तथा पिट का इण्डिया एक्ट]

"1784 ई० में पारित पिट के इण्डिया एक्ट ने कलकत्ता के गवर्नर जनरल को अपनी काउंसिल की दासता से मुक्त कर दिया और उसका कार्य केवल परामर्श देना रह गया।" **—ट्रेवेलियन**

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—रेग्यूलेटिंग एक्ट की धाराओं का उल्लेख करते हुए उसके गुण व दोषों पर प्रकाश डालिए।
अथवा **रेग्यूलेटिंग एक्ट के प्रावधानों की विवेचना कीजिए।**
अथवा **"रेग्यूलेटिंग एक्ट एक अधूरा कानून था।" स्पष्ट कीजिए।** *(1990)*

उत्तर—

रेग्यूलेटिंग एक्ट

इंग्लैण्ड की सरकार यह अनुभव करने लगी थी कि ईस्ट इण्डिया कम्पनी इतने बड़े उत्तरदायित्व को ठीक प्रकार से निभाने में असमर्थ है, अतएव कम्पनी का भारतीय शासन ब्रिटिश सरकार के नियन्त्रण में होना चाहिए। दूसरी ओर दक्षिण व बंगाल के युद्धों के कारण कम्पनी की आर्थिक स्थिति अत्यन्त शोचनीय हो गई थी। अतः 1772 ई० में कम्पनी के संचालकों ने ब्रिटिश सरकार से कर्जा देने की प्रार्थना की। 1773 ई० में सरकार ने कम्पनी की आर्थिक स्थिति की जाँच करवाई, तो यह ज्ञात हुआ कि कम्पनी का वार्षिक व्यय बहुत बढ़ गया है और उसका दिवाला ही निकलने वाला है। अतः ब्रिटिश सरकार ने कम्पनी को कुछ शर्तों पर 4 पौण्ड प्रति सैकड़ा वार्षिक ब्याज दर पर 14 लाख पौण्ड कर्ज दिया। इसके अतिरिक्त, 1773 ई० में ब्रिटिश प्रधानमन्त्री लॉर्ड नाथ ब्रुक ने भारतीय साम्राज्य के सम्बन्ध में ब्रिटिश संसद में एक विधेयक भी रखा। ब्रिटिश संसद ने यह विधेयक पारित कर दिया। यही विधेयक रेग्यूलेटिंग एक्ट के नाम से प्रसिद्ध है। रेग्यूलेटिंग का अर्थ होता है व्यवस्था करना और एक्ट का अर्थ होता है अधिनियम। इस रेग्यूलेटिंग एक्ट के अनुसार कम्पनी पर ब्रिटिश संसद का नियन्त्रण स्थापित हो गया।

रेग्यूलेटिंग एक्ट की धाराएँ—रेग्यूलेटिंग एक्ट की निम्नलिखित धाराएँ (प्रावधान) थीं—

(1) भारत की मालगुजारी एवं शासन-सम्बन्धी नीतियों पर भारत के साथ जो भी पत्र-व्यवहार होगा, उस सबकी रिपोर्ट कम्पनी के डायरेक्टरों को इंगलैण्ड की सरकार को अवश्य देनी होगी। इस शर्त का उद्देश्य कम्पनी के संचालकों पर ब्रिटिश सरकार का नियन्त्रण बनाए रखना था।

(2) कम्पनी के संचालकों का कार्यकाल पहले एक वर्ष का होता था, लेकिन इंग्लैण्ड की सरकार ने यह कार्यावधि चार वर्ष कर दी। संचालकों की संख्या 24 निर्धारित की गई। इन संचालकों में से प्रति वर्ष 1/4 सदस्य अवकाश प्राप्त करते रहेंगे और उनके स्थान पर नए सदस्यों का चुनाव होता रहेगा। संचालकों के चयन में मतदाता वही हो सकता था जो कम्पनी में एक हजार पौण्ड का भागीदार था।

(3) रेग्यूलेटिंग एक्ट के लागू होने से पूर्व बंगाल, मद्रास और बम्बई प्रान्तों के अलग-अलग गवर्नर थे, किन्तु एक्ट की धारा के अनुसार बंगाल के गवर्नर को सम्पूर्ण ब्रिटिश भारत का गवर्नर जनरल बना दिया गया। उसकी कार्यावधि 5 वर्ष की रखी गई और भारत के सभी प्रान्तों पर उसका अधिकार माना गया।

(4) गवर्नर जनरल की सहायता के लिए चार सदस्यों की एक समिति **भारतीय कार्यकारिणी** संगठित की गई। इसकी नियुक्ति का अधिकार कम्पनी के संचालकों को दिया गया। कार्यकारिणी के बहुमत द्वारा लिए गए निर्णय को गवर्नर जनरल रद्द नहीं कर सकता था। बराबर मत होने पर गवर्नर जनरल को निर्णायक मत देने का अधिकार दिया गया था।

(5) कलकत्ता में एक सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना की गई। इस न्यायालय में एक प्रधान न्यायाधीश और तीन सहायक न्यायाधीश नियुक्त किए गए थे।

(6) इस एक्ट के द्वारा कम्पनी के कर्मचारियों पर, व्यक्तिगत व्यापार करने पर प्रतिबन्ध लगा दिया गया और उन्हें भेंट एवं उपहार लेने को मना कर दिया गया।

रेग्यूलेटिंग एक्ट के गुण

रेग्यूलेटिंग एक्ट के निम्नलिखित गुण थे—

(1) यह एक्ट कम्पनी के कर्मचारियों में व्याप्त भ्रष्टाचार को समाप्त करने के लिए एक महत्त्वपूर्ण प्रयास था।

(2) रेग्यूलेटिंग एक्ट द्वारा सम्पूर्ण प्रशासन को एक सूत्र में बाँधने का प्रयास किया गया। अभी तक प्रान्तों के गवर्नर पृथक्-पृथक् थे, परन्तु गवर्नर जनरल के नियन्त्रण में ये अब एक केन्द्रीय सत्ता के अधीन हो गए।

(3) कलकत्ता का उच्चतम न्यायालय, न्याय क्षेत्र में, एक महान् उपलब्धि थी।

(4) इस एक्ट द्वारा कम्पनी के शासन पर ब्रिटिश सरकार का नियन्त्रण स्थापित किया गया।

(5) इसी अधिनियम के आधार पर भारत में वैधानिक विकास सम्बन्धी प्रयास प्रारम्भ हुए।

(6) संचालकों की चार वर्ष की निश्चित अवधि से एक बहुत ही सुदृढ़ व्यवस्था लागू हुई।

रेग्यूलेटिंग एक्ट के दोष

इंग्लैण्ड की सरकार ने रेग्यूलेटिंग एक्ट द्वारा भारत में वैधानिक विकास का सूत्रपात किया, किन्तु यह अपने कुछ दोषों के कारण, एक अधूरा कानून था। इसके मुख्य दोष इस प्रकार थे—

(1) यद्यपि कम्पनी पर इंग्लैण्ड की सरकार ने अपना अधिकार स्थापित कर लिया, तथापि व्यावहारिक रूप से उससे कोई विशेष लाभ नहीं हुआ। इसका कारण यह था कि ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल को अपने ही कार्यों के कारण, समय नहीं मिलता था।

(2) इस कानून के अनुसार, गवर्नर जनरल कार्यकारिणी के नियमों को मानने के लिए बाध्य था। उसको यह अधिकार नहीं दिया गया था कि वह अपनी कार्यकारिणी (काउंसिल) के बहुमत को अस्वीकृत कर सके। ऐसी स्थिति में वह अनेक बार उपयुक्त कार्यों को करना चाहकर भी नहीं कर पाता था। चार सदस्यों में से तीन सदस्य समकालीन गवर्नर वारेन हेस्टिंग्स के प्रत्येक कार्य में बाधा डालते थे। इन लोगों ने उस पर अनेक झूठे आरोप भी लगाए थे। अतः इस कानून की सबसे बड़ी कमी यही थी कि गवर्नर जनरल के अधिकार सीमित रखे गए थे, जबकि वह भारतीय शासन प्रबन्ध में सर्वोच्च अधिकारी था।

(3) मद्रास और बम्बई प्रान्तों के केवल विदेशी मामले ही गवर्नर जनरल और उसकी कार्यकारिणी के अधीन रखे गए थे। आन्तरिक मामलों में वहाँ की स्थानीय सरकारें अपनी इच्छानुसार कार्य करने के लिए स्वतन्त्र थीं। यह इस अधिनियम का एक व्यावहारिक दोष था।

(4) सर्वोच्च न्यायालय से सम्बन्धित अनेक धाराएँ अपूर्ण थीं। कानून में यह विस्तृत रूप से वर्णित नहीं किया गया था कि न्यायालय किस प्रकार के मुकदमों का निर्णय करेगा। न्याय करने में यह न्यायालय ब्रिटिश कानूनों का पालन करेगा या भारतीय कानूनों का, यह भी स्पष्ट नहीं किया गया था। इसके अतिरिक्त, न्यायालय और गवर्नर जनरल तथा कार्यकारिणी में सामंजस्य स्थापित नहीं किया गया था। उच्च अधिकारों के मामले में इनमें प्रायः संघर्ष हो जाता था।

(5) रेग्यूलेटिंग एक्ट द्वारा कम्पनी के कर्मचारियों को व्यक्तिगत व्यापार करने तथा उपहार व भेंट लेने को मना कर दिया गया था, परन्तु उनकी आय में वृद्धि के लिए कोई व्यवस्था नहीं की गई थी। अतएव शासन में रिश्वत एवं भ्रष्टाचार पनपने लगा था।

उपर्युक्त वर्णन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि यह कानून अनेक दोषों से परिपूर्ण था। इसी कारण यह कहा जाता है कि, "रेग्यूलेटिंग एक्ट एक अधूरा कानून था।" इसीलिए इसमें सुधार करने के लिए इंग्लैण्ड की संसद ने 1781 ई० का एक्ट तथा 1784 ई० में पिट का इण्डिया बिल पारित किया। इन अधिनियमों के आधार पर रेग्यूलेटिंग एक्ट के अनेक दोष दूर हो गए। फिर 1786 ई० के सुधार एक्ट के द्वारा गवर्नर जनरल को यह अधिकार दिया गया कि वह अपने कार्यों का उत्तरदायित्व अपने ऊपर लेकर कार्यकारिणी के द्वारा लिए गए निर्णयों को रद्द कर सकता था।

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—रेग्यूलेटिंग एक्ट की चार प्रमुख धाराओं का वर्णन कीजिए। *(1994)*

उत्तर—(संकेत—इसी अध्याय का दीर्घ उत्तरीय प्रश्न 1 का उत्तर देखिए।)

प्रश्न 2—पिट्स इण्डिया एक्ट द्वारा कौन-कौन से प्रमुख सुधार किए गए?

अथवा **पिट के इण्डिया एक्ट (1784) की दो विशेषताओं का उल्लेख कीजिए।** *(1997)*

उत्तर—रेग्यूलेटिंग एक्ट के दोषों को दूर करने के लिए 1784 ई० में इंग्लैण्ड के प्रधानमन्त्री पिट ने पिट्स इण्डिया एक्ट पारित करवाया। इस एक्ट के आधार पर निम्नलिखित सुधार किए गए—

(1) कम्पनी के शासन पर नियन्त्रण रखने के लिए इंग्लैण्ड में 6 सदस्यों की एक समिति बनाई गई जिसका नाम बोर्ड ऑफ कन्ट्रोल रखा गया। बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स को इसकी आज्ञाओं का पालन करना पड़ता था।

(2) गवर्नर जनरल की काउंसिल के सदस्यों की संख्या चार से घटाकर तीन कर दी गई, जिसमें एक प्रधान सेनापति भी था।

(3) बम्बई तथा मद्रास की सरकारों को सन्धि, युद्ध तथा लगान के मामलों में गवर्नर जनरल तथा इसकी काउंसिल के अधीन कर दिया गया।

(4) बिना बोर्ड ऑफ डायरेक्टर्स की स्वीकृति के गवर्नर जनरल किसी के साथ सन्धि-विग्रह नहीं कर सकता था।

प्रश्न 3—रेग्यूलेटिंग एक्ट की चार विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। *(1992, 95)*

अथवा **रेग्यूलेटिंग एक्ट की कोई दो प्रमुख विशेषताएँ लिखिए।** *(1993)*

उत्तर—रेग्यूलेटिंग एक्ट की चार विशेषताएँ निम्नलिखित हैं—

(1) यह एक्ट कम्पनी के कर्मचारियों में व्याप्त भ्रष्टाचार को समाप्त करने का एक महत्त्वपूर्ण प्रयास था।

(2) इस एक्ट द्वारा कम्पनी के शासन पर ब्रिटिश सरकार का नियन्त्रण स्थापित हो गया।

(3) इसी के आधार पर भारत का वैधानिक विकास प्रारम्भ हुआ।

(4) इसके द्वारा सम्पूर्ण शासन को संगठित किया गया।

ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों एवं व्यक्तियों पर आधारित प्रश्न

प्रश्न 1—निम्नांकित तिथियों के ऐतिहासिक महत्त्व पर टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) 1773 ई० *(1997)*—इस तिथि को ब्रिटिश शासन ने भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन पर नियन्त्रण लगाने के उद्देश्य से रेग्यूलेटिंग एक्ट पारित किया था।

(2) 1784 ई० *(1994, 95, 97)*—इस तिथि को ब्रिटिश संसद ने रेग्यूलेटिंग एक्ट के दोषों का निराकरण करने के लिए पिट का इण्डिया एक्ट पारित किया था।

(3) 1785 ई० *(1993)*—इस वर्ष वारेन हेस्टिंग्स पुनः गवर्नर जनरल बनकर भारत आया था।

(4) 1813 ई०—इस तिथि को ब्रिटिश संसद ने एक चार्टर (घोषणा-पत्र) जारी करके ईस्ट इण्डिया कम्पनी को भारत में आगामी 20 वर्ष तक व्यापार करने का अधिकार प्रदान किया था।

(5) 1833 ई०—इस तिथि को ब्रिटिश संसद ने एक चार्टर पारित करके भारत में कम्पनी के व्यापारिक एकाधिकार को 1853 ई० तक के लिए बढ़ा दिया था।

(6) 1835 ई० *(1990)*—इस तिथि को मैकाले का घोषणा-पत्र प्रकाशित हुआ था। इसके अनुसार ब्रिटिश सरकार ने भारत में शिक्षा का माध्यम अँग्रेजी भाषा निश्चित किया था।

(7) 1853 ई०—इस तिथि को भारत में बम्बई से थाणे तक पहली रेलगाड़ी चलाई गई थी। परिवहन के इतिहास में यह एक महत्त्वपूर्ण घटना थी।

प्रश्न 2—निम्न ऐतिहासिक व्यक्ति पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर : छोटा पिट—छोटा पिट् ब्रिटिश संसद का एक विख्यात और अनुभवी नेता था। वह इंग्लैण्ड का प्रधानमन्त्री और अपने समय का सर्वाधिक दूरदर्शी राजनीतिज्ञ था। उसने 1784 ई० में भारतीय शासन के सम्बन्ध में ब्रिटिश संसद से एक अधिनियम पारित करवाया था, जो पिट का इण्डिया एक्ट के नाम से जाना जाता है।

9 1857 ई० का स्वाधीनता संग्राम : कारण, स्वरूप तथा परिणाम

"यह (1857 ई० का) मात्र एक सैनिक विद्रोह ही नहीं था। यह भारत में शीघ्र ही फैल गया तथा इसने जन-आन्दोलन और स्वाधीनता संग्राम का रूप धारण कर लिया।" —जवाहरलाल नेहरू

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—1857 ई० के स्वाधीनता संग्राम के स्वरूप के सम्बन्ध में विभिन्न इतिहासकारों के मतों की विवेचना कीजिए। *(V. Imp.)*

अथवा 1857 ई० के विप्लव के क्या कारण थे? क्या हम उसको भारत की स्वतन्त्रता का प्रथम संग्राम कह सकते हैं?

अथवा 1857 ई० की क्रान्ति को क्या प्रथम स्वतन्त्रता संघर्ष कहा जा सकता है?

अथवा 1857 ई० के महान विद्रोह के प्रमुख कारणों पर प्रकाश डालिए। *(1993)*

अथवा प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम (1857 ई०) के कारणों का वर्णन कीजिए। *(1997)*

अथवा "भारत में 1857 ई० की क्रान्ति से अधिक सौभाग्यशाली घटना अन्य कोई नहीं घटी। इसने भारतीय गगन मण्डल को अनेक मेघों से विमुक्त कर दिया।" इस कथन से आप कहाँ तक सहमत हैं?

अथवा 1857 ई० के स्वतन्त्रता संग्राम के कारणों एवं परिणामों का विश्लेषण कीजिए। *(1990)*

अथवा "1857 ई० ने भारत का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम देखा।" समीक्षा कीजिए। *(1991)*

अथवा "1857 ई० का विद्रोह भारत का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम था।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं? उत्तर के समर्थन में तर्क दीजिए। *(1995)*

अथवा "1857 ई० का विद्रोह भारत का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम था।" सतर्क विवेचना कीजिए। *(1995)*

अथवा भारतीय स्वतन्त्रता के प्रथम युद्ध (1857 ई०) के कारणों का संक्षिप्त परीक्षण कीजिए। *(1996)*

अथवा "1857 ई० की क्रान्ति भारत का प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम था।" इस क्रान्ति के कारणों एवं परिणामों की व्याख्या कीजिए। *(1997)*

अथवा सन् 1857 के विद्रोह के धार्मिक एवं राजनीतिक कारणों की विवेचना कीजिए। *(1997)*

अथवा 1857 में स्वतन्त्रता के लिए हुए संघर्ष के कारणों की व्याख्या कीजिए। *(1997)*

उत्तर—

1857 ई० के स्वाधीनता संग्राम का स्वरूप

ब्रिटिश शासन के विरुद्ध 1857 ई० की क्रान्ति भारतीय इतिहास की एक महत्त्वपूर्ण एवं युगान्तकारी घटना है। लेकिन इस क्रान्ति के स्वरूप के विषय में काफी मतभेद हैं। सर जॉन लारेन्स के अनुसार यह एक सैनिक क्रान्ति थी। सर जेम्स आउटरम के अनुसार यह एक मुस्लिम षड्यन्त्र था, क्योंकि भारतीय मुसलमानों ने दिल्ली के बादशाह बहादुरशाह के नेतृत्व में अँग्रेजों को भारत से निकालकर पुनः देश पर अपनी सत्ता स्थापित करने का सशस्त्र प्रयत्न किया था। दूसरी ओर भारतीय विद्वानों वीर सावरकर, अशोक मेहता, डॉ० सरकार व दत्ता आदि ने इसे भारत का प्रथम स्वाधीनता संग्राम और प्रथम राष्ट्रीय आन्दोलन बताया है; अतः स्वाधीनता संग्राम के स्वरूप के सम्बन्ध में कुछ प्रख्यात विद्वानों के विभिन्न मतों का अध्ययन करना आवश्यक है।

(1) यह 'सैनिक विद्रोह' था—जो विद्वान् इसे सैनिक विद्रोह स्वीकार करते हैं, उनके तर्क इस प्रकार हैं—

(i) इस क्रान्ति को राजाओं और आम जनता का सहयोग नहीं मिला था, क्योंकि यह केवल असन्तुष्ट सैनिकों का विद्रोह था।

(ii) यह क्रान्ति किसी संगठित योजना का परिणाम नहीं थी।

(iii) इस क्रान्ति को ब्रिटिश सरकार ने सफलतापूर्वक दबा दिया था। यदि यह राष्ट्रीय क्रान्ति होती तो इसे दबाना सरल कार्य न होता।

(iv) भारतीय सैनिक अँग्रेज अफसरों के व्यवहार से बहुत असन्तुष्ट थे, इसलिए उन्होंने सशस्त्र विद्रोह किया था।

पी० ई० रॉबर्ट्स ने कहा है, "यह केवल एक सैनिक विद्रोह था, जिसका तत्कालीन कारण कारतूस वाली घटना थी। इसका किसी पूर्वगामी षड्यन्त्र से कोई सम्बन्ध नहीं था।"

सर जॉन सीले के अनुसार, "यह पूर्णतया अन्तर्राष्ट्रीय विद्रोह था, इसका न कोई देशीय नेता था और न इसे सम्पूर्ण जनता का समर्थन प्राप्त था।"

विन्सेन्ट स्मिथ ने लिखा है, "यह विद्रोह मुख्य रूप से बंगाल की सेना का विद्रोह था, किन्तु यह सैनिकों तक ही सीमित न रहा और शीघ्र ही इसका प्रसार जनता तक हो गया। जनता में असन्तोष और बेचैनी फैली ही थी; अतः जनसाधारण ने विद्रोहियों का साथ दिया।"

इस प्रकार, इसे राष्ट्रीय क्रान्ति न मानकर कुछ वर्गों के असन्तोष का परिणाम ही मानना चाहिए।

(2) यह प्रथम राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम था—कुछ भारतीय विद्वानों का मत है कि इस क्रान्ति का श्रीगणेश तो सैनिकों ने किया, किन्तु शीघ्र ही इसने जन-क्रान्ति का रूप धारण कर लिया था। इस क्रान्ति में हिन्दू और मुसलमान दोनों ने ही समान रूप से भाग लिया था। वास्तव में, आम जनता में अँग्रेजों के

विरुद्ध व्यापक असन्तोष पहले से ही विद्यमान था, केवल किसी अनुकूल अवसर की आवश्यकता थी, जिसको 1857 ई० के सैनिक विद्रोह ने पूर्ण कर दिया था।

(i) डॉ० एस० एन० सेन का कहना है, "यद्यपि इसका प्रारम्भ धार्मिक मनोभावनाओं के संग्रह के रूप में हुआ था, तथापि इसमें जरा भी सन्देह नहीं है कि विद्रोही विदेशी सरकार से मुक्त होना चाहते थे और पुरानी व्यवस्था लाना चाहते थे जिसका अध्यक्ष दिल्ली का बादशाह था।"

(ii) जवाहरलाल नेहरू ने लिखा है, "यह केवल एक सैनिक विद्रोह ही नहीं था। यह भारत में शीघ्र ही फैल गया तथा इसने जन-जीवन और स्वाधीनता संग्राम का रूप धारण किया।"

(iii) अशोक मेहता एवं वृन्दावनलाल वर्मा आदि ने इसे मात्र सैनिक क्रान्ति ही नहीं माना है। उनके मतानुसार यह राष्ट्रीय क्रान्ति ही थी।

निष्कर्ष रूप में यह कहा जा सकता है कि अँग्रेजों के विरुद्ध 1857 ई० का विद्रोह भारतीयों का प्रथम राष्ट्रीय स्वतन्त्रता संग्राम ही था, जो सैनिक क्रान्ति के माध्यम से प्रारम्भ हुआ था। वस्तुतः ब्रिटिश गवर्नरों की मनचाही प्रशासनिक नीतियों के कारण निरन्तर जन-आक्रोश बढ़ता ही गया और अन्त में 1857 ई० में यह क्रान्ति, ज्वालामुखी के रूप में प्रस्फुटित हुई।

प्रथम स्वाधीनता संग्राम के कारण

सन् 1857 ई० के स्वाधीनता संग्राम के सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सैनिक कारणों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत है—

(I) राजनीतिक कारण

प्रथम स्वाधीनता संग्राम के कारण

(I) राजनीतिक कारण
(II) आर्थिक कारण
(III) धार्मिक कारण
(IV) सामाजिक कारण
(V) सैनिक कारण।

(1) लॉर्ड डलहौजी की साम्राज्यवादी नीति—सन् 1857 ई० की क्रान्ति का प्रमुख कारण डलहौजी की साम्राज्यवादी नीतियाँ थीं। उसने उचित-अनुचित का विचार छोड़कर साम्राज्य विस्तार की नीति को ही सर्वोपरि महत्त्व दिया था। उसने गोद-निषेध के सिद्धान्त एवं युद्ध द्वारा अनेक राज्यों को बड़े अन्यायपूर्ण ढंग से ब्रिटिश साम्राज्य में मिलाया था। इससे देशी राजाओं में अत्यधिक असन्तोष उत्पन्न हो गया था और वे अँग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए तत्पर हो गए थे।

(2) मुगल सम्राट के प्रति अँग्रेजों का दुर्व्यवहार—मुगल साम्राज्य की शक्ति बहुत क्षीण हो गई थी तब भी उसका स्वतन्त्र अस्तित्व शेष था। प्रजा मुगल सम्राट का सम्मान करती थी एवं सिक्कों पर मुगल शासकों का नाम मुद्रित किया जाता था। कम्पनी के उच्च पदाधिकारी तक उसको झुककर सलाम करते थे, किन्तु 1835 ई० से उसका नाम मुद्राओं पर अंकित होना बन्द हो गया और अँग्रेजों ने उसका सम्मान करना छोड़ दिया। इन सबका परिणाम यह हुआ कि यहाँ की जनता अँग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह करने के लिए उत्साहित हो उठी और उसी के नेतृत्व में भारतीयों ने 1857 ई० में अँग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह का झण्डा खड़ा कर दिया।

राजनीतिक कारण

(1) लॉर्ड डलहौजी की साम्राज्यवादी नीति
(2) मुगल सम्राट के प्रति अँग्रेजों का दुर्व्यवहार
(3) ईस्ट इण्डिया कम्पनी का कुशासन
(4) अँग्रेज अधिकारियों की तानाशाही
(5) सरकारी नौकरियों में भारतीयों की उपेक्षा।

(3) ईस्ट इण्डिया कम्पनी का कुशासन—ईस्ट इण्डिया कम्पनी के संचालक विदेशी अँग्रेज थे, इसीलिए वे भारतीयों का सम्मान नहीं करते थे। वे भारतीयों के साथ बड़ा अमानवीय व्यवहार करते थे और उन पर अनेक अत्याचार करते थे। लुडलो नामक अँग्रेज ने भी इस तथ्य को स्वीकार करते हुए लिखा है, "ईस्ट इण्डिया कम्पनी की सरकार फिजूलखर्ची, अकुशलता और बेईमानी से भरी हुई थी, इसीलिए वह भारतीय प्रजाजन का स्नेह और विश्वास प्राप्त न कर सकी।"

(4) अँग्रेज अधिकारियों की तानाशाही—सन् 1857 ई० की क्रान्ति का एक प्रमुख कारण यह भी था कि अँग्रेज अफसर भारतीय व्यापारियों एवं कृषकों के साथ बड़ा दुर्व्यवहार किया करते थे। वे व्यापारियों का माल कम दामों पर बलपूर्वक ले लेते थे और जुलाहों को कम मूल्य देकर कपड़ों के थान भी ले जाते थे।

इन अमानवीय अत्याचारों के विरुद्ध ऊपर से लेकर नीचे तक सभी वर्गों और क्षेत्रों में, अँग्रेजों के विरुद्ध आक्रोशपूर्ण विद्रोह की भावना पनप रही थी।

(5) सरकारी नौकरियों में भारतीयों की उपेक्षा—सन् 1857 ई० में थामस मुनरो ने गवर्नर जनरल से भारतीयों को सरकारी नौकरियों में अँग्रेजों के समान उच्च पदों पर नियुक्त करने की प्रार्थना की, किन्तु तत्कालीन गवर्नर जनरल ने इस पर कोई ध्यान नहीं दिया। फलतः उच्च पदों पर केवल अँग्रेजों की ही नियुक्तियाँ होती रहीं और बुद्धिजीवी भारतीय खून का घूँट पीकर चुपचाप देखते रहे। अन्ततः इस प्रकार के अन्यायपूर्ण कृत्यों के फलस्वरूप उनके हृदय में क्रान्ति की ज्वाली धधक उठी।

(II) आर्थिक कारण

अँग्रेजों के आगमन से पूर्व भारत आर्थिक रूप से काफी समृद्ध था, किन्तु अँग्रेजी शासन की स्थापना के पश्चात् से, समाज के प्रत्येक वर्ग की आर्थिक स्थिति बड़ी दयनीय हो गई थी। अतः समाज के आर्थिक असन्तोष के कारण क्रान्ति होनी निश्चित थी। संक्षेप में, क्रान्ति के आर्थिक कारण इस प्रकार थे—

(1) भारतीय उद्योग-धन्धों का विनाश—सन् 1857 ई० की क्रान्ति का एक कारण यह भी था कि अँग्रेजों की व्यापार नीति के कारण भारतीय उद्योग लगभग ठप्प हो गए थे। इंग्लैण्ड की मशीनों द्वारा बनी वस्तुएँ भारतीय उद्योगों द्वारा बनी वस्तुओं की तुलना में अधिक सस्ती और देखने में भी सुन्दर होती थीं। इससे विदेशी वस्तुओं की बिक्री में वृद्धि हो गई और भारतीय वस्तुओं की बिक्री अत्यधिक घट गई। परिणामस्वरूप व्यापारी वर्ग क्रोधित हो उठा। दूसरी ओर एक बड़ी संख्या में लोग बेरोजगार भी हो गए थे।

आर्थिक कारण

(1) भारतीय उद्योग-धन्धों का विनाश
(2) कृषकों का शोषण
(3) धन का विदेश जाना
(4) अनेक लोगों का बेरोजगार होना।

(2) कृषकों का शोषण—अँग्रेजों ने जमींदारों को भूमि का स्थायी स्वामी बना दिया था और वे किसानों से मनमाना लगान वसूल करने लगे, जिससे किसानों की स्थिति बड़ी शोचनीय हो गई थी। वे ऋण से लद गए और अपनी आजीविका कमाने में असमर्थ हो गए। कृषक कोई अन्य उद्योग-धन्धे या व्यापार भी नहीं कर सकते थे, क्योंकि उनके पास पर्याप्त धन का अभाव था।

(3) धन का विदेश जाना—अँग्रेज अधिकारी भारत में अल्प समय के लिए कार्यभार सम्भालने आते थे; अतः उन्हें भारतवासियों के हितों से कोई दिलचस्पी नहीं होती थी। वे तो भ्रष्टाचार और घूस आदि लेकर, अधिक-से-अधिक धन अर्जित कर अपने देश लौट जाते थे और वहाँ जाकर विलासितापूर्ण जीवन व्यतीत करते थे। इस प्रकार, भारत का असीमित धन (सोना, चाँदी के रूप में) विदेश जाता देखकर भी लोगों में विद्रोहपूर्ण असन्तोष उत्पन्न हो गया।

(4) अनेक लोगों का बेरोजगार होना—अँग्रेजों की लूट-खसोट, स्वार्थसिद्धि पर आधारित नीतियों और भेद-भाव की नीति के कारण अत्यधिक संख्या में लोग बेरोजगार हो गए थे और वे अँग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह की योजना बनाने लगे थे।

(III) धार्मिक कारण

सन् 1857 ई० की क्रान्ति के धार्मिक कारण इस प्रकार थे—

(1) हिन्दू और मुस्लिम धर्मों का निरादर—ईसाई धर्मोपदेशक खुलेआम हिन्दू और मुस्लिम धर्मों की निन्दा और अपने धर्म का जोर-शोर से प्रचार किया करते थे। इतना ही नहीं, दोनों धर्मों के लोगों को बलात् ईसाई भी बनाया जा रहा था। इससे दोनों धर्मों के लोग अँग्रेजों के विरुद्ध हो गए।

(2) ईसाई धर्मावलम्बियों को विशेष सुविधाएँ—ईसाई धर्म स्वीकार करने वालों को सुगमता से नौकरी मिल जाती थी। उन्हें आर्थिक सहायता भी दी जाती थी। इस प्रकार का भेदभाव करने का उद्देश्य, लोगों को अधिक-से-अधिक संख्या में ईसाई बनाना था, ताकि वे लोग अँग्रेजी सत्ता के समर्थक बन जाएँ।

उत्तराधिकार के नियम में भी यह परिवर्तन कर दिया गया था कि यदि कोई व्यक्ति ईसाई धर्म स्वीकार कर लेगा, तो वह परिवार की सम्पत्ति में उत्तराधिकार का अधिकारी बना रहेगा। इन सब कारणों से भारतीयों में अँग्रेजों के विरुद्ध उग्र विद्रोह की भावना भड़क उठी।

(3) गोद लेने की प्रथा का अन्त—लॉर्ड डलहौजी ने यह नियम बनाया था कि यदि कोई राजा सन्तानहीन स्थिति में ही मर जाता है, तो उसके राज्य पर उसके गोद लिए पुत्र (यदि उसने कोई पुत्र गोद ले लिया हो) का नहीं, वरन् कम्पनी का अधिकार होगा। इस नियम के आधार पर उसने राजाओं की मृत्यु के पश्चात् अनेक राज्य कम्पनी में मिला लिए। अँग्रेजों की इस अनुचित नीति के कारण भी भारतीय उनसे घृणा करने लगे थे।

> **धार्मिक कारण**
> (1) हिन्दू और मुस्लिम धर्मों का निरादर
> (2) ईसाई धर्मावलम्बियों को विशेष सुविधाएँ
> (3) गोद लेने की प्रथा का अन्त
> (4) ईसाई धर्म एवं संस्कृति का प्रसार।

(4) ईसाई धर्म एवं संस्कृति का प्रसार—भारत में ईसाइयों की अनेक शिक्षण संस्थाएँ खुल गई थीं, जहाँ ईसाई धर्म, ईसाई रीति-रिवाज आदि के विषय में अँग्रेजी माध्यम से शिक्षा दी जाती थी। वहाँ शिक्षा-शुल्क आदि भी नहीं लिया जाता था। इससे भारतवासियों में यह भावना प्रस्फुटित होने लगी थी कि भारत की संस्कृति और सभ्यता का एक दिन पूर्णतः विनाश ही हो जाएगा। इस प्रकार, ईसाई संस्कृति को भारतीयों पर थोपने के कारण भी भारतीय, अँग्रेजों के विरुद्ध हो गए थे।

(IV) सामाजिक कारण

प्रथम स्वाधीनता संग्राम के सामाजिक कारण निम्नवत् थे—

(1) भारत के सामाजिक रीति-रिवाजों में हस्तक्षेप— अँग्रेजों ने भारतीयों के विभिन्न रीति-रिवाजों की अवहेलना करके अनेक सुधार किए थे। यद्यपि वे सुधार ठीक थे, किन्तु ये सुधार परम्परागत रीति-रिवाजों के विरुद्ध थे, इसलिए भी भारतीय अँग्रेजों से क्रुद्ध हो गए। वे सती-प्रथा को वहुत पवित्र समझते थे, लेकिन अँग्रेजों ने इसे कानून द्वारा निषिद्ध घोषित कर दिया था जिससे उनका मस्तिष्क विद्रोह की भावना से भर उठा था।

> **सामाजिक कारण**
> (1) भारत के सामाजिक रीति-रिवाजों में हस्तक्षेप
> (2) ब्रिटिश अधिकारियों का दुर्व्यवहार
> (3) सामाजिक दुर्दशा।

(2) ब्रिटिश अधिकारियों का दुर्व्यवहार—ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार हो जाने से अधिकतर अँग्रेज ही, भारत के उच्च पदों पर आसीन हो गए थे और उनके अधीन उच्च शिक्षित भारतीय कार्य करने लगे थे। ये अँग्रेज अधिकारी हिन्दुओं को निम्न श्रेणी का समझते थे और प्रायः उन्हें अपमानित करते रहते थे। इसके साथ ही जो भारतीय अँग्रेजी शिक्षा प्राप्त कर उच्च पदों पर आसीन हो गए थे, वे ब्रिटिश अधिकारियों का पक्ष लेते हुए भारतीय बन्धुओं को हेय दृष्टि से देखते थे। अतः लोगों में अँग्रेज अधिकारियों के दुर्व्यवहार के प्रति तीव्र रोष उत्पन्न होने लगा था।

(3) सामाजिक दुर्दशा—इस विद्रोह का प्रमुख कारण सामाजिक दुर्व्यवस्था भी थी। अँग्रेजों ने अपने स्वार्थवश ऐसी सामाजिक व्यवस्था बनाई कि विद्रोह होना निश्चित हो गया था। इसके साथ ही उन्होंने जो सामाजिक सुधार किए, वे भारतीय समाज का ज्ञान अर्जित किए बिना ही किए थे। इसीलिए वे सुधार ब्रिटिश साम्राज्य के लिए घातक सिद्ध हुए थे।

(V) सैनिक कारण

सन् 1857 ई० के विप्लव के सैनिक कारणों को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है—

(1) कम्पनी की भेद-भावपूर्ण नीति—समान पदों पर कार्य करते हुए भी भारतीय सैनिकों को वे सुविधाएँ, वेतन, भत्ते आदि नहीं मिलते थे, जो अँग्रेज सैनिकों को प्रदान किए जाते थे। इसके साथ ही

उच्च सैनिक पदों पर बहुत कम भारतीयों को नियुक्त किया जाता था। इस भेद-भाव की नीति से सैनिकों में विद्रोह की भावना प्रज्ज्वलित हो उठी थी।

सैनिक कारण
(1) कम्पनी की भेद-भावपूर्ण नीति
(2) अफगान और क्रीमिया युद्धों का प्रभाव
(3) नए चर्बी लगे कारतूसों का प्रयोग।

(2) अफगान और क्रीमिया युद्धों का प्रभाव—अँग्रेज अफगानों से प्रथम युद्ध (1838-1842) में पराजित हो गए। इससे भारतीयों को यह विश्वास हो गया था कि यदि अफगानिस्तानी अँग्रेजों को हरा सकते हैं, तो वे भी अँग्रेजों को अपने देश से भगा सकते हैं। इसके साथ ही यूरोप के क्रीमिया के युद्ध (1854-1856) में अँग्रेजी सेना पर्याप्त संख्या में समाप्त हो गई थी। अतः भारतीयों ने उचित अवसर पाकर, विद्रोह करने का निश्चय कर लिया।

(3) नए चर्बी लगे कारतूसों का प्रयोग—अनेक कारणों और परिस्थितियों से क्रान्ति का वातावरण चारों ओर तैयार हो चुका था, बस एक चिंगारी की आवश्यकता थी। चर्बी लगे नवीन कारतूसों ने इस चिंगारी का कार्य करके विद्रोह का सूत्रपात कर दिया।

बंगाल में सैनिकों को ऐसे कारतूस प्रयुक्त करने के लिए दिए गए थे जिनमें गाय और सूअर की चर्बी लगी होती थी और उसे दाँत से काटकर अलग करना पड़ता था। इससे हिन्दू-मुसलमान दोनों ही भड़क उठे। उन्होंने सोचा कि इन कारतूसों का प्रयोग हिन्दुओं और मुसलमानों का धर्म भ्रष्ट करने के लिए किया गया है।

अतः सर्वप्रथम क्रान्ति का विस्फोट बैरकपुर छावनी में हुआ। वहाँ सैनिकों ने ऐसे कारतूसों का प्रयोग करने से मना कर दिया और क्रोधित होकर मंगल पाण्डे नामक वीर सैनिक ने दो अँग्रेज अधिकारियों की हत्या कर दी, परिणामस्वरूप उसे फाँसी पर चढ़ा दिया गया।

इसके पश्चात् 10 मई, 1857 ई० को मेरठ छावनी के सैनिकों ने भी ऐसे कारतूसों का प्रयोग करने से मना कर दिया। इस पर उन्हें जेल भेज दिया गया। लेकिन तब तक क्रान्ति का वातावरण तैयार हो चुका था। मेरठ के सैनिकों ने सर्वप्रथम विद्रोह का झण्डा लेकर कारागार से बंदी सैनिकों को मुक्त करा लिया और चारों ओर अँग्रेजों की हत्याएँ होनी प्रारम्भ हो गईं। मेरठ से चलकर क्रान्तिकारियों ने लाल किले पर अधिकार कर, मुगल सम्राट बहादुरशाह को क्रान्ति का नेतृत्व सौंप दिया। शीघ्र ही दिल्ली भी अँग्रेजों से स्वतन्त्र हो गई। नानासाहब, झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई और तात्या टोपे ने भी कानपुर, झाँसी आदि में क्रान्ति की आग प्रज्ज्वलित कर दी, किन्तु दुर्भाग्यवश अन्त में अँग्रेज विजयी हुए और भारतीयों को अपने स्वाधीनता संग्राम में असफल होना पड़ा।

क्रान्ति का परिणाम

इस क्रान्ति में भारतीयों को सफलता तो नहीं मिली, लेकिन भारत से कम्पनी का शासन समाप्त हो गया और ब्रिटिश सरकार का भारत पर प्रत्यक्ष शासन स्थापित हो गया। इससे अँग्रेजों के अत्याचारों में कमी हो गई तथा भारतीयों को और भी अनेक लाभ हुए। सबसे प्रमुख लाभ यह हुआ कि इस क्रान्ति से भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना जाग्रत हो गई, जिसके कारण अन्ततः भारतीय नेता अपने देश को आजाद कराकर ही चैन से बैठे। वास्तव में, यह एक महान् सौभाग्यशाली घटना थी जिससे भारतीय गगन-मण्डल मेघों से विमुक्त हो गया था।

प्रश्न 2—1857 ई० के प्रथम स्वतन्त्रता आन्दोलन की असफलता के कारणों की समीक्षा कीजिए। *(1990)*

अथवा **भारत की स्वतन्त्रता के प्रथम संग्राम में भारतीयों की असफलता के कारणों का परीक्षण कीजिए।** *(1992)*

अथवा **1857 ई० के विद्रोह के असफल होने के कारणों की समीक्षा कीजिए।** *(1994)*

अथवा **1857 ई० के प्रथम भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम की असफलता के क्या कारण थे?** *(1999)*

उत्तर— प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की असफलता के कारण

यद्यपि स्वाधीनता प्राप्ति की दिशा में भारतीय स्वाधीनता संग्राम एक महान् प्रयास था, तथापि यह सफल न हो सका। दिल्ली के पतन तथा सम्राट बहादुरशाह के पकड़े जाने के साथ ही विद्रोह का दमन आरम्भ हो गया था। इस विद्रोह की असफलता अकस्मात् ही नहीं हुई थी, अपितु कुछ विशेष कारण इसके लिए उत्तरदायी थे। विद्रोह की असफलता के कारणों का विवेचन हम इस प्रकार कर सकते हैं—

(1) समय से पूर्व विद्रोह का प्रारम्भ—विद्रोह अपनी निश्चित तिथि 31 मई, 1857 ई० से पूर्व ही प्रस्फुटित हो गया। यह बात विद्रोह की असफलता का एक प्रमुख कारण बनी। यदि यह विद्रोह समस्त देश में एक ही बार होता, तो अँग्रेजों के लिए इसका दमन करना असम्भव हो जाता। परन्तु चर्बीयुक्त कारतूसों की घटना ने इसे निश्चित तिथि से पूर्व ही आरम्भ कर दिया तथा इसकी योजना और व्यवस्था में कई दोष रह गए। वास्तव में, चर्बीयुक्त कारतूसों की इस घटना से इस क्रान्ति को गहरा आघात पहुँचा। विद्रोह के नेताओं के द्वारा विद्रोहियों की गतिविधियों को निश्चित तिथि तक रोकने के प्रयास असफल रहे तथा उन्हें इस विद्रोह को बिना उचित तैयारी तथा पर्याप्त व्यवस्था के ही हाथ में लेना पड़ा। इसके अतिरिक्त, अपरिपक्वावस्था में फूट पड़ने के कारण यह विद्रोह व्यापक रूप भी धारण न कर सका। यह मुख्य नगरों तक ही सीमित रहा तथा गाँवों ने इसमें भाग नहीं लिया। अतः यह एक व्यापक जन-आन्दोलन का रूप धारण न कर सका।

प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की असफलता के कारण

(1) समय से पूर्व विद्रोह का प्रारम्भ
(2) सैनिक सामग्री का अभाव
(3) कुशल नेतृत्व का अभाव
(4) अँग्रेजों की विकसित संचार व्यवस्था
(5) सामान्य आदर्श का अभाव
(6) पारस्परिक मतभेद
(7) अँग्रेजों को भारतीयों का सहयोग
(8) साधनों का अभाव
(9) सामुद्रिक शक्ति का अभाव।

(2) सैनिक सामग्री का अभाव—विद्रोहियों के पास सैनिक सामग्री का अभाव था, जबकि अँग्रेजों के पास पर्याप्त युद्ध-सामग्री थी। उनके लिए अनेक आर्डिनेंस फैक्ट्रियाँ चल रही थीं। वे इंग्लैण्ड से भी शस्त्र तथा अन्य युद्ध-सामग्री प्राप्त कर सकते थे। इसके अतिरिक्त विद्रोहियों में अनुशासन का अभाव था तथा वे एक अनुशासनहीन अनियन्त्रित विद्रोहियों की भीड़ के समान थे जबकि अँग्रेज सैनिक पूर्णतः अनुशासित थे। अनुशासन तथा सामग्री का यह अभाव, विद्रोह की असफलता का एक मुख्य कारण बना।

(3) कुशल नेतृत्व का अभाव—यद्यपि विद्रोही अँग्रेजों के विरुद्ध विद्रोह के लिए अधीर हो रहे थे तथापि उनका नेतृत्व करने के लिए अच्छे सेनापतियों का अभाव था। विद्रोही सामान्यतः सिपाही थे। रानी लक्ष्मीबाई और नानासाहब सरीखे विद्रोह के नेता निःसन्देह वीर थे, परन्तु उनमें उस सैनिक प्रतिभा तथा दक्षता का अभाव था जिसको पाकर व्यक्ति योग्य सेनापति बन जाते हैं। इसके विपरीत, अँग्रेजों के पास कैम्बल, निकल्सन तथा आऊटरम जैसे योग्य सेनापति थे। विद्रोहियों को उस समय बाबर तथा शिवाजी जैसे सेनापतियों की कमान की आवश्यकता थी, परन्तु दुर्भाग्यवश उनके पास वे नहीं थे। सम्राट बहादुरशाह युद्ध के नेतृत्व के लिए अत्यधिक वृद्ध हो चुका था। यद्यपि बख्त खाँ तथा तात्या टोपे दो योग्य सेनापति विद्रोहियों के पास थे, तथापि सामान्य व्यक्ति होने के कारण शासक तथा उच्चवर्गीय लोग उनकी आज्ञा मानने को तैयार नहीं थे।

(4) अँग्रेजों की विकसित संचार व्यवस्था—अँग्रेजों के नियन्त्रण में एक सफल डाक तथा तार द्वारा होने वाले संचार की प्रणाली थी। विद्रोहियों को चाहिए था कि वे इन प्रणालियों को हानि पहुँचाकर अँग्रेजों की संचार व्यवस्था को भंग कर देते, परन्तु ये प्रणालियाँ उसी प्रकार बनी रहीं तथा अँग्रेज एक स्थान से दूसरे स्थान पर सूचना तथा आदेश भेजने में समर्थ रहे। भारतीय विद्रोहियों को अभी इन वैज्ञानिक आविष्कारों के भेदों का ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ था। इसी कारण उन्होंने इन पर नियन्त्रण करने का प्रयत्न नहीं किया। यदि वे अँग्रेजों की संचार व्यवस्था भंग कर देते, तो वे अवश्य ही उन्हें पराजित कर लेते।

(5) सामान्य आदर्श का अभाव—पहले विद्रोहियों के सामने एक सामान्य आदर्श था कि बहादुरशाह को उसके पूर्वजों का सिंहासन दिलाया जाए, परन्तु दिल्ली के पतन तथा सम्राट के पकड़े जाने

के पश्चात् यह आदर्श विलुप्त हो गया। सामान्य आदर्श की इस अनुपस्थिति ने विद्रोह पर घातक प्रहार किया। अब विद्रोहियों का एकमात्र उद्देश्य ईस्ट इण्डिया कम्पनी का विनाश करना हो गया। यह आदर्श निषेधात्मक प्रकृति का आदर्श था। इस आदर्श के कारण विद्रोहियों में वह एकता उत्पन्न न हो सकी जो कि सम्राट की उपस्थिति के फलस्वरूप विद्यमान थी। अतः अँग्रेज विद्रोहियों में फूट का बीज बोने में सफल हो गए। उन्होंने हिन्दुओं तथा मुसलमानों को एक-दूसरे के विरुद्ध भड़काया। अतः अब विद्रोह व्यक्तिगत प्रयासों तथा कारनामों का रूप धारण करके ही रह गया। फलतः यह असफल हो गया।

(6) पारस्परिक मतभेद—यद्यपि समस्त विद्रोही शक्तियाँ एक ही नीति का अनुसरण कर रही थीं, तथापि उनमें पारस्परिक ईर्ष्या विद्यमान थी जिसके कारण वे मिलकर कार्य न कर सकीं। विद्रोहियों की अनेक इकाइयाँ अलग-अलग ही रहीं तथा एकबद्ध होकर युद्ध न कर सकीं। अँग्रेजों का इतने दीर्घ समय तक दिल्ली के चारों ओर घेरा डाले रहना इस बात का प्रमाण है। यदि विद्रोही अपने भेद-भाव मिटा देते तथा मिलकर कार्य करते, तो इतिहास इससे भिन्न होता। इस प्रकार, निजी ईर्ष्या तथा व्यक्तिगत नेतृत्व; विद्रोहियों की एकता के मार्ग में दो बाधाएँ थीं, जिनके कारण विद्रोह का दमन हो गया।

(7) अँग्रेजों को भारतीयों का सहयोग—देश का दक्षिणी भाग, पंजाब, सतलज के इस पार के सिक्ख राज्य, राजपूताना तथा अनेक जमींदारों व सामन्तों ने विद्रोहियों का साथ नहीं दिया। उनमें से कुछ तो शांतिपूर्वक तमाशा ही देखते रहे। यह शोक का विषय है कि यद्यपि भारतीय अपनी देशद्रोहिता का क्रीमिनियन अनेक बार भारी मूल्य अदा कर चुके थे, तथापि उन्होंने इस बात से कोई भी शिक्षा प्राप्त नं की। देशद्रोहियों ने अपने ही देश को हानि पहुँचाने में लेशमात्र भी संकोच नहीं किया। यदि भारतीय शासक अँग्रेजों की सहायता न करते तथा उनके विरुद्ध संघर्ष में सम्मिलित हो जाते तो भारतीय नेताओं को अवश्य सफलता मिलती।

(8) साधनों का अभाव—विद्रोहियों के साधन, कम्पनी की तुलना में बहुत कम थे। दक्षिणी भारत, नेपाल, पंजाब आदि के राजकोष तथा सैनिकों के साधन कम्पनी के हाथ में थे, जबकि विद्रोहियों के पास अपने साधन जुटाने के लिए कोई समृद्ध प्रदेश नहीं था। अँग्रेज अब तक क्राइमियन युद्ध से मुक्ति पा चुके थे तथा अब वे अपने साधनों को भारत में केन्द्रित कर रहे थे। सतलज के इस पार के सिक्ख राज्यों ने अँग्रेजों की सेनाओं को विद्रोहियों के विरुद्ध प्रोत्साहित किया तथा उन्हें अन्य सामग्री भी प्रदान की। अतः साधनों का अभाव विद्रोहियों की असफलता का एक मुख्य कारण सिद्ध हुआ।

(9) सामुद्रिक शक्ति का अभाव—विद्रोहियों के पास कोई नौ-शक्ति नहीं थी। अतः वे इंगलैण्ड से आ रही सामग्री तथा कुमुक को न काट सके। वस्तुतः यह विद्रोहियों की बड़ी भारी दुर्बलता थी। इस विद्रोह को दबाने के लिए ब्रिटिश साम्राज्य के भिन्न-भिन्न भागों से एक लाख से भी अधिक सैनिक भेजे गए। विद्रोहियों के पास कोई नौ-शक्ति नहीं थी, जिससे वे इस सामग्री तथा अँग्रेज सैनिकों का आना रोक सकते।

अतः हम देखते हैं कि भारतीय स्वाधीनता संग्राम अपने असामयिक आरम्भ, साधनों की कमी, एकता के अभाव तथा सामान्य आदर्श की अनुपस्थिति के कारण असफल हो गया।

प्रश्न 3—"1858 के भारतीय शासन अधिनियम ने भारतीय इतिहास में एक युग को समाप्त कर दिया और भारत में एक नए युग का आरम्भ हुआ।" इस कथन के सन्दर्भ में भारतीय शासन अधिनियम के द्वारा हुए परिवर्तनों का उल्लेख कीजिए। *(1991)*

उत्तर—सन् 1857 ई० की क्रान्ति ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी और द्वैध शासन-प्रणाली के अन्त को सुनिश्चित कर दिया था। ब्रिटिश सरकार पहले से ही एक व्यापारी कम्पनी के हाथों में इतने बड़े देश के साम्राज्य को अधिक अवधि तक छोड़े रहने के लिए तैयार नहीं थी। 1857 ई० की क्रान्ति ने कम्पनी का शासन समाप्त करने के लिए एक बहाना प्रस्तुत कर दिया। फलस्वरूप ब्रिटिश संसद ने 1858 ई० का भारतीय शासन अधिनियम (Government of India Act, 1858) पारित करके कम्पनी के शासन की अन्त्येष्टि कर दी तथा भारत का शासन प्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश सरकार के हाथों में सौंप दिया। कम्पनी समाप्त हो गई और देश का राज-काज सम्राट के नाम से होने लगा। किन्तु इस अधिनियम से जो परिवर्तन हुए,

उनसे भारत में अँग्रेजी राज्य की व्यवस्था में कोई विशेष सुधार न हो सका। लगभग सब कुछ ज्यों-का-त्यों चलता रहा, तथापि इसमें सन्देह नहीं कि यह अधिनियम भारतीय इतिहास के एक युग की समाप्ति और दूसरे युग के प्रारम्भ का द्योतक था।

अधिनियम की मुख्य व्यवस्थाएँ

सन् 1858 ई० के अधिनियम की मुख्य व्यवस्थाएँ निम्नलिखित थीं—

(1) भारत का शासन ईस्ट इण्डिया कम्पनी के हाथों से लेकर, प्रत्यक्ष रूप से ब्रिटिश सरकार के हाथों में सौंप दिया गया और निश्चित किया गया कि भविष्य में भारत का शासन **'हर मैजेस्टी'** (Her Majesty) के नाम से चलेगा। कम्पनी की जल और थल सेनाएँ, 'क्राउन' के नियन्त्रण में ले ली गईं।

(2) नियन्त्रण-मण्डल और संचालक-सभा को समाप्त करके उनके कार्य व अधिकार भारत-सचिव को सौंप दिए गए। भारत-सचिव; ब्रिटिश सरकार के पाँच प्रमुख 'सैक्रेटरीज ऑफ स्टेट' में से एक था, जो ब्रिटिश संसद का सदस्य होता था और मन्त्रिमण्डल के अन्य सदस्यों की भाँति संसद के प्रति उत्तरदायी था। भारतीय शासन के निरीक्षण, निर्देशन तथा नियन्त्रण का दायित्व भारत-सचिव पर था और उसका वेतन भारतीय राजस्व से दिया जाना था।

(3) भारत-सचिव की सहायता के लिए एक 15 सदस्यीय परिषद् (Council for India) की व्यवस्था की गई। परिषद् में कम-से-कम ऐसे 9 सदस्यों का होना आवश्यक था, जो भारत में कम-से-कम 10 वर्ष तक कम्पनी के किसी पद पर रह चुके हों। परिषद् के सदस्यों का वेतन भी भारतीय राजस्व से दिया जाना निश्चित किया गया।

(4) परिषद् में निर्णय बहुमत के आधार पर होता था, किन्तु दोनों ओर बराबर मतदान की स्थिति में भारत-सचिव को निर्णायक निर्णय देने का अधिकार था। कुछ विशेष अवस्थाओं में वह परिषद् के बहुमत की अवहेलना भी कर सकता था। वास्तव में, यह अधिकार भी स्वयं भारत-सचिव का ही था कि वह परिषद् के सम्मुख किसी विषय को लाए अथवा न लाए।

(5) देशी राज्यों के सम्बन्धों के विषय में गवर्नर जनरल को अब 'वायसराय' कहा जाने लगा। सम्राट के प्रतिनिधि के रूप में वह अब देशी नरेशों से सम्बन्ध रख सकता था।

(6) कम्पनी द्वारा की गई सभी सन्धियों को पूरा करने और कम्पनी के ऋणों को उतारने का उत्तरदायित्व भी ब्रिटिश सरकार ने ले लिया।

(7) अधिनियम द्वारा यह व्यवस्था की गई कि सरकार में परिवर्तन के सम्बन्ध में महारानी शीघ्र ही एक घोषणा करेंगी।

अधिनियम का मूल्यांकन

भारत के श्रेष्ठतर शासन के लिए बनाए गए इस अधिनियम को 2 अगस्त, 1858 ई० को राजकीय स्वीकृति प्राप्त हुई। 1 सितम्बर को संचालक-सभा की अन्तिम बैठक हुई और कम्पनी ने "पूर्व में अपने सेवकों के नाम अन्तिम आदेश दिए।" संचालकों की सभा में, भारत स्थित कम्पनी के अधिकारियों की प्रशंसा की गई और भारत का अपना साम्राज्य ब्रिटिश राजसत्ता को इन हृदयस्पर्शी शब्दों में सौंप दिया गया,

"हर मैजेस्टी, इस मूल्यवान उपहार को इस विस्तृत भारत देश और वहाँ के परिपूर्ण करोड़ों निवासियों को स्वयं अपने नियन्त्रण में लें, किन्तु वे उन बड़ी कम्पनियों को जिनसे उन्हें यह उपहार प्राप्त हुआ है, विस्मृत न करें और उस (कम्पनी) की सफलता से सीखे जाने वाले पाठों को भुला न दें।"

संवैधानिक इतिहास की दृष्टि से, 1858 ई० का अधिनियम विशेष महत्त्व का था क्योंकि इसके द्वारा न केवल ईस्ट इण्डिया कम्पनी का, वरन् द्वैध शासन का भी अन्त हो गया। 1858 ई० से पूर्व शासन, शक्ति और उत्तरदायित्व के तीन भिन्न केन्द्र थे—संचालक-मण्डल, नियन्त्रण-मण्डल और गवर्नर जनरल। अब समस्त शक्ति (परिषद्-सहित); भारत-सचिव में ही केन्द्रित कर दी गई, जो संसद के प्रति उत्तरदायी था और गवर्नर जनरल तथा अन्य पदाधिकारियों के द्वारा भारत का प्रशासन संचालित कर सकता था। अधिनियम ने 'काउंसिल फॉर इण्डिया' की व्यवस्था करके भी एक अच्छा कदम उठाया, क्योंकि इस काउंसिल के

अधिकांश सदस्य वे ही होते थे जो अपने जीवन का पर्याप्त समय भारत में व्यतीत कर चुके होते थे। अतः भारतीय विषयों का उन्हें पर्याप्त ज्ञान होता था और वे इस देश की विभिन्न समस्याओं को समुचित रूप से समझते थे।

किन्तु यह अधिनियम अनेक दृष्टियों से त्रुटिपूर्ण था। ये त्रुटियाँ इस प्रकार थीं—(1) अधिनियम द्वारा लाए गए परिवर्तनों से भारत में अँग्रेजी राज्य की व्यवस्था में कोई विशेष अन्तर नहीं पड़ा। अतः भारतीयों को कोई सन्तोष न हो सका, (2) भारत-सचिव तथा उसकी परिषद् के सदस्यों का वेतन, भारतीय राजस्व से दिए जाने की व्यवस्था से भी भारतीयों में असन्तोष उत्पन्न होना स्वाभाविक था, (3) जब कम्पनी का शासन था तो ब्रिटिश संसद भारतीय शासन के प्रति बड़ी सक्रिय रहती थी, किन्तु जब ब्रिटिश सरकार ने भारतीय शासन सम्भाल लिया, तो इस ओर ब्रिटिश संसद की रुचि कुछ कम हो गई और प्रायः सब कुछ भारत-सचिव पर छोड़ देने की प्रवृत्ति पनपने लगी। मॉंटेग्यू चेम्सफोर्ड रिपोर्ट में भी इस तथ्य को इस प्रकार स्वीकार किया गया, **"1858 ई० में जिस क्षण संसद ने भारत के शासन का नियन्त्रण ग्रहण किया ठीक उसी क्षण नियन्त्रण त्याग दिया।"**

वस्तुतः भारत में कम्पनी के शासन का अन्त एक शुभ घटना थी। सन् 1858 ई० के अधिनियम के फलस्वरूप भारत के देशी राजाओं के भी ब्रिटिश ताज से प्रत्यक्ष सम्बन्ध स्थापित हुए। पहले जो साम्राज्य-विस्तार की नीति लॉर्ड डलहौजी नें अपनाई थी उसका अन्त हुआ और भारतीय राजाओं तथा नवाबों को यह विश्वास दिलाया गया कि ब्रिटिश सरकार उनके प्रदेशों को अपने साम्राज्य में विलीन नहीं करेगी। इससे देशी राजाओं और नवाबों तथा ब्रिटिश सरकार के सम्बन्धों में सुधार हुआ। उनके हृदय में ब्रिटिश सरकार के प्रति घृणा के स्थान पर सद्भावना उत्पन्न हुई। दूसरी ओर, ब्रिटिश सरकार के प्रति नरेशों की यह निष्ठा ब्रिटिश साम्राज्यवाद को विकसित करने में सहायक सिद्ध हुई और भारत के स्वाधीनता आन्दोलन में उनके इस दृष्टिकोण के फलस्वरूप कई बाधाएँ उत्पन्न हुईं।

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—1857 ई० की क्रान्ति की असफलता के क्या कारण थे?

उत्तर—

1857 ई० की क्रान्ति की असफलता के कारण

सन् 1857 ई० की क्रान्ति द्वारा भारतीयों ने अँग्रेजों को भारत से निष्कासित करने का प्रथम सशस्त्र प्रयास किया था, किन्तु इस प्रयास में भारतीयों को सफलता न मिल सकी।

इस क्रान्ति में भारतीयों की असफलता के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

(1) योग्य नेताओं का अभाव ।

(2) क्रान्ति का देशव्यापी न होना।

(3) क्रान्तिकारियों के विभिन्न उद्देश्य होना।

(4) समय से पूर्व अनियोजित क्रान्ति का प्रारम्भ हो जाना।

(5) अँग्रेजों की सैनिक शक्ति का प्रबल होना।

(6) स्थानीय राजाओं का सहयोग न मिलना।

प्रश्न 2—1857 ई० के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के दो प्रमुख सेनानियों का उल्लेख कीजिए। *(1997)*

उत्तर—1857 ई० के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के दो प्रमुख सेनानियों का संक्षिप्त परिचय निम्नलिखित है—

(1) रानी लक्ष्मीबाई—लक्ष्मीबाई झाँसी के राजा गंगाधर राव की पत्नी थी। लॉर्ड डलहौजी द्वारा निर्धारित गोद-निषेध सिद्धान्त के आधार पर झाँसी के राज्य को कम्पनी के राज्य में विलय कर लिया गया था। इससे रानी लक्ष्मीबाई अँग्रेजों से बहुत असन्तुष्ट हो गई। 1857 ई० की क्रान्ति के समय रानी लक्ष्मीबाई ने बड़ी वीरता के साथ अँग्रेजों से लोहा लिया और अन्त में उन्होंने लड़ते-लड़ते वीरगति प्राप्त की। उनकी गणना भारत के इतिहास में एक वीर व साहसी महिला के रूप में की जाती है।

(2) नानासाहब—नानासाहब का वास्तविक नाम धुंधूपन्त था। वे पेशवा बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र थे। अँग्रेजों ने पेशवा बाजीराव द्वितीय की मृत्यु के पश्चात् उन्हें उत्तराधिकारी न स्वीकार करते हुए उनकी आठ लाख की वार्षिक पेन्शन बन्द कर दी थी। इसके विरुद्ध इंग्लैण्ड की प्रिवी काउंसिल में भी उन्हें न्याय न मिल सका; अतः नानासाहब को अँग्रेजों के विरोध में क्रान्तिकारियों का नेतृत्व करने के लिए बाध्य होना पड़ा।

नानासाहब और उनके मन्त्री अजीमउल्ला खाँ ने देश के राजाओं और नवाबों को अँग्रेजों के विरुद्ध कर दिया था। 20 दिन के संघर्ष के पश्चात् कानपुर नानासाहब के अधिकार में आ गया और वहाँ के अनेक अँग्रेज मार दिए गए थे। परन्तु कालान्तर में अँग्रेजी सेना ने कर्नल नील और हैवलाक के नेतृत्व में कानपुर पर अधिकार कर लिया। एक महान् क्रान्तिकारी के रूप में नानासाहब का नाम भारतीय इतिहास में अमर है।

प्रश्न 3—भारत में 1857 ई० के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के परिणामों पर प्रकाश डालिए। *(1993)*

उत्तर—1857 ई० के प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम के निम्नलिखित परिणाम हुए—

(1) इसके फलस्वरूप अँग्रेजों के अत्याचारों में कुछ वर्षों के लिए कमी हो गई।

(2) भारत में कम्पनी का शासन समाप्त हो गया।

(3) भारतीयों में राष्ट्रीय भावना जाग्रत हो गई।

(4) भारत पर ब्रिटिश सरकार का प्रत्यक्ष शासन स्थापित हो गया।

प्रश्न 4—लॉर्ड कैनिंग पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

अथवा **लॉर्ड कैनिंग के चार सुधार लिखिए।** *(1995)*

उत्तर—

लॉर्ड कैनिंग

लॉर्ड कैनिंग कम्पनी के शासन का अन्तिम गवर्नर जनरल और ब्रिटिश संसद के शासन का प्रथम वायसराय था। वह 1856 ई० में कम्पनी का गवर्नर जनरल बनकर आया था। 1857 ई० की क्रान्ति के पश्चात् वह ब्रिटिश सम्राट का भारत में प्रथम वायसराय हो गया था। लॉर्ड कैनिंग की महान् योग्यता का परिचय इस तथ्य से मिलता है कि उसने बड़े धैर्य से क्रान्ति का दमन कर दिया था और फिर क्रान्तिकारियों को क्षमा कर दिया था। लॉर्ड कैनिंग ने सेना में अनेक सुधार किए थे। उसने अँग्रेज सैनिकों की संख्या में वृद्धि कर दी, तोपखाना अँग्रेजों के अधिकार में कर दिया था। लॉर्ड कैनिंग ने अनेक आर्थिक सुधार भी किए थे। उसने नोटों का प्रचलन भी किया था। लॉर्ड कैनिंग के एक महान् प्रशासक होने का परिचय हमें इस तथ्य से भी मिलता है कि उसने रेलों, सड़कों तथा नहरों का निर्माण बड़ी तेजी से करवाया। उसने शिक्षा जगत् में भी महान् सुधार किए थे। 1862 ई० में लॉर्ड कैनिंग ने अस्वस्थता के कारण त्याग-पत्र दे दिया था।

ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों एवं व्यक्तियों पर आधारित प्रश्न

प्रश्न 1—निम्नांकित तिथियों के ऐतिहासिक महत्त्व पर टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) 1857 ई०—इस तिथि का भारतीय इतिहास में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। इस तिथि को भारत के हिन्दुओं और मुसलमानों ने कन्धे से कन्धा मिलाकर अपनी स्वतन्त्रता के लिए ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध पहला सशस्त्र स्वाधीनता संग्राम किया था।

(2) 1858 ई० *(1990, 96, 99)*—इस तिथि को स्वतन्त्रता सेनानी कुँवरसिंह की मृत्यु हुई थी और इसी तिथि को इंग्लैण्ड की महारानी विक्टोरिया ने भारतीय शासन के सम्बन्ध में अपना घोषणा-पत्र जारी किया था। इसी तिथि से भारत में ईस्ट इण्डिया कम्पनी के शासन का अन्त हो गया था और ब्रिटिश भारत की बागडोर ब्रिटिश संसद ने अपने हाथ में ले ली थी।

(3) 1859 ई०—इस तिथि को अँग्रेजों ने स्वतन्त्रता के अग्रदूत और नाना साहब के विश्वस्त अनुचर व महान् क्रान्तिकारी तात्या टोपे को गोली से उड़ा दिया था।

प्रश्न 2—निम्नांकित ऐतिहासिक स्थलों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) लखनऊ *(1992, 94, 95, 97, 99)*—वर्तमान उत्तर प्रदेश की राजधानी और विगत अवध की राजधानी लखनऊ; हिन्दू और मुस्लिम संस्कृतियों का मुख्य केन्द्र है। नवाब वाजिदअली शाह के समय में लखनऊ; देश का विख्यात नगर बन गया था। अवध के नवाबों ने इस नगर में अनेक महल व मसजिदें बनवाई थीं। 1857 ई० का स्वाधीनता संग्राम लखनऊ में मौलवी अहमदशाह तथा बेगम हजरत महल के नेतृत्व में लड़ा गया था। लखनऊ नगर के अनेक भवन एवं स्मारक दर्शनीय हैं। इनमें बड़ा इमामबाड़ा, छोटा इमामबाड़ा, छत्तर मंजिल, कैसर बाग, बारादरी, भूल-भुलैया, सिकन्दर बाग, जामा मसजिद, अजायबघर, शहीद मीनार आदि विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

(2) झाँसी *(1994, 97, 99)*—उत्तर प्रदेश और मध्य प्रदेश की सीमा पर स्थित झाँसी एक ऐतिहासिक नगर है। झाँसी की रानी लक्ष्मीबाई ने 1857 ई० के स्वाधीनता संग्राम में अँग्रेजों से जमकर लोहा लिया था और युद्ध में वीरगति प्राप्त की थी।

(3) बिठूर—कानपुर के निकट गंगा नदी के तट पर बसा बिठूर एक ऐतिहासिक स्थान है। मराठा पेशवा बाजीराव द्वितीय के दत्तक पुत्र नानासाहब (धुंधूपन्त) बिठूर के ही जागीरदार थे। इन्होंने बिठूर से ही 1857 ई० की क्रान्ति की पृष्ठभूमि तैयार की थी। ब्रिटिश सेनाओं ने इस नगर का वैभव नष्ट कर दिया था।

(4) कानपुर—कानपुर उत्तर प्रदेश का एक प्रमुख नगर है। 1857 ई० में क्रान्तिकारियों ने इस नगर पर अधिकार करके बहुत-से अँग्रेजों को मार डाला था और नानासाहब ने कुछ दिनों तक इस नगर पर एकछत्र शासन किया था। कानपुर अनेक उद्योगों का केन्द्र और प्रमुख व्यापारिक मण्डी है।

(5) मेरठ *(1991, 95, 96)*—मध्यकाल से ही मेरठ राजनीतिक गतिविधियों का केन्द्र रहा है। दिल्ली के निकट स्थित होने के कारण इसका सामरिक महत्त्व बहुत अधिक है। मेरठ के क्रान्तिकारियों ने ही 10 मई, 1857 ई० को स्वाधीनता संग्राम का बिगुल बजाया था और क्रान्ति की ज्वाला को सम्पूर्ण उत्तरी भारत में प्रसारित किया था।

प्रश्न 3—निम्नांकित ऐतिहासिक व्यक्तियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर— (1) बहादुरशाह जफर—बहादुरशाह जफर भारत का अन्तिम मुगल बादशाह था। इसकी शक्ति क्षीण हो चुकी थी और यह अँग्रेजों के हाथ की कठपुतली बन गया था, लेकिन 1857 ई० में बहादुरशाह का दरबार क्रान्तिकारी गतिविधियों का मुख्य केन्द्र बन गया था। क्रान्ति के विस्फोट के पश्चात् 11 मई, 1857 ई० को मेरठ के क्रान्तिकारियों ने बहादुरशाह को अपना नेता चुना और उनके हाथों में क्रान्ति की बागडोर सौंप दी। बहादुरशाह ने तीन महीने तक दिल्ली को अँग्रेजों के प्रभाव से मुक्त रखा और अँग्रेजी सेनाओं को अनेक स्थानों पर पराजित किया। अन्त में, बहादुरशाह को पराजित होकर बन्दी बनना पड़ा। अँग्रेजों ने बहादुरशाह को रंगून भेज दिया, जहाँ पर 1862 ई० में बहादुरशाह की मृत्यु हो गई।

(2) तात्या टोपे *(1994)*—तात्या टोपे एक कट्टर देशभक्त, वीर सेनानी और नानासाहब का प्रमुख सहयोगी था। प्रथम स्वाधीनता संग्राम के समय तात्या टोपे ने अनेक स्थानों पर अँग्रेजी सेनाओं को पराजित किया। अन्त में, उसने वीरतापूर्वक लड़ते हुए वीरगति प्राप्त की। अँग्रेजों ने 1859 ई० में इस महान् देशभक्त को तोप से उड़वा दिया था।

(3) कुँवर सिंह—कुँवर सिंह जगदीशपुर (बिहार) के राजा थे। प्रथम स्वाधीनता संग्राम के समय कुँवर सिंह ने अनेक स्थानों पर अँग्रेजी सेना को पराजित किया। आपने जिस युद्ध-कौशल और छापामार युद्ध द्वारा अँग्रेजी सेना के छक्के छुड़ाए, अनेक विद्वानों ने उसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की है।

(4) बेगम हजरत महल—बेगम हजरत महल एक वीर और साहसी महिला थीं। आपने 1857 ई० में लखनऊ में क्रान्तिकारियों का सफल नेतृत्व किया और कुछ समय तक के लिए लखनऊ को अँग्रेजी शासन से मुक्त कराने में सफलता प्राप्त की। प्रथम स्वतन्त्रता संग्राम की महान् विभूतियों में इनका नाम बड़े आदर के साथ लिया जाता है।

10 सामाजिक व धार्मिक चेतना का विकास : राष्ट्रीय भावना का जन्म

[सामाजिक व धार्मिक सुधार आन्दोलन, ब्रह्म समाज, आर्य समाज, राधास्वामी सत्संग, रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विवेकानन्द एवं रामकृष्ण मिशन, थियोसोफिकल सोसायटी, मुस्लिम सुधार आन्दोलन, राष्ट्रीयता के उत्थान के कारण, भारत पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव, लॉर्ड रिपन तथा लॉर्ड कर्जन के सुधार]

"भारत की पुनर्जागृति मुख्यतः आध्यात्मिक थी तथा एक राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप धारण करने के पूर्व इसने अनेक धार्मिक तथा सामाजिक आन्दोलनों का सूत्रपात किया।" —डॉ० जकारिया

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक तथा धार्मिक सुधार आन्दोलनों की विवेचना कीजिए। *(1992)*

अथवा राजा राममोहन राय पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

अथवा राजा राममोहन राय महान् समाज-सुधारक तथा भारत के आधुनिक युग के प्रवर्तक थे। विवेचना कीजिए। *(1995)*

अथवा स्वामी दयानन्द सरस्वती पर एक संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

अथवा नवभारत के निर्माण में स्वामी दयानन्द का क्या योगदान था ?

अथवा आधुनिक भारत के पुनर्जागरण में स्वामी दयानन्द के योगदान का मूल्यांकन कीजिए।

अथवा "उन्नीसवीं सदी भारत में पुनर्जागरण का काल था।" इस कथन पर प्रकाश डालिए और इस पुनर्जागरण के विभिन्न कारणों का वर्णन कीजिए। *(1993)*

अथवा "उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध भारतीय इतिहास में नवजागरण का युग था। इस दीर्घ अवधि में अनेक धर्म तथा समाज-सुधारकों ने अपनी शिक्षाओं से जनमानस को जाग्रत किया तथा राष्ट्रीयता की भावना के विकास का मार्ग प्रशस्त किया।" इस कथन के सन्दर्भ में प्रमुख समाज एवं धर्म-सुधारकों का उल्लेख कीजिए तथा उनकी शिक्षाओं का सारांश लिखिए। *(1991)*

अथवा उन्नीसवीं शताब्दी में सामाजिक चेतना के अभ्युदय में प्रमुख सुधारकों के योगदान का विवरण दीजिए। *(1992)*

अथवा भारत में उन्नीसवीं शताब्दी के सामाजिक और धार्मिक सुधार आन्दोलनों के प्रभावों की विवेचना कीजिए। *(1993)*

अथवा भारतीय समाज की कुरीतियों को दूर करने में उन्नीसवीं शताब्दी के समाज-सुधारकों के योगदान पर प्रकाश डालिए। *(1994)*

अथवा भारतीय पुनर्जागरण में आर्यसमाज एवं रामकृष्ण मिशन की भूमिका स्पष्ट कीजिए। *(1994)*

अथवा उन्नीसवीं शताब्दी में भारत के सामाजिक और सांस्कृतिक जागरण में राजा राममोहन राय के योगदान का मूल्यांकन कीजिए। *(1994)*

अथवा "उन्नीसवीं शताब्दी सामाजिक एवं राष्ट्रीय पुनर्जागरण का युग था।" इस कथन की समीक्षा कीजिए। *(1995)*

अथवा भारतीय इतिहास में उन्नीसवीं शताब्दी नवजागरण का युग क्यों कहा जाता है ? *(1995)*

अथवा भारतीय पुनर्जागरण का क्या अर्थ है? उसके किन्हीं दो प्रमुख नेताओं के जीवन और कार्यों पर प्रकाश डालिए। *(1996)*

अथवा "उन्नीसवीं शताब्दी ईसवी आधुनिक भारत के इतिहास में नवजागरण का युग था।" इस कथन की व्याख्या उदाहरणों सहित कीजिए। *(1996)*

अथवा 'ब्रह्म समाज' के संस्थापक कौन थे? इसके मुख्य सिद्धान्त क्या थे? *(1996)*

अथवा उन्नीसवीं शताब्दी में सामाजिक चेतना में स्वामी विवेकानन्द के योगदानों का उल्लेख कीजिए। *(1997)*

अथवा आधुनिक भारत के निर्माण में राजा राममोहन राय के योगदान का मूल्यांकन कीजिए। *(1997)*

अथवा ब्रह्म समाज तथा आर्य समाज के प्रमुख सुधार क्या थे? *(1999)*

उत्तर—

सामाजिक और धार्मिक सुधार आन्दोलन

हमारे देश की सामाजिक एवं धार्मिक व्यवस्थां,प्राचीन धार्मिक परम्पराओं तथा नैतिक आदर्शों पर आधारित रही है। इस सामाजिक एवं धार्मिक व्यवस्था में समय-समय पर अनेक दोष उत्पन्न होते रहे हैं और उसका वास्तविक रूप विकृत होता रहा है। यहाँ तक कि अनेक बार ऐसा समय आया जब भारतीय धर्म और संस्कृति पतनोन्मुख दशा में पहुँच गई, लेकिन उसी समय अनेक सुधारकों ने धार्मिक एवं सामाजिक आन्दोलन करके, उसे पुनः गौरवपूर्ण स्थान पर प्रतिष्ठित कर दिया। ऐसा ही समय उन्नीसवीं शताब्दी में भी आया था। इस समय में धार्मिक एवं नैतिक आदर्शों पर आधारित आन्दोलनों ने भारतीयों को अपने धर्म व संस्कृति को बचाने के लिए उत्साहित ही नहीं किया, वरन् उनमें अटूट राष्ट्रीय भावना भी जाग्रत की। फलस्वरूप वे अपने राष्ट्र को विदेशियों से मुक्त कराने के लिए अत्यधिक बेचैन हो उठे। इसीलिए इन आन्दोलनों का भारतीय इतिहास में व्यापक महत्त्व है। इन आन्दोलनों का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

सामाजिक और धार्मिक सुधार आन्दोलन

(1) राजा राममोहन राय और ब्रह्म समाज
(2) स्वामी दयानन्द सरस्वती और आर्य समाज
(3) राधास्वामी सत्संग
(4) रामकृष्ण परमहंस और उनका योगदान
(5) स्वामी विवेकानन्द
(6) थियोसोफिकल सोसायटी।

(1) राजा राममोहन राय और ब्रह्म समाज

परिचय—राजा राममोहन राय का जन्म 1774 ई० में बंगाल के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उस समय देश में लोगों पर ईसाई धर्म तथा पाश्चात्य संस्कृति का इतना अधिक रंग चढ़ गया था कि वे अपनी प्राचीन गौरवपूर्ण संस्कृति और सभ्यता को भूलने लगे थे। ऐसे वातावरण में राजा राममोहन राय ने लोगों में अपने धर्म एवं राष्ट्र की स्वतन्त्रता के प्रति चेतना उत्पन्न की। इसके साथ ही उन्होंने अनेक सामाजिक और धार्मिक सुधार भी किए। रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने राजा राममोहन राय के सम्बन्ध में लिखा है, **"उन्होंने भारत में नए युग का सूत्रपात किया। वस्तुतः वे आधुनिक भारत के जनक थे।"**

राजा राममोहन राय एक ही ईश्वर की सत्ता में विश्वास करते थे। उन्होंने जनता को समझाया कि उनका हिन्दू धर्म वास्तव में सर्वोत्तम है, लेकिन उसमें कुछ दोष अवश्य उत्पन्न हो गए हैं, जिन्हें सरलता से दूर किया जा सकता है। अतः किसी दूसरे धर्म को अपनाने से अच्छा है कि अपने धर्म के दोषों को दूर कर उसे ही अपनाया जाए। उन्होंने समाज और धर्म सम्बन्धी दोषों को दूर करने के लिए बहुत ही व्यावहारिक कार्यक्रम अपनाए थे।

सामाजिक सुधार के कार्यक्रम—उन्होंने बहु-विवाह, बाल-विवाह, जाति-प्रथा, पर्दा-प्रथा एवं निरर्थक कर्मकाण्डों आदि का डटकर विरोध किया। राजा राममोहन राय ने विधवा-विवाह निषेध प्रथा का भी घोर विरोध किया और सब क्षेत्रों में स्त्रियों की समानता का समर्थन किया। उन्होंने सामाजिक और धार्मिक क्षेत्रों में अनेक सुधार किए, जिनके परिणामस्वरूप भारतीयों में राजनीतिक चेतना उत्पन्न हुई और उन्हें अपने देश और धर्म की स्वतन्त्रता का भान हुआ। राजा राममोहन राय ने धार्मिक एवं सामाजिक

सुधारों के लिए 1828 ई० में ब्रह्म समाज नामक एक नवीन संस्था की स्थापना की, जिसके द्वार सभी वर्गों के लिए निष्पक्ष रूप से खुले हुए थे।

ब्रह्म समाज के सिद्धान्त—ब्रह्म समाज के सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

(1) ईश्वर एक है।

(2) जीवात्मा अमर है।

(3) ईश्वर की पूजा आत्मा की शुद्धता के साथ करनी चाहिए।

(4) सभी धर्मों के उपदेश सत्य हैं, उनसे शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए।

(5) ईश्वर के प्रति पितृ-भावना, मनुष्य जाति के प्रति भ्रातृ-भावना तथा प्राणि-मात्र के प्रति दया-भावना रखना ही परम धर्म है।

(6) ईश्वर की आराधना का सभी वर्णों एवं जातियों को समान अधिकार है।

(7) ईश्वर सबकी प्रार्थना सुनता है और पाप-पुण्य के अनुसार दण्ड अथवा पुरस्कार देता है।

ब्रह्म समाज के कार्य—ब्रह्म समाज ने मानव-समाज की बहुत सेवा की। इस समाज ने सबसे पुनीत कार्य यह किया कि देश के लाखों लोगों को ईसाई होने से बचा लिया।

कुमारी फोलेट ने राजा राममोहन राय के बारे में लिखा है कि, **"राजा राममोहन राय एक महान् सेतु के समान हैं, जिससे होकर भारत अपने सुदूर अतीत से अदृश्य भविष्य की ओर बढ़ रहा है।"** इस प्रकार राजा राममोहन राय आधुनिक भारत के निर्माता और भारतीय राष्ट्रीयता के अग्रदूत थे।

(2) स्वामी दयानन्द सरस्वती और आर्य समाज

हिन्दू धर्म और समाज में व्याप्त बुराइयों को समाप्त करने में आर्य समाज ने विशेष योगदान दिया। आर्य समाज की स्थापना, महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के कर-कमलों द्वारा 1875 ई० में हुई थी। उन्नीसवीं शताब्दी; समाज में घोर असमानता और अन्याय का युग था और भारतीय अनेक रूढ़ियों और आडम्बरों के कारण पतन की ओर अग्रसारित हो रहे थे। ऐसे समय में स्वामी दयानन्द जी ने आर्य समाज की स्थापना कर, उनका उद्धार किया। उन्होंने हिन्दुओं को प्रेम, स्वतन्त्रता, सच्ची ईश्वर-भक्ति एवं हिन्दू संस्कृति के प्रति सम्मान का भाव रखने की शिक्षा दी।

जीवन परिचय—स्वामी दयानन्द जी का जन्म 1824 ई० में काठियावाड़ के एक समृद्ध ब्राह्मण परिवार में हुआ था। ये बचपन से ही घर-द्वार छोड़कर साधु-संन्यासियों के साथ रहने लगे थे। उन्हीं के मध्य रहकर ये संस्कृत भाषा के विद्वान् बने। स्वामी जी ने पंजाब, महाराष्ट्र, उत्तर प्रदेश आदि अनेक दूरस्थ स्थानों का भ्रमण किया। इस भ्रमण का उद्देश्य, शास्त्रार्थ और व्याख्यानों के माध्यम से वैदिक धर्म की श्रेष्ठ बातों का प्रचार करना था।

महर्षि दयानन्द ने हिन्दुओं को उपदेश देकर, उन्हें अत्यन्त सरलता से प्राचीन धर्म की विशेषताओं, भारतीय संस्कृति की अच्छाइयों और शुद्ध जीवन के लाभों से परिचित कराया तथा उनमें सुप्त चेतना को जाग्रत किया। उन्होंने 1875 ई० में एक नवीन संस्था आर्य समाज की स्थापना की थी। कालान्तर में भारत के प्रत्येक कोने में इस संस्था की शाखाएँ स्थापित हो गई। भारतीय पुनरुत्थान के इस महारथी का देहावसान 30 अक्टूबर, 1883 ई० को हो गया। प्रसिद्ध चिंतक अरविन्द घोष के अनुसार, **"वह परमात्मा की इस विचित्र सृष्टि का अद्वितीय योद्धा तथा मनुष्य और मानवीय संस्थाओं का सत्कार करने वाला अद्भुत शिल्पी था।"**

आर्य समाज के सिद्धान्त—आर्य समाज के सिद्धान्त निम्नलिखित हैं—

(i) समस्त सत्य, विद्या और पदार्थ जो विद्या के आधार पर जाने जाते हैं, उन सबका आदि मूल परमेश्वर है।

(ii) ईश्वर निराकार, न्याय-रूप, दयालु और सर्वशक्तिमान है। यही एक ईश्वर अजन्मा, अमर, सबका रूपक, अजेय एवं अनन्त सृष्टि की उत्पत्ति का कारण है। यही पालनकर्त्ता और विनाशकर्त्ता भी है।

(iii) वेद ही सत्य और ज्ञान के स्रोत हैं; अतः उनका पढ़ना-पढ़ाना, सुनना-सुनाना, प्रत्येक आर्य का परम धर्म एवं कर्त्तव्य है।

(iv) समस्त कार्यों में सत्य असत्य का ध्यान करना चाहिए।

(v) सदा सत्य को ग्रहण करने और असत्य को त्यागने के लिए तत्पर रहना चाहिए।
(vi) पारस्परिक सम्बन्ध का आधार प्रेम, न्याय और धर्म होना चाहिए।
(vii) प्रत्येक मनुष्य को अपनी भलाई मात्र से ही सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए।
(viii) विद्या की वृद्धि और अविद्या के नाश का हमेशा प्रयत्न करते रहना चाहिए।
(ix) सभी मनुष्यों को आचरण की स्वतन्त्रता प्राप्त होनी चाहिए, परन्तु प्रत्येक व्यक्ति को लोक-कल्याण का सदैव ध्यान रखना चाहिए।

आर्य समाज की सेवाएँ—स्वामी दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित आर्य समाज ने सामाजिक सुधार से सम्बन्धित निम्नलिखित कार्य किए—

(i) इस संस्था ने छुआछूत, बाल-विवाह एवं जाति-पाँति का डटकर विरोध किया।
(ii) विवाह की आयु; लड़कों के लिए 25 वर्ष और लड़कियों के लिए 16 वर्ष निश्चित की।
(iii) स्त्रियों की दशा सुधारने के लिए विशेष प्रबन्ध किए।
(iv) आर्य समाज ने शुद्धि आन्दोलन चलाकर उन हिन्दुओं को पुनः हिन्दू बनाने हेतु आन्दोलन चलाया, जिन्होंने दूसरे धर्म को अपना लिया था।
(v) 1908 ई० में आर्य समाज ने दलित जातियों के उद्धार के लिए भी आन्दोलन चलाया।
(vi) इसी समाज ने अनेक स्थानों पर डी० ए० वी० (दयानन्द एंग्लो-वैदिक) कॉलेजों की स्थापना की।

(3) राधास्वामी सत्संग

इस समाज की स्थापना, महान् व्यक्तित्व के स्वामी श्री शिवदयाल खत्री ने, 1861 ई० में, आगरा में की थी। 1878 ई० में इनकी मृत्यु हो गई थी। इनके बाद इनके अनुयायी 5 गुरु हुए, लेकिन कोई भी गुरु विशेष प्रभावशाली सिद्ध नहीं हुआ। छठे गुरु आनन्दस्वरूप जी हुए। उनके समय में इस मत का प्रभाव बहुत बढ़ गया था। इन्हीं के समय आगरा के निकट दयालबाग की स्थापना हुई।

इस संस्था के अनुसार गुरु ही सत्य है और सत्य का ज्ञान कराने वाला गुरु ही है। राधास्वामी मत के अनुयायी ईश्वर, संसार और जीवात्मा को सत्य मानते हैं। इस दर्शन को मानने वाले पुनर्जन्म में भी आस्था रखते हैं। ये प्रेम और बन्धुत्व को बहुत महत्त्व देते हैं।

(4) रामकृष्ण परमहंस और उनका योगदान

उन्नीसवीं शताब्दी के महान् चिंतक स्वामी रामकृष्ण परमहंस का जन्म 1836 ई० में बंगाल के हुगली जिले में हुआ था। वे जाति के ब्राह्मण थे। इनके बचपन का नाम गदाधर चटर्जी था। वे बाद में रामकृष्ण परमहंस के नाम से विख्यात हुए। वे अपने बड़े भाई के साथ वैलूर के मन्दिर में काली देवी की आराधना करते थे। **मैक्समूलर के अनुसार, "उन्होंने देवी काली को अपनी माता तथा विश्व जननी समझना प्रारम्भ कर दिया था।"** गृह त्याग करने के पश्चात् उन्होंने माँ काली के साक्षात् दर्शन हेतु 12 वर्ष तक कठोर तपस्या की। मानव जाति के लिए उनका संदेश था, **"भाई से प्रेम करने की केवल बात मत कहो, उसे व्यवहार में लाओ। मतवाद व धर्म को लेकर वाद-विवाद मत करो, सब धर्म समान हैं, सारी नदियाँ समुद्र की ओर जाती हैं। तुम भी उसी ओर बहो और दूसरों को भी बहने दो।"** उन्होंने अपने विचारों को लिखित रूप में संकलित नहीं किया, लेकिन उनके शिष्यों द्वारा उनकी अमर वाणी का संग्रह किया गया। गांधी जी ने उनके विषय में कहा था, **"रामकृष्ण परमहंस के जीवन की कहानी व्यावहारिक धर्म है। उनका जीवन हमें ईश्वर को हमारे सामने दिखाता है।"** 1886 ई० में भारत के इस महान् चिंतक का निधन हो गया। स्वामी विवेकानन्द ने उनके विषय में कहा था, **"मुझे एक ऐसे महापुरुष के चरणों में बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, जिसका जीवन उसकी समस्त शिक्षाओं व उपदेशों की अपेक्षा उपनिषदों की वाणी की एक उत्कृष्ट जीवित व्याख्या है, जो वास्तव में विचारों का समन्वय है।"**

स्वामी रामकृष्ण परमहंस के सुधारों का प्रभाव

एक निर्धन परिवार में उत्पन्न अशिक्षित रामकृष्ण परमहंस कलकत्ता के निकट एक मन्दिर के पुजारी थे, लेकिन अपने जीवन में निरन्तर आध्यात्मिक साधना करते रहने से इन्होंने धर्म के क्षेत्र में अत्यधिक

विशिष्ट ज्ञान अर्जित कर लिया। उनके सम्बन्ध में एक इतिहासकार ने लिखा है, **"परमहंस जी में हिन्दू धर्म और दर्शन के सभी रूपों—मूर्ति-पूजा, अवतारवाद, भजन, कीर्तन, अद्वैत दर्शन आदि का अद्भुत समन्वय था। वे धार्मिक कट्टरता और संकीर्णता से बिल्कुल रहित थे और उन्होंने केवल अपनी शिक्षाओं से ही नहीं, बल्कि अपने आचरण द्वारा यह प्रतिपादित कर दिया कि विभिन्न धर्मों के सत्य को जानने और ईश्वर को प्राप्त करने के अलग-अलग मार्ग हैं।"** इस प्रकार एक लोक-हितकारी, समन्वयकारी दर्शन इन्होंने विश्व के सम्मुख प्रस्तुत किया था। भारतीय जनमानस पर इसका विशेष प्रभाव पड़ा।

(5) स्वामी विवेकानन्द

स्वामी विवेकानन्द जी का प्रारम्भिक नाम नरेन्द्रनाथ दत्त था। उनका जन्म 12 जनवरी, 1863 ई० को कलकत्ता में एक प्रतिष्ठित कायस्थ परिवार में हुआ था। बाल्यकाल से ही नरेन्द्रनाथ दत्त प्रत्येक बात को तर्क के आधार पर समझकर स्वीकार करते थे। छात्र-जीवन में वे पश्चिमी विचारधारा के कट्टर समर्थक थे, लेकिन भारतीय संस्कृति के अग्रदूत रामकृष्ण परमहंस जी के सम्पर्क में आने पर उनकी विचारधारा बदल गई। वे इस निर्णय पर पहुँचे कि सत्य या ईश्वर को जानने का सच्चा मार्ग, अनुरागपूर्ण साधना का मार्ग ही है। अपनी इसी विचारधारा के कारण, वे रामकृष्ण परमहंस के प्रिय शिष्य बन गए।

सन् 1893 ई० में, वे शिकागो में सर्व धर्म-सम्मेलन में भाग लेने गए। वहाँ उन्होंने अपनी ओजस्वी वाणी में अपने विचारों और सिद्धान्तों को व्यक्त किया, जिसका वहाँ उपस्थित सभी धर्मों के लोगों पर गहरा प्रभाव पड़ा। उन्होंने अपने व्याख्यान में कहा कि हिन्दू धर्म अति महान् है, क्योंकि यह सभी धर्मों की अच्छाइयों को समान रूप से स्वीकार करता है। उन्होंने अमेरिकन लोगों की नीति की आलोचना करते हुए लिखा है कि, **"आप लोग अपने ईसाई धर्म का प्रचार करने के लिए तो भारत में असीम धन व्यय कर सकते हैं, लेकिन भारतवासियों की गरीबी और भुखमरी को दूर करने के लिए कुछ नहीं कर सकते। भारत में धर्म का अभाव नहीं, धन का अभाव है।"**

उनके विचारों की उच्चता, पवित्रता और दलित वर्ग के प्रति प्रेम की भावना देखकर सभी अमेरिकन आश्चर्यचकित रह गए।

भारत लौटकर उन्होंने देश के कोने-कोने में घूम-घूमकर, अपने विचारों के माध्यम से शिक्षित-अशिक्षित, गरीब-अमीर, ऊँच-नीच सभी वर्गों के लोगों को प्रभावित किया। 14 जुलाई, 1902 ई० को भारत के इस महानं दार्शनिक एवं चिंतक का निधन, 39 वर्ष की अल्प आयु में हुआ।

स्वामी विवेकानन्द द्वारा हिन्दू समाज की जागृति का प्रयत्न

स्वामी विवेकानन्द ने हिन्दू समाज में जागृति लाने के अथक प्रयास किए, जिनका अध्ययन निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है—

(i) हिन्दू समाज की कुरीतियों का बहिष्कार—विवेकानन्द जी ने 1897 ई० में रामकृष्ण मिशन की स्थापना की तथा उसके माध्यम से उन्होंने धार्मिक एवं सामाजिक सुधार आन्दोलन में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। उन्होंने शिक्षित भारतीय लोगों को हिन्दू धर्म की श्रेष्ठता और पवित्रता बताते हुए कहा कि हमारा धर्म ही श्रेष्ठतम् है; अतः हमें किसी अन्य धर्म में विलीन होने के स्थान पर, अपने धर्म को अपनाकर ही, गर्व और निर्भीकता के साथ मस्तक ऊँचा करके चलना चाहिए। उन्होंने लोगों से यह भी कहा कि बिना बुद्धि की कसौटी पर कसे धार्मिक सिद्धान्तों को स्वीकार नहीं करना चाहिए अर्थात् अन्धविश्वास के आधार पर नहीं, वरन् बुद्धि-परख के आधार पर ही किसी भी सिद्धान्त को मानना चाहिए। उन्होंने सभी प्रकार के आडम्बरों का विरोध किया। उन्होंने हिन्दुओं की खान-पान की पवित्रता पर कुठाराघात करते हुए कहा था, **"हमारा धर्म चौके में है। भोजन पकाने का बर्तन हमारा ईश्वर है और हमारा धर्म 'मुझे मत छुओ' में है"** अर्थात् उन्होंने हिन्दू समाज के **अन्धविश्वासों पर करारा व्यंग्य किया।**

(ii) भारतीयों का मार्गदर्शन—उन्होंने सुप्त भारतीयों में नवीन चेतना जाग्रत। उन्होंने पाश्चात्य देशों की अच्छाइयों और भारतीय धर्म की अच्छाइयों को समन्वित करते हुए, भारतवासियों को उपदेश दिया। उन्होंने कहा था कि, **"भारत के धर्म को साथ लेते हुए पाश्चात्य लोगों के समाज का निर्माण करो।**

समानता, स्वतन्त्रता, कर्त्तव्यपरायणता और शक्ति की भावना में पश्चिमी देशों की तरह बनो और साथ-ही-साथ धर्म, संस्कृति तथा भावनाओं में पक्के हिन्दू बनो।"

इस प्रकार, स्वामी विवेकानन्द जी ने भारतीयों को आध्यात्मिक और धार्मिक उन्नति करने के लिए विशेष रूप से प्रोत्साहित किया।

(6) थियोसोफिकल सोसायटी

परिचय—1879 ई० में अमेरिकन कर्नल हेनरी आल्काट तथा एक रूसी महिला मैडम ब्लेवस्ट्स्की द्वारा, न्यूयॉर्क में इस संस्था की स्थापना की गई थी। भारतवर्ष में इस संस्था का कार्यक्रम एक आयरिश महिला श्रीमती ऐनी बेसेन्ट द्वारा 1893 ई० में प्रारम्भ किया गया था। थियोसोफिकल सोसायटी के प्रचारकों ने हिन्दू धर्म की बहुत प्रशंसा की और इस धर्म के उत्तम धार्मिक विचारों को चारों ओर फैलाया। साथ ही हिन्दू धर्म में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने का भी प्रयत्न किया। यह संस्था सभी धर्मों के मूल सिद्धान्तों में विश्वास करती है। ऐनी बेसेन्ट का जन्म 1847 ई० में आयरलैण्ड में हुआ था। उनका मत था कि, "भारत और हिन्दुत्व की रक्षा भारतवासी और हिंदू ही कर सकते हैं। हिन्दुत्व के बिना, भारत के समक्ष कोई भविष्य नहीं है। हिन्दुत्व ही वह मिट्टी है जिसमें भारतवर्ष का मूल गढ़ा हुआ है। यदि वह मिट्टी हटा दी जाएगी, तो भारत रूपी वृक्ष सूख जाएगा।"

सिद्धान्त—इस संस्था के सिद्धान्त इस प्रकार थे—

(i) इस सोसायटी की मान्यता थी कि सब धर्मों में हिन्दू और बौद्ध धर्म सर्वोच्च धर्म हैं।

(ii) पुनर्जन्म और कर्म-बन्धन में विश्वास करना चाहिए।

(iii) जाति-पाँति का भेद नहीं मानना चाहिए।

उद्देश्य—इस संस्था के प्रमुख उद्देश्य थे—

(i) संसार के सभी वर्गों में विश्व-बन्धुत्व की भावना उत्पन्न करके पर-कल्याण की भावना को विकसित करना।

(ii) मानव-जाति को धार्मिक सिद्धान्तों के अध्ययन के लिए प्रोत्साहित करना।

वास्तव में, इस सोसायटी ने आयरिश महिला श्रीमती ऐनी बेसेन्ट के नेतृत्व में पर्याप्त उन्नति की। उन्होंने भारत के अनेक नगरों में इसकी शाखाएँ स्थापित की थीं। कालान्तर में यह आयरिश महिला राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में कांग्रेस की सदस्या बन गई थी। भारतीयों ने इस महान् महिला की सेवाओं के बदले उसे कांग्रेस के अध्यक्ष पद पर भी प्रतिष्ठित किया था। उनका कथन था कि, **"मैं तो एक नगाड़ा हूँ जिसका कार्य सोए हुए भारतीयों का जगाना है, जिससे वे अपनी मातृभूमि के लिए कार्यरत हो सकें।"** उनका निधन 20 सितम्बर, 1933 ई० में अड्यार में हो गया।

इस प्रकार, उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध भारतीय इतिहास में नवजागरण का युग था। इस दीर्घ अवधि में अनेक धर्म तथा समाज-सुधारकों ने अपनी शिक्षाओं से जनमानस को जाग्रत किया तथा राष्ट्रीयता की भावना के विकास का मार्ग प्रशस्त किया।

प्रश्न 2—उन्नीसवीं शताब्दी में हुए मुस्लिम सुधार आन्दोलनों का संक्षेप में वर्णन कीजिए।

उत्तर—

मुस्लिम सुधार आन्दोलन

हिन्दू आन्दोलन की प्रतिक्रियास्वरूप, मुस्लिम समाज में भी अनेक मुस्लिम सुधार आन्दोलन हुए। इन आन्दोलनों का उद्देश्य मुस्लिम समाज और इस्लाम धर्म में प्रविष्ट हो गई बुराइयों को दूर करना था। इन आन्दोलनों ने जहाँ सामाजिक बुराइयों को दूर करने में योगदान दिया, वहीं भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना के उत्थान में भी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की। ये आन्दोलन इस प्रकार थे—

(1) अलीगढ़ आन्दोलन—इस आन्दोलन के प्रवर्तक सर सैयद अहमद खाँ (1817-1893 ई०) थे। अलीगढ़ आन्दोलन ने मुस्लिमों को जाग्रत करने में पर्याप्त सहयोग दिया। सर सैयद अहमद खाँ ने सरकार और मुसलमानों के बीच की दूरी को समाप्त करने का प्रयत्न किया। सर सैयद अहमद खाँ; न्याय विभाग में उच्च पद पर आसीन थे। उन्होंने यह निष्कर्ष निकाला कि अँग्रेजों से सहानुभूति पाने के लिए उनसे मिल-जुलकर कार्य करना चाहिए और राजभक्ति का प्रदर्शन करना चाहिए। ऐसा कर उन्होंने अँग्रेजों

की सहानुभूति प्राप्त कर ली। उन्होंने 1875 ई० में 'मोहम्मडन एंग्लो ओरियंटल कॉलेज' की स्थापना की। यही कॉलेज आगे चलकर 'अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय' के रूप में परिवर्तित हो गया। उन्होंने नारी शिक्षा का समर्थन एवं पर्दा-प्रथा का विरोध किया। इस प्रकार सैयद अहमद खाँ ने मुस्लिम लोगों की बहुत सेवा की और उनमें राजनीतिक चेतना जगाई। किन्तु इनके इस आन्दोलन का यह दुष्प्रभाव हुआ कि भारत में साम्प्रदायिकता की शक्तिशाली भावना का उदय हुआ।

मुस्लिम सुधार आन्दोलन
(1) अलीगढ़ आन्दोलन
(2) वहाबी आन्दोलन
(3) अहमदिया आन्दोलन।

(2) वहाबी आन्दोलन—भारत का वहाबी आन्दोलन अरब के वहाबी आन्दोलन से प्रभावित था, भारत में इसका प्रचार सैयद अहमद बरेलवी (1787-1831 ई०) ने किया। इस आन्दोलन ने मुस्लिम धर्म में व्याप्त कुरीतियों की ओर मुसलमान वर्ग का ध्यान आकर्षित किया था। इस आन्दोलन ने पाश्चात्य सभ्यता एवं शिक्षा की कड़ी आलोचना की और भारत में एक बार फिर से मुस्लिम शासन की स्थापना के लिए लोगों को प्रेरित किया। इस आन्दोलन के दो प्रमुख उद्देश्य थे—अपने धर्म का प्रचार एवं मुस्लिम समाज में सुधार करना। इस आन्दोलन के परिणामस्वरूप अनेक लोग इस धर्म की ओर आकर्षित हुए और बहुतों ने इस धर्म को अंगीकार भी किया।

(3) अहमदिया आन्दोलन—इस आन्दोलन के जन्मदाता मिर्जा गुलाम मुहम्मद (1831-1908 ई०) थे। इन्होंने कादियानी सम्प्रदाय की स्थापना की थी। इनका कथन था कि वे मुसलमानों के पैगम्बर, ईसाइयों के मसीहा और हिन्दुओं के अवतार हैं। वे पर्दा-प्रथा, बहु-विवाह तथा तलाक के समर्थक थे।

योगदान—इन मुस्लिम आन्दोलनों ने मुसलमानों में राजनीतिक तथा सामाजिक चेतना की वृद्धि की, जिसके परिणामस्वरूप मुसलमानों की स्थिति में काफी सुधार हुआ। उन्होंने पाश्चात्य रीति-रिवाजों को देखा और उनके प्रभावस्वरूप मुस्लिम समाज में व्याप्त अनेक कुरीतियों को समाप्त कर दिया। इन आन्दोलनों के नेताओं ने नारी-शिक्षा की ओर भी ध्यान देना प्रारम्भ किया। परन्तु मुसलमानों में इस चेतना के जागने से साम्प्रदायिकता की भावना प्रबल हो गई और देश में हिन्दू-मुसलमानों के मध्य झगड़े होने लगे।

निष्कर्ष—हिन्दुओं और मुसलमानों के इन आन्दोलनों से एक सबसे बड़ा लाभ यह हुआ कि भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना उत्पन्न हुई जिसके परिणामस्वरूप देश में स्वतन्त्रता आन्दोलन होने प्रारम्भ हुए। सारांश में, इन आन्दोलनों ने देश को स्वतन्त्र कराने और स्वाभिमान के साथ जीने के लिए देशवासियों को प्रोत्साहन दिया। डॉ० जकारिया के अनुसार, **"भारत की पुनर्जागृति मुख्यतः आध्यात्मिक थी तथा एक राष्ट्रीय आन्दोलन का रूप धारण करने के पूर्व इसने अनेक धार्मिक तथा सामाजिक आन्दोलनों का सूत्रपात किया।"**

प्रश्न 3—भारत में राष्ट्रीयता के उत्थान पर एक संक्षिप्त लेख लिखिए। *(M. Imp.)*
अथवा **भारत में राष्ट्रीयता के विकास के कारणों का उल्लेख कीजिए।**
अथवा **भारतीय राज्यों में एकता के वाहक, प्रमुख तत्त्वों का उल्लेख कीजिए।** *(1996)*
अथवा **भारत में राष्ट्रीयता की भावना और स्वदेश-प्रेम के जाग्रत होने के क्या कारण थे?** *(1996)*

उत्तर—

राष्ट्रीयता के उत्थान (विकास) के कारण

उन्नीसवीं शताब्दी में सामाजिक व धार्मिक आन्दोलनों तथा ब्रिटिश शासन के प्रभाव के फलस्वरूप भारत में राष्ट्रीय भावना का विकास बड़ी तीव्रता से हुआ था। राष्ट्रीयता की भावना से प्रेरित होकर भारतीय अपनी स्वाधीनता के लिए ब्रिटिश सरकार से संघर्ष करने के लिए प्रयत्नशील हो गए। संक्षेप में, भारत में राष्ट्रीयता के विकास या राष्ट्रीयता के उत्थान के प्रमुख कारणों की विवेचना निम्नांकित संदर्भों में की जा सकती है—

(1) पाश्चात्य साहित्य—हमारी राष्ट्रीयता की भावना के विकास में पाश्चात्य शिक्षा ने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। पाश्चात्य लेखकों और विचारकों की समानता और स्वतन्त्रता के विचारों से ओत-प्रोत रचनाओं के अध्ययन से, भारतीय नवयुवकों में अपने देश के प्रति प्रेम और स्वतन्त्रता की उग्र-भावना जाग्रत हुई।

(2) भारतीयों का आर्थिक शोषण—राष्ट्रीय चेतना की जागृति का दूसरा प्रमुख कारण, अँग्रेजों की आर्थिक शोषण की नीति थी। अँग्रेजी सरकार ने ऐसी व्यापारिक नीति अपनाई थी कि भारत के सभी कुटीर-उद्योग नष्ट हो गए थे। यहाँ की अर्थव्यवस्था का पूर्ण लाभ अँग्रेज व्यापारियों को ही प्राप्त होने लगा था। कृषि और व्यापार का भी पूर्णतया पतन हो गया था। इन सभी कारणों से भारत का अधिकांश धन इंग्लैण्ड चला गया और लोग बेरोजगार होते चले गए। आर्थिक शोषण की इस नीति ने, भारतीयों में राष्ट्रीय भावना का संचार किया और वे अपनी स्वाधीनता के लिए प्रयत्नशील हो गए।

राष्ट्रीयता के उत्थान (विकास) के कारण

(1) पाश्चात्य साहित्य
(2) भारतीयों का आर्थिक शोषण
(3) लॉर्ड लिटन के अनुचित कार्य
(4) अन्तर्राष्ट्रीय जागरण
(5) अँग्रेजों की भेदभावपूर्ण नीति
(6) न्यायिक असमानता
(7) यातायात एवं संचार साधनों का विकास
(8) समाचार-पत्रों द्वारा जनता में जागृति उत्पन्न होना
(9) सामाजिक तथा धार्मिक सुधार आन्दोलन
(10) पाश्चात्य विद्वानों के विचारों का प्रभाव।

(3) लॉर्ड लिटन के अनुचित कार्य—ब्रिटिश शासन काल में अनेक गवर्नर जनरलों ने भी अनुचित कार्य किए, जिसके कारण राष्ट्रीय आन्दोलन होना अनिवार्य हो गया। लॉर्ड लिटन के दमनकारी कार्य तो विशेष रूप से राष्ट्रीय चेतना के विकास के मूलाधार सिद्ध हुए।

लॉर्ड लिटन ने महारानी विक्टोरिया को भारत की साम्राज्ञी घोषित करने के लिए दिल्ली में एक विशाल दरबार एवं समारोह का आयोजन किया और उसमें अत्यधिक धन व्यय किया। यह कार्यक्रम ठीक उसी समय किया गया था, जबकि 1877 ई० में बंगाल भीषण अकाल से ग्रस्त था। लॉर्ड लिटन ने उस ओर कोई ध्यान न देकर अपना कार्यक्रम बड़ी शान से सम्पन्न किया। लॉर्ड लिटन ने एक शस्त्र सम्बन्धी अधिनियम भी पारित करवाया था, जिसके अनुसार भारतीयों को बिना लाइसेंस के शस्त्र रखना अवैध था। अतः इसकी प्रतिक्रियास्वरूप भारतीय जनता का क्रुद्ध होना स्वाभाविक था। उन्हें इस बात का अच्छी तरह से आभास हो गया था कि बिना स्वतन्त्र हुए उनका जीवन निरर्थक है।

(4) अन्तर्राष्ट्रीय जागरण—इन्हीं दिनों अमेरिका, इटली, जर्मनी, मिस्र आदि देशों में राष्ट्रीयता की उग्र भावना पनप रही थी। मिस्र और टर्की में स्वतन्त्रता संग्राम छिड़ चुका था तथा अमेरिका में गृहयुद्ध के बाद दास-प्रथा का अन्त हो चुका था। इटली और जर्मनी देश भी राजनीतिक एकता में बँध गए थे। इन सब बातों का भारतीयों के मन और मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव पड़ा था।

(5) अँग्रेजों की भेदभावपूर्ण नीति—जातीय भेदभाव के आधार पर भारतीयों को असीमित शारीरिक और मानसिक कष्ट दिया जाता था। उच्च पदों पर केवल अँग्रेज लोग ही नियुक्त किए जाते थे और भारतीयों को कभी भी उच्च पदों पर नियुक्त नहीं किया जाता था। उदाहरणार्थ, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने 1869 ई० में 'भारतीय नागरिक सेवा' (I.C.S.) की परीक्षा उत्तीर्ण कर ली थी, फिर भी ब्रिटिश सरकार ने बहाने बनाकर उन्हें नौकरी में नहीं लिया था। इसी प्रकार, 1877 ई० में अरविन्द घोष इस परीक्षा को उत्तीर्ण करने के उपरान्त ब्रिटिश सरकार के कुचक्र का शिकार बने थे। अँग्रेज सुशिक्षित भारतीयों को निम्न स्तर का और असभ्य समझते थे और उनके साथ अशोभनीय व्यवहार करते थे। परिणामस्वरूप भारतीय बुद्धिजीवी वर्ग में असन्तोष व्याप्त हो गया। उन्होंने सरकारी नौकरियाँ छोड़ दीं और भारतमाता को स्वतन्त्र कराने का मार्ग ढूँढने लगे।

(6) न्यायिक असमानता—न्याय के क्षेत्र में भी केवल अँग्रेजों के लिए ही विशेष सुविधाएँ सुलभ थीं। उनके अपराधों के विषय में निर्णय देने का किसी भी भारतीय न्यायाधीश को अधिकार नहीं था। उनके मुकदमों में निर्णय देने के लिए अलग नियम थे।

लॉर्ड रिपन इस दोषपूर्ण न्याय-व्यवस्था को ठीक करना चाहता था। वह चाहता था कि भारतीय और अँग्रेज दोनों के लिए, समान अपराध हेतु समान न्याय एवं समान अधिकार होने चाहिए। उसने इस बात का भी प्रयत्न किया कि अँग्रेजों के विरुद्ध निर्णय देने का भारतीय न्यायाधीशों को भी अधिकार प्राप्त

हो जाए, किन्तु अँग्रेजों के तीव्र विरोध के कारण वह अपने प्रयत्न में सफल न हो सका। इस घटना से भारतीयों में स्वाधीनता की चेतना जाग उठी। वे यह अच्छी तरह समझ गए कि बिना स्वतन्त्र हुए, सम्मानपूर्वक और अधिकारपूर्वक नहीं जिया जा सकता है।

(7) यातायात एवं संचार साधनों का विकास—अँग्रेजों के कुछ शासन सम्बन्धी सुधार भी भारतीयों की राष्ट्रीय चेतना के विकास में सहायक सिद्ध हुए। अँग्रेजों ने यातायात के मार्गों तथा डाक-विभाग की अपार उन्नति की। यह सब उन्होंने अपने व्यापार की उन्नति के उद्देश्य से किया था, लेकिन भारतीयों को भी इससे अत्यधिक लाभ हुआ। उनको एक स्थान से दूसरे स्थान पर शीघ्र जाने की सुविधा प्राप्त हो गई। इससे भारतीय आन्दोलनकारियों को आपस में भेंट करने एवं विचार-विनिमय की सुविधाएँ भी प्राप्त हुईं।

(8) समाचार-पत्रों द्वारा जनता में जागृति उत्पन्न होना—भारतीय पत्रिकाओं एवं समाचार-पत्रों ने भी अँग्रेजों के प्रति जहर उगल-उगलकर, अँग्रेजों के विरुद्ध भारतीयों को विद्रोह करने के लिए उकसाया। कालान्तर में राष्ट्रीय आन्दोलन की प्रगति में आयरिश महिला श्रीमती ऐनी बेसेन्ट और लोकमान्य तिलक द्वारा प्रकाशित समाचार-पत्रों और पत्रिकाओं ने इस क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था।

(9) सामाजिक तथा धार्मिक सुधार आन्दोलन—इस समय भारत में अनेक सामाजिक व धार्मिक आन्दोलन भी हुए। इन आन्दोलनों का प्रारम्भिक उद्देश्य, धार्मिक और सामाजिक सुधार करना था, लेकिन इन सुधारों के फलस्वरूप भारतीयों में उग्र-राष्ट्रीय चेतना जाग उठी। अनेक सुधारकों ने विभिन्न संस्थाओं की स्थापना की। इन संस्थाओं में राजा राममोहन राय की ब्रह्म समाज, स्वामी दयानन्द सरस्वती की आर्य समाज तथा स्वामी विवेकानन्द द्वारा स्थापित रामकृष्ण मिशन प्रमुख थीं। इन संस्थाओं ने समाज में व्याप्त बुराइयों को तो दूर किया ही, साथ ही जनता के हृदय में राष्ट्रीय भावना को जाग्रत करने में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया।

(10) पाश्चात्य विद्वानों के विचारों का प्रभाव—मैक्समूलर, कीथ, मोनियर विलियम्स आदि विद्वानों ने भारत के अनेक ग्रन्थों का अध्ययन करने के उपरान्त पाश्चात्य जगत की अपेक्षा भारतीय संस्कृति और सभ्यता को ही श्रेष्ठ पाया। उन्होंने अपने विचारों से सम्पूर्ण विश्व को अवगत भी करवाया। इससे नवयुवकों और बुद्धिजीवी वर्ग में भारतीय संस्कृति और सभ्यता की श्रेष्ठता के प्रति सम्मान का भाव जाग्रत हुआ तथा उनमें अपार उत्साह उत्पन्न हुआ, जो राष्ट्रीय भावना के विकास में बहुत सहायक सिद्ध हुआ।

इन कार्यों के फलस्वरूप भारत में राष्ट्रीय चेतना की भावना जाग्रत हुई और भारतीय अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए कटिबद्ध हो गए।

प्रश्न 4—भारत पर पाश्चात्य सभ्यता के प्रभाव का निरूपण कीजिए।

अथवा **"पाश्चात्य सभ्यता ने भारतीयों को एक नए युग में प्रवेश करा दिया और विज्ञान की उपलब्धियों से भारतीय विशिष्ट रूप से लाभान्वित हुए।" समालोचना कीजिए।**

उत्तर—

भारत पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव

भारत में पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव कई रूपों में देखने को मिलता है। जब भारतवासी प्रगतिशील अँग्रेजों के सम्पर्क में आए, तब उनमें भी नए जीवन का संचार हुआ और वे उनकी सभ्यता व संस्कृति से प्रभावित हुए बिना नहीं रह सके। इसमें सन्देह नहीं कि अँग्रेजों ने भारतवासियों का शोषण किया, तथापि अप्रत्यक्ष रूप में उन्होंने भारत को एक नवीन युग में प्रविष्ट करा दिया। संक्षेप में, भारत को पाश्चात्य सभ्यता की प्रमुख देनें इस प्रकार रहीं—

(1) राजनीतिक एकता की स्थापना—राजनीतिक एकता प्रदान करके अँग्रेजों ने भारतीयों में राजनीतिक चेतना का संचार किया। अँग्रेजों ने सम्पूर्ण भारत को जीतकर समस्त देश पर अपना एकछत्र साम्राज्य स्थापित कर लिया और पहले की राजनीतिक विघटन और बिखराव की स्थिति को समाप्त कर दिया। फलतः सारे भारत में एक डाक, तार, रेल और मुद्रा की व्यवस्था स्थापित हो गई, जिससे सम्पूर्ण देश एकता के सूत्र में बंध गया।

(2) शासन में एकरूपता एवं सुव्यवस्था—अँग्रेजों ने भारत में एक सुसंगठित और सुव्यवस्थित शासन-व्यवस्था को स्थापित किया, जिससे देश बाहरी और भीतरी आक्रमणों व विद्रोहों से मुक्त रहा।

इसके अतिरिक्त, अँग्रेजी राज्य ने पुलिस की समुचित व्यवस्था करके जनता के जीवन और सम्पत्ति को सुरक्षित बना दिया। इससे भारतीयों में सुव्यवस्थित शासन की भावना का संचार हुआ।

(3) लोकतन्त्रीय भावना का विकास—इंग्लैण्ड में इस समय तक पूर्ण लोकतन्त्र की स्थापना हो गई थी। इसका प्रभाव भारत पर भी पड़ा। 1857 ई० की क्रान्ति के बाद हमारे देश में भी व्यवस्थापिका की स्थापना होने लगी और स्वायत्त शासन विकसित होने लगा। यह संवैधानिक विकास निरन्तर होता रहा और धीरे-धीरे देश लोकतन्त्र की ओर बढ़ता गया। अन्त में, हमारे देश में पूर्णरूप से लोकतन्त्रीय शासन व्यवस्था की स्थापना हो गई।

भारत पर पाश्चात्य सभ्यता का प्रभाव

(1) राजनीतिक एकता की स्थापना
(2) शासन में एकरूपता एवं सुव्यवस्था
(3) लोकतन्त्रीय भावना का विकास
(4) यातायात एवं संचार के साधनों का विस्तार
(5) सुदृढ़ न्याय व्यवस्था
(6) वैदेशिक सम्बन्ध
(7) विज्ञान की प्रगति
(8) मध्यम वर्ग का उदय
(9) राष्ट्रीय भावना का विकास
(10) सामाजिक कुरीतियों का अन्त
(11) औद्योगीकरण को प्रोत्साहन
(12) ईसाई धर्म का प्रचार
(13) अँग्रेजी भाषा का प्रचार
(14) साहित्य का विकास
(15) प्राचीन भारतीय सभ्यता व संस्कृति की रक्षा

(4) यातायात व संचार के साधनों का विस्तार—अँग्रेजों ने सारे देश में यातायात के साधनों की स्थापना कर, सम्पूर्ण देश में एक ही प्रकार की शासन व्यवस्था स्थापित कर दी। सारे देश के लिए एक समान कानून बनाए गए तथा अखिल भारतीय नौकरियों की व्यवस्था करके और अँग्रेजी को राष्ट्रभाषा बनाकर, भारतीयों में एकता की भावना जाग्रत करने के लिए अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न कर दीं गईं। संचार के साधनों ने विविध क्षेत्रों के विकास में बहुत अधिक योगदान दिया।

(5) सुदृढ़ न्याय व्यवस्था—अँग्रेजों ने प्रारम्भ से ही न्याय व्यवस्था को सुधारने की ओर विशेष ध्यान दिया। उन्होंने कानून की प्रधानता स्थापित करने का प्रयत्न किया। निष्पक्ष न्याय व्यवस्था अँग्रेजों की ही अमूल्य देन है। वस्तुतः उन्होंने न्यायपालिका को बहुत सुदृढ़ बनाया था।

(6) वैदेशिक सम्बन्ध—अँग्रेजों के शासनकाल में भारत का विदेशों के साथ फिर से सम्बन्ध स्थापित हो गया। विदेशों में जो लोक-कल्याणकारी आन्दोलन और जन-हितकारी कार्यक्रम हो रहे थे, उनसे भारतवासी बहुत प्रभावित हुए तथा वे भारत में भी इस प्रकार की व्यवस्थाएँ स्थापित करने के लिए प्रयत्नशील हो गए।

(7) विज्ञान की प्रगति—अँग्रेजों के आगमन से भारत में विज्ञान की अत्यधिक अभिवृद्धि हुई और विज्ञान द्वारा आविष्कृत वस्तुओं से भारत को भी अत्यधिक लाभ पहुँचा। भारत में सर्वप्रथम लॉर्ड डलहौजी ने रेल, डाक, तार आदि का प्रचार किया था। विज्ञान के प्रचार के फलस्वरूप भारतीयों का अन्धविश्वास और उनकी कूप-मण्डूकता समाप्त हो गई तथा भारत उन्नति के पथ पर अग्रसर होने लगा।

(8) मध्यम वर्ग का उदय—अँग्रेजों की एक अन्य देन; भारत में नवीन मध्यम वर्ग की उत्पत्ति थी। यह मध्यम वर्ग उन शिक्षित लोगों का था, जो पाश्चात्य सभ्यता और संस्कृति के प्रति विशेष रूप से आकृष्ट हुए थे। कालान्तर में यह वर्ग प्रबुद्ध बनकर, देशवासियों में राष्ट्रीयता की भावना को जाग्रत करने लगा।

(9) राष्ट्रीय भावना का विकास—भारत में राष्ट्रीयता की भावना का प्रादुर्भाव भी अँग्रेजों के शासन काल में हुए प्रयासों का ही प्रतिफल है। संयोगवश कांग्रेस की स्थापना ए० ओ० ह्यूम नामक एक अँग्रेज द्वारा की गई थी और राष्ट्रीय कांग्रेस को अपने शैशवकाल में अँग्रेजों से बड़ा प्रोत्साहन प्राप्त हुआ था। सारे देश में एक-सा कानून, एक-सा दण्ड विधान और एक ही राष्ट्रभाषा की व्यवस्था कर, अँग्रेजों ने एकता और राष्ट्रीयता की भावना को विकसित करने में अप्रत्यक्ष रूप से, अत्यन्त महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था।

(10) सामाजिक कुरीतियों का अन्त—ब्रिटिश शासनकाल में ही बाल-विवाह, सती-प्रथा, मनुष्यों की बलि आदि कुप्रथाओं को रोका गया, ठगों और पिण्डारियों का दमन किया गया, विधवा-विवाह को वैध घोषित किया गया और बाल-विवाह को रोक दिया गया। इस प्रकार, ब्रिटिश शासन के फलस्वरूप भारतीय सामाजिक व्यवस्था में अनेक परिवर्तन हुए।

(11) औद्योगीकरण को प्रोत्साहन—अँग्रेजों के शासनकाल में ही भारत का औद्योगीकरण प्रारम्भ हुआ था और विदेशी व्यापार में वृद्धि हुई थी।

(12) ईसाई धर्म का प्रचार—अँग्रेजों और अन्य यूरोपीय जातियों के आगमन से ही भारत में ईसाई धर्म का प्रचार प्रारम्भ हुआ था।

(13) अँग्रेजी भाषा का प्रचार—अँग्रेजी भाषा के अध्ययन से भारतीयों को बहुत बड़ा लाभ हुआ। इससे उन्हें विदेश जाने में बड़ी सुविधा हुई और राष्ट्रीयता की भावना के जागरण में भी पर्याप्त सहयोग मिला।

(14) साहित्य का विकास—भारतीय साहित्य में नूतन प्रवृत्तियों का विकास; अँग्रेजी साहित्य के कारण ही हुआ। इसके प्रभावस्वरूप विषय के चुनाव, शैली, विचारधारा सभी में नवीनता आ गई। छायावाद और प्रगतिवाद आदि पाश्चात्य मनोवृत्तियाँ साहित्य में अपनाई गईं। इससे साहित्य के विकास में नवचेतना जाग्रत हुई।

(15) प्राचीन भारतीय सभ्यता व संस्कृति की रक्षा—भारत में पुरातत्त्व विभाग की स्थापना ब्रिटिश शासनकाल में ही हुई थी। इस विभाग ने उत्खनन का कार्य कर, भारत की प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का पता लगाया तथा उसे सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया। हमें अपने प्राचीन साहित्य तथा कला का ज्ञान अँग्रेजों के माध्यम से ही प्राप्त हुआ है। अँग्रेजी सभ्यता ने ही हमें अपनी पुरातन उच्चतम संस्कृति का ज्ञान करवाया है।

उपर्युक्त विवरण के आधार पर यह स्पष्ट हो जाता है कि पाश्चात्य सभ्यता का भारत पर अनेक रूपों में प्रभाव परिलक्षित होता है। निश्चय ही भारत को अँग्रेजों की देन प्रत्येक क्षेत्र में उल्लेखनीय है। इस सन्दर्भ में यह कथन भी पूर्णतः उपयुक्त ही है कि, **"पाश्चात्य सभ्यता ने भारतीयों को एक नए युग में प्रवेश करा दिया और विज्ञान की उपलब्धियों से भारतीय विशिष्ट रूप से लाभान्वित हुए।"**

प्रश्न 5—"किसी अन्य वायसराय ने करोड़ों व्यक्तियों के कल्याण के लिए इतना कार्य नहीं किया, जितना लॉर्ड रिपन ने किया।" इस कथन का विश्लेषण कीजिए।

अथवा **लॉर्ड रिपन के सुधारों का वर्णन कीजिए।** *(1990)*

अथवा **लॉर्ड रिपन के लोकप्रियता के कारणों की विवेचना कीजिए।**

अथवा **"लॉर्ड रिपन का काल सुधारों का काल था।" इस कथन का लॉर्ड रिपन द्वारा किए गए सुधारों के आधार पर परीक्षण कीजिए।**

उत्तर—

लॉर्ड रिपन के सुधार

लॉर्ड रिपन ने 8 जून, 1880 ई० को भारत आकर वायसराय का पद ग्रहण किया। अँग्रेज होते हुए भी वह भारतीयों के कल्याण का पोषक था। वह शान्ति और स्वायत्त शासन का समर्थक था। यहाँ उसने जो कुछ सुधार किए उन सबमें उसने भारतीयों के हितों का पूर्णरूप से ध्यान रखा। इसलिए वह अपने मात्र चार वर्ष के कार्यकाल में इतना अधिक प्रसिद्ध हो गया कि उसके इंग्लैण्ड वापस लौट जाने पर भी भारतीय उसकी प्रशंसा करते रहे।

लॉर्ड रिपन ने भारतीयों के कल्याण को ध्यान में रखकर निम्नलिखित सुधार किए—

(1) स्वायत्त शासन का प्रबन्ध—1881 ई० में रिपन ने एक नियम पारित किया जिसमें प्रान्तीय सरकारों को आज्ञा दे दी गई कि वे अपनी आय का कुछ भाग स्थानीय संस्थाओं को दें और इन स्थानीय संस्थाओं को कुछ स्थानीय महत्त्वपूर्ण कार्य भी सौंपें। यह भी निर्दिष्ट किया गया कि इन संस्थाओं के सदस्य कम हों और अधिकांश सदस्य जनता के मतों द्वारा चुने जाने चाहिए। स्थानीय संस्थाओं के उत्थान में रिपन का उद्देश्य भारतीयों को स्वायत्त शासन या स्वशासन के योग्य बनाना था। उसकी इच्छा भारतीयों को इस योग्य बनाने की थी कि जब वे स्वतन्त्र हों, उस समय वे अपना शासन भली-भाँति संचालित कर सकें, लेकिन संस्थाओं के सम्बन्ध में जो कानून प्रान्तीय सरकार ने बनाए, उनमें रिपन के विचारों का पालन पूर्णरूप से नहीं किया गया।

(2) प्रेस की स्वतन्त्रता—रिपन के पूर्व वायसराय के पद पर रहे लॉर्ड लिटन ने 1878 ई० में वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट पारित करके भारतीय समाचार-पत्रों की स्वतन्त्रता छीन ली थी। इस एक्ट के फलस्वरूप सरकार के विरुद्ध कोई विचार व्यक्त नहीं कर सकता था और न लेख आदि प्रकाशित कर सकता था। इससे भारतीय जनता में बड़ा असन्तोष व्याप्त हो गया था। लॉर्ड रिपन भारतीयों के प्रति इसे अन्याय समझता था। इसलिए उसने लॉर्ड लिटन के प्रेस एक्ट को समाप्त करके प्रेस को पूर्ण स्वतन्त्र कर दिया।

(3) फैक्ट्री एक्ट—सबसे पहले लॉर्ड रिपन ने ही 1881 ई० में कारखाना अधिनियम पारित किया था। उसने यह देखा कि मिल व कारखानों के मालिक बहुत कम पारिश्रमिक पर बच्चों, स्त्रियों आदि से मनमाने समय तक काम ले रहे हैं। उसने इस 'फैक्ट्री एक्ट' द्वारा बच्चों की आयु और उनके कार्य के घण्टे निश्चित कर दिए तथा और भी ऐसे कई आदेश मालिकों को दिए, जो श्रमिकों के हित में थे।

लॉर्ड रिपन के सुधार

(1) स्वायत्त शासन का प्रबन्ध
(2) प्रेस की स्वतन्त्रता
(3) फैक्ट्री एक्ट
(4) स्वतन्त्र व्यापार की नीति
(5) जनगणना का प्रारम्भ
(6) शिक्षा आयोग की नियुक्ति
(7) इल्बर्ट बिल।

(4) स्वतन्त्र व्यापार की नीति—उसने स्वतन्त्र व्यापार की नीति अपनाई। उसने 1882 ई० में शराब, अस्त्र-शस्त्र को छोड़कर, शेष सभी विदेशी वस्तुओं और नमक पर से चुंगी हटा दी। इससे व्यापार एवं वाणिज्य की अभूतपूर्व उन्नति हुई।

(5) जनगणना का प्रारम्भ—भारत में जनगणना की व्यवस्था का प्रारम्भ रिपन ने ही करवाया था। प्रत्येक धर्म व प्रत्येक जाति के लोगों की संख्या का ज्ञान प्राप्त करने और कार्यरत एवं बेरोजगार व्यक्तियों का पता लगाने के उद्देश्य से उसने 1881 ई० में प्रथम बार जनगणना करवाई और फिर हर दस वर्ष बाद जनगणना की व्यवस्था की।

(6) शिक्षा आयोग की नियुक्ति—यहाँ की शिक्षा व्यवस्था में रिपन ने अनेक दोष देखे; अतः इन दोषों को दूर करने के लिए उसने हण्टर महोदय की अध्यक्षता में एक शिक्षा आयोग की नियुक्ति की। इसलिए यह आयोग **'हण्टर कमीशन'** के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस आयोग का काम भारतीय शिक्षा की समस्याओं को जानना और उनके सुधार हेतु सुझाव देना था। रिपन का प्रमुख उद्देश्य जनसाधारण को सामान्य स्तर पर शिक्षित करना था।

(7) इल्बर्ट बिल—1883 ई० तक भारतीय; सेशन जज व मजिस्ट्रेट के पदों पर भी पहुँच गए थे, लेकिन तब भी उन्हें किसी अँग्रेज व्यक्ति का मुकदमा सुनने और उस पर फैसला देने का अधिकार प्राप्त नहीं था। लॉर्ड रिपन को यह बात न्यायोचित नहीं लगी। इसलिए न्याय के क्षेत्र में इस अन्याय को दूर करने के लिए उसने अपनी काउंसिल के कानूनी सदस्य इल्बर्ट से एक बिल पेश करवाया, जो 'इल्बर्ट बिल' के नाम से प्रसिद्ध हुआ। इस बिल के पारित हो जाने पर भारतीय जजों को यूरोपीय लोगों के मुकदमे सुनने और उन पर फैसले देने का अधिकार प्राप्त हो गया। इसलिए अँग्रेजों ने इसके विरोध में इंग्लैण्ड तथा भारत दोनों स्थानों पर व्यापक आन्दोलन किए। फलतः भारतीयों और रिपन की प्रबल इच्छा होते हुए भी यह पारित न हो सका, लेकिन इस घटना से भारतीयों का आत्मसम्मान जाग उठा और उन्हें इस बात का विश्वास हो गया कि बिना संगठन और एकता के कुछ भी प्राप्त करना सम्भव नहीं है।

रिपन ने जो कार्य किए वे भारतीयों के कल्याण एवं उत्थान की भावना से किए। वह स्वशासन का समर्थक था। उसे यह पसन्द नहीं था कि कोई देश दूसरे देश पर शासन करे और उसका शोषण करे। इसलिए वह चाहता था कि भारतीयों में उत्थान की भावना जाग्रत हो और वे स्वशासन का अनुभव प्राप्त करने का प्रयत्न करें। इस प्रकार, उसने भारतीयों के हित में बहुत कुछ किया। इसलिए भारतीयों ने उसे अत्यधिक सम्मान और शुभकामनाएँ दीं। कहा जाता है कि जिस समय वह अपने पद से त्याग-पत्र देकर 1884 ई० में स्वदेश जाने लगा, उस समय उसका अभिनन्दन करने के लिए, बम्बई के सारे मार्ग भरे पड़े थे।

वस्तुतः **"लॉर्ड रिपन का काल सुधारों का ही काल था।"** उसके सम्बन्ध में यह कथन पूर्णतः उचित है कि, **"किसी अन्य वायसराय ने करोड़ों व्यक्तियों के कल्याण के लिए इतना कार्य नहीं किया जितना लॉर्ड रिपन ने किया।"**

प्रश्न 6—लॉर्ड कर्जन के प्रशासनिक कार्यों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए। लॉर्ड कर्जन के उन कार्यों की विवेचना कीजिए, जिनके कारण उसकी आलोचना की जाती है।

अथवा **लॉर्ड कर्जन के सुधारों का वर्णन कीजिए।**

अथवा **"लॉर्ड कर्जन दूरदर्शी राजनीतिज्ञ नहीं था।" इस कथन के प्रकाश में उसकी नीति तथा सुधारों का मूल्यांकन कीजिए।** *(1991, 93)*

उत्तर—

लॉर्ड कर्जन के सुधार

लॉर्ड कर्जन बड़ा महत्त्वाकांक्षी था। उसकी तीव्र इच्छा थी कि वह भारत के प्रत्येक विभाग के दोषों को दूर करके उनका पुनर्गठन करे और अधिकतम संख्या में लोग उसकी प्रशंसा करें। अतः उसने इस उद्देश्य से निम्नलिखित सुधार किए—

(1) आर्थिक सुधार—लॉर्ड कर्जन के आर्थिक सुधार इस प्रकार थे—

(i) उसने 'इम्पीरियल वाणिज्य एवं उद्योग विभाग' की स्थापना की। इसका कार्य भारतीय व्यापार की उन्नति तथा देखभाल करना था।

(ii) कर्जन ने नमक पर से आधा कर (Tax) हटा दिया।

(iii) उसने उन प्रान्तों में लगान भी कम कर दिया, जहाँ 1902 ई० में अकाल पड़ा था।

(iv) उसने विनिमय की समस्या को दूर करने के लिए सावरेन (अँग्रेजी सिक्के) को सरकारी मुद्रा घोषित कर दिया।

इन सब सुधारों के फलस्वरूप भारतीयों की आर्थिक स्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ।

(2) कृषि सम्बन्धी सुधार—कृषि के क्षेत्र में निम्नलिखित सुधार किए गए—

(i) किसानों को कम ब्याज पर ऋण प्राप्त हो सके, इसके लिए उसने कृषि बैंकों और सहकारी समितियों की स्थापना की।

(ii) उसने कृषकों की दशा सुधारने के लिए 1902 ई० में 'पंजाब भूमि हस्तान्तरण' नियम पारित किया। इस कानून द्वारा यह नियम बनाया गया कि किसानों को ऋण देने वाले, ऋण के बदले में उनकी भूमि नहीं ले सकते हैं। इससे किसानों को लाभ हुआ।

(iii) उसने किसानों को वैज्ञानिक ढंग से कृषि करने के लिए न केवल प्रोत्साहित किया, वरन् समुचित सुविधाएँ भी दीं।

(iv) लॉर्ड कर्जन ने सिंचाई की समुचित व्यवस्था के लिए 20 वर्षों में 44 करोड़ रुपये व्यय करने की योजना बनाई।

(v) इस योजना के द्वारा उसने पंजाब, चिनाब, झेलम, दोआब आदि में नहरों का निर्माण कार्य प्रारम्भ किया।

(3) शिक्षा सम्बन्धी सुधार—लॉर्ड कर्जन ने शिक्षा के क्षेत्र में भी कुछ सुधार किए। उसके प्रयत्नों के फलस्वरूप 1904 ई० में विश्वविद्यालयों के सम्बन्ध में एक नियम पारित हुआ। इस बिल के द्वारा विश्वविद्यालयों के अधिकारों में कुछ कटौती कर दी गई और अब ये परीक्षण संस्थाएँ न रहकर शिक्षा के केन्द्र भी बना दिए गए।

प्रारम्भिक शिक्षा की उन्नति के लिए उसने 2 लाख 30 हजार पौण्ड वार्षिक अनुदान की भी व्यवस्था की। इसके अतिरिक्त, उसने प्रारम्भिक कक्षाओं में देशी भाषा और उच्च स्तरीय शिक्षा में अँग्रेजी भाषा के माध्यम की व्यवस्था की। अध्यापक अपने व्यवसाय में पूर्ण निपुण हों, इसके लिए उसने टीचर्स ट्रेनिंग स्कूल खुलवाए।

(4) शासन सम्बन्धी सुधार—लॉर्ड कर्जन ने शासन के क्षेत्र में निम्नलिखित सुधार किए—

(i) लॉर्ड कर्जन से पूर्व रेलों का प्रबन्ध और नियन्त्रण कम्पनी करती थी और कुछ कार्य भारत सरकार का 'सार्वजनिक निर्माण विभाग' करता था। उसने इस व्यवस्था को समाप्त करके एक तीन सदस्यीय रेलवे बोर्ड की स्थापना की और उसे रेलवे से सम्बन्धित समस्त कार्य और अधिकार सौंप दिए।

(ii) उसने पुलिस विभाग में व्याप्त भ्रष्टाचार को दूर करने के लिए सिपाहियों के वेतन बढ़ाए, प्रत्येक प्रान्त में एक गुप्तचर विभाग खोला तथा सिपाहियों और अधिकारियों के प्रशिक्षण के लिए पुलिस ट्रेनिंग

विद्यालयों की स्थापना की। इस व्यवस्था को सुचारु रूप से चलाने के लिए उसने पुलिस विभाग पर लगभग 26 लाख पौण्ड व्यय करने का निश्चय किया।

(iii) उसका एक निन्दनीय कार्य बंगाल के विभाजन का कार्य था। हिन्दू और मुसलमानों द्वारा प्रबल विरोध करने पर भी उसने एक कानून बनाकर बंगाल को दो भागों में विभाजित कर दिया। इससे समस्त भारतीय क्षुब्ध होकर आन्दोलन करने के लिए विवश हो गए। अतः विरोध में हुए उग्र प्रदर्शनों के परिणामस्वरूप दोनों भागों को पुनः एक में मिला दिया गया। इस कार्य में कर्जन का उद्देश्य भारतीयों की शक्ति को क्षीण करना था।

(iv) उसने बंगाल की व्यवस्थापिका सभा से एक अधिनियम पारित करवाया, जिसके अनुसार स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं के अधिकार सीमित कर दिए गए। भारतीयों की योग्यता पर विश्वास न होने के कारण वह भारतीयों को ऊँचे पदों पर नियुक्त करने का समर्थक नहीं था।

लॉर्ड कर्जन के सुधार

(1) आर्थिक सुधार
(2) कृषि सम्बन्धी सुधार
(3) शिक्षा सम्बन्धी सुधार
(4) शासन सम्बन्धी सुधार
(5) ऐतिहासिक इमारतों की रक्षा का प्रबन्ध।

(5) ऐतिहासिक इमारतों की रक्षा का प्रबन्ध—लॉर्ड कर्जन को भारतीय ऐतिहासिक इमारतों से बहुत लगाव था; अतः उसने प्राचीन इमारतों को नष्ट करना अथवा क्षति पहुँचाना दण्डनीय अपराध घोषित कर दिया और इनके जीर्णोद्धार की व्यवस्था के लिए एक अलग विभाग खोला, जो पुरातत्त्व विभाग के नाम से प्रसिद्ध हुआ। उसने इस सम्बन्ध में 1904 ई० में एक अधिनियम भी पारित करवाया जिसके द्वारा प्राचीन इमारतों की देखभाल का उत्तरदायित्व सरकार को सौंपा गया। उसका यह कार्य अत्यन्त प्रशंसनीय था।

लॉर्ड कर्जन के कार्यों का मूल्यांकन

लॉर्ड कर्जन एक योग्य तथा बुद्धिमान वायसराय था। उसने जो भी सुधार कार्य किए, उनसे भारतीयों को पर्याप्त लाभ हुआ। वह भारतीयों की स्थिति में सुधार तो लाना चाहता था, लेकिन उन पर ब्रिटिश सरकार का अधिकार बना रहे, यह अवश्य चाहता था। इसीलिए उसने भारतीयों की एकता समाप्त करने के लिए बंगाल का विभाजन किया था। उसने कुछ और भी अप्रिय कार्य किए थे जिनके कारण वह भारतीयों में प्रशंसा का पात्र न बन सका। इसी कारण यह कहा जाता है कि, "लॉर्ड कर्जन दूरदर्शी राजनीतिज्ञ नहीं था।" लेकिन अँग्रेज विद्वानों ने उसके कार्यों की बहुत प्रशंसा की है। सी० ई० रॉबर्ट महोदय ने उसकी प्रशंसा करते हुए लिखा है कि, **"लॉर्ड कर्जन का नाम उन भारतीय गवर्नर जनरलों में सबसे आगे रहेगा जिन्होंने उल्लेखनीय भूमिकाएँ निभाई थीं।"**

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—उन्नीसवीं शताब्दी में होने वाले चार समाज-सुधार आन्दोलनों के नामों का उल्लेख कीजिए। *(1999)*

उत्तर—चार प्रमुख समाज-सुधार आन्दोलन हैं—
(1) ब्रह्म समाज आन्दोलन,
(2) आर्य समाज आन्दोलन,
(3) रामकृष्ण मिशन आन्दोलन तथा
(4) थियोसोफिकल सोसायटी आन्दोलन।

प्रश्न 2—उन्नीसवीं शताब्दी के चार भारतीय समाज-सुधारकों के नाम लिखिए।

उत्तर—उन्नीसवीं शताब्दी में अनेक समाज-सुधारकों का प्रादुर्भाव हुआ जिनमें से चार प्रमुख थे—
(1) राजा राममोहन राय,
(2) स्वामी दयानन्द सरस्वती,
(3) स्वामी विवेकानन्द तथा
(4) रामकृष्ण परमहंस।

प्रश्न 3—लॉर्ड कर्जन के बंगाल विभाजन पर संक्षिप्त प्रकाश डालिए।

अथवा **लॉर्ड कर्जन द्वारा किए गए बंगाल के विभाजन का भारतीय जनता ने क्यों विरोध किया ?** *(1994)*

उत्तर—बंगाल का विभाजन—लॉर्ड कर्जन का एक मूर्खतापूर्ण कार्य बंगाल का विभाजन था। 1905 ई० में उसने बंगाल की राष्ट्रीयता को समाप्त करने के लिए उसे साम्प्रदायिक आधार पर दो भागों में विभाजित कर दिया। यह फूट डालकर शासन करो की नीति का अनुसरण था। सम्पूर्ण भारत ने इसे राष्ट्रवाद के लिए चुनौती समझा। सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के शब्दों में, "बंगाल का विभाजन हमारे ऊपर बम की तरह गिरा। हमने समझा हमारा घोर अपमान किया गया है।" बंगाल विभाजन के विरुद्ध उद्वेलनकारी आन्दोलन प्रारम्भ हुआ, तो सरकार ने भयंकर दमन चक्र चलाया। तब नवयुवकों ने समझा कि प्रभावशाली उपायों की आवश्यकता है, जिससे आतंकवाद का जन्म हुआ और बंगाल क्रांतिकारियों का केन्द्र बन गया।

प्रश्न 4—लॉर्ड रिपन के दो सुधारों का संक्षेप में विवरण दीजिए। *(1990)*

उत्तर—(संकेत—इसी अध्याय में दीर्घ उत्तरीय प्रश्न संख्या 5 के उत्तर में से लॉर्ड रिपन के किन्हीं दो सुधारों का अवलोकन कीजिए।)

प्रश्न 5—एशियाटिक सोसायटी का संक्षिप्त परिचय दीजिए। *(1994)*

उत्तर—

एशियाटिक सोसायटी

सन् 1784 ई० में कलकत्ता में एशियाटिक सोसयटी की स्थापना हुई। इसकी स्थापना में सर विलियम जोन्स, वारेन हेस्टिंग्स, विलकिन्स तथा हेलहेड का महत्त्वपूर्ण योगदान था। इस संस्था के निम्नलिखित उद्देश्य थे—

(1) लोगों को भारत की पुरातन संस्थाओं, जातियों का प्राचीन इतिहास, भाषा, साहित्य, कला, विज्ञान आदि का ज्ञान कराना।

(2) भारत की प्राचीन व दुर्लभ पाण्डुलिपियों की खोज करके उनके प्रकाशन का प्रबन्ध करना।

एशियाटिक सोसायटी के कार्य

सर विलियम जोन्स, जान शोर, हेनरी टामस, कोलब्रुक, डॉ० जान विल्सन, डॉ० राजेन्द्रलाल मिश्र, मानकजी करसेटजी, प्रो० बालशास्त्री जाम्भेकर, डॉ० माउदाजी, सर रामकृष्ण गोपाल भण्डारकर आदि शिक्षा-विशारदों के निर्देशन में इस संस्था ने निम्नलिखित कार्य किए—

(1) इसने संस्कृत, अरबी, फारसी, चीनी, तिब्बती आदि भाषाओं के अनेक दुर्लभ ग्रन्थों को एकत्र कर उनका प्रकाशन कराया।

(2) इसने प्राचीन ग्रन्थों की पाण्डुलिपियों की खोज कराई और उनके प्रकाशन का प्रबन्ध किया।

(3) इसने एक विशाल संग्रहालय बनाया, जिसमें प्राचीन सिक्कों व दुर्लभ वस्तुओं को एकत्रित किया गया।

(4) इसने विभिन्न विषयों पर शोधपूर्ण लेख 'एशियाटिक रिसर्च' नामक पत्रिका में प्रकाशित करवाए।

(5) हमारे भारतीय विद्वानों को प्राचीन साहित्य का अध्ययन करने और उनका पुनरुद्धार करने के लिए प्रेरित किया।

प्रश्न 6—स्वाधीनता से पूर्व के युग के आर्य समाज के किसी एक नेता के जीवन और कार्यों पर प्रकाश डालिए।

उत्तर—(संकेत—इस प्रश्न के उत्तर हेतु इसी अध्याय के दीर्घ उत्तरीय प्रश्न संख्या 1 के अन्तर्गत स्वामी दयानन्द सरस्वती के जीवन परिचय का अवलोकन कीजिए।)

प्रश्न 7—भारत में कृषि की उन्नति के लिए लॉर्ड कर्जन का क्या योगदान था ? *(1987)*

उत्तर—(संकेत—इस प्रश्न के उत्तर के लिए इसी अध्याय के अन्तर्गत दीर्घ उत्तरीय प्रश्न संख्या 6 में 'कृषि सम्बन्धी सुधार' नामक शीर्षक का अवलोकन कीजिए।)

प्रश्न 8—भारत में राष्ट्रीयता की भावना के उदय के किन्हीं दो कारणों पर प्रकाश डालिए। *(1993)*

उत्तर—(संकेत—इसी अध्याय में दीर्घ उत्तरीय प्रश्न संख्या 3 के अन्तर्गत 'पाश्चात्य साहित्य' एवं 'भारतीयों का आर्थिक शोषण' नामक शीर्षकों का विवरण देखिए।)

प्रश्न 9—आर्य समाज का भारत के नवजागरण में क्या योगदान है? *(1997)*

उत्तर—आर्य समाज के माध्यम से बाल विवाह, जाति प्रथा, अस्पृश्यता आदि भारतीय समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने का प्रयास किया गया। इसके संस्थापक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने भारत की गौरवपूर्ण प्राचीन संस्कृति को अपनाने पर विशेष बल दिया। इससे भारतीयों में नवचेतना जाग्रति हुई और राष्ट्रीय एकता को प्रोत्साहन मिला।

प्रश्न 10—आर्य समाज की प्रमुख शिक्षाओं का उल्लेख कीजिए। *(1999)*

उत्तर—(संकेत—इसी अध्याय के दीर्घ उत्तरीय प्रश्न संख्या 1 के उत्तर का अवलोकन कीजिए।)

ऐतिहासिक तिथियों एवं व्यक्तियों पर आधारित प्रश्न

प्रश्न 1—निम्नांकित तिथियों के ऐतिहासिक महत्त्व पर टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) **1802 ई०** *(1994)*—इस तिथि को अँग्रेजों तथा पेशवा के मध्य बेसीन की सन्धि हुई।

(2) **1809 ई०** *(1990, 95, 96, 99)*— इस तिथि को अँग्रेजों और सिक्खों के मध्य अमृतसर की सन्धि हुई थी।

(3) **1828 ई०**—इस तिथि को राजा राममोहन राय ने कलकत्ता में एक सुधारवादी संस्था ब्रह्म समाज की स्थापना की थी।

(4) **1829 ई०** *(1994, 95, 99)*— इस तिथि को लॉर्ड विलियम बैंटिंक ने भारत में प्रचलित सती-प्रथा पर कठोर प्रतिबन्ध लगा दिया था।

(5) **1875 ई०** *(1994)*—इस तिथि को स्वामी दयानन्द सरस्वती ने बम्बई में आर्य समाज नामक संस्था की स्थापना की थी। इसी तिथि को सर सैयद अहमद खाँ ने अलीगढ़ में **'मोहम्मडन ऐंग्लो ओरियण्टल कॉलेज'** की स्थापना की थी, जो वर्तमान में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के नाम से प्रसिद्ध है।

(6) **1883 ई०** *(1993, 95, 99)*—इस वर्ष केन्द्रीय व्यवस्थापिका में इल्बर्ट बिल पेश किया गया था।

प्रश्न 2—निम्नांकित ऐतिहासिक व्यक्तियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) **राजा राममोहन राय** *(1988, 93, 95, 99)*—राजा राममोहन राय आधुनिक भारत के निर्माता और भारत में नवजागरण के अग्रदूत थे। उनका जन्म 1774 ई० में बंगाल के राधानगर नामक स्थान पर हुआ था। उन्होंने अँग्रेजी, फारसी, अरबी और संस्कृत भाषा का अध्ययन किया और सूफी, इस्लाम तथा ईसाई धर्मों से प्रेरणा प्राप्त की। आप अँग्रेजी भाषा और पाश्चात्य सभ्यता के समर्थक थे।

राजा राममोहन राय ने हिन्दू समाज और हिन्दू धर्म में व्याप्त अन्धविश्वासों और कुरीतियों को दूर करने के लिए 1828 ई० में कलकत्ता में ब्रह्म समाज नामक संस्था की स्थापना की थी। वे बाल विवाह, पर्दा-प्रथा और सती-प्रथा के प्रबल विरोधी थे। उन्होंने विधवा विवाह का समर्थन किया था। वे महान् समाज-सुधारक और सच्चे मानवतावादी थे।

(2) **स्वामी दयानन्द सरस्वती** *(1990, 95, 97)*—स्वामी दयानन्द एक सच्चे भारतीय, पक्के देशभक्त और महान् समाज-सुधारक थे। उनका जन्म 1824 ई० में गुजरात के टंकारा नामक स्थान पर हुआ था। 14 वर्ष की आयु में ही आपने वैराग्य ग्रहण कर, 25 वर्षों तक वेदों का गहन अध्ययन किया और अनेक स्थानों का पर्यटन किया। 1875 ई० में आपने 'आर्य समाज' नामक संस्था की स्थापना की और 'सत्यार्थ प्रकाश' नामक एक ग्रन्थ भी लिखा। स्वामी दयानन्द ने विभिन्न धर्मों के रूढ़िवाद और अन्धविश्वासों का

खण्डन किया और समाज में व्याप्त बाल विवाह, जाति-प्रथा, अस्पृश्यता और धर्म-परिवर्तन जैसी कुरीतियों का विरोध किया। उन्होंने भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना का प्रसार किया और शिक्षा के क्षेत्र में अनेक सुधार किए। उन्होंने विधवा-पुनर्विवाह का समर्थन करके, नारियों की दशा सुधारने के लिए सराहनीय कार्य किए।

(3) स्वामी विवेकानन्द *(1991, 92, 93, 94, 95, 97)*—स्वामी विवेकानन्द रामकृष्ण परमहंस के प्रमुख शिष्य थे। उनका जन्म 1863 ई० में कलकत्ता के एक उच्च कायस्थ परिवार में हुआ था। उनका बचपन का नाम नरेन्द्रनाथ था। 1881 ई० में उनकी भेंट रामकृष्ण परमहंस से हुई। उनके प्रभाव से आप एक महान् आध्यात्मिक चिंतक बन गए। आपने भारतीय दर्शन और वेदान्त का गहन अध्ययन किया। 1893 ई० में आपने अमेरिका के नगर शिकागो में होने वाले विश्व धर्म सम्मेलन में भाग लिया। इस सम्मेलन में आपने एक प्रभावशाली भाषण देकर विश्वभर में हिन्दू धर्म की सर्वश्रेष्ठता को सिद्ध कर दिया।

सन् 1897 ई० में स्वामी विवेकानन्द ने अपने गुरु की स्मृति में रामकृष्ण मिशन नामक संस्था की स्थापना की। इस संस्था का उद्देश्य भारत में सामाजिक और धार्मिक सुधार करना था। वास्तव में, आप एक महान् समाज-सुधारक और आध्यात्मिक सन्त थे।

(4) रामकृष्ण परमहंस—रामकृष्ण परमहंस का वास्तविक नाम गदाधर चट्टोपाध्याय था। आपका जन्म 18 फरवरी, 1836 ई० को बंगाल के हुगली जिले में हुआ था। बीस वर्ष की आयु में आपने संन्यास ग्रहण करके तांत्रिक योग, वेदान्त और वैष्णव मत का अध्ययन कर, एक महान् योगी के रूप में ख्याति अर्जित की। आप सर्वधर्म समन्वयवादी और समाज-सुधारक नेता थे।

(5) जस्टिस रानाडे—रानाडे का जन्म; महाराष्ट्र के नासिक जिले में 18 फरवरी, 1842 ई० को हुआ था। आपने अपना सार्वजनिक जीवन एलफिन्स्टन कॉलेज के अध्यापक के रूप में प्रारम्भ किया और बाद में आप सहायक न्यायाधीश बन गए। आपने **'सार्वजनिक सभा'** नामक संस्था की स्थापना की और एक पत्रिका का सम्पादन भी किया। आपने भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना का संचार करने के लिए अनेक सराहनीय कार्य किए। वे एक महान् अर्थशास्त्री और इतिहासकार भी थे।

(6) सर सैयद अहमद खाँ *(1994, 95, 97, 99)*—अलीगढ़ आन्दोलन के जन्मदाता सर सैयद अहमद खाँ का जन्म 1817 ई० में दिल्ली में हुआ था। उन्होंने पाश्चात्य साहित्य का अध्ययन किया था और वे अँग्रेजों के परम भक्त थे। उन्होंने भारतीय मुसलमानों में चेतना जाग्रत करने के लिए उन्हें पाश्चात्य ज्ञान-विज्ञान का अध्ययन करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने 1875 ई० में अलीगढ़ में **'मोहम्मडन एंग्लो ओरियण्टल कॉलेज'** की स्थापना की, जो कालान्तर में अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय के रूप में परिणत हो गया। प्रारम्भ में, सर सैयद अहमद खाँ हिन्दू-मुस्लिम एकता के समर्थक थे, किन्तु बाद में अँग्रेजों के प्रभाव में आकर वे साम्प्रदायिक व मुस्लिम हितों के संरक्षक बन गए थे।

(7) श्रीमती ऐनी बेसेन्ट *(1993, 95, 96, 99)*—यह एक आयरिश महिला थीं। 1893 ई० में श्रीमती ऐनी बेसेन्ट भारत आईं और अड्यार (मद्रास) स्थित थियोसोफिकल सोसायटी की अध्यक्षा बनीं। श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने हिन्दू धर्म की बड़ी प्रशंसा की और तिलक जी के साथ मिलकर भारत की स्वाधीनता के लिए होम रूल आन्दोलन चलाया। आप एक बार कांग्रेस अधिवेशन की अध्यक्षा भी बनीं। आपने शिक्षा के विकास में भी महत्त्वपूर्ण योगदान दिया था।

11

कांग्रेस की स्थापना और राष्ट्रीय आन्दोलन (1885-1947 ई०)

[राष्ट्रीय आन्दोलन और कांग्रेस की स्थापना के कारण, राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास, राष्ट्रीय आन्दोलन में महात्मा गांधी का योगदान]

"गांधी जी ही केवल भारत के राष्ट्रीय इतिहास के ऐसे नायक हैं जिनकी किंवदन्तियाँ युगों तक प्रसिद्ध रहेंगी। उन्होंने समस्त मानव वर्ग के सन्तों और महात्माओं में अपना स्थान प्राप्त किया है और उनके व्यक्तित्व का प्रकाश सम्पूर्ण विश्व में फैला हुआ है।"

— रोम्या रोलां

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1 — भारत में 1885 ई० से आरम्भ होने वाले राष्ट्रीय आन्दोलन के कारणों की व्याख्या कीजिए।

अथवा **भारत में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के विभिन्न कारणों की व्याख्या कीजिए।**

अथवा **"लॉर्ड लिटन के दमनकारी कार्य राष्ट्रीय चेतना के विकास के मूलाधार थे।" समालोचना कीजिए।**

अथवा **भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के प्रमुख कारणों की विवेचना कीजिए।** *(1997)*

उत्तर— राष्ट्रीय आन्दोलन और कांग्रेस की स्थापना के कारण

सन् 1857 ई० का स्वाधीनता संग्राम इतिहास की एक अभूतपूर्व घटना थी। यद्यपि इस संग्राम में भारतीयों को सफलता न मिल सकी, तथापि भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना और राष्ट्रीय प्रेम की भावना जाग्रत हुई जिसके फलस्वरूप 1885 ई० में अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। संक्षेप में, भारत में राष्ट्रीय आन्दोलन के उदय व राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना के प्रमुख कारणों को निम्नलिखित सन्दर्भों में जाना जा सकता है—

(1) धार्मिक आन्दोलन—भारतीय जनता में राष्ट्रीयता की भावना को जाग्रत करने में धार्मिक आन्दोलनों ने बड़ा महत्त्वपूर्ण योगदान दिया। भारत के इतिहास में उन्नीसवीं शताब्दी; धार्मिक एवं सामाजिक आन्दोलनों की शताब्दी थी। राजा राममोहन राय ने ब्रह्म समाज के माध्यम से, भारतीय जनता में अपनी प्राचीनतम गौरवमयी सभ्यता एवं परम्परा के प्रति विश्वास और आस्था को जगाया। इसके साथ ही अनेक संस्थाओं—आर्य समाज, ब्रह्म समाज, रामकृष्ण मिशन एवं थियोसोफिकल सोसायटी आदि ने भारतीयों के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में अनेक सुधार किए और भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना जगाई। इस सन्दर्भ में श्री इन्द्र विद्या वाचस्पति ने लिखा है, **"जब लम्बी दासता से बंजर हुई भारत की भूमि को सशस्त्र क्रान्ति के विशाल हल ने खोदकर तैयार कर दिया और जब सुधारकों ने उसमें मानसिक स्वाधीनता के बीज बो दिए, तब यह सम्भव हो गया कि उसमें राजनीतिकता के अंकुर उत्पन्न हों।"**

(2) पाश्चात्य साहित्य का योगदान—हमारी राष्ट्रीय चेतना के विकास में पाश्चात्य साहित्य ने अत्यधिक सहायता दी। भारत में अँग्रेजों का शासन होने से पाश्चात्य साहित्य बिना रोक-टोक और भारी मात्रा में आता था। इसके फलस्वरूप भारतीय नवयुवकों को जॉन स्टुअर्ट मिल, स्पेंसर, रूसो, टालस्टॉय एवं मिल्टन आदि विदेशी लेखकों और कवियों की, स्वतन्त्रता एवं समानता के विचारों से परिपूर्ण कृतियों के अध्ययन का अवसर मिला और उनमें स्वतन्त्रता-प्राप्ति की उग्र भावना पनपने लगी।

(3) अँग्रेजी शिक्षा का प्रभाव—भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना की जागृति में अँग्रेजी शिक्षा ने बहुत अधिक योगदान दिया। अँग्रेजी शासन के अन्तर्गत भारत के प्रत्येक कोने में शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार हुआ। इससे देश में भाषा पर आधारित एकता स्थापित हो गई और इससे विभिन्न प्रान्तों के प्रबुद्ध लोगों को आपस में (अँग्रेजी के माध्यम से) विचार-विमर्श करने में बड़ी सहायता मिली। डॉ० जकारिया ने

लिखा है, "अँग्रेजों ने सौ वर्ष पूर्व शिक्षा का जो कार्य आरम्भ किया था उससे अधिक हितकर और कोई कार्य उन्होंने भारतवर्ष में नहीं किया।" इस प्रकार, सब प्रान्तों के व्यक्तियों को अपने विचार व्यक्त करने का एक अच्छा माध्यम (अँग्रेजी भाषा) स्वतः ही प्राप्त हो गया, जिससे उन्हें क्रान्ति के कार्यक्रमों को सफल बनाने में पर्याप्त सहायता मिली।

(4) आर्थिक शोषण—वस्तुतः अँग्रेजी शासन का मूल लक्ष्य भारतीयों का शोषण करना था। **'ईस्ट इण्डिया कम्पनी'** ने ऐसी आर्थिक नीति अपनाई, जिससे भारत के अधिकांश कुटीर उद्योग अन्तिम साँसें गिनने लगे और सम्पूर्ण भारतीय व्यापार पर कम्पनी का पूर्ण अधिकार स्थापित हो गया। इससे भारत का अपार धन इंग्लैण्ड को जाने लगा। अतः इस आर्थिक शोषण के फलस्वरूप भारत खोखला होता चला गया और भारतीय जनता भूखों मरने लगी। अनेक भारतीय बेकारी के शिकार हो गए। परिणामस्वरूप भारतीयों में राष्ट्रीय चेतना और क्रान्ति की भावनाएँ उमड़ने लगीं।

राष्ट्रीय आन्दोलन और कांग्रेस की स्थापना के कारण

(1) धार्मिक आन्दोलन
(2) पाश्चात्य साहित्य का योगदान
(3) अँग्रेजी शिक्षा का प्रभाव
(4) आर्थिक शोषण
(5) समाचार-पत्रों का प्रभाव
(6) जातीय भेदभाव की नीति का प्रभाव
(7) ब्रिटिश सरकार के अनुचित कार्य
(8) इल्बर्ट बिल विवाद
(9) लिटन के अन्यायपूर्ण कार्य :
   (i) दरबार समारोह
   (ii) प्रेस की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध
   (iii) शस्त्र अधिनियम का पारित होना।
(10) यातायात के साधनों में वृद्धि।

(5) समाचार-पत्रों का प्रभाव—समाचार-पत्रों ने भी राष्ट्रीय चेतना जगाने में बड़ा सक्रिय सहयोग दिया। प्रारम्भ में लगभग सभी समाचार-पत्र अँग्रेजी भाषा में प्रकाशित होते थे; किन्तु बाद में अनेक लोगों के प्रयत्नों से हिन्दी तथा उर्दू के समाचार-पत्र भी प्रकाशित होने लगे। इनमें राष्ट्रीय प्रेम एवं राष्ट्रीय स्वतन्त्रता की भावना पर आधारित लेख, कविताएँ और भावोत्पादक भाषण व उपदेश प्रकाशित होते थे। इनका मूल्य कम-से-कम होता था, ताकि आम जनता इन्हें खरीद सके और इनका अध्ययन कर सके। इस प्रकार, समाचार-पत्र और पत्रिकाओं ने जन-साधारण में राष्ट्रीय जागृति उत्पन्न करने का सराहनीय कार्य किया।

(6) जातीय भेदभाव की नीति का प्रभाव—अँग्रेज लोग जाति एवं रंग के आधार पर भारतीयों के साथ अत्यधिक भेदभाव करते थे। भारतीयों में योग्यता होने पर भी उन्हें उच्च पदों पर नियुक्त नहीं किया जाता था। उन्हें शासन के कार्यों में हस्तक्षेप करने या भाग लेने का अधिकार भी नहीं था। भारतीय अधिकारियों तक को अँग्रेज लोग अपना दास समझते थे। इससे भारतीयों को बहुत आत्मग्लानि होती थी। अन्ततः आत्मग्लानि की यह भावना दिन-प्रतिदिन बढ़ती गई, जिसके परिणामस्वरूप भारतीयों में स्वतन्त्रता प्राप्ति की भावना बलवती होने लगी।

(7) ब्रिटिश सरकार के अनुचित कार्य—ब्रिटिश शासनकाल में अँग्रेज अधिकारियों ने बड़ी मनमानी की, जिसके कारण भारतीयों में आक्रोशपूर्ण असन्तोष बढ़ गया और उनमें स्वतन्त्रता की भावना बलवती होती गई। बंगाली युवक सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने बड़ी लगन एवं परिश्रम से आई० सी० एस० की परीक्षा उत्तीर्ण की, किन्तु उन्हें साधारण प्रावधान के आधार पर अयोग्य सिद्ध कर दिया गया। बाद में, क्वीन्स बेंच डिवीजन ने उनके पक्ष में फैसला दिया और उन्हें असिस्टेंट मजिस्ट्रेट के पद पर नियुक्त कर दिया, किन्तु दो वर्ष पश्चात् ही उन पर दोषारोपण करके उन्हें पद से हटा दिया गया। फिर वे इंग्लैण्ड गए और वहाँ उन्होंने बैरिस्टरी की परीक्षा उत्तीर्ण की। भारत आने पर उन्होंने नवयुवकों की एक संस्था स्थापित की, जो **'इण्डियन एसोसिएशन'** के नाम से प्रसिद्ध हुई। इसने भारतीयों में राष्ट्रीय भावना जाग्रत करने में सराहनीय कार्य किए।

(8) इल्बर्ट बिल विवाद—लॉर्ड रिपन 1880 ई० में भारत के वायसराय बनकर भारत आए थे। वे एक उत्तरदायी प्रशासक थे। इन्होंने भारतीयों के साथ संतोषजनक व्यवहार किया। इन्हीं के परामर्श से, पी० सी० इल्बर्ट ने काउंसिल में एक विधेयक प्रस्तुत किया। इस बिल का उद्देश्य यह था कि न्याय के

क्षेत्र में जो भेदभाव अँग्रेज और भारतीयों के मध्य है, उसे समाप्त कर दिया जाए। न्याय के क्षेत्र में अँग्रेजों के लिए विशेष कानून एवं अधिकार थे। अतः इस बिल में यह भी व्यवस्था की गई थी कि भारतीय न्यायाधीशों को भी अँग्रेजों के मुकदमे सुनने का अधिकार दिया जाए तथा वे भी अँग्रेजों को दण्ड दे सकें। किन्तु अँग्रेजों ने इसका बहुत विरोध किया जिसके कारण यह विधेयक तो पारित न हो सका, किन्तु भारतीयों को इससे अपनी स्थिति का आभास अवश्य हो गया और भारतीयों की आँखें खुल गईं । प्रो० डालवेल के अनुसार, **"इल्बर्ट बिल ने भारतीयों को शिक्षा दी और सावधान किया।"**

(9) लिटन के अन्यायपूर्ण कार्य—लॉर्ड लिटन के शासनकाल में कुछ ऐसे कार्य सम्पन्न हुए, जो भारतीयों के लिए कष्टदायक सिद्ध हुए तथा जिन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन के उत्थान में सहयोग दिया। ये कार्य इस प्रकार हैं—

(i) दरबार समारोह—1877 ई० में जब दक्षिण की जनता बहुत भयंकर अकाल से पीड़ित थी, उस समय लॉर्ड लिटन ने उस ओर ध्यान न देकर, दिल्ली में एक विशाल दरबार का आयोजन किया जिसमें महारानी विक्टोरिया को भारत की साम्राज्ञी घोषित किया गया। इस भव्य समारोह पर अपार धनराशि व्यय की गई थी। इस समारोह के आयोजन ने भारतीयों के हृदय पर गहरी चोट पहुँचाई और उनमें क्रान्ति की भावना भर उठी।

(ii) प्रेस की स्वतन्त्रता पर प्रतिबन्ध—इसी समय लॉर्ड लिटन ने **वर्नाक्यूलर प्रेस एक्ट** पारित करके देशी भाषाओं के समाचार-पत्रों पर कठोर नियन्त्रण स्थापित कर दिया। समस्त भारतवासियों ने इसका विरोध किया। परिणामस्वरूप लॉर्ड लिटन के उत्तराधिकारी लॉर्ड रिपन को अन्त में यह एक्ट समाप्त करना पड़ा था, किन्तु लिटन के इस कार्य से भारतीय जनता आक्रोश से भर उठी।

(iii) शस्त्र अधिनियम का पारित होना—लॉर्ड लिटन ने ही यह अधिनियम पारित किया था। इस अधिनियम के अनुसार भारतीय बिना लाइसेन्स के कोई भी शस्त्र लेकर घर से बाहर नहीं निकल सकते थे, जबकि अँग्रेज खुलेआम शस्त्र लेकर चलते थे। इससे भारतवासियों को बड़े अपमान का अनुभव हुआ और उनमें अँग्रेजों के प्रति विश्वास नहीं रह गया। जनता में तीव्र असन्तोष व्याप्त हो गया और उनमें स्वतन्त्रता की भावना तीव्र हो उठी। भारतवासी यह अच्छी प्रकार जान गए कि बिना स्वतन्त्र हुए उनका उद्धार सम्भव नहीं है।

वस्तुतः लॉर्ड लिटन के दमनकारी कार्य, राष्ट्रीय चेतना के विकास के मूलाधार थे।

(10) यातायात के साधनों में वृद्धि—ब्रिटिश शासनकर्त्ताओं ने भारत का धन अधिक-से-अधिक और जल्दी-से-जल्दी अपने देश में भेजने हेतु यातायात के साधनों में वृद्धि एवं उन्नति की। इससे भारतीयों को अन्य देशों से भी सम्पर्क स्थापित करने में बड़ी सहायता मिली और उनमें आपस में विचारों का आदान-प्रदान होने लगा। इससे भी राष्ट्रीय भावना की प्रगति में सहायता मिली।

इस प्रकार, पाश्चात्य शिक्षा और अन्य साधनों के माध्यम से भारतवासियों को अपने ध्येय प्राप्ति में सहायता मिली। इसके साथ ही ब्रिटिश सरकार की पक्षपातपूर्ण नीति से भी राष्ट्रीय आन्दोलनों को पर्याप्त बल मिला। इतना ही नहीं, इससे भारतीयों को राष्ट्रीय आन्दोलन चलाने की प्रेरणा भी मिली। अब भारतीयों में राष्ट्र की सुरक्षा हेतु एक राष्ट्रीय संस्था के निर्माण की महती आवश्यकता अनुभव की गई। फलस्वरूप 1885 ई० में अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। 1890 ई० में कांग्रेस के द्वारा सर्वप्रथम सुरेन्द्रनाथ बनर्जी के नेतृत्व में ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध भारतीयों के अधिकारों हेतु आवाज उठाई गई।

प्रश्न 2 — भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन के इतिहास का सारगर्भित विवेचन कीजिए। *(M. Imp.)*

अथवा **1921 ई० से 1947 ई० तक के भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के इतिहास का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।**

अथवा **1885 ई० से 1919 ई० तक राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास पर प्रकाश डालिए।** *(1995)*

अथवा **1935 ई० के भारत सरकार अधिनियम के लागू होने से लेकर 1947 ई० में स्वतन्त्रता प्राप्ति तक के स्वतन्त्रता संग्राम के विभिन्न चरणों का वर्णन कीजिए।**

अथवा **स्वाधीनता संघर्ष के प्रथम चरण में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के लक्ष्य और कार्यकलापों का वर्णन कीजिए।** *(1993)*

अथवा 1920 ई० से 1947 ई० के मध्य भारत के स्वतन्त्रता संघर्ष की प्रमुख घटनाओं पर प्रकाश डालिए। *(1994)*

अथवा 1942 ई० के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' पर प्रकाश डालिए। *(1994)*

अथवा असहयोग आन्दोलन के मुख्य लक्ष्य और कार्यक्रम क्या थे ? यह आन्दोलन क्यों वापस ले लिया गया ? *(1994)*

अथवा 1919–1947 ई० तक राष्ट्रीय आन्दोलन के विकास पर प्रकाश डालिए। *(1995)*

अथवा गांधी युग (1921–1947 ई०) में भारत की स्वतन्त्रता के लिए आन्दोलन की प्रगति पर संक्षिप्त निबन्ध लिखिए। *(1996)*

अथवा गांधीजी के सविनय अवज्ञा आन्दोलन की उपलब्धियों एवं असफलताओं का मूल्यांकन कीजिए। *(1999)*

उत्तर—

राष्ट्रीय आन्दोलन का इतिहास

सन् 1885 ई० में राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना हुई। प्रारम्भ में, कांग्रेस का उद्देश्य—(i) वैधानिक मार्ग द्वारा अपनी माँगें मनवाना, (ii) देश-हित में कार्य करने वालों को संगठित करना और (iii) देशवासियों में राष्ट्रीय एकता की भावना का संचार करना ही था। परन्तु बाद में इसके प्रयासों से भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन इतना सशक्त हो उठा कि ब्रिटिश साम्राज्य को हार माननी पड़ी और भारतीयों को अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त हुई। अध्ययन की सुविधा हेतु हम कांग्रेस द्वारा संचालित भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को निम्नांकित चरणों में विभक्त कर सकते हैं—

(I) राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रथम चरण (1885-1907 ई०)

राष्ट्रीय आन्दोलन के प्रथम चरण से सम्बन्धित घटनाओं का संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है—

(1) आवेदन और प्रार्थना का युग—इन बीस वर्षों में कांग्रेस ब्रिटिश सरकार से आम जनता के कष्टों के निवारण हेतुं आवेदन-पत्रों द्वारा प्रार्थना करती रही। इस चरण में नरम या उदारवादी नेताओं का ही जोर था। पंडित मदनमोहन मालवीय, गोपाल कृष्ण गोखले और दादाभाई नौरोजी जैसे उदारवादी और शान्त प्रकृति के नेता शान्तिपूर्ण ढंग से अपनी माँग मनवाने के पक्ष में थे। किन्तु इस चरण में यह संस्था अधिक सफलता प्राप्त न कर सकी, क्योंकि स्वार्थी अँग्रेजों पर प्रार्थना और याचना-पत्रों का कोई विशेष प्रभाव नहीं होता था।

राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रथम चरण (1885-1907 ई०)

(1) आवेदन और प्रार्थना का युग
(2) इण्डियन काउंसिल एक्ट
(3) प्रथम जन-आन्दोलन एवं बंग-भंग
(4) कांग्रेस में मतभेद तथा सूरत का अधिवेशन
(5) मुस्लिम साम्प्रदायिकता का उदय।

(2) इण्डियन काउंसिल एक्ट—1890 ई० में कांग्रेस का एक शिष्टमण्डल इंग्लैण्ड गया। दूसरी ओर, देश के अन्य भागों में सुधार के लिए माँग की जा रही थी। इसके फलस्वरूप 1892 ई० में ब्रिटिश संसद द्वारा प्रशासन के सम्बन्ध में इण्डियन काउंसिल एक्ट पारित हुआ।

(3) प्रथम जन-आन्दोलन एवं बंग-भंग—उन्नीसवीं शताब्दी के शुरू में राष्ट्रीय आन्दोलन का प्रादुर्भाव महाराष्ट्र प्रान्त में हुआ। वहाँ लोकमान्य तिलक के नेतृत्व में तीव्रता से जन-आन्दोलन चलाया गया। तिलक ने गणपति एवं शिवाजी के उत्सवों की परम्परा का सूत्रपात कर, वहाँ के लोगों की राजनीतिक चेतना में वृद्धि की। 1905 ई० में भारतीयों की इच्छा के विरुद्ध बंगाल प्रान्त के विभाजन की घोषणा कर दी गई। इससे भारतीय अत्यधिक क्षुब्ध हो उठे, जैसा कि सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने लिखा है, "यह घोषणा एक बम के गोले की भाँति गिरी। हमें ऐसा लगा है कि हम अपमानित, उपेक्षित और प्रवंचित किए गए हैं।" बंग-भंग की घोषणा के बाद सम्पूर्ण देश में अशान्ति फैल गई।

(4) कांग्रेस में मतभेद तथा सूरत का अधिवेशन—कांग्रेस में कुछ ऐसे उग्र राष्ट्रवादी व्यक्ति भी थे, जिनकी विचारधारा, स्थिति में सुधार न आता देखकर बदल गई। नई विचारधारा उग्रवाद पर आधारित थी। इस विचारधारा के समर्थकों का कहना था कि कठोर नीति अर्थात् सशस्त्र क्रान्ति के बिना अँग्रेजों के

दमन-चक्र से मुक्ति नहीं मिल सकती है। दूसरी विचारधारा अर्थात् नरम दल के समर्थक इस प्रकार की क्रान्ति के विरुद्ध थे। अतः 1907 ई० में कांग्रेस के सूरत अधिवेशन में दोनों दलों के मध्य बहुत वाद-विवाद हुआ जिसके परिणामस्वरूप उग्र दल कांग्रेस से पृथक् हो गया। इस प्रकार कांग्रेस दो दलों में विभक्त हो गई।

(5) मुस्लिम साम्प्रदायिकता का उदय—भारत-विभाजन से पूर्व, भारत में मुसलमान भी पर्याप्त संख्या में थे। अतः अँग्रेजों ने हिन्दू एवं मुसलमानों को आपस में लड़ाकर मुसलमानों को अपनी ओर मिलाने का प्रयत्न प्रारम्भ किया। भाग्य से उन्हें सर सैयद अहमद खाँ जैसे साम्प्रदायिक मुस्लिम नेता का सहयोग भी मिल गया। 1 अक्टूबर, 1906 ई० को सर आगा खाँ के नेतृत्व में एक मुस्लिम शिष्ट-मण्डल वायसराय लॉर्ड मिन्टो से मिला। इस शिष्ट-मण्डल ने मिन्टो से मुसलमानों के लिए अलग निर्वाचन क्षेत्रों तथा काउंसिल में अतिरिक्त स्थानों की माँग प्रस्तुत की। वायसराय ने शीघ्र ही मुसलमानों की माँग पूरी करने का आश्वासन दे दिया। दिसम्बर, 1906 ई० में इसी शिष्ट-मण्डल के सदस्यों ने भारतीय मुस्लिम लीग की स्थापना की।

(II) राष्ट्रीय आन्दोलन का द्वितीय चरण (1907-1919 ई०)

सन् 1907 से 1919 ई० के द्वितीय चरण की घटनाओं और उपलब्धियों को निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत स्पष्ट किया गया है—

(1) मिन्टो-मार्ले सुधार—ब्रिटिश सरकार ने 1909 ई० में इस सुधार योजना की घोषणा की। इस सुधार योजना की तीन प्रमुख बातें थीं—

(i) काउंसिलों के सदस्यों को भी प्रश्न पूछने तथा प्रस्ताव पारित करने का अधिकार प्राप्त हो गया।

(ii) काउंसिलों के सदस्यों की संख्या बढ़ा दी गई।

(iii) साम्प्रदायिक निर्वाचन क्षेत्रों की प्रथा शुरू की गई।

(2) मुस्लिम लीग और कांग्रेस के मध्य समझौता—सन् 1916 ई० में कांग्रेस और मुस्लिम लीग के मध्य समझौता हो गया। इस समझौते के अनुसार कांग्रेस ने लीग का पृथक् निर्वाचन क्षेत्र, साम्प्रदायिक वीटो (विशेषाधिकार) तथा अल्पसंख्यकों के लिए रियायतों को स्वीकार कर लिया। यह समझौता इतिहास में लखनऊ समझौते के नाम से प्रसिद्ध है।

(3) उग्र दल और नरम दल में मेल—सन् 1916 ई० में एक अन्य महत्त्वपूर्ण बात यह हुई कि उग्र दल, जो कांग्रेस से अलग हो गया था, पुनः कांग्रेस में आकर मिल गया। लोकमान्य तिलक जेल की सजा पूरी करके आ गए थे। उन्होंने कुछ कारणोंवश प्रथम विश्वयुद्ध प्रारम्भ होने पर अँग्रेजों का साथ देने का निश्चय किया। इससे नरम दल बड़ा प्रसन्न हुआ। लोकमान्य तिलक ने भारतीयों के समक्ष स्वराज्य सम्बन्धी प्रस्ताव भी रखा, जिसका अनेक व्यक्तियों ने समर्थन किया।

(4) होमरूल आन्दोलन—सन् 1916 ई० में आयरिश महिला श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने मद्रास और लोकमान्य तिलक ने बम्बई प्रान्त में होमरूल लीग की स्थापना की। श्रीमती ऐनी बेसेन्ट ने अपने दो पत्रों 'कामन व्हील' एवं 'न्यू इण्डिया' और लोकमान्य तिलक ने अपने पत्रों 'केसरी' और 'मराठा' के माध्यम से, होमरूल की स्थापना की माँग पर विशेष बल दिया।

(5) महात्मा गांधी का नेतृत्व—इसी समय भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन को महात्मा गांधी का नेतृत्व प्राप्त हुआ। जब 1920 ई० में लोकमान्य तिलक की मृत्यु हो गई, तो महात्मा गांधी ने राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व ग्रहण कर लिया।

(6) प्रथम विश्वयुद्ध एवं 1917 ई० की घोषणा— 1914 ई० में प्रथम विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया। इंग्लैण्ड और उसके साथी मित्रराष्ट्रों ने घोषित किया कि यह युद्ध स्वतन्त्रता, नागरिकों के अधिकार और जनतन्त्र की रक्षा हेतु लड़ा जा रहा है। अँग्रेजों ने भारतीयों को आश्वासन दिया कि युद्ध समाप्ति पर, वे उन्हें

भी स्वतन्त्र कर देंगे। अतः प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान भारतीयों ने अँग्रेजों को पूर्णरूप से सहयोग दिया, किन्तु खेद की बात यह हुई कि अँग्रेजों द्वारा अपना वचन पूर्ण नहीं किया गया। उन्होंने युद्धकाल के दौरान ही भारतीयों के राष्ट्रीय आन्दोलन को कुचलना शुरू कर दिया। इससे भारतीय जनता अत्यधिक क्रुद्ध हो उठी। उधर विश्वयुद्ध में मित्रराष्ट्र भी पराजित हो रहे थे, जिससे ब्रिटिश सरकार घबरा उठी। फलस्वरूप 1917 ई० में ब्रिटिश सरकार ने यह उद्घोषणा की कि युद्ध के बाद भारतवासियों को शासन सम्बन्धी कुछ अधिकार दिए जाएँगे।

(7) माण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड योजना—1917 ई० में भारत सचिव मांण्टेग्यू भारत आए। वायसराय लॉर्ड चेम्सफोर्ड के साथ उन्होंने सम्पूर्ण भारत का दौरा कर, ब्रिटिश संसद में एक सुधार योजना पेश की। यही योजना इतिहास में मान्टेग्यू-चेम्सफोर्ड योजना के नाम से प्रसिद्ध है। 1919 ई० में इस योजना के आधार पर एक अधिनियम पारित हुआ। इस माण्ट-फोर्ड अधिनियम के द्वारा केन्द्रीय एवं प्रान्तीय सरकारों के गठन एवं अधिकारों में पर्याप्त परिवर्तन किया गया। प्रान्तों में दोहरे शासन की व्यवस्था की गई और केन्द्रीय व्यवस्थापिका में दो सदन बनाए गए, किन्तु इन सुधारों से भारतीय जनता को कोई सन्तोष नहीं हुआ। राष्ट्रीय आन्दोलन तीव्र गति से चलता रहा।

राष्ट्रीय आन्दोलन का द्वितीय चरण (1907-1919 ई०)

(1) मिण्टो-मार्ले सुधार
(2) मुस्लिम लीग और कांग्रेस के मध्य समझौता
(3) उग्र दल और नरम दल में मेल
(4) होमरूल आन्दोलन
(5) महात्मा गांधी का नेतृत्व
(6) प्रथम विश्वयुद्ध एवं 1917 ई० की घोषणा
(7) मॉण्टेग्यू-चेम्सफोर्ड योजना
(8) रौलेट एक्ट और जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड।

(8) रौलेट एक्ट और जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड—सुधार और स्वराज्य पाने की आशा में निराश भारतीय ब्रिटिश शासन के विरुद्ध आन्दोलन की गति तीव्र करने में जुट गए। उग्र क्रान्तिकारियों ने लूटमार और हत्याकाण्डों पर आधारित आतंकपूर्ण कार्य प्रारम्भ कर दिए थे। उधर ब्रिटिश सरकार ने राष्ट्रीय आन्दोलन के दमन के लिए 'रौलेट एक्ट' पारित किया। इस कानून के अनुसार किसी व्यक्ति को बिना वारंट जारी किए ही गिरफ्तार किया जा सकता था। महात्मा गांधी के नेतृत्व में सम्पूर्ण भारतवासियों ने एकजुट होकर इस एक्ट का प्रबल विरोध किया।

अमृतसर में इस कानून का विरोध करने के लिए जलियाँवाला बाग में एक शान्तिपूर्ण सभा हुई। इस सभा में लगभग 20,000 स्त्री-पुरुष एकत्र हुए थे। सभा बड़ी शान्तिपूर्वक हो रही थी कि अचानक जनरल डायर ने आकर सारे बाग को अपने सैनिकों से घिरवा दिया और निहत्थी जनता पर गोली चलाने का आदेश दे दिया। बाग में केवल एक ही फाटक था और उस पर ही सशस्त्र सैनिक डटे हुए थे। सरकारी गणना के अनुसार इस हत्याकाण्ड में सैकड़ों व्यक्ति मारे गए और हजारों घायल निःसहायावस्था में वहीं पड़े तड़पते रहे। पंजाब में सैनिक शासन लागू कर दिया गया। इस दर्दनाक घटना से सम्पूर्ण देश में आतंक फैल गया।

(III) राष्ट्रीय आन्दोलन का तृतीय चरण (1919-1929 ई०)

राष्ट्रीय आन्दोलन के तृतीय चरण से सम्बन्धित घटनाएँ निम्नलिखित थीं—

(1) असहयोग आन्दोलन—महात्मा गांधी अँग्रेजों की दमनकारी नीति से बहुत दुःखी हो उठे थे। फलस्वरूप उन्होंने 20 अगस्त, 1920 ई० को अहिंसात्मक असहयोग आन्दोलन शुरू कर दिया। राजनीति के क्षेत्र में यह अहिंसात्मक आन्दोलन महात्मा गांधी का अभिनव प्रयोग था। उन्होंने भारतीयों से यह विनती की कि वे अँग्रेजों द्वारा दी गई उपाधियों और सरकारी पदों को त्याग दें, अँग्रेजी विद्यालयों एवं विश्वविद्यालयों में अपने बच्चों को पढ़ने न भेजें, काउंसिलों तथा स्थानीय संस्थाओं की सदस्यता त्याग दें और विदेशी वस्तुओं एवं न्यायालयों का बहिष्कार करें। गांधी जी के अहिंसा पर आधारित इस सत्याग्रह आन्दोलन का अच्छा परिणाम निकला। हजारों की संख्या में विद्यार्थियों ने विद्यालयों का परित्याग कर दिया और राष्ट्रीय विद्यापीठों की स्थापना की। लोग खद्दर एवं स्वदेशी वस्तुओं का उपभोग अधिक करने लगे। स्वराज्य का अमर सन्देश अमरबेल की तरह समस्त भारत में फैल गया।

असहयोग आन्दोलन का रचनात्मक कार्यक्रम—सरकारी पदों व उपाधियों का बहिष्कार, विदेशी माल का बहिष्कार आदि कार्यक्रम असहयोग आन्दोलन के विरोधात्मक कार्यक्रम थे। इसके अतिरिक्त गांधी जी ने, असहयोग आन्दोलन के रचनात्मक कार्यक्रम की रूपरेखा भी प्रस्तुत की। यह रचनात्मक कार्यक्रम इस प्रकार था—(1) एक करोड़ रुपये का तिलक फण्ड स्थापित करना, (2) एक करोड़ स्वयंसेवकों की भर्ती करना, (3) 20 लाख चर्खों का वितरण करना, (4) राष्ट्रीय शिक्षा की दिशा में प्रयास करना, (5) स्वदेशी माल खरीदने पर बल देना, तथा (6) लोक अदालतों की स्थापना करना।

राष्ट्रीय आन्दोलन का तृतीय चरण (1919-1929 ई०)

(1) असहयोग आन्दोलन
(2) चौरी-चौरा काण्ड और असहयोग आन्दोलन का स्थगन
(3) स्वराज्य दल की स्थापना
(4) साइमन कमीशन का बहिष्कार
(5) सर्वदलीय सम्मेलन और नेहरू रिपोर्ट।

(2) चौरी-चौरा काण्ड और असहयोग आन्दोलन का स्थगन—6 फरवरी, 1921 ई० को सत्याग्रहियों द्वारा गोरखपुर जिले के चौरी-चौरा गाँव में एक जुलूस निकाला गया। भीड़ ने आक्रोश में एक थाने को अग्नि की भेंट चढ़ा दिया, जिसमें एक दारोगा और छह सिपाही जीवित जल गए। असहयोग का रूप हिंसात्मक होते देखकर गांधी जी क्षुब्ध हो उठे और उन्होंने इस आन्दोलन को स्थगित करने की घोषणा कर दी। गांधी जी की इस घोषणा से जनता का उत्साह ठण्डा पड़ गया। सरकार ने इस अवसर का लाभ उठाकर 10 मार्च, 1922 ई० को महात्मा गांधी को बन्दी बना लिया और उन्हें छह वर्ष का कठोर दण्ड देकर जेल भेज दिया।

(3) स्वराज्य दल की स्थापना—महात्मा गांधी को बन्दी बनाए जाने से जनता का उत्साह क्षीण पड़ गया। उधर काउंसिल में प्रवेश के प्रश्न को लेकर कांग्रेस दो भागों में विभक्त हो गई। एक दल का कहना था कि काउंसिल में प्रवेश कर सरकार के कार्यों में बाधा उत्पन्न करनी चाहिए। यह दल **परिवर्तनवादी** कहलाया, दूसरा दल **अपरिवर्तनवादी** कहलाया। इसका कहना था कि काउंसिल का परित्याग कर दिया जाए। परिवर्तनवादियों ने एक नई **स्वराज्य पार्टी** का निर्माण किया। स्वराज्य पार्टी को विधानसभाओं में बहुत स्थान मिले। इस पार्टी ने सरकार के कार्यों में विघ्न डालने प्रारम्भ किए और अपने लक्ष्य में आंशिक सफलता प्राप्त की, किन्तु 1925 ई० में इसके नेता सी० आर० दास की मृत्यु से, इस पार्टी का प्रभाव क्षीण हो गया।

(4) साइमन कमीशन का बहिष्कार—सन् 1919 ई० के अधिनियम के सुधारों की जाँच हेतु, 1927 ई० में ब्रिटिश सरकार द्वारा एक आयोग नियुक्त हुआ। इस आयोग का अध्यक्ष **लॉर्ड साइमन** था, इसलिए इस आयोग का नाम **साइमन कमीशन** पड़ा। इस आयोग में कोई भी भारतीय सदस्य नहीं रखा गया था। अतः कांग्रेस ने इस आयोग का विरोध किया। इस आयोग को काले झंडे दिखाए गए और **'साइमन वापस जाओ'** के नारे लगाए गए। ब्रिटिश सरकार ने प्रदर्शनकारियों को बहुत बुरी तरह कुचला। इस दमन-चक्र के दौरान ही 1928 ई० में **पंजाब केसरी लाला लाजपतराय** अँग्रेज पुलिस की लाठियों के घातक प्रहार न सह सके और कुछ दिन बाद ही उनकी मृत्यु हो गई।

(5) सर्वदलीय सम्मेलन और नेहरू रिपोर्ट—1928 ई० में सरकार ने भारतीयों से कहा कि तुम आपस में एक होकर अपनी माँगें हमारे समक्ष प्रस्तुत करो। यह भी अँग्रेजों की एक चाल थी, क्योंकि वे जानते थे कि भारतीय एक होंगे नहीं और कहने को यह भी हो जाएगा कि हम तो भारतीयों की समस्याओं का समाधान करना चाहते थे। किन्तु भाग्यवश अँग्रेजों की इस चुनौती को भारतीयों ने स्वीकार कर लिया और दिल्ली में एक सर्वदलीय सम्मेलन आयोजित किया गया। इस सम्मेलन में एक समिति का निर्माण किया गया, जिसकी अध्यक्षता **पं० मोतीलाल नेहरू** ने की। इसलिए इस समिति की रिपोर्ट **नेहरू रिपोर्ट** के नाम से जानी गई। इस रिपोर्ट में अपने सुझावों के साथ औपनिवेशिक स्वराज्य को अपना मूल ध्येय बताया गया और नागरिकों के मौलिक अधिकारों की विवेचना की गई। किन्तु नेहरू रिपोर्ट की एक भी सिफारिश को ब्रिटिश सरकार ने नहीं माना।

(IV) राष्ट्रीय आन्दोलन का चतुर्थ चरण (1929-1939 ई०)

राष्ट्रीय आन्दोलन के चतुर्थ चरण से सम्बन्धित घटनाएँ इस प्रकार थीं—

(1) कांग्रेस का लाहौर अधिवेशन—नेहरू रिपोर्ट का सरकार द्वारा निरादर होने पर कांग्रेस की औपनिवेशिक स्वराज्य की माँग का अन्त हो गया। 1929 ई० में पं० जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में लाहौर में कांग्रेस का एक अधिवेशन सम्पन्न हुआ। इस अधिवेशन में ही प्रथम बार पूर्ण-स्वराज्य या स्वतन्त्रता के लक्ष्य प्राप्ति की घोषणा की गई। अतः 26 जनवरी, 1930 ई० को सर्वप्रथम सम्पूर्ण देश में समस्त देशवासियों ने मिलकर पहला स्वराज्य दिवस समारोह बड़े उत्साह के साथ मनाया।

राष्ट्रीय आन्दोलन का चतुर्थ चरण (1929-1939 ई०)

(1) कांग्रेस का लाहौर अधिवेशन
(2) सविनय अवज्ञा आन्दोलन
(3) गांधी-इरविन समझौता
(4) साम्प्रदायिक निर्णय और पूना पैक्ट
(5) 1935 ई० का अधिनियम
(6) द्वितीय विश्वयुद्ध और कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों का त्याग-पत्र
(7) पाकिस्तान की माँग।

(2) सविनय अवज्ञा आन्दोलन—पूर्ण स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उद्देश्य की घोषणा से राष्ट्रीय आन्दोलन में नवीन उत्साह का संचार हुआ। इसके फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार की दमनकारी नीति भी जारी रही। अतः 14 फरवरी, 1930 ई० को साबरमती में कांग्रेस कार्यकारिणी की एक सभा में महात्मा गांधी को सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाने का अधिकार प्रदान किया गया। फलस्वरूप इसी वर्ष 12 मार्च को नमक कानून भंग करने के उद्देश्य से महात्मा गांधी ने अपने 79 चुने हुए सहयोगियों के साथ इतिहास प्रसिद्ध 'डांडी यात्रा' की। 6 अप्रैल को गांधी जी ने नमक कानून भंग किया और 4 मई को उन्हें कैद कर लिया गया। इससे जनता में उग्र विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी। परिणामस्वरूप स्थान-स्थान पर हड़तालें और प्रदर्शन हुए और अनेक लोग जेल चले गए।

(3) गांधी-इरविन समझौता—सविनय अवज्ञा आन्दोलन से ब्रिटिश सरकार का तख्ता हिल गया। अतः समझौते की बात चली और 31 मार्च, 1931 ई० को गांधी-इरविन समझौता हो गया। इसके परिणामस्वरूप अधिकांश राजनीतिक कैदी स्वतन्त्र कर दिए गए, परन्तु हिंसा के आरोप में कैद अपराधियों को मुक्त नहीं किया गया।

(4) साम्प्रदायिक निर्णय और पूना पैक्ट—सन् 1932 ई० में ब्रिटेन के प्रधानमन्त्री रैम्जे मैक्डोनल्ड ने साम्प्रदायिक दंगों को समाप्त करने का निर्णय दिया जो इतिहास में मैक्डोनल्ड एवार्ड के नाम से प्रसिद्ध है। इस निर्णय के द्वारा अछूतों को हिन्दुओं से पृथक् रखने के उद्देश्य से अलग निर्वाचन का अधिकार दिया गया। गांधी जी ने इस निर्णय के विरुद्ध आमरण अनशन प्रारम्भ कर दिया। गांधी जी की जीवन रक्षा हेतु हिन्दू एवं हरिजन पूना में एकत्र हुए और एक समझौता यह हुआ कि हरिजनों के लिए प्रान्तीय तथा केन्द्रीय विधानसभाओं में कुछ स्थान सुरक्षित रखे जाएँगे तथा नौकरियों में भी कुछ स्थान सुरक्षित रखे जाएँगे। सरकार ने भी इस समझौते को स्वीकार कर लिया।

(5) 1935 ई० का अधिनियम—1935 ई० में भारत सरकार ने एक नया अधिनियम पारित किया। इस अधिनियम के अनुसार भारत में संघात्मक शासन की व्यवस्था की गई और प्रान्तों को स्वतन्त्र कर दिया गया। 1936-37 ई० में प्रान्तीय विधानसभाओं के निर्वाचन हुए और आठ प्रान्तों के चुनाव में कांग्रेस को सफलता प्राप्त हुई।

(6) द्वितीय विश्वयुद्ध और कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों का त्याग-पत्र—1 सितम्बर, 1939 ई० को द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हो गया। इस बार कांग्रेस ने अँग्रेजों को सहयोग न देने का निश्चय किया। ब्रिटिश सरकार की दमन नीति से क्षुब्ध होकर कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों ने त्याग-पत्र दे दिया।

(7) पाकिस्तान की माँग—कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों के त्याग-पत्र दे देने से मुस्लिम लीग के नेता मौहम्मद अली जिन्ना को अत्यधिक प्रसन्नता हुई। मि० जिन्ना ने यह स्पष्ट घोषणा कर दी कि जब तक

कांग्रेस देश के विभाजन और पाकिस्तान के निर्माण की माँग को स्वीकार नहीं करेगी तब तक देश के स्वतन्त्रता आन्दोलनों में मुस्लिम लीग भाग नहीं लेगी।

(V) राष्ट्रीय आन्दोलन का पंचम चरण (1940-1947 ई०)

राष्ट्रीय आन्दोलन के अन्तिम चरण से सम्बन्धित घटनाओं का संक्षिप्त विवरण निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत प्रस्तुत किया गया है—

(1) क्रिप्स मिशन का भारत आगमन—1940-42 ई० में द्वितीय विश्वयुद्ध अपनी पराकाष्ठा पर था। ब्रिटेन के शत्रु जर्मनी और इटली के गुट में; जापान भी सम्मिलित हो गया था। फलत: 11 मार्च, 1942 ई० को ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों को सन्तुष्ट करने के लिए क्रिप्स मिशन भेजने की घोषणा की। **सर स्टैफर्ड क्रिप्स** भारत के भावी शासन की एक योजना लेकर भारत आए। इस योजना के अनुसार युद्ध के पश्चात् भारत को औपनिवेशिक स्वराज्य प्रदान करने का वचन दिया गया, किन्तु कांग्रेस और मुस्लिम लीग इस योजना से सन्तुष्ट नहीं हुए। उनके द्वारा यह योजना एक दिवालिया बैंक के नाम काटा गया चैक बताई गई।

राष्ट्रीय आन्दोलन का पंचम चरण (1940-1947 ई०)

(1) क्रिप्स मिशन का भारत आगमन
(2) भारत छोड़ो आन्दोलन
(3) शिमला कॉन्फ्रेंस और वैबेल योजना
(4) कैबिनेट मिशन का भारत आगमन
(5) साम्प्रदायिक दंगे एवं लीग की प्रत्यक्ष कार्यवाही
(6) माउण्टबेटन योजना तथा भारत-विभाजन की घोषणा।

(2) भारत छोड़ो आन्दोलन (1942 ई०)—8 अगस्त, 1942 ई० को बम्बई कांग्रेस में गांधी जी के नेतृत्व में **'भारत छोड़ो'** प्रस्ताव पारित होने पर दूसरे ही दिन सारे कांग्रेसी नेता पकड़ लिए गए। इससे भारतीय बहुत क्रोधित हो उठे और सम्पूर्ण देश में क्रान्ति की ज्वाला धधक उठी। गांधी जी ने नारा दिया, **'करो या मरो'** (Do or Die)। क्रुद्ध भारतीय जनता ने ब्रिटिश शासन को समूल नष्ट करने का संकल्प कर लिया। क्रान्तिकारियों ने डाकघरों, रेलवे स्टेशनों तथा सभी सरकारी दफ्तरों को लूटना एवं जलाना प्रारम्भ कर दिया। रेल की पटरियाँ उखाड़ फेंकी गईं और बिजली के तारों को काट दिया गया। इसी प्रकार के कार्यों को करने में सम्पूर्ण भारतीय जनता पूर्ण उत्साह से लग गई। फलतः गिरफ्तारियाँ हुईं तथा निःसहाय जनता गोलियों और लाठियों का शिकार हुई। घरों में आग लगा दी गई तथा खेतों को पूर्णतया नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया। अन्ततः दुर्भाग्यवश ब्रिटिश सरकार ही विजयी हुई और जनता का आन्दोलन क्षीण पड़ गया।

(3) शिमला कॉन्फ्रेंस और वैबेल योजना—सन् 1942 ई० की क्रान्ति के पश्चात् ब्रिटिश सरकार यह भली-भाँति समझ गई कि बिना कांग्रेस के साथ समझौता किए उनकी सत्ता अधिक समय तक स्थापित नहीं रह सकती है। अतः भारत के नए वायसराय वैबेल ने जून, 1945 ई० में कांग्रेस कार्यकारिणी के सदस्यों के समक्ष एक योजना प्रस्तावित की। इस योजना में कहा गया कि वे अपनी कार्यकारिणी में 6 हिन्दू और 5 मुसलमान सदस्य लेने के लिए सहमत हैं, किन्तु नामों के सम्बन्ध में लीग और कांग्रेस को स्वयं निर्णय लेना चाहिए। यह कॉन्फ्रेंस शिमला में हुई थी। लीग एवं कांग्रेस में नामों का चयन करने के सम्बन्ध में मतभेद था। इसलिए दोनों में कोई समझौता नहीं हो पाया। अतः शिमला सम्मेलन भी असफल रहा।

(4) कैबिनेट मिशन का भारत आगमन (1946 ई०)—द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् इंग्लैण्ड में लेबर पार्टी की सरकार बनी। उधर अमेरिका एवं मित्रराष्ट्र भारत को स्वतन्त्र करने के लिए इंग्लैण्ड पर जोर डाल रहे थे। अतः मार्च, 1946 ई० में ब्रिटिश सरकार द्वारा भेजा हुआ कैबिनेट मिशन भारत आया। इस मिशन ने भारतीयों के समक्ष एक योजना प्रस्तुत की। इस योजना के अनुसार भारत के समस्त प्रान्तों को तीन भागों में बाँटा गया तथा सम्पूर्ण देश के लिए एक संविधान सभा बनाई गई। 2 सितम्बर, 1946 ई० को अन्तरिम सरकार भी बन गई। लॉर्ड वैबेल के आग्रह पर मुस्लिम लीग इस अन्तरिम सरकार में प्रतिनिधि भेजने के लिए तैयार हुई। परन्तु मुस्लिम लीग निरन्तर इस माँग पर अडिग रही कि हिन्दुस्तान और पाकिस्तान के संविधान के निर्माण के लिए पृथक्-पृथक् संविधान सभाओं का गठन होना चाहिए।

(5) साम्प्रदायिक दंगे एवं लीग की प्रत्यक्ष कार्यवाही—अपनी माँगों को पूर्ण न होता देख मुस्लिम लीग व्यग्र हो उठी। उसने प्रत्यक्ष कार्यवाही की घोषणा की और 16 अगस्त, 1946 ई० को प्रत्यक्ष कार्यवाही करने का निर्णय किया। पहले कलकत्ता और फिर नौआखाली में भयंकर नरसंहार हुआ। बिहार में भी नौआखाली की प्रतिक्रिया हुई, किन्तु कांग्रेस के हस्तक्षेप के कारण यह साम्प्रदायिक दंगा शीघ्र ही शान्त हो गया।

(6) माउण्टबेटन योजना तथा भारत-विभाजन की घोषणा—सन् 1947 ई० में लॉर्ड वैवेल के उत्तराधिकारी लॉर्ड माउण्टबेटन भारत आए। उन्होंने भारतीय कांग्रेसी नेताओं और लीग के नेताओं से वार्तालाप किया और एक योजना उनके समक्ष रखी। इस माउण्टबेटन योजना में देश के विभाजन एवं देश की स्वतन्त्रता की घोषणा की गई। देश का विभाजन भारत के दुर्भाग्य के कारण होना निश्चित ही हो चुका था, इसलिए कांग्रेस ने इसे न चाहते हुए भी स्वीकार कर लिया।

अन्त में, दीर्घकालीन संघर्ष के उपरान्त 15 अगस्त, 1947 ई० की रात्रि को भारत; स्वतन्त्र होकर दो भागों—**हिन्दुस्तान** और **पाकिस्तान** नामक दो देशों में बँट गया।

प्रश्न 3—1947 ई० में भारत विभाजन के कारणों की समीक्षा कीजिए। *(1999)*

उत्तर—

भारत विभाजन के प्रमुख कारण

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के नेता भारत-विभाजन का विरोध कर रहे थे और इसकी अखण्डता एवं एकता के लिए अथक प्रयत्न कर रहे थे। गांधी जी ने तो यहाँ तक कह दिया था कि पाकिस्तान का निर्माण उनकी लाश पर होगा, फिर भी भारत का विभाजन होकर ही रहा। कुछ विचारक जिन्ना को भारत के विभाजन के लिए एक मात्र उत्तरदायी मानते हैं। यह बात एक सीमा तक ठीक भी है। जिन्ना की हठधर्मी के कारण ही भारत विभाजन की स्थिति उत्पन्न हुई थी। परन्तु इसके कुछ अन्य कारण भी थे जिनकी वजह से भारत का विभाजन होना अनिवार्य हुआ। कहा जाता है कि यदि उस समय भारत का विभाजन स्वीकार न किया जाता तो देश का स्वतन्त्र होना असम्भव था। अतः परिस्थितियों से विवश होकर ही कांग्रेस के नेताओं ने भारत विभाजन के साथ स्वतन्त्रता प्राप्त करना स्वीकार किया। इन्द्र विद्या वाचस्पति के अनुसार, **"अनिवार्य समझकर ही कांग्रेस के नेताओं ने उस समय विभाजन के साथ स्वाधीनता स्वीकार की थी।"**

भारत विभाजन के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे—

(1) ब्रिटिश शासन की 'फूट डालो और शासन करो' की नीति—ब्रिटिश शासक बड़े कूटनीतिज्ञ थे। वे यह भली-भाँति जानते थे कि यदि वे हिन्दू-मुसलमानों में निरन्तर फूट डाले रखें तो भारत पर शासन करते रहेंगे। अतः उन्होंने 'फूट डालो और शासन करो' की नीति को अपनाया। वे हिन्दू-मुसलमानों के पारस्परिक सम्बन्धों में निरन्तर जहर घोलते रहे और उन्हें एक-दूसरे का विरोधी बनाने का प्रयत्न करते रहे तथा मुसलमानों को पाकिस्तान के निर्माण के लिए प्रोत्साहित करते रहे। डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के शब्दों में, **"पाकिस्तान के निर्माता कवि इकबाल तथा मि० जिन्ना नहीं, वरन् लॉर्ड मिण्टो थे।"** इसके अतिरिक्त ब्रिटिश भारत के नौकरशाही, मुसलमानों की पक्षधर थी। मेहता एवं पटवर्धन के मतानुसार, **"पाकिस्तान का विचार आंग्ल-भारतीय नौकरशाही के लिए नवीन नहीं था।"** कांग्रेस द्वारा संचालित स्वतन्त्रता संग्राम में अधिकांश हिन्दुओं ने भाग लिया था। अतः नौकरशाही हिन्दुओं और कांग्रेस से अपना बदला लेने के लिए मुस्लिम साम्प्रदायिकता को लगातार बढ़ावा देती रही। अंग्रेज अधिकारियों की सहानुभूति पाकिस्तान के साथ थी तथा वायसराय के संवैधानिक परामर्शदाता वी० पी० मेनन ने सरदार पटेल को समझाया कि गृहयुद्ध की ओर बढ़ने की अपेक्षा देश का विभाजन स्वीकार करना ही बुद्धिमानी है।

(2) हिन्दू-मुसलमानों के बीच पारस्परिक अविश्वास—हिन्दू और मुसलमान दोनों ही जातियों के लोग एक-दूसरे के प्रति अविश्वास रखते थे। सल्तनत काल और मुगलकाल में अनेक मुसलमान शासकों ने हिन्दुओं पर अत्यधिक अत्याचार किए। अतः इन दोनों जातियों में परस्पर विद्वेष की भावना थी। इसके अतिरिक्त हिन्दुओं का मुसलमानों के सामाजिक बहिष्कार का व्यवहार अच्छा नहीं था। हिन्दू मुसलमानों को अपने से नीची जाति का समझते थे और यह मानते थे कि मुसलमानों द्वारा किसी वस्तु को छू लेने भर से वह अछूत हो जाएगी अथवा उनका धर्म भ्रष्ट हो जाएगा। इसका यह परिणाम हुआ कि मुसलमानों को

ईसाइयों का व्यवहार हिन्दुओं की अपेक्षा अधिक अच्छा प्रतीत हुआ और मुसलमान हिन्दुओं से दूर और ईसाइयों के निकट होते चले गए।

(3) हिन्दू साम्प्रदायिकता का दुष्प्रभाव—भारत के विभाजन के लिए हिन्दू साम्प्रदायिकता भी किसी सीमा तक उत्तरदायी थी। 1937 ई० में श्री सावरकर ने कहा था कि, **"भारत को एकता के सूत्र में बँधा राष्ट्र नहीं माना जा सकता वरन् हिन्दू और मुस्लिम मुख्य रूप से दो राष्ट्र हैं।"** 1937 ई० में उन्होंने कहा था कि **"भविष्य में हमारी राजनीति विशुद्ध हिन्दू राजनीति होगी।"**

(4) लीग के प्रति कांग्रेस की तुष्टिकरण की नीति— कांग्रेस ने लीग के प्रति तुष्टिकरण की नीति अपनाई तथा व्यवहार में अनेक भूलें कीं। 1916 ई० में लखनऊ पैक्ट में साम्प्रदायिक निर्वाचन प्रणाली को स्वीकार कर लेना, सिन्ध को बम्बई से अलग करना, सी० आर० फार्मूले में पाकिस्तान की माँग को कुछ सीमा तक स्वीकार कर लेना तथा 1937 ई० में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल में मुस्लिम लीग को सम्मिलित करने के प्रश्न पर कठोर रवैया अपनाना, इसी प्रकार की भूलें थीं। स्वयं गांधी जी ने जिन्ना को 'कायदे आजम' की उपाधि से विभूषित किया था। इससे जिन्ना का अहम् और हौसला बहुत बढ़ गया था।

भारत विभाजन के प्रमुख कारण

(1) ब्रिटिश शासन की 'फूट डालो और शासन करो' की नीति
(2) हिन्दू-मुसलमानों के बीच पारस्परिक अविश्वास
(3) हिन्दू साम्प्रदायिकता का दुष्प्रभाव
(4) लीग के प्रति कांग्रेस की तुष्टिगुण की नीति
(5) श्री जिन्ना की हठधर्मी
(6) अन्तरिम सरकार की असफलता
(7) लीग की सीधी कार्यवाही तथा साम्प्रदायिक दंगे
(8) पाकिस्तान की स्थिरता में सन्देह
(9) सत्ता हस्तान्तरण के सम्बन्ध में ब्रिटिश दृष्टिकोण
(10) बाह्य एकता की अवांछनीयता का एहसास
(11) सत्ता के प्रति आकर्षण
(12) लॉर्ड माण्टबेटन का प्रभाव।

(5) श्री जिन्ना की हठधर्मी—श्री जिन्ना अपने द्वि-राष्ट्र सिद्धान्त के प्रति दृढ़ रहे। 1940 ई० के पश्चात् संवैधानिक गतिरोध को दूर करने के लिए योजनाएँ प्रस्तुत की गईं परन्तु जिन्ना की पाकिस्तान निर्माण की हठधर्मी के कारण कोई भी योजना स्वीकार न की जा सकी। यहाँ तक कि गांधी जी ने जिन्ना के लिए सम्पूर्ण भारत के प्रधानमन्त्री के पद का अवसर भी प्रदान किया, परन्तु जिन्ना ने इसे भी अस्वीकार कर दिया।

(6) अन्तरिम सरकार की असफलता—15 अक्तूबर, 1946 ई० को 'अन्तरिम सरकार' की स्थापना हुई। इस सरकार में कार्य करने वाले मुस्लिम लीगी मन्त्रियों ने कांग्रेसी मन्त्रियों से शासन कार्य में असहयोग किया और इस कारण यह सरकार पूर्णतया असफल हो गई। लियाकत अली खाँ के पास वित्त विभाग था। उसने कांग्रेसी सरकार की प्रत्येक योजना में बाधा उत्पन्न करके सरकार का चलना असम्भव कर दिया। सरदार पटेल के अनुसार, **"एक वर्ष के मेरे प्रशासनिक अनुभव ने मुझे यह विश्वास दिला दिया कि हम विनाश की ओर बढ़ रहे हैं।"**

(7) लीग की सीधी कार्यवाही तथा साम्प्रदायिक दंगे—जब लीग को संवैधानिक साधनों से सफलता प्राप्त नहीं हुई तो उसने मुसलमानों को साम्प्रदायिक उपद्रव करने के लिए उकसाया तथा लीग की सीधी कार्यवाही की योजना के अन्तर्गत नौआखाली तथा त्रिपुला में मुसलमानों द्वारा अनेक दंगे करवाए गए। अकेले नौआखाली में ही लगभग सात हजार व्यक्ति मौत के घाट उतार दिए गए थे। मौलाना आजाद के अनुसार, **"16 अगस्त का दिन भारत के इतिहास में काला दिन है क्योंकि इस दिन सामूहिक हिंसा ने कलकत्ता जैसी महानगरी को हत्या, रक्तपात और बलात्कारों की बाढ़ में डुबो दिया।"**

(8) पाकिस्तान की स्थिरता में सन्देह—अनेक कांग्रेसी नेताओं को पाकिस्तान की स्थिरता में सन्देह था और उनका विचार था कि भारत का विभाजन अस्थायी होगा। उनका यह भी विचार था कि पाकिस्तान राजनीतिक, भौगोलिक, आर्थिक तथा सैनिक दृष्टि से एक स्थायी राज्य नहीं हो सकता और यह कभी-न-कभी भारत संघ में सम्मिलित हो जाएगा।

(9) सत्ता-हस्तान्तरण के सम्बन्ध में ब्रिटिश दृष्टिकोण—भारत विभाजन के सम्बन्ध में ब्रिटिश शासन का दृष्टिकोण यह था कि इससे भारत एक निर्बल देश हो जाएगा तथा भारत और पाकिस्तान सदैव एक-दूसरे के विरुद्ध लड़ते रहेंगे। निःसन्देह ब्रिटेन की यह इच्छा आज तक काफी सीमा तक पूरी हो रही है।

(10) बाह्य एकता की अवांछनीयता का एहसास—मुस्लिम लीग की सीधी कार्यवाही के कारण जो जन-धन की हानि हुई, उससे कांग्रेसी नेताओं को यह एहसास हो गया कि मुसलमानों को हिन्दुओं के साथ बाँधे रखने का प्रयास अवांछनीय है। श्री नेहरू के शब्दों मे, **"यदि उन्हें भारत में रहने के लिए बाध्य किया गया तो प्रगति व नियोजन पूरी तरह से असफल हो जाएँगे।"** अंग्रेजों ने 30 जून, 1948 ई० तक भारत छोड़ने का निर्णय किया था। ऐसी स्थिति में दो विकल्प थे—भारत का विभाजन या गृह-युद्ध। इसमें पहला विकल्प ही सही था। सरदार पटेल के अनुसार, **"यदि एक अंगूठा विषपूर्ण हो जाए तो उसे अलग कर देना चाहिए, अन्यथा सम्पूर्ण शरीर को नुकसान उठाना पड़ सकता है।"**

(11) सत्ता के प्रति आकर्षण—भारत के विभाजन का एक कारण कांग्रेस और लीग के अनेक नेताओं का सत्ता के प्रति आकर्षण भी था। स्वतन्त्रता के लिए संघर्ष करते-करते भारतीय नेता बूढ़े हो चले थे। उन्होंने अपने जीवन में अनेकों कष्ट सहे थे। अब उनमें और अधिक संघर्ष करने की शक्ति तथा साहस नहीं रह गया था। यदि वे माउण्टबेटन योजना को स्वीकार नहीं करते तो पता नहीं कितने वर्षों बाद उन्हें सत्ता का सुख भोगने का अवसर प्राप्त होता। माइकेल ब्रेचर के अनुसार, **"कांग्रेसी नेताओं के सम्मुख सत्ता के प्रति आकर्षण भी था।............और विजय की घड़ी में वे इससे अलग होने के इच्छुक नहीं थे।"**

(12) लॉर्ड माउण्टबेटन का प्रभाव—भारत के विभाजन के लिए लॉर्ड माउण्टबेटन का प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व भी बहुत कुछ सीमा तक उत्तरदायी था। उन्होंने अपने विशिष्ट व्यवहार, राजनीतिक चातुर्य तथा अपने व्यक्तित्व के प्रभाव से कांग्रेस के नेताओं को भारत विभाजन के लिए सहमत कर लिया। पण्डित जवाहर लाल नेहरू के माउण्टबेटन के साथ पारिवारिक सम्बन्ध भी थे इसलिए माउण्टबेटन नेहरू और पटेल दोनों को भारत विभाजन की योजना को स्वीकार करने के लिए तैयार कर पाने में सफल हो गए थे।

उपर्युक्त कारणों के परिणामस्वरूप ही भारत का विभाजन सम्भव हुआ। गांधी जी के अनुसार, **"32 वर्षों के सत्याग्रह का यह एक लज्जाजनक परिणाम था।"**

प्रश्न 4—भारत के सामाजिक और राजनीतिक जागरण में महात्मा गांधी के योगदान की समीक्षा कीजिए।

अथवा **"महात्मा गांधी राष्ट्रीय आन्दोलन के कर्णधार थे।" क्या आप इस कथन से सहमत हैं?**

अथवा **भारत की राजनीतिक जागृति में महात्मा गांधी का क्या योगदान है?** *(1995)*

अथवा **भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में महात्मा गांधी के योगदान का विवेचन कीजिए।** *(1990, 92, 95)*

अथवा **"भावी पीढ़ियाँ सहसा यह विश्वास नहीं करेंगी कि ऐसा हाड़-मांस का व्यक्ति कभी इस पृथ्वी पर चला था।" महात्मा गांधी के बारे में कहे गए उक्त कथन के प्रकाश में राष्ट्र को उनकी देन का उल्लेख कीजिए।**

अथवा **महात्मा गांधी के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर एक संक्षिप्त निबन्ध लिखिए।** *(1991)*

अथवा **महात्मा गांधी के विचारों एवं कार्यों का स्वतन्त्रता आन्दोलन में क्या महत्त्व था?** *(1992)*

अथवा **"महात्मा गांधी दलितों के मसीहा थे।" इस कथन को स्पष्ट कीजिए।** *(1993)*

अथवा **भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में गांधीजी के योगदान पर प्रकाश डालिए।** *(1993)*

अथवा **महात्मा गांधी को 'राष्ट्रपिता' क्यों कहा जाता है? स्पष्ट कीजिए।** *(1994)*

अथवा **भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में महात्मा गांधी के योगदान का वर्णन कीजिए।** *(1994)*

अथवा **महात्मा गांधी के रचनात्मक कार्यक्रम की रूपरेखा प्रस्तुत कीजिए।** *(1996)*

अथवा **सामाजिक सुधार के क्षेत्र में महात्मा गांधी के योगदान का उल्लेख कीजिए।** *(1996)*

उत्तर—

राष्ट्रीय आन्दोलन में महात्मा गांधी का योगदान

राष्ट्रीय आन्दोलन में महात्मा गांधी के योगदान का अध्ययन अग्रलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है—

(1) महात्मा गांधी का प्रारम्भिक जीवन—महात्मा गांधी भारत के ही नहीं, वरन् विश्व की महान् विभूतियों में से एक थे। आपका जन्म 2 अक्टूबर, 1869 ई० को काठियावाड़ के पोरबन्दर नामक नगर में हुआ था। आपका पूरा नाम मोहनदास कर्मचन्द गांधी था। आपके पिता का नाम कर्मचन्द गांधी और माता का नाम पुतलीबाई था। आपके पिता और दादा काठियावाड़ की एक छोटी-सी रियासत के दीवान थे। मैट्रीकुलेशन की परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् आप वकालत की उच्च शिक्षा ग्रहण करने इंग्लैण्ड गए और तीन वर्ष पश्चात् वहाँ से सफल बैरिस्टर बनकर भारत लौटे। उन्होंने बम्बई उच्च न्यायालय में वकालत भी करनी शुरू कर दी।

राष्ट्रीय आन्दोलन में महात्मा गांधी का योगदान
(1) महात्मा गांधी का प्रारम्भिक जीवन
(2) भारतीय राजनीति में प्रवेश
(3) सामाजिक क्षेत्र में महात्मा गांधी का योगदान
(4) राजनीतिक जागरण में गांधी जी का योगदान।

गांधी जी एक व्यापारी के मुकदमे के सन्दर्भ में दक्षिण अफ्रीका गए, जहाँ पर भारतीयों के साथ अँग्रेजों द्वारा अमानुषिक अत्याचार किए जाते थे। अतः आप वहाँ बीस वर्ष तक रहे तथा रंगभेद की नीति एवं मानव-अधिकारों के लिए दक्षिण अफ्रीका में कड़ा संघर्ष किया। वहाँ पर उन्होंने सत्याग्रह आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। तीन बार दक्षिण अफ्रीका में गांधी जी को जेल भी जाना पड़ा। इससे उन्होंने वहाँ पर बड़ी प्रसिद्धि प्राप्त की।

(2) भारतीय राजनीति में प्रवेश—बीस वर्ष के उपरान्त 1914 ई० में गांधी जी भारत वापस लौट आए। उन दिनों प्रथम विश्वयुद्ध छिड़ा हुआ था। युद्ध में गांधी जी ने ब्रिटिश सरकार की बड़ी सहायता की, परन्तु जब युद्ध की समाप्ति पर **रौलेट एक्ट** पारित हुआ, तो आपने पंजाब में किए गए अत्याचारों तथा खिलाफत के प्रश्न के कारण असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ कर दिया। कुछ ही वर्षों में आपकी ख्याति सर्वत्र फैल गई। गांधी जी ने 1919 ई० से लेकर 1947 ई० तक कांग्रेस और राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व किया। इसी कारण इन्हें राष्ट्रीय आन्दोलन का कर्णधार कहा जाता है। देश की राजनीति पर गांधी जी का व्यापक प्रभाव था। गांधी जी ने भारत की स्वतन्त्रता के लिए तीन महत्त्वपूर्ण आन्दोलन चलाए थे—**'असहयोग आन्दोलन', 'सविनय अवज्ञा आन्दोलन'** तथा **'भारत छोड़ो आन्दोलन'**। सत्य, अहिंसा की नीति के आधार पर ही आपने विश्व की महान् शक्ति ब्रिटिश साम्राज्य से टक्कर ली और अन्त में विवश होकर 15 अगस्त, 1947 ई० को अँग्रेजों ने भारत को स्वतन्त्र कर दिया। यह भारत का दुर्भाग्य ही था कि इस अवसर पर सारा देश दो राष्ट्रों—हिन्दुस्तान तथा पाकिस्तान में विभाजित हो गया।

(3) सामाजिक क्षेत्र में महात्मा गांधी का योगदान—गांधी जी में सामाजिक न्याय की भावना बड़ी प्रबल थी। उनके हृदय में भारत की निम्न और दलित जातियों के प्रति विशेष सहानुभूति तथा विशेष प्रेम था। वे समझते थे कि हिन्दू समाज ने उन्हें दलित अवस्था में रखकर उनके साथ बड़ा अन्याय किया है और छुआछूत के कारण भारतवर्ष को अपने विकास मार्ग से विचलित होना पड़ा। अतः उन्होंने अछूत जाति के लोगों के पक्ष में आवाज़ उठाई और उनके हितों को सुरक्षित रखने के लिए भरसक प्रयास किया। महात्मा गांधी ने इन्हें **'हरिजन'** (भगवान के जन) कहकर सम्मानित किया। उन्होंने इसी उद्देश्य से 'हरिजन' नामक पत्रिका भी प्रकाशित कराई, जिसमें वे छुआछूत के विरुद्ध प्रभावशाली लेख प्रकाशित करते रहते थे। इसके साथ ही गांधी जी ने हिन्दुओं को हरिजनों के प्रति उदार होने की प्रेरणा प्रदान की और मन्दिरों के द्वार हरिजनों के लिए खोल देने को कहा। गांधी जी स्वयं भी हरिजनों की बस्तियों में जाकर रहे, जिससे उच्च वर्ग के लोग हरिजनों से घृणा करना छोड़ दें। महात्मा गांधी के इन्हीं प्रयत्नों के परिणामस्वरूप हमारे राष्ट्रीय जीवन में सामाजिक आदर्शों और समानता के प्रति सम्मान की भावना विकसित हुई, जिसने आधुनिक भारत की सामाजिक संरचना में विशेष योगदान दिया।

छुआछूत की भाँति ही महात्मा गांधी साम्प्रदायिकता के भी घोर विरोधी और हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रबल समर्थक थे। वे चाहते थे कि उनके देशवासी प्रेम और शान्ति से रहें। उन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन, हिन्दू-मुस्लिम एकता को दृढ़ करने में लगा दिया था। वे मानवता के सच्चे हितैषी थे। उनके सम्बन्ध में यह कथन पूर्णतः उचित ही है कि, **"महात्मा गांधी दलितों के मसीहा थे।"** इस दृष्टि से महात्मा गांधी को आधुनिक भारत का युग-पुरुष कहा जा सकता है।

(4) राजनीतिक जागरण में गांधी जी का योगदान—भारत के राजनीतिक जागरण में सर्वाधिक योगदान गांधी जी का ही रहा है। उन्होंने अपने देशवासियों को अत्याचारों का सामना करने के लिए अहिंसा और असहयोग पर आधारित सत्याग्रह का महान् आदर्शवादी हथियार प्रदान किया। इसके द्वारा ही उन्होंने दक्षिण अफ्रिका में भी भारतवासियों की समस्याओं का निराकरण करने में सफलता अर्जित की। वे राजनीति में भी बड़े सत्यवादी तथा निष्कपट थे। वे धर्म और राजनीति में गहरा सम्बन्ध मानते थे। वे हमेशा ही राजनीति में नैतिक पक्ष पर बल देते थे और स्वयं भी इन सिद्धान्तों का पालन बड़ी दृढ़ता से करते थे। वे लक्ष्य की अपेक्षा साधनों को अधिक महत्त्व देते थे। उन्होंने अपने देशवासियों को साहसी तथा निर्भीक बना दिया और उनमें आत्म-सम्मान की भावना जाग्रत की। रोम्या रोलां ने गांधी जी के विषय में लिखा है, "गांधी जी ही केवल भारत के राष्ट्रीय इतिहास के ऐसे नायक हैं जिनकी किंवदन्तियाँ युगों तक प्रसिद्ध रहेंगी। उन्होंने समस्त मानव-वर्ग के सन्तों और महात्माओं में अपना स्थान प्राप्त किया है और उनके व्यक्तित्व का प्रकाश सम्पूर्ण विश्व में फैला हुआ है।"

भारत को स्वतन्त्र कराने में उनकी सेवाएँ महान् थीं। यहाँ तक कि 1919 से 1947 ई० तक का राष्ट्रीय आन्दोलन का युग गांधी युग कहा जाता है। वास्तव में, "भारत को स्वतन्त्र कराने का जो श्रेय महात्मा गांधी को प्राप्त है वह अन्य किसी भारतीय नेता को प्राप्त नहीं है।" डॉ० राजेन्द्र प्रसाद ने लिखा है, "मेरे विचार से गांधी जी को भारतीय जनता, सम्भवतः संसार को दुःखी मानव जाति के प्रति सबसे बड़ी देन यह है कि उन्होंने अत्याचार का सामना करने के लिए सत्याग्रह के रूप में एक विचित्र तथा अद्वितीय साधन दिया। उन्होंने यह भी बताया कि किस प्रकार शक्तिशाली ब्रिटिश साम्राज्य के विरुद्ध सफलतापूर्वक लड़ा जा सकता है।"

डॉ० राधाकृष्णन के शब्दों में, "गांधी जी की महानता उनके वीरत्त्वपूर्ण संघर्षों से कहीं अधिक उनके पवित्र जीवन में, विनाशकारी तत्त्वों के उत्थान काल में भी उनकी आत्मा की सृजन शक्ति तथा उनके जीवनदायक तत्त्वों के अदम्य विश्वास में निहित है।" पं० जवाहरलाल नेहरू ने गांधी जी को 'ईश्वरीय मानव' कहा था।

वस्तुतः महात्मा गांधी राष्ट्रीय आन्दोलन के कर्णधार थे। उनके अद्भुत व्यक्तित्व एवं अविस्मरणीय कार्यों को देखते हुए ही यह कहा गया है कि, "भावी पीढ़ियाँ सहसा यह विश्वास नहीं करेंगी कि ऐसा हाड़-मांस का व्यक्ति कभी इस पृथ्वी पर चला था।"

प्रश्न 5—सुभाषचन्द्र बोस तथा बाल गंगाधर तिलक के प्रारम्भिक जीवन का परिचय देते हुए, राष्ट्रीय आन्दोलन में उनकी भूमिका पर प्रकाश डालिए।

अथवा भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में सुभाषचन्द्र बोस तथा बाल गंगाधर तिलक के योगदानों की व्याख्या कीजिए। *(1997)*

अथवा भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में सुभाषचन्द्र बोस की उपलब्धियों एवं असफलताओं का मूल्यांकन कीजिए। *(1999)*

अथवा सुभाषचन्द्र बोस पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए। *(1990, 93, 94, 95, 97)*

उत्तर—भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में सुभाषचन्द्र बोस व लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक का अविस्मरणीय योगदान रहा। भारत के इन दोनों महान राष्ट्रभक्तों के प्रारम्भिक जीवन तथा स्वतन्त्रता आन्दोलन में उनके योगदान सम्बन्धी कार्यों का संक्षिप्त विवरण निम्नवत् है—

सुभाषचन्द्र बोस

सुभाषचन्द्र बोस ने राष्ट्रीय आन्दोलन में बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। श्री आर० सी० मजूमदार के शब्दों में, "गांधी जी के बाद भारतीय स्वतन्त्रता संघर्ष में सर्वप्रमुख व्यक्ति निःसन्देह सुभाषचन्द्र बोस ही थे।"

प्रारम्भिक जीवन एवं शिक्षा—सुभाषचन्द्र बोस का जन्म 23 जनवरी, 1897 ई० को उड़ीसा के कटक नगर में हुआ था। ये एक समृद्ध एवं उच्च शिक्षित परिवार में जन्मे थे। अतः इनकी शिक्षा भी उच्च स्तर की एवं नवीन ढंग के अनुसार कराई गई। इन्होंने 1913 ई० में मिशनरी स्कूल से मैट्रिक की परीक्षा उत्तीर्ण की और 1919 ई० में बी० ए० ऑनर्स की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। इसके पश्चात् इन्होंने

विलायत से आई० सी० एस० की परीक्षा उत्तीर्ण की और भारत में आकर उच्च पद पर आसीन हो गए। किन्तु उनके हृदय में ब्रिटिश शासन के विरुद्ध विद्रोह की आग धधक रही थी। अतः नौकरी को त्यागकर वे देश-सेवा में जुट गए।

स्वतन्त्रता आन्दोलन में योगदान—सुभाषचन्द्र बोस एक महान देशभक्त थे। वे राजनीतिक यथार्थवाद से अनुप्राणित थे। इन्होंने लाहौर अधिवेशन में सन् 1929 में पं० जवाहरलाल नेहरू द्वारा प्रस्तुत **'पूर्ण स्वराज्य'** के प्रस्ताव का समर्थन किया। यहीं पर इनमें अचानक उग्र विचारधारा उत्पन्न हुई। ये 1929 ई० के लाहौर कांग्रेस के अधिवेशन से जब बाहर निकले तो इन्होंने **कांग्रेस प्रजातंत्र दल** का निर्माण किया। इसके बाद उन्होंने **फ़ारवर्ड ब्लॉक** नामक एक अन्य दल की स्थापना की। इन्होंने गांधी जी के स्वतन्त्रता आन्दोलनों में भी भाग लिया; किन्तु दोनों के विचार एक-दूसरे के बिल्कुल विपरीत थे। विचारों में मतभेद के फलस्वरूप अनेक अवसरों पर दोनों का मतभेद बढ़ता ही गया, फिर भी व्यक्तिगत रूप से सुभाषचन्द्र बोस गांधी जी का आदर करते थें। इन दोनों में मुख्य अन्तर साध्य का नहीं, साधनों का था। गांधी जी शान्तिपूर्ण तरीकों से स्वराज्य-प्राप्ति में विश्वास करते थे, जबकि बोस क्रान्तिपूर्ण नीतियों में विश्वास करते थे; किन्तु साध्य दोनों का स्वराज्य-प्राप्ति ही था।

सुभाषचन्द्र बोस का विचार था कि गांधी जी की नीति से स्वराज्य कभी नहीं मिल पाएगा; क्योंकि अंग्रेज़ इतने सीधे व सरल नहीं थे कि वे भारत को सहज ही स्वतन्त्रता प्रदान कर देते। अतः वे हिंसा के समर्थक थे और हिंसात्मक साधनों में विश्वास करते थे। जब द्वितीय विश्वयुद्ध चल रहा था तो उन्होंने कहा था कि, **"यह स्वतन्त्रता-प्राप्ति का अच्छा अवसर है। हमको संगठित होकर ब्रिटिश सरकार से सत्ता छीनने का प्रयत्न करना चाहिए।"** किन्तु इस समय कांग्रेस ने उनका साथ नहीं दिया, अपितु सन् 1942 ई० में कांग्रेस ने वही कार्य किया, जिसकी योजना सुभाषचन्द्र बोस ने सन् 1930 ई० में बनाई थी। सन् 1941 ई० में ये वेश बदलकर भारत से बाहर चले गए और गुप्त रहकर भारत को स्वतन्त्र कराने का प्रयत्न करते रहे। इन्होंने एक सेना संगठित की, जिसका नाम **'आजाद हिन्द फौज'** था। इनका उद्देश्य भारत को परतंत्रता की बेड़ियों से मुक्त कराना था। बोस इस सेना के प्रधान सेनापति थे। उनका उद्‌घोष था—**'दिल्ली चलो।'** सुभाष बाबू ने सैनिकों को सम्बोधित करते हुए कहा था, **"तुम मुझे खून दो और मैं तुम्हें आजादी दूँगा।"** इस सेना ने अँग्रेजों से कई बार मोर्चा लिया; किन्तु दुर्भाग्य से इन्हें विजयश्री प्राप्त न हो सकी। इन्होंने एक अस्थायी सरकार का गठन भी किया, जिसे जापान एवं जर्मनी ने मान्यता भी दे दी थी; किन्तु अन्ततः उन्हें सफलता नहीं मिली और सन् 1945 ई० में एक वायुयान दुर्घटना में उनकी मृत्यु हो गई।

उनकी सेवाओं का मूल्यांकन डॉ० वी० पी० वर्मा ने इन शब्दों में किया है कि, **"राजनीतिक कार्यकर्त्ता तथा नेता के रूप में बोस ओजस्वी राष्ट्रवाद के समर्थक थे। देशभक्ति उनके व्यक्तित्व का सार तथा उनकी आत्मा की उच्चतम अभिव्यक्ति थी।"**

लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक

बाल गंगाधर तिलक कांग्रेस के उग्रवादी दल के प्रतिभा-सम्पन्न नेता थे। भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन में उग्रवादी विचारधारा के जन्मदाता ये ही थे। इन्होंने ही सर्वप्रथम यह नारा लगाया कि, **"स्वराज्य मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा।"** वास्तव में, इन्होंने ही देश में चल रहे राष्ट्रीय आन्दोलन को तीव्र गति प्रदान की थी।

प्रारम्भिक जीवन एवं शिक्षा—बाल गंगाधर तिलक का जन्म 12 जुलाई, 1856 ई० में महाराष्ट्र के रत्नागिरि जिले में एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। अपना अध्ययन कार्य समाप्त करने के बाद वे 'दक्षिण शिक्षा समिति' द्वारा स्थापित पूना के 'न्यू इंग्लिश स्कूल' में बीजगणित के अध्यापक नियुक्त हो गए।

ये स्वभाव से निर्भीक, दृढ़निश्चयी एवं स्वाभिमानी थे। इन्होंने अपना सम्पूर्ण जीवन देश की सेवा में अर्पित कर दिया। 1 अगस्त, 1920 ई० को ये 64 वर्ष की आयु पूर्ण कर स्वर्ग सिधार गए।

स्वतन्त्रता आन्दोलन में योगदान—अपने देश में राजनीतिक चेतना जगाने के उद्देश्य से इन्होंने दो समाचार-पत्र **'केसरी'** तथा **'मराठा'** प्रकाशित करने प्रारम्भ किए। इन पत्रों के माध्यम से आप ब्रिटिश शासन की नीतियों का साहस के साथ विरोध करते रहे। 1891 ई० में सरकार के 'Age of Consent Bill' का विरोध करके आप भारतीय जनता के प्रिय पात्र बन गए। इस अधिनियम द्वारा ब्रिटिश सरकार बाल-विवाह

पर प्रतिवन्ध लगाना चाहती थी। इन्होंने इसका विरोध किया। इनका कहना था कि हमारी धार्मिक एवं सामाजिक नीतियों में ब्रिटिश सरकार को हस्तक्षेप करने का कोई अधिकार नहीं है। इन्होंने महाराष्ट्र में गणपति उत्सव और शिवाजी उत्सव मनाने की प्रथा प्रारम्भ की। 1896 ई० में देशव्यापी भीषण अकाल पड़ा। इस समय इन्होंने अपने देशवासियों की बहुत सहायता एवं सेवा की। इस प्रकार ये दक्षिण में एक अच्छे सामाजिक सेवक एवं नेता के रूप में प्रसिद्ध हो गए।

सन् 1897 के अकाल के बाद बम्बई में प्लेग का भयावह प्रकोप हो गया। इन्होंने प्लेगग्रस्त लोगों की सेवार्थ आवश्यक कमेटियों एवं अस्पतालों की व्यवस्था की और अपने समाचार-पत्र द्वारा प्लेग कमिश्नर तथा उसके सहयोगियों की आलोचना की। दुर्भाग्यवश प्लेग कमिश्नर की हत्या हो गई और इन्हें 18 महीने के लिए जेल भेज दिया गया, किन्तु छह महीने के बाद ही इन्हें छोड़ दिया गया। इसी प्रकार और कई बार भी ये जेल गए। भारतीय नेताओं में ये ही ऐसे नेता थे जो सबसे अधिक बार जेल गए।

प्रारम्भ में कांग्रेस कुछ थोड़े-से लोगों की संस्था थी, किन्तु तिलक जी के इसमें सम्मिलित हो जाने के बाद मध्यम वर्ग के लोग भी कांग्रेस में आने लगे। परन्तु तिलक जी कांग्रेस की अनुनय-विनय की नीति पसन्द नहीं करते थे। तिलक उग्र राष्ट्रवादी थे तथा वे भारत में उग्र राष्ट्रवाद के जनक थे। वस्तुतः राष्ट्रीय कांग्रेस के नेताओं में स्वराज्य का नारा देने वाले वही सर्वप्रथम व्यक्ति थे। वे एक राष्ट्रीय नेता थे तथा राष्ट्र उन्हें प्राणों से भी प्यारा था। डॉ० वी० पी० वर्मा के शब्दों में, **"बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक वर्षों में तिलक एक प्रमुख राजनीतिक विभूति थे। उन्होंने भारतवासियों को स्वराज्य के अधिकार का पहला पाठ पढ़ाया।"** उनके प्रमुख साधन स्वदेशी, बहिष्कार, राष्ट्रीय शिक्षा तथा निष्क्रिय प्रतिरोध थे। 1907 ई० में कांग्रेस में फूट पड़ गई और तिलक जी कांग्रेस से अलग हो गए। कांग्रेस की इस फूट से सरकार बड़ी प्रसन्न हुई और इस फूट का लाभ उठाकर गर्म दल के नेताओं पर अपना दमनकारी कुचक्र चलाती रही। 1908 में इन्हें माण्डले जेल भेज दिया गया। 1914 ई० में ये जेल की सजा काटकर पुनः भारत आए। भारतीयों ने उनका दिल खोलकर स्वागत किया। 1916 ई० में कांग्रेस के दोनों दलों में पुनः मेल हो गया और तिलक जी कांग्रेस के सर्वेसर्वा समझे जाने लगे।

सन् 1916 में प्रथम विश्वयुद्ध के दौरान तिलक जी ने श्रीमति ऐनी बेसेण्ट के सहयोग से **'होमरूल लीग'** की स्थापना की। इस समय ब्रिटिश सरकार को भारतीयों के सहयोग की आवश्यकता अनुभव हुई और उन्होंने भारतीयों से सहयोग की माँग की। लोकमान्य तिलक ने इसे उपयुक्त अवसर जानकर अँग्रेजों से **'होम रूल'** की माँग की। ब्रिटिश सरकार उसी समय **'होमरूल'** को स्वीकार करने के लिए सहमत नहीं हुई। अतः तिलक जी ने तुरन्त **'होमरूल आन्दोलन'** शुरू कर दिया और देश के कोने-कोने में स्वराज्य का संदेश पहुँचा दिया। ये देश में अपने समय में गांधी जी के समान ही प्रसिद्ध हुए।

शिक्षा के क्षेत्र में कार्य—इन्होंने अपने सहयोगियों की सहायता से 1884 ई० में **'डकन एज्यूकेशन सोसायटी'** की स्थापना की, जो कालान्तर में भारत की प्रमुख शिक्षण संस्था बनी। फिर इसी संस्था ने पूना के प्रसिद्ध **'फर्ग्युसन कॉलेज'** की स्थापना की। इस कॉलेज में तिलक जी ने काफी समय तक अध्यापन कार्य भी किया। तिलक जी एक महान शिक्षाशास्त्री थे। वे एक ऐसी राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति के प्रतिपादक थे जो राजनीतिक उद्देश्य की पूर्ति का एक सकारात्मक साधन हो। वे राष्ट्रीय शिक्षा के माध्यम से देश में राष्ट्रीय एकता तथा राष्ट्रीय उत्थान चाहते थे। तिलक जी एक सामाजिक सुधारक तथा धार्मिक व्यक्ति थे।

समीक्षा—वास्तव में, तिलक जी राष्ट्रीय आन्दोलनकारियों के लिए प्रकाश-स्तम्भ थे। उन्होंने ऐसा वातावरण तैयार कर दिया जिससे स्वतन्त्रता-प्राप्ति का मार्ग बहुत सरल हो गया। यह सच है कि वे स्वभावतः उग्र विचारों वाले थे, किन्तु वे राष्ट्रीय भावना से ओत-प्रोत थे। डॉ० वी० पी० वर्मा ने उनका मूल्यांकन इन शब्दों में किया है कि, **"तिलक का जीवन विविध प्रकार के प्रगतिशील कार्यों की कहानी है। वे शक्तिशाली व्यक्ति तथा नेता थे और जिस काम में उन्होंने अपनी शक्ति लगाई, उस पर अपना गम्भीर प्रभाव छोड़ा।"** तिलक ने राष्ट्रीय आन्दोलन के सभी महत्त्वपूर्ण पहलुओं को स्पर्श किया। गांधी जी ने उन्हें **'स्वराज्य का सन्देशवाहक'** बताया। उन्हीं के शब्दों में, **"हमारे समय में किसी भी व्यक्ति का जनता पर इतना प्रभाव नहीं पड़ा, जितना तिलक का। स्वराज्य के सन्देश का किसी ने इतनी तन्मयता से प्रचार नहीं किया जितना कि लोकमान्य तिलक ने।"**

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—निम्नलिखित पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—

(1) कांग्रेस का उदारवादी काल

प्रारम्भिक अवस्था में राष्ट्रीय कांग्रेस का उद्देश्य ब्रिटिश सरकार से भारतीयों को कुछ सुविधाएँ प्रदान कराने का कार्य मात्र ही था। यह संस्था अनुनय-विनय द्वारा ही शान्तिमय उपायों से देश की शासन-व्यवस्था में सुधार करवाना चाहती थी। कांग्रेस का यह काल (1885 से 1905 ई०) उदारवादी युग के नाम से जाना जाता है। इस काल के लोकप्रिय नेता **दादाभाई नौरोजी, गोपाल कृष्ण गोखले, मदनमोहन मालवीय, सुरेन्द्रनाथ बनर्जी** आदि थे। 1890 ई० में कांग्रेस का एक शिष्ट-मण्डल इंग्लैण्ड भी गया, जिसके फलस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने 1892 ई० का **'इण्डियन काउन्सिल एक्ट'** पारित किया था, परन्तु कांग्रेस को इससे निराशा ही हाथ लगी थी। जब सरकार ने राष्ट्रीय कांग्रेस के किसी भी प्रस्ताव की ओर ध्यान नहीं दिया, तो कांग्रेस के उद्देश्य और उद्देश्य की प्राप्ति के साधन परिवर्तित हो गए। भयानक अकाल एवं प्लेग फैलने पर ब्रिटिश सरकार ने भारतीयों को कोई विशेष सहायता नहीं दी। इन्हीं कारणों से कांग्रेस में उग्रवादी और सक्रिय आन्दोलन समर्थक बढ़ने लगे। **लोकमान्य तिलक** इनका नेतृत्व कर रहे थे। 1907 ई० में सूरत अधिवेशन में कांग्रेस दो दलों—**उदारवादी दल** और **उग्रवादी दल** में विभक्त हो गई। उग्रवाद के उदय से कांग्रेस का उदारवादी युग समाप्त हो गया था।

(2) कांग्रेस में उग्रवाद का जन्म

सन् 1906 ई० में कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ता में हुआ। इस अधिवेशन में कुछ उग्र नेताओं द्वारा स्वराज्य की माँग की गई। सरकार ने इस माँग को तिरस्कृत कर आन्दोलनकारियों का दमन कर दिया। अतः कांग्रेस के कुछ सदस्य यह कहने लगे कि नरम नीति अपनाने से अँग्रेजों से कुछ भी प्राप्त नहीं किया जा सकता है, वरन् क्रान्तिकारी उपायों द्वारा ही कुछ प्राप्त किया जा सकता है। इस प्रकार, राष्ट्रीय कांग्रेस के सदस्यों में मतभेद उत्पन्न हो गया जिसके परिणामस्वरूप सभी सदस्य दो दलों—गरम दल और नरम दल में बँट गए। 1907 ई० में कांग्रेस के **सूरत अधिवेशन** में गरम दल कांग्रेस से पृथक् हो गया। इस दल के नेता **बाल गंगाधर तिलक, लाला लालपत राय और विपिनचन्द्र पाल** आदि थे, जो भारतीय इतिहास में बाल-लाल-पाल के नाम से प्रसिद्ध हैं। नरम दल का नेतृत्व **सुरेन्द्रनाथ बनर्जी, गोपालकृष्ण गोखले** तथा **पं० मदनमोहन मालवीय** आदि नेताओं के हाथ में था।

(3) क्रान्तिकारी आन्दोलन

सन् 1905 ई० में **लॉर्ड कर्जन** ने बंगाल का विभाजन कर दिया, जिसके विरोध में बंगाल में भीषण आन्दोलन उठ खड़ा हुआ और सम्पूर्ण देश में क्रान्ति की लहर दौड़ गई। क्रान्तिकारियों की संख्या आँधी की तरह बढ़ती चली गई। बंगाल में अँग्रेज अधिकारियों पर हथगोले फेंके गए और हत्याएँ आदि की गईं। इन क्रान्तिकारी कार्यक्रमों में बंगाल के गवर्नर की गाड़ी को उड़ाने का प्रयास, ढाका के मजिस्ट्रेट की हत्या, मुजफ्फरपुर के न्यायाधीश की हत्या का प्रयास आदि प्रमुख थे। सरकार ने इन सब छुटपुट क्रान्तियों का बड़ी सरलता से दमन कर दिया। इन सब क्रान्तिकारी उपद्रवों में थोड़ा-बहुत तिलक जी का भी हाथ समझा जाता था। अतः उन्हें खोजकर पकड़ा गया और उन पर राजद्रोह का आरोप लगाकर छह वर्ष के लिए कारावास में डाल दिया गया।

(4) कांग्रेस-लीग समझौता (लखनऊ पैक्ट)

सन् 1916 ई० में कांग्रेस का ऐतिहासिक अधिवेशन लखनऊ में सम्पन्न हुआ। इसमें गरम एवं नरम दलों का पुनः मेल हो गया तथा कांग्रेस और मुस्लिम लीग में भी एकता स्थापित हो गई। कांग्रेस ने राष्ट्रीय एकता के दृष्टिकोण को महत्त्व देते हुए मुस्लिम लीग की कुछ साम्प्रदायिक माँगों को स्वीकार कर लिया। इसके परिणामस्वरूप दोनों वर्ग; अँग्रेजों से स्वतन्त्र शासन की माँगों पर सहमत हो गए। यह समझौता **लखनऊ पैक्ट** के नाम से जाना जाता है।

(5) असहयोग आन्दोलन (1991)

जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड के फलस्वरूप असहयोग आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। इस आन्दोलन का अर्थ था कि भारतवासी अँग्रेजों को किसी भी क्षेत्र में किसी भी प्रकार का सहयोग न दें, सरकारी उपाधियाँ वापस लौटा दी जाएँ और विद्यार्थी सरकारी स्कूल-कॉलेजों का परित्याग कर दें। इस आन्दोलन का अँग्रेजी सरकार ने इतनी निर्ममता के साथ दमन किया कि मानवता काँप उठी और देश दहल गया, लेकिन फिर भी आन्दोलन का कार्यक्रम गांधी जी के नेतृत्व में आगे बढ़ता ही रहा। लोगों ने सरकारी उपाधियाँ छोड़ दीं, वकीलों ने वकालत और विद्यार्थियों ने सरकारी विद्यालय छोड़ दिए, परन्तु यह आन्दोलन हिंसात्मक रूप धारण करता जा रहा था। अतः गांधी जी ने चौरी-चौरा काण्ड से दुःखी होकर फरवरी, 1922 ई० में यह आन्दोलन समाप्त कर दिया। गांधी जी के इस कार्य से अन्य कांग्रेसी नेता बहुत नाराज हुए और गांधी जी की लोकप्रियता को भी बहुत ठेस पहुँची। 10 मार्च, 1922 ई० को ब्रिटिश सरकार ने गांधी जी को पकड़कर कारावास भेज दिया।

(6) स्वराज्य दल

गांधी जी के मार्च, 1922 ई० में जेल जाने से असहयोग आन्दोलन समाप्त हो गया। अतः कांग्रेस में मोतीलाल नेहरू एवं चितरंजन दास ने मिलकर एक नवीन स्वराज्य दल की स्थापना की। इस दल का प्रमुख उद्देश्य काउंसिलों में पहुँचकर सरकारी कार्यों में वाधाएँ डालना था।

सन् 1914 ई० के चुनावों में इस दल के सदस्यों ने भारी सफलता प्राप्त की, लेकिन यह पार्टी अपने उद्देश्य में पूर्णतया सफल न हो सकी, क्योंकि गवर्नर जनरल अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग कर रहा था। अतः स्वराज्य दल ने अँग्रेजों को चेतावनी दे दी थी कि अब शीघ्र ही उन्हें भारत छोड़ने के लिए विवश होना पड़ेगा।

(7) साइमन कमीशन (1990, 92)

सन् 1919 ई० के पश्चात् भारत में कोई भी वैधानिक सुधार नहीं हुआ। अतः भारतीयों के असंतोष को दूर करने के लिए 1927 ई० में सर जॉन साइमन के नेतृत्व में इंगलैण्ड की सरकार ने एक कमीशन नियुक्त किया। इस कमीशन को 1919 ई० के अधिनियम की उचित जाँच करके, ब्रिटिश संसद में एक रिपोर्ट भेजनी थी। इस कमीशन के सभी सदस्य अँग्रेज थे। इसलिए भारतीयों ने इस कमीशन का विरोध करने का निर्णय लिया। 2 फरवरी, 1928 ई० को यह कमीशन भारत आया। इस कमीशन को यहाँ काले झण्डे दिखाए गए और 'साइमन वापस लौट जाओ' के नारे लगाए गए। स्थिति को अनियंत्रित होते देख ब्रिटिश सरकार ने लोगों पर लाठियाँ बरसाईं। लाहौर में लाला लाजपत राय पर इतनी लाठियाँ पड़ीं कि कुछ दिनों वाद ही उनकी मृत्यु हो गई। इससे आन्दोलन और उग्र हो उठा। फिर भी 1930 ई० में साइमन कमीशन ने अपनी रिपोर्ट इंग्लैण्ड की संसद के समक्ष प्रस्तुत कर दी, परन्तु सविनय अवज्ञा आन्दोलन के पुनः शुरू हो जाने के कारण भारत में कोई सुधार न हो सका।

(8) सविनय अवज्ञा आन्दोलन (1999)

कांग्रेस अपना लक्ष्य पूर्ण स्वराज्य की प्राप्ति निश्चित कर चुकी थी। अतः उसके लिए अब मात्र सीमित राजनीतिक अधिकारों के मिलने से ही सन्तुष्ट हो पाना सम्भव नहीं था। दूसरी ओर, ब्रिटिश सरकार पूर्ण स्वराज्य देने के लिए सहमत नहीं हो रही थी। अतः गांधी जी ने फिर एक प्रभावशाली आन्दोलन छेड़ दिया। उन्होंने नमक कानून तोड़कर 1930 ई० में सविनय अवज्ञा आन्दोलन चलाया।

लॉर्ड इरविन ने शान्ति स्थापित करने के लिए लन्दन में 1930 ई० में प्रथम गोलमेज सभा का अधिवेशन आयोजित करवाया। इसमें कांग्रेस के किसी भी नेता ने भाग नहीं लिया। गांधी जी ने 1931 ई० में भारत के वायसराय लॉर्ड इरविन के साथ रामझौता किया, जिसके फलस्वरूप सविनय अवज्ञा आन्दोलन रोक दिया गया और दूसरी गोलमेज सभा में भाग लेने का भी निश्चय किया, परन्तु दूसरे गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने पर भी कोई निर्णय न हो सका। अतः आन्दोलन पुनः प्रारम्भ हो गया। इस बार गांधी जी बन्दी बनाकर जेल भेज दिए गए और सरकार द्वारा आन्दोलन को बड़ी क्रूरता के साथ कुचल दिया गया।

(9) पूना पैक्ट

गांधी जी द्वारा संचालित सविनय अवज्ञा आन्दोलन के कारण सरकार का दमनचक्र जारी था। इसी समय जब दूसरी गोलमेज सभा में भी कोई निर्णय न हो सका, तो ब्रिटिश प्रधानमन्त्री रैम्जे मैक्डोनाल्ड ने 16 अगस्त, 1932 ई० को साम्प्रदायिक निर्णय की घोषणा की, जिसमें हिन्दू, मुसलमान, सिक्ख, ईसाई तथा अछूतों के लिए पृथक्-पृथक् निर्वाचन क्षेत्र बनाए जाने की व्यवस्था की गई थी। ऐसा करने का उद्देश्य अछूतों को हिन्दू समाज से पृथक् करना था। इस व्यवस्था के विरोध में गांधी जी ने 20 सितम्बर, 1932 ई० को आमरण अनशन प्रारम्भ किया। अन्त में, पूना में एक समझौता हुआ, इसलिए इस समझौते का नाम 'पूना पैक्ट' पड़ा। इस पूना समझौते के अनुसार, अलग-अलग निर्वाचन क्षेत्र की व्यवस्था समाप्त हो गई, परन्तु हरिजनों की सीटों का आरक्षण अवश्य हो गया।

(10) क्रिप्स मिशन

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान युद्ध की स्थिति कुछ इस प्रकार बदली कि संयुक्त राज्य अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, चीन आदि प्रमुख देशों के शासकों ने ब्रिटिश सरकार पर भारत को स्वतन्त्र करने के लिए दबाव डाला। अतः 1942 ई० में इंग्लैण्ड के मन्त्रि-मण्डल के एक सदस्य सर स्टैफर्ड क्रिप्स भारत के लिए एक योजना लेकर भेजे गए। सर स्टैफर्ड क्रिप्स बहुत ही उदारवादी थे, परन्तु वह भारत में आकर ब्रिटिश सरकार के हितों के सच्चे संरक्षक बन गए। उनके पक्षपातपूर्ण कुकृत्यों को देखकर भारत के नेताओं ने कहा था, **"यह गोरा आदमी कितने अधिक काले हृदय का आदमी है।"** क्रिप्स की योजना में कुछ ऐसी बातें थीं, जिन्हें स्वीकार नहीं किया जा सकता था। अतः यह योजना भी अस्वीकार कर दी गई।

प्रश्न 2 — भारत छोड़ो आन्दोलन (1942 ई०) का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

उत्तर—8 अगस्त, 1942 ई० को बम्बई में कांग्रेस द्वारा गांधी जी के नेतृत्व में भारत छोड़ो प्रस्ताव पारित होने के दूसरे दिन ही सारे कांग्रेसी नेता पकड़ लिए गए। इससे भारतवासी बहुत क्रोधित हो उठे और देश में क्रान्ति की ज्वाला धधक उठी। गांधी जी ने **'करो या मरो'** का नारा दिया। आन्दोलनकारियों ने डाकघरों, रेलवे स्टेशनों तथा सभी सरकारी दफ्तरों को लूटना एवं जलाना प्रारम्भ कर दिया। रेल की पटरियाँ उखाड़ फेंकी गईं और बिजली के तारों को काट दिया गया। अतः व्यापक स्तर पर गिरफ्तारियाँ हुईं। निःसहाय जनता गोलियों और लाठियों की शिकार हुई। अन्त में, ब्रिटिश सरकार आन्दोलन को कुचलने में सफल हुई।

प्रश्न 3—गांधी जी के हरिजन उद्धार हेतु किए गए कार्यों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए।

उत्तर—गांधी जी ने हरिजनों के उद्धार हेतु अनेक कार्य किए। उन्होंने अछूत जाति के लोगों के पक्ष में आवाज उठाई और उनके हितों को सुरक्षित रखने के लिए भरसक प्रयास किया। महात्मा गांधी ने उन्हें हरिजन कहकर सम्मानित किया। उन्होंने हरिजनों के उद्धार के लिए **'हरिजन'** नामक पत्रिका भी प्रकाशित की जिसमें उन्होंने छुआछूत के विरुद्ध लेख लिखे। उन्होंने हिन्दुओं को हरिजनों के प्रति उदार होने की प्रेरणा प्रदान की और मन्दिरों के द्वार हरिजनों के लिए खोल देने को कहा। गांधी जी स्वयं हरिजनों की बस्तियों में जाकर रहे।

प्रश्न 4—महात्मा गांधी द्वारा संचालित असहयोग आन्दोलन का स्वरूप क्या था? *(1993)*

उत्तर—महात्मा गांधी द्वारा संचालित आन्दोलन का स्वरूप पूर्णतः अहिंसात्मक था। फिर भी यह पहला अवसर था जब कांग्रेस वैधानिक संघर्ष का मार्ग छोड़कर असहयोग के मार्ग को अपना रही थी। इस आन्दोलन के अन्तर्गत सरकारी उपाधियों, सरकारी पदों और विदेशी वस्तुओं का परित्याग कर पूर्णतः स्वदेशी होने का संकल्प लिया गया।

प्रश्न 5—अखिल भारतीय कांग्रेस की स्थापना प्रारम्भ में किसने की थी? उसके उद्देश्य प्रारम्भ में क्या थे? *(1993)*

उत्तर—अखिल भारतीय कांग्रेस की स्थापना सर्वप्रथम 1884 ई० में श्री ए० ओ० ह्यूम ने की थी। प्रारम्भ में, इस संस्था का नाम **'इंडियन नेशनल यूनियन'** था। दिसम्बर 1885 ई० में इसका नाम परिवर्तित करके भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस रख दिया गया। इस संस्था के प्रारम्भिक उद्देश्य अग्रलिखित थे—

(1) वैधानिक मार्ग द्वारा अपनी माँगें मनवाना।

(2) देश-हित में कार्य करने वालों को संगठित करना।

(3) देशवासियों में राष्ट्रीय एकता की भावना विकसित करना।

प्रश्न 6—महात्मा गांधी के सामाजिक एवं आर्थिक सुधारों में से किन्हीं चार का उल्लेख कीजिए। *(1993, 95)*

उत्तर—महात्मा गांधी के चार सामाजिक-आर्थिक सुधार निम्नलिखित हैं—

(1) गांधी जी ने अस्पृश्यता के निवारण हेतु आन्दोलन किया।

(2) उन्होंने साम्प्रदायिकता का घोर विरोध किया।

(3) देशवासियों को स्वदेशी वस्तुएँ अपनाने हेतु प्रेरित किया।

(4) हरिजनों को समाज में सम्मान दिलाने का प्रयास किया।

प्रश्न 7—गांधी जी के 'रचनात्मक कार्यक्रम' के किन्हीं दो बिन्दुओं का आलोचनात्मक परीक्षण कीजिए। *(1996, 97)*

उत्तर—गांधी जी के 'रचनात्मक कार्यक्रम' के दो बिन्दुओं का आलोचनात्मक परीक्षण निम्नवत् है—

(1) स्वदेशी माल खरीदने पर बल—भारत में अपना साम्राज्य स्थापित करने की पृष्ठभूमि में अंग्रेजों का प्रमुख उद्देश्य, भारत के व्यापार पर अपना एकाधिकार स्थापित करना था। वे भारत में अपने माल का अधिकाधिक विक्रय करना चाहते थे। अतः उनकी इस व्यापारिक नीति को विफल करने के लिए ही गांधी जी ने स्वदेशी माल के निर्माण और उसे ही खरीदने पर बल दिया।

(2) राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली की दिशा में प्रयास करने पर बल—गांधी जी का मत था कि अंग्रेजी शिक्षा भारतीयों में गुलामी के संस्कार का विकास करेगी और देश में बेरोजगारी का प्रसार करेगी। वे इसे भारतीयों के चारित्रिक विकास की दृष्टि से अहितकर मानते थे। अतः उन्होंने अपने रचनात्मक कार्यक्रम के अन्तर्गत राष्ट्रीय शिक्षा प्रणाली का विकास करने पर बल दिया।

प्रश्न 8—मुस्लिम लीग की स्थापना कब हुई थी? इस संगठन के क्या उद्देश्य थे? *(1995)*

उत्तर—लीग की स्थापना—मुस्लिम लीग की स्थापना 30 दिसम्बर, 1906 में, ढाका में हुई थी।

लीग के उद्देश्य—प्रारम्भ में लीग का उद्देश्य मुस्लिम हितों की रक्षा तथा विधानमण्डलों में अधिक स्थान दिए जाने की माँग करना ही था, परन्तु 1930 ई० के उपरान्त लीग का प्रमुख उद्देश्य मुस्लिमों के लिए एक अलग राष्ट्र—पाकिस्तान का निर्माण करना हो गया।

प्रश्न 9—1908 ई० में अखिल भारतीय कांग्रेस के संगठन में दो पृथक् गुटों का विभाजन क्यों हुआ? *(1995)*

उत्तर—सन् 1908 ई० के सूरत अधिवेशन में कांग्रेस दो पृथक् गुटों—नरम दल और गरम दल में विभाजित हो गई। इसका प्रमुख कारण, दोनों गुटों की विचारधारा में अन्तर होना था। नरम दल के नेता, अहिंसात्मक और वैधानिक तरीके से ही आजादी की माँग करने में विश्वास करते थे। उग्र दल के नेताओं को, उदारवादी नेताओं का यह तरीका पसन्द नहीं था। उनका विचार था कि यह एक प्रकार से, अंग्रेजों से आजादी के लिए भीख माँगने के समान है। वे स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए उग्रवादी तरीकों को अपनाना चाहते थे। इस प्रकार, यद्यपि दोनों गुटों के नेताओं का लक्ष्य एक ही था, परन्तु उस लक्ष्य, अर्थात् आजादी प्राप्त करने के तरीकों के सम्बन्ध में, दोनों की विचारधारा भिन्न थी। परिणामतः 1908 ई० के सूरत अधिवेशन में, काफी विवाद के उपरान्त, कांग्रेस दो गुटों में विभक्त हो गई।

प्रश्न 10—महात्मा गांधी के समकालीन चार वाइसरायों का उल्लेख कीजिए। *(1999)*

उत्तर—महात्मा गांधी ने ब्रिटिश शासन के विरुद्ध तीन आन्दोलन चलाए, जिनमें असहयोग आन्दोलन के समय लॉर्ड चेम्सफोर्ड, और लॉर्ड रीडिंग भारत के वायसराय थे। सविनय अवज्ञा आन्दोलन के दौरान लॉर्ड इरविन भारत के वायसराय थे। भारत छोड़ो आन्दोलन के समय लॉर्ड लिनलिथगो भारत के वायसराय थे। इनका शासनकाल अग्रलिखित रहा—

(1) लॉर्ड चेम्सफोर्ड (1916-1921 ई०), (2) लॉर्ड रीडिंग (1921-1925 ई०), (3) लॉर्ड इरविन (1926-1931 ई०), (4) लॉर्ड लिनलिथगो (1936-1943 ई०)।

प्रश्न 11—जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड के सम्बन्ध में आप क्या जानते हैं? *(1994)*

उत्तर—जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड—अमृतसर में रौलेट एक्ट का विरोध करने के लिए जलियाँवाला बाग में एक शान्तिपूर्ण सभा हो रही थी। इस सभा में लगभग 20,000 स्त्री-पुरुष एकत्र थे। सभा बड़ी शान्तिपूर्वक चल रही थी कि अचानक बिना पूर्व सूचना के जनरल डायर ने बाग को चारों ओर से घेरकर अपने सैनिकों को निहत्थी जनता पर गोली चलाने का आदेश दे दिया। बाग में केवल एक ही फाटक था और उस पर ही सशस्त्र सैनिक डटे हुए थे।

सरकारी गणना के अनुसार, इस हत्याकाण्ड में सैकड़ों व्यक्ति मारे गए और हजारों निःसहायावस्था में वहीं पड़े तड़पते रहे। प्रत्यक्षदर्शियों की राय में वहाँ लगभग एक हजार व्यक्ति मारे गए थे। इस हत्याकाण्ड के उपरान्त पंजाब में सैनिक-शासन लागू कर दिया गया। इस दर्दनाक घटना से सम्पूर्ण देश में आतंक फैल गया और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सनसनी फैल गई। फिर भी जनरल डायर को ब्रिटिश सरकार ने अनेक उपाधियों और उपहारों से अलंकृत किया।

प्रश्न 12—भारत के स्वाधीनता संग्राम में किसी एक क्रान्तिकारी के योगदान पर प्रकाश डालिए।
अथवा **किन्हीं दो भारतीय क्रान्तिकारियों के जीवन तथा कार्यों की जानकारी दीजिए।** *(1994, 96)*

उत्तर—श्यामजी कृष्णजी वर्मा—भारत के क्रान्तिकारी आन्दोलन को संगठित करने में श्यामजी कृष्णजी वर्मा का महत्त्वपूर्ण योगदान है। सर्वप्रथम उन्होंने ही भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन का सूत्रपात किया। सरकार की कार्यवाही से अत्यधिक पीड़ित होकर वे लन्दन चले गए। वे उच्च कोटि के विद्वान थे। उन्होंने ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय में भी संस्कृत में भाषण दिए। उन्होंने व्यापार में भी अपार धन अर्जित किया। इस धन को वे क्रान्तिकारियों पर व्यय करते थे। उन्होंने इंग्लैण्ड में **'इण्डिया हाउस'** की नींव डाली, जो क्रान्तिकारियों का केन्द्र बन गया था। श्री श्यामजी कृष्णजी वर्मा को 'क्रान्तिकारियों का पिता' स्वीकार किया जाता था। जब इंग्लैण्ड की सरकार ने इन्हें पीड़ित किया, तो वे पेरिस और बाद में जेनेवा में रहने लगे। उन्होंने विदेशों में गए भारतीयों में क्रान्ति की न बुझने वाली ज्वाला प्रज्ज्वलित की।

वीरेन्द्र कुमार घोष—बंगाल में क्रान्तिकारी आन्दोलन के प्रारम्भिक प्रणेता वीरेन्द्र कुमार घोष थे। उन्होंने **'युगान्तर'** तथा **'संध्या'** जैसे क्रान्तिकारी पत्रों का प्रकाशन किया। इन पत्रों के नियमित पाठकों की संख्या बहुत अधिक थी। इन पत्रों के माध्यम से उन्होंने देशवासियों को क्रान्ति की शिक्षा दी। इन्होंने **'अनुशीलन समिति'** की भी स्थापना की, जिसका ध्येय क्रान्तिकारी संगठन के सदस्यों को भारतीय इतिहास व संस्कृति का ज्ञान कराना, राजद्रोह के सिद्धान्तों की शिक्षा प्रदान करना, शारीरिक प्रशिक्षण देना तथा हथियारों का ज्ञान कराना था। इसकी 500 शाखाएँ थीं। इसके सदस्य **'माँ काली'** के समक्ष शपथ लेते थे।

प्रश्न 13—भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में लाला लाजपत राय की भूमिका का वर्णन कीजिए। *(1997)*

उत्तर—भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में लाला लाजपत राय की भूमिका—लाला लाजपत राय कांग्रेस के उग्रवादी दल के प्रमुख नेता और एक महान देशभक्त थे। भारतीय स्वतन्त्रता आन्दोलन में उनकी भूमिका निम्नवर्णित है—

(1) लाला लाजपत राय बी० ए० की परीक्षा के उपरान्त स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़े और उग्रवादी दल के नेता बन गए। वे तिलक जी के साथ मिलकर देशवासियों को अपनी स्वाधीनता के प्रति जाग्रत करने लगे।

(2) 1878 ई० में लाला लाजपत राय कांग्रेस के सदस्य बने और अल्पकाल में ही जन-जन के नेता बन गए।

(3) 1896 ई० में वे एक शिष्ट मण्डल के साथ इंग्लैण्ड गए और वहाँ की जनता को भारतीय जनता के कष्टों से अवगत कराया।

(4) 1906 ई० में कांग्रेस के बनारस अधिवेशन में उन्होंने कांग्रेस की उदारवादी नीति का प्रबल विरोध किया तथा उग्रवादियों का मार्गदर्शन किया।

(5) किसानों के प्रति पंजाब सरकार की नीति की उन्होंने तीव्र आलोचना की। इसके परिणामस्वरूप ब्रिटिश सरकार ने उन्हें देश से निकल जाने का आदेश दिया। ब्रिटिश सरकार के इस आदेश का भारतीयों ने प्रबल विरोध किया। अतः सरकार को अपना आदेश वापस लेना पड़ा।

(6) 1917 ई० में अंग्रेजी सरकार ने उन्हें अराजकता फैलाने वाला और देशद्रोहियों को शरण देने वाला घोषित कर दिया और उन्हें देश से निष्कासित कर दिया।

(7) 1918 ई० तक अमेरिका में रहने के उपरान्त वे स्वदेश वापस लौटे और गांधी जी द्वारा चलाए जा रहे असहयोग आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेना प्रारम्भ कर दिया।

(8) 1928 ई० में उन्होंने साइमन कमीशन का प्रबल विरोध किया। परिणामतः अंग्रेजों द्वारा किए गए लाठीचार्ज में वे गम्भीर रूप से घायल हो गए और अन्ततः 17 नवम्बर, 1928 ई० को उनका निधन हो गया।

ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों एवं व्यक्तियों पर आधारित प्रश्न

प्रश्न 1—निम्नांकित तिथियों के ऐतिहासिक महत्त्व पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) 1885 ई० *(1990, 95, 96, 97, 99)*—इस तिथि को ए० ओ० ह्यूम ने अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की थी, जिसका पहला अधिवेशन 31 दिसम्बर, 1885 ई० को बम्बई में हुआ था। इसके अध्यक्ष उमेशचन्द्र बनर्जी थे।

(2) 1892 ई०—इस तिथि को ब्रिटिश संसद ने भारत के उदारवादी नेताओं के अनुरोध पर इण्डियन काउंसिल एक्ट पारित किया था। इस एक्ट के अनुसार भारत में विधान परिषदों का विस्तार किया गया था।

(3) 1896 ई० *(1992)*—इस वर्ष भारत के कई भागों में भयंकर अकाल पड़ा।

(4) 1905 ई० *(1990, 92, 93, 94, 95, 97, 99)*—इस तिथि को लॉर्ड कर्जन ने बंगाल का विभाजन कर दिया था। इस विभाजन के विरोध में सर सुरेन्द्रनाथ बनर्जी ने एक देशव्यापी आन्दोलन चलाया था।

(5) 1906 ई० *(1992, 93)*—इस तिथि को मुस्लिम लीग की स्थापना हुई थी। भारत में साम्प्रदायिकता के विकास और राजनीति में मुस्लिम लीग ने बड़ी महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की।

(6) 1907 ई०—इस तिथि को सूरत अधिवेशन में राष्ट्रीय कांग्रेस उदारवादी और उग्रवादी दो दलों में बँट गई थी। उग्रवादी दल का नेतृत्व बाल गंगाधर तिलक के हाथ में था।

(7) 1909 ई० *(1994, 96, 97)*—इस तिथि को ब्रिटिश संसद ने मिण्टो-माले सुधार अधिनियम पारित किया था।

(8) 1914 ई०—इस तिथि को प्रथम विश्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ था। इस युद्ध में भारतीयों ने अँग्रेजों की ओर से भाग लिया था। इसी वर्ष महात्मा गांधी ने भारतीय राजनीति में प्रवेश किया था।

(9) 1916 ई० *(1999)*—इस तिथि को कांग्रेस और मुस्लिम लीग के मध्य लखनऊ समझौता हुआ था।

(10) 1917 ई०—इस तिथि को मिस्टर माण्टेग्यू ने इंग्लैण्ड के हाउस ऑफ लॉर्ड्स में भारतीय शासन के सम्बन्ध में एक महत्त्वपूर्ण घोषणा की थी, जो कि स्वायत्त शासन से सम्बन्धित थी।

(11) 1919 ई० *(1991, 95, 96, 97)*—इस तिथि को ब्रिटिश संसद ने भारतीय शासन अधिनियम पारित करके देश के अनेक प्रान्तों में द्वैध शासन की स्थापना की थी। इसी तिथि को अमृतसर में जलियाँवाला बाग हत्याकाण्ड भी हुआ था।

(12) 1920 ई० *(1994, 95)*—इस तिथि को महात्मा गांधी ने ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध देश में असहयोग आन्दोलन प्रारम्भ किया था।

(13) 1921 ई०—इस तिथि को गोरखपुर (उत्तर प्रदेश) के चौरी-चौरा नामक स्थान पर कुछ क्रान्तिकारियों ने एक थाने में आग लगा दी थी, जिसमें एक थानेदार और छह सिपाही जीवित जल गए थे।

(14) 1922 ई० *(1992, 97)*—इस वर्ष गोरखपुर का प्रसिद्ध चौरी-चौरा काण्ड हुआ तथा असहयोग आन्दोलन स्थगित कर दिया गया।

(15) 1924 ई०—इस तिथि को देशबन्धु चितरंजन दास और पं० मोती लाल नेहरू ने मिलकर स्वराज्य दल की स्थापना की थी।

(16) 1927 ई० *(1994, 97, 99)*—इस तिथि को साइमन कमीशन भारत आया था। इस कमीशन के अध्यक्ष सर साइमन थे। इसका कोई सदस्य भारतीय न था।

(17) 1928 ई०—इस तिथि को नेहरू रिपोर्ट प्रकाशित हुई थी। सर्वदलीय सम्मेलन के बाद पं० मोतीलाल नेहरू ने देश के औपनिवेशिक स्वराज्य के सम्बन्ध में यह रिपोर्ट तैयार की थी।

(18) 1929 ई० *(1997)*—इस तिथि को लाहौर अधिवेशन में पंडित जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में कांग्रेस ने पूर्ण स्वाधीनता का प्रस्ताव पारित किया था।

(19) 1930 ई०—इस तिथि को महात्मा गांधी ने देश में सविनय अवज्ञा आन्दोलन प्रारम्भ किया था।

(20) 1931 ई० *(1992, 93, 94, 95, 97, 99)*—इस तिथि को महात्मा गांधी और भारत के तत्कालीन वायसराय लॉर्ड इरविन के मध्य एक समझौता हुआ था, जिसे इतिहास में 'गांधी-इरविन पैक्ट' के नाम से जाना जाता है।

(21) 1932 ई० *(1999)*—इस तिथि को पूना पैक्ट पारित हुआ था। इसके अनुसार प्रान्तीय और केन्द्रीय विधानसभाओं में हरिजनों के लिए कुछ स्थान सुरक्षित रखने की व्यवस्था की गई थी।

(22) 1935 ई० *(1990, 95, 96)*—इस तिथि को भारतीय शासन अधिनियम पारित हुआ था, जिसके अनुसार केन्द्र और प्रान्तीय शासन व्यवस्था में अनेक महत्त्वपूर्ण परिवर्तन किए गए थे।

(23) 1939 ई० *(1992)*—इस तिथि को द्वितीय विश्वयुद्ध प्रारम्भ हुआ और प्रान्तीय मन्त्रिमण्डलों ने ब्रिटिश सरकार के विरोध में त्याग-पत्र दे दिया था।

(24) 1940 ई० *(1996)*—इस तिथि को अगस्त प्रस्ताव की घोषणा की गई।

(25) 1942 ई० *(1994, 96, 97, 99)*—भारत के इतिहास में इस ऐतिहासिक तिथि को 'करो या मरो' के नारे के साथ देशभर में भारत छोड़ो आन्दोलन हुआ था।

(26) 1945 ई०—इस तिथि को लॉर्ड वैबेल योजना प्रस्तावित हुई थी, जो कि शिमला सम्मेलन में मतभेद होने के कारण विफल रही थी।

(27) 1946 ई० *(1995, 96, 99)*—इस तिथि को ब्रिटिश संसद द्वारा कैबिनेट मिशन योजना प्रस्तावित की गई थी, जो कि विफल रही थी। इसी वर्ष मुस्लिम लीग ने 'प्रत्यक्ष कार्यवाही दिवस' मनाकर देश के विभाजन को अनिवार्य बना दिया था।

(28) 1947 ई० *(1990, 96, 99)*—इस तिथि को माउण्टबेटन योजना के आधार पर देश का विभाजन हुआ और भारत को स्वाधीनता प्राप्त हुई थी।

(29) 1948 ई० *(1995)*—इस तिथि को स्वतन्त्र भारत के गृहमन्त्री सरदार वल्लभ भाई पटेल ने देशी रियासतों का एकीकरण करके एक शक्तिशाली संघ का निर्माण किया था।

प्रश्न 2—निम्नांकित ऐतिहासिक स्थलों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) बम्बई (मुम्बई)—वर्तमान महाराष्ट्र राज्य में स्थित बम्बई भारत का दूसरा महत्त्वपूर्ण नगर और प्रमुख व्यापारिक बन्दरगाह है। यह अरब सागर के तट पर स्थित होने के कारण सामरिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इसे पुर्तगाली गवर्नर अल्बुकर्क ने 1534 ई० में; बम्बई और गुजरात के सुल्तान से उपहारस्वरूप प्राप्त किया था। बाद में बम्बई नगर; ब्रिटिश राजकुमार को पुर्तगाल से दहेज के रूप में मिल गया था। ब्रिटिश शासनकाल में इस नगर की अभूतपूर्व उन्नति हुई। 1885 ई० में अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस का प्रथम अधिवेशन इसी नगर में हुआ था। यहाँ की अनेक सुन्दर इमारतें और स्मारक

दर्शनीय हैं जिनमें गेट वे ऑफ इण्डिया, महालक्ष्मी मन्दिर, मालाबार हिल, अफगान चर्च, हाईकोर्ट भवन आदि विशेष उल्लेखनीय हैं। फिल्म उद्योग इस नगर की उल्लेखनीय विशेषता है।

(2) अमृतसर *(1991, 94)*—अमृतसर पंजाब का एक महत्त्वपूर्ण नगर और सिक्खों का पवित्र स्थल है। विख्यात स्वर्ण मन्दिर इसी नगर में स्थित है। इस नगर में स्थित जलियाँवाला बाग में 1919 ई० में अँग्रेज जनरल डायर ने एक भीषण हत्याकाण्ड किया था, जिसमें हजारों लोग हताहत हुए थे और सैकड़ों निहत्थे लोग मारे गए थे। यहाँ के दर्शनीय स्मारकों में स्वर्ण मन्दिर, शहीद स्मारक, जलियाँवाला बाग, दुलियाना मन्दिर आदि उल्लेखनीय हैं।

(3) पोरबन्दर—गुजरात राज्य के दक्षिणी तट पर स्थित पोरबन्दर नगर महात्मा गांधी की जन्मभूमि है। यहाँ के प्रमुख स्मारकों में कीर्ति मन्दिर और सुदामा मन्दिर विशेष प्रसिद्ध हैं।

(4) अलीगढ़ *(1996)*—यह वर्तमान पश्चिमी उत्तर प्रदेश का एक महत्त्वपूर्ण व्यापारिक नगर है। मध्यकाल में इसे 'कोल' या 'कोइल' के नाम से पुकारा जाता था और यह दोआब के क्षेत्र में सम्मिलित था। ब्रिटिश काल में सर सैयद अहमद खाँ ने 1875 ई० में इस नगर में 'मोहम्मडन ऐंग्लो ओरियण्टल कॉलेज' की स्थापना की थी, जो बाद में मुस्लिम राजनीति का केन्द्र बन गया था। अलीगढ़ का मुस्लिम विश्वविद्यालय देश की प्रमुख शिक्षा संस्थाओं में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है।

(5) शिमला—आधुनिक हिमाचल प्रदेश की राजधानी शिमला एक पहाड़ी नगर है। 1906 ई० में वायसराय लॉर्ड मिण्टो ने इसी नगर में आगा खाँ के नेतृत्व में आए मुस्लिम शिष्टमण्डल से भेंट की थी और उन्हें मुस्लिम लीग नामक संस्था स्थापित करने की प्रेरणा दी थी। 1945 ई० में लॉर्ड वैबेल ने हिन्दू-मुस्लिम प्रतिनिधियों का एक सम्मेलन भी इसी नगर में आयोजित करवाया, जो विफल रहा था। जाखू हिल, राष्ट्रपति भवन, माल रोड आदि यहाँ के दर्शनीय स्थल हैं।

(6) लाहौर *(1992, 94)*—यह नगर आजकल पाकिस्तान में स्थित है। दिसम्बर, 1929 ई० में कांग्रेस का अधिवेशन इसी स्थान पर हुआ था। इसी अधिवेशन में पं० जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में, रावी नदी के तट पर पूर्ण स्वतन्त्रता की घोषणा की गई थी।

(7) अहमदाबाद *(1994)*—गुजरात प्रदेश में स्थित इस नगर को 1411–12 ई० में अहमदाशाह ने बसाया था। गुजरात के सुल्तानों ने अहमदनगर में अनेक भव्य इमारतों का निर्माण कराया। अपनी इमारतों की विशिष्टता के कारण, इन इमारतों की कला को गुजरात स्थापत्य शैली का नाम दिया गया। भारत के स्वाधीनता आन्दोलन में, अहमदाबाद के नागरिकों ने सक्रिय रूप से भाग लिया।

प्रश्न 3—निम्नांकित ऐतिहासिक व्यक्तियों पर विस्तृत टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक *(1990, 93, 94; 96, 97)*—बाल गंगाधर तिलक उग्रवादी दल के एक प्रमुख नेता थे। इनका जन्म 23 जुलाई, 1856 ई० को महाराष्ट्र प्रान्त के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। अपने प्रारम्भिक जीवन में तिलक जी ने एक विद्यालय में अध्यापन कार्य किया। कुछ समय पश्चात् उन्होंने देश में राजनीतिक चेतना फैलाने के उद्देश्य से दो समाचार-पत्र 'केसरी' तथा 'मराठा' प्रकाशित करने प्रारम्भ किए। उन्होंने महाराष्ट्र में गणपति और शिवाजी नामक दो राष्ट्रीय और धार्मिक उत्सव भी मनाने प्रारम्भ किए।

सन् 1896 ई० के अकाल में इन्होंने भारतवासियों की अकथनीय सेवा की जिसके कारण वे सम्पूर्ण दक्षिण भारत में प्रसिद्ध हो गए।

सन् 1897 ई० में अनेक राज्यों में प्लेग फैला। तत्कालीन प्लेग कमिश्नर तथा उसके सहायकों ने इस ओर ध्यान नहीं दिया; अतः तिलक जी ने अपने पत्रों द्वारा उनके व्यवहार की आलोचना की जिसके परिणामस्वरूप उन्हें 18 माह के लिए जेल भेज दिया गया। लेकिन छह महीने बाद ही वे छोड़ दिए गए। 1908 ई० में बंगाल के क्रान्तिकारी आन्दोलन का उत्तरदायित्व उन पर डालते हुए 6 वर्ष के लिए सरकार ने इन्हें पुनः बर्मा की जेल में भेज दिया।

सन् 1914 ई० में जेल से छूटकर तिलक जी भारत आए। पूना में उन्होंने **'होमरूल लीग'** की स्थापना की। 1918 ई० में तिलक जी को इंग्लैण्ड जाने का अवसर मिला। इंग्लैण्ड से लौटने के बाद उनका स्वास्थ्य बिगड़ गया और 1 अगस्त, 1920 ई० को उन्होंने अपने प्राण त्याग दिए।

(2) गोपाल कृष्ण गोखले *(1991, 93, 96, 97)*—कांग्रेस के उदारवादी नेताओं में **गोपाल कृष्ण गोखले** जी का प्रमुख स्थान है। ये एक प्रतिभा-सम्पन्न व्यक्ति थे। इनका जन्म 9 मई, 1866 ई० को महाराष्ट्र के एक निर्धन ब्राह्मण परिवार में हुआ था। 1902 ई० में आप **फर्ग्यूसन कॉलेज** के प्रधानाध्यापक पद से सेवानिवृत्त हुए तथा अपनी बुद्धिमत्ता और कर्त्तव्यपरायणता के कारण **'सार्वजनिक सभा'** के मन्त्री बने। यह सभा बम्बई की एक प्रमुख राजनीतिक संस्था थी। आपने 1889 ई० में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस में प्रवेश किया।

सन् 1902 ई० में ये केन्द्रीय व्यवस्थापिका के सदस्य निर्वाचित हुए। सदस्य बनने के बाद इन्होंने नमक-कर उन्मूलन, सरकारी नौकरियों में चुनाव, अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के प्रसार, स्वतन्त्र भारतीय अर्थव्यवस्था आदि के पक्ष में सराहनीय प्रयत्न किए। मिण्टो-मार्ले सुधार योजना के निर्माण में उनका सक्रिय योगदान रहा था। उन्होंने हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिए भी प्रयत्न किया। उनके अपने देश के प्रति निःस्वार्थ सेवा-भाव को देखकर, लॉर्ड कर्जन जैसे व्यक्ति ने भी उनकी प्रशंसा में कहा था, **"ईश्वर ने आपको असाधारण योग्यता दी है और आपने बिना किसी शर्त के इसको देश-सेवा में लगा दिया है।"**

सन् 1905-1907 ई० में उन्होंने ब्रिटिश सरकार के प्रतिक्रियावादी कार्यों का कड़ा विरोध किया। इसके साथ ही स्वतन्त्रता को संवैधानिक ढंग से प्राप्त करने के लिए भी प्रयत्न किया। इन्होंने 1905 ई० में **भारत सेवक समिति (Servants of India Society)** नामक संस्था की स्थापना की। इस संस्था का लक्ष्य; मातृ-भाषा के प्रति आदर की भावना उत्पन्न करना और ऐसे सार्वजनिक कार्यकर्त्ताओं को शिक्षित करना था, जो देश की उन्नति के लिए संवैधानिक रूप से कार्य करें। गोखले ने भारत के सुधारों की एक योजना भी तैयार की थी, जिसे गोखले की 'राजनीतिक वसीयत' या इच्छा-पत्र कहा जाता है।

19 फरवरी, 1915 ई० में इनकी मृत्यु हो गई, लेकिन मरकर भी वे अमर हो गए। वह वास्तव में सच्चे अर्थों में भारतीय थे और उन्हें अपने देश से विशेष प्रेम था।

(3) सुरेन्द्रनाथ बनर्जी *(1999)*—सुरेन्द्रनाथ बनर्जी भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के एक प्रमुख नेता थे। बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद आपने इंग्लैण्ड में इण्डियन सिविल सर्विस प्रतियोगिता परीक्षा में सफलता प्राप्त की और 1871 ई० में सिलहट (बंगाल) के सहायक जिलाधीश बन गए, लेकिन ब्रिटिश सरकार की पक्षपातपूर्ण नीति से क्षुब्ध होकर कुछ समय बाद ही उन्होंने नौकरी से त्यागपत्र दे दिया और राष्ट्रीय स्वाधीनता संग्राम में सक्रिय भाग लेने लगे। उन्होंने कई बार राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिवेशनों की अध्यक्षता की। वे एक उदारवादी नेता थे और भारत में वैधानिक शासन की स्थापना के समर्थक थे। उन्होंने प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति के उत्थान के लिए अनेक कार्य किए। उन्होंने पाश्चात्य संस्कृति और ज्ञान-विज्ञान को ग्रहण करने का भी समर्थन किया।

(4) दादाभाई नौरोजी *(1999)*—दादाभाई नौरोजी भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के वयोवृद्ध नेता, उदारवादी और एक गणमान्य महापुरुष थे। इनका जन्म 1825 ई० में बम्बई के एक धनी पारसी परिवार में हुआ था। शिक्षा ग्रहण करने के बाद नौरोजी बम्बई के एलफिन्स्टन कॉलेज के अध्यापक बन गए। 1856 ई० में इन्होंने इंग्लैण्ड की यात्रा की और वहाँ से लौटकर बड़ौदा राज्य में दीवान के पद पर कार्य करने लगे। 31 जून, 1917 ई० को इनका स्वर्गवास हो गया। नौरोजी ने 1866 ई० से मृत्युपर्यन्त राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया। ये अँग्रेजों के भक्त थे और भारत में वैधानिक शासन की स्थापना करना चाहते थे।

(5) ए० ओ० ह्यूम *(1996)*—ह्यूम एक अँग्रेज आई० सी० एस० अधिकारी थे। वे उदारवादी विचारों के थे और भारतीयों के प्रति गहरी सहानुभूति रखते थे। अवकाश ग्रहण करने के बाद 1885 ई० में उन्होंने भारतीय नेताओं के साथ मिलकर अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की स्थापना की थी।

(6) लाला लाजपत राय *(1997)*—पंजाब केसरी लाला लाजपत राय भारत के एक अमर सेनानी और कट्टर देशभक्त थे। उनका जन्म 28 जनवरी, 1865 ई० को पंजाब के फिरोजपुर जिले में हुआ था। बी० ए० की परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद ये देश के स्वाधीनता संग्राम में कूद पड़े। इन्होंने उग्रवादी दल का नेतृत्व ग्रहण किया और तिलक जी के साथ मिलकर देशवासियों को अपनी स्वाधीनता के लिए जगाने लगे। 1896 ई० में ये इंग्लैण्ड गए और वहाँ की जनता को, भारतीयों के कष्टों से अवगत कराया। ब्रिटिश सरकार ने इनके कार्यों से रुष्ट होकर इनको देश से निष्कासित कर दिया। 1918 ई० तक ये अमेरिका में रहे। वहाँ से वापस लौटकर इनहोंने गांधी जी द्वारा चलाए जा रहे असहयोग आन्दोलन में सक्रिय भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। 1923 ई० में ये केन्द्रीय व्यवस्थापिका सभा के सदस्य चुने गए और कुछ समय तक स्वराज्य पार्टी के उपसभापति के पद पर कार्य किया। 1928 ई० में इन्होंने साइमन कमीशन का प्रबल विरोध किया। फलस्वरूप अँग्रेजों द्वारा किए गएं लाठीचार्ज में ये बुरी तरह घायल हो गए और अन्ततः 17 नवम्बर, 1928 ई० को इनका निधन हो गया। **लाला लाजपत राय एक पत्रकार, शिक्षाशास्त्री, राजनीतिक नेता, समाज-सुधारक और पक्के देशभक्त थे।**

(7) सरदार वल्लभ भाई पटेल *(1990, 94, 96)*—भारत के **'लौह पुरुष'** सरदार पटेल का जन्म 21 अक्टूबर, 1875 ई० को गुजरात के एक धनी परिवार में हुआ था। 1913 ई० में इन्होंने वकालत उत्तीर्ण करके अहमदाबाद में वकालत शुरू कर दी। 1918 ई० में ये महात्मा गांधी के सम्पर्क में आए और गुजरात के किसानों के आन्दोलन का सफल नेतृत्व किया। 1927 ई० में इन्होंने बारदोली सत्याग्रह आन्दोलन को सफल बनाया और जनता से 'सरदार' की उपाधि प्राप्त की। इन्होंने देश की स्वाधीनता के लिए कई बार जेल यात्रा की। 1946 ई० में अन्तरिम सरकार में इनको उप-प्रधानमन्त्री का पद प्राप्त हुआ तथा स्वतन्त्रता के बाद भारत के गृहमन्त्री भी बने। इन्होंने **'रक्त और लौह'** की नीति अपनाकर भारत की लगभग 600 देशी रियासतों का एकीकरण किया और भारत संघ को शक्तिशाली बनाया। 15 दिसम्बर, 1950 ई० को इनका स्वर्गवास हो गया।

(8) खुदीराम बोस—खुदीराम बोस; भारत के महान् देशभक्त और क्रान्तिकारी थे। उनका जन्म 3 दिसम्बर, 1889 ई० को मिदनापुर जिले में हुआ था। शिक्षा पूरी करने के बाद खुदीराम बोस बंगाल के क्रान्तिकारी दल के सक्रिय कार्यकर्त्ता बन गए। दल के आदेश पर खुदीराम ने अपने मित्र प्रफुल्ल चाकी के साथ मिलकर मुजफ्फरपुर में न्यायाधीश किंग्सफोर्ड की गाड़ी पर बम फेंका, लेकिन उस गाड़ी में किंग्सफोर्ड नहीं थे; अतः दो निर्दोष महिलाएँ हताहत हो गईं। बाद में, खुदीराम को ब्रिटिश सरकार ने बन्दी बना लिया और 1908 ई० में उन्हें फाँसी पर चढ़ा दिया गया। इस प्रकार, खुदीराम ने देश की स्वाधीनता के लिए अपने प्राणों का उत्सर्ग करके अपना नाम सदा के लिए अमर कर लिया।

(9) विनायक दामोदर सावरकर—सावरकर महाराष्ट्र के एक प्रमुख क्रान्तिकारी और भारतमाता के सच्चे सपूत थे। 1904 ई० में उन्होंने 'अभिनव भारत' नामक एक क्रान्तिकारी संस्था की स्थापना की थी। उनके नेतृत्व में चापेकर बन्धु, श्याम कृष्ण वर्मा, गणेश सावरकर आदि क्रान्तिकारियों ने ब्रिटिश सरकार का तख्ता उलटने के लिए अनेक आतंकवादी कार्य किए। सावरकर ने कुछ दिनों तक इंग्लैण्ड में रहकर भी क्रान्तिकारी गतिविधियों का संचालन किया। अन्ततः अँग्रेज सरकार ने उन्हें बन्दी बनाकर अण्डमान द्वीप में भेज दिया।

(10) चन्द्रशेखर आजाद—चन्द्रशेखर आजाद उत्तर प्रदेश के निवासी और एक महान् क्रान्तिकारी थे। इन्होंने देशभर के क्रान्तिकारियों को संगठित करके, ब्रिटिश सरकार से जमकर टक्कर ली और अन्त में इलाहाबाद के अल्फ्रेड पार्क में अपने प्राणों की बलि देकर आजाद देश के अमर शहीद बन गए।

(11) शहीद भगतसिंह—भगतसिंह एक महान् क्रान्तिकारी और भारत के सच्चे सपूत थे। उनका जन्म 27 दिसम्बर, 1907 ई० को पंजाब के लायलपुर जिले में हुआ था। उन्होंने चन्द्रशेखर आजाद के साथ मिलकर अनेक क्रान्तिकारी कार्य किए। उन्होंने सुखदेव और राजगुरु के साथ मिलकर 1929 ई० में दिल्ली

की एसेम्बली में बम फेंककर ब्रिटिश सरकार को दहला दिया। इसी समय सरकार ने उन्हें बन्दी बनाकर जेल में डाल दिया। 23 मार्च,1931 ई० को भगतसिंह को उनके दो साथियों के साथ फाँसी दे दी गई। भगतसिंह ने अपने प्राणों का उत्सर्ग करके देश के इतिहास में अपना नाम अमर कर लिया।

(12) मुहम्मद अली जिन्ना *(1999)*—जिन्ना एक महान् मुस्लिम नेता और पाकिस्तान के निर्माता थे। मुसलमान उन्हें 'कायदे-आजम' के नाम से पुकारते हैं। उनका जन्म 20 अक्तूबर, 1875 ई० को कराची में हुआ। 1897 ई० में जिन्ना इंगलैण्ड से वकालत उत्तीर्ण करके भारत आए और बम्बई उच्च न्यायालय में वकालत करने लगे। 1906 ई० में उन्होंने देश के राजनीतिक जीवन में भाग लेना प्रारम्भ कर दिया। प्रारम्भ में, आप हिन्दू-मुस्लिम एकता के समर्थक थे, लेकिन 1930 ई० के बाद उनके विचारों में परिवर्तन आने लगा। उन्होंने साम्प्रदायिकता के आधार पर मुस्लिम लीग को कांग्रेस की प्रतियोगी संस्था बना दिया। 1939 ई० में उन्होंने द्वि-राष्ट्र सिद्धान्त का प्रतिपादन किया और पाकिस्तान की माँग करने लगे। जिन्ना की 14 शर्तें कालान्तर में देश के विभाजन का आधार बनीं। 1946 ई० में लीग की प्रत्यक्ष कार्यवाही के बाद जिन्ना को अपने उद्देश्य की प्राप्ति हो गई और 1947 ई० में वे पाकिस्तान के रूप में एक पृथक् राष्ट्र प्राप्त करने में सफल हो गए। वे पाकिस्तान के प्रथम गवर्नर जनरल बने और 1948 ई० में उनका निधन हो गया। पाकिस्तान में इन्हें 'कायदे आजम' कहा गया।

(13) विनोबा भावे *(1992, 96, 99)*—विनोबा भावे महात्मा गांधी के परम सहयोगी थे। इनका अहिंसात्मक मार्ग द्वारा सामाजिक एवं राष्ट्रीय लक्ष्यों को प्राप्त करने में अटूट विश्वास था। देश के कमजोर वर्गों को भूमि उपलब्ध कराने की दृष्टि से उनके द्वारा चलाए गए भूदान-आन्दोलन का विशेष महत्त्व है। सामाजिक चेतना के विकास एवं समाजोद्धार हेतु उन्होंने गुजरात में पँवनार आश्रम की स्थापना की थी।

(14) मौलाना अबुल कलाम आजाद *(1995)*—अबुल कलाम आजाद ने, भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में भाग लेकर, भारत को आजादी प्राप्त कराने में अपना उल्लेखनीय योगदान दिया। आपने अपनी शिक्षा प्राप्त करने के साथ ही अल अल अजहर विश्वविद्यालय, काहिरा में आध्यात्मवाद का विशेष अध्ययन भी किया था। आपने अनेक देशों का भ्रमण किया। आप कांग्रेस के अध्यक्ष भी रहे। इसके अतिरिक्त, आपको संविधान सभा का अध्यक्ष भी बनाया गया। स्वाधीनता प्राप्ति के उपरान्त, अबुल कलाम आजाद को, भारत सरकार का शिक्षामंत्री बनने का अवसर भी प्राप्त हुआ। उन्होंने मुस्लिम आध्यात्मवाद पर अनेक पुस्तकें लिखीं। 'इण्डिया विन्स फ्रीडम', उनके द्वारा ही लिखी गई थी, जो बहुत विवादास्पद रही। फरवरी, 1958 ई० में आपका निधन हो गया।

(15) सरोजिनी नायडू *(1996)*—सरोजिनी नायडू भारत की सुप्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और कवयित्री थी। वे एक निःस्वार्थ समाज सेविका के रूप में भी प्रसिद्ध हुईं। उनकी जन-सेवा पर आधारित कार्यों के कारण ही उन्हें 'नाइटिंगेल ऑफ इण्डिया' के नाम से सम्बोधित किया जाने लगा। 1925 ई० में आप भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष पद पर मनोनीत की गईं। आजादी के बाद, 1947 ई० से 1949 ई० तक उन्हें उत्तर प्रदेश का राज्यपाल बनाया गया। 'सांग ऑफ इण्डिया', तथा 'ब्रोकेन विंग', आपकी सुप्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

(16) श्री अरविन्द *(1997)*—श्री अरविन्द एक महान योगी, राष्ट्रभक्त, दार्शनिक, कवि एवं साहित्यकार थे। उनका जन्म 1872 ई० में हुआ था। उन्होंने अपनी शिक्षा कैम्ब्रिज में प्राप्त की। 1890 ई० में श्री अरविन्द ने आई०सी०एस० की परीक्षा भी उत्तीर्ण की। उन्होंनें भारत के स्वाधीनता आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लिया। 'वंदे मातरम्' पत्रिका के सर्वप्रथम सम्पादक श्री अरविन्द ही थे। उनके द्वारा पाण्डिच्चेरी में एक आश्रम की स्थापना की गई, जो कालान्तर में भारतीय संस्कृति के प्रसार का विश्वप्रसिद्ध केन्द्र बना। श्री अरविन्द ने कई प्रसिद्ध ग्रन्थों की रचना की, जिनमें 'लाइफ डिवाइन', 'एस्सेज ऑन गीता', 'सिन्थेसिस ऑफ योग' आदि उल्लेखनीय हैं। 1950 ई० में भारत के इस महापुरुष का निधन हो गया।

12 स्वतन्त्र भारत

[भारत के संविधान की विशेषताएँ, नागरिकों के मूल अधिकार, भारत की विदेश नीति, भारत में शिक्षा सुधार, पंचवर्षीय योजनाएँ, देश की समस्याएँ तथा उनके निराकरण के उपाय, राजनीतिक एकीकरण एवं उपलब्धियाँ]

"सार्वजनिक क्षेत्र की अपनी प्रभावशाली भूमिका है, लेकिन उसके साथ ही निजी क्षेत्र को आगे बढ़ने का पूरा-पूरा अवसर दिया जाएगा।"

—इन्दिरा गांधी

दीर्घ उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—भारतीय संविधान की मुख्य विशेषताओं का वर्णन कीजिए। *(1992, 93, 94, 95, 97)*

अथवा **"भारतीय गणतन्त्र का संविधान एक अद्भुत दस्तावेज़ है।" इस कथन के आधार पर संविधान की विशेषताओं का वर्णन कीजिए।**

अथवा **भारतीय संविधान की मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।** *(1995, 99)*

अथवा **भारतीय गणतंत्रात्मक संविधान की प्रमुख विशेषताओं का विवेचन कीजिए।** *(1996)*

अथवा **भारत में संविधान की मुख्य विशेषताओं पर एक निबन्ध लिखिए।** *(1997)*

उत्तर—

भारतीय संविधान की विशेषताएँ

ब्रिटिश शासन से मुक्त होकर भारतवासियों को 1947 ई० में प्रथम बार अपने संविधान का निर्माण करने का अवसर प्राप्त हुआ। यह कार्य सम्पन्न करने के लिए एक संविधान निर्मात्री सभा का निर्माण किया गया। इस सभा ने लगभग तीन वर्ष तक परिश्रम करके संविधान का निर्माण किया, जो 26 जनवरी, 1949 ई० को स्वीकृत किया गया और 26 जनवरी, 1950 ई० को सम्पूर्ण भारत में लागू किया गया। भारतीय संविधान में अनेक विशेषताएँ हैं, जिनका संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है—

(1) विस्तृत संविधान—हमारा संविधान संसार के समस्त संविधानों में विशाल है। इसके दो प्रमुख कारण हैं—पहली बात तो यह है कि इस संविधान का निर्माण करते समय निर्माणकर्त्ताओं ने इंग्लैण्ड, अमेरिका, कनाडा आदि अनेक देशों के संविधान का अध्ययन किया और उनकी सभी उचित तथा अच्छी बातों को अपने संविधान में समाहित कर लिया। इसकी विशालता का दूसरा कारण यह है कि यहाँ पर अनेक धर्मों, जातियों एवं वर्गों के लोग रहते हैं। अतः उन सभी के अधिकारों की रक्षा हेतु इसमें विभिन्न व्यवस्थाओं की विस्तृत व्याख्या की गई है।

इस समय भारतीय संविधान में 395 अनुच्छेद और 12 अनुसूचियाँ हैं, जबकि अमेरिका के संविधान में मात्र 7 अनुच्छेद ही हैं।

(2) सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतान्त्रिक गणराज्य की स्थापना—भारत में सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न गणराज्य की स्थापना भारतीय संविधान की प्रमुख विशेषता है। सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न का अर्थ है कि भारत अपने आन्तरिक और बाह्य मामलों में पूर्ण स्वतन्त्र है, कोई भी अन्य शक्ति इन मामलों में हस्तक्षेप नहीं कर सकती। लोकतान्त्रिक प्रणाली का तात्पर्य है कि भारत में जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि ही देश का शासन चलाते हैं तथा सम्प्रभुता जनता में निहित है। भारत का राष्ट्रपति अप्रत्यक्ष रूप से जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधि होता है, इस अर्थ में भारत एक गणराज्य है।

(3) एकात्मक और संघात्मक संविधान—भारतीय संविधान में एकात्मक और संघात्मक दोनों संविधानों के गुण निहित हैं। संघात्मक संविधान होने के कारण यहाँ एक स्वतन्त्र सर्वोच्च न्यायालय की भी व्यवस्था की गई है। इसके अतिरिक्त, केन्द्र तथा राज्यों के अधिकारों एवं कार्यों का विभाजन किया गया है।

यद्यपि सामान्य रूप से यह स्वीकार किया जाता है कि, "स्वतन्त्र भारत का संविधान संघात्मक प्रकार का है।" परन्तु संघात्मक होने के साथ ही एकात्मक संविधान की विशेषताएँ भी भारतीय संविधान में विद्यमान हैं। एकात्मक संविधान में समस्त शक्तियाँ राष्ट्रपति के हाथों में केन्द्रित होती हैं। भारत में भी संकट काल में देश की समस्त शक्तियाँ राष्ट्रपति के अधिकार में चली जाती हैं और अव्यवस्थित राज्यों का शासन राष्ट्रपति अपने हाथों में ले सकता है। इस तरह भारतीय संविधान में एकात्मकता का तत्त्व भी विद्यमान है।

भारतीय संविधान की विशेषताएँ

(1) विस्तृत संविधान
(2) सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न लोकतान्त्रिक गणराज्य की स्थापना
(3) एकात्मक और संघात्मक संविधान
(4) वयस्क मताधिकार की व्यवस्था
(5) धर्म-निरपेक्ष संविधान
(6) कठोर और लचीले संविधान का मिश्रण
(7) स्त्रियों को समान अधिकार
(8) पिछड़ी, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के हितों को संरक्षण
(9) अस्पृश्यता का अन्त
(10) एक समान न्याय व्यवस्था
(11) इकहरी नागरिकता
(12) नागरिकों के मूल अधिकारों एवं मूल कर्त्तव्यों की व्यवस्था
(13) एक राष्ट्रभाषा
(14) अखिल भारतीय सेवाओं की व्यवस्था
(15) नीति-निर्देशक तत्त्वों का समावेश
(16) शक्ति का विकेन्द्रीकरण
(17) विश्व-शान्ति एवं अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग।

(4) वयस्क मताधिकार की व्यवस्था—इस संविधान में बिना भेदभाव के प्रत्येक वयस्क को, चाहे वह स्त्री हो या पुरुष, ऊँचा हो या नीचा, गरीब हो या धनवान, शिक्षित हो या अशिक्षित, मतदान का अधिकार दिया गया है। इस समय भारत में वयस्कता की आयु 18 वर्ष निश्चित की गई है।

(5) धर्म-निरपेक्ष संविधान—हमारे संविधान की एक प्रमुख विशेषता यह है कि उसने धर्म के सम्बन्ध में तटस्थता की नीति को अपनाया है अर्थात् स्वतन्त्र भारत का प्रत्येक नागरिक अपनी इच्छानुसार कोई भी धर्म स्वीकार करने, किसी ढंग से अपने आराध्य देव की आराधना करने के लिए पूर्ण स्वतन्त्र है। इस प्रकार, हमारा संविधान धर्म-निरपेक्षता की नीति का पालन करता है।

(6) कठोर और लचीले संविधान का मिश्रण—हमारा संविधान कठोर और लचीला दोनों है। इसकी कुछ धाराओं और कानूनों में साधारण विधि के आधार पर ही परिवर्तन हो जाता है। इसलिए यह लचीला है और इसकी कुछ धाराओं में परिवर्तन करने के लिए साधारण क़ानून बनाने के ढंग से भिन्न विशेष ढंग अपनाना पड़ता है। इस दृष्टि से यह एक कठोर संविधान है।

(7) स्त्रियों को समान अधिकार—भारतीय संविधान की सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इसमें प्रत्येक क्षेत्र में स्त्रियों को कानूनी तौर से पुरुषों के समान अधिकार प्रदान किए हैं।

(8) पिछड़ी, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के हितों को संरक्षण—भारतीय संविधान में सभी अनुसूचित जातियों, जनजातियों एवं पिछड़ी हुई जातियों के हितों की सुरक्षा के लिए विशेष व्यवस्था की गई है, साथ ही उनकी सामाजिक और सांस्कृतिक उन्नति की ओर भी विशेष ध्यान दिया गया है। प्रत्येक क्षेत्र में की गई विशेष व्यवस्थाओं के आधार पर उनके लिए कुछ स्थान सुरक्षित कर दिए गए हैं।

इस समय उत्तर प्रदेश में आरक्षण की व्यवस्था अनुसूचित जातियों के लिए 21%, अनुसूचित जन-जातियों के लिए 2% तथा अन्य पिछड़े वर्गों के लिए अधिकतम 27% है।

(9) अस्पृश्यता का अन्त—हमारे संविधान में अस्पृश्यता को समाप्त करने के लिए भी कानून बनाए गए हैं। इस प्रकार, छुआछूत को संविधान में अवैध घोषित कर दिया गया है।

(10) एक समान न्याय व्यवस्था—भारतीय संविधान में राज्य एवं केन्द्र में दीवानी और फौजदारी मामलों के लिए एक समान कानून बनाए गए हैं। भारत के समस्त न्यायालयों को सर्वोच्च न्यायालय के अधीन रखा गया है।

(11) इकहरी नागरिकता—प्रायः संघ राज्यों में दोहरी नागरिकता की व्यवस्था होती है। एक संघ सरकार की और दूसरी उस राज्य की जिसमें कि वह निवास करता है, किन्तु भारतीय संविधान में भारतीयों को इकहरी नागरिकता प्रदान की गई है।

(12) नागरिकों के मूल अधिकारों एवं मूल कर्त्तव्यों की व्यवस्था—मानव को अपने चतुर्मुखी विकास के लिए कुछ अधिकार अवश्य मिलने चाहिए। इस बात को ध्यान में रखते हुए भारतीय संविधान में भारतीय नागरिकों के छह मूल अधिकारों की व्यवस्था की गई है। इसके साथ ही 42वें संवैधानिक संशोधन के आधार पर नागरिकों के 10 मूल कर्त्तव्यों की भी व्यवस्था कर दी गई है।

(13) एक राष्ट्रभाषा—हमारे देश में विभिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं। इस समय भारतीय संविधान में 18 क्षेत्रीय (प्रान्तीय) भाषाओं को मान्यता प्राप्त है।अतः विभिन्न भाषाओं का प्रयोग करने वाले नागरिकों में राष्ट्रीय एकता की भावना उत्पन्न करने के उद्देश्य से, संविधान में हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा के पद पर प्रतिष्ठित किया गया है। इससे निस्सन्देह राष्ट्रीय एकता में बहुत वृद्धि हुई है।

(14) अखिल भारतीय सेवाओं की व्यवस्था—भारतीय संविधान में संघ और भिन्न-भिन्न राज्यों के लिए अखिल भारतीय सेवाओं की भी विस्तृत व्यवस्था की गई है। इन सेवाओं में सभी भारतीयों को निष्पक्ष रूप से योग्यता के आधार पर कार्य करने का अधिकार प्राप्त है।

(15) नीति-निर्देशक तत्त्वों का समावेश—भारत के संविधान में राज्य की नीति के सम्बन्ध में कुछ नीति-निर्देशक तत्त्वों का समावेश किया गया है। ये नीति-निर्देशक तत्त्व भारतीय संविधान की एक प्रमुख विशेषता है।

नीति-निर्देशक तत्त्वों के सम्बन्ध में अमरनन्दी ने कहा है कि, **"भारतीय संविधान की नूतन विशेषता उसकी राज्य के नीति-निर्देशक सिद्धान्त विषयक धाराएँ हैं।"**

(16) शक्ति का विकेन्द्रीकरण—भारतीय संविधान द्वारा देश में शक्ति के विकेन्द्रीकरण की व्यवस्था की गई है, ताकि स्थानीय व्यक्तियों को शासन में भाग लेने का अवसर मिल सके और वे अपनी स्थानीय समस्याओं का स्वयं ही निराकरण कर सकें। 1993 के 73वें एवं 74वें संवैधानिक संशोधनों द्वारा संविधान में क्रमशः ग्यारहवीं और बारहवीं दो अनुसूचियाँ जोड़कर ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों की स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को संवैधानिक दर्जा प्रदान कर दिया गया है।

(17) विश्व-शान्ति एवं अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग—संविधान में नीति-निर्देशक तत्त्वों के अन्तर्गत यह उल्लेख किया गया है कि सरकार विश्व-शान्ति की स्थापना और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सहयोग और सद्भावना की नीति अपनाएगी।

इस प्रकार, भारतीय संविधान की उपर्युक्त समस्त विशेषताओं के आधार पर यह कथन निःसन्देह उपयुक्त ही है कि, **"भारतीय गणतन्त्र का संविधान एक अद्भुत दस्तावेज है।"**

प्रश्न 2—भारत के संविधान में उल्लिखित मुख्य मौलिक अधिकारों का उल्लेख कीजिए तथा उनके महत्त्व और उपयोगिता की व्याख्या कीजिए। *(1991)*

अथवा **भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त मूल अधिकारों का विश्लेषण कीजिए।** *(1994)*

उत्तर—

नागरिकों के मूल अधिकार

भारतीय संविधान निर्माताओं ने भारतीय नागरिकों को मूल अधिकारों को प्रदान करना प्रजातन्त्र के सभी लाभ पहुँचाने तथा उनके सर्वांगीण विकास करने का प्रयत्न किया है। मूल संविधान में नागरिकों को 7 मूल अधिकार दिए गए थे, परन्तु 44वें संशोधन द्वारा सम्पत्ति का अधिकार मूल अधिकारों की सूची में से निकाल दिया गया है। सम्पत्ति का अधिकार अब केवल कानूनी अधिकार रह गया है। इस प्रकार अब नागरिकों को केवल 6 मूल अधिकार प्राप्त हैं, जिनका विवरण निम्नलिखित है—

(1) समानता का अधिकार (अनुच्छेद 14 से 18)—समानता के अधिकार के अन्तर्गत, प्रत्येक नागरिक को समान रूप से कानूनी संरक्षण प्राप्त करने का अधिकार है। सभी नागरिक कानून के समक्ष समान हैं। विधि के समक्ष समानता को सुनिश्चित बनाने के लिए यह व्यवस्था की गई है कि राज्य द्वारा धर्म, वंश, लिंग, जाति, जन्म-स्थान आदि के आधार पर किसी नागरिक के साथ भेद-भाव नहीं किया जाना

चाहिए। सभी नागरिकों को सार्वजनिक स्थानों एवं वहाँ उपलब्ध सुविधाओं तथा सरकारी नौकरियों में समानता प्रदान की गई है। समाज में समानता स्थापित करने के लिए नागरिकों को प्रदान की जाने वाली उपाधियों तथा अस्पृश्यता का अन्त कर दिया गया है।

(2) स्वतन्त्रता का अधिकार (अनुच्छेद 19 से 22)— प्रत्येक नागरिक को अपनी योग्यता का विकास करने के लिए स्वतन्त्रता का अधिकार प्रदान किया गया है। इस अधिकार के अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को भाषण तथा अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, सभा करने की स्वतन्त्रता, व्यवसाय की स्वतन्त्रता, संघ बनाने की स्वतन्त्रता, भ्रमण की स्वतन्त्रता तथा आवास की स्वतन्त्रता प्रदान की गई है। इसके साथ ही प्रत्येक व्यक्ति को व्यक्तिगत स्वतन्त्रता भी प्रदान की गई है।

नागरिकों के मूल अधिकार

(1) समानता का अधिकार
(2) स्वतन्त्रता का अधिकार
(3) शोषण के विरुद्ध अधिकार
(4) धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार
(5) सांस्कृतिक व शिक्षा सम्बन्धी अधिकार
(6) संवैधानिक उपचारों का अधिकार।

(3) शोषण के विरुद्ध अधिकार (अनुच्छेद 23 व 24)—इस अधिकार के माध्यम से व्यक्तियों के शोषण को रोकने का प्रयत्न किया गया है। इस अधिकार के अन्तर्गत किसी व्यक्ति से बेगार और बलपूर्वक काम नहीं लिया जाएगा, 14 वर्ष से कम आयु के बालकों से खानों, कारखानों आदि स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव डालने वाले स्थानों पर काम नहीं लिया जाएगा तथा स्त्रियों व बच्चों का क्रय-विक्रय करना अपराध होगा।

(4) धार्मिक स्वतन्त्रता का अधिकार (अनुच्छेद 25 से 28)—संविधान ने भारत में धर्म-निरपेक्ष राज्य की स्थापना की है। अतः प्रत्येक नागरिक को पूर्ण धार्मिक स्वतन्त्रता प्रदान की गई है। प्रत्येक नागरिक अपनी इच्छानुसार कोई भी धर्म स्वीकार कर सकता है। राज्य किसी धर्म के साथ पक्षपात नहीं करेगा अर्थात् धार्मिक मामलों में पूर्णरूप से तटस्थ रहेगा। इसके अतिरिक्त व्यक्तियों पर किसी भी प्रकार का धार्मिक कर नहीं लगाया जाएगा।

(5) सांस्कृतिक व शिक्षा सम्बन्धी अधिकार (अनुच्छेद 29 व 30)—संविधान द्वारा अल्पसंख्यकों के शिक्षा और संस्कृति सम्बन्धी हितों की रक्षा के लिए यह अधिकार प्रदान किया गया है। इसके अन्तर्गत प्रत्येक भाषा का प्रयोग करने वाले नागरिक को अपनी संस्कृति, भाषा और लिपि आदि को सुरक्षित रखने का अधिकार है। प्रत्येक नागरिक को राज्य द्वारा स्थापित अथवा अनुदानित शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश लेनें का अधिकार है। प्रत्येक वर्ग के व्यक्तियों को अपनी इच्छानुसार शिक्षण संस्थाएँ खोलने का भी अधिकार है।

(6) संवैधानिक उपचारों का अधिकार (अनुच्छेद 32)—उपर्युक्त समस्त मूल अधिकारों की रक्षा हेतु, संविधान में संवैधानिक उपचारों का अधिकार भी सम्मिलित किया गया है। इस अधिकार का अर्थ यह है कि यदि सरकार नागरिकों को दिए गए मूल अधिकारों को छीनती है, तो उसके लिए सर्वोच्च न्यायालय तथा उच्च न्यायालय की शरण ली जा सकती है। यह न्यायालय; मूल अधिकारों की रक्षा के लिए बन्दी प्रत्यक्षीकरण, प्रतिषेध, परमादेश, अधिकार-पृच्छा तथा उत्प्रेषण आदि लेख जारी करता है।

नागरिकों के संवैधानिक उपचार के महत्त्व को डॉ० अम्बेडकर ने इन शब्दों में स्पष्ट किया है, "यह अनुच्छेद (अनुच्छेद 32). भारतीय संविधान की हृदय तथा आत्मा है।"

संविधान द्वारा प्रदत्त इन मूल अधिकारों पर, राष्ट्र की एकता, अखण्डता, शान्ति तथा सुरक्षा की दृष्टि से, प्रतिबन्ध लगाए जाने की भी व्यवस्था है। आपातकाल में ये सभी मूल अधिकार स्थगित किए जा सकते हैं।

प्रश्न 3—स्वतन्त्र भारत की विदेश नीति की विवेचना कीजिए। *(1990)*

अथवा **"पंडित जवाहरलाल नेहरू ने स्वतन्त्र भारत की विदेश नीति की आधारशिला रखी।" व्याख्या कीजिए।** *(1990)*

अथवा **"पंडित जवाहरलाल नेहरू आधुनिक भारत के निर्माता थे।" व्याख्या कीजिए।** *(1992, 94)*

अथवा स्वतन्त्र भारत की विदेश नीति की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए। *(1994)*
अथवा पंचशील के सिद्धान्तों की व्याख्या कीजिए। विदेश नीति पर इसका क्या प्रभाव पड़ा? *(1995)*
अथवा आधुनिक भारत के निर्माण में पंडित जवाहरलाल नेहरू के योगदानों पर प्रकाश डालिए। *(1995)*
अथवा "स्वतन्त्र भारत की वैदेशिक नीति का आधार 'पंचशील' का सिद्धान्त है।" स्पष्ट कीजिए। *(1996, 97)*
अथवा "भारतीय विदेश नीति का आधार गुट निरपेक्षता एवं पंचशील है।" इस नीति की सफलता की विवेचना कीजिए। *(1999)*

उत्तर—

भारत की विदेश नीति

हमारे देश ने 1947 ई० में स्वतन्त्र होने के पश्चात् संसार के विभिन्न देशों से राजनीतिक, सांस्कृतिक और व्यापारिक क्षेत्रों में विशिष्ट सम्बन्ध स्थापित किए। भारत की विदेशों से सम्बन्ध जोड़ने वाली इस नीति को परराष्ट्र नीति या वैदेशिक नीति कहते हैं। सर्वप्रथम स्वतन्त्रता के बाद पं० जवाहरलाल नेहरू देश के प्रथम प्रधानमन्त्री बने थे। उन्होंने स्वयं ही विदेश नीति के संचालन हेतु कुछ विशिष्ट आदर्शों पर आधारित सिद्धान्त निश्चित किए, जिन्हें पंचशील सिद्धान्त कहते हैं। पंचशील के ये सिद्धान्त ही हमारी विदेश नीति के आधार बने हुए हैं। इसी कारण यह कहा जाता है कि, "पं० जवाहरलाल नेहरू ने स्वतन्त्र भारत की विदेश नीति की आधारशिला रखी थी।" भारत की विदेश नीति की विशेषताएँ इस प्रकार हैं—

भारत की विदेश नीति

1. शान्ति एवं मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध
2. आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में सहयोग की नीति
3. स्वतन्त्रता एवं समानता का सिद्धान्त
4. गुट-निरपेक्षता
5. संयुक्त राष्ट्र संघ का समर्थक
6. पंचशील के सिद्धान्त
7. भारत और पड़ोसी देश।

(1) शान्ति एवं मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध—भारत संसार के सभी देशों के साथ शान्ति एवं मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाने का सदैव इच्छुक रहा है और भविष्य में भी रहेगा। भारत जहाँ तक सम्भव होगा, पारस्परिक विवादों को दूर करने हेतु शान्तिपूर्ण प्रयत्न करता रहेगा तथा जो राष्ट्र लड़ाकू प्रवृत्ति के हैं, उनसे सदा दूर रहेगा। पं० जवाहरलाल नेहरू ने 1856 ई० में घोषणा की थी कि, "विश्व में शान्ति स्थापित करना ही हमारी वैदेशिक नीति का प्रमुख उद्देश्य है।"

(2) आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्र में सहयोग की नीति—भारत इस बात का समर्थन करता है कि किसी भी शक्तिशाली देश को कमजोर राष्ट्रों को लूटना-खसोटना नहीं चाहिए और साथ ही निर्बल देशों की आर्थिक एवं सामाजिक उन्नति में सहयोग देना चाहिए। संकटकालीन अवस्था में उनकी प्रत्येक प्रकार से सहायता करनी चाहिए।

(3) स्वतन्त्रता एवं समानता का सिद्धान्त—भारत सदैव से ही स्वतन्त्रता और समानता के सिद्धान्त में विश्वास करता है। किसी भी देश के द्वारा दूसरे देश पर अपना अधिकार जमाकर वहाँ के निवासियों पर अत्याचार करना भारत की विदेश नीति के विरुद्ध है। भारत इस बात का भी समर्थक रहा है कि दो देशों के मध्य के पारस्परिक सम्बन्ध, समानता की भावना पर ही आधारित होने चाहिए।

(4) गुट-निरपेक्षता—द्वितीय विश्वयुद्ध के पश्चात् विश्व के देश, दो गुटों में विभक्त हो गए। एक का नेतृत्व रूस और दूसरे का नेतृत्व संयुक्त राज्य अमेरिका कर रहा है। लेकिन भारत ने गुट-निरपेक्षता की नीति अपनाई अर्थात् वह किसी एक गुट में सम्मिलित न होकर दोनों गुटों से मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाए रहा। गुट-निरपेक्षता की यह नीति आज भी अपनाई जा रही है। श्रीमती इन्दिरा गांधी ने गुट-निरपेक्ष देशों का 1983 ई० में दिल्ली में एक सम्मेलन भी आयोजित करवाया था जिसमें विभिन्न देशों के 99 प्रतिनिधियों ने भाग लिया। वह इन देशों के संगठन की अध्यक्ष भी बनी थीं।

गुट-निरपेक्षता के सन्दर्भ में पं० नेहरू ने कहा था, **"हमारी नीति तो स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करना है; अतः हम दोनों में से किसी में भी शामिल नहीं हैं।"**

प्रारम्भ में, गुटनिरपेक्ष देशों की संख्या 18 थी, जो भारत के प्रयासों से बढ़कर अब 112 तक (1995 तक) पहुँच गई है।

(5) संयुक्त राष्ट्र संघ का समर्थक—भारत किसी भी प्रकार के अन्तर्राष्ट्रीय विवादों से सदैव दूर रहने का प्रयत्न करता रहा है। द्वितीय विश्वयुद्ध का भयंकर परिणाम तो सभी देशों ने देखा, लेकिन फिर भी अनेक देश निडरता के साथ तृतीय विश्वयुद्ध की सम्भावनाएँ प्रकट करते रहे हैं। अतः तृतीय विश्वयुद्ध न हो एवं संसार में शान्ति बनी रहे, यह उद्देश्य लेकर द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना की गई थी। भारत का इस अन्तर्राष्ट्रीय संस्था में पूर्ण विश्वास है तथा उसकी हार्दिक इच्छा है कि विश्व के सभी राष्ट्र इसके सदस्य हो जाएँ और उनके न्यायोचित निर्णयों को स्वीकार करके, विश्व में शान्ति स्थापित करने में सहयोग दें।

(6) पंचशील के सिद्धान्त—स्व० पं० जवाहरलाल नेहरू ने भारत की परराष्ट्र नीति पंचशील के सिद्धान्तों पर आधारित की थी। ये पंचशील के सिद्धान्त उनके स्वयं निर्मित किए हुए थे। विश्व के समस्त राष्ट्रों ने नेहरू जी के इन पाँचों सिद्धान्तों का सम्मान किया। अमेरिका के राष्ट्रपति कैनेडी ने नेहरू जी के इन सिद्धान्तों का समर्थन किया था। उन्होंने ही इन सिद्धान्तों को पंचशील का नाम दिया था। ये पंचशील के सिद्धान्त इस प्रकार हैं—

(i) सभी राष्ट्र एक-दूसरे की प्रभुसत्ता का सम्मान करेंगे।

(ii) कोई राष्ट्र दूसरे राष्ट्र पर आक्रमण नहीं करेगा, वरन् शान्तिपूर्ण ढंग से विवादों को सुलझाया जाएगा।

(iii) कोई राष्ट्र दूसरे देश के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं रखता है।

(iv) सभी राष्ट्र परस्पर समान हैं; अतः एक-दूसरे के सम्मान को बनाए रखते हुए सहयोग की भावना रखकर पारस्परिक लाभ को प्राप्त करना चाहिए।

(v) सभी राष्ट्रों को अपना अस्तित्व बनाए रखने का अधिकार है, अतएव किसी राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र का विश्व के नक्शे से नामोनिशान मिटाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

(7) भारत और पड़ोसी देश—भारत की सीमा से लगे हुए देश—चीन, रूस, श्रीलंका, बर्मा, इण्डोनेशिया, अफगानिस्तान, नेपाल, बंगला देश तथा पाकिस्तान हैं। इनमें से लगभग सभी के साथ भारत मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध बनाए रखने का प्रयत्न करता रहा है और करता रहेगा, परन्तु पाकिस्तान सदैव भारत को अपना शत्रु मानता है और इसके विनाश के लिए षड्यन्त्र रचता रहता है। कश्मीर भारत का एक अभिन्न अंग है, फिर भी इस प्रश्न को लेकर वह भारत में आतंकवादी गतिविधियों को प्रोत्साहन देने में संलग्न है। यह द्विपक्षीय मामला है और शिमला समझौते के तहत पाकिस्तान इस मामले को भारत के साथ शान्तिपूर्ण ढंग से आपसी वार्ता द्वारा हल कर सकता है। परन्तु पाकिस्तान द्वारा कश्मीर मामले को अनेक बार अन्तर्राष्ट्रीय मंच पर उठाया गया है, जिससे दोनों देशों के बीच निरन्तर कटुता बढ़ती ही जा रही है। मई-जून 1999 में पाकिस्तान की शह पर कारगिल क्षेत्र पर पाक घुसपैठियों ने कब्जा कर लिया। भारतीय सेनाओं ने बड़े शौर्य तथा वीरता के साथ घुसपैठियों को कारगिल क्षेत्र से निकाल बाहर किया। इससे दोनों देशों में मध्य तनाव बहुत अधिक बढ़ गया है। नवम्बर 1999 में पाकिस्तान में सैनिक सत्ता स्थापित हो जाने से प्रधानमन्त्री नवाज शरीफ बन्दी बना लिए गए हैं और पाकिस्तान की सत्ता जनरल मुशर्रफ के हाथों में आ गई है। दिसम्बर 1999 में भारतीय विमान के अपहरण तथा तीन आतंकवादियों की रिहाई से संकेत मिलता है कि भारत-पाक सम्बन्धों में सुधार की आशा करना निरर्थक ही है।

भारत की इस महत्त्वपूर्ण विदेश नीति के प्रणेता पं० जवाहरलाल नेहरू ही थे। वस्तुतः आधुनिक भारत के निर्माण में उनका योगदान भुला पाना असम्भव है। पंचशील के सिद्धान्तों के आधार पर विदेशों से सौहार्द्रपूर्ण सम्बन्धों की स्थापना, देश में बड़े उद्योगों की स्थापना, पंचवर्षीय योजनाओं का प्रारम्भ आदि उनके ऐसे कार्य थे जिनके आधार पर उन्हें 'आधुनिक भारत का निर्माता' कहा जा सकता है।

प्रश्न 4—स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त भारत में शिक्षा सुधार के लिए क्या प्रयत्न किए गए हैं ? संक्षेप में लिखिए।

उत्तर—

भारत में शिक्षा सुधार

हमारी शिक्षा-प्रणाली आधुनिक काल की आवश्यकताओं और परिस्थितियों के अनुकूल न होकर अनेक दोषों से युक्त है; अतः वर्तमान शिक्षा-प्रणाली के दोषों को दूर कर, भारत की गौरवमयी संस्कृति की सुरक्षा का उत्तरदायित्व न केवल सरकार, वरन् हम सब पर है। सरकार ने इस ओर सराहनीय कदम उठाए हैं और 1989 ई० से तो सरकार इस ओर विशेष रूप से प्रयत्नशील है। शिक्षा-पद्धति में सुधार कर उसे जीवनोपयोगी बनाने के उद्देश्य से सरकार ने अनेक योजनाओं एवं निगमों द्वारा वर्तमान शिक्षा-प्रणाली में आमूल-चूल परिवर्तन किए हैं। स्वतन्त्र भारत की प्रमुख शिक्षा योजनाओं एवं आयोगों का विवरण निम्नलिखित है—

भारत में शिक्षा सुधार
(1) वर्धा योजना
(2) मुदालियर कमीशन
(3) डॉ० राधाकृष्णन आयोग और विश्वविद्यालय शिक्षा
(4) कोठारी आयोग का गठन
(5) स्वतन्त्र भारत में शिक्षा सुधार के अन्य उपाय।

(1) वर्धा योजना—महात्मा गांधी ने शिक्षा के दोषपूर्ण वातावरण को दूर करने का भरसक प्रयत्न किया। उनके द्वारा किए गए सुधारों को वर्धा योजना के नाम से सम्बोधित किया जाता है। इस योजना द्वारा गांधी जी ने प्राथमिक शिक्षा पर अत्यधिक बल दिया। गांधी जी सोचते थे कि बेसिक शिक्षा द्वारा ही नन्हे बालकों के सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास सम्भव है। यही शिक्षा उन्हें स्वावलम्बी और आत्मनिर्भर बनाएगी। वर्धा योजना में यह प्रस्तावित है कि बेसिक शिक्षा का आधार मात्र पुस्तकें न होकर, बेसिक क्राफ्ट या व्यावहारिक वस्तुएँ होनी चाहिए, अर्थात् बेसिक शिक्षा में लड़कों के लिए कृषि, बुनाई, कताई, उद्यान-कार्य; अनेक लघु-उद्योगों का कार्य, मत्स्य पालन आदि तथा बालिकाओं के लिए गृह-कला, सिलाई-बुनाई, पाक-विद्या आदि को स्थान दिया जाना चाहिए। इसी के साथ मातृ-भाषा, गणित, सामाजिक विषय, सामान्य विज्ञान, कला, खेल-कूद आदि के ज्ञान को भी पर्याप्त महत्त्व दिया जाना चाहिए। बेसिक शिक्षा में अँग्रेजी भाषा या अँग्रेजी रीति-रिवाजों का पूर्णतः बहिष्कार किया गया है, इसलिए आज भी नगर महापालिकाओं के प्राथमिक विद्यालयों में पाँचवीं कक्षा तक अँग्रेजी विषय का अध्ययन नहीं कराया जाता है। गांधी जी ने बेसिक शिक्षा के माध्यम से नागरिक गुणों का विकास करते हुए, प्रत्येक मनुष्य को भारतीय स्थितियों के अनुरूप व्यवसाय की शिक्षा देकर, आत्मनिर्भर बनाने पर विशेष बल दिया था।

(2) मुदालियर कमीशन—बेसिक शिक्षा के बाद माध्यमिक शिक्षा की ओर ध्यान दिया गया, माध्यमिक शिक्षा के दोषों को दूर करने हेतु सितम्बर, 1952 ई० में डॉ० ए० एल० मुदालियर की अध्यक्षता में एक माध्यमिक शिक्षा आयोग की स्थापना की गई। पर्याप्त अध्ययन के पश्चात् इस आयोग ने सुधार सम्बन्धी कुछ सुझाव दिए, जो 1953 ई० में प्रकाशित हुए।

संक्षेप में, ये सुझाव इस प्रकार हैं—

(i) माध्यमिक शिक्षा कक्षा 5 के बाद प्रारम्भ होनी चाहिए।

(ii) माध्यमिक शिक्षा को दो भागों में विभक्त कर देना चाहिए—प्रथम, जूनियर हाईस्कूल तथा द्वितीय, उच्चतर माध्यमिक या हायर सेकेण्डरी स्कूल।

(iii) शिक्षा का माध्यम प्रादेशिक भाषा होना चाहिए। साथ ही राष्ट्रीय एवं विदेशी भाषाओं का भी अध्ययन करना चाहिए।

(iv) प्रत्येक विद्यालय में, वर्ष में कम-से-कम 200 दिन पढ़ाई होनी चाहिए। इसके अतिरिक्त, प्रत्येक 45 या 35 मिनट के सात या आठ घण्टों में शिक्षण कार्य होना चाहिए।

(v) विद्यार्थियों का परीक्षाफल घोषित करते समय उनके वर्षभर का कक्षा-कार्य और अन्य पाठ्य-सहगामी कार्यों को भी देखा जाना चाहिए।

(vi) शारीरिक व्यायाम की ओर भी ध्यान देना चाहिए। कक्षा-कक्ष हवादार होने चाहिए और वहाँ खेल के मैदानों का समुचित प्रबन्ध होना चाहिए।

(vii) केन्द्रीय सरकार को कृषि, उद्योग, कला और विज्ञान आदि की शिक्षा की उन्नति हेतु राज्य की सरकारों को अधिकतम सहायता देनी चाहिए।

(viii) विश्वविद्यालयों की प्रबन्ध समिति 'सोसायटीज रजिस्ट्रेशन एक्ट' के द्वारा स्वीकृत होनी चाहिए।

मुदालियर कमीशन के अनेक उपयोगी सुझावों को सरकार ने स्वीकार कर उनमें से अधिकांश को लागू कर दिया है।

(3) डॉ० राधाकृष्णन आयोग और विश्वविद्यालय शिक्षा—देश स्वतन्त्र होने के पश्चात् सरकार उच्चस्तरीय शिक्षा के सुधारों की ओर विशेष रूप से प्रयत्नशील हो गई थी, क्योंकि उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही भावी पीढ़ी को ही परिवार, समाज और राष्ट्र के उत्थान का कार्य करना था। अतः उच्च स्तरीय शिक्षा के सुधार हेतु 1948 ई० में डॉ० राधाकृष्णन की अध्यक्षता में एक आयोग की स्थापना हुई। इसके सुझाव 1950 ई० में प्रकाशित हुए। ये सुझाव निम्नवत् थे—

(i) भारत के प्राचीन आदर्शों पर विश्वविद्यालयों की स्थापना हो, जहाँ विद्यार्थियों को कृषि एवं ग्राम सुधार सम्बन्धी शिक्षा प्रदान की जाए, जिससे कि विद्यार्थी ग्राम विकास में अपना योगदान दे सकें। (ii) विश्वविद्यालय में केवल ऐसे ही विद्यार्थियों को प्रवेश दिया जाए, जो वास्तव में उच्च शिक्षा के योग्य हों, अन्य विद्यार्थियों को रचनात्मक अर्थात् व्यावसायिक कार्य सिखाया जाए। (iii) विद्यार्थियों के साथ अध्यापकों का व्यक्तिगत सम्पर्क स्थापित करने के लिए प्रत्येक विश्वविद्यालय में ट्यूटोरियल कक्षाएँ प्रारम्भ की जाएँ। (iv) राष्ट्रभाषा हिन्दी का अध्ययन प्रत्येक के लिए अनिवार्य कर दिया जाए। (v) विश्वविद्यालयों में अवकाश कम किए जाएँ।

भारतीय सरकार ने इन सुझावों को भी स्वीकृत कर, इन्हें विश्वविद्यालयों में लागू कर दिया है।

(4) कोठारी आयोग का गठन—इन सब प्रयासों के बाद भी शिक्षा के क्षेत्र में अनेक समस्याएँ बनी रहीं। अतः इन सम्पूर्ण समस्याओं के समाधान हेतु भारत सरकार ने जुलाई, 1964 ई० में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग (U.G.C.) के भूतपूर्व अध्यक्ष डी० एस० कोठारी की अध्यक्षता में एक शिक्षा आयोग की नियुक्ति की। इस आयोग ने 1964 ई० से अपना कार्यभार सम्भाला और जून, 1966 ई० में अपनी उपयोगी रिपोर्ट सरकार के समक्ष प्रस्तुत की। इस आयोग ने देश की शिक्षा सम्बन्धी अधिकतम समस्याओं का सूक्ष्म अध्ययन किया और उसके सुधार हेतु बड़े महत्त्वपूर्ण सुझाव प्रस्तुत किए। सरकार ने इन सुझावों को स्वीकार कर लिया और इन्हें मूर्त रूप देने के लिए वह निरन्तर प्रयत्नशील है।

(5) स्वतन्त्र भारत में शिक्षा-सुधार के अन्य उपाय—शिक्षा को राष्ट्रीय विकास का माध्यम मानते हुए स्वाधीन भारत की केन्द्रीय और प्रान्तीय सरकारें शिक्षा के विभिन्न स्तरों पर विभिन्न रूपों में सुधार करने के प्रयास में संलग्न हैं।

अब प्रारम्भिक शिक्षा को अनिवार्य कर दिया गया है और संविधान के अनुसार 14 वर्ष तक के शिशुओं के लिए शिक्षा अनिवार्य एवं निःशुल्क कर दी गई है। बेसिक शिक्षा के सम्बन्ध में परामर्श देने के लिए (केन्द्रीय एवं राज्य सरकार को) एक अखिल भारतीय शिक्षा परिषद् (All India Council for Education) का निर्माण किया गया है। माध्यमिक शिक्षा हेतु परामर्श देने के लिए भी एक आयोग स्थापित किया गया है। इसके अतिरिक्त, प्राविधिक शिक्षा के सुधार हेतु भी अनेक कार्य किए गए हैं तथा अनेक स्थानों पर इन्जीनियरिंग कॉलेजों की भी स्थापना की गई है। कानपुर, दिल्ली, मद्रास, खड़गपुर, बम्बई (मुम्बई) आदि स्थानों में बहुत उच्च कोटि के आधुनिक उपकरणों से युक्त प्राविधिक विद्यालयों (Indian Institute of Technology) की स्थापना की गई है। उच्च ग्रामीण शिक्षा, सामाजिक शिक्षा, मूक, बधिर एवं नेत्रहीनों की शिक्षा और प्रौढ़ों की शिक्षा के लिए भी व्यापक स्तर पर प्रयत्न किए जा रहे हैं।

इस प्रकार, शिक्षा के क्षेत्र में भारत सरकार ने 1947 से 1988 ई० तक अनेक महत्त्वपूर्ण सुधार किए। 1982 ई० के बाद से दस+दो+तीन (10+2+3) शिक्षा-प्रणाली समस्त देश में लागू करने का प्रयास किया जा रहा है। भारत के प्रत्येक छोटे-से-छोटे ग्राम में माध्यमिक शिक्षण संस्थाओं को खोलने का

प्रयास भी किया जा रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में हरियाणा सरकार ने शिक्षा का राष्ट्रीयकरण कर महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। 1985 ई० से केन्द्रीय सरकार द्वारा शिक्षा के लिए नवीन राष्ट्रीय शिक्षा-नीति प्रस्तावित की गई है। इस क्षेत्र में भूतपूर्व प्रधानमन्त्री स्वर्गीय श्री राजीव गांधी और श्री के० सी० पन्त ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई थी।

प्रश्न 5—पंचवर्षीय योजनाओं की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।
अथवा **चतुर्थ पंचवर्षीय योजना की प्रमुख विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।**
अथवा **सातवीं पंचवर्षीय योजना में व्यय किए जाने वाले विभिन्न मदों पर प्रकाश डालिए।**
अथवा **पंचवर्षीय योजनाओं की उपलब्धियों पर प्रकाश डालिए।** *(1994)*
अथवा **भारतीय जनता पर पंचवर्षीय योजनाओं के आर्थिक प्रभावों पर प्रकाश डालिए।** *(1996)*

उत्तर—

पंचवर्षीय योजनाएँ

निश्चित योजनाओं के आधार पर ही एक निश्चित समय में तथा निर्धारित साधनों द्वारा किसी निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति की जाती है। स्वतन्त्रता के पश्चात् भारत की आर्थिक स्थिति बड़ी ही शोचनीय थी। साथ ही कृषि की स्थिति भी बड़ी दयनीय हो गई थी। अतः स्वतन्त्र भारत को आर्थिक रूप में भी स्वतन्त्र अर्थात् आत्मनिर्भर बनाने के उद्देश्य से भारत में योजनाबद्ध कार्य करने का निश्चय किया गया। इसके लिए पं० जवाहरलाल नेहरू द्वारा पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से प्रगति के कार्यों को करने का निर्णय लिया गया। पंचवर्षीय योजनाओं में 5 वर्ष की अवधि,में निश्चित लक्ष्य प्राप्त करने का उद्देश्य निर्धारित किया जाता है। **प्रथम पंचवर्षीय योजना 1951 ई० में प्रारम्भ हुई थी और अब तक सात पंचवर्षीय योजनाएँ पूर्ण हो चुकी हैं।**

प्रथम, द्वितीय एवं तृतीय योजनाओं के द्वारा हुई उन्नति

सन् 1951 से 1956 ई० तक के लिए निर्मित पंचवर्षीय योजना से लेकर आठवीं पंचवर्षीय योजना तक का संक्षिप्त परिचय निम्नवत् है—

प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951-1956 ई०)

इस योजना में खेती-बाड़ी, सिंचाई, परिवहन, आवागमन के साधनों एवं बिजली के विकास कार्यों पर विशेष ध्यान दिया गया। ग्रामों के विकास हेतु 'सामुदायिक विकास कार्यक्रम' प्रारम्भ किया गया। सिंचाई और बिजली की सुविधाएँ बढ़ाने के लिए भाखड़ा-नांगल, दामोदर घाटी, तुंगभद्रा, हीराकुण्ड तथा चम्बल जैसी विशाल योजनाएँ प्रारम्भ की गईं। कृषि और औद्योगिक विकास के अन्य साधनों की ओर भी विशेष ध्यान दिया गया। इस योजना के अन्तर्गत चितरंजन का रेलवे इन्जन का कारखाना, रेल के डिब्बे तथा रासायनिक खाद आदि बनाने के कारखाने खोले गए।

द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956-1961 ई०)

दूसरी योजना का उद्देश्य; प्रथम योजना के कार्यों को विशेष गति प्रदान करना था। इस योजना के अन्तर्गत बड़े पैमाने पर स्थापित उद्योगों में भिलाई, दुर्गापुर एवं राउरकेला के इस्पात के कारखाने तथा भोपाल का बिजली के भारी सामान का कारखाना मुख्य हैं।

इन दोनों योजनाओं द्वारा आवागमन, उत्पादन एवं औद्योगिक क्षेत्रों में भी प्रगति हुई। इसके साथ ही शिक्षा, चिकित्सा आदि लोक-कल्याणकारी क्षेत्रों में भी पर्याप्त उन्नति हुई। इन योजनाओं के आधार पर राष्ट्रीय आय में 45% वृद्धि हुई।

तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961-1966 ई०)

तृतीय योजना 1 अप्रैल, 1961 ई० से लागू होकर 31 मार्च, 1966 ई० को समाप्त हो गई। इसमें आशातीत सफलता नहीं मिली, क्योंकि इस बीच भारत; पाक व चीन के युद्धों से घिरा रहा। इसके अतिरिक्त, वस्तुओं के मूल्य में भी आश्चर्यजनक वृद्धियाँ हो गई थीं। इसी कारण तृतीय योजना अपनी-लक्ष्य प्राप्ति में असफल ही रही थी।

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1969-1974 ई०)

चतुर्थ पंचवर्षीय योजना तृतीय योजना के पूर्ण होते ही क्रियान्वित न हो सकी, क्योंकि भारत 1962 ई० व 1965 ई० में क्रम से चीन तथा पाकिस्तान से युद्ध कर चुका था, इसलिए इसकी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं रह गई थी और इन पंचवर्षीय योजनाओं को पूर्ण करने में अरबों की संख्या में रुपया खर्च हो जाता है। अतः चौथी पंचवर्षीय योजना 1 अप्रैल, 1969 ई० से शुरू हुई और 12 मार्च, 1974 ई० को समाप्त हुई।

उद्देश्य—इस योजना के प्रमुख उद्देश्य इस प्रकार थे—

(1) बेरोजगारी घटाने के उद्देश्य से रोजगार के साधनों में अभिवृद्धि करना।

(2) ग्रामीण क्षेत्र के लोगों की आय में वृद्धि करना।

(3) धातुओं, रासायनिक पदार्थों, खनिज पदार्थों, मशीनों और यातायात के साधनों में वृद्धि करना।

(4) कृषि एवं कृषि पर आधारित उद्योगों को प्राथमिकता देना।

(5) दैनिक उपयोग की वस्तुओं में इतनी वृद्धि करना कि दस वर्षों में देश खाद्यान्न के सम्बन्ध में आत्मनिर्भर हो जाए।

(6) जनसंख्या वृद्धि पर नियन्त्रण करना।

(7) आय एवं धन के वितरण से सम्बन्धित असमानता को दूर करना और सामाजिक न्याय की स्थापना करना।

(8) चीनी, वस्त्र, मिट्टी का तेल एवं कागज के उत्पादन में वृद्धि करना।

(9) ग्रामीण क्षेत्र के लोगों की आय में वृद्धि करना।

(10) गृह-निर्माण के लिए आवश्यक सामग्री की वृद्धि करना।

इन सबका मूल उद्देश्य देश में समाजवादी व्यवस्था की स्थापना के साथ-साथ, प्रति व्यक्ति औसत आय में वृद्धि कर, राष्ट्रीय आय में वृद्धि करना भी था। योजना आयोग के शब्दों में, इस योजना का उद्देश्य इस प्रकार था, "चतुर्थ योजना का मूल उद्देश्य समानता और सामाजिक न्याय को प्रोत्साहित करने वाले उपायों द्वारा जनता के जीवन-स्तर को तेजी से ऊँचा उठाना और जनसाधारण तथा कम अधिकार प्राप्त निर्बल वर्ग के लोगों के विकास पर विशेष बल देना है।"

भारत की पंचवर्षीय योजनाएँ

(1) प्रथम पंचवर्षीय योजना (1951 – 1956 ई०)
(2) द्वितीय पंचवर्षीय योजना (1956 – 1961 ई०)
(3) तृतीय पंचवर्षीय योजना (1961 – 1966 ई०)
(4) चतुर्थ पंचवर्षीय योजना (1969 – 1974 ई०)
(5) पाँचवीं पंचवर्षीय योजना (1974 – 1978 ई०)
(6) छठी पंचवर्षीय योजना (1980 – 1985 ई०)
(7) सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985 – 1990 ई०)
(8) आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992 – 1997 ई०)
(9) नवीं पंचवर्षीय योजना (1997 – 2002 ई०)

पाँचवीं पंचवर्षीय योजना (1974-1978 ई०)

लक्ष्य—इस योजना के लक्ष्य इस प्रकार निर्धारित किए गए—(1) उत्पादन में वृद्धि करना। (2) औद्योगिक विकास। (3) परिवहन के साधनों का विकास। (4) विद्युत उत्पादन में वृद्धि। (5) शिक्षा का विकास। (6) स्वास्थ्य तथा परिवार नियोजन।

यह योजना केवल 4 वर्ष तक चली। इस योजना के समय राष्ट्रीय विकास परिषद् का उद्घाटन करते हुए तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने कहा था, "सिर्फ व्यय की राशियों और केन्द्रीय सहायता के हिस्सों को निर्धारित कर देना ही योजना नहीं है। योजना का क्रियान्वयन किस ढंग से होता है और उससे वांछनीय लाभ प्राप्त होते हैं या नहीं, यह देखना अति-आवश्यक है, क्योंकि योजना का अर्थ ही उसका क्रियान्वयन है।"

आकार—पाँचवीं योजना के लिए 53,411 करोड़ रुपये निश्चित किए गए। इसमें से 37,250 करोड़ रुपये सार्वजनिक क्षेत्र के लिए तथा 16,161 करोड़ रुपये निजी क्षेत्र के लिए निर्धारित किए गए थे।

छठी पंचवर्षीय योजना (1980-1985 ई०)

कांग्रेस सरकार की राष्ट्रीय विकास परिषद् ने 14 फरवरी, 1981 ई० को जनता पार्टी की सरकार द्वारा निर्मित छठी पंचवर्षीय योजना (1980-85) के सुझाव को बिना किसी परिवर्तन के स्वीकार कर लिया। तत्कालीन प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी ने राष्ट्रीय विकास परिषद् में समापन भाषण देते हुए कहा था कि "सार्वजनिक क्षेत्र की अपनी प्रभावशाली भूमिका है, लेकिन उसके साथ ही निजी क्षेत्र को आगे बढ़ने का पूरा-पूरा अवसर दिया जाएगा।" उन्होंने पश्चिम बंगाल, केरल और त्रिपुरा के मार्क्सवादी मुख्यमन्त्रियों की (जिन्होंने छठी योजना के ढाँचे पर असहमति प्रकट की) आलोचना करते हुए कहा कि समाजवादी देशों में भी नियन्त्रण और कठोर नियमों में ढील दी गई है और उन्होंने विदेशी निवेश, टैक्नोलॉजी और बहुराष्ट्रीय कम्पनियों का खुला स्वागत किया है।

छठी योजना में ग्रामीण क्षेत्र के विकास पर अधिक बल दिया गया, जिससे कि वे आत्म-निर्भर बन सकें।

योजना पर व्यय—योजना पर 1,72,210 करोड़ रुपये खर्च करने की व्यवस्था थी जिसमें से केन्द्र और राज्यों के सार्वजनिक क्षेत्र पर 97,500 करोड़ रुपये तथा निजी क्षेत्र पर 74,710 करोड़ रुपये व्यय करने का प्रावधान था।

योजना में 5·1% की विकास दर का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। तत्कालीन योजना मन्त्री श्री नारायण दत्त तिवारी ने संवाददाताओं को बतलाया था कि योजना का मुख्य उद्देश्य ग्रामीणों की गरीबी को कम करना है।

सातवीं पंचवर्षीय योजना (1985-1990 ई०)

यह योजना राष्ट्रीय विकास परिषद् की दिनांक 9 नवम्बर, 1985 की बैठक में तत्कालीन प्रधानमंत्री श्री राजीव गांधी के नेतृत्व में स्वीकार कर ली गई थी।

मुख्य लक्ष्य—श्री राजीव गांधी ने अपने भाषण में इस योजना के बहुत से लक्ष्य बताए थे। इनमें से कुछ प्रमुख लक्ष्य थे—(1) गरीबी दूर करना, (2) विज्ञान एवं तकनीकी के विकास से भारत का उत्थान, (3) उद्योगों में कामकाज की नई संस्कृति विकसित करना, (4) ऊर्जा, परिवहन आदि में अधिक पूँजी निवेश की जाएगी, (5) वित्तीय साधनों में वृद्धि, (6) जल साधनों, दूर संचार, अनुसन्धान और डाक व्यवस्था का विकास, (7) लघु तथा ग्रामीण उद्योगों को सहायता।

सातवीं पंचवर्षीय योजना का कार्यक्रम पूरा हो चुका है और इस योजना के अधिकांश लक्ष्य प्राप्त किए जा चुके हैं।

आठवीं पंचवर्षीय योजना (1992-1997 ई०)

जनता दल की केन्द्र सरकार के निर्देश पर योजना आयोग ने आठवीं योजना का नया प्रारूप मई, 1990 ई० में तैयार कर लिया था। केन्द्रीय मन्त्रि-परिषद् ने इस प्रारूप को अपनी स्वीकृति प्रदान कर दी और 1 अप्रैल, 1992 ई० से आठवीं पंचवर्षीय योजना लागू कर दी गई।

आठवीं पंचवर्षीय योजना की उल्लेखनीय बातें निम्नवत् हैं—

(1) आर्थिक विकास दर 5·5% बढ़ाने का लक्ष्य रखा गया।

(2) रोजगार वृद्धि की दर 3% निर्धारित की गई।

(3) सकल घरेलू उत्पाद का 22% तक घरेलू बचत रखे जाने का प्रावधान किया गया।

(4) विदेशी संसाधनों की प्राप्ति सकल घरेलू उत्पादन का 1.5% होने का अनुमान लगाया गया था।

(5) विदेशी व्यापार में 12% तक की वृद्धि करने का लक्ष्य रखा गया।

(6) कृषि तथा ग्रामीण विकास कार्यक्रमों पर संसाधनों का 50% तक व्यय किया जाना निर्धारित हुआ।

(7) 1990 ई० के दशक में शिक्षा नीति में सुधार कर निरक्षरता दूर करने का निश्चय किया गया।

(8) स्वास्थ्य कल्याण की योजनाओं को विकसित कराना।

(9) विकेन्द्रित सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से सबको भोजन उपलब्ध कराना।

(10) परिवार कल्याण कार्यक्रम के अन्तर्गत महिलाओं के स्तर को ऊँचा उठाने, जन्म-दर कम करने व महिलाओं की शिक्षा में विस्तार करने पर भी बल देना।

(11) औद्योगिक नीति का सरलीकरण करके, उस पर नौकरशाही के नियन्त्रण को कम करना।

(12) भारतीय उत्पादों की गुणवत्ता में सुधार लाना।

(13) निजी उद्योगों के दायरे को विस्तृत किया जाना।

(14) उप संरचनात्मक सेवाओं की कार्यकुशलता में वृद्धि करना।

(15) सार्वजनिक क्षेत्र से, ऐसे उपक्रम जो निरन्तर घाटा देने वाले उपक्रमों को हटाना।

(16) कठोर आर्थिक अनुशासन स्थापित करना।

नवीं पंचवर्षीय योजना (1997-2002 ई०)

नवीं पंचवर्षीय योजना में आर्थिक विकास की दर 7% बढ़ाने का लक्ष्य है। यह योजना अप्रैल, 1997 से प्रारम्भ होकर मार्च, 2002 ई० तक चलेगी। इस योजना के दृष्टिकोण-पत्र में कुल परिव्यय 8,75,000 करोड़ रु० निर्धारित किया गया है।

लक्ष्य—नवीं पंचवर्षीय योजना के प्रमुख लक्ष्य निम्नवर्णित हैं—

(1) आठवीं योजना को उपलब्धियों को अग्रसरित करना।

(2) कृषि के क्षेत्र में पूँजी-निवेश को प्रोत्साहित करना।

(3) निर्धनों के जीवन-स्तर में सुधार लाना।

(4) सामाजिक क्षेत्र की विसंगतियों को दूर करना।

(5) बुनियादी सुविधाओं का विकास करना।

(6) क्षेत्रीय विषमताओं में उत्पन्न असन्तुलन कम करना।

(7) पर्याप्त उत्पादक रोजगार उत्पन्न करना।

(8) मूल्यों में स्थायित्व रखते हुए आर्थिक विकास की गति तीव्र करना।

(9) जनसंख्या विस्फोट को नियन्त्रित करना।

नवीं योजना का सर्वप्रमुख लक्ष्य है—न्यायपूर्ण वितरण एवं समानता के साथ विकास करना। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए चार नीतिगत तथ्य निर्धारित किए गए हैं ये हैं—

(1) जीवन की गुणवत्ता, (2) रोजगार-संवर्द्धन, (3) क्षेत्रीय सन्तुलन तथा (4) आर्थिक निर्भरता।

इन समस्त पंचवर्षीय योजनाओं के आधार पर किए गए नियोजित एवं विकासपूर्ण कार्यों से देश की पर्याप्त उन्नति हुई है, किन्तु यह नहीं कहा जा सकता है कि इन योजनाओं ने अपने उद्देश्यों को पूर्णरूप से प्राप्त कर लिया है। इसका कारण यह है कि किसी भी उद्देश्य की पूर्ण सफलता के लिए यह आवश्यक है कि सरकार और नागरिक दोनों ही इन योजनाओं की समुचित क्रियान्विति के लिए इच्छुक और प्रयत्नशील हों। नागरिकों को चाहिए कि वे सरकार को देश के कल्याणकारी कार्यों में पूर्ण सहयोग दें। हमें स्वेच्छा से समाज-सेवा-संघ, युवा-क्लब, महिला-मण्डल एवं सहकारी समितियों का निर्माण कर, राष्ट्रीय उन्नति में सरकार का हाथ बँटाना चाहिए।

लघु उत्तरीय प्रश्न

प्रश्न 1—भारतीय संविधान के चार मौलिक अधिकारों पर प्रकाश डालिए। *(1993, 95, 97)*

उत्तर—भारतीय संविधान द्वारा प्रदत्त चार मौलिक अधिकार अग्रलिखित हैं—

(1) समानता का अधिकार।
(2) स्वतन्त्रता का अधिकार।
(3) सांस्कृतिक व शिक्षा सम्बन्धी अधिकार।
(4) संवैधानिक उपचारों का अधिकार।

प्रश्न 2—'पंचशील' से आप क्या समझते हैं? *(1995)*
अथवा **'पंचशील' के सिद्धान्तों का उल्लेख कीजिए।**

उत्तर—पंचशील के सिद्धान्त—स्वतन्त्रता-प्राप्ति के उपरान्त हमारे देश के सर्वप्रथम प्रधानमन्त्री पं० जवाहरलाल नेहरू ने भारत की विदेश नीति का संचालन करने हेतु कुछ आदर्शों पर आधारित सिद्धान्त निश्चित किए थे। इन सिद्धान्तों को ही पंचशील के सिद्धान्त कहते हैं। पं० जवाहरलाल नेहरू ने भारत की परराष्ट्र नीति इन्हीं पंचशील के सिद्धान्तों के आधार पर निर्धारित की थी। ये पंचशील के सिद्धान्त स्वयं उन्हीं के द्वारा निर्मित किए गए थे। विश्व के समस्त राष्ट्रों ने नेहरू जी के इन पाँचों सिद्धान्तों का सम्मान किया। अमेरिका के राष्ट्रपति कैनेडी ने नेहरू जी के इन सिद्धान्तों का समर्थन करते हुए उन्होंने इन सिद्धान्तों को पंचशील का नाम दिया था। ये पंचशील के सिद्धान्त इस प्रकार हैं—

(1) सभी राष्ट्र एक-दूसरे की प्रभुसत्ता का सम्मान करेंगे।

(2) कोई राष्ट्र दूसरे देश पर आक्रमण नहीं करेगा, वरन् शान्तिपूर्ण ढंग से पारस्परिक विवादों को सुलझाया जाएगा।

(3) कोई राष्ट्र दूसरे देश के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप करने का अधिकार नहीं रखता है।

(4) सभी राष्ट्र परस्पर समान हैं; अतः एक-दूसरे के सम्मान को बनाए रखते हुए, सहयोग की भावना रखकर, पारस्परिक लाभ को प्राप्त करना चाहिए।

(5) सभी राष्ट्रों को अपना अस्तित्व बनाए रखने का अधिकार है। अतएव किसी राष्ट्र को दूसरे राष्ट्र का विश्व के नक्शे से नामोनिशान मिटाने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

प्रश्न 3—स्वतन्त्र भारत की विदेश नीति की दो प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख कीजिए। *(1997)*

उत्तर—स्वतन्त्र भारत की विदेश नीति की दो प्रमुख विशेषताओं का उल्लेख इस प्रकार है—

(1) गुट निरपेक्षता की नीति—स्वतन्त्रता-प्राप्ति के समय से ही भारत ने यह निश्चय कर लिया था कि भारत किसी भी गुट में सम्मिलित नहीं होगा तथा सभी देशों के साथ मैत्रीपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करेगा। इस नीति के आधार पर यह निश्चित किया गया कि भारत की एक स्वतन्त्र विदेश नीति होगी। भारत की इस नीति को 'गुट-निरपेक्षता' का नाम दिया गया है। गुट-निरपेक्षता का अर्थ अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में शक्ति गुटों से पृथक् रहते हुए विश्वशान्ति, सत्य एवं न्याय का समर्थन करना है।

(2) साम्राज्यवाद एवं उपनिवेशवाद का विरोध—साम्राज्यवादी शोषण से त्रस्त भारत ने अपनी विदेश नीति के अन्तर्गत साम्राज्यवाद का प्रत्येक रूप में विरोध किया। भारत ने यह निश्चय किया कि विश्व-शान्ति एवं विश्व-व्यवस्था के लिए घातक इस प्रकार की प्रवृत्तियों का किसी भी दशा में समर्थन नहीं किया जाएगा।

प्रश्न 4—भारतीय संविधान की किन्हीं चार विशेषताओं का उल्लेख कीजिए। *(1995)*
अथवा **भारत के संविधान की दो मुख्य विशेषताओं पर प्रकाश डालिए।** *(1999)*

उत्तर—भारतीय संविधान की चार विशेषताओं का उल्लेख निम्नवत् है—

(1) नागरिकों के लिए मूल अधिकारों की व्यवस्था—प्रत्येक नागरिक अपना स्वतन्त्रतापूर्वक विकास कर सके, इसलिए संविधान में प्रत्येक नागरिक को छह मूल अधिकार प्रदान कर दिए गए हैं। ये अधिकार लोकतंत्र के आधार-स्तम्भ हैं। मूल अधिकारों की व्यवस्था के साथ-साथ संविधान में नागरिक के कर्त्तव्यों का भी उल्लेख किया गया है।

(2) नीति-निर्देशक तत्त्वों की घोषणा—राज्यों को अधिकार दे देने के बाद यह भी विचार किया गया कि कहीं राज्य; शासन के सम्बन्ध में मनमानी न करें, इसलिए संविधान में नीति-निर्देशक तत्त्वों की

व्यवस्था की गई है। यद्यपि इन नीति-निर्देशक सिद्धान्तों के पीछे कोई कानूनी शक्ति नहीं है तो भी ये भविष्य के लिए अवश्य ही ऐसे मार्गदर्शक सिद्धान्त सिद्ध होंगे, जिनको आधार मानकर आने वाली सरकारें कार्य करती रहेंगी।

(3) एक राष्ट्रभाषा की व्याख्या—भारत के विभिन्न प्रान्तों में भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोली जाती हैं। अतः विभिन्न भाषा-भाषियों में एकता की भावना उत्पन्न करने के उद्देश्य से संविधान में हिन्दी को ही राष्ट्रभाषा घोषित किया गया है।

(4) विश्वशांति और अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग का समर्थन—संविधान में नीति-निर्देशक तत्त्वों के अन्तर्गत यह बात वर्णित है कि सरकार विश्वशांति की स्थापना और अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में सहयोग और सद्भावना की नीति अपनाएगी।

प्रश्न 5—गुट-निरपेक्ष आन्दोलन के क्या लक्ष्य एवं उद्देश्य थे? *(1996)*

उत्तर—गुट-निरपेक्ष आन्दोलन के लक्ष्य एवं उद्देश्य निम्नलिखित थे—

(1) गुटों से अलग रहना—गुट-निरपेक्ष देश सैनिक गुटों से पृथक् रहते थे।

(2) विश्व-शान्ति—गुट-निरपेक्ष देश विश्व में शान्ति बनाए रखने के इच्छुक थे।

(3) स्वतन्त्र विदेश नीति—गुट-निरपेक्ष देश स्वतन्त्र विदेश नीति अपनाते थे। वे किसी देश के दबाव में आकर अपनी नीति निर्धारित नहीं करते थे।

(4) झगड़ों का शान्तिपूर्वक हल—गुट-निरपेक्ष देश पारस्परिक विवादों का निपटारा, युद्ध द्वारा नहीं, बल्कि शान्तिपूर्वक तथा पारस्परिक वार्ता के आधार पर निपटाने के समर्थक थे।

प्रश्न 6—वर्तमान भारत के समक्ष चार जटिल समस्याओं का उल्लेख कीजिए।

उत्तर—वर्तमान भारत के समक्ष उत्पन्न चार जटिल समस्याएँ निम्नलिखित हैं—

(1) जनसंख्या वृद्धि की समस्या।

(2) निर्धनता की समस्या।

(3) प्रदूषण की समस्या।

(4) बेरोजगारी की समस्या।

(5) जातिवाद की समस्या।

(6) साम्प्रदायिकता की समस्या आदि।

प्रश्न 7—राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने हेतु हमारे संविधान में कौन-से प्रावधान किए गए हैं? *(1994)*

उत्तर—राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने हेतु हमारे संविधान में निम्नलिखित प्रावधान किए गए हैं—

(1) धर्म निरपेक्षता—भारतीय संविधान द्वारा देश में धर्म निरपेक्ष राज्य की स्थापना की गई है। धर्म निरपेक्षता का आशय सरकार के द्वारा किसी के भी धर्म में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप न किया जाना है। धार्मिक मामलों में तटस्थता की यह नीति, राष्ट्रीय एकता को सुदृढ़ करने में विशेष रूप से सहायक सिद्ध हुई है।

(2) अस्पृश्यता की समाप्ति—हमारे संविधान में सामाजिक समानता के आधार पर राष्ट्रीय एकता का विकास करने तथा अस्पृश्यता के उन्मूलन हेतु कानून बनाए गए हैं। संविधान द्वारा अस्पृश्यता को कानूनी अपराध घोषित किया गया है।

(3) समान न्याय की व्यवस्था—भारतीय संविधान में सम्पूर्ण देश के उच्च न्यायालयों को भारत के सर्वोच्च न्यायालय के अधीन रखा गया है और एक समान कानूनों का निर्माण किया गया है।

(4) इकहरी नागरिकता—प्रायः संघ राज्यों में दोहरी नागरिकता की व्यवस्था होती है, परन्तु भारत में केवल इकहरी नागरिकता की ही सुविधा प्रदान की गई है और वह है भारत की नागरिकता।

(5) एक राष्ट्रभाषा की व्यवस्था—देश में विभिन्न भाषाओं को प्रयुक्त करने वाले नागरिकों में राष्ट्रीय एकता की भावना का विकास करने के उद्देश्य से, हिन्दी को राष्ट्रभाषा घोषित किया गया है।

प्रश्न 8—'स्वतन्त्र भारत की राजनीतिक एकीकरण' पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए।

उत्तर—स्वतंत्र भारत के राजनीतिक एकीकरण में सरदार वल्लभभाई पटेल का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा । उन्हें रियासती मन्त्रालय का अध्यक्ष बनाया गया। उनके प्रयास से 15 अगस्त, 1947 ई० को जूनागढ़, हैदराबाद एवं कश्मीर को छोड़कर शेष सभी रियासतें भारत संघ में सम्मिलित हो गईं। बाद में बल प्रयोग द्वारा जूनागढ़ एवं हैदराबाद रियासतों का भी भारत संघ में विलय हो गया। कश्मीर के महाराजा ने भारत संघ में सम्मिलित होना स्वीकार नहीं किया, परन्तु पाकिस्तान के सैनिकों तथा कबीलों की घुसपैठ से घबरा कर वे भी भारत संघ में सम्मिलित हो गए। जिन क्षेत्रों में फ्रांस व पुर्तगाल का शासन था, उनमें फ्रांस ने अपने क्षेत्र शान्तिपूर्ण ढंग से भारत को सौंप दिए, परन्तु पुर्तगाल ने गोवा, दमन और दीव को नहीं छोड़ा। बाद में 1961 ई० में भारत ने पुलिस दल का प्रयोग करके इन पुर्तगाली उपनिवेशों को छीन लिया।

प्रश्न 9—स्वतन्त्र भारत की चार प्रमुख समस्याएँ बताइए। इन समस्याओं का निराकरण किस प्रकार किया गया?

अथवा **स्वतन्त्र भारत की चार प्रमुख उपलब्धियों का उल्लेख कीजिए।**

उत्तर—स्वतन्त्र भारत की चार प्रमुख समस्याएँ निम्नलिखित हैं—

(1) संविधान के निर्माण की समस्या।

(2) देशी रियासतों के विलय की समस्या।

(3) शरणार्थियों की समस्या।

(4) राज्यों के पुनर्गठन की समस्या।

स्वतन्त्र भारत की चार प्रमुख उपलब्धियाँ—15 अगस्त, 1947 ई० को भारत को ब्रिटिश शासन की दासता से मुक्ति प्राप्त हुई। स्वाधीनता के बाद भारत के समक्ष अनेक गम्भीर समस्याएँ उपस्थित थीं। देश के कर्णधारों ने इन समस्याओं का दृढ़ता के साथ सामना किया और निम्नलिखित उपलब्धियाँ प्राप्त कीं—

(1) नवीन संविधान का निर्माण—भारत की 'संविधान सभा' ने स्वतंत्र भारत का नया संविधान बनाया, जिसे 25 जनवरी, 1950 को लागू कर दिया गया।

(2) देशी रियासतों का विलय—सरदार वल्लभ भाई पटेल ने कूटनीति अपनाकर भारत की लगभग 600 रियासतों का भारतीय संघ में विलय करके राजनीतिक एकता की स्थापना की।

(3) शरणार्थियों की समस्या का समाधान—भारत के स्वतंत्र होने के पश्चात् पाकिस्तान में असंख्य शरणार्थी भारत आए। सरकार के समक्ष उनके पुनर्वास और रोजगार की भीषण समस्या थी। भारत की सरकार ने उनकी इन समस्याओं को बहुत अच्छे ढंग से सुलझाने में सफलता प्राप्त की।

(4) राज्यों का पुनर्गठन—स्वतंत्र भारत की सरकार ने राज्यों का पुनर्गठन करने हेतु 1956 ई० में एक अधिनियम पारित किया। इसके बाद अनेक राज्यों का पुनर्निर्माण हुआ। वर्तमान समय में भारत संघ में 25 राज्य और 7 केन्द्र-शासित क्षेत्र हैं।

प्रश्न 10—भारत में जनसंख्या वृद्धि के चार प्रमुख कारण बताइए।

उत्तर—भारत में जनसंख्या वृद्धि के चार प्रमुख कारण निम्नलिखित हैं—

(1) ऊँची जन्म-दर—भारत में जनसंख्या में तेजी से वृद्धि के होने का प्रमुख कारण जन्म-दर का अधिक होना है। गर्म जलवायु, बाल-विवाह, धार्मिक कट्टरता, संयुक्त परिवार प्रथा, निम्न आय स्तर, मनोरंजन के साधनों के अभाव आदि के कारण जन्म-दर में तेजी से वृद्धि हुई है।

(2) मृत्यु-दर में कमी—गत 70 वर्षों से देश में मृत्यु-दर में निरन्तर कमी आई है। जन्म-दर के अधिक और मृत्यु-दर के कम रहने के कारण भारत 'जनसंख्या विस्फोट' की अवस्था से गुजर रहा है।

मृत्यु-दर में तेजी से कमी होने के मुख्य कारण हैं—देश में चिकित्सा सम्बन्धी सुविधाओं में वृद्धि, अकालों, महामारियों पर नियन्त्रण, शिक्षा का प्रसार, रहन-सहन के स्तर में सुधार आदि।

(3) अशिक्षा व अज्ञानता—अधिकांश भारतीय अशिक्षित हैं। 1991 ई० की जनगणना के अनुसार भारत में कुल 52.21% व्यक्ति साक्षर हैं। पुरुषों में साक्षरता 64.13% है और स्त्रियों में 39.29% है। अशिक्षा के कारण यहाँ के लोग अन्धविश्वासी हैं और जनसंख्या की वृद्धि के प्रति उदासीन हैं।

(4) निर्धनता—अधिकांश भारतीय निर्धन हैं। उनका विचार है कि नए बच्चे परिवार में आय बढ़ाने में सहायक होते हैं।

प्रश्न 11—जनसंख्या वृद्धि रोकने के उपाय बताइए।

उत्तर—भारत में जनसंख्या की अतिशय वृद्धि को निम्नांकित उपायों से रोका जा सकता है—

(1) विवाह की आयु में वृद्धि करना।
(2) शिक्षा का प्रसार तथा जीवन-स्तर में सुधार लाना।
(3) स्त्री-शिक्षा का प्रसार करना।
(4) महिलाओं की दशा में सुधार करना।
(5) परिवार कल्याण कार्यक्रमों का व्यापक प्रसार करना।
(6) सन्तति निग्रह उपायों को अधिक अपनाना।
(7) संयमित जीवन व्यतीत करना।

प्रश्न 12—देश में जातिवाद की समस्या को किस प्रकार दूर किया जा सकता है?

उत्तर—जातिवाद की समस्या को निम्नलिखित उपायों द्वारा हल किया जा सकता है—

(1) अन्तर्जातीय विवाहों को प्रोत्साहन दिया जाए।
(2) नाम के साथ जातिसूचक शब्द लिखने पर रोक लगाई जाए।
(3) समाज से ऊँच-नीच की भावना समाप्त की जाए।
(4) राष्ट्रीयता की भावना जगाई जाए, जिससे देशवासी राष्ट्रहित में लग जाएँ।
(5) जातिवाद के दोषों को प्रकट करके उनके विरुद्ध जनमत जगाया जाए तथा व्यापक प्रचार एवं प्रसार किया जाए।
(6) राजनीतिज्ञों को इस प्रकार की समस्याओं को हल करने का प्रयास करना चाहिए।
(7) संविधान में जातिवाद फैलाने वालों के लिए दण्ड-व्यवस्था निर्धारित की जाए।
(8) जाति पर आधारित शिक्षा-संस्थाओं, छात्रावासों व जातिसूचक शब्दों की समाप्ति द्वारा भी इसे कम किया जा सकता है।

प्रश्न 13—देश की विविध समस्याओं को दूर करने के प्रमुख उपाय बताइए।

उत्तर—

समस्याओं के समाधान हेतु उपाय

(1) उद्योग-धन्धों का पर्याप्त विकास किया जाए।
(2) यातायात और संचार व्यवस्था को उन्नत बनाया जाए।
(3) जनसंख्या वृद्धि पर प्रभावी रोक लगाई जाए।
(4) प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि की जाए।
(5) सामाजिक कुरीतियों को दूर किया जाए।
(6) कृषि व्यवस्था में सुधार किया जाए।
(7) पूँजी-संचय पर ध्यान दिया जाए।
(8) विज्ञान तथा तकनीकी का विकास किया जाए।
(9) स्त्रियों की दशा में सुधार लाया जाए।
(10) पर्यावरण संरक्षण के लिए वृक्षारोपण तथा अन्य उपाय किए जाएँ।
(11) शिक्षा के प्रसार द्वारा अन्धविश्वास, जाति-प्रथा आदि समस्याओं का अन्त किया जा सकता है।

प्रश्न 14—राष्ट्रीय एकता में बाधा डालने वाले कारणों में से किन्हीं दो पर प्रकाश डालिए। *(1997)*

उत्तर—राष्ट्रीय एकता में बाधा डालने वाले प्रमुख दो कारण निम्नलिखित हैं—

(1) **साम्प्रदायिकता**—यह राष्ट्रीय एकता के मार्ग में बाधा डालने वाला प्रमुख तत्त्व है। हिन्दू-मुस्लिम दंगे साम्प्रदायिकता के ही परिणाम हैं। इससे राष्ट्रीय एकता को हानि पहुँचती है।

(2) **क्षेत्रवाद**—क्षेत्रवाद की संकीर्ण भावना से राष्ट्रीय एकता को खतरा उत्पन्न हो जाता है। इससे सीमा-सम्बन्धी विवाद उठ खड़े होते हैं।

ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों एवं व्यक्तियों पर आधारित प्रश्न

प्रश्न 1—निम्नांकित तिथियों के ऐतिहासिक महत्त्व पर टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) **1948 ई०** *(1990, 95)*—इस तिथि को सर्वपल्ली डॉ० राधाकृष्णन् की अध्यक्षता में विश्वविद्यालय आयोग नियुक्त हुआ। इसका कार्य उच्च शिक्षा की समस्याओं का पता लगाकर उनके निराकरण के लिए सुझाव देना था। महात्मा गांधी की मृत्यु तथा राजगोपालाचारी का गवर्नर जनरल नियुक्त किया जाना भी इसी वर्ष से सम्बन्धित घटनाएँ हैं।

(2) **1949 ई०** *(1994)*—इस तिथि को संविधान द्वारा निर्मित स्वतन्त्र भारत का संविधान स्वीकार किया गया था।

(3) **1950 ई०** *(1990, 91, 95)*—इस तिथि (26 जनवरी, 1950 ई०) को स्वतन्त्र भारत का संविधान सम्पूर्ण देश में लागू किया गया और डॉ० राजेन्द्र प्रसाद भारत के प्रथम राष्ट्रपति बने थे।

(4) **1951 ई०**—इस तिथि को देश में प्रथम सार्वजनिक निर्वाचन हुआ था और प्रथम पंचवर्षीय योजना लागू की गई थी।

(5) **1952 ई०** *(1992, 93, 95)*—इस वर्ष पंडित जवाहरलाल देश के प्रथम प्रधानमन्त्री बने।

(6) **1954 ई०** *(1993, 95)*—पंचशील सिद्धान्त का प्रतिपादन इसी वर्ष हुआ था।

(7) **1955 ई०** *(1993)*—इस वर्ष सुप्रसिद्ध हिन्दू कोड बिल पारित किया गया था।

(8) **1956 ई०**—इस तिथि को राज्यों का पुनर्गठन किया गया था और विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम पारित हुआ था।

(9) **1957 ई०**—इस तिथि को देश में दूसरा सार्वजनिक निर्वाचन हुआ था।

(10) **1962 ई०**—इस तिथि को चीन ने भारत पर आक्रमण किया था, देश में तीसरा सार्वजनिक निर्वाचन हुआ था और डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन् भारत के दूसरे राष्ट्रपति बने थे।

(11) **1964 ई०**—इस तिथि को देश के प्रमुख नेता और प्रधानमन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू का स्वर्गवास हुआ था और लालबहादुर शास्त्री देश के दूसरे प्रधानमन्त्री बने थे।

(12) **1965 ई०** *(1990, 95)*—इस तिथि को भारत और पाकिस्तान के मध्य युद्ध हुआ था।

(13) **1966 ई०** *(1990, 92)*—इस तिथि को ताशकन्द समझौते के दौरान देश के प्रधानमन्त्री श्री लाल बहादुर शास्त्री का निधन हो गया था। इसी वर्ष श्रीमती इन्दिरा गांधी भारत की तीसरी प्रधानमन्त्री बनी थीं।

(14) **1967 ई०**—इस तिथि को डॉ० जाकिर हुसैन भारत के तीसरे राष्ट्रपति बने थे।

(15) **1971 ई०** *(1990, 91)*—इस तिथि को भारत और पाकिस्तान के मध्य युद्ध हुआ था तथा बंगला देश का जन्म हुआ था।

(16) **1972 ई०** *(1994, 95)*—इस तिथि को भारत में अन्तरिक्ष आयोग की स्थापना की गई। इसी वर्ष राजगोपालाचारी का निधन हुआ तथा भारत और पाकिस्तान के मध्य शिमला समझौता हुआ।

(17) **1974 ई०** *(1994, 95)*—इसी वर्ष भारत ने अपना प्रथम भूमिगत परमाणु-विस्फोट किया। इस सफल परमाणु विस्फोट के फलस्वरूप भारत छठी आणविक शक्ति बन गया।

(18) 1975 ई० *(1992)*—इस तिथि को देश में आपातकालीन स्थिति लागू की गई थी और संविधान में 42वाँ महत्त्वपूर्ण संशोधन किया गया था।

(19) 1977 ई०—इस तिथि को देश में मध्यावधि चुनाव हुआ, जिसमें कांग्रेस को पराजित होना पड़ा और जनता पार्टी सत्तारूढ़ हुई।

(20) 1980 ई०—इस तिथि को जनता पार्टी की सरकार का पतन हुआ, चौधरी चरणसिंह कार्यवाहक प्रधानमन्त्री बने और अन्ततः मध्यावधि चुनावों में विजय प्राप्त करके श्रीमती इन्दिरा गांधी पुनः प्रधानमन्त्री के पद पर आसीन हुईं ।

(21) 1984 ई० *(1990)*—इस तिथि को लोकप्रिय प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी की उग्रवादी तत्त्वों द्वारा हत्या कर दी गई और श्री राजीव गांधी देश के प्रधानमन्त्री बने।

(22) 1985 ई० *(1990, 96)*—इस तिथि को आठवीं लोकसभा के लिए सार्वजनिक चुनाव हुए, जिसमें श्री राजीव गांधी के नेतृत्व में इन्दिरा कांग्रेस ने संसद में तीन-चौथाई से अधिक बहुमत प्राप्त किया।

(23) 1986 ई०—इस तिथि को श्री जगजीवन राम का स्वर्गवास हुआ और मिजोरम को 23वें स्वतन्त्र राज्य का दर्जा प्रदान किया गया।

(24) 1987 ई०—इस तिथि को भूतपूर्व प्रधानमन्त्री चौधरी चरणसिंह का स्वर्गवास हुआ तथा अरुणाचल प्रदेश और गोवा को भारत संघ के 24वें और 25वें राज्य का दर्जा प्रदान किया गया।

(25) 1991 ई०—इस तिथि को भारत के भूतपूर्व प्रधानमन्त्री श्री राजीव गांधी की तमिलनाडु में आतंकवादियों द्वारा हत्या की गई और पी० वी० नरसिम्हाराव भारत के प्रधानमंत्री बने।

(26) 1992 ई०—इस वर्ष अयोध्या में राम जन्म-स्थल पर निर्मित बाबरी मसजिद को कारसेवकों द्वारा ध्वस्त कर दिया गया।

(27) 1993 ई०—रूस के राष्ट्रपति येल्तसिन तथा ब्रिटिश प्रधानमंत्री जॉन मेजर इसी वर्ष भारत आए। इसके अतिरिक्त, इसी वर्ष 23 जौलाई, 1993 ई० को एरियन से, इन्सैट-2 बी का सफल प्रक्षेपण किया गया।

(28) 1994 ई०—30 जनवरी को 'नाग' और 4 फरवरी को 'आकाश' नामक प्रक्षेपास्त्र का सफल प्रक्षेपण किया गया। इसके पश्चात् इसी वर्ष 19 फरवरी को चाँदीपुर (उड़ीसा) से 'अग्नि' नामक एक अन्य महत्त्वपूर्ण प्रक्षेपास्त्र का प्रक्षेपण भी हुआ। अन्तरिक्ष के क्षेत्र में, 15 अक्तूबर को एक और सफलता प्राप्त हुई, जब आई० आर० एस० पी०—2 का सफल प्रक्षेपण सम्भव हो सका।

(29) 1995 ई०—इस वर्ष 11 मई को, श्रीनगर के निकट बहगाम जिले में स्थित 'चंरार- ए-शरीफ' नामक ऐतिहासिक दरगाह को आतंकवादियों द्वारा आग लगा दी गई। 24 अक्तूबर, 1994 को संयुक्त राष्ट्र संघ के 50 वर्ष पूरे हुए।

(30) 1996 ई०—इस वर्ष ग्यारहवीं लोकसभा के 543 स्थानों के लिए हुए चुनावों में भाजपा को सर्वाधिक मत प्राप्त प्राप्त हुए और 15 मई को भारत के राष्ट्रपति डॉ० शंकर दयाल शर्मा ने भाजपा संसदीय दल के नेता अटल बिहारी वाजपेयी को सरकार बनाने हेतु आमंत्रित किया। राष्ट्रपति ने श्री अटल बिहारी वाजपेयी से 31 मई तक अपना बहुमत सिद्ध करने के-लिए कहा, परन्तु विश्वास मत से पूर्व ही इन्होंने प्रधानमन्त्री पद से त्यागपत्र दे दिया। 1 जून 1996 ई० को एच० डी० देवगौड़ा भारत के प्रधानमन्त्री बने।

(31) 1997 ई०—इस वर्ष 21 जनवरी को जमीन से जमीन पर मार करने वाले कम दूरी के रॉकेट 'पिनाक' का चाँदीपुर प्रक्षेपण स्थल से सफल प्रक्षेपण किया गया। 23 फरवरी को चाँदीपुर प्रक्षेपण स्थल से 250 किमी रेंज के प्रक्षेपास्त्र 'पृथ्वी' का प्रक्षेपण किया गया। 26 मार्च को काँग्रेस ने केन्द्र को अल्पमत संयुक्त मोर्चा सरकार से समर्थन वापस लिया। 11 अप्रैल को केन्द्र की संयुक्त मोर्चा सरकार विश्वास मत प्राप्त करने में विफल रही और उसका पतन हो गया। 20 अप्रैल को श्री इन्द्रकुमार गुजराल भारत के 13वें प्रधानमंत्री के रूप में सत्तासीन हुए। 22 अप्रैल को संयुक्त मोर्चा की नई सरकार को विश्वास मत प्राप्त हो गया। 4 जून को स्वदेशी उपग्रह इनसैट-2-डी का सफल प्रक्षेपण हुआ। 4 दिसम्बर को लोकसभा भंग कर दी गई।

(32) 1998 ई०—इस वर्ष 16, 22 व 27 फरवरी व 7 मार्च को 12वीं लोकसभा के गठन हेतु 542 सीटों के लिए मतदान सम्पन्न हुआ और भाजपा देश के सबसे बड़े विजयी दल के रूप में उभर कर समाने आई। 19 मार्च, 1998 ई० को केन्द्र में अटल बिहारी वाजपेयी के नेतृत्व में मन्त्रिमण्डल ने शपथ-ग्रहण की। 28 मार्च को भाजपा की नई सरकार को विश्वास मत प्राप्त हो गया।

(33) 1999 ई०—इस वर्ष 20 फरवरी को प्रधानमन्त्री अटल बिहारी वाजपेयी की लाहौर बस यात्रा 21 मई को भारत व पाक द्वारा लाहौर घोषणा-पत्र पर संयुक्त रूप से हस्ताक्षर किए गए। 26 मई से कारगिल क्षेत्र में आपरेशन विजय अभियान शुरू हुआ। 11 अक्टूबर को अटल बिहारी वाजपेयी तीसरी बार प्रधानमन्त्री बने। 24 दिसम्बर को भारतीय विमान का अपहरण हुआ तथा 31 दिसम्बर को तीन आतंकवादियों की रिहाई के बदले भारतीय विमान के बन्धक यात्री मुक्त किए गए।

(34) 2000 ई०—इस वर्ष जनवरी में तीसरे तिब्बती महागुरु 'करमापा लामा' का रहस्यमय तरीके से भारत में आगमन। फरवरी में बिहार, उड़ीसा, मणिपुर तथा हरियाणा विधानसभाओं के चुनाव, उड़ीसा में भारतीय जनता पार्टी व बीजू जनता दल (106 सीटें), हरियाणा में इण्डियन नेशनल लोकदल (47 सीटें), मणिपुर में यूनाइटेड फ्रन्ट (27 सीटें) ने बहुमत प्राप्त किया है। बिहार में त्रिशंकु विधानसभा में राष्ट्रीय जनता दल गठबन्धन (123 सीटें), राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबन्धन (भारतीय जनता पार्टी, समता पार्टी व अन्य 122 सीटें), कांग्रेस (23 सीटें), निर्दलीय (53 सीटें)। राष्ट्रवादी कांग्रेस पार्टी को राष्ट्रीय दल की मान्यता (अध्यक्ष शरद पवार), फरवरी में ओमप्रकाश चौटाला हरियाणा के मुख्यमन्त्री बने। 3 मार्च को नीतीश कुमार ने बिहार के मुख्यमन्त्री पद की शपथ ली और 11 मार्च को विश्वास मत प्राप्त करने से पूर्व ही उन्होंने अपने पद से इस्तीफा दे दिया।

प्रश्न 2—निम्नांकित ऐतिहासिक स्थलों के ऐतिहासिक महत्त्व पर प्रकाश डालिए—

उत्तर—(1) सारनाथ और बनारस *(1990, 97)*—आधुनिक उत्तर प्रदेश राज्य में स्थित बनारस नगर का विवरण इतिहास में अति प्राचीन काल से मिलता है। प्राचीन हिन्दू साहित्य और बौद्ध साहित्य में इसका उल्लेख **'काशी'** और **'बनारस नगरी'** के नाम से प्राप्त होता है। महाकाव्य काल में यह नगरी हिन्दुओं के लिए मोक्षदायिनी के रूप में विख्यात रही है। गौतम बुद्ध ने अपने ज्ञान का प्रथम उपदेश यहीं पर दिया था, जिसकी स्मृति में मौर्य सम्राट अशोक ने अपना सारनाथ स्तम्भ लगवाया था। यह स्तम्भ सम्पूर्ण विश्व में स्थापत्य कला का अद्वितीय नमूना माना जाता है। सारनाथ के स्तम्भ के ऊपरी मुख्य भाग पर चार सिंह, चारों दिशाओं में मुँह करके बैठाए गए हैं। इन सिंहों को देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो सचमुच के शेर ही लाकर बैठा दिए गए हों। सारनाथ में एक बौद्ध स्तूप भी बना हुआ है। हिन्दू और जैन-मन्दिरों से भी यह नगरी सदैव अलंकृत रही है। मौहम्मद गोरी ने इस नगर के मन्दिरों को भी लूटा था। बौद्ध साहित्य से पता चलता है कि यह नगरी उस काल में भी अपने रेशमी वस्त्रों (काशी का सिल्क) के लिए विश्वविख्यात थी, साथ ही बौद्ध पालि-त्रिपिटक साहित्य से पता चलता है कि यह नगरी विश्व की महान् शिक्षण संस्थाओं का विख्यात केन्द्र थी। आज भी यहाँ का बनारस विश्वविद्यालय लगभग 15 किमी क्षेत्र में फैला हुआ और भारत के शिक्षा केन्द्रों में सर्वश्रेष्ठ शिक्षा केन्द्र के रूप में अपने अतीत की कहानी की पुनरावृत्ति कर रहा है। बनारस के साथ प्रवाहित होने वाली गंगा नदी के कारण यह नगर प्राचीन काल से ही हिन्दुओं का महान् तीर्थस्थल रहा है। इस प्रकार बनारस सदैव से ही बौद्ध, हिन्दू और जैन धर्मों के समन्वय की महान् ऐतिहासिक नगरी है। यहाँ के विश्वनाथ मन्दिर, तुलसी मानस मन्दिर तथा बनारस विश्वविद्यालय के भवन अपनी निर्माण कला तथा ऐतिहासिकता के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। इसे शिव का नगर भी कहा जाता है। वर्तमान में इसका नाम वाराणसी है।

(2) मथुरा और वृन्दावन *(1990, 92, 97)*—मथुरा प्राचीन काल से एक पवित्र और धार्मिक नगरी के रूप में इतिहास में विख्यात रही है। यह उत्तर प्रदेश राज्य में स्थित एक प्रमुख औद्योगिक नगरी बन गई है। आज मथुरा का सम्मान भारत में इसलिए बढ़ गया है क्योंकि भारत सरकार ने यहाँ एक अत्यधिक विशाल तेल-शोधनशाला स्थापित की है। कुषाण वंश के समय में, कृष्ण की इस महान् कर्मभूमि में एक नवीन मूर्तिकला शैली का विकास हुआ था। यह प्रभावशाली और सुन्दर मूर्तिकला मथुरा शैली के नाम से विख्यात है। मथुरा हिन्दू मन्दिरों की महान् नगरी रही है। गजनी के आक्रमणकारी महमूद गजनवी ने

यहाँ के मन्दिरों को जी भरकर लूटा था। मथुरा में अभी भी अनेक भव्य हिन्दू देवताओं के मन्दिरों का बाहुल्य है। मथुरा के समीप वृन्दावन को मन्दिरों का ही शहर कहा जाए तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। वृन्दावन में अनेक विशाल और छोटे-छोटे कृष्ण मन्दिर उल्लेखनीय हैं। मथुरा का जैन चौरासिया का मन्दिर एक दर्शनीय स्थान है। इस नगरी में बौद्ध धर्म का विकास भी प्रचुर मात्रा में हुआ था। यहाँ से बुद्ध और बोधिसत्व की अनेक प्रतिमाएँ मिली हैं। इस तरह मथुरा नगरी भारतीय संस्कृति की प्रतीक और महान् ऐतिहासिक नगरी के रूप में एक दर्शनीय स्थल है।

(3) अयोध्या *(1990)*—अयोध्या नगरी का विवरण प्राचीन भारत के इतिहास में अनादि काल से प्राप्त होता है। अयोध्या एक पवित्र नगरी रही है। यह उत्तर प्रदेश राज्य में सरयू नदी के किनारे स्थित है। अयोध्या का ऐतिहासिक महत्त्व इस तथ्य में निहित है कि यह 'राम' की कर्मभूमि रही है। यह ब्राह्मण धर्म और ब्राह्मण परम्पराओं की प्रधान नगरी के रूप में विख्यात रही है। यहीं पर शुंग वंश के राजा पुष्यमित्र शुंग का अभिलेख प्राप्त हुआ है। पुष्यमित्र शुंग के अभिलेखों से पता चलता है कि पुष्यमित्र ने दो अश्वमेध यज्ञों का आयोजन किया था। अयोध्या में भगवान राम के जीवन से सम्बन्धित अनेक भव्य मन्दिरों का निर्माण हो चुका है। यहाँ पर इन भव्य मन्दिरों—श्रीराम मन्दिर, हनुमानगढ़ी, तुलसी मानस आदि के माध्यम से राम के सम्पूर्ण जीवन की झाँकी को प्रस्तुत किया गया है। अयोध्या नगरी की एक महान् विशेषता यह है कि यहाँ पर भारत की समन्वित संस्कृति के दर्शन होते हैं । अयोध्या अब एक पवित्र जैन तीर्थस्थल भी बन गया है। जैनियों के अनुसार, फ़ैजुद्दीन नवाब के समय हुई खुदाई में कुछ फीट की गहराई पर ही यहाँ घी से भरा और जलता हुआ दीपक एवं स्वास्तिक चिह्न मिला है। इस तरह जैनियों ने भी अब इसे एक तीर्थक्षेत्र के रूप में विकसित कर दिया है। साथ ही अब आधुनिक काल में अयोध्या बौद्धों, ईसाइयों, सिक्खों और पंजाबी-सिन्धियों का भी पवित्र क्षेत्र बनता जा रहा है। अयोध्या को समय-समय पर विभिन्न नामों—साकेत, हिरण्या, सत्या, विशाखा, रामपुरी और अपराजिता के नाम से पुकारा जाता रहा है। ऐतिहासिक दृष्टि से इस नगर का महत्त्व बहुत अधिक है। इस नगरी का बौद्ध धर्म से भी विशेष सम्बन्ध रहा था। विमल चरण लाहा लिखते हैं कि बौद्ध आचार्य असंग यहीं पर एक बौद्ध विहार में रहते थे। यहीं पर अनेक पुरातन बौद्ध स्तूपों और भवनों के अवशेष आज भी दर्शनीय हैं।

(4) महरौली *(1992)*—दक्षिण दिल्ली में स्थित महरौली क्षेत्र, सल्तनत काल की स्थापत्य कला की दृष्टि से महान् ऐतिहासिक केन्द्र है। यहीं पर दास वंश के संस्थापक कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा बनवाई गई विश्वविख्यात कुतुबमीनार स्थित है। यह पाँच मन्जिलों वाली और 379 सीढ़ियों की विशाल एवं भव्य इमारत दास वंश की स्थापत्य कला का प्रतीक है। यह लाल तथा सफेद पत्थरों से निर्मित है। इसके विषय में यह उक्ति विख्यात है कि यह मुल्ला की अजान देने के उद्देश्य से निर्मित की गई थी, तदुपरान्त यह एक विजय स्तम्भ के रूप में बनकर रह गई थी। अभी भी महरौली में कुतुबमीनार के साथ लगी हुई कुवात-उल-मसजिद भी एक विशेष दर्शनीय स्थल है। यह मसजिद भी कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा ही निर्मित करवाई गई थी। इस मसजिद के अन्दर प्रयुक्त किए गए पाषाण-खण्डों को देखने पर पता चलता है कि इन पर अभी भी हिन्दू व जैन धर्म के प्रतीक चिह्नों के चित्र बने हुए हैं, जिन्हें मिटाने का प्रयास किया गया था। ये चिह्न कमल-पुष्प, त्रिशूल, हाथी, फरसी आदि के रूप में विद्यमान हैं। इस मसजिद के पाषाण-खण्डों पर उपलब्ध अवशेष चित्र इस ऐतिहासिक तथ्य की कहानी दोहरा रहे हैं कि कुतुबुद्दीन ऐबक ने 27 जैन और हिन्दुओं के मन्दिरों को तोड़कर इस मसजिद का निर्माण करवाया था।

इस मसजिद के प्रांगण में एक लोहे का स्तम्भ (गोल लट्ठा) लगा हुआ है, जो दर्शकों को विशेष रूप से आकर्षित करता है। इसके विषय में यह उक्ति प्रचलित है कि इस स्तम्भ के साथ खड़े होकर जिसके दोनों हाथ पीछे से आपस में मिल जाएँ, वह बहुत भाग्यशाली होता है; अतः दर्शकों को इस स्तम्भ के साथ खड़ा होकर हाथ मिलाने के प्रयास में संलग्न देखा जा सकता है। यह स्तम्भ भी भारत के अलौकिक वैज्ञानिक ज्ञान का प्रतीक है क्योंकि यह सैकड़ों वर्ष से लगा होने पर भी अभी तक जंग आदि से नष्ट नहीं हुआ है। इस पर लिखी गई पंक्तियों के आधार पर इतिहासकारों ने स्पष्ट किया है कि यह गुप्तकालीन

है और किसी राजा चन्द्र की उपलब्धियों का विवरण प्रस्तुत करता है। इस प्रकार महरौली के उत्कृष्ट नमूने स्वयं में अनेक शताब्दियों का सांस्कृतिक इतिहास समाहित किए हुए सम्पूर्ण विश्व में अतीतकालीन भारतीय वास्तुकला की उत्कृष्टता के गीत गा रहे हैं।

(5) दिल्ली *(1990, 94, 96)*— दिल्ली भी एक ऐतिहासिक नगरी है। यहाँ मुगल काल की लाल पत्थरों की वनी इमारतें ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। लाल किला और जामा मसजिद; मुगल स्थापत्य कला के अद्वितीय उदाहरण हैं। लाल किले में मुगल बादशाह बड़ी शान-शौकत से रहते थे। यहाँ के दीवान-ए-आम और दीवान-ए-खास बड़े ही सुन्दर हैं। यहाँ के एक कक्ष में बड़ा ही सुन्दर अजायबघर भी बनाया गया है। इसके अतिरिक्त, यहाँ के अनेक स्मारक; जैसे—निजामुद्दीन औलिया की दरगाह, जन्तर-मन्तर, विड़ला मन्दिर, विकास मीनार तथा पाँच सितारा होटल एवं स्टेडियम भी दर्शनीय हैं। राष्ट्रपति भवन भी दिल्ली का प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्मारक है।

दिल्ली का चाँदनी चौक भारतीय धर्मों की समन्वयशीलता का गौरवपूर्ण प्रतीक है। यहाँ पर जैन धर्म का विशाल लाल मन्दिर बना हुआ है। आगे चलकर गौरीशंकर का मन्दिर बना हुआ है। यहाँ ईसाई धर्म का महान् वैपटिस्ट चर्च भी है। महान् सिक्खों का शीशगंज गुरुद्वारा भी यहाँ पर स्थित है। चाँदनी चौक से बाहर समीप ही जामा मसजिद है। इसके अतिरिक्त, दिल्ली में ही चाँदनी चौक से लगभग दो किमी दूर मुख्य राजपथ पर भगवान बुद्ध का बौद्ध विहार भी बना हुआ है।

दिल्ली के अन्य दर्शनीय स्थलों में राम-सीता का बिड़ला मन्दिर है। बच्चों का विशेष आकर्षण डॉल म्यूजियम तथा अप्पू घर है। प्रगति मैदान में विशेष प्रदर्शनियाँ लगती रहती हैं। पास ही पुराना टूटा-फूटा किला अपनी ऐतिहासिक वैभवता के गीत गा रहा है। यहाँ से कुछ दूरी पर स्थित चिड़ियाघर दर्शकों के विशेष आकर्षण का केन्द्र है। दिल्ली के बुद्ध जयन्ती उद्यान और महावीर वाटिका उद्यान, दर्शकों के समक्ष इतिहास के पन्नों की कहानियों को नवीन परिवेश में प्रस्तुत कर रहे हैं।

इस तरह दिल्ली ऐतिहासिक परम्पराओं का निर्वाह करने वाली महान् ऐतिहासिक नगरी है।

(6) आगरा *(1990, 92, 93, 94, 95, 96, 97)*—आधुनिक उत्तर प्रदेश राज्य में स्थित आगरा नगर भारत का विश्वविख्यात तथा सबसे सुन्दर एवं ऐतिहासिक पर्यटन स्थल है। आगरा का स्थान इसलिए भी महत्त्वपूर्ण रहा था क्योंकि मुगल बादशाहों ने इसे अपनी राजधानी बनाया था। मुगलों ने यहाँ पर स्थापत्य-कला के अनेक सुन्दर प्रतिरूपों का निर्माण किया था। आगरा की सबसे प्रसिद्ध इमारत ताजमहल है, जिसे शाहजहाँ द्वारा अपनी रानी मुमताज महल की स्मृति में बनवाया गया था। इस इमारत में चार विशाल गगनचुम्बी मीनारें और मुख्य गुम्बद, जो मकराना के सफेद संगमरमर पत्थर से निर्मित हैं, काव्यमय रोमांटिक सौन्दर्य का सृजन करते हैं। भवन में प्रयुक्त संगमरमर की जाली अपने सौन्दर्य एवं कलाकार की विशिष्ट कलात्मक प्रतिभा का प्रतीक है। ताजमहल के समीप ही मुगल बादशाहों ने एक विशाल दुर्ग का निर्माण करवाया था। इस दुर्ग में एक अति सुन्दर मोती मसजिद भी स्थित है। मोती मसजिद में अलंकरण और नक्काशी अपनी चरम सीमा पर की गई है। मोती मसजिद को देखने पर ऐसा प्रतीत होता है कि मानो खुदा ने अपने खजाने से एक सुन्दर, बेशकीमती मोती; दुनिया को बख्शा है।

अकबर द्वारा निर्मित आगरा का लाल किला भी एक सुन्दर ऐतिहासिक इमारत है। शाहजहाँ ने इस लाल किले में अनेक भवनों का पुनर्निर्माण करवाया था। आगरा के किले में बहुत-सी सुन्दर इमारतें, जिनमें दीवान-ए-आम, दीवान-ए-खास, मुसम्मन बुर्ज और शीश महल आदि विशेष रूप से दर्शनीय हैं। आगरा के बाजारों में इन भवनों के प्रतिरूपों पर आधारित खिलौनों की भरमार है। सम्पूर्ण आगरा विदेशी पर्यटकों से भरा रहता है। इस प्रकार आगरा मुगलकालीन स्थापत्य कला का एक महान् केन्द्र है। इन ऐतिहासिक स्मारकों के माध्यम से आगरा अपने अतीत के वैभव और गौरव की कहानी दोहरा रहा है। यमुना नदी के किनारे पर स्थित ताजमहल एक प्रेमी बादशाह के अमर प्रेम के गीत गा रहा है। यहाँ स्थित सिकन्दरा तथा दयालबाग की समाधि भी दर्शनीय हैं।

(7) अजमेर *(1992, 93, 95)*—आधुनिक राजस्थान राज्य में स्थित अजमेर भी अति प्राचीन ऐतिहासिक गतिविधियों का नगर रहा है। मुहम्मद गोरी द्वारा तराइन के मैदान में पराजित राजा पृथ्वीराज

चौहान दिल्ली और अजमेर का ही राजा था। दिल्ली और अजमेर का गवर्नर कुतुबुद्दीन ऐबक को वनाया गया था। अजमेर में कुतुबुद्दीन ऐबक द्वारा निर्मित एक मसजिद आज भी विद्यमान है। इस मसजिद को **'अढ़ाई दिन का झोंपड़ा'** कहा जाता है। कुतुबुद्दीन ऐबक ने अजमेर में एक हिन्दू मन्दिर और संस्कृत पाठशाला को तोड़कर अढ़ाई दिन में ही इस मसजिद का निर्माण करवा दिया था। यह मसजिद साधारण ही है, किन्तु विख्यात इसलिए है क्योंकि यह मुसलमानों के विध्वंस की प्रतीक है। जैसा कि चोपड़ा, दास तथा पुरी भी लिखते हैं कि, **"अजमेर की मसजिद (1206 ई०) , जिसके स्तम्भ, प्रस्तर, पाद, छतें और गुम्बद मूलतः हिन्दू मन्दिरों को तोड़कर बनवाए गए थे, आडम्बरहीन हैं।"** बाद में इल्तुतमिश ने इस मसजिद में सात भव्य मेहराबें बनवा दी थीं, जिससे अभी भी यह मसजिद बहुत सुन्दर और भव्य दिखाई देती है। अजमेर एक पवित्र तीर्थस्थल भी है। यहाँ पर मुइनुद्दीन चिश्ती की दरगाह है। इस दरगाह में आज भी बहुत-से चमत्कारिक आश्चर्य भरे हुए हैं। विश्व का प्रत्येक मुसलमान इस दरगाह के दर्शन करना अपना परम कर्त्तव्य समझता है। यहाँ पर प्रति वर्ष उर्स का मेला लगता है। यहाँ की दो चावल पकाने वाली देग (पात्र) उल्लेखनीय हैं, जिनमें कई बोरी चावल थोड़ी-सी आग जला देने पर, अपने आप ही उवल कर तैयार हो जाता है। उवलते चावल में घुसकर लोग प्रसाद बाँट देते हैं, परन्तु जलते नहीं हैं। इस प्रकार चिश्ती की यह दरगाह अभी भी भारतीय सूफ़ियों की विशेष अलौकिक शक्तियों की सच्ची प्रतीक बनी हुई है। अजमेर; हिन्दू और जैनियों का भी एक पवित्र तीर्थस्थल है। पुष्कर जी में हिन्दू स्नान करते हैं। जैनियों के सिद्दसमोशरण के दृश्यों को प्रदर्शित करने वाला यहाँ एक अति सुन्दर भव्य मन्दिर भी है। इस प्रकार, अजमेर भारत की सांस्कृतिक एवं धार्मिक भावनाओं को अभिव्यक्त करने वाला एक प्रसिद्ध, धार्मिक एवं ऐतिहासिक नगर है।

(8) सोनागिरि—सोनागिरि आधुनिक मध्य प्रदेश के ग्वालियर जिले में, ग्वालियर नगर से लगभग 40 किमी दूर मुख्य रेलवे लाइन पर स्थित एक पहाड़ी पर वना हुआ तीर्थस्थल है। मुख्य पहाड़ी पर विभिन्न तीर्थंकरों के 77 प्राचीन जैन मन्दिर स्थित हैं। इस पहाड़ी के अलावा ग्रामीण क्षेत्र में भी 77 विशाल मन्दिर स्थित हैं। पहाड़ी पर अति सुन्दर छोटे-छोटे मन्दिर स्थित हैं। इन मन्दिरों के किसी भी लेख से यह नहीं पता चलता है कि इनका निर्माण किसके द्वारा और किस समय किया गया है, परन्तु फिर भी इन मन्दिरों का निर्माण अब से लगभग तीन-चार हज़ार वर्ष पूर्व हुआ, ऐसा पुरातत्त्वशास्त्रियों का मत है। ये सभी मन्दिर शिखरों से युक्त लाल बलुए पत्थर से निर्मित हैं। प्रत्येक मन्दिर में मुख्य रूप से एक जैन तीर्थंकर की प्रतिमा, दीवार में लगे हुए पत्थर में ही उत्कीर्ण की गई है। तीर्थंकरों की प्रतिमाएँ सामान्य रूप से अति विशाल और खड़े हुए रूप में उत्कीर्ण की गई हैं। मुख्य मन्दिर चन्द्रप्रभु तीर्थंकर का है। इन मन्दिरों के बने हुए द्वार की यह मुख्य विशेषता है कि वह अत्यन्त छोटा बनाया गया है। सम्भवतः निर्माणकर्त्ता का यह आध्यात्मिक उद्देश्य रहा होगा कि भक्त झुककर ही मन्दिर में प्रवेश करें। यहाँ एक अति सुन्दर मन्दिर है, जिसमें चक्की की भाँति घूमकर तथा सीढ़ियों से ऊपर पहुँचकर मुख्य प्रतिमा के दर्शन करने पड़ते हैं। इसके बारे में विख्यात है कि यह मन्दिर एक पिसनहारी नारी ने मजदूरी करके तथा मजदूरी से प्राप्त धन को जोड़कर बनवाया था। अतः इसी कारण यह मन्दिर पिसनहारी मन्दिर के नाम से विख्यात है। इन मन्दिरों की उपस्थिति इस गौरवपूर्ण तथ्य का प्रतीक है कि भारतीय कलाकारों ने कितनी दक्षता से कला के इन महान् नमूनों को साधारण पत्थर में ढाला होगा। ये छोटे-छोटे मन्दिर; धर्म और आध्यात्मिकता के टिमटिमाते हुए दीपकों के समान, भारत के गौरवपूर्ण अतीत की सच्ची अभिव्यक्ति कर रहे हैं अर्थात् मुस्लिम आक्रमणकारी चाहे कितने भी क्रूर होकर मूर्तिभंजक होने का दावा करते रहें, परन्तु भारत के महान् मन्दिरों के गौरव को, वे विशेष क्षति पहुँचाने में सफल न हो सके।

(9) नालन्दा *(1996)*—यह बिहार प्रान्त में स्थित है। प्राचीनकाल में यह बौद्ध शिक्षा और अन्य शिक्षाओं का विश्वविख्यात केन्द्र था। यहाँ पर 10,000 विद्यार्थी तथा 1,200 अध्यापक थे। यह $2\frac{1}{2}$ मील लम्बे तथा $1\frac{1}{4}$ मील चौड़े क्षेत्र में फैला हुआ था। इसके चारों ओर एक विशाल दीवार थी। इसमें एक बड़ा

द्वार था जिसमें कुलपति का कार्यालय था। यहाँ प्रवेश के इच्छुक विद्यार्थी को पहले परीक्षा देनी होती थी। यहाँ बौद्ध साहित्य, दर्शन, ज्योतिष, व्याकरण व गणित का अध्ययन कराया जाता था तथा शारीरिक शिक्षा भी दी जाती थी।

विभिन्न देशों के विद्यार्थी यहाँ शिक्षा प्राप्त करने आते थे। यहाँ के विद्यार्थी का समाज में अत्यधिक सम्मान होता था और लोग उसकी देवता की भाँति भक्ति करते थे। शिक्षा; निःशुल्क तथा धर्म पर आधारित थी। एक जल-घड़ी से समय का संचालन होता था। सुबह 3 बजे शंख बजते ही विद्यार्थी चारपाई से उठ जाते थे। वे सारे दिन कठिन परिश्रम के पश्चात् रात्रि 10 बजे सोते थे। उनकी चारपाई पत्थर की होती थी। ह्वेनसांग; जो चीनी यात्री था, यहीं पढ़ा था और परीक्षा में प्रथम आने के कारण द्वार पर उसका नाम अंकित हो गया था। वह यहाँ पर अध्यापक भी बन गया था। दोपहर 2 बजे और सायं 4 बजे, सार्वजनिक सभा होती थी, जिसमें शास्त्रार्थ पद्धति के माध्यम से विद्यार्थी अपनी शंका का समाधान करते थे।

नालन्दा विश्वविद्यालय के छात्र; भिक्षा से अपना और अपने गुरु का भरण-पोषण करते थे। हूण आक्रमणकारियों ने इसे बौद्ध संस्कृति का एक गढ़ समझा। अतः उन्होंने इसमें आग लगा दी और निहत्थे बौद्ध ब्रह्मचारियों का वध कर दिया। नालन्दा में खुदाई करने पर जो खण्डहर प्राप्त हुए हैं, उनसे इस स्थान की स्थापत्य कला तथा ऐतिहासिक महत्त्व पर प्रकाश पड़ता है। अनेक छोटे-बड़े कक्ष; कक्षाओं के रूप में प्रयोग किए जाते थे। कमरों में छात्रों के निवास तथा सोने की भी व्यवस्था थी। इस प्रकार नालन्दा; भारत की सांस्कृतिक धरोहर के रूप में विद्यमान है।

(10) कांचीपुर (कांचीपुरम अथवा आधुनिक कांजीवरम)—आधुनिक कांजीवरम एक अत्यधिक प्राचीन ऐतिहासिक नगरी रही है। प्राचीन साहित्य में इसका उल्लेख एक प्रसिद्ध तीर्थस्थल और राजनीतिक प्रतिस्पर्द्धाओं की नगरी के रूप में हुआ। पुराणों में भी इसका उल्लेख एक पवित्र धार्मिक नगरी के रूप में हुआ है। यह अनेक राजवंशों की राजधानी रहा है। ऐहोल अभिलेख से पता चलता है कि पुलकेशियन द्वितीय ने कांचीपुर पर अधिकार कर लिया था। यह प्राचीन काल में बौद्ध धर्म की शिक्षा का भी एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र था। गुप्त सम्राट समुद्रगुप्त ने भी कांची के विष्णुगोप राजा को पराजित कर इस पर अपना एकछत्र राज्य स्थापित कर लिया था तथा इसे पुनः स्वतन्त्र कर दिया था। राष्ट्रकूट नरेश गोविन्द तृतीय ने भी इस पर अपना अधिकार कर लिया था। अर्काट जिले में उक्कल विष्णु मन्दिर से एक अभिलेख प्राप्त हुआ है। इस अभिलेख में एक राजा कन्नर देव वल्लभ को कांची का विजेता बताया गया है।

आधुनिक समय में भी यह सभी प्रसिद्ध धर्मों के मन्दिरों की नगरी है। कांजीवरम नगरी; मद्रास के दक्षिण-पश्चिम में 43 मील दूर पलार नदी के तट पर स्थित है। यहाँ पर आजकल साड़ी उद्योग बहुत प्रसिद्ध है। इसके पश्चिमी भाग में शिव कांची और पूर्व भाग में विष्णु कांची हैं। यहाँ पर एक जैन कांची भी है, जिसे तिरुप्परुत्ति कुनरम कहा जाता है। यहाँ पर सभी धर्मों के मन्दिर हैं। इनमें एक प्रसिद्ध सुन्दर मन्दिर कामासी मन्दिर है।

(11) कान्यकुब्ज (कन्नौज, गाधिपुर, कुशस्थल)—यह एक अति प्राचीन, धार्मिक और ऐतिहासिक नगरी रही है। यह महान् पवित्र गंगा के किनारे बसी हुई है। महाभारत के अनुसार, यहाँ पर विश्वामित्र आए थे। बौद्ध पालि त्रिपिटक ग्रन्थ 'विनयपिटक' में इसे कष्ठाकुंज या कान्यकुब्ज कहकर पुकारा गया है। वर्धन वंश के समय में यह एक बहुत प्रसिद्ध नगरी थी। राजा हर्षवर्धन की बहन राज्यश्री का विवाह कन्नौज के राजा गृहवर्मन के साथ ही हुआ था। राज्यश्री का पति राजा गृहवर्मन; मालवराज के द्वारा मारा गया था। कालान्तर में राजा हर्षवर्धन ने इस नगरी पर अधिकार कर लिया था। हर्षवर्धन ने इसके उपरान्त कन्नौज को ही अपनी राजधानी बनाया। कन्नौज नगर में ही राजा हर्षवर्धन ने धर्मों के वाद-विवाद हेतु एक महासभा का आयोजन किया था। इसका वर्णन चीनी यात्री ह्वेनसांग ने भी एक प्रसिद्ध व्यापारिक और धार्मिक नगरी के रूप में किया था। ह्वेनसांग ने यहाँ पर 150 बौद्ध अधिष्ठान देखे थे।

राजपूतों के शासनकाल में भी यह एक प्रसिद्ध साम्राज्य की राजधानी रही थी। बंगाल के राजा धर्मपाल ने भी इस पर अपना अधिकार कर लिया था। गोविन्द चन्द्र ने पुनः कन्नौज पर अधिकार स्थापित कर, अपने वंश की प्रतिष्ठा स्थापित की। गहड़वाल वंश की सत्ता भी यहीं पर स्थापित हो गई थी। राजा

जयचन्द यहीं के एक शक्तिशाली राजा थे। इनका संघर्ष चौहान वंश के पृथ्वीराज चौहान से हुआ था क्योंकि पृथ्वीराज चौहान ने कन्नौज की राजकुमारी संयोगिता का अपहरण कर लिया था। बाद में कन्नौज मुस्लिम सत्ता में विलीन हो गया। कन्नौज में बहुत-से पुराने और नवीन; बौद्ध, शैव, वैष्णव और जैन मन्दिर, अब भी कन्नौज के पुरातन धार्मिक नगरी होने का स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत कर रहे हैं। यहाँ के अनेक प्राचीन दुर्ग भी दर्शनीय हैं। कन्नौज हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थस्थल भी है, क्योंकि पवित्र मोक्ष-प्रदायिनी गंगा नदी यहीं पर प्रवाहित होती है।

(12) उदयपुर—उदयपुर का नाम सामने आते ही हृदय में वीर रस का संचार होने लगता है। वर्तमान में उदयपुर राजस्थान प्रान्त की एक महान् नगरी है। दिल्ली से एक ही विशेष रेलगाड़ी **चेतक एक्सप्रेस** प्रतिदिन उदयपुर जाती है, जो सारे राजस्थान के लगभग सभी मुख्य नगरों से गुजरती है। मेवाड़ राज्य के राणा शासकों द्वारा, उदयपुर की स्थापना दुर्गम पहाड़ियों के मध्य की गई थी।

मेवाड़ वंश के शासकों की राजधानी चित्तौड़ ही रही थी। मुगल सम्राट अकबर ने मेवाड़ राज्य पर आक्रमण किया था। चित्तौड़ का राजा राणा उदयसिंह चित्तौड़ को राजपूत सरदारों के अधीन सौंपकर पहाड़ियों में चला गया था। वहीं इन्होंने यह उदयपुर नगर बसाया था। वहाँ एक उच्च पहाड़ी पर राजा उदयसिंह ने एक भव्य दुर्ग भी बनवाया था। यह दुर्ग एक सुन्दर दर्शनीय स्थान के रूप में दर्शकों का मन मोह लेता है। एक प्रसिद्ध उद्यान भी यहाँ पर विद्यमान है, जो पर्यटकों के लिए आकर्षण का केन्द्र है।

उदयपुर नगरी की एक उल्लेखनीय विशेषता यह है कि अब आधुनिक काल में इसे अत्यन्त व्यवस्थित रूप से बसाया गया है। रेलवे स्टेशन और सरकारी बस अड्डा समीप ही स्थित हैं। यहाँ पर्यटकों को सस्ते, परन्तु उच्च कोटि के होटल उपलब्ध हैं। ताँगों के द्वारा सम्पूर्ण शहर की सुन्दरता का आनन्द लिया जा सकता है। यहाँ का मेडिकल कॉलेज भी बहुत विशाल और सुन्दर बना हुआ है। यहाँ पर नवीन और पुरातन दोनों प्रकार के जैन, शैव और विष्णु मन्दिर स्थित हैं। इस तरह यह एक पवित्र, धार्मिक और ऐतिहासिक नगरी है। डॉ० जैन ने उदयपुर नगरी के भ्रमण के पश्चात् अपने लेख में लिखा है, **"उदयपुर राजस्थान का सबसे सुन्दर और शान्त नगर प्रतीत होता है। इसके दर्शन से महान् देशभक्त राणा प्रताप की वीरता की स्मृति में हृदय श्रद्धा से भर जाता है। यहाँ पर अन्य पर्यटक स्थलों की अपेक्षा वाहनचालकों में ईमानदारी दृष्टिगोचर होती है।"**

(13) उज्जयिनी (उज्जैन-अवन्तिका)—उज्जयिनी भारत की अति प्राचीन, धार्मिक और ऐतिहासिक नगरी है। प्राचीनकाल में यह मालवा प्रान्त के अन्तर्गत थी। आधुनिक समय में यह मध्य प्रदेश में स्थित है। उज्जयिनी नगरी बहुत ही पवित्र धार्मिक नगरी है। इसकी गणना हिन्दुओं के सात पवित्र स्थलों में की जाती है। इसे एक मोक्ष प्रदायिनी नगरी के रूप में स्वीकार किया जाता है। आधुनिक युग में यहाँ के मन्दिरों और पवित्र धार्मिक वातावरण को देखकर, यह नगरी मध्य भारत की हरिद्वार नगरी प्रतीत होती है।

उज्जयिनी नगरी अति प्राचीन है। ईसा से पूर्व की सातवीं शताब्दी में, मध्य भारत का एक प्रसिद्ध राज्य अवन्ति था। इस अवन्ति राज्य की राजधानी ही उज्जयिनी थी। बाद में यह उज्जयिनी मालवा नगरी के नाम से भी जानी गई। ईसवी सन् की प्रारम्भिक शताब्दियों में यही उज्जयिनी शक क्षत्रपों के अधिकार में आ गई थी। ऐसी भी मान्यता है कि चतुर्थ शताब्दी ईसवी में उज्जयिनी; गुप्त सम्राट चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के साम्राज्य के अन्तर्गत आ गई थी। संस्कृत के विद्वान् कालिदास ने भी इस नगरी का वर्णन अपने ग्रन्थों में किया है। कालिदास ने अपने ग्रन्थ मेघदूतम् में इस पवित्र नगरी का बड़ा ही चित्ताकर्षक विवरण प्रस्तुत किया है।

मध्य काल में भी यह एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगरी रही है। बहुत-से मुस्लिम आक्रमणकारियों ने इस पर आक्रमण कर, इसे अपने साम्राज्य में मिला लिया था।

यह पवित्र नगरी शिप्रा नदी के तट पर स्थित है। यहाँ अनेक भव्य मन्दिर हैं। विशेष रूप से महाकाल शिव का पवित्र शिवालिंग मन्दिर दर्शनीय है। यहाँ पर भक्त मनौतियाँ माँगते हैं। मनौतियाँ पूर्ण होने पर पुजारियों और विद्वानों के साथ धार्मिक उपासना करते हुए भक्तों को, सदैव महाकाल के मन्दिर

में देखा जा सकता है। उज्जैन का वर्णन वहाँ के अति सुन्दर और आकर्षक भव्य ताँगों के वर्णन के बिना अधूरा है। ये ताँगे दर्शकों का मन मोह लेते हैं। भारतीय संस्कृति के अनुरूप नारी के सौन्दर्य में अभिवृद्धि करने वाले सुहाग के प्रतीक— सिन्दूर और चूड़ियाँ, यहाँ पर बहुत ही सुन्दर और सस्ते दामों पर सुलभ हैं। इस तरह उज्जैन एक पवित्र धार्मिक और ऐतिहासिक नगरी है।

(14) ग्वालियर *(1995, 97, 99)*—ग्वालियर नगर का अपना विशिष्ट ऐतिहासिक महत्त्व है। यदि इसे दुर्गों का शहर कहा जाए तो अनुचित नहीं होगा। ऐसी जनश्रुति प्रचलित है कि जिस सूरज नामक राजा ने इस नगर की स्थापना की थी, वह कुष्ठ रोग से पीड़ित था। उसका कुष्ठ रोग ग्वालियरा नामक एक सन्त की कृपा से ठीक हुआ था। उसी के नाम पर सूरज नामक राजा ने यह ग्वालियर नगर बसाया था।

ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर यह ज्ञात होता है कि कन्नौज के गुर्जर प्रतिहार राजा भोज ने इस पर अपना अधिकार कर लिया था। यहाँ पर तोमर वंश का एक प्रसिद्ध राजा मानसिंह तोमर हुआ था। उसकी रानी मृगनयनी थी। रानी मृगनयनी के कारण ही ग्वालियर संगीत विद्या का केन्द्र बना था। मुगल साम्राज्य के अन्तर्गत यह एक प्रसिद्ध नगर था। प्रसिद्ध संगीतज्ञ तानसेन को ग्वालियर का ही निवासी स्वीकार किया जाता है। यहाँ पर तानसेन की कब्र भी बनी हुई है।

ग्वालियर का अपना विशाल और पुरातन दुर्ग एक विशाल युग का इतिहास अपने में संजोए हुए है। यह दुर्ग अति प्राचीन 300 फीट ऊँची पहाड़ी पर बना हुआ है। यह अभी भी अत्यधिक सुदृढ़ और सुन्दर है। इस दुर्ग के समीप ऊपरी भाग पर सास और बहू के पृथक्-पृथक् मन्दिर भी बने हुए हैं, परन्तु यह सास और बहू कौन थीं यह अभी तक स्पष्ट नहीं हो सका है। मुगल बादशाहों ने इस दुर्ग का प्रयोग कैदखाने के रूप में किया था। ग्वालियर नगर में तथा इसके आस-पास बहुत से ऐतिहासिक स्मारक भी विद्यमान हैं। नगर में आठ बड़े तालाब, कई उद्यान तथा 6 बड़े दुर्ग हैं। ग्वालियर अब एक औद्योगिक नगरी भी बन गई है। यहाँ पर जे० बी० मंघाराम की टॉफियाँ और बिस्कुटों का प्रसिद्ध उद्योग विद्यमान है। यहाँ अनेक सूती और टेरीन कपड़ों की मिलें भी हैं। इस प्रकार ग्वालियर एक प्रसिद्ध ऐतिहासिक नगरी है।

(15) पाटलिपुत्र (पटना)—पाटलिपुत्र; प्राचीन काल में मगध राजाओं की राजधानी थी। अजातशत्रु के पुत्र उदयन ने पाटलिपुत्र की नींव डाली। आजकल इसको पटना कहते हैं और यह बिहार की राजधानी है। चन्द्रगुप्त मौर्य की राजधानी भी पाटलिपुत्र ही थी। मैगस्थनीज के अनुसार, पाटलिपुत्र भारत का सबसे बड़ा नगर था। यह गंगा और सोन नदियों के संगम पर बसा हुआ था। यह 15 मील लम्बा तथा पौने तीन मील चौड़ा था। इसके चारों ओर 185 गज चौड़ी तथा 30 हाथ गहरी खाई थी। नगर चारों ओर से एक ऊँची दीवार से घिरा हुआ था, जिसमें 64 द्वार तथा 570 बुर्ज थे। नगर के मध्य में चन्द्रगुप्त मौर्य का राजप्रासाद था। अशोक के समय में यहाँ एक स्तूप बनाया गया।

(16) जौनपुर *(1995, 96, 97, 99)*—जौनपुर; आधुनिक उत्तर प्रदेश का जिला है। दिल्ली सल्तनत के समय जौनपुर एक प्रान्त था। जौनपुर नगर की स्थापना 1359 ई० में फिरोज तुगलक ने जूनाखाँ मुहम्मद तुगलक के नाम पर की थी। शर्की सुल्तानों ने इसको अपनी राजधानी बनाया। जौनपुर की ख्याति इसकी कलात्मक इमारतों के कारण है। ये इमारतें हिन्दू-मुस्लिम शिल्प-कला की प्रतीक हैं। इब्राहीम शाह के शासनकाल में अटाला मसजिद, बड़ी मसजिद, चार अंगुल की मसजिद, झझरी मसजिद, शाही हम्माम तथा किले के कुछ भाग का निर्माण हुआ। यहाँ के शाही हम्माम की रचना टर्की शैली पर हुई है। जौनपुर का शाही किला आजकल क्षतिग्रस्त है, परन्तु उसका फाटक देखने में अत्यन्त भव्य है। किले की मसजिद पर बौद्ध स्थापत्य-कला का प्रभाव है। जौनपुर की मसजिदों के प्रवेश द्वारों की ऊँचाई, सजावट, विशालता तथा भव्यता बहुत आकर्षक है।

(17) प्रयाग (इलाहाबाद) *(1990, 92, 94, 95, 96)*—प्रयाग का आधुनिक नाम इलाहाबाद है। यह उत्तर प्रदेश में गंगा-यमुना के संगम पर स्थित है। यह हिन्दुओं का प्रसिद्ध तीर्थस्थल (तीर्थराज) है। गंगा, यमुना तथा सरस्वती का संगम मानने के कारण इसको **त्रिवेणी** भी कहा जाता है। मुगल सम्राट अकबर ने यहाँ गंगा-यमुना के संगम पर एक किला बनवाया। उसने इसका नाम इलाहाबाद रखा और अशोक के

स्तम्भ को कौशाम्बी से मँगवाकर, इस किले में स्थापित किया। स्तम्भ पर समुद्रगुप्त के प्रधानमन्त्री ने उसकी प्रशस्ति अंकित कराई है। प्रयाग में खुसरो बाग भी है, जहाँ जहाँगीर के बड़े बेटे खुसरो का मकबरा है। प्रयाग में ही उत्तर प्रदेश का उच्च न्यायालय है और पंडित नेहरू की जन्मस्थली आनन्द भवन है।

(18) लखनऊ *(1992, 94, 97, 99)*—लखनऊ; उत्तर प्रदेश की राजधानी है। यह गोमती नदी के तट पर स्थित है। यह नवाबों की नगरी है। लखनऊ का स्टेशन अत्यधिक भव्य और विशाल है। लखनऊ का सबसे प्रसिद्ध भवन बड़ा इमामबाड़ा है। इसका निर्माण आसफुद्दौला ने कराया था। इसका मुख्य हाल, विश्व का सबसे बड़ा मेहराबों वाला हाल है। इसकी ऊँचाई 52 फीट है। इसके एक ओर की गई हल्की-सी आवाज दूसरी ओर तक पहुँच जाती है। इमामबाड़े के ऊपर निर्मित भूलभुलैया अपनी पेंचदार गलियों के लिए प्रसिद्ध है।

(19) अजन्ता *(1992)*—अजन्ता की पहाड़ी; महाराष्ट्र प्रान्त के औरंगाबाद जिले में स्थित है। सर्वप्रथम 1819 ई० में यहाँ के चमत्कारिक चित्रों की जानकारी हुई। अजन्ता की पहाड़ी को काटकर 29 गुफाएँ निर्मित की गई हैं। इन गुफाओं की दीवारों तथा छतों पर विविध प्रकार के अनुपम चित्र अंकित हैं। वर्तमान समय में 1, 2, 9, 10, 16 तथा 17 गुफाओं के चित्र ही उपलब्ध हैं, शेष चित्र नष्ट हो गए हैं। सर्वाधिक प्राचीन चित्र गुफा संख्या 9 तथा 10 के हैं। इनका समय ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी है। गुफा संख्या 16 तथा 17 के चित्र गुप्तकालीन हैं। अजन्ता की गुफाएँ स्थापत्य कला, मूर्तिकला तथा चित्रकला की सर्वोत्कृष्टता के अनुपम उदाहरण हैं। बुद्ध के जीवन से सम्बन्धित अनेक चित्र तथा मूर्तियाँ अत्यन्त प्रभावशाली एवं सजीव हैं। अजंता की गुफाओं के महत्त्वपूर्ण चित्र हैं—(1) बुद्ध के गृह त्याग का चित्र, (2) माता तथा पुत्र का चित्र, (3) मरणासन्न राजकुमारी का चित्र, (4) बुद्ध को यशोधरा द्वारा भिक्षा देने का चित्र, (5) राजा तथा हंस का चित्र, तथा (6) फारस-दूत मण्डल का चित्र। अजन्ता के चित्र स्वाभाविक, सजीव तथा वास्तविक हैं। भित्ति चित्रों में मुख्य रूप से लाल, सफेद, हरा तथा नीले रंगों का प्रयोग किया गया है।

(20) साँची *(1992)*—साँची मध्य प्रदेश में स्थित है। यह स्थान बौद्ध स्तूपों के लिए विश्व-प्रसिद्ध है। साँची में एक पहाड़ी पर, एक विशाल तथा दो लघु स्तूपों का निर्माण किया गया है। विशाल स्तूप में भगवान बुद्ध तथा शेष दो लघु स्तूपों में अशोक के समय के धर्म-प्रचारकों व बुद्ध के दो प्रमुख शिष्यों—सारिपुत्र और महामोद्‌गलायन के धातु अवशेष सुरक्षित हैं। साँची में दो गुहा मंदिरों के अवशेष भी प्राप्त हुए हैं। यहाँ की शिलाओं पर भी कई लेख उत्कीर्ण हुए मिले हैं। साँची के लेखों के आधार पर तत्कालीन समाज तथा धर्म के विषय में पर्याप्त जानकारी प्राप्त होती है।

(21) फतेहपुर सीकरी *(1992, 93, 95, 96, 97, 99)*—यह स्थान आगरा से 36·8 किमी दूर सीकरी गाँव में स्थित है। मुगल सम्राट अकबर द्वारा 1569 ई० में शेख सलीम चिश्ती (जिनके आशीर्वाद से अकबर को पुत्र रत्न की प्राप्ति हुई थी) की पुण्य स्मृति में फतेहपुर सीकरी की नींव डाली गई थी। इस स्थान पर अनेक भव्य भवनों का निर्माण किया। इन भवनों में प्रमुख निम्नलिखित हैं—

(1) इबादतखाना, (2) दफ्तरखाना, (3) नौबतखाना, (4) मीना बाजार, (5) शफाखाना, (6) संगीन बुर्ज, (7) बुलन्द दरवाजा, (8) मसजिद शाहकुली, (9) जामा मसजिद, (10) शेख सलीम चिश्ती का मकबरा, (11) खास महल, (12) जोधाबाई का महल, (13) तुर्की सुल्ताना की कोठी, तथा (14) मरियम की कोठी।

प्रश्न 3—निम्नांकित प्रमुख ऐतिहासिक व्यक्तियों पर संक्षिप्त टिप्पणी लिखिए—

उत्तर—(1) डॉ० राजेन्द्र प्रसाद *(1999)*—डॉ० राजेन्द्र प्रसाद का जन्म 3 दिसम्बर, 1884 ई० को बिहार के 'सारन' जिले में हुआ था। ये स्वतन्त्र भारत के प्रथम राष्ट्रपति और एक महापुरुष थे। ये कलकत्ता में उच्च शिक्षा ग्रहण करने के उपरान्त 1905 ई० में गोपाल कृष्ण गोखले के साथ मिलकर राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने लगे। इन्होंने देश की स्वाधीनता के लिए कई बार जेल यात्राएँ कीं। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद ये संविधान सभा के अध्यक्ष चुने गए और 26 जनवरी, 1950 ई० को देश के प्रथम राष्ट्रपति

का पद ग्रहण किया। राष्ट्रपति के रूप में इन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किए। 1963 ई० में इनका स्वर्गवास हो गया। इनका चरित्र और व्यक्तित्व बड़ा महान् व प्रभावशाली था।

(2) पं० जवाहरलाल नेहरू *(1992, 93, 95, 97)*—पं० जवाहरलाल नेहरू स्वतन्त्र भारत के प्रथम प्रधानमंत्री और राष्ट्रीय आन्दोलन के एक गणमान्य नेता थे। इनका जन्म 14 नवम्बर, 1889 ई० को इलाहाबाद में हुआ था। 1912 ई० में इन्होंने लन्दन से वकालत उत्तीर्ण करके इलाहाबाद में अपने पिता पं० मोतीलाल नेहरू के साथ प्रैक्टिस करनी शुरू कर दी। 1916 ई० में महात्मा गांधी के सम्पर्क में आकर ये राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने लगे। ये कई बार कांग्रेस के अध्यक्ष बने। 1929 ई० में इन्होंने लाहौर अधिवेशन में 'पूर्ण स्वाधीनता' का प्रस्ताव पारित किया। 1942 ई० के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' के समय ये जेल गए और अन्ततः देश को स्वतन्त्र कराने में सफल हुए। स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद ये देश के प्रथम प्रधानमन्त्री बने। इन्होंने प्रधानमन्त्री के रूप में पंचशील सिद्धान्त प्रतिपादित किया, देश में पंचवर्षीय योजनाएँ लागू कीं और अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किए। 27 मई, 1964 ई० को इनका स्वर्गवास हो गया। ये विश्वशान्ति के अग्रदूत और महान् मानवतावादी थे।

(3) श्री लालबहादुर शास्त्री—श्री लालबहादुर शास्त्री देश के महान् नेता, पक्के देशभक्त और भारत के दूसरे प्रधानमन्त्री थे। इनका जन्म 2 अक्टूबर, 1904 ई० को मुगलसराय (वाराणसी) में हुआ था। 1921 ई० में इन्होंने देश की राजनीति में प्रवेश किया और स्वाधीनता प्राप्ति तक राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेते रहे। स्वाधीनता के बाद ये 1957 ई० में उत्तर प्रदेश के गृहमन्त्री बने और 1961 ई० में केन्द्र में स्वराष्ट्र मन्त्रालय का पदभार ग्रहण किया। 1964 ई० में ये शिक्षामन्त्री और 9 जून, 1964 ई० को भारत के दूसरे प्रधानमन्त्री बने। 1965 ई० में ये पाकिस्तान से सन्धि-वार्ता करने के लिए ताशकन्द गए। ताशकन्द में ही 11 जनवरी, 1966 ई० को इनकी असामयिक मृत्यु हो गई। शास्त्री जी अत्यन्त शान्त, मृदुभाषी, गम्भीर और मितव्ययी महापुरुष थे।

(4) श्रीमती इन्दिरा गांधी—श्रीमती इन्दिरा गांधी का विश्व की महान् महिलाओं में अपना एक विशिष्ट स्थान है। इनका जन्म 19 नवम्बर, 1917 ई० को इलाहाबाद में हुआ था। इनके पिता पंडित जवाहरलाल नेहरू; भारत के प्रधानमंत्री और देश के एक गणमान्य नेता थे। श्रीमती गांधी ने 1938 ई० में भारतीय राजनीति में प्रवेश किया और अपनी योग्यता तथा दूरदर्शिता के बल पर, 24 जनवरी, 1966 ई० को, देश की प्रधानमंत्री बन गईं। 1977 ई० में 28 माह के विराम काल के बाद, ये पुनः देश की प्रधानमंत्री बनीं। 31 अक्टूबर, 1984 ई० को इनके अंगरक्षकों द्वारा ही इनकी हत्या कर दी गई। श्रीमती गांधी एक साहसी, कर्त्तव्यपरायण, धैर्यवान् और विवेकशील महिला थीं। उन्होंने भारत की उन्नति को पराकाष्ठा पर पहुँचाया और अनेक महत्त्वपूर्ण कार्य किए, जिनमें राजाओं के प्रीवीपर्स का अन्त और बैंकों का राष्ट्रीयकरण प्रमुख हैं। अन्तर्राष्ट्रीय क्षेत्र में श्रीमती गांधी ने बांग्ला देश का निर्माण कराकर, देश को अतुलनीय गौरव दिलाया। भारत के इतिहास में श्रीमती गांधी का नाम सदैव स्वर्णाक्षरों में अंकित रहेगा।

(5) महामना मदन मोहन मालवीय—मालवीय जी का जन्म 25 दिसम्बर, 1861 ई० को प्रयाग में हुआ था। उनके पिता का नाम पंडित ब्रजनाथ मालवीय था। वे साधारण शिक्षा प्राप्त कर, आरम्भ में शिक्षक बने। बाद में उन्होंने कानून की शिक्षा प्राप्त की और प्रयाग के उच्च न्यायालय में वकालत प्रारम्भ की, परन्तु भारत की सेवा करने के लिए उन्होंने वकालत छोड़ दी और स्वतन्त्रता के आन्दोलन में कूद पड़े। 1886 ई० में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन में उन्होंने एक ओजस्वी भाषण दिया। उन्होंने काशी में विश्वविद्यालय की स्थापना भी की। मालवीय जी कई बार भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के सभापति चुने गए। ये अपनी समाज-सेवा के कारण महामना कहलाए। 12 नवम्बर, 1946 ई० को इनका स्वर्गवास हो गया।

(6) श्री राजीव गांधी—श्री राजीव गांधी श्री फिरोज गांधी तथा श्रीमती इन्दिरा गांधी के ज्येष्ठ पुत्र थे। राजीव गांधी की प्रारम्भिक शिक्षा दून स्कूल में तथा उच्च शिक्षा कैम्ब्रिज विश्वविद्यालय में हुई थी। इटली मूल की महिला सोनिया जी से इनका विवाह हुआ। इनके एक पुत्र तथा एक पुत्री ने जन्म लिया।

श्रीमती इन्दिरा गांधी की असामयिक मृत्यु के पश्चात् 1984 ई० में ये भारत के प्रधानमन्त्री बने। श्रीमती इन्दिरा गांधी के प्रभुत्व तथा प्रभाव के कारण राजीव जी को राजनीतिक क्षेत्र में सफलता प्राप्त करने में कोई कठिनाई नहीं हुई। इन्होंने पंजाब तथा असम समस्याओं को समझौते के आधार पर सुलझाने का प्रयास किया तथा आंशिक रूप से सफलता भी प्राप्त की। शिक्षा, विज्ञान तथा आर्थिक क्षेत्र में इन्होंने सराहनीय कार्य किया। विश्व रंगमंच पर भी श्री राजीव गांधी ने भारत की विदेश नीति को एक नया मोड़ प्रदान किया। इनकी विदेश नीति की प्रमुख विशेषता—अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं को पारस्परिक बातचीत तथा विचार-विनिमय से सुलझाने के पक्ष में रही। इस प्रकार श्री राजीव गांधी ने विश्व में भारत की साख को मजबूत बनाया। 21 मई, 1991 ई० को मद्रास के निकट पेराम्बुदूर नामक स्थान पर आतंकवादियों द्वारा किए गए बम विस्फोट में इनकी मृत्यु हो गई।

(7) डॉ० बी० आर० अम्बेडकर *(1994, 95, 97, 99)*—डॉ० बी० आर० अम्बेडकर 'हरिजनों के मसीहा' के रूप में प्रसिद्ध हैं। आजादी से पूर्व 1942–46 ई० तक डॉ० भीमराव वायसराय की एक्जीक्यूटिव काउंसिल के सदस्य रहे। स्वाधीनता प्राप्ति के उपरान्त इनको भारत सरकार का विधि-मंत्री बनाया गया। भारतीय संविधान का निर्माण करने में डॉ० अम्बेडकर का योगदान अविस्मरणीय है। ये संविधान सभा के सदस्य और संविधान प्रारूप समिति के अध्यक्ष रहे। इनके द्वारा अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र और राजनीतिशास्त्र पर अनेक पुस्तकों की रचना की गई। **'द प्रॉब्लम ऑफ रुपीज'** तथा **'रिडल्स ऑन हिन्दूइज्म'** इनके द्वारा रचित महत्त्वपूर्ण पुस्तकें हैं। 1956 ई० में इनकी मृत्यु हो गई। मरणोपरांत, 1990 ई० में, इनको 'भारत रत्न' से सम्मानित किया गया।

मुगलकालीन सम्राट एवं उनके उत्तराधिकारियों की शासनावधि

1. जहीरुद्दीन मुहम्मद बाबर	1526–1530 ई०
2. नासिरुद्दीन हुमायूँ	1530–1540 ई० तथा 1555–1556 ई०
3. जलालुद्दीन अकबर	1556–1605 ई०
4. जहाँगीर	1605–1627 ई०
5. शाहजहाँ	1627–1658 ई०
6. औरंगजेब	1658–1707 ई०
7. बहादुरशाह प्रथम	1707–1712 ई०
8. जहाँदार शाह	1712–1713 ई०
9. फर्रूखसियर	1713–1719 ई०
10. मुहम्मद शाह	1719–1748 ई०
11. अहमदशाह	1748–1754 ई०
12. आलमगीर द्वितीय	1754–1759 ई०
13. शाहआलम द्वितीय	1759–1806 ई०
14. अकबर द्वितीय	1806–1836 ई०
15. बहादुरशाह द्वितीय	1837–1857 ई०

सूरवंश व उनके उत्तराधिकारियों की शासनावधि

1. शेरशाह सूरी	1540–1545 ई०
2. इस्लामशाह सूर	1545–1553 ई०
3. आदिलशाह सूर	1553–1555 ई०

मराठा शासक व पेशवा

1. शिवाजी	1627–1680 ई०
2. शम्भा जी	1680–1689 ई०
3. राजाराम	1689–1700 ई०
4. ताराबाई	1700–1707 ई०
5. शाहू जी	1708–1748 ई०
6. पेशवा बालाजी विश्वनाथ	1713–1720 ई०
7. पेशवा बाजीराव प्रथम	1720–1740 ई०
8. पेशवा बालाजी बाजीराव	1740–1761 ई०
9. पेशवा माधवराव प्रथम	1761–1772 ई०
10. पेशवा नारायण राव	1772 ई०
11. पेशवा माधवराव नारायण राव	1772–1795 ई०
12. पेशवा बाजीराव द्वितीय	1796–1818 ई०
13. महादजी सिंधिया	1727–1794 ई०
14. नाना फड़नवीस	1742–1800 ई०

सिक्ख गुरु

1. गुरु नानक देव	1469–1538 ई०
2. गुरु अंगद	1538–1552 ई०
3. गुरु अमरदास	1552–1574 ई०
4. गुरु रामदास	1574–1581 ई०
5. गुरु अर्जुन देव	1581–1606 ई०
6. गुरु हरगोविन्द सिंह	1606–1645 ई०
7. गुरु हरिराय	1645–1661 ई०
8. गुरु हरिकिशन	1661–1663 ई०
9. गुरु तेग बहादुर	1664–1675 ई०
10. गुरु गोविन्दसिंह	1675–1708 ई०
11. बन्दा बहादुर	1708–1715 ई०
12. राजा रणजीतसिंह	1780–1839 ई०

ब्रिटिश भारत के गवर्नर जनरलों तथा वायसरायों की सूची

गवर्नर जनरल

नाम	अवधि
1. वारेन हेस्टिंग्स	सन् 1772 – 1785 ई०
2. सर मैक्फर्सन	सन् 1785 – 1786 ई०
3. लॉर्ड कार्नवालिस	सन् 1786 – 1793 ई०
4. सर जॉन शोर	सन् 1793 – 1798 ई०
5. लॉर्ड वेलेजली	सन् 1798 – 1805 ई०
6. लॉर्ड कार्नवालिस (पुनः)	सन् 1805 ई०
7. सर जॉर्ज बार्लो	सन् 1805 – 1807 ई०
8. लॉर्ड मिण्टो	सन् 1807 – 1813 ई०
9. लॉर्ड हेस्टिंग्स	सन् 1813 – 1823 ई०
10. लॉर्ड एमहर्स्ट	सन् 1823 – 1828 ई०
11. लॉर्ड विलियम बैंटिंक	सन् 1833 – 1835 ई०
12. चार्ल्स मैटकॉफ	सन् 1835 – 1836 ई०
13. लॉर्ड ऑकलैण्ड	सन् 1836 – 1842 ई०
14. लॉर्ड एलिनबरा	सन् 1842 – 1844 ई०
15. लॉर्ड हार्डिंग	सन् 1844 – 1848 ई०
16. लॉर्ड डलहौजी	सन् 1848 – 1856 ई०
17. लॉर्ड कैनिंग	सन् 1856 – 1858 ई०

वायसराय

1. लॉर्ड कैनिंग	सन् 1858 – 1862 ई०
2. लॉर्ड एलगिन	सन् 1862 – 1876 ई०
3. लारेंस मेयो	सन् 1862 – 1876 ई०
4. नार्थ ब्रुक	सन् 1872 – 1876 ई०

5. लॉर्ड लिटन	सन् 1876 – 1880 ई०
6. लॉर्ड रिपन	सन् 1880 – 1884 ई०
7. लॉर्ड डफरिन	सन् 1884 – 1888 ई०
8. लॉर्ड लैन्सडाउन	सन् 1888 – 1894 ई०
9. लॉर्ड एलगिन	सन् 1894 – 1898 ई०
10. लॉर्ड कर्जन	सन् 1899 – 1905 ई०
11. लॉर्ड मिण्टो द्वितीय	सन् 1905 – 1910 ई०
12. लॉर्ड हार्डिंग द्वितीय	सन् 1910 – 1916 ई०
13. लॉर्ड चेम्सफोर्ड	सन् 1916 – 1921 ई०
14. लॉर्ड रीडिंग	सन् 1921 – 1925 ई०
15. लॉर्ड लिटन द्वितीय	सन् 1925 – 1926 ई०
16. लॉर्ड इरविन	सन् 1926 – 1931 ई०
17. लॉर्ड विलिंगडन	सन् 1931 – 1936 ई०
18. लॉर्ड लिनलिथगो	सन् 1936 – 1943 ई०
19. लॉर्ड वैबेल	सन् 1943 – जून 1947 ई०
20. लॉर्ड माउण्टबेटन	सन् जून 1947 – अगस्त 1947 ई० (ब्रिटिश भारत के अन्तिम वायसराय)

स्वतन्त्रत भारत के गवर्नर जनरल

1. लॉर्ड माउण्टबेटन	15 अगस्त, 1947 – 1948 ई०
2. श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचारी	1948 – 26 जनवरी, 1950 ई०

(प्रथम भारतीय तथा स्वतन्त्र भारत के अन्तिम गवर्नर जनरल)

भारत के राष्ट्रपति

नाम	अवधि
1. डॉ० राजेन्द्र प्रसाद	26 जनवरी, 1950 – 13 मई, 1962 ई०
2. डॉ० सर्वपल्ली राधाकृष्णन	13 मई, 1962 – 12 मई, 1967 ई०
3. डॉ० जाकिर हुसैन	13 मई, 1967 – 3 मई, 1969 ई०
4. वराहगिरि वेंकटगिरि (कार्यवाहक)	3 मई, 1969 – 20 जौलाई 1969 ई०
5. न्यायमूर्ति मुहम्मद हिदायतुल्ला (कार्यवाहक)	20 जौलाई, 1969 – 24 अगस्त, 1969 ई०
6. वराहगिरि वेंकटगिरि	24 अगस्त, 1969 – 24 अगस्त, 1974 ई०
7. फखरुद्दीन अली अहमद	24 अगस्त, 1974 – 11 फरवरी, 1977 ई०
8. बी० डी० जत्ती (कार्यवाहक)	11 फरवरी, 1977 – 25 जौलाई, 1977 ई०
9. नीलम संजीवा रेड्डी	25 जौलाई, 1977 – 25 जौलाई, 1982 ई०
10. ज्ञानी जैल सिंह	25 जौलाई, 1982 – 25 जौलाई, 1987 ई०
11. आर० वेंकटरमन	25 जौलाई, 1987 – 25 जौलाई, 1992 ई०
12. डॉ० शंकर दयाल शर्मा	25 जौलाई, 1992 – 25 जौलाई, 1997 ई०
13. डॉ० के० आर० नारायणन	25 जौलाई, 1997 – वर्तमान राष्ट्रपति

भारत के प्रधानमन्त्री

नाम	अवधि
1. जवाहरलाल नेहरू	15 अगस्त, 1947 – 27 मई, 1964 ई०
2. गुलजारी लाल नन्दा (कार्यवाहक)	27 मई, 1964 – 9 जून 1964 ई०
3. लाल बहादुर शास्त्री	9 जून 1964 – 11 जनवरी 1966 ई०
4. गुलजारी लाल नन्दा (कार्यवाहक)	11 जनवरी, 1966 – 24 जनवरी, 1966 ई०

5. इन्दिरा गांधी	24 जनवरी, 1966 – 24 मार्च, 1977 ई०
6. मोरारजी देसाई	24 मार्च, 1977 – 28 जौलाई, 1979 ई०
7. चरण सिंह	28 जौलाई, 1979 – 14 जनवरी, 1980 ई०
8. इन्दिरा गांधी	14 जनवरी, 1980 – 31 अक्तूबर, 1984 ई०
9. राजीव गांधी	31 अक्तूबर, 1984 – 1 दिसम्बर, 1989 ई०
10. विश्वनाथ प्रताप सिंह	2 दिसम्बर, 1989 – 10 नवम्बर, 1990 ई०
11. चन्द्रशेखर	11 नवम्बर, 1990 – 21 जून, 1991 ई०
12. पी० वी० नरसिम्हा राव	21 जून, 1991 – 15 मई, 1996 ई०
13. अटल बिहारी वाजपेयी	16 मई 1996 – 1 जून, 1996 ई०
14. एच० डी० देवगौड़ा	1 जून, 1996—20 अप्रैल, 1997 ई०
15. इन्द्रकुमार गुजराल	20 अप्रैल, 1997—19 मार्च, 1998 ई०
16. अटल बिहारी वाजपेयी	19 मार्च, 1998—15 जून, 1998 ई०
17. अटल बिहारी वाजपेयी	20 फरवरी, 1999 से वर्तमान तक।

परीक्षा प्रश्न-पत्र

132/1 464 (PV)

इण्टरमीडिएट भारतीय इतिहास

प्रथम प्रश्न-पत्र

समय : तीन घण्टे] *[पूर्णांक : 50*

नोट : (i) इस प्रश्न-पत्र के तीन खण्ड हैं। खण्ड 'क' में निबन्धात्मक, खण्ड 'ख' में लघु-उत्तरीय तथा खण्ड 'ग' में ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों तथा व्यक्तियों से सम्बन्धित प्रश्न हैं।

(ii) खण्ड 'क' के प्रश्नों के उत्तर प्रत्येक 4 पृष्ठों (लगभग 400 शब्द) तथा खण्ड 'ख' के प्रश्नों के उत्तर प्रत्येक दो पृष्ठों (लगभंग 200 शब्द) से अधिक नहीं होने चाहिए।

(iii) सभी प्रश्न अनिवार्य हैं।

खण्ड 'क'

(निबन्धात्मक प्रश्न)

1. 'भारत की भौगोलिक परिस्थितियों का उसके राजनीतिक एवं सांस्कृतिक जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ा।' विवेचना कीजिए। 3 + 3

अथवा

सिन्धु घाटी के निवासियों के सामाजिक और आर्थिक जीवन की प्रमुख विशेषताओं का संक्षेप में वर्णन कीजिए। 3 + 3

2. बौद्ध धर्म के प्रमुख सम्प्रदायों का उल्लेख करते हुए समय-समय पर आयोजित बौद्ध संगीतियों का वर्णन कीजिए। 2 + 4

अथवा

'सिकन्दर का आक्रमण एक ऐसी महान् घटना थी कि भारतीय इतिहास पर इसका प्रभाव पड़ना अवश्यम्भावी था।' विवेचना कीजिए। 6

3. मौर्य कौन ? चन्द्रगुप्त मौर्य की राजनीतिक सफलताओं का वर्णन कीजिए। 2 + 4

अथवा

भारत पर हूणों के आक्रमणों का संक्षिप्त विवरण दीजिए। इन आक्रमणों का भारत पर क्या प्रभाव पड़ा ? 3 + 3

4. हर्षवर्धन की प्रारम्भिक कठिनाइयों का उल्लेख करते हुए उसकी महत्त्वपूर्ण विजयों का वर्णन कीजिए। 2 + 4

अथवा

बलबन की उपलब्धियों का वर्णन कीजिए। गुलाम वंश के इतिहास में उसका क्या स्थान है ? 3 + 3

5. तुगलक साम्राज्य के पतन में फिरोज तुगलक कहाँ तक उत्तरदायी था ? 6

अथवा

'शिक्षा एवं साहित्य के क्षेत्र में सल्तनत काल में महत्त्वपूर्ण प्रगति हुई थी।' विवेचना कीजिए। 3 + 3

खण्ड 'ख'

(लघु-उत्तरीय प्रश्न)

6. भारतीय इतिहास लेखन में बौद्ध साहित्य से क्या जानकारी मिलती है? 2
7. जैन धर्म के सम्प्रदायों पर संक्षिप्त टिप्पणी कीजिए। 2
8. गुप्तकाल में साहित्य के विकास पर टिप्पणी लिखिए। 2
9. राजपूतकाल में साहित्य के क्षेत्र में क्या प्रगति हुई थी? 2

खण्ड 'ग'

(ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों तथा व्यक्तियों से सम्बन्धित प्रश्न)

10. निम्नलिखित ऐतिहासिक तिथियों में से किन्हीं दस से सम्बन्धित घटनाओं का उल्लेख कीजिए। प्रत्येक सही उत्तर के लिए $\frac{1}{2}$ अंक निर्धारित है : 5

(क) 326 ई० पू०
(ख) 305 ई० पू०
(ग) 149 ई० पू०
(घ) 78 ई०
(ङ) 123 ई०
(च) 606 ई०
(छ) 647 ई०
(ज) 712 ई०
(झ) 1026 ई०
(ञ) 1221 ई०
(ट) 1240 ई०
(ठ) 1316 ई०
(ड) 1320 ई०
(ढ) 1388 ई०
(ण) 1398 ई०

11. निम्नलिखित में से किसी एक स्थान के भवनों, कलाकृतियों एवं ऐतिहासिक महत्त्व का उल्लेख कीजिए :

(अ) मोहनजोदड़ो
(ब) तक्षशिला
(स) ग्वालियर

12. निम्नलिखित में से किन्हीं दो पर संक्षिप्त टिप्पणियाँ लिखिए : 2 + 2

(अ) अजातशत्रु
(ब) पुलकेशिन् द्वितीय
(स) रामानन्द
(द) सिकन्दर लोदी।

132/2

465 (PZ)

इण्टरमीडिएट भारतीय इतिहास

द्वितीय प्रश्न-पत्र

समय : तीन घण्टे] *[पूर्णांक : 50*

नोट : (i) इस प्रश्न-पत्र के तीन खण्ड हैं। खण्ड 'क' में निबन्धात्मक, खण्ड 'ख' में लघु-उत्तरीय तथा खण्ड 'ग' में ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों तथा व्यक्तियों से सम्बन्धित प्रश्न हैं।

(ii) खण्ड 'क' के प्रश्नों के उत्तर प्रत्येक 4 पृष्ठों (लगभग 400 शब्दों) एवं लघु-उत्तरीय प्रश्नों के उत्तर दो पृष्ठों (लगभग 200 शब्दों) से अधिक नहीं होने चाहिए।

(iii) सभी प्रश्न अनिवार्य हैं।

(iv) उपान्त के अंक पूर्णांक के द्योतक हैं।

खण्ड 'क'

(निबन्धात्मक एवं विवेचनात्मक प्रश्न)

1. ' पानीपत युद्ध से ही दिल्ली साम्राज्य बाबर के हाथ में आ गया।' इस कथन को स्पष्ट कीजिए। 6

अथवा

बाब[illegible]र की विजयों पर प्रकाश डालिए। 6

2. अकबर की धार्मिक नीति का विवेचन कीजिए। 6

अथवा

जहाँगीर के शासनकाल की मुख्य घटनाओं का अंक विवेचन कीजिए। 6

3. शाहजहाँ द्वारा निर्मित इमारतों का उल्लेख कीजिए। 6

अथवा

"औरंगजेब की दक्षिणी नीति मुगल साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी थी।" इस कथन की विवेचना कीजिए। 6

4. शिवाजी की शासन-व्यवस्था का विवेचन करो। 6

अथवा

विलियम बेंटिंक के सुधारों पर प्रकाश डालो। 6

5. ब्रह्म समाज तथा आर्य समाज के प्रमुख सुधार क्या थे? 3 + 3

अथवा

भारतीय संविधान की मुख्य विशेषताओं का उल्लेख करो। 6

खण्ड 'ख'

(लघु-उत्तरीय प्रश्न)

6. सूर-साम्राज्य के पतन के चार कारणों का उल्लेख कीजिए। 2

7. शाहजहाँ कालीन चार चित्रकारों का नामोल्लेख कीजिए। 2

8. 'सिगरौली-सन्धि' की शर्तें क्या थीं? 2

9. महात्मा गाँधी के समकालीन चार वाइसरायों का उल्लेख कीजिए। 2

खण्ड 'ग'

(ऐतिहासिक तिथियों, स्थलों और व्यक्तियों से सम्बन्धित प्रश्न)

10. निम्नलिखित तिथियों में से किन्हीं 'दस' से सम्बन्धित ऐतिहासिक घटनाओं का उल्लेख कीजिए। प्रत्येक सही उत्तर के लिए $\frac{1}{2}$ अंक निर्धारित है : 5

(क) 1519 ई०
(ख) 1533 ई०
(ग) 1545 ई०
(घ) 1582 ई०
(च) 1645 ई०
(छ) 1675 ई०
(ज) 1761 ई०
(झ) 1765 ई०
(ट) 1774 ई०
(ठ) 1800 ई०
(ड) 1824 ई०
(ढ) 1942 ई०

11. निम्नलिखित ऐतिहासिक स्थलों में से किसी 'एक' स्थान से सम्बन्धित मह[illegible] भवनों एवं कलाकृतियों का संक्षिप्त वर्णन कीजिए :

(क) फतेहपुर सीकरी
(ख) लखनऊ
(ग) इलाहाबाद

12. निम्नलिखित में से किन्हीं 'दो' ऐतिहासिक व्यक्तियों के जीवन एवं का[illegible] डालिए :

(क) सुरेन्द्रनाथ बनर्जी
(ख) दादाभाई नौरोजी
(ग) टीपू सुल्तान
(घ) एनी बेसेंट

● ●

5 చవితి ఉ. 8-33 అశ్విని సా. 5-37 వ.ప. 1-37ల 3-13	**12** ఏకాదశి ప. 3-25 పుష్యమి తె 5-31 వ.ప. 11-45ల 1-32కు	**19** తదియ రా. 11-34 చిత్ర ప. 3-40 వ.రా. 9-17ల 10-53కు	**26** దశమి ప. 11-12 ఉ.షా. ఉ. 9-00 వ.ప. 12-43ల 2-12కు
6 పంచమి ఉ. 8-10 భరణి సా. 6-01 వర్జ్యం లేదు.	**13** ద్వాదశి సా. 5-32 ఆశ్రేష పూర్తి వ.రా. 7-41ల 9-27	**20** చవితి రా. 10-43 స్వాతి ప. 3-44 వ.రా. 9-15ల 10-50కు	**27** ఏకాదశి ఉ. 8-52 శ్రవణం ఉ. 7-18 వ.ప. 11-01 ల 12-30కు
7 షష్ఠి ఉ. 8-03 కృత్తిక రా. 6-55 వ.ఉ. 6-25క 8-08కు	**14** త్రయోదశి రా. 7-32 ఆశ్రేష ఉ. 8-04 వ.రా. 9-14ల 10-59	**21** పంచమి రా. 9-35 విశాఖ ప. 3-23 వ.రా. 7-16ల 8-49కు	**28** ద్వాదశి ఉ.6-30 త్రయోదశి తె. 4-14 శత తె.4-09 దు.ఉ. 8-26ల 9-14కు
8 సప్తమి ఉ. 8-50 రోహిణి రా. 8-18 వ.ప. 11-50ల 1-32కు	**15** చతుర్దశి రా. 9-15 మఖ ఉ. 10-23 వ.రా. 7-04ల 8-48కు	**22** షష్ఠి రా. 7-59 అనూరాధ ప. 3-37 వ.రా. 7-58ల 9-30కు	**29** చతుర్దశి రా. 2-15 పూ.భా.రా.2-53 వ.ఉ. 10-13ల 11-44కు

భగత్‌సిం[...]
రాజగురు
సుఖదేవ్ బలి[...]